ॐ श्रीः

प्राक्कथन

इस सुखाभास समन्वित दुःखमय संसार में सब प्राणियों के मध्य 'पुरुष' ही श्रेष्ठ माना गया है। प्राचीन सिद्ध ऋषि मुनियों ने शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए चार पुरुषार्थों का निर्देश किया है। वे हैं १ धर्म, २ अर्थ, ३ काम ४ और मोक्ष। शास्त्रविहित प्रकारानुसार इन पुरुषार्थों के अनुष्ठान द्वारा मनुष्यों को अवश्य ही शान्तिमय जीवन यापन करने में सहाय्य प्राप्त होता है, किन्तु इन चारों पुरुषार्थों का उत्तम मूल शारीरिक एवम् मानसिक आरोग्य ही है। शरीर-मन में अल्पमात्र भी विकृति होने से उपर्युक्त चारों पुरुषार्थों में एक का भी व्यवहार पंगुमय हो जाता है।

इस बात का सही-सही अनुभव चरकचार्य ने किया था और इसकी उद्घोषणा भी कर दी है—

> धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
> रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥

अतः शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य सुरक्षित रखने के लिए त्रिकालदर्शी ऋषियों ने सारे जगत् के मनुष्यों के कल्याणार्थ उपायभूत चिकित्सा (जीवन) विज्ञान 'आयुर्वेद' का भी प्रसार किया।

संप्रति हमारे देश में दो प्रकार का आयुर्वेदिक संप्रदाय प्रचलित है। १ आत्रेय संप्रदाय, २ धन्वन्तरि-संप्रदाय। उनमें आत्रेय संप्रदाय का काय-चिकित्सा प्रधान, एवं धन्वन्तरि संप्रदाय वालों का शल्य (सर्जरी) तन्त्र प्रधान ग्रन्थ का इस देश में प्रचलन है, किन्तु एक साथ दोनों मतों को प्रदर्शित करनेवाला कोई एक ग्रन्थ चरक सुश्रुत के बाद नहीं था। इसी अभाव को दूर करने

के हेतु से सिंहगुप्त के आत्मज परमकुशल विद्वद् वरिष्ठ आचार्य वाग्भट ने दोनों सम्प्रदायों का इधर उधर फैले हुए विषयों का अनेक ग्रन्थों से संग्रह द्वारा, जो कि नतो अति संक्षेप और न अति विस्तार है, सारतर भाग लेकर आयुर्वेद के आठों अङ्गों का प्रतिपादन करने वाले *'अष्टाङ्ग हृदय'* नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। ग्रथ के अन्त ४०वें अध्याय मे उन्होने स्वयं लिखा है—

> यदि चरकमधीते तद्ध्रुवं सुश्रुतादि—
> प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः।
> अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
> किमिव खलु करोति व्याधितानां वराकः॥

इसी कारण इस ग्रन्थ में शरीर एवं भेषज के तत्त्वादि तथा शल्य-शालाक्य आदि के विवरण, आयुर्वेद के सभी प्रकार के ज्ञातव्य चिकित्सा विज्ञान के सभी अङ्गों का उल्लेख करने में बहुत अधिक निपुणता पाई जाती है।

इसकी भाषा प्राञ्जल-प्रौढ़ विशुद्ध एवं रचनारीति सुमार्जित है। आयुर्वेद के तन्त्रों में संप्रति ऐसा ग्रन्थ आजतक दुर्लभ ही है। केवल इसी एक ग्रन्थ से दोनों ग्रंथों का मर्म सुगमता से विज्ञात हो सकता है। आयुर्वेद तन्त्र में "अष्टाङ्ग हृदय" सदृश अन्य ग्रन्थ सर्वथा दुर्लभ ही है।

किसी का कथन है—*"निदाने माधवः श्रेष्ठः, सूत्रस्थाने तु वाग्भटः"* यह वचन विद्वानों को सत्य ही प्रतीत होता है। "अष्टाङ्ग हृदय" का सूत्रस्थान जैसा होना चाहिए, प्रतिपाद्य आयुर्वेदिक अनेक विषयों से परिपूर्ण, क्रमबद्ध किसी भी तन्त्र का नहीं है। अतः आयुर्वेदिक विषयज्ञान के लिए इच्छुक विद्वान् एवं छात्रों को यह ग्रन्थ अवश्य द्रष्टव्य है।

आयुर्वेद वेदका उपाङ्ग होने मे वेद निःसृत ही है। प्राचीन कालिदास भारवि-भवभूति श्रीहर्ष आदि कविवरों के सभी काव्यनाटक आदि ग्रंथों में प्रसंगवश आयुर्वेद के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। उन ग्रन्थों के टीकाकारो ने "यदाह-वाग्भटः" लिखकर उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। श्रीहर्ष कवि ने तो स्वविरचित नैषध चरित्र मे चरक सुश्रुत का स्पष्ट उल्लेख किया है।

कन्यान्तःपुरबाधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपं
द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतुः।
देवाकर्ण्य सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलम्
स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपीश्वरः॥

लघुमंजूषा में प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य श्री नागेशभट्ट की उक्ति तो संस्कृत के बुधवरों को आयुर्वेद ज्ञान के लिए आह्वान कर स्पष्ट रूप से उत्साहित कर रही है। भट्टाचार्य जी ने आप्त का लक्षण प्रदर्शित करने के अनन्तर 'इति चरके पतञ्जलिः' लिखा है। पुराणों, धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्रों मे भी आयुर्वेद के विषय पाये जाते हैं। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत के सभी विद्वान् आयुर्वेद ज्ञान से सम्पन्न थे। सत्य तो यह है कि आयुर्वेद का मार्मिक ज्ञान संस्कृतज्ञों को ही सुगम एवं सुलभ है, क्योंकि आयुर्वेद संस्कृत भाषा में ही मौलिक रूप में है। अतः आधुनिक संस्कृत के कोविदो के प्रति मेरी सौख्यदायिनी सम्मति है कि वे अष्टाङ्ग हृदय अथवा चरकसंहिता का स्वाध्याय कर अनुभव करें कि कितना आनन्द आता है।

कुछ लोग तो आयुर्वेद-प्रवर्तक ऋषियों की पङ्क्ति मे वाग्भट को कलियुग का ऋषि मानते हुए कहते है कि—

'अत्रिः' कृतयुगे चैव द्वापरे सुश्रुतो मतः
कलौ वाग्भटनामा चेत्यायुर्वेदप्रवर्तकाः।

इससे वाग्भट का अत्यन्त प्रामाण्य स्वीकार किया गया है।

वाग्भट का परिचय

ऐसी किंवदन्ती है कि वाग्भट सिन्धु देश के निवासी ब्राह्मण तथा वैदिकाचार परायण थे। पीछे विशेष विद्या के सीखने के लिए किसी बौद्धाचार्य से बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। अष्टाङ्ग हृदय में ही वाग्भट के बौद्ध होने का प्रमाण उपलब्ध है।

(१) अष्टाङ्गहृदय के मङ्गलाचरण में किसी विशेष देवता का नाम न होना।

(२) सुश्रुत आदि तन्त्रों में वमन विरेचन के औषधपान के समय जिन मन्त्रों को प्रयोजनीय बतलाया गया है। 'अष्टाङ्गहृदय' में उसमे एक मन्त्र अधिक है—

ॐ नमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजाय। तथाऽगतायाऽर्हते सम्यक् संबुद्धाय। इस मन्त्र को 'आगताय' 'संबुद्धाय' पद स्पष्ट रूप से बौद्धसंप्रदाय का बतला रहा है। (वा० सू० अ० १८)

(३) "सिद्धार्थं योगं प्राह यशो मुमुक्षो
भिक्षोः प्रयान् माणिभद्रः किलेमम्"

(वा० चि० अ० १९)

बौद्ध संप्रदाय में साधुओं का "भिक्षु" नाम से व्यवहार होता है। किसी व्याधित भिक्षु से वाग्भट का परिचय हुआ होगा। अथवा उन्हें इस प्रयोग का उपदेश किसी बौद्ध ने ही किया होगा।

(४) अष्टाङ्ग हृदय के उत्तर स्थान पञ्चमाध्याय—भूतविद्या तन्त्र में सर्व ग्रहनिवारण मन्त्र है—

ईश्वरं द्वादशभुजं नाथमार्यावलोकितम्।
सर्वव्याधिचिकित्सन्तं जपन् सर्वग्रहान् जयेत्॥
महाविद्यां च मायूरीं शुचिं तं श्रावयेत्सदा॥

बौद्धग्रन्थानुसार इस मन्त्र के "अवलोकित" एतन्नामक कोई बौद्धाचार्य थे। मायूरी महाविद्या भी बौद्धधर्म से सम्बन्ध रखती है।

वाग्भटाचार्य ने अपने नाम से एक वाग्भटालङ्कार ग्रंथ की भी रचना की थी, किन्तु एक अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय से ही विश्व में उनकी सुप्रतिष्ठा स्थिर हो गई।

आयुर्वेद के अद्वितीय विद्वान् श्रीगणनाथ सेन जी स्वकीय प्रत्यक्ष शारीर के उपोद्घात में एवं कविराज श्री देवेन्द्रनाथ सेन ने भी वाग्भट को बौद्धधर्म में दीक्षित होना माना है।

वाग्भट का काल निर्णय

श्रीगणनाथ मेन जी का ही मत है कि वाग्भट का समय ईसा की पाँचवी शताब्दी के आरम्भ मे हो सकता है, क्योकि चीन देश का "इत्सिङ्ग" नामक परिव्राजक अपने भारत भ्रमण के समय मे वाग्भट को अष्टाङ्गसंग्राहक नवीनाचार्य लिखा है। इत्सिङ्ग के ही लेख से पता चलता है कि उन्होंने ईसा की सातवी शताब्दी मे भारत की यात्रा की थी। इस प्रकार वाग्भट का काल परिव्राजक के समय से दो सौ वर्ष पहले अथवा ईसा की पाँचवी शती का प्रारम्भ ही माना जा सकता है।

(२) प्राचीन चक्रपाणि, डल्लन आदि आचार्यों ने वाग्भट के पाठों का उद्धरण किया है, जिससे उनके काल से भी न्यून पाँच सौ वर्ष पहले का ही वाग्भट का समय ज्ञात पड़ता है।

(३) मुहम्मद बिन् कासिम ने ईसा के आठवें शतक के आरम्भ मे सिन्धु देश पर आक्रमण किया था। अतः सिन्धुदेशीय वाग्भट इससे पहले ही हो सकते हैं, क्योंकि सिन्धुराज्य के विप्लव के समय अष्टाङ्ग-संग्रह का निर्माण सर्वथा असम्भव है।

किसी विदेशी विद्वान् का यह मत कि संग्रह एवं हृदय के कर्ता-वाग्भट भिन्न-भिन्न हैं, सर्वथा निर्मूल तथा आश्चर्यजनक है, क्योकि दोनों ही ग्रन्थो का भाषा-सादृश्य तथा पिता का नाम एक ही है और किसी स्थान मे मतभेद भी नही है।

ग्रंथ समाप्ति स्थल में वाग्भट ने स्वयं लिखा है कि बहुत बड़े "अष्टाङ्गसंग्रह ग्रंथ का निर्माण कर उसी को संक्षेप मे" हृदयमिव हृदयमेतत् "अष्टाङ्ग हृदय" ग्रंथ का निर्माण किया।

रसरत्नसमुच्चय और अष्टाङ्गहृदयके कर्ता वाग्भट भिन्न-भिन्न है। एक नही। क्योकि समुच्चय के कर्ता वाग्भट, अष्टाङ्गहृदय के कर्ता वाग्भट से बहुत पीछे के हैं। इस विषय में उपपत्ति यह है कि इतने बड़े समुद्रवत् गम्भीर अष्टाङ्ग संग्रह ग्रंथ मे रसतन्त्रोक्त विषय-रससंस्कार-धातूपधातु आदि का लेशमात्र भी गन्ध नही मिलता, प्रत्युत समुच्चय में प्राचीन वाग्भट से नवीनकालिक सोमदेव, भगवान् गोविन्द पाद आदि के पाठो के उद्धरण मिलते हैं। सोमदेव के ग्रंथ से तो समुच्चय

मे रस की परिभाषाओं का प्रकरण पूरा का पूरा उद्धृत किया गया है। र० र० म० अ० ६। गोविन्द भगवत्पाद के रसहृदयतन्त्र से 'मुक्तफलंतावदिदम' आदि तथा 'भ्रूयुगमध्यगतम्' आदि कुछ पद्य समुच्चय मे संगृहीत किये गये हैं।

गोविन्द भगवत्पाद भगवान् शङ्कराचार्य के गुरु थे। यह बात 'रसहृदय तन्त्र' के उपोद्घात में विद्वद्वर श्री गुरुनाथ त्र्यम्बक काले महाशय ने समुद्घाटित किया है।

यह कहना ही व्यर्थ है कि फिर कैसे "सूनुना सिंहगुप्तस्य" अपना यह परिचय समुच्चय के आदि में दिया है, क्योंकि अनेक हस्तलिखित पुस्तकों मे "सूनुना संवगुप्त गुप्तस्य" यही पाठ सीधा लिखा मिलता है, अतः "सिंहगुप्तस्य" किसी पण्डितमानी के संशोधन का फल ही हो सकता है। और रसतान्त्रिक वाग्भट ईसा से तेरहवी सदी में हुए है। यह मत डा० प्रफुल्लचन्द्र राय का ठीक जँचता है।

पुस्तक प्रकाशन का प्रयोजन

आयुर्वेदज्ञानाभिलाषियों छात्रों एवं विद्वानो को भारलाघवयुक्त तथा स्वल्पाकार के रूप में पुस्तक व्यवहृत करने की चिरकाल से इच्छा थी। उसी अभाव को दूर करने के अभिलाष से, ग्रंथ के सुखबोधार्थ मैंने विषमस्थलो पर 'प्रभा' नामक संस्कृत में टिप्पणी की, और प्रत्येक अध्याय मे शीर्षक संलग्न कर विषयो का पार्थक्य प्रदर्शित किया है। आजतक हिन्दी या संस्कृत टीका समेत अथवा मूलरूप में अष्टाङ्गहृदय की जितनी मुद्रित पुस्तकें दृष्टिगोचर हुई है, उनमे किसी मे भी विषय-विभाजक शीर्षक संयुक्त नही है। शीर्षक से विषयों का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। ३ दोषों और ६ रसों के ६३ भेदो का कोष्ठक भी शीघ्र ज्ञान के लिए अलग से लगा दिया गया है। इसमे शारीर तथा यन्त्र शस्त्रों के चित्र भी देने की मेरी बड़ी ही इच्छा थी, परन्तु विविध अड़चनो के कारण वह इच्छा कार्यरूप में परिणत न होकर हृदयगत ही रह गई। अब अगले संस्करण में परमेश्वर की इच्छा ही प्रधान है। यह कार्य लिखित रूप मे २० वर्ष पहले ही मैं कर चुका था, किन्तु पुस्तक प्रकाशक के चातुर्य से अबतक उसका मुद्रण न हो सका था, जिसका मुझे बराबर खेद रहता था कि मेरा यह परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। भगवत् के अनुग्रह से केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा

इसके मुद्रण के लिए कुछ शर्तों पर ६० प्रतिशत अनुदान प्राप्ति की स्वीकृति मिल गई। तदनुसार मैं इसका मुद्रण कार्य संपन्न कर आप महानुभावों के कर-कमलों में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरे जरा-सुलभ दृष्टि-दोष और मुद्रण कलाविदों की अनवधानता से यत्र-तत्र छापे की कुछ ही अशुद्धियाँ मिल सकती हैं, जिन्हें पाण्डित्य पूर्ण जन अवश्य सुधार लेंगे। इसकी प्रभाख्य संस्कृत टिप्पणी के गुणागुण का निर्णय करना साधु-वृत्त-आगमशाली अभ्यस्त-कर्मा रागद्वेषविरहित आयुर्वेद विद्वानों के ही अधीनस्थ है।

अष्टाङ्गहृदय की नितान्त उपादेयता समझ कर अप्रतिम बुद्धि वैभवशाली श्रीमदरुणदत्त ने इसकी 'सर्वाङ्ग सुन्दरा' नामक संस्कृत टीका की। यह टीका "यथा नाम तथा गुणः" ही है। हेमाद्रि निर्मित संस्कृत टीका का भी प्रचार था। सम्प्रति वाग्भट संहिता के अनेक स्थलों की विभिन्न संस्कृत टीकायें समुपलब्ध है।

टिप्पणी करते समय मुझे केवल इन दोनों टीकाओं का आलोडन करना पड़ा, तथा चरक-सुश्रुत राज-मदनपाल निघण्टु, योगरत्नाकर एवं अनेक संस्कृत ग्रंथों की सहायता लेनी पड़ी। इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है। स्नेहभाजन साहित्य—व्याकरणाचार्य एम० ए० कविवर श्रीरतिनाथ झा प्राध्यापक सं० कालेज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने मेरे अन्तिम निवेदन कार्य में सुसम्मति द्वारा बड़ा उपकार किया। मेरे चि० पुत्र श्री नागेन्द्र नारायण शर्मा, एवं प्रेस के स्वामी श्री शिवनारायण उपाध्याय बी० ए० विशारद ने पुस्तक के मुद्रण कार्य का प्रबन्ध सुचारु रूप से सम्पादन किया, अतः इन लोगों के प्रति मेरा शुभाशीर्वाद विशेषरूप से प्रस्तुत है।

* सर्वे सन्तु निरामयाः *

महाशिवरात्रि।
वैक्रम सं० २०२४ शाके १८८९
श्री पूर्णचन्द्र औषधालय
भदैनी—लोलार्ककुण्ड,
वाराणसी।

विनीत निवेदक—
हरिनारायण शर्मा वैद्य

अष्टाङ्गहृदयस्य संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका

सूत्रस्थानम्—

उत्तरार्धम्—

अष्टाङ्गहृदय में आयुर्वेद के विषय और अङ्ग

स्वस्थवृत्त

सूत्रस्थान—२, ३, ४, ६, ८ अध्याय ।

रोगविज्ञान

सूत्र०—१, ११, १२, १३, १४ अ० ।
शारीर—५, ६ अ० ।
निदान—समग्र ।
उत्तर०—३१, ३३ अ० ।

कायचिकित्सा

सूत्र०—१२, १३, १६ से २४ तक अ० ।
चिकित्सा०—१ से १२ तक अ० ।
" १४ से २२ तक अ० ।
कल्पस्थान—सम्पूर्ण ।
उत्तर०—६, ७, ३२ अ० ।

शल्य

सूत्र०—२५ से ३० तक अ० ।
शारीर०—३, ४ अ० ।
चिकित्सा०—१३, १८ अ० ।
उत्तर०— से ३० तक अ० ।

शालाक्य

उत्तर०—८ से २४ तक अ० ।

अगद (विषतन्त्र)

सूत्र०—७ अ० ।
उत्तर०—३५ से ३८ तक अ० ।

भूतविद्या

उत्तर०—३, ४, ५, ६, ७ अ० ।

प्रसूति

शारीर०—१, २ अ० ।
उत्तर—३३, ३४ अ० ।

कौमारभृत्य

उत्तर०—१, २ अ० ।

रसायन

उत्तर०—३९ अ० ।

वाजीकरण

उत्तर०—४० अ० ।

अष्टाङ्गहृदय में आयुर्वेद के विषय और अङ्ग

स्वस्थवृत्त

सूत्रस्थान—२, ३, ४, ६, ८ अध्याय।

रोगविज्ञान

सूत्र०—१, ११, १२, १३, १४ अ०।
शारीर—५, ६ अ०।
निदान—समग्र।
उत्तर०—३१, ३३ अ०।

कायचिकित्सा

सूत्र०—१२, १३, १६ से २४ तक अ०।
चिकित्सा०—१ से १२ तक अ०।
„ १४ से २२ तक अ०।
कल्पस्थान—सम्पूर्ण।
उत्तर०—६, ७, ३२ अ०।

शल्य

सूत्र०—२५ से ३० तक अ०।
शारीर०—३, ४ अ०।
चिकित्सा०—१३, १८ अ०।
उत्तर०—२५ से ३० तक अ०।

शालाक्य

उत्तर०—८ से २४ तक अ०।

अगद (विषतन्त्र)

सूत्र०—७ अ०।
उत्तर०—३५ से ३८ तक अ०।

भूतविद्या

उत्तर०—३, ४, ५, ६, ७ अ०।

प्रसूति

शारीर०—१, २ अ०।
उत्तर—३३, ३४ अ०।

कौमारभृत्य

उत्तर०—१, २ अ०।

रसायन

उत्तर०—३९ अ०।

वाजीकरण

उत्तर०—४० अ०।

श्रीगणेशायनमः

प्रभाख्यसंस्कृतटिप्पणीसंवलितम्—

अष्टाङ्ग हृदयम् ।

सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः

ग्रन्थकर्तुर्मङ्गलाचरणम्—

[1]रागादिरोगान्सततानुषक्ता—
नशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदाञ्जघान
योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥१॥

निदानविषयाः

अथात आयुष्कामीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

टिप्पणीकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

आश्रित्य लोके विविधं विधेयम् ब्रह्माच्युतत्र्यम्बकनामभियः ।
ख्यातः, परं गीयत एक एव देवर्षिभिस्तं परमेशमीडे ॥

१ रागो विषयाभिलाषः । आदिना द्वेषकामक्रोधादयः । सततानुषक्तान् सर्वकालमात्मना सम्बद्धान्सहजान् । अदोषाश्रते कायास्ताम् सर्वाणिनरगो गजादिशरीराणि • अभिव्याप्य स्थितान् । अशेषान् सर्वान् । औत्सुक्यमिष्टार्थे त्वरापूर्वकोमानस उद्योगः । मोहः कार्याकार्ययोरज्ञानम् । अरतिः कार्येषु मनसोऽ-संलग्नता । जघान मोक्षशास्त्रप्रणयनेन वधोपायं दर्शितवान् नतु स्वयं हतवान्, अन्यथा रागादेरधुनोपलब्धिर्न स्यात् ।

[1]आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ २

आयुर्वेदागमनम्

ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
[2]सोऽश्विनौ, तौ सहस्राक्षं, सोऽत्रिपुत्रादिकान् मुनीन् ॥ ३ ॥
[3]तेऽग्निवेशादिकांस्ते[4] तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ।
[5]तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः ॥ ४ ॥
क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम् ॥

आयुर्वेदस्याष्टाङ्गानि

[6]कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ॥ ५ ॥
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ।

दोषाः

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ ६ ॥
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते[7] वर्तयन्ति च ।

---

१ एति गच्छतीत्यायुः-जीवनकालः । सुखं द्विविधमैहिकमात्यन्तिकं मोक्षाख्यं च आयुर्वेदयति हिताहिततः, सुखासुखतः, प्रमाणाप्रमाणतश्चेत्यायुर्वेदः । यदुक्तं चरकेण हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् । मानं च तच्च यत्रोक्त मायुर्वेदः स उच्यते । २ सः प्रजापतिः । तौ अश्विनौ अजिग्रहताम् । स. सहस्राक्ष-इन्द्रः । आत्रेयधन्वन्तरिनिमिकाश्यपादयः । ३ ते अत्रिपुत्रादयः । अग्निवेशादयः अग्निवेश-भेड जातूकर्ण पाराशर हारीत क्षारपाणि नामान । ४ तेऽग्निवेशादयः । स्वनाम्ना तन्त्राणि, तन्त्र्यन्ते धार्यन्त आयुर्वेदार्था एभिरिति तन्त्राणि । तेनिरे विरचयाञ्चक्रुः । ५ तेभ्योग्रन्थेभ्यः । विप्रकीर्णं विक्षिप्तम् । उच्चीयन्ते आयुर्वेदार्था दृष्टा अत्रेत्युच्चयः संग्रहः । अष्टाङ्ग हृदयं नाम । ६ कायेत्यत्रेतरेतरद्वन्द्व. । कायः कायचिकित्सा । बालः कौमारभृत्यम् । ग्रहोभूतविद्या । ऊर्ध्वाङ्गं शालाक्यम्, दंष्ट्रा अगदतन्त्रम् । जरा रसायनम् । वृषोवाजीकरणम् । तस्यायुर्वेदस्य । येषु कायाद्यष्टाङ्गेषु । ७ ते दोषाः । विकृताः कुपिता देहं घ्नन्ति । अविकृता अकुपिताः । वर्तयन्ति रक्षन्ति ।

ते[1] व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ ७ ॥
वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ।

चतुर्विधोऽग्निः कोष्ठश्च

[2]तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः ॥ ८ ॥
[3]कोष्ठः क्रूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि ।

प्रकृतिः

[4]शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः ॥ ९ ॥
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ।
समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा, निन्द्या द्विदोषजा. ॥ १० ॥

वातादीनां गुणाः

[5]तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।
पित्तं [6]सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् ॥११॥

---

१ ते–दोषाः । नाभेरधोवायुः । हृन्नाभ्योर्मध्ये पित्तम् । हृदयादूर्ध्वं कफः । वयस. शरीरस्यावस्थायाः, अह्नो दिनस्य, रात्रेः, भुक्तस्याहारस्य च अन्तमध्यादयो वातादीनां क्रमतः कालः ।

२—तैः–वातपित्तकफैः । वातेन विषमः पित्तेन तीक्ष्णः कफेन मन्दश्च । समैः समप्रमाणैरेतैः समोऽग्निः । ३ आमादीनामाधार स्थानं कोष्ठ. । अधिक वातेन क्रूरः, पित्तेन मृदुः, कफेनमध्यः । समैस्तैर्दोषैर्मध्यः । ४ जन्मादौ गर्भाधानकाले शुक्रार्तवस्थैस्तै दोषैः क्रमशो हीनावातप्रकृतिः २ मध्या पित्तप्रकृतिः ३ उत्तमा कफ प्रकृतिश्च । समस्तासुसर्वासु समधातुः प्रकृतिः श्रेष्ठा । धातुर्दोषः । ५. खरो मृदु विपरीतः । सूक्ष्मः सूक्ष्मच्छिद्रानुसारी । न्यायमते वायोरनुष्णाशीतत्वं गुणांशीतोष्ण-सम्बन्धेन तद्गुणवाहित्वान्मन्यमानेनाध्यायुर्वेदेन उष्णेनायंशाम्यतीति दर्शनाय तस्य स्वाभाविकः शीत एव गुणो निर्दिष्टः । ६. सस्नेह मीषत्स्निग्धम् । तीक्ष्णंमरिचवदाशु व्याप्तिस्वभावम् । विस्रंदुर्गन्धि । सरंगमनशीलम् । श्लक्ष्णश्चिक्कणः । मृत्स्नः

त्रिपाकः

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥ १७ ॥

गुणाः

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः ।
गुणाः ससूक्ष्मविशदाः विंशतिः [1]सविपर्ययाः ॥ १८ ॥

रोगारोग्ययोरेकहेतुः

[2]कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकः ।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् ॥ १९ ॥
रोगस्तु दोषवैषम्यं, दोषसाम्यमरोगता ।
निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः ॥ २० ॥
[3]तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा ।
रजस्तमश्च मनसो द्वौ च—दोषावुदाहृतौ ॥ २१ ॥
दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम् ।
रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः[4] ॥ २२ ॥
भूमिदेहप्रभेदेन देशमाहुरिह[5] द्विधा ।
[6]जाङ्गलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्वणम् ॥ २३ ॥

---

१ विपर्ययाः-लघु तीक्ष्ण-उष्ण-रूक्ष-खर-द्रव-कठिन-सर-स्थूल-पिच्छिलाः क्रमाद्-गुर्वादीनां विपर्ययाः । लक्ष्ण-मैदाकी तरह चिकना, सान्द्र (गाढा) ।

२ कालार्थकर्मणां हीनयोगः, मिथ्यायोगः, अतियोगश्च रोगस्यैकं कारणम् । तेषामेव सम्यग्योगः-न्यूनातिरिक्तरहितो योग आरोग्यस्यैकं कारणमित्यर्थः । योग सम्बन्धः । तत्र कालः-शीतोष्णवर्षलक्षणः । अर्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । कर्म-त्रिविधं-कायिकं वाचिकं मानसं च । हीनयोगः स्वरूपहानिः । मिथ्यायोगः-स्वरूपाद्विपरीतता । अतियोगः स्वरूपाधिक्यम् । ३ तेषां-रोगाणाम् । ४ आप्तिः सम्प्राप्तिः । ५ इह-आयुर्वेदे । ६ अल्पोदकद्रुमोयस्तु प्रवातः प्रचुरातपः । ज्ञेयः सजाङ्गलो देशः स्वल्परोगतमोऽपि च । प्रचुरोदकवृक्षो यो निवातो-दुर्लभातपः । अनूपो बहुदोषश्च, समः साधारणो मतः । साधारणमुभयलक्षणयुक्तम् । जाङ्गलदेशो-मरुभूमिः (रेगिस्तान-बीकानेर आदि) अनूपदेशो यत्र कूपादौ समीपे जलमुपलभ्यते यथा विहारप्रान्तीया देशाः (पटना, छपरा, गया आदि) ।

साधारणं सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ।
[1]क्षणादिर्व्याध्यवस्था च कालो भेषजयोगकृत् ॥ २४ ॥
शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा ।

शरीरमनोदोषयोरौषधम्

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ॥ २५ ॥
[2]वस्तिर्विरेको वमनं, तथा तैलं घृतं मधु ॥
धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ॥ २६ ॥

चिकित्सायाश्चत्वारः पादाः

[3]भिषक् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
चिकित्सितस्य निर्दिष्टं, प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ॥ २७ ॥

भिषगादीनां लक्षणानि

[4]दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् ।
[5]बहुकल्पं बहुगुणं संपन्नं योग्यमौषधम् ॥ २८ ॥
अनुरक्तो शुचिर्दक्षो बुद्धिमान् परिचारकः ।
[6]आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्ववानपि ॥ २९ ॥

---

१ क्षणोऽक्षिनिमेषः । आदिनामुहूर्तयामदिनरात्रिपक्षमासादीनां ग्रहणम् । व्याध्यवस्था—सामनिरामादयः । द्विविधोऽयं काल औषधं कार्यकारिणं करोति । क्षणादिर्यथा—पूर्वाह्णे वमनं देयंमध्याह्ने तु विरेचनम् । व्याध्यवस्था यथाज्वरे षडहे कषायं दद्यात् । २ वस्तिर्निरूहवस्तिः । तैलादि शमनम् । ३ उपस्थाता परिचारकः (कम्पाउंडर) वैद्यरोगिणोरुपसमीपेतिष्ठति चिकित्साकार्यं सम्पादनार्थमित्युपस्थाता । ४ दक्षः चिकित्साकर्मणि शीघ्रकारी, तीर्थात्त शास्त्रार्थो गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः, शुचिर्बाह्याभ्यन्तरदोषैरदूषितः । ५ बहवः कल्पाः—स्वरसचूर्णावलेहादिरूपेण निर्माणविषयो यस्मिंस्तत् । सम्पन्नं रसादिनायुक्तम् । योग्यम्—रोगनाशसमर्थम् । ६ आढ्यो धनवान् । ज्ञापकः स्वकीयरोगादिसर्ववृत्तवक्ता । सत्ववान्-धैर्येण सर्वक्लेशसहः ।

रोगाणां चत्वारो भेदाः

(साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधा, [1]तौ तु पुनर्द्विधा ।
सुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च, याप्यो यश्चानुपक्रमः ॥ ३० ॥)
सर्वौषधक्षमे देहे यूनः पुंसो जितात्मनः ।
अमर्मगोऽल्पहेत्वग्ररूपरूपोऽनुपद्रवः ॥ ३१ ॥
[2]अतुल्यदूष्यदेशर्तुप्रकृतिः पादसम्पदि ।
ग्रहेष्वनुगुणेष्वेकदोषमार्गो नवः सुखः ॥ ३२ ॥
शस्त्रादिसाधनः कृच्छ्रः सङ्करे च ततो गदः ।
शेषत्वादायुषो याप्यः पथ्याभ्यासा[3]द्विपर्यये ॥ ३३ ॥
[4]अनुपक्रम एव स्यात्स्थितोऽत्यन्तविपर्यये ।
औत्सुक्यमोहारतिकृद् दृष्टरिष्टोऽक्षनाशनः ॥ ३४ ॥

अचिकित्स्यरोगिणः

त्यजेदार्तं [5]भिषग्भूपैर्द्विष्टं, तेषां द्विषं, द्विषम् ।
हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम् ॥ ३५ ॥

---

१ तौ साध्योऽसाध्यश्च । असाध्यभेदः—याप्योयावच्चिकित्साहारविहार यन्त्रणा तावद्रोगशान्तिस्तत्त्यागेतु रोगप्रादुर्भावः । अनुपक्रमोऽचिकित्स्यः । २ दूष्यादयो रोगसमानाः न स्युः—यथा—कफेनरक्तंमुष्णा दूषितम् । अनूपदेशे पित्तजोरोगः । शरदृतौ कफजोरोगः । पित्त प्रकृतेः कफ जोरोगः । पादसम्पत्—चिकित्सायाः पादचतुष्ठयं गुणयुक्तम् । एक दोषजः । बाह्यादिएकमार्गजः । सुखः सुखसाध्यः । कृच्छ्रः कष्टसाध्यः । ततः साध्यलक्षणात् संकरे मिश्रणे । अपूर्णसाध्यलक्षणो रोग इत्यर्थः । ३ विपर्यये—साध्यलक्षण वैपरीत्ये । पथ्याभ्यासाद्धेतोः शेषत्वात्—नश्यन्नपिरोगो न सम्पूर्णतया नश्यतीतिशेषः । आ-आयुषः नियतजीवनकालपर्यन्तमित्यर्थः । अथवा—आयुषः शेषत्वादितियोज्यम् । ४ नास्त्युपक्रमः साधनं यस्येत्यनुपक्रमः—अचिकित्स्यः । अत्यन्तविपर्यये—सुखसाध्यादिलक्षणात् सर्वथा विपरीते । रिष्टं मरणचिह्नम् । अक्षाणीन्द्रियाणि ।

५ भिषजो भूपाश्चयं द्विषन्तितम् । यश्चतेषा वैद्यनृपाणां द्वेष्टा । द्विषं वैद्यशत्रुम् । उपकरणं चिकित्सासामग्री । अविधेयो वैद्यानधीनः । चण्डस्त्वत्यन्तक्रोधी ।

विद्रधीगुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्पिषु ।
कुष्ठश्वित्रानिलव्याधिवातास्रेषु चिकित्सितम् ॥ ४३ ॥
द्वाविंशतिरिमेऽध्यायाः, कल्पसिद्धिरतः परम् ।
कल्पो वमे विरेकस्य [1]तत्सिद्धि र्बस्तिकल्पना ॥ ४४ ॥
सिद्धिर्बस्त्यापदां षष्ठो द्रव्यकल्पः, अत उत्तरम् ।
बालोपचारे [2]तद्व्याधौ तद्ग्रहे, द्वौ च भूतगे ॥ ४५ ॥
उन्मादेऽपस्मृतिभ्रंशे, द्वौ द्वौ वर्त्मसु सन्धिषु ।
दृक्कर्मलिङ्गनाशेषु त्रयो, द्वौ द्वौ च [3]सर्वगे ॥ ४६ ॥
कर्णनासामुखशिरोव्रणे भङ्गे भगन्दरे ।
ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे पृथग्द्वयम् ॥ ४७ ॥
विषे भुजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रसायने ।
चत्वारिंशोऽनपत्यानामध्यायो बीजपो[4]षणः ॥४८॥
इत्यध्यायशतं विंश षड्भिःस्थानैरुदीरितम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

स्वस्थवृत्तम्

अथातो [5]दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
[6]ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥१॥

---

१ तत्सिद्धिर्वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिः । २—तद्व्याधौ-बालरोगप्रतिषेधे । तद्ग्रहे बालग्रहे । ३ सर्वाशिरोगे । ४ बीजपोषणो वाजीकरणाध्यायः । सर्वेऽध्यायाः १२० । स्थानानि ६ । ५ चरणं चर्या दिनस्य चर्या दिनचर्याचरे-र्गतिभक्षणार्थत्वादुभयलोकहिताहारविहारौ । ७. रात्रेःपश्चिमयामस्य मुहूर्तोयस्तृती-यकः । स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने, आह्निक, स्थूलतश्चतुर्थादन-समयेरात्रौ जागृयात् । कीदृशंमे शरीरं, किञ्चास्य हितंकृतं, किञ्च कर्त्तव्यमितिशरी-रचिन्ता निष्पाद्य ।

वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च [1]तं त्यजेत् ।
अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः ॥ ११ ॥
शीतकाले वसन्ते च, मन्दमेव ततोऽ[2]न्यदा ।
तं कृत्वानुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ॥ १२ ॥
तृष्णाक्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥ १३ ॥
व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादि[3]साहसम् ।
गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति ॥ १४ ॥
[4]उद्वर्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम् ।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ॥ १५ ॥

स्नानम्

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जा[5]बलप्रदम् ।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित् ॥ १६ ॥
उष्णाम्बुनाधः कायस्य परिषेको बलावहः ।
[6]तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥ १७ ॥
स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ १८ ॥

स्वास्थ्यस्यान्येनियमाः

जीर्णे हितं मितं चाद्यान्न वे[7]गान्नीरयेद्बलात् ।
न वेगितोऽन्यकार्यः, स्यान्नाजित्वा साध्यमामयम् ॥ १९ ॥
सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः [8]प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥ २० ॥

---

१ तं व्यायामम् । व्यायाम (कसरत) । २ अन्यदा—ततः शीतवसन्तकालाभ्यामन्यस्मिन् काले । बलार्धलक्षणं—वक्षःकक्षाललाटनासामुखहस्तपादादिसन्धिषु । प्रस्वेदान्मुखशोषाच्च बलार्धं तद्धि निर्दिशेत् । ३ साहसमयथाबलमारम्भः । ४ उद्वर्तनम् (अपटन, बुकवा) कषायादिचूर्णैः शरीरोद्घर्षणं वा । ५ ऊर्जा—चित्तोत्साहः । ६ तेनैवोष्णाम्बुनैव । ७ वेगान्मलमूत्रादीनाम् । ईरयेत्प्रेरयेत् । साध्यं रोगमजित्वान्यकार्यं नारभेत । ८ प्रवृत्तयः कार्याणि ।

भक्त्या [1]कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ।
[2]हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते ॥ २१ ॥
संभिन्नालापव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम् ।
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ॥ २२ ॥
अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेत शक्तितः ।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ॥ २३ ॥
अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् ।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत् ॥ २४ ॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ ।
संपद्विपत्स्वेकमना, हेतावीर्ष्येत्फले न तु ॥ २५ ॥
[3]काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम् ।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः [4]करुणामृदुः ॥ २६ ॥
नैकः सुखी, न सर्वत्र विश्रब्धो, न च शङ्कितः ।
न कंचिदात्मनः शत्रुं, नात्मानं कस्यचिद्रिपुम् ॥ २७ ॥
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः[5] ।
जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ॥ २८ ॥

---

१ येन सह मैत्रीकरणेन सर्वथा कल्याणं सम्भवेत् स कल्याणमित्रम् । इतरोऽकल्याणमित्रम् । २ अन्यथाकामः–मैथुनं नियमप्रतिकूलकरणम् । परुषं कठोरवचनम् । सम्भिन्नालापः–असंबद्धभाषणम् । व्यापादोऽन्यस्यानिष्टचिन्तनम् । अभिध्या–पराधिकृतवस्तुनोऽन्यायेनग्रहणेच्छा । हिंसादीनित्रीणि कायिकानि, पैशुन्यादीनि चत्वारि वाचिकानि, व्यापादीनिचत्रीणि मानसानि पापानि । दृग्विपर्ययः–शास्त्रविपरीताचरणम् । अनुवर्तेत आर्तिनिवारणे साहाय्यं कुर्यात् । त्रिधा–याचकद्वेषं न कुर्यात्, विमुखीकरणमनादरं परुषभाषणं चेति । हेतौ–अभीष्टफलप्राप्तिसाधनमीर्ष्ययानुष्ठातव्यमारम्भतःफलाप्राप्तावन्यैर्लब्धफलैरीर्ष्या न कर्तव्येत्यर्थः । ३ मितं वक्तव्यमात्रकथनम् । अविसंवादि सत्यम् । पेशलं मधुरम् । मिलिते मित्रे पूर्वं कुशलादिप्रश्नकर्ता पूर्वाभिभाषी । ४ करुणामृदुः–शक्तिमानपिदयालुत्वात्परापकारसहिष्णुः । ५ अविश्वसनीयेषु विश्वासमशङ्कनीयेषु च शङ्कां न कुर्यात् । प्रभोः स्वामिनः, निःस्नेहता स्नेहहीनता ।

तं [1]तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ।
न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत् ॥ २९ ॥
[2]त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं चाविरोधयन् ।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ॥ ३० ॥

[3]नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः ।
स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेशोऽनुल्बणोज्ज्वलः ॥ ३१ ॥
धारयेत्सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः ।
सातपत्रपदत्राणो विचरे[4]द्युगमात्रदृक् ॥ ३२ ॥
निशि [5]चात्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान् ।
चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन् ॥ ३३ ॥
नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवोऽपि च ।
नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्नि[6]स्कन्धमभिव्रजेत् ॥ ३४ ॥
संदिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानवत् ।
नासंवृतमुख कुर्यात्क्षुतिहास्यविजृम्भणम् ॥ ३५ ॥

---

१ अनुवर्तेत-आराधयेत् । २ त्रिवर्गः—धर्मोऽर्थः कामश्च । आरम्भं कार्यम् । तं त्रिवर्गम् । अविरोधयन्—यत्र कर्मणि एको नश्यन्वेकः फलति तं त्यजेदित्यर्थः । प्रतिपदं मार्गम् । धर्मेषु-आचारेष्वात्मकृत्येषु वा । मध्यमारागद्वेषरहिताम् । ३ नीचान्यदीर्घाणि । रोमशब्देन केशाअपि गृह्यन्ते । श्मश्रु-मुखस्थं दीर्घलोम (दाढी मोछ) अंघ्रि-पाद । मलायनं नासिकादि । सुसुरभिः शोभनगन्धवान् । सुवेषः—जीर्णमलिनवस्त्रादिवर्जितः । अनुल्बण-अनुद्धतः (उद्धत-चटकीला भडकीला, भाषा) उज्ज्वल शृङ्गारः । ४ युगंहस्तचतुष्टयमग्रे पश्यंश्चरेत् । ५ अत्ययो विनाशस्तत्संदेहस्तत्सम्भवमात्ययिकं तस्मिन्नात्ययिके । मौलिः शिरोवेष्टनम् । चैत्यो विशिष्टदेवाधिष्ठितो ग्राम प्रधानवृक्षः (डीह) । ध्वजः पताका । अशस्तः कुकर्मरतः । अशुचिः-विण्मूत्रोच्छिष्टादिः । शर्करा (कंकडी, बालू) लोष्टम् (ढेला) बलिः पूजोपहारः । ६ अग्निस्कन्धः अग्निराशिः । दुष्टयानवत् दुष्टाश्वादिकं नारोहेत् । क्षुतिः-छिक्का ।

शत्रु[1]सत्रगणाकीर्णगणिकापणिकाशनम् ।
गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यं हस्तकेशावधूननम् ॥ ४३ ॥
[2]तोयाग्निपूज्यमध्येन यानं, धूमं शवाश्रयम् ।
मद्यातिसक्तिं, विश्रम्भस्वातन्त्र्ये स्त्रीषु त्यजेत् ॥ ४४ ॥
आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक[3] एव हि धीमतः ।
अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीक्षकः ॥ ४५ ॥
[4]आर्द्रसन्तानता, त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।
स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु, पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ॥ ४६ ॥
नक्तंदिनानि मे यान्ति कथम्भूतस्य सम्प्रति ।
दुःखभाङ् न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः ॥ ४७ ॥
इत्याचारः समासेन, यं प्राप्नोति समाचरन् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशोलोकाश्च शाश्वतान् ॥ ४८ ॥

---

१ सत्रं यज्ञः (ऋत्विजादीन्वर्जयित्वा) गणाः कथकचारणादयः—तैराकीर्णं व्याप्तम् । गणा बहवोमिलित्वा दातारो वा । आकीर्णो योग्यायोग्यमविचिन्त्यान्न दाता वा । पणिक आपणिको वणिगित्यर्थः । एतेषामशनम् । अवधूननं कम्पनम् । २ मध्यशब्दस्तोयादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते तेन तोययोरग्न्यो, पूज्ययोः । तोयाग्न्योः, तोयपूज्ययोरग्निपूज्ययोश्च । यानं गमनम् । विश्रम्भः सर्वतोभावेन विश्वासः । ३ लोको विशिष्टलोकः । आचार्यः शिक्षकः । तंलोकम्, लौकिकेऽर्थे-परीक्षकः—लोके कः किमर्थमाचरतीतिपरीक्षा कुर्वन् ।

४ आर्द्रः कृपालुता, सन्तानः चित्तवृत्तिपरम्परा यस्य तस्यभावः सर्वजन्तुषु परमकृपालुत्वम्, त्यागो दानम् । कायादीना दमश्चाञ्चल्यनिरोधः । पर्याप्तं सम्पूर्णोधर्मः । सतांव्रतम्, नक्तमिति सदा सावधानेन भवितव्यमित्यर्थः । समाचारं समाचरन् । ऐश्वर्यं सर्वकार्येषु सामर्थ्यम् । शाश्वतानित्यान् लोकान्मोक्षप्रदान्, स्थानानि मृतेसति ।

रसान्स्निग्धान् पलं पुष्टं गौडमच्छसुरां सुराम् ।
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः शुभाः ॥१२॥
नवमन्नं वसां तैलं, शौचकार्ये सुखोदकम् ।
प्रावाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम् ॥१३॥
उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ।
युक्त्यार्ककिरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥१४॥
[1]पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः ।
हरन्ति शीतमुष्णाङ्ग्यो धूपकुंकुमयौवनैः ॥१५॥
अङ्गारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिणः ।
शीतपारुष्यजनितो न दोषो जातु जायते ॥१६॥

शिशिरचर्या—

[2]अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि, विशेषतः ।
तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ १७ ॥

वसन्तचर्या—

कफश्चितो हि शिशिरे वसंतेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत् ॥ १८ ॥
तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः ।
व्यायामोद्वर्तना[3]घातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥ १९ ॥
स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचंदनागुरुकुंकुमैः ।
पुराणयवगोधूमक्षौद्रजांगल[4]शूल्यभुक् ॥ २० ॥
सहकाररसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रिययार्पितान् ।
प्रियास्यसंगसुरभीन् प्रियानेत्रोत्पलाङ्कितान् ॥ २१ ॥

---

१. पीवरं स्थूलमूरुस्तनश्रोणियासांताः । प्रिया मनोऽनुकूलाः । गर्भवेश्म गृहान्तर्वर्तिगृहम् (भीतरी कमरा) भूवेश्म भूम्यन्तर्वर्तिगृहम् (तहखाना) । पारुष्यं रौक्ष्यं काठिन्यं च । दोषो दुःखम् । (जातु कदाचिदपि) ।

२ अयमेव-हेमन्तोक्तः । ३ आघातः–विमर्दनम् । ४ शूल्यं-शूलपाचितं मासम् । सहकारः–आम्रः ।

[1]सौमनस्यकृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिवेत् ।
[2]निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥ २२ ॥
शृंगवेराम्बु [3]साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु वा ।
[4]दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलवाहिषु ॥ २३ ॥
अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुट्टिमकान्तिषु ।
परपुष्टविघुष्टेषु कामकर्मान्तभूमिषु ॥ २४ ॥
विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु ।
गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत्सुखी ॥ २५ ॥

वसन्तेत्याज्यानि

गुरुशीतदिवास्वप्नस्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत् ।

ग्रीष्मचर्या—

[5]तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत् ॥ २६ ॥
प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ।
अतोऽस्मिन् [6]पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् ॥ २७ ॥
भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।
सुशीततोयसिक्ताङ्गो लिह्यात्सक्तून् सशर्करान् ॥ २८ ॥
मद्यं न पेयं, पेयं वा स्वल्पं, सुबहुवारि वा ।
[7]अन्यथा शोफशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत् ॥ २९ ॥

---

१ सौमनस्यकृतश्चित्तप्रसादकृतः । २ निर्गदान्–निर्दोषान् ! सहकारात् हृद्यर्यन्तं समस्तमासवादीनां विशेषणम् । ३ साराम्बुचन्दनासनसारक्वाथम् । सारः—वृक्षमध्यस्थितंकाष्ठम् "हीर" इति लोके । मध्वम्बु-मधुनामिश्रितं जलम् । जलदाम्बु जलदेन कृतं क्वाथम् । जलदः "नागरमोथा" इतिभाषा । ४ दक्षिणेत्यादिसर्वंकाननेषु 'इत्यत्यस्यविशेषणम् । जलं वहन्ति सदा यान्ति तेषु । अदृष्टईषद्दृष्टः क्वचिदतिघनत्वात् नष्टः सर्वथाऽदृश्यः सूर्योयेषु । मणीनां कुट्टिमानितैः कान्तिर्येषाम् । कुट्टिमं "फर्श" इति भाषा । परपुष्टविघुष्टेषु—कोकिलैः कृतशब्देषु । कामस्य कर्मान्ताः प्रशस्यव्यापारास्तन्निमित्तं 'भूमयो येषाम् । ५ तीक्ष्णांशुः सूर्यः । संक्षिपतीव संहरतीव, जगतः सारं-बलम्, इतिशेषः । ६ पटुः—लवणः । ७ अन्यथा तन्मद्यमन्येनप्रकारेण पीतम् ।

कुंदेंदुधवलं शालिमश्नीयाज्जांगलैः पलैः ।
पिबेद्रसं [1]नातिघनं, रसालां, रागखाडवौ ।। ३० ।।
पानकं पंचसारं वा नवमृद्भाजनस्थितम् ।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लं मृन्मयशुक्तिभिः ।। ३१ ।
पाटलावासितं चाभः सकर्पूरं सुशीतलम् ।
शशांककिरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिबेत् ।। ३२ ।।
ससितं माहिषं क्षीरं चंद्रनक्षत्रशीतलम् ।
[2]अभ्रंकपमहाशालतालरुद्धोष्णरश्मिषु ।। ३३ ।।
वनेषु माधवीश्लिष्टद्राक्षास्तबकशालिषु ।
सुगंधिहिमपानीयसिच्यमानपटालिके ।। ३४ ।।
कायमाने चिते चूतप्रवालफललुंबिभिः ।
कदलीदलकल्हारमृणालकमलोत्पलैः ।। ३५ ।।
कल्पिते कोमलैस्तल्पे हसत्कुसुमपल्लवे ।
मध्यंदिनेऽर्कतापार्तः स्वप्याद्धारागृहेऽथवा ।। ३६ ।।
[5]पुस्तस्त्रीस्तनहस्तास्यप्रवृत्तोशीरवारिणि ।

---

१ रसंमांसरसम् 'शोर्वा', रसाला 'शिखरन' इतिभाषा । पानकं—"पना, शर्बत" इति हिन्दी । रसाला निर्मितिः—यथा—अर्धाढकं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः, खण्डस्य षोडश पलानि शशिप्रभस्य । सर्पिष्पलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं, शुण्ठ्याः पलार्धमपि चार्धपलं चतुर्णाम् ।। सूक्ष्मे पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टा, कर्पूरधूलिसुरभीकृतपात्र संस्था । एषा वृकोदरकृता सरसा रसाला, या स्वादिता भगवता मधुसूदनेन ।। अत्र चतुर्णामिलात्वक्पत्रनागकेशराणां मिलितानां मात्रार्धपलमिताग्राह्या । रागखण्डवौ—यथा—सितामध्वादिमधुरा रागास्तत्राच्छकान्वयः । ते साम्लाः खाण्डवा लेह्याः पेयाश्चांशुकगालिताः । पञ्चसारं यथा—द्राक्षामधुकखर्जूर काश्मर्यैः सपरूषकैः । तुल्यांशैः कल्पितं पूतं शीतं कर्पूरवासितम् । पानकं पञ्च साराख्यं दाहतृष्णानिवर्तकम् ।। मोचं "केला" चोचं 'नारियल' इतिभाषा । तयोर्दलैः फलखण्डैः । २ अभ्रमाकाशंकषन्ति—अत्युन्नता इत्यर्थः । स्तबकः "गुच्छा" इतिभाषा । कायमाने—वेणवादिरचिते गृहे, 'छप्पर' इतिभाषा ।

चूतानामाम्राणाप्रवालैः फललुम्बिभिश्च चितेऽथामे लुम्बिः—'गुच्छा' इतिभाषा कल्हारं श्वेतकमलं, मृणालं कमलनालम् । कमलं रक्तम्, उत्पलं नीलंकमलम्, सततं यत्र जलधाराः (फुहारा) पतन्ति तद्धारागृहम् । ५ पुस्तस्त्रीः कृत्रिमस्त्री-प्रतिमा पुतरी इति भाषा ।

निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्ठे[1] निशासु च ॥ ३७ ॥
आसना, स्वस्थचित्तस्य चंदनार्द्रस्य मालिनः ।
निवृत्तकामतंत्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥ ३८ ॥
जलार्द्रास्तालवृंतानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः :
[2]उत्क्षेपाश्च मृदूत्क्षेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥३९॥
कर्पूरमल्लिका माला हाराः सहरिचंदनाः ।
मनोहरकलालापाः शिशवः सारिकाः शुकाः ॥ ४० ॥
मृणालवलयाः कांताः प्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वलाः ।
जंगमा इव पद्मिन्यो हरंति दयिताः क्लमम् ॥ ४१ ॥

वर्षाचर्या—

आदानग्लानवपुषामग्निः 'सन्नोऽपि सीदति ।
वर्षासु दोषैः, दुष्यंति तेंऽबुलंबांबुदेंऽबरे' ॥४२॥
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च ।
भूबाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा ॥ ४३ ॥
वह्निनैव च मंदेन तेष्वित्यन्योन्यदूषिषु[5] ।
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ॥ ४४ ॥
आस्थापनं[6] शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसान् कृतान् ।
जांगलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरंतनम् ॥ ४५ ॥
मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा[7] पंचकोलावचूर्णितम् ।

---

१ सुधाभिः कृतं सौधंतरपृष्ठं "छत" । निवृत्तकामतन्त्रस्य-कृतकामपरिच्छदस्य । २ उत्क्षेपाः—"मोरपंखी" भाषा । मृदुरुत्क्षेपोयेषाम् ते, सारिका "मैना" इति भाषा । ३ सन्नो मन्दः । ४ ते दोषाः । अम्बुलम्बाः सजला अम्बुदा यस्मिन् तथोक्ते । ५ तेषु-वातादिषु । अन्योन्यं परस्परं दूषयितुं शीलं येषां वातादीनां तेषु । सजलकणेन शीतलेन च वातेन वायुः, भूबाष्पादिना पित्तं, मलिनवारिणाच मन्दतांगतेन वह्निना च श्लेष्मा दुष्यति । ६ आस्थापनं-निरूहणबस्तिम् । ७ पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रक-नागराणि द्रव्याणि पञ्चकोले वर्तन्ते ।

दिव्यं कौपं शृतं चांभो भोजनं त्वतिदुर्दिने ॥ ४६ ॥
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु ।
अपादचारी सुरभिः सततं धूपितांबरः ॥ ४७ ॥
हर्म्यपृष्ठे वसेद्बाष्पशीतशीकरवर्जिते ।
[1]नदीजलोदमंथाहःस्वप्नायामातपास्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

शरदृतु चर्या

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः ।
तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति ॥ ४९ ॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम् ।
तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु ॥ ५० ॥
शालिमुद्गसिताधात्रीपटोलमधुजांगलम् ।

हंसोदकम्

तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः ॥ ५१ ॥
समंतादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ।
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् ॥ ५२ ॥
नाभिष्यंदि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ।
चंदनोशीरकर्पूरमुक्तास्रग्वसनोज्ज्वलः ॥ ५३ ॥
सौधेषु सौधधवला चंद्रिकां रजनीमुखे ।
[2]तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसातपान् ॥ ५४ ॥
तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् परित्यजेत् ।

संक्षेपादृतुचर्या—

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन्[3], वसंतेऽन्त्यान् रसान्भजेत् ।
स्वादुं निदाघे, शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ।

ऋतुविशेषेऽन्नपानादि—

शरद्वसंतयो रूक्षं, शीतं घर्मघनांतयोः[4] ॥ ५६ ॥

---

१ उदमन्थः—जलमिश्रितसक्तुः । २ सौहित्यं तृप्तिभोजनम् । ३ आद्यांस्त्रीन्-मधुराम्ललवणान् । अंत्यान्-तिक्तकटुकषायान् । ४ घर्मः-ग्रीष्मः । घनान्तः शरत् ।

अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ।[1]

उपदिष्टस्याहारस्यापवादः—

नित्यं सर्वरसाभ्यासः[2] स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ॥ ५७ ॥

ऋतुसन्धिस्तच्चर्या च—

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः ।

तत्र[3] पूर्वो विधिस्त्याज्यः, सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥ ५८ ॥

सहसात्यागशीलने रोगाः—

असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात् ।"

चतुर्थोऽध्यायः ।

स्वस्थवृत्तम् ।

अथातो रोगानुत्पादनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वातादि वेगधारणनिषेधः—

"वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम् ।

निद्राकासश्रमश्वासजृंभाश्रुच्छर्दिरेतसाम् ॥ १ ॥

वातरोधजाविकारास्तच्चिकित्सा च—

अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरुक्क्लमाः ।

वातमूत्रशकृत्संगदृष्ट्यग्निवधहृद्गदाः ॥ २ ॥

स्नेहस्वेदविधिस्तत्र [4]वर्तयो भोजनानि च ।

पानानि बस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोमनम् ॥ ३ ॥

---

१ अतः शरद्वसन्ताभ्यां विपरीतं स्निग्धमन्यदा हेमन्तशिशिरग्रीष्मवर्षासु । एवं हेमन्त शिशिरवसन्तवर्षासु उष्णमन्नपानम् । २ ऋतौ ऋतौ ये ये रसाउक्ता स्तेषां सेवनं तस्मिंस्तस्मिन् ऋतौ बहुकार्यम् । यथा शीते वर्षासु च मधुराम्ल लवणान् । ३ तत्र ऋत्वोः सप्ताहद्वयोः पूर्वः—पूर्वर्तुविहितः । अपरः—आगमिष्य दृतुसम्बन्धो । ४ वर्तयः—मलहरैर्द्रव्यैर्लिप्ता गुदे प्रक्षेप्याः फलवर्तयः ।

शकृन्निरोधजा रोगाः ।

शकृतः [1]पिण्डिकोद्वेष्टप्रतिश्यायशिरोरुजः ।
ऊर्ध्ववायुः परीकर्तो हृदयस्योपरोधनम्[2] ॥ ४ ॥
मुखेन विट्प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्ताश्चामयाः[3] स्मृताः ।

मूत्ररोधजरोगाः—

अंगभंगाश्मरीबस्तिमेढ्रवंक्षणवेदनाः ॥ ५ ॥
मूत्रस्य रोधात्पूर्वे च[4] प्रायो रोगास्तदौषधम्[5] ।

पुरीषरोधजरोगेष्वौषधम्—

वर्त्यभ्यंगावगाहाश्च स्वेदनं बस्तिकर्म च ॥ ६ ॥
अन्नपानं च विड्भेदि विड्रोधोत्थेषु यक्ष्मसु ।

मूत्ररोधजरोगेष्वौषधम्—

मूत्रजेषु च पाने च प्राग्भक्तं[6] शस्यते घृतम् ॥ ७ ॥
जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजनाद्वयम् ।
अवपीडकमेतच्च संज्ञितं, धारणात्पुनः ॥ ८ ॥

उद्गाररोधजारोगास्तच्चिकित्सा च —

उद्गारस्यारुचिः कंपो विबंधो हृदयोरसोः ।
आध्मानकासहिध्माश्च हिध्मावत्तत्र[7] भेषजम् ॥ ९ ॥

---

१ पिंडिका जानुनोऽधस्तात्मांसलप्रदेशः "पेंडुरी" इतिभाषा, तदुद्वेष्टः—उद्वेष्टनमिव । २ उपरोधनं रुजापूर्वकः क्षोभः । ३ पूर्वोक्ताः—वातरोधजा-गुल्मादयः । ४ पूर्वे वातनिरोधजाः । ५ तदौषधम्—तेषां वातादिरोधजानां रोगाणामौषधम् ।

६ भक्तं भोजनं तस्य, घृतपानादनन्तरमेवभोजनमित्यर्थः । जीर्णान्तेभवं जीर्णान्तिकं ह्यस्तनेऽन्नेजीर्णे घृतमुत्तमयामात्रया पेयम् । एतद्घृतस्य योजनाद्वयं प्राग्भक्तस्नेहयोजना, जीर्णान्तिकस्नेहयोजना चेतिद्वयमवपीडक नामकम् । ७ तत्र-उद्गाररोधजरोगेषु ।

क्षुतिनिरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

शिरोर्तीन्द्रियदौर्बल्यमन्या[1]स्तंभार्दितं क्षुतेः ।
तीक्ष्णधूमांजनाघ्राणनावनार्कविलोकनैः ॥ १० ॥
प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ।

तृष्णानिरोधोत्पन्नरोगास्तच्चिकित्सा च—

शोषांगसादबाधिर्यसंमोहभ्रमहृद्गदाः ॥ ११ ॥
तृष्णाया निग्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः ।

क्षुद्रोधजारोगास्तच्चिकित्सा च—

अंगभंगारुचिग्लानिकार्श्यशूलभ्रमाः क्षुधः ॥ १२ ॥
तत्र योज्यं लघु स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ।

निद्रारोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

निद्राया मोहमूर्धाक्षिगौरवालस्यजृम्भिकाः ॥ १३ ॥
अंगमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि[2] च ।

कासरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

कासस्य [3]रोधात्तद्वृद्धिः श्वासारुचिहृदामयाः ॥ १४ ॥
शोषो हिध्मा च, कार्योऽत्र कासहा सुतरां विधिः ।

श्रमश्वासरोधजारोगास्तच्चिकित्सा च—

गुल्महृद्रोगसंमोहाः श्रमश्वासाद्विधारितात् ॥ १५ ॥
हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्च क्रियाक्रमः ।

जृम्भारोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

जृम्भायाः क्षववद्रोगाः[4] सर्वश्चानिलजिद्विधिः ॥ १६ ॥

अश्रुरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

पीनसाक्षिशिरोहृद्रुङ्मन्यास्तंभारुचिभ्रमाः ।

---

१ मन्या गलपार्श्वशिरा । २ संवाहनानि मर्दनानि । ३—तद्वृद्धिः कासवृद्धिः । ४—क्षववद् क्षवरोधजारोगाः ।

सगुल्मा [1]बाष्पतस्तत्र स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥१७॥

वमिरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

सकासश्वासहृल्लास[2]व्यंगश्वयथवो वमेः ॥१८॥
गंडूषधूमानाहारान् रूक्षं भुक्त्वा [3]तदुद्वमः ।
व्यायामः [4]स्रुतिरस्रस्य शस्तं चात्र विरेचनम् ॥१९॥
सक्षारलवणं तैलमभ्यंगार्थं च शस्यते ।

शुक्ररोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—

शुक्रात्तत्स्रवणं गुह्यवेदना श्वयथुर्ज्वरः ॥२०॥
हृद्व्यथा मूत्रसंगांगभंगवृद्ध्यश्मषंढता[5]ः ।
[6]ताम्रचूडसुराशालिबस्त्यभ्यंगावगाहनम् ॥२१॥
बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं भजेत्क्षीरं प्रियाः स्त्रियः ।

असाध्य वेगरोधी—

तृट्शूलार्तं त्यजेत् क्षीणं विड्वमं वेगरोधिनम् ॥२२॥

वेगोदीरणधारणैः सर्वरोगोत्पत्तिः—

रोगाः सर्वेऽपि जायंते [7]वेगोदीरणधारणैः ।
निर्दिष्टं साधनं तत्र भूयिष्ठं ये तु तान् प्रति ॥२३॥
ततश्चानेकधा प्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति ।
अन्नपानौषधं तत्र युंजीतातोऽनुलोमनम् ॥२४॥

धारणीयवेगाः—

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य[8] चेह च ।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेंद्रियः ॥२५॥

वातादीनां यथा कालं शोधनम्—

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति ।
अत्यर्थसंचितास्ते[9] हि क्रुद्धाः स्युर्जीवितच्छिदः ॥२६॥

---

१ बाष्पत अश्रुणो विधारितात्, २ हृल्लासो हृदयादीषद्व्यथः पद्मम्बुनिर्गमः । ३ तदुद्वमः, तस्य रूक्षस्योद्वमीवमनम् । ४ अस्रस्य रक्तस्य स्रुतिः स्रवणम् । ५ अश्म-अश्मरीरोगः । ६ ताम्रचूडः कुक्कुटः । ७ उदीरणमनुपस्थितवेगानां बलात्प्रेरणम् । ८ प्रेत्य—परलोके । ९ ते—मलाः ।

संशोधनगुणाः—

दोषाः कदाचित्कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥२७॥

रसाय प्रयोगः—

रसायनानि सिद्धानिवृष्ययोगांश्च कालवित् ॥२८॥

भेषजक्षपिते भोजनादिव्यवस्था—

भेषजक्षपिते पथ्यमाहारैर्बृंहणं क्रमात् ।
शालिषष्टिकगोधूममुद्गमासघृतादिभिः ॥२९॥
हृद्यदीपनभैषज्यसंयोगाद्रुचिपक्तिदैः ।
साभ्यंगोद्वर्तनस्नाननिरूहस्नेहबस्तिभिः ॥३०॥
तथा स लभते शर्म[1] सर्वपावकपाटवम् ।
धीवर्णेंद्रियवैमल्यं वृषतां दैर्घ्यमायुषः ॥३१॥

आगन्तुरोगकथनं तच्चिकित्साच—

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादिसंभवाः ।
कामक्रोधभयाद्याश्च[2] ते स्युरागंतवो गदाः ॥३२॥
त्यागः [3]प्रज्ञापराधानामिंद्रियोपशमः स्मृतिः ।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ॥३३॥
अथर्वविहिता शांतिः प्रतिकूलग्रहार्चनम् ।
भूताद्यस्पर्शनोपायो निर्दिष्टश्च पृथक् पृथक् ॥३४॥
अनुत्पत्त्यै समासेन विधिरेष प्रदर्शितः ।
निजागंतुविकाराणामुत्पन्नानां च शान्तये ॥३५॥

---

१ शर्म—कल्याणमारोग्यमित्यर्थः । पाटवं शक्तिम् । २ आद्यशब्देन रागद्वेष मोहलोभादीनां ग्रहणम् । ३ प्रज्ञाया बुद्धेरपराधोऽहिताचरणम् । धीधृतिस्मृति विभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम् । प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ इति चरकशारीरे ।

मलशोधनसमयनिर्देशः एतत्सारभूतम्—

शीतोद्भवं दोषचयं वसंते विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले ।
[1]घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक् प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु ।३६।

आरोग्यहेतवः—

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः[2] सत्यपरः क्षमावा[3]नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः'' ॥३७॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथातो द्रवद्रव्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

गङ्गाजलगुणाः—

''जीवनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम् ।
तन्वव्यक्तरसं [4]मृष्टं शीतं लघ्वमृतोपमम् ॥ १ ॥
गंगांबु नभसो भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केंदुमारुतैः ।
हिताहितत्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते ॥ २ ॥

गङ्गाजलपरीक्षणम्—

येनाभिवृष्टममलं शाल्यन्नं राजतस्थितम् ।
अक्लिन्नमविवर्णं च तत्पेयं गांगम्, अन्यथा[5] ॥ ३ ॥
सामुद्रं तच्च पातव्यं मासादाश्वयुजाद्विना ।

आकाशीयजलपानविधानम्

[6]ऐंद्रमंबु सुपात्रस्थमविपन्नं सदा पिबेत् ॥ ४ ॥

---

१ घनात्यये—शरदि । जातु—कदाचित । २ समः—सर्वप्राणिषु समचित्तः । ३ आप्तः—यथार्थवक्ता पुरुष. । ४ मृष्टं सुस्वादु । ५ अन्यथा—गाङ्गेयलक्षणाभावे । ६ ऐन्द्रमाकाशीयम् ।

तदभावे च भूमिष्ठमंतरिक्षानुकारि यत् ।
शुचिपृथ्वसितश्वेते देशेऽर्कपवनाहृतम् ॥ ५ ॥

पानायोग्यंजलम्—

न पिबेत्पंकशैवालतृणपर्णाविलास्तृतम् ।
सूर्येंदुपवनादृष्टमभिवृष्टं घनं गुरु ॥ ६ ॥
फेनिलं जंतुमत्तप्तं दंतग्राह्यतिशैत्यतः ।
अनार्तवं च यद्दिव्यमार्तवं [1]प्रथमं च यत् ॥ ७ ॥
लूतादितंतुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम् ।

नदी निरूपणम्—

[2]पश्चिमोदधिगाः शीघ्रवहा याश्चामलोदकाः ॥ ८ ॥
पथ्याः समासात्ता नद्यो विपरीतास्त्वतोऽन्यथा[3] ।

हिमालयाद्युद्भूत नदी निरूपणम्—

[4]उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः ॥ ९ ॥
हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः ।
कृमिश्लीपदहृत्कंठशिरोरोगान् प्रकुर्वते ॥ १० ॥
[5]प्राच्याऽऽवंत्यपरांतोत्था दुर्नामानि, महेंद्रजाः ।

उदरश्लीपदातंकान्, सह्यविंध्योद्भवाः पुनः ॥ ११ ॥
कुष्ठपांडुशिरोरोगान्, दोषघ्न्यः पारियात्रजाः ।
बलपौरुषकारिण्यः, सागराम्भस्त्रिदोषकृत् ॥ १२ ॥

---

१ आर्तवमपि यत् प्रथमं प्रथमं वृष्टम् । २ पश्चिमोदधिगा नद्यः—यथा—नर्मदाद्याः । ३ अतः पश्चिमेत्यादिलक्षणहीना नद्यो विपरीता अपथ्याः । ४ उपलानांपाषाणानामास्फालनं ताडनमभिघातादुच्छलनम्, आक्षेपः स्खलनादिः विच्छेदोद्वैधीभावस्तैः खेदितं जातक्षोभं प्राप्तलाघवमुदकं यासां नदीनाम् । ५ आवन्त्यो मालवाः । अपरान्ताः कोङ्कणप्रदेशोद्भवाः । दुर्नामानि-अर्शांसि ।

कूपाद्युत्तमम्—

[1]विद्यात्कूपतडागादीन् जांगलानूपशैलतः ।

जलपान निषेधः—

नांबु पेयमशक्त्या वा स्वल्पमल्पाग्निगुल्मिभिः ॥ १३ ॥
पांडूदरातिसारार्शोग्रहणीदोषशोषिभिः ।
ऋते [2]शरन्निदाघाभ्यां पिबेत्स्वस्थोऽपि चाल्पशः ॥ १४ ॥

भोजने जलपान व्यवस्था—

समस्थूलकृशा[3] भुक्तमध्यान्तप्रथमांबुपाः ।

शीतजल गुणाः—

शीतं मदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान् ॥ १५ ॥
तृष्णोष्णदाहपित्तास्रविषाण्यंबु नियच्छति ।

उष्ण जलगुणाः—

दीपनं पाचनं कंठ्यं लघूष्णं बस्तिशोधनम् ॥ १६ ॥
हिध्माध्मानाऽनिलश्लेष्मसद्यःशुद्धे नवज्वरे ।
कासामपीनसश्वासपार्श्वरुक्षु च शस्यते ॥ १७ ॥

क्वथितशीतलजलगुणाः—

अनभिष्यंदि लघु च तोयं क्वथितशीतलम् ।
पित्तयुक्ते हितं दोषे,[4] व्युषितं तत्त्रिदोषकृत् ॥ १८ ॥
नालिकेरोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमं लघु ।
तृष्णापित्तानिलहरं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ १९ ॥

वर्षायां योग्यायोग्यजलनिर्देशः—

[5]वर्षासु दिव्यनादेये परं तोये वरावरे ।

---

१ आदिना सरः चुण्टी प्रस्रवणोद्भिद्वापीनदीनां ग्रहणम् । तडागः—"ताल" इतिभाषा । चुण्टीअबद्धकूपः 'चूवां' भाषा । २ निदाघः ग्रीष्मः । ३ भुक्तमध्ये जलपानात्समशरीरः, अन्ते स्थूलशरीरः, आदौ च कृशः । ४ व्युषितं—रात्रौ तप्तं दिने, दिने तप्तं वा रात्रौ व्युषितम् । ५ दिव्यमाकाशीयं जलं वर्षासु वरं, नादेयमवरम् ।

दुग्धनिर्देशस्तद्गुणाश्च—

'गव्यं माहिषमाजं च [१]कारभं स्त्रैणमाविकम् ॥ २० ॥
ऐभमैकशफं चेति क्षीरमष्टविधं मतम् ।'
स्वादुपाकरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् ॥ २१ ॥
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ।

गव्यदुग्धगुणाः

प्रायः पयः, अत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ॥ २२ ॥
क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् ।
श्रमभ्रममदालक्ष्मीश्वासकासातितृट्क्षुधः ॥ २३ ॥
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

महिषीदुग्धगुणाः

हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमम् ॥ २४ ॥

अजादुग्धगुणाः—

अल्पाम्बुपानव्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित् ॥ २५ ॥

उष्ट्रीदुग्धगुणाः—

ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रकं दीपनं लघु ।
शस्तं वातकफानाहकृमिशोफोदरार्शसाम् ॥ २६ ॥

स्त्रीदुग्धगुणाः—

मानुषं वातपित्तासृगभिघाताक्षिरोगजित् ।
तर्पणाश्च्योतनैर्नस्यैः, अहृद्यं तूष्णमाविकम् ॥ २७ ॥

हस्तिनीदुग्धगुणाः—

वातव्याधिहरं हिध्माश्वासपित्तकफप्रदम् ।
हस्तिन्याः स्थैर्यकृद्बाढमुष्णं त्वैकशफं लघु ॥ २८ ॥

अश्वादुग्धगुणाः—

शाखावातहरं साम्ललवणं जडताकरम् ।

---

१ कारभमौष्ट्रम् । ऐकशफमश्वासम्बन्धि ।

पक्वापक्वदुग्धगुणाः—

†पयोभिष्यंदि गुर्वामं, युक्त्या शृतमतोऽन्यथा[१] ॥ २९ ॥
भवेद्गरीयोऽतिशृतं धारोष्णममृतोपमम् ।

दधिगुणाः

अम्लपाकरसं ग्राहि गुरूष्णं दधि वातजित् ॥ ३० ॥
मेदःशुक्रबलश्लेष्मपित्तरक्ताग्निशोफकृत् ।
[२]रोचिष्णु शस्तमरुचौ शीतके विषमज्वरे ॥ ३१ ॥
पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च रूक्षं तु ग्रहणीगदे ।

दधिभक्षणनिषेधः—

नैवाद्यान्निशि नैवोष्णं वसंतोष्णशरत्सु न ॥ ३२ ॥
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं तन्नाघृतसितोपलम्[३] ।
न चानामलकं नापि नित्यं नामंदमन्यथा ॥ ३३ ॥
ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्डुभ्रमप्रदम् ।

तक्रगुणाः—

तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित् ॥ ३४ ॥
शोफोदरार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहारुचीः ।
प्लीहगुल्मघृतव्यापद्गरपांड्वामयान् जयेत् ॥ ३५ ॥

मस्तुगुणाः

तद्वन्मस्तु[४] सरं स्रोतःशोधि विष्टंभजिल्लघु ।

नवनीतगुणाः—

[५]नवनीतं नवं वृष्यं शीतं वर्णबलाग्निकृत् ॥ ३६ ॥
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोर्दितकासजित् ।
क्षीरोद्भवं तु संग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगजित् ॥ ३७ ॥

---

† धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतं तु माहिषम् ।
शृतोष्णमाविकम्पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥

मदनः ।

१ अत आमाद्दुग्धादन्यथा—अनभिष्यन्दि लघु च । रोचिष्णु स्वयं रोचते । ३ सितोपला—"मिश्री" इतिभाषा । ४ मस्तु—दधिजलम् । सरम्—मलनिःसारकम् । ५ नवनीतं "नैनू" इतिभाषा । क्षीरोद्भवं नवनीतं "मक्खन" इतिलोके ।

घृतगुणाः—

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम् ।
बालवृद्धप्रजाकांतिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम् ॥ ३८ ॥
क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
वातपित्तविषोन्मादशोषाऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ३९ ॥
स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम् ।
[1]सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत् ॥ ४० ॥

पुराणघृतगुणाः—

मदापस्मारमूर्च्छायशिरःकर्णाक्षियोनिजाम् ।
पुराणं जयति व्याधीम् व्रणशोधनरोपणम् ॥ ४१ ॥
बल्याः कि[2]लाटपीयूषकूर्चिकामोरणादयः ।
शुक्रनिद्राकफकरा विष्टंभिगुरुदोषलाः ॥ ४२ ॥

दुग्धघृतयोर्वरावरत्वे—

गव्ये क्षीरघृते श्रेष्ठे निंदिते चाविसंभवे ।

इक्षुरसगुणाः—

इक्षो रसो गुरुः स्निग्धो बृंहणः कफमूत्रकृत् ॥ ४३ ॥
वृष्यः शीतोऽस्रपित्तघ्नः स्वादुपाकरसः सरः ।
[3]सोऽग्रे सलवणो, दंतपीडितः शर्करासमः ॥ ४४ ॥

यान्त्रिकरसगुणाः—

मूलाग्रजंतुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात् ।
किंचित्कालं विधृत्या च विकृतिं याति यांत्रि[4]कः ॥ ४५ ॥
विदाही गुरुविष्टंभी तेनासौ, तत्रपौंड्रकः[5]
शैत्यप्रसादमाधुर्यैर्वरस्तमनुवाशिकः ॥ ४६ ॥

---

१ सहस्रवीर्यमनेकशक्ति। विधिभिरनेकद्रव्यैःसंस्कृतम् । २ किलाटः "छेना" पीयूषः "पेंहुस" इति लोके । सतरान्नात्परंक्षीरमप्रसन्नंतु मोरणम् । "क्षीरंतत्काललमूतायाः पीयूषंघनमुच्यते" "पक्वंदध्नासमंक्षीरंविज्ञेया दधिकूर्चिका" तक्रेण तक्रकूर्चिका तयोः पिण्डः किलाटकः । ३ स इक्षुः । ४ यान्त्रिकः यन्त्रै. कोल्हू द्वारानिष्पीडितः । ५ पौंड्रकः "पौंढा" इतिलोके ।

शातपर्वककांतारनैपालाद्यास्तवः क्रमात् ।
ससाराः सकषायाश्च सोष्णाः किंचिद्विदाहिनः ॥ ४७ ॥
[1]फाणितं गुर्वभिष्यंदि चयकृन्मूत्रशोधनम् ।
नातिश्लेष्मकरो धौतः सृष्टमूत्रशकृद्गुडः ॥ ४८ ॥
प्रभूतकृमिमज्जासृङ्मेदोमांसकफोऽपरः ।
हृद्यः पुराणः पथ्यश्च, नवः श्लेष्माग्निसादकृत् ॥ ४९ ॥
वृष्याः क्षतक्षीणहिता रक्तपित्तानिलापहाः ।
[2]मत्स्यंडिकाखंडसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः ॥ ५० ॥
तद्गुणा तिक्तमधुरा कषाया यासशर्करा[3] ।
दाहतृट्छर्दिमूर्च्छासृक्पित्तघ्न्यः सर्वशर्कराः ॥ ५१ ॥
शकरेक्षुविकाराणां फाणितं च वरावरे ।

मधुगुणाः—

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविषहिध्मास्रपित्तनुत् ॥ ५२ ॥
मेहकुष्ठकृमिच्छर्दिश्वासकासातिसारनुत् ।
व्रणशोधनसंधानरोपणं वातलं मधु ॥ ५३ ॥

मधुसेवननिषेधापवादौ—

रूक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा ।
उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहंति तत् ॥ ५४ ॥
प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न निवार्यते ।
अलब्धपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्तते ॥ ५५ ॥

तैलगुणाः—

तैलं स्वयोनि[4]वत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च ।
त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च ॥ ५६ ॥

---

१ फाणितं "राब" इतिप्राच्याः । २ मत्यस्यण्डिका-"कच्ची चीनी" इति-भाषा, खण्डः "खांड" इति लोके । ३ यासशर्करा यवासशर्करा "शिरेखिस्त" यवनचिकित्सकाः । ४ स्वयोनिवत् स्वस्य तैलस्ययोनिरुत्पत्तिस्थानं-तिलम् तद्वत् तिलवद्गुणयुक्तमित्यर्थः । मुख्यं-तैलेषु तिलोद्भवं तैलं मुख्यम् ।

कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च ।
बद्धविट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वदोषजित् ॥ ५७ ॥
सतिक्तोषणमैरंडं तैलं स्वादु सरं गुरु ।
वर्ध्मगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम् ॥ ५८ ॥
रुक्शोफौ च कटीगुह्यकोष्ठपृष्ठाश्रयां जयेत् ।
तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरंडोद्भवं त्वति ॥ ५९ ॥
कट्वुष्णं सार्षपं तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम् ।
लघुपित्तास्रकृत् कोठकुष्ठार्शोव्रणजंतुजित् ॥ ६० ॥
[1]आक्षं स्वादु हिमं केश्यं गुरु पित्तानिलापहम् ।
नात्युष्णं निंबजं तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रणुत् ॥ ६१ ॥
[2]उमाकुसुंभजं चोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत् ।
वसा मज्जा च वातघ्नौ बलपित्तकफप्रदौ ॥ ६२ ॥
मांसानुगस्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि तादृश ।

मद्यगुणाः—

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम् ॥ ६३ ॥
सस्वादुतिक्तकटुकमम्लपाकरसं सरम् ।
सकषायं स्वरारोग्यप्रतिभावर्णकृल्लघु ॥ ६४ ॥
[3]नष्टनिद्राऽतिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम् ।
कृशस्थूलहितं रूक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम् ॥ ६५ ॥
वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं विषवदन्यथा ।
गुरु त्रिदोषजननं नवं, जीर्णमतोऽन्यथा ॥ ६६ ॥
पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः ।

मद्यपाननिषेधः—

नात्यर्थतीक्ष्णमृद्वल्प[4]संभारं कलुषं न च ॥ ६७ ॥

---

१ आक्षं विभीतकतैलम् । २ उमा-अतसी । कुसुम्भः "बरें" इतिलोके ।
३ नष्टेति-गुणोऽयं मद्यस्य प्रभाववृत्तः । ४ अल्पसम्भारमल्पद्रव्यनिष्पादितम् ।

सुरागुणाः—

गुल्मोदरार्शोग्रहणीशोषहृत् स्नेहनी गुरुः ।
[1]सुराऽनिलघ्नी मेदोसृक्स्तन्यमूत्रकफावहा ॥ ६८ ॥
तद्गुणा वारुणी[1] हृद्या लघुतीक्ष्णा निहंति च ।
शूलकासवमिश्वासविबंधाध्मानपीनसान् ॥ ६९ ॥
नातितीव्रमदा लघ्वी पथ्या वैभीतकी सुरा ।
व्रणे पांड्वामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते ॥ ७० ॥
विष्टंभिनी यवसुरा गुर्वी रूक्षा त्रिदोषला ।

अरिष्टगुणाः—

यथाद्रव्यगुणोऽरिष्टः सर्वमद्यगुणाधिकः ॥ ७१ ॥
ग्रहणीपांडुकुष्ठार्शःशोफशोषोदरज्वरान् ।
हंति गुल्मकृमिप्लीहान् कषायकटुवातलः ॥ ७२ ॥
मार्द्वीकं लेखनं हृद्यं नात्युष्णं मधुरं सरम् ।
अल्पपित्तानिलं पांडुमेहार्शःकृमिनाशनम् ॥ ७३ ॥
अस्मादल्पांतरगुणं खार्जूरं वातलं गुरु ।
शार्करः सुरभिः स्वादुहृद्यो नातिमदो लघुः ॥ ७४ ॥
सृष्टमूत्रशकृद्वातो गौडस्तर्पणदीपनः ।
वातपित्तकरः सीधुः[2] स्नेहश्लेष्मविकारहा ॥ ७५ ॥
मेदःशोफोदरार्शोघ्नस्तत्र पक्वरसो[3] वरः ।
छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित् ॥ ७६ ॥
रक्तपित्तकफोत्क्लेदि [4]शुक्तं वातानुलोमनम् ।
भृशोष्णतीक्ष्णरूक्षाम्लहृद्यं रुचिकरं सरम् ॥ ७७ ॥

---

५ "परिपक्वान्नसंधानसमुत्पन्ना सुरा जगु." शालिपष्टिक पिष्टादिकृतं मद्य सुरा मतम्"
१ "यत्तालखर्जूररसैः संधिता सा हि वारुणी" शा० "पुनर्नवाशालिपिष्टैर्विहिता वारुणी मता" मदनपालः । २ संपक्वमधुरद्रवैः कृतं मद्यं सीधुः स एव पक्वरसः, ४ शुक्तं—कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रवेऽभिपूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते, "सिरका" इतिलोके ।

दीपनं शिशिरस्पर्शं पांडुहृत्कृमिनाशनम् ।
गुडेक्षुमद्यमार्द्वीकशुक्तं लघु यथोत्तरम् ॥ ७८ ॥
कंदमूलफलाद्यं च तद्वद्विद्यात्तदाऽऽसुतम् ।
शांडाकी¹ चासुतं चान्यत्कालाम्लं रोचनं लघु ॥७९॥
²धान्याम्लं भेदि तीक्ष्णोष्णं पित्तकृत्स्पर्शशीतलम् ।
श्रमक्लमहरं रुच्यं दीपनं बस्तिशूलनुत् ॥८०॥
शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातकफापहम् ।

मूत्रगुणाः—

³मूत्रं गोऽजाविमहिषीगजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥८१॥
पित्तलं रूक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु ।
कृमिशोफोदरानाहशूलपांडुकफानिलान् ॥८२॥
गुल्माऽरुचिविषश्वित्रकुष्ठार्शांसि जयेल्लघु ।

द्रवैकदेशोदाहरणम्—

तोयक्षीरेक्षुतैलानां वर्गैर्मद्यस्य च क्रमात् ॥८३॥
इति द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृत. ।"

षष्ठोऽध्यायः ।

स्वस्थवृत्तम्—

अथातोऽन्नस्वरूपविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शालिगुणाः—

"रक्तो महान् सकलमस्तूर्णकः शकुनाहृत' ।
सारामुखो दीर्घशूको रोध्रशूकः सुगंधकः ॥१॥

---

१ "शांडाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्पपादिभिः" २ धान्याम्लं—काञ्जिकम् ।
३ गोऽजाविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं मतम् । इति मदनपालः ।

पतंगास्तपनीयाश्च ये चान्ये शालयः शुभाः ।
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः ॥२॥
कषायानुरसाः पथ्या लघवो मूत्रला हिमाः ।
शूकजेषु, वरस्तत्र रक्तस्तृष्णात्रिदोषहा ॥३॥
महांस्तस्यानुकलमस्तं चाप्यनु, ततः परे ।

यवकादिगुणाः—

यवका हायनाः पांसुबाष्पनैषधकादयः ॥४॥
स्वादूष्णा गुरवः स्निग्धाः पाकेऽम्लाः श्लेष्मपित्तलाः ।
सृष्टमूत्रपुरीषाश्च पूर्वं पूर्वं च निंदिताः ॥ ५ ॥

षष्टिकस्यश्रेष्ठता—

स्निग्धो ग्राही गुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरो हिमः ।
[1]षष्टिको व्रीहिषु श्रेष्ठो, गौरश्चासितगौरतः ॥ ६ ॥

महाव्रीह्यादिगुणाः—

ततः क्रमान्महाव्रीहिकृष्णव्रीहिजतूमुखाः ।
कुक्कुटांडकपालाख्यपारावतकशूकराः ॥ ७ ॥
वरकोद्दालकोज्वालचीनशारददुर्दुराः ।
गंधनाः कुरुविंदाश्च गुणैरल्पान्तरा स्मृताः ॥ ८ ॥

अन्यव्रीहिगुणाः—

स्वादुरम्लविपाकोऽन्यो व्रीहिः पित्तकरो गुरुः ।
बहुमूत्रपुरीषोष्मा त्रिदोषस्त्वेव पाटलः ॥ ९ ॥
[2]कंगुकोद्रवनीवारश्यामाकादिहिमं लघु ।
तृणधान्यं पवनकृल्लेखनं कफपित्तहृत् ॥ १० ॥

---

१ षष्टिकः "साठी चावल" इतिभाषा । २ कंगु—"ककुनी" कंगु प्रियंगु रितिहेमाद्रिः । कोद्रवः "कोदव" । नीवारः "तिन्नी" । श्यामाकः "सावाँ" इति भाषायाम् । आदिपदेन जूर्णाह्नि वर्जरी धान्यानि ।

भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियंगुर्बृंहणी गुरुः ।
कोरदूषः परं ग्राही स्पर्शशीतो विषापहः ॥ ११ ॥
रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः सरो विड्वातकृद्यवः ।
वृष्यः स्थैर्यकरो मूत्रमेदः पित्तकफान् जयेत् ॥ १२ ॥
पीनसश्वासकासोरुस्तंभकंठत्वगामयान् ।
न्यूनो यवादन्ययवः, रूक्षोष्णो वंशजो यवः ॥ १३ ॥

गोधूमगुणाः

वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो जीवनो वातपित्तहा ।
संधानकारी मधुरो गोधूमः स्थैर्यकृत्सरः ॥ १४ ॥

नन्दीमुखी गुणाः—

पथ्या [1]नंदीमुखी शीता कषायमधुरा लघुः ।

शिबीधान्यगुणाः—

मुद्गाढकीमसूरादि शिबीधान्यं विबंधकृत् ॥ १५ ॥
कषायं स्वादु संग्राहि कटुपाकं हिमं लघु ।
मेदःश्लेष्मास्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः ॥ १६ ॥
वरोऽत्र मुद्गोऽल्पचलः कलायस्त्वतिवातलः ।
[2]राजमाषोऽनिलकरो रूक्षो बहुशकृद्गुरुः ॥ १७ ॥
उष्णाः कुलत्था[3] पाकेऽम्लाः शुक्राश्मश्वासपीनसान् ।
कासार्शःकफवातांश्च घ्नंति पित्तास्रदाः परम् ॥ १८ ॥
[4]निष्पावो वातपित्तास्रस्तन्यमूत्रकरो गुरुः ।
सरो विदाही दृक्शुक्रकफशोफविषापहः ॥ १९ ॥
माषः स्निग्धो बलश्लेष्ममलपित्तकरः सरः ।
गुरूष्णोऽनिलहा स्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् ॥ २० ॥
फलानि माषवद्विद्यात्काकांडोला[5]त्मगुप्तयोः ।

---

१ नन्दीमुखी-दीर्घसूक्ष्मोगोधूमः, आढकी "अरहर" इति लोके । कलायः "मटर" इति लोके । २ राजमाषः—बृहन्माषः, ३—कुलत्थः "कुरथी" इति लोके । ४ निष्पावः "बोड़ा" इति लोके । ५ आत्मगुप्ता "केवांच" इति लोके । काकांडोला निःशूकाकपिकच्छूरितिहेमाद्रिः ।

तिल गुणाः—

उष्णस्त्वच्यो हिमः स्पर्शे केश्यो बल्यस्तिलो गुरुः ॥ २१ ॥
अल्पमूत्रः कटुः पाके मेधाऽग्निकफपित्तकृत् ।

अतसी गुणाः—

स्निग्धोमा स्वादुतिक्तोष्णा कफपित्तकरो गुरुः ॥ २२ ॥
दृक्शुक्रहृत्कटुः पाके, तद्वद्बीजं कुसुंभजम् ।

मापयवकयोर्न्यूनत्वम्—

मापोऽत्र सर्वेष्ववरो यवकः शूकजेषु च ॥ २३ ॥
नवं धान्यमभिष्यंदि, लघु, संवत्सरोषितम् ।
[1]शीघ्रजन्म तथा सूप्यं निस्तुपं युक्तिभर्जितम् ॥ २४ ॥

मण्डादीनां यथापूर्वं लाघवम्—

[2]मंडपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम् ।
यथापूर्वं शिवस्तत्र मंडो वातानुलोमनः ॥ २५ ॥

मण्ड गुणाः—

तृड्ग्लानिदोषशेषघ्नः पाचनो धातुसाम्यकृत् ।
स्रोतोमार्दवकृत्स्वेदी संधुक्षयति चानलम् ॥ २६ ॥

पेया गुणाः—

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा ।
मलानुलोमनी पथ्या पेया दीपनपाचनी ॥ २७ ॥

विलेपी गुणाः—

विलेपी ग्राहिणी हृद्या तृष्णाघ्नी दीपनी हिता ।
व्रणाक्षिरोगसंशुद्धदुर्बलस्नेहपायिनाम् ॥ २८ ॥

---

१ शीघ्रमल्पकाले जन्मोत्पत्तिर्यस्यतत् । सूप्यं सूपयोग्यं मुद्गादि । युक्तिभर्जितं भ्राष्ट्रभर्जितं "कोरी" इति लोके । २ मण्डः "मांड़" इति लोके "नीरे-चतुर्दशगुणे सिद्धोमण्डस्त्वसिथ्यकः" असिथ्यक ओदनरहित इत्यर्थः । द्रवाधिका स्वल्पसिथ्या, चतुर्दशगुणे जले सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया, यूषः किंचिद्घनः स्मृतः । विलेपी घनसिथ्या स्यात्सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ।

ओदन लक्षणम्—

सुधौतः प्रस्रुतः स्विन्नोऽत्यक्तोष्मा चौदनो लघुः ।
यश्चाग्नेयौषधक्वाथसाधितो भृष्टतंडुलः ॥ २९ ॥
विपरीतो गुरुः क्षीरमांसाद्यैर्यश्च साधितः ।
इति द्रव्यक्रियायोगमानाद्यैः सर्वमादिशेत् ॥ ३० ॥

मौद्गरस लक्षणम्—

बृंहणः प्रीणनो वृष्यश्चक्षुष्यो व्रणहा रसः ।
मौद्गस्तु पथ्यः संशुद्धव्रणकंठाक्षिरोगिणाम् ॥ ३१ ॥
वातानुलोमी कौलत्थो गुल्मतूनिप्रतूनिजित् ।

तिलविकृत्यादि गुणाः—

तिलपिण्याकविकृतिः, शुष्कशाकं, विरूढकम् ॥ ३२ ॥
शाण्डाकीवटकं दृग्घ्नं दोषलं ग्लपनं गुरु ।

रसाला गुणाः—

रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा ॥ ३३ ॥

पानक गुणाः—

श्रमक्षुत्तृट्क्लमहरं पानकं प्रीणनं गुरु ।
विष्टंभि मूत्रलं हृद्यं यथाद्रव्यगुणं च तत् ॥ ३४ ॥
[1]लाजास्तृट्छर्द्यतीसारमेहमेदःकफच्छिदः ।
कासपित्तोपशमना दीपना लघवो हिमाः ॥ ३५ ॥
[2]पृथुका गुरवो बल्याः कफविष्टंभकारिणः ।
[3]धाना विष्टंभिनी रूक्षा तर्पणी लेखनी गुरुः ॥ ३६ ॥
सक्तवो लघवः क्षुत्तृट्श्रमनेत्रामयव्रणान् ।
घ्नंति संतर्पणाः पानात्सद्य एव बलप्रदाः ॥ ३७ ॥
[4]नोदकान्तरितान् [5]द्विर्न निशायां न केवलान् ।
न भुक्त्वा न [6]द्विजैश्छित्त्वा सक्तूनद्यान्न वा बहून् ॥ ३८ ॥

---

१ लाजा—"लावा-खील" भा० । २ पृथुकाः "चिउड़ा" इति भा० । ३ धाना "बहुरी, परमल" इतिलोके । ४ नोदकं पृथक् पीत्वा । ५ एकस्मिन्नदिनेद्वि द्विवारम् । ६ द्विजैः—दन्तैः पिण्डिकां कृत्वा ।

[1]पिण्याको ग्लानिरूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः ।
[2]वेसवारो गुरुः स्निग्धो बलोपचयवर्धनः ॥ ३९ ॥
मुद्गादिजास्तु गुरवो यथाद्रव्यगुणानुगाः ।

कुकूलादिपक्वगुणाः—

[3]कुकूलकर्परभ्राष्ट्रकंदुंगारविपाचिताम् ॥ ४० ॥
एकयोनींल्लघून्विद्यादपूपानुत्तरोत्तरम् ।

मांसवर्गः—

[4]हरिणैणकुरंगर्क्षगोकर्णमृगमातृकाः ॥ ४१ ॥
शशशंबरचारुष्कशरभाद्या मृगाः स्मृताः ।

विष्किरगणः—

[5]लाववर्तीकवार्तीरक्तवर्मककुक्कुभाः ॥ ४२ ॥
कपिंजलोपचक्राख्यचकोरकुरुबाहवः ।
वर्तको वर्तिका चैव तित्तिरिः क्रकरः शिखी ॥ ४३ ॥
ताम्रचूडाख्यबकरगोनर्दगिरिवर्तिकाः ।
तथा शारपदेंद्राभवारटाश्चेति विष्किराः[6] ॥ ४४ ॥

---

१ पिण्याकः "खली" भाषा । २ वेसवारः कुट्टितं निरस्थि धान्यकहिङ्गुलवङ्गजीरकादिसंस्कृतं मांसम् । ३ कुकूलकः भौरा-भूमल, कर्परः "खपरा" । भ्राष्टः "भाड़" कन्दु "तन्दूर" । इतिभाषा, एकयोनीन्–एकद्रव्यकृतान् । ४ हरिणोरक्तवर्णः, एणः कृष्णवर्णः, कुरङ्ग ईषत्ताम्रो मृगः । ऋक्षः "रीछ–भालू" इति लोके । गोकर्णः गोकर्णसमकर्णो रासभाकारः । 'चुरिहारी' नामको वन्यः पशुरित्यन्ये, मृगमातृका लघुपृथूदरः । शशः "खरगोश" इतिलोके । शम्बरः––महान् गवयः ५ लावः "लवा" । वर्तीकः वनचटकः । वार्तीरो वर्तीकजातिः रक्तवर्मककुक्कुभे "जंगलीमुर्गी" नीलच्छविः कृष्णगलः स्याद्ग्रामचटकाकृतिः । कुकुभ; कुक्कुभारावस्थलजो रक्त वर्त्मकः । कपिंजलोगौरतित्तिरिः । उपचक्रः श्वभ्रचरः कृष्णचंचुर्मदाविलः । कुरु वाहुः नीलग्रीवः रक्तशिखः श्वेतपक्षः, वर्तको वार्तीरादल्पः । वर्तिका वर्तकसदृशा । क्रकरः कुचशब्दकारो । ताम्रचूडः कुक्कुटः । बकरः बकसदृशाक्षः । गोनर्दगोशब्दा नुकारी । गिरिवर्तिकावर्तिकाभेदः । शारपदः कङ्कसदृशश्चारगतिः, इन्द्राभः कङ्कसदृशो विविधवर्णः, वारटोहंसभेदः । [6]विकीर्यभक्षणात् विष्किराः ।

प्रतुदगणाः—

[1]जीवंजीवकदात्यूहभृङ्गाह्वशुकसारिकाः ।
लट्वाकोकिलहारीतकपोतचटकादयः ॥ ४५ ॥
प्रतुदा, भेकगोधाहिश्वाविदाद्या विलेशयाः ।

प्रसहगणाः—

[2]गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्षवानराः ॥ ४६ ॥
मार्जारमूषिकव्याघ्रवृकबभ्रुतरक्षवः ।
लोपाकजंबुकश्येनचाषवातादवायसाः ॥ ४७ ॥
शशघ्नीभासकुररगृध्रोलूककुलिंगकाः ।
धूमिका मधुहा चेति प्रसहा मृगपक्षिणः ॥ ४८ ॥

महामृगाः

[3]वराहमहिषन्यंकुरुरुरोहितवारणाः ।
सृमरश्चमरः खड्गो गवयश्च महामृगाः ॥ ४९ ॥

१—प्रतुद—तुंडेनाहत्यभक्षणात्प्रतुदाः । जीवंजीवकः—एकोदरोद्विशिराः दात्यूहो-ऽन्धकाकः । भृंगाह्वोभृङ्गराजः, लट्वालटेरा । हारीत, 'हारिल' । भेकः मेघा । गोधा 'गोह' । अहिःसर्पः । श्वावित् 'साही' । २ अश्वतरः 'खच्चर' । द्वीपी 'चीता' । मार्जारो विडालः । वृकः भेड़िया हुंडार । बभ्रुर्नकुल इतिपदार्थ चन्द्रिका, तरक्षु-र्मृगादनः । लोपाकः'लोमडी'। जम्बुकः स्यार । श्येनः,बाजः । चाप नीलकण्ठः, वातादः कुक्कुरः । वायस. काकः । शशघ्नी शशारिः । भासोगृध्रसदृशः । कुररः करणाकुल हिन्दी । कुलिंगो गृहचटकः । धूमिकाधूम्यारः । मधुहामधुघातकः । ३—न्यङ्कुः 'बारासिंहा' बहुविषाणोमृगः । रुरुर्यङ्कुभेदः शरदिश्रृङ्गत्यागी । रोहितोलोहित-वर्णः । वारणो हस्ती, सृमरोयननुरगः । चमरः 'चँवरी गाय' । खड्गो 'गैंडा' । 'गवयः' नीलगाय ।

कार्श्यं केवलवातांश्च गोमांसं संनियच्छति ।
उष्णो गरीयान्महिषः स्वप्नदार्ढ्यबृहत्त्वकृत् ॥ ६५ ॥
तद्वद्वराहः श्रमहा रुचिशुक्रबलप्रदः ।
मत्स्याः परं कफकराः चिलिचो सन्निदोषकृत् ॥ ६६ ॥
लावरोहितगोधैणाः स्वे स्वे वर्गे वराः परम् ।

सेव्यत्याज्यमांसम्—

मांसं सद्योहतं शुद्धं [1]वयःस्थं च भजेत्, त्यजेत् ॥ ६७ ॥
मृतं कृशं भृशं मेद्यं[2] व्याधिवारिविषैर्हतम् ।

मांसविषयेऽन्यज्ञातव्याः—

पुंस्त्रियोः पूर्वपश्चार्धे[3] गुरुणी, गर्भिणी गुरुः ॥ ६८ ॥
लघुर्योषिच्चतुष्पात्सु, विहंगेषु पुनः पुमान् ।
शिरःस्कंधोरुपृष्ठस्य कट्याः सक्थ्नोश्च गौरवम् ॥ ६९ ॥
तथामपक्वाशययोर्यथापूर्वं विनिर्दिशेत् ।
शोणितप्रभृतीनां च धातूनामुत्तरोत्तरम् ॥ ७० ॥
मांसादगरीयो वृषणमेढ्रवृक्कयकृद्गुदम् ।

शाकवर्ग—

शाकं [4]पाठासठीसूषासूपासुनिषण्णसतीनजम् ॥ ७१ ॥
त्रिदोषघ्नं लघु ग्राहि सराजक्षववास्तुकम् ।
सुनिषण्णोऽग्निकृद्वृष्यस्तेषु राजक्षवः परम् ॥ ७२ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नः, वर्चोभिदि तु वास्तुकम् ।

काकमाचीगुणाः—

हंति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोष्णा रसायनम् ॥ ७३ ॥

---

१ वयस्थं तरुणम् । २ मेद्यं-मेदुरं स्थूलमित्यर्थः । ३—पुंसः पूर्वार्धं स्त्रियाश्च पश्चार्धं गुरु । ४—पाठा "पाढी" । सठी कर्चूरः, सूषा-कासमर्दिका । सुनिषण्णो वर्तुलचाङ्गेरीसदृशपत्रः, "चौपतिया" । सतीनो विष्णुकान्ता, राजक्षवः "नकछिकनी" । वास्तुकं "बथुवा" ।

*काकमाची सरा स्वर्या, चांगेर्यम्लाऽग्निदीपनी ।
ग्रहण्यर्शोऽनिलश्लेष्महितोष्णा ग्राहिणी लघुः ॥ ७४ ॥

पटोलादीनां गुणाः—

पटोलं [1]सप्तलारिष्टशार्ङ्गेष्टावल्गुजामृताः ।
वेत्राग्रं बृहती वासा कुंतली तिलपर्णिका ॥ ७५ ॥
मंडूकपर्णी कर्कोटकारवेल्लकपर्पटाः ।
नाडाकलायं गोजिह्वा वार्ताकं वनतिक्तकम् ॥ ७६ ॥
करीरं कुलकं नंदी कुचेला शकुलादनी ।
कठिल्लं केम्बुकं शीतं सकोशातककर्कशम् ॥ ७७ ॥
तिक्तं पाके कटु ग्राहि वातलं कफपित्तजित् ।
हृद्यं पटोलं कृमिनुत्स्वादुपाकं रुचिप्रदम् ॥ ७८ ॥
पित्तलं दीपनं भेदि वातघ्नं बृहतीद्वयम् ।
वृषं तु वमिकासघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ॥ ७९ ॥
कारवेल्लं सकटुकं दीपनं कफजित्परम् ।
वार्ताकं कटुतिक्तोष्णं मधुरं कफवातजित् ॥ ८० ॥
सक्षारमग्निजननं हृद्यं रुच्यमपित्तलम् ।
करीरमाध्मानकरं कषायस्वादुतिक्तकम् ॥ ८१ ॥
कोशातकावल्गुजकौ भेदनावग्निदीपनौ ।
तंडुलीयो हिमो रूक्षः स्वादुपाकरसो लघुः ॥ ८२ ॥

---

*काकमाची "मकोय" मकुइया इति भाषा । चांगेरी "अमलोनिया" इति लोके ।

१ सप्तला सातला । अरिष्टो-निम्बः । शार्ङ्गेष्टा—काकजङ्घामसी । अवल्गुजा वाकुची । अमृता गुडूची । कुंतली–सूक्ष्मतिलजातिः । तिलपर्णिका—'हुरहुर' इति लोके । मण्डूकपर्णीब्राह्मी । कर्कोटकः 'खेकसा' इति लोके । पर्पटः पित्तपापड़ा नाडी कलायं-मत्स्याक्षः । गोजिह्वा "वनगोभी" इति लोके । वार्ताकं "भटा," इति लोके । वनतिक्तकम् "कुरैया" हिन्दी । कुलकं काकतिन्दुकम् । नंदी मेषशृङ्गी । कुचेला पाठाभेदः, शकुलादनी 'कुटकी' हि० । कठिल्लं पुनर्नवा । कोशातकः 'तरोई' हि० । कर्कशः कम्पिल्लकः । तंडुलीयः चौराई हि० ।

मदपित्तविपासघ्नः, [1]मुंजातं वातपित्तजित् ।
स्निग्धं शीतं गुरु स्वादु बृंहणं शुक्रकृत्परं ॥ ८३ ॥
गुर्वी मरा तु पालक्या,[2] मदघ्नी चाप्युपोदिका[3] ।
पालक्यावत्स्मृतश्चंचुः स तु संग्रहणात्मकः ॥ ८४ ॥
[4]विदारी वातपित्तघ्ना मूत्रला स्वादुशीतला ।
जीवनी बृंहणी कंठ्या गुर्वी वृष्या रसायनम् ॥ ८५ ॥
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवंती मधुरा हिमा ।

कूष्माण्डादि गुणाः—

[5]कूष्मांडतुंबकालिंगकर्कार्वेर्वारुतिंडिशम् ॥ ८६ ॥
तथा त्रपुसचीनाकचिर्भटं कफवातकृत् ।
भेदि विष्टंभ्यभिष्यंदि स्वादुपाकरसं गुरु ॥ ८७ ॥
वल्लीफलानां प्रवरं कूष्मांडं वातपित्तजित् ।
बस्तिशुद्धिकरं वृष्यम्, त्रपुसं त्वतिमूत्रलम् ॥ ८८ ॥
तुंबं रूक्षतरं ग्राहि, कालिंगैर्वारुचिर्भटम् ।
बालं पित्तहरं शीतं विद्यात्पक्वमतोऽन्यथा ॥ ८९ ॥
[6]शीर्णवृंतं तु सक्षारं पित्तलं कफवातजित् ।
रोचनं दीपनं हृद्यमष्ठीलाऽनाहनुल्लघु ॥ ९० ॥

मृणालादि गुणाः—

[7]मृणालबिसशालूककुमुदोत्पलकंदकम् ।
नंदीमाषककेलूटशृंगाटककशेरुकम् ॥ ९१ ॥

---

१ मुंजातं कन्दविशेष इति हेमेद्रिः । २ पालक्या 'पालक' चचुः शाकविशेषः हि० । ३ उपोदका "पोई" हि० । ४ विदारी विदारीकन्दः । "पताल कोहड़ा" हि० । ५ तुंबम् 'लौकी' हि० । कालिङ्गः 'तरबूज' हि० । कर्कारुः "फूट" हि० । एर्वारुः "ककड़ी" हि० । तिंडिशम्—'डेड़सी" । त्रपुषम् 'खीरा' हि० । चीनाकम् तदाख्यम् । चिर्भटम् "चिचिड़ा" । ६ शीर्णवृन्तम् 'पेठा-कचरी' हि० । ७ मृणालम् सूक्ष्मकमलनालः । बिसम् स्थूलकमलमूलम् "भसीड़ा" । शालूकम् कन्दम् पद्मकन्दम् । कुमुदं 'कोंई' हि०, नंदीमाषकः—वानीरकः । केलूटं—जलोदुम्बरः । क्रौंचादनम् विशेषभेदस्याम् । कलोड्यं 'कमल गट्टा' हि० ।

क्षौवादनं कलोड्यं च रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु ।

फलंमादि गुणाः—

[1]कलंबनालिकामार्षकुटिञ्जरकुतुंबकम् ॥ ९२ ॥
चिल्लीलट्वाकलोणीकाकुरुटकगवेधुकम् ।
जीवंतझुंभवेडगजयवशाकसुवर्चलम् ॥ ९३ ॥
आलुकानि च सर्वाणि तथा सूप्यानि लक्ष्मणम् ।
स्वादु रूक्षं सलवणं वातश्लेष्मकरं गुरु ॥ ९४ ॥
शीतलं सृष्टविण्मूत्रं प्रायो विष्टभ्य जीर्यति ।
स्विन्नं निष्पीडितरसं स्नेहाढ्यं नातिदोषलम् ॥ ९५ ॥
लघुपत्रा तु या चिल्ली सा वास्तुकसमा मता ।
तर्कारीवरणं स्वादु सतिक्तं कफवातजित् ॥ ९६ ॥
[3]वर्षाभ्वौ कालशाकं च सक्षारं कटुतिक्तकम् ।
दीपनं भेदनं हंति गरशोफकफानिलान् ॥ ९७ ॥
दीपनाः कफवातघ्नाश्चिरिबि[4]ल्वांकुराः सराः ।
शतावर्यंकुरास्तिक्ता वृष्या दोषत्रयापहाः ॥ ९८ ॥
रूक्षो वंशकरीरस्तु विदाही वातपित्तलः ।
[5]पत्तूरो दीपनस्तिक्तः प्लीहार्शः कफवातजित् ॥ ९९ ॥
कृमिकासकफोत्क्लेदान् कास[6]मर्दो जयेत्सरः ।
रूक्षोष्णमम्लं कौसुंभं गुरु पित्तकरं सरम् ॥ १०० ॥
गुरूष्णं सार्षपं बद्धविण्मूत्रं सर्वदोषकृत् ।

मूलक गुणाः—

यद्बालमव्यक्तरसं किंचित्क्षारं सतिक्तकम् ॥ १०१ ॥

---

१ कलम्बः कदम्बः । नालिका—अल्पसूक्ष्मकलम्बः "करेमू" । मार्षः "मरसा" । कुटिञ्जरस्ताम्रमूलकम् । कुतुम्बको द्रोणपुष्पी । लट्वाको गुग्गुलुशाकम् । एडगजश्चक्रमर्दः । सुवर्चला—सूर्य मुखी" । २ सूप्यानि-चणकमुद्गादिपत्राणि । लक्ष्मणं लक्ष्मणा-पुत्रदामधुवा । ३ वर्षाभ्वौ रक्तश्वेतपुनर्नवे । ४ चिरि बिल्वः करंजः । ५ पत्तूरोमत्स्याक्षः । ६ कासमर्दः "कसौदी" ।

तन्मूलकं[1] दोषहरं लघु सोष्णं नियच्छति ।
गुल्मकासक्षयश्वासव्रणनेत्रगलामयान् ॥ १०२ ॥
स्वराग्निसादोदावर्तपीनसांश्च, महत्पुनः ।
रसे पाके च कटुकमुष्णवीर्यं त्रिदोषकृत् ॥ १०३ ॥
गुर्वभिष्यंदि च, स्निग्धस्विन्नं [2]तदपि वातजित् ।
वातश्लेष्महरं शुष्कं सर्वम्, आमं तु दोषलम् ॥ १०४ ॥

पिण्डालु गुणाः—

कट्वष्णो वातकफहा पिंडालुः[3] पित्तवर्धनः ।

कुठेरादि गुणाः—

[4]कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणम् ॥ १०५ ॥
फणिज्जार्जकजंबीरप्रभृति ग्राहि शालनम् ।
विदाहि कटु रूक्षोष्णं हृद्यं दीपनरोचनम् ॥ १०६ ॥
दृक्शुक्रकृमिहृत्तीक्ष्णं दोषोत्क्लेशकरं लघु ।

सुरस गुणाः—

हिध्मकासश्रमश्वासपार्श्वरुक्पूतिगंधहा ॥ १०७ ॥
सुरसः, सुमुखो नातिविदाही गरशोफहा ।
आर्द्रिका तिक्तमधुरा मूत्रला न च पित्तकृत् ॥ १०८ ॥

लशुन गुणाः—

लशुनो भृशतीक्ष्णोष्णः कटुपाकरसः सरः ।
हृद्यः केश्यो गुरुर्वृष्यः स्निग्धो रोचनदीपनः ॥ १०९ ॥
भग्नसंधानकृद्बल्यो रक्तपित्तप्रदूषणः ।
किलासकुष्ठगुल्मार्शोमेहक्रिमिकफानिलान् ॥ ११० ॥
सहिध्मपीनसश्वासकासान् हंति रसायनम् ।

---

१ तन्मूलकं बालादिगुणयुक्तं मूलकम् । २ तदपि-महन्मूलकमपि । सर्वं-लघु-महच्च । ३ पिंडालुः-"आलू" । वाराही कन्द इति हेमाद्रिः । ४ कुठेरः-वन-तुलसी । शिग्रुः शोभाञ्जनः । सुरसस्तुलसी । सुमुखः कुठेरभेदः । आसुरी राजिका । शालनमवदंशो येन सहान्नं भोक्तुंयुज्यते । आर्द्रिका-आर्द्रधान्यकम् ।

पलाण्डु गुणाः—

[1]पलांडुस्तद्गुणन्यूनः श्लेष्मलो नाऽतिपित्तलः ॥ १११ ॥
कफवातार्शसां पथ्यः स्वेदेऽभ्यवहृतौ तथा ।

गृंजनक गुणाः—

तीक्ष्णो [2]गृंजनको ग्राही पित्तिनां हितकृन्न सः ॥ ११२ ॥
दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ।
विशेषादर्शसां पथ्यः, [3]भूकंदस्त्वतिदोषलः ॥ ११३ ॥

पत्रादीनां यथोत्तरं गुरुत्वम्—

पत्रे पुष्पे फले नाले कंदे च गुरुता क्रमात् ।

वरावरत्वे—

वरा शाकेषु जीवंती, सर्षपास्त्ववराः परम् ॥ ११४ ॥

फलवर्गः—

द्राक्षा[4] फलोत्तमा वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविट् ।
स्वादुपाकरसा स्निग्धा सकषाया हिमा गुरुः ॥ ११५ ॥
निहंत्यनिलपित्तास्रतिक्तास्यत्वमदात्ययान् ।
तृष्णाकासश्रमश्वासस्वरभेदक्षतक्षयान् ॥ ११६ ॥

दाडिम गुणाः—

[4]उद्रिक्तपित्तान् जयति त्रीन् दोषान् स्वादु दाडिमम् ।
पित्ताविरोधि नात्युष्णमम्लं वातकफापहम् ॥ ११७ ॥
सर्वं हृद्यं लघु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम् ।

मोचादि गुणाः—

[5]मोचखर्जूरपनसनालिकेरपरूषकम् ॥ ११८ ॥
[6]आम्रातसतालकाश्मर्यराजादनमधूकजम् ।

---

१ पलाण्डुः 'प्याज' हि० । २ गृंजनकः 'गाजर' हि० । ३ भूकन्दः, अरुवी, घुइयाँ । ४ द्राक्षा मुनक्का किशमिश । ४ उद्रिक्तपित्तान् पित्ताधिकान् त्रीन्दोषान् । ५ मोचः "केला" पनसः "कटहर" । नालिकेरः "नारियल" । परूषकं "फालसा" । ६ आम्रातः "आमड़ा" । राजादनं "खिरनी" ।

[1]सौवीरबदराङ्कोल्लफल्गुश्लेष्मातकोद्भवम् ॥ ११९ ॥
वातामाभिषुकाक्षोडमुकूलकनिकोचकम् ।
उरुमाणं प्रियालं च बृंहणं गुरु शीतलम् ॥ १२० ॥
दाहक्षतक्षयहरं रक्तपित्तप्रसादनम् ।
स्वादुपाकरसं स्निग्धं विष्टंभि कफशुक्रकृत् ॥ १२१ ॥
फलं तु पित्तलं तालं सरं काश्मर्यजं हिमम् ।
शकृन्मूत्रविबंधघ्नं केश्यं मेध्यं रसायनम् ॥ १२२ ॥
वातामाद्युष्णवीर्यं तु कफपित्तकरं सरम् ।
परं वातहरं स्निग्धमनुष्णं तु प्रियालजम् ॥ १२३ ॥
प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ।
कोलमज्जा गुणैस्तद्वत्तृट्छर्दिकासजिच्च सः ॥ १२४ ॥
पक्वं सुदुर्जरं बिल्वं दोषलं पूतिमारुतम् ।
दीपनं कफवातघ्नं बालं, [2]ग्राह्युभयं हि तत् ॥ १२५ ॥
कपित्थमामं कंठघ्नं दोषलं दोषघाति तु ।
पक्वं हिध्मावमथुजित्सर्वं[3] ग्राहि विषापहम् ॥ १२६ ॥
जांबवं गुरु विष्टंभि शीतलं भृशवातलम् ।
संग्राहि मूत्रशकृतोरकंठ्यं कफपित्तनुत् ॥ १२७ ॥

आम्र गुणाः—

वातपित्तास्रकृद्बालं, बद्धास्थि कफपित्तकृत् ।
गुर्वाम्रं वातजित्पक्वं स्वाद्वम्लं कफशुक्रकृत् ॥ १२८ ॥
[4]वृक्षाम्लं ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्महरं लघु ।
[5]शम्या गुरूष्णं केशघ्नं रूक्षं, पीलु तु पित्तलम् ॥ १२९ ॥
कफवातहरं भेदि प्लीहार्शःकृमिगुल्मनुत् ।
सतिक्तं स्वादु यत्पीलु नात्युष्णं तत्त्रिदोषजित् ॥ १३० ॥

---

१ सौवीरं बदरभेदः। बदरं "बेर"। अङ्कोल्लं "ढेरा"। फल्गुः "कठूमर"। श्लेष्मातकः "लसोढा"। वातामं "बादाम"। अभिषुकः चिलगोजा, अक्षोडः, "अखरोट"। मुकूलकोदन्तीफलम्। निकोचम् "पिस्ता"। उरुमाणं स्निग्ध फलम्, प्रियालं "चिरोंजी"। २ उभयं–बालंपक्वञ्च। ३ सर्वमामं पक्वं च। ४ वृक्षाम्लं "विषांविल"। ५ शम्या 'अमलतास' हि०।

त्वक्तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुङ्गस्य[1] वातजित् ।
बृंहणं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ॥ १३१ ॥
लघु तत्केसरं कासश्वासहिध्मामदात्ययान् ।
आस्यशोषानिलश्लेष्मविबंधच्छर्द्यरोचकान् ॥ १३२ ॥
गुल्मोदरार्शःशूलानि मंदाग्नित्वं च नाशयेत् ।

भल्लातकगुणाः—

भल्लातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम् ॥ १३३ ॥
[2]तदस्थ्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम् ।
स्वाद्वम्लं शीतमुष्णं च द्विधा पालेवतं गुरु ॥ १३४ ॥
रुच्यमत्यग्निशमनं रुच्यं मधुरमारुकम्[3] ।
पक्वमाशु जरां याति नात्युष्णं गुरु दोषलम् ॥ १३५ ॥

द्राक्षादिगुणाः—

द्राक्षा [4]परूषकं चार्द्रमम्लं पित्तकफप्रदम् ।
गुर्वुष्णवीर्यं वातघ्नं गरं च [5]करमर्दकम् ॥ १३६ ॥
तथाऽम्लं कोलकर्कंधूलकुचाम्रातमारुकम् ।

ऐरावतादिगुणाः—

[6]ऐरावतं दंतशठं सतूदं मृगलिण्डिकम् ॥ १३७ ॥
नातिपित्तकरं पक्वं शुष्कं च करमर्दकम् ॥

अम्लीकादिगुणाः—

दीपनं भेदनं शुष्कमम्लीकाकोलयोः फलम् ॥ १३८ ॥

---

१ मातुलङ्गं-'बिजौरानीबू' हि० । मांसंत्वक्केसरव्यतिरिक्तोऽवयवः ।

२ तदस्थि भल्लातकास्थि । पालेवतं तिन्दुकाकारिरैवतकाख्यम् । ३ आरुकं "आड़ू" ४ परूषकं 'फालसा' हि० । ५ करमर्दकं 'करोंदा' हि० । ६ ऐरावतं—'नारंगी' हि० । कोलः 'बड़ा बेर' कर्कन्धू 'छोटी बेर' । लकुचं 'बड़हर' हि० । आम्रातः 'आमड़ा' हि० । दन्तशठं 'जमीरी नीबू' हि० । तूदं—'महतूत' हि० ।

तृष्णाश्रमक्लमच्छेदि लघ्विष्टं कफवातयोः ।

लकुचस्यावरत्वम्—

फलानामवरं तत्र लकुचं सर्वदोषकृत् ॥ १३९ ॥

त्याज्यफलशाकनिर्देशः—

हिमानिलोष्णदुर्वातव्यालालादिदूषितम् ।
जंतुजुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्तवम् ॥ १४० ॥
अन्यधान्ययुतं हीनवीर्यं जीर्णतयाऽपि च ।
धान्यं त्यजेत्तथा, शाकं रूक्षसिद्धमकोमलम् ॥ १४१ ॥
असंजातरसं तद्वच्छुष्कं, चान्यत्र [1]मूलकात् ।
प्रायेण फलमप्येवं तथामं, बिल्ववर्जितम् ॥ १४२ ॥

लवणवर्गः—

विष्यंदि लवणं सर्वं सूक्ष्मं सृष्टमलं विदुः ।
वातघ्नं पाकि तीक्ष्णोष्णं रोचनं कफपित्तकृत् ॥१४३॥

सैन्धवगुणाः—

सैंधवं तत्र सस्वादु वृष्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ।
लघ्वनुष्णं दृशः पथ्यमविदाह्यग्निदीपनम् ॥ १४४ ॥

सौवर्चलगुणाः—

लघु सौवर्चलं हृद्यं सुगंध्युद्गारशोधनम् ।
कटुपाकं विबंधघ्नं दीपनीयं रुचिप्रदम् ॥ १४५ ॥

विडगुणाः—

ऊर्ध्वाधःकफवातानुलोमनं दीपनं बिडम् ।
विबंधानाहविष्टंभशूलगौरवनाशनम् ॥ १४६ ॥

सामुद्रगुणाः—

विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्मविवर्धनम् ।

---

१ मूलकं तु शुष्कमेववरम् ।

औद्भिदगुणाः—

सतिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम् ॥ १४७ ॥
कृष्णे सौवर्चलगुणा लवणे गन्धवर्जिताः ।
[1]रोमकं लघु पांसूत्थं सक्षारं श्लेष्मलं गुरु ॥ १४८ ॥
लवणानां प्रयोगे तु सैंधवादीन् प्रयोजयेत् ।

यवशूकजगुणाः—

गुल्महृद्ग्रहणीपाण्डुप्लीहानाहगलामयान् ॥ १४९ ॥
श्वासार्शःकफकासांश्च शमयेद्यवशूकजः[2] ।

क्षारगुणाः—

क्षारः सर्वश्च परमं तीक्ष्णोष्णः कृमिजिल्लघुः ॥ १५० ॥
पित्तासृग्दूषणः पाकी छेद्यहृद्यो विदारणः ।
अपथ्यः कटुलावण्याच्छुक्रौजःकेशचक्षुषाम् ॥ १५१ ॥

हिङ्गुगुणाः—

हिंगु वातकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ।
कटुपाकरसं रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ॥ १५२ ॥

हरीतकीगुणाः—

कषाया मधुरा पाके रूक्षा विलवणा[3] लघुः ।
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी परा ॥ १५३ ॥
उष्णवीर्या सराऽऽयुष्या बुद्धीन्द्रियबलप्रदा ।
कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ॥ १५४ ॥
शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्रोगकामलाग्रहणीगदान् ।
सशोषशोफातीसारमेदमोहवमिक्रिमीन् ॥ १५५ ॥
श्वासकासप्रसेकार्शःप्लीहानाहगरोदरम् ।
विबंधं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तंभमरोचकम् ॥ १५६ ॥

---

१ रोमकं पांसूत्थं लवणम् । २ यवशूकजः 'जवाखार'। ३ विलवणा लवणरहिता—पञ्चरसा ।

हरीतकी जयेद्व्याधींस्तांस्तांश्च कफवातजान् ।

आमलक गुणाः—

तद्वदामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् ॥ १५७ ॥

विभीतक गुणाः—

कटु पाके हिमं केश्य[1]मक्षमीषच्च तद्गुणम् ।

त्रिफला गुणाः—

इयं रसायनवरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा ॥ १५८ ॥
रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्रजित् ।

त्रिचतुर्जात गुणाः—

[2]सकेसरं चतुर्जातं, त्वक्पत्रैलं त्रिजातकम् ॥ १५९ ॥
पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं रूक्षं दीपनरोचनम् ।

मरिचगुणाः—

रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु ॥ १६० ॥
श्लेष्मला स्वादुशीताऽऽर्द्रा गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली ।
[3]सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धा वृष्या रसे कटुः ॥ १६१ ॥
स्वादुपाकाऽनिलश्लेष्मश्वासकासापहा सरा ।
न[4]तामत्युपयुञ्जीत रसायनविधिं विना ॥ १६२ ॥

नागर गुणाः—

[5]नागरं दीपनं वृष्यं ग्राहि हृद्यं विबंधनुत् ।
रुच्यं लघु स्वादुपाकं स्निग्धोष्णं कफवातजित् ॥ १६३ ॥

त्रिकटुक गुणाः—

[6]तद्वदार्द्रकमेतच्च त्र्यं त्रिकटुकं जयेत् ।
स्थौल्याग्निसदनश्वासकासश्लीपदपीनसान् ॥ १६४ ॥

---

१ अक्षं–'बहेरा'। २ केसरं 'नाग केसर'। ३ सा पिप्पली। ४ ताम्–पिप्पलीम्। ५ नागरं–'सोंठ' हि०। ६ तद्वत् नागरतुल्यगुणम्। आर्द्रकं 'अदरक' हि०। आर्द्रकं नागरजातीयमेव। एतत्त्रयं–मरिचपिप्पली नागराणि।

पञ्चकोल गुणाः—

[1]चविका पिप्पलीमूलं मरिचाल्लोत्तरं गुणैः ।
चित्रकोऽग्निसमः पाके शोफार्शःकृमिकुष्ठहा ॥ १६५ ॥
[2]पंचकोलकमेतच्च मरिचेन विना स्मृतम् ।
गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं दीपनं परम् ॥ १६६ ॥

बृहत्पञ्चमूल गुणाः—

[3]बिल्वकाश्मर्यतर्कारीपाटलाटुंटुकैर्महत् ।
जयेत्कषायतिक्तोष्णं पंचमूलं कफानिलौ ॥ १६७ ॥

ह्रस्वपंचमूल गुणाः—

[4]ह्रस्वं बृहत्यंशुमतीद्वयगोक्षुरकैः स्मृतम् ।
स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं सर्वदोषजित् ॥ १६८ ॥

मध्यमपंचमूल गुणाः—

[5]बलापुनर्नवैरंडशूर्पपर्णीद्वयेन तु ।
मध्यमं कफवातघ्नं नाऽतिपित्तकरं सरम् ॥ १६९ ॥

जीवनाख्यपंचमूल गुणाः—

[6]अभीरुवीराजीवंतीजीवकर्षभकैः स्मृतम् ।
जीवनाख्यं च चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ॥ १७० ॥

तृणपंचमूल गुणाः—

[7]तृणाख्यं पित्तजिद्दर्भकामेक्षुशरशालिभिः ।

---

१ चविका 'चाब' हि० । २ पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रक नागरैः पञ्चकोलम् । ३ काश्मर्यं 'खंभार' हि० । तर्कारी अग्निमन्थः 'अँगेथु' हि० । पाटला 'पाँडर' हि० । टुंटुकः स्योनाकः 'सोनापाढा' हि० । महत् पञ्चमूलम् । ४ बृहतीद्वयम् 'भटकटैया, 'वनभाँटा' हि० । अंशुमती द्वयं–शालपर्णी 'सरिवन', पिठवन हि० । ह्रस्वं–लघुपञ्चमूलम् । ५ शूर्पपर्णीद्वयं–माषपर्णी, मुद्गपर्णी । ६ अभीरुः शतावरी । वीरा क्षीरकाकोली । ७ दर्भः कुशः । दोषाः प्रसिद्धाः ।

अध्यायानुक्रमणिका—

सूर्कशिंबीजपक्वाममांसशाकफलौषधैः ॥ १७१ ॥
वर्गितैरन्नलेशोऽयमुक्तो नित्योपयोगिकः ।"

सप्तमोऽध्यायः ।

अगदःस्वस्थवृत्तविषयश्च—

अथातोऽन्नरक्षाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

राजसमीपेवैद्यस्थितिः—

"राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं[1] निवेशयेत् ।
सर्वदा स[2] भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृविः ॥ १ ॥

वैद्येन राजा रक्ष्यः—

अन्नपानं विषाद्रक्षेद्विशेषेण महीपतेः ।
योगक्षेमौ[3] तदायत्तौ धर्माद्या यन्निबंधनाः ॥ २ ॥

विषजुष्टौदन लक्षणम्—

ओदनो विषवान् सांद्रो यात्यविस्राव्यतामिव ।
चिरेण पच्यते, पक्वो भवेत्पर्युषितोपमः ॥ ३ ॥
मयूरकंठतुल्योष्मा मोहमूर्छाप्रसेककृत् ।
हीयते वर्णगंधाद्यैः क्लिद्यते चंद्रकाचितः ॥ ४ ॥

व्यञ्जनानां परीक्षा—

[4]व्यंजनान्याशु शुष्यंति [5]ध्यामक्वाथानि तत्र च ।

---

१ प्राणाचार्यं वैद्यम् । २ स प्राणाचार्यः । ३ अप्राप्तस्यप्राप्तिर्योगः, प्राप्तस्य-रक्षणं क्षेमः । तदायत्तौ राजाधीनौ । यन्निबन्धनाः योगक्षेमकारणकाः । ४ व्यञ्जनानि–सूपादीनि, दधितक्राम्लसंस्कृतानि च खाद्यानि । ५ ध्यामोमलिनः ।

हीनातिरिक्ता विकृता छाया दृश्यते नैव [१]वा ॥ ५ ॥
फेनोर्ध्वराजीसीमंत[२]तंतुबुद्बुदसंभवः ।

विषदूषितरसादि वर्णः—

विच्छिन्नविरसा रागाः खांडवाः शाकमामिषम् ॥ ६ ॥
नीला राजी रसे, ताम्रा क्षीरे, दधनि दृश्यते ।
श्यावा, पीताऽसिता तक्रे, घृते पानीयसन्निभा ॥ ७ ॥
काली मद्यांभसोः, क्षौद्रे हरित्तैलेऽरुणोपमा ।
पाकः फलानामामानां, पक्वानां परिकोथनम् ॥ ८ ॥
द्रव्याणामार्द्रशुष्काणां स्यातां म्लानिविवर्णते ।
मृदूनां कठिनानां च भवेत्स्पर्शविपर्ययः ॥ ६ ॥
माल्यस्य स्फुटिताग्रत्वं म्लानिर्गंधांतरोद्भवः ।
[३]ध्याममंडलता वस्त्रे शदनं तंतुपक्ष्मणाम् ॥ १० ॥
धातुमौक्तिककाष्ठाश्मरत्नादिषु मलाक्तता ।
स्नेहस्पर्शप्रभाहानिः सप्रभत्वं तु मृन्मये ॥ ११ ॥

विषदातुश्चिह्नम्—

विषदः श्यावशुष्कास्यो विलक्षो[४] वीक्षते दिशः ।
स्वेदवेपथुमांस्त्रस्तो भीतः स्खलति जृंभते ॥ १२ ॥

वह्नौ सविषस्यान्नस्यपरीक्षा—

प्राप्यान्नं सविषं त्वग्निरेकावर्तः स्फुटत्यति ।
शिखिकंठाभधूमार्चिरनर्चिरुग्रगंधवान् ॥ १३ ॥

मृगपक्षिद्वारापरीक्षा—

म्रियंते मक्षिकाः प्राश्य, काकः क्षामस्वरो भवेत् ।

---

१ नैव या दृश्यते छाया । मानवजातेः, तत्र व्यञ्जनकार्थे । २ सीमन्तो रेखा । ३ ध्याममण्डलता "धब्बा" हिन्दी । ४ विलक्षः—लज्जितः । दिशः समन्तात् ।

[1]उत्क्रोशंति च दृष्ट्वैतच्छुकदात्यूहसारिकाः ॥ १४ ॥
हंसः प्रस्खलति, ग्लानिर्जीवंजीवस्य जायते ।
चकोरस्याऽक्षिवैराग्यं, क्रौंचस्य स्यान्मदोदयः ॥ १५ ॥
कपोतपरभृद्दक्षचक्रवाका जहत्यसून् ।
उद्वेगं याति मार्जारः, शकृन्मुंचति वानरः ॥ १६ ॥
हृष्येन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा मंदतेजो भवेद्विषम् ।
इत्यन्नं विषवज्ज्ञात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः ॥ १७ ॥
यथा तेन विपद्येरन्नपि न क्षुद्रजंतवः ।

सविषान्नस्पर्शदोषाः—

स्पृष्टे तु कंडुदाहोषाज्वरार्तिस्फोटसुप्तयः ॥ १८ ॥
नखरोमच्युतिः शोफः, सेकाद्या विषनाशनाः ।
शस्तास्तत्र[2] प्रलेपाश्च[3] सेव्यचंदनपद्मकैः ॥ १९ ॥
ससोमवल्कतालीसपत्रकुष्ठामृतानतैः ।

सविषेऽन्नेमुखप्राप्ते दोषाः—

लालाजिह्वौष्ठयोर्जाड्यमूषा[4] चिमिचिमायनम् ॥ २० ॥
दंतहर्षो रसाज्ञात्वं हनुस्तंभश्च वक्त्रगे ।
सेव्याद्यैस्तत्र गंडूषाः सर्वं च विषजिद्धितम् ॥ २१ ॥

आमाशयगतेदोषाः—

आमाशयगते स्वेदमूर्च्छाध्मानमदभ्रमाः ।
रोमहर्षो वमिर्दाहश्चक्षुर्हृदयरोधनम् ॥ २२ ॥
बिंदुभिश्चाचयोऽङ्गानां, पक्वाशयगते पुनः ।
अनेकवर्णं वमति मूत्रयत्यतिसार्यते ॥ २३ ॥
तंद्रा कृशत्वं पांडुत्वमुदरं बलसंक्षयः ।

---

१ उत्क्रोशन्ति—उच्चैः शब्दं कुर्वन्ति । सारिका 'मैना' हि० । परभृत्—कोकिलः । २ तत्र विषस्पर्शज्ञातेषु कण्ड्वादिरोगेषु । ३ सेव्यं 'खश' हि० । पद्मकं 'पद्माख' हि० । सोमवल्कः कट्फलमिति हेमाद्रिः । नतं तगरम् । ४ ऊषा दाहः ।

भुक्त विषस्यौषधम्—

[1]तयोर्वांतविरिक्तस्य हरिद्रे कटभीं गुडम् ॥ २४ ॥
सिंदुवारितनिष्पावबाष्पिकाशतपर्विकाः ।
तंडुलीयकमूलानि कुक्कुटांडमयल्गुजम् ॥ २५ ॥
नावनांजनपानेषु योजयेद्विषशांतये ।
विषभुक्ताय दद्याच्च शुद्धायोर्ध्वमधस्तथा ॥ २६ ॥
सूक्ष्मं ताम्ररजः काले सक्षौद्रं हृद्विशोधनम् ।

हेमपाने विषबाधाभावः—

शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् ॥ २७ ॥
न सज्जते हेमपांगे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ।
जायते विपुलं चायुर्गरेऽप्येष विधिः स्मृतः ॥ २८ ॥

विरुद्धाहारस्य गरतुल्यता—

विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम् ।

विरुद्धाहारकथनम्—

आनूपमामिषं माषक्षौद्रक्षीरविरूढकैः[2] ॥ २९ ॥
विरुध्यते सह बिसैर्मूलकेन गुडेन वा ।
विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः ॥ ३० ॥

दुग्धेनाम्लद्रव्यविरोधः—

विरुद्धमम्लं पयसा सह सर्वं फलं तथा ।
[3]तद्वत्कुलत्थवरककंगुवल्लमकुष्ठकाः ॥ ३१ ॥
भक्षयित्वा हरितकं [4]मूलकादि पयस्त्यजेत् ।
वाराहं श्वाविधा नाद्याद्घ्ना पृषतकुक्कुटौ ॥ ३२ ॥

---

१ तयोरामपक्वाशयगतयोर्विषयोः । कटभी—'मालकांगुनी' गिरिकर्णिका वा । सिंदुवारितो निर्गुण्डी । बाष्पिका—हिंगुपत्र । शतपर्विका वचा । २ विरूढक-मङ्कुरितं धान्यम् । ३ तद्वत्-फलवत्पयसा सह विरुद्धा इत्यर्थः । कुलत्थः 'कुरथी' वरकः 'वरें' कंगु: 'ककुनी' वल्लो निष्पावः । मकुष्ठकः मोठ, 'मोथी' हि० । ४ हरितकं मूलकं न पुनर्मूलकशाकम् ।

[1]आममांसानि पित्तेन, माषसूपेन मूलकम् ।
अविं कुसुम्भशाकेन, बिसैः सह विरूढकम् ॥ ३३ ॥
माषसूपगुडक्षीरदध्याज्यैर्लाकुचं फलम् ।
फलं कदल्यास्तक्रेण दध्ना तालफलेन वा ॥ ३४ ॥
[2]कणोपणाभ्यां मधुना काकमाची गुडेन वा ।
सिद्धां वा मत्स्यपचने, पचने नागरस्य वा ॥ ३५ ॥
सिद्धामन्यत्र वा पात्रे कामात्तामुषितां निशाम् ।
[3]मत्स्यनिस्तलनस्नेहसाधिताः पिप्पलीस्त्यजेत् ॥ ३६ ॥
कांस्ये दशाहमुषितं सर्पिरुष्णं त्वरुष्करे[4] ।
भासो विरुध्यते शूल्यः कंपिल्लस्तक्रसाधितः ॥ ३७ ॥
ऐकध्यं पायसमुराकृशराः परिवर्जयेत् ।

तुल्यप्रमाणमध्वादेर्मिथोविरोधः—

मधुमर्पिर्वसातैलपानीयानि द्विशस्त्रिशः ॥ ३८ ॥
[5]एकत्र वा समांशानि विरुध्यंते परस्परम् ।
भिन्नांशे अपि मध्वाज्ये दिव्यवार्यनुपानतः ॥ ३९ ॥
मधुपुष्करबीजं च, [6]मधुमैरेयशार्करम् ।
मंथानुपानः क्षैरेयो, हारिद्रः कटुतैलवान् ॥ ४० ॥
उपोदकातिसाराय तिलकल्केन साधिता ।
बलाका वारुणीयुक्ता कुल्माषैश्च विरुध्यते ॥ ४१ ॥
भृष्टा वराहवसया सैव[7] सद्यो निहंत्यसून् ।
[8]तद्वत्तित्तिरिपत्राढ्यगोधालावकपिंजलाः ॥ ४२ ॥

---

१ आममपक्वम् । २ कणा–पिप्पली, उपणं मरिचम्, काकमाची–'मकोय' हि० । मत्स्याः पच्यन्ते यस्मिन् पात्रे तस्मिन् मत्स्यपचने । ३ मत्स्या निस्तल्यन्ते भृज्यन्ते येन स्नेहेन । ४ अरुष्करं 'भिलावा' हि० । ५ एकत्र वा सर्वाणि । ६ मधु-मृद्वीकाकृतं, मैरेयं खर्जूरासवः, शार्करं शर्कराप्रधानंमद्यमेकत्रपीतं विरुध्यते । क्षैरेयो दुग्धकृतः पदार्थः । हारिद्रः पीतवर्णसर्पच्छत्रानुकारीशाकविशेषः । ७ सा-बलाका । कुल्माषः 'घुघुरी' हिन्दी । ८ तद्वत्–बलाकावत्सद्यो मारयति ।

[1]ऐरंडेनाग्निना सिद्धास्तत्तैलेन विमूर्छिताः ।
हारीतमांसं हारिद्रशूलकप्रोतपाचितम् ॥ ४३ ॥
हारिद्रवह्निना सद्यो व्यापादयति जीवितम् ।
भस्मपांशुपरिध्वस्तं [2]तदेव च समाक्षिकम् ॥ ४४ ॥

संक्षेपेणविरुद्धलक्षणंतच्चिकित्साच—

यत्किंचिद्दोषमुत्क्लेश्य न हरेत्तत्समासतः ।
विरुद्धं, शुद्धिरत्रेष्टा शमो वा तद्वि[3]रोधिभिः ॥ ४५ ॥
द्रव्यैस्तैरेव वा पूर्वं शरीरस्याऽभिसंस्कृतिः ।

व्यायामादिहेतोविरुद्धमपीडाकरम्—

व्यायामस्निग्धदीप्ताग्निवयःस्थबलशालिनाम् ॥ ४६ ॥
विरोध्यपि न पीडायै सात्म्यमल्पं च भोजनम् ।

पथ्यापथ्यसेवनत्यागप्रकारः—

पादेनापथ्यमभ्यस्तं पादपादेन वा त्यजेत् ॥ ४७ ॥

हितसेवनम्—

निषेवेत हितं तद्वदेक[3]द्वित्र्यंतरीकृतम् ।
अपथ्यमपि हि त्यक्तं शीलितं पथ्यमेव वा ॥ ४८ ॥
सात्म्यासात्म्यविकाराय जायते सहसाऽ[4]न्यथा ।

---

१ पत्राड्योमयूरः । तत्तैलेन एरण्डतैलेन । २ तदेव—हारीतमांसम् । ३ तद्विरोधिभिः—विरुद्धद्रव्यकुपितदोषाणां विरोधिभिरौषधैः शमः । पादपादेन—षोडशांशेन । तद्वत्—पादेन पादपादेन वा एकश्च द्वौच त्रयश्च तैरन्तरीकृतमेकद्वित्रिभिरन्नकालैर्व्यवधानं कृत्वा । यथा—अभ्यस्तस्य कस्यचिदपथ्यस्यैकपादंत्यक्त्वाऽनभ्यस्तस्यहितस्य पादं सेवेत । एवमपथ्यं त्यक्तं पथ्यंचनिषेवितं भवति । एवमेकेनान्नकालेनापथ्यपादोऽन्तरीकृतः । ततोद्वितीयेऽन्नकाले सर्वमपथ्यं सेव्यं । तृतीये अपथ्यस्य पादद्वयं परित्यज्य पथ्यस्य पादद्वयं सेव्यम् । चतुर्थेपञ्चमे च सर्वमपथ्यं सेव्यम् । एवं पादद्वयमन्नकालद्वयेनान्तरीकृतम् । ततः षष्ठेऽन्नकालेऽपथ्यस्य पादं पथ्यस्य च पादत्रयं सेव्यम् । सप्तमाष्टनवमकालेषु सर्वमपथ्यमुपयोज्यमेवमन्नकालत्रयेणान्तरीकृतम् पथ्यम् । ततोदशमकालादारभ्य सर्वपथ्यमेव सेवनीयम् । एवमेव पादपादेनापि अयमेव क्रमः । ४ अन्यथा—सहसा—पादपादादिक्रममविविच्य, अन्यथा—विधिप्रतिकूलम् ।

क्रमादपथ्यत्यागपथ्यस्वीकाराभ्यां गुणाः—

क्रमेणापचिता दोषाः क्रमेणोपचिता गुणाः ॥ ४९ ॥
नाप्नुवंति पुनर्भावमप्रकंप्या भवंति च ।

अहिताहारत्यागः—

अत्यंतसन्निधानानां दोषाणां दूषणात्मनाम् ॥ ५० ॥
अहितैर्दूषणं भूयो न विद्वान् कर्तुमर्हति ।

आहारादिभिः शरीरधारणम्—

आहारशयनाब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः ॥ ५१ ॥
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ।
आहारो वर्णितस्तत्र तत्र तत्र च वक्ष्यते ॥ ५२ ॥

निद्रा गुणाः—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम् ।
[1]वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ॥ ५३ ॥

दुष्टनिद्रानिर्देशः—

अकालेऽतिप्रसंगाच्च, न च निद्रा निषेविता ।
सुखायुषी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवाऽपरा ॥ ५४ ॥

जागरणगुणाः—

रात्रौ जागरणं रूक्षं, स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा ।
अरूक्षमनभिष्यंदि त्वासीन[2]प्रचलायितम् ॥ ५५ ॥

दिनशयन कथनम्—

ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्यरात्र्यल्पभावतः ।
दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन्कफपित्तकरो हि [3]सः ॥ ५६ ॥

---

१ वृषता—पुंस्त्वम् । न च जीवितम् । २ आसीनस्य उपविष्टस्य प्रचलायितं घूर्णनम् मनुगर्वया प्रस्वपनम् । ३ स दिवास्वप्नः, अन्यस्मिन् ग्रीष्मातिरिक्तकाले ।

[1]मुक्त्वा तु भाष्ययानाध्वमद्यस्त्रीभारकर्मभिः ।
क्रोधशोकभयैः क्लांतान् श्वासहिध्मातिसारिणः ॥ ५७ ॥
वृद्धबालाबलक्षीणक्षततृट्शूलपीडितान् ।
अजीर्णाभिहतोन्मत्तान् दिवास्वप्नोचितानपि ॥ ५८ ॥
धातुसाम्यं तथा[2] ह्येषां श्लेष्मा चाऽङ्गानि पुष्यति ।
बहुमेदःकफाः स्वप्युः स्नेहनित्याश्च नाऽहनि ॥ ५९ ॥
विषार्तः कंठरोगी च नैव[3] जातु निशास्वपि ।

अकालशयनान्मोहादयः—

अकालशयनान्मोहज्वरस्तैमित्यपीनसाः ॥ ६० ॥
शिरोरुक्शोफहृल्लासस्रोतोरोधाग्निमंदता ।

तत्रचिकित्सा—

तत्रोपवासवमनस्वेदनावनमौषधम् ॥ ६१ ॥

अतिनिद्राचिकित्सा—

योजयेदतिनिद्रायां तीक्ष्णं प्रच्छर्दनांजनम् ।
नावनं लंघनं चिंतां व्यवायं शोकभीक्रुधः ॥ ६२ ॥
एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ।

निद्रानाशजन्यरोगाः—

निद्रानाशादंगमर्दशिरोगौरवजृंभिकाः ॥ ६३ ॥
जाड्यं ग्लानिभ्रमा[4]पक्तितंद्रारोगाश्च वातजाः ।
यथाकालमतो निद्रां रात्रौ सेवेत [5]सात्म्यतः ॥ ६४ ॥
[6]असात्म्याज्जागरादर्धं प्रातः स्वप्यादभुक्तवान् ।

मन्दनिद्रायाश्चिकित्सा—

शीलयेन्मंदनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान् दधि ॥ ६५ ॥

---

१ मुक्त्वा वर्जयित्वा । दिवास्वप्नोचितानभ्यस्तदिवास्वप्नान् । २ एषां ग्रीष्मभिन्नसमयेऽपि दिवास्वप्नो हित एवेत्यर्थः । तथा दिवास्वप्नेन । ३ निशास्वपि जातुकदाचिदपि नैव शयीत । ४ अपक्तिरन्नादेरपाकः । ५ सात्म्यतः प्रहरद्वयं त्रयं वा । ६ असात्म्यात् निद्रासेवनोचितकालात् ।

निद्राकरप्रयोगाः—

अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमूर्धकर्णाक्षितर्पणम् ।
[1]कांताबाहुलताश्लेषो, [2]निर्वृतिः, कृतकृत्यता ॥ ६६ ॥
मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ।
ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः ॥ ६७ ॥
निद्रा संतोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते ।

मैथुनविधिः—

ग्राम्यधर्मे त्यजेन्नारीमनु[3]त्तानां रजस्वलाम् ॥ ६८ ॥
अप्रियामप्रियाचारां दुष्टसंकीर्णमेहनाम् ।
अतिस्थूलकृशां सूतां गर्भिणीमन्ययोषितम् ॥ ६९ ॥
[4]वर्णिनीमन्ययोनिं च गुरुदेवनृपालयम् ।
चैत्यश्मशानाऽऽयतनचत्वरांबुचतुष्पथम् ॥ ७० ॥
[5]पर्वाण्यनंगं दिवसं शिरोहृदयताडनम् ।
अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् दुःस्थिताङ्गः पिपासितः ॥ ७१ ॥
बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ।
सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतां[6] हिमे ॥ ७२ ॥
त्र्यहाद्वसंतशरदोः, पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ।
भ्रमक्लमोरुदौर्बल्यबलधात्विंद्रियक्षयः ॥ ७३ ॥
अपर्वमरणं च स्यादन्यथा[7] गच्छतः स्त्रियम् ।

---

१ आश्लेष आलिङ्गनम् नतु मैथुनम् । २ निर्वृतिः शान्तचित्तता । ग्राम्यसुखे मैथुने निस्पृहं चेतोयस्य तस्य । ३ अनुत्तानांत्यजेदुत्ताना तु भजेत् । दुष्टं रोगमला-दिभिः, संकीर्णं संकोचयुक्तं च मेहनं योनिर्यस्यास्ताम् । ४ वर्णिनी ब्रह्मचारिणीम् । अन्ययोनिमजाश्वामहिष्यादियोनिम् । आयतनं दुष्टनिग्रहस्थानम् । ५ पर्वाणि संक्रान्त्यादिपर्वदिनम् । अनंङ्गं—अङ्गंयोनिस्तद्भिन्नमङ्गं यथा गुदमुखादीनि । ६ वाजीकृतां वाजीकरणैरुपबृंहितः । ७ अन्यथा उक्तविधेरन्येनप्रकारेण । अपर्वमरणमकालमरणम् ।

स्त्रीसंयमिनोगुणाः—

स्मृतिमेधायुरारोग्यपुष्टीद्रियमशोबलैः ।
[1]अधिका मंदजरसो भवंति स्त्रीषु संयताः ॥ ७४ ॥

रतान्तेसेव्यानि—

[2]स्नानानुलेपनहिमानिलखंडखाद्य-
शीतांबुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः ।
सेवेत चानुशयनं विरतो रतस्य
तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ७५ ॥

राज्ञा स्वदेहरक्षा वैद्याधीना कार्या—

श्रुतचरितसमृद्धे कर्मदक्षे दयालौ
भिषजि [3]निरनुबंधं देहरक्षां निवेश्य ।
भवति विपुलतेजः स्वास्थ्यकीर्तिप्रभावः
स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायु ॥ ७६ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

स्वस्थवृत्तम् —

अथातो मात्राशितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

परिमितभक्षणम्

"मात्राशी सर्वकालं, स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ।
मात्रां द्रव्याण्यपेक्षंते गुरूण्यपि लघून्यपि ॥ १ ॥

---

१ स्मृत्यादिभिरधिकाः । २ रतान्ते स्नानादीन् यथोचितं सेवेत । खण्ड-खाद्यम् मिताढ्यभदवान् । तस्य—स्नानादिसेविनः पुरुषस्य । धाम तेजो बल मितियावत् । ३ निरनुबन्धं निःसंशयम् । स्वकुशलफलभोगी आत्मीयश्रेष्ठ-फलभोगवान् ।

गुरुलघुमात्रा कथनम्—

गुरूणामर्धसौहित्यं[1] लघूनां नातितृप्तता ।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥ २ ॥

अल्पभोजन निषेधः—

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

अतिभोजनदोषाः—

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।
[2]पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः ॥ ३ ॥

दोषप्रकोपेविषूचिकाद्युत्पत्तिः—

आमेनान्नेन दुष्टेन तदे[3]वाविश्य कुर्वते ।
विष्टंभयंतोऽलसकं, च्यावयंतो विषूचिकाम् ॥ ५ ॥
अधरोत्तरमार्गाभ्यां सहसैवाजितात्मनः ।

अलसक निर्वचनम्—

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ॥ ६ ॥
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ।

विषूचिकानिर्वचनम्—

विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ॥ ७ ॥
सूचीभिरिव गात्राणि विध्यतीति विषूचिका ।
तत्र शूलभ्रमाऽऽनाहकम्पस्तंभादयोऽनिलात् ॥ ८ ॥
पित्ताज्ज्वरातिसारांतर्दाहतृट्प्रलयादयः ।
कफाच्छर्द्यंगगुरुतावाक्संगष्ठीवनादयः ॥ ९ ॥

---

१ सौहित्यं तृप्तिः । २ पीड्यमानाविबद्ध्यमानाः । तेन दुष्टेनापक्काहारेण । ३ तदेव दुष्टमन्नम् । विष्टम्भयन्तः स्रोतःसुरुन्धानाः । च्यावयन्तः पातयन्तः । ४ भ्रमादय इत्यत्रादिशब्देनाङ्गोद्वेष्टनमुखशोषादिग्रहः । प्रलयोमूर्च्छा अत्रादिशब्देन मदादिग्रहणम् । ष्ठीवनादय इत्यत्रादिना क्षवथ्वादानां ग्रहणम् ।

अलसकलक्षणम्—

विशेषाद्दुर्बलस्याऽल्पवह्नेर्वेगविधारिणः ।
पीडितं मारुतेनान्नं श्लेष्मणा रुद्धमंतरा ॥ १० ॥
अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम् ।
शूलादीन्कुरुते तीव्रांश्छर्द्यतीसारवर्जितान् ॥ ११ ॥

दण्डालसकलक्षणम्—

सोऽलसः, अत्यर्थदुष्टास्तु दोषा दुष्टाम[1]बद्धखाः ।
यांतस्तिर्यक्तनुं सर्वां दंडवत्स्तंभयंति चेत् ॥ १२ ॥
दंडकालसकं नाम तं त्यजेदाशुकारिणम् ।

आमविषनिर्देशः—

विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विषलक्षणम् ॥ १३ ॥
आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ।
विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्र[2]मत्वतः ॥ १४ ॥

अलसकोपक्रमनिर्देशः—

अथाऽऽममलसीभूतं साध्यं त्वरितमु[3]ल्लिखेत् ।
पीत्वा सोग्रापटुफलं वार्युष्णं, योजयेत्ततः ॥ १५ ॥
स्वेदनं, फ[4]लवर्तिं च मलवातानुलोमनीम् ।
नाम्यमानानि चांगानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत् ॥ १६ ॥

विषूच्या उपचारः—

विसूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
तदहश्चोपवास्यैनं विरिक्तवदुपाचरेत् ॥ १७ ॥

---

१ दुष्टेन—आमेन बद्धानि खानि स्रोतांसि यैर्दोषैस्ते । २ विपरीतोपक्रम आमेचोष्णोपक्रम इति विरुद्धोपक्रमता । ३ उल्लिखेत् वमेत् । उग्रा-वचा । पटुर्लवणम् । फलं 'मैनफर' इति हिन्दी । ४ फलवर्तिं तत्प्रयोगो यथा—विपाच्य मूत्राम्लमधूनि दन्तीपिण्डीतकृष्णा बिडधूमकुष्ठैः । वर्तिकराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे दजानाहहरीं विदध्यात् ।

गुरुलघुमात्रा कथनम्—

गुरुणामर्धसौहित्यं[1] लघूनां नातितृप्तता ।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥ २ ॥

अल्पभोजन निषेधः--

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयोजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

अतिभोजनदोषाः--

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।
[2]पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः ॥ ३ ॥

दोषप्रकोपेविषूचिकाद्युत्पत्तिः—

आमेनान्नेन दुष्टेन तदे[3]वाविश्य कुर्वते ।
विष्टंभयंतोऽलसकं, च्यावयंतो विषूचिकाम् ॥ ५ ॥
अधरोत्तरमार्गाभ्यां सहसैवाजितात्मनः ।

अलसक निर्वचनम्—

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ॥ ६ ॥
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ।

विषूचिकानिर्वचनम्—

विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ॥ ७ ॥
सूचीभिरिव गात्राणि विध्यतीति विषूचिका ।
तत्र शूल[4]भ्रमाऽनाहकम्पस्तंभादयोऽनिलात् ॥ ८ ॥
पित्ताज्ज्वरातिसारांतर्दाहतृट्प्रलयादयः ।
कफाच्छर्द्यंगगुरुतावाक्संगष्ठीवनादयः ॥ ९ ॥

---

१ सौहित्यं तृप्तिः । २ पीड्यमानाविबद्ध्यमानाः । तेन दुष्टेनापक्वाहारेण । ३ तदेव दुष्टमन्नम् । विष्टम्भयन्तः स्रोतःसुरुन्धानाः । च्यावयन्तः पातयन्तः । ४ भ्रमादय इत्यत्रादिशब्देनाङ्गोद्वेष्टनमुखशोषादिग्रहः । प्रलयोमूर्च्छा अत्रादि-शब्देन मदादिग्रहणम् । ष्ठीवनादय इत्यत्रादिना क्षवथ्वादानां ग्रहणम् ।

अलसकलक्षणम्—

विशेषाद्दुर्बलस्याल्पवह्नेर्वेगविधारिणः ।
पीडितं मारुतेनान्नं श्लेष्मणा रुद्धमन्तरा ॥ १० ॥
अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम् ।
शूलादीन्कुरुते तीव्रांश्छर्द्यतीसारवर्जितान् ॥ ११ ॥

दण्डालसकलक्षणम्—

सोऽलसः, अत्यर्थदुष्टास्तु दोषा दुष्टाम[1]बद्धखाः ।
यान्तस्तिर्यक्तनुं सर्वां दंडवत्स्तंभयंति चेत् ॥ १२ ॥
दंडकालसकं नाम तं त्यजेदाशुकारिणम् ।

आमविषनिर्देशः—

विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विषलक्षणम् ॥ १३ ॥
आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ।
विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्र[2]मत्वतः ॥ १४ ॥

अलसकोपक्रमनिर्देशः—

अथाऽऽममलसीभूतं साध्यं त्वरितमु[3]ल्लिखेत् ।
पीत्वा सोग्रापटुफलं वार्युष्णं, योजयेत्ततः ॥ १५ ॥
स्वेदनं, फ[4]लवर्तिं च मलवातानुलोमनीम् ।
नाम्यमानानि चाङ्गानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत् ॥ १६ ॥

विसूच्या उपचारः—

विसूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
तदहश्चोपवास्यैनं विरिक्तवदुपाचरेत् ॥ १७ ॥

---

१ दुष्टेन—आमेन बद्धानि खानि स्रोतांसि यैर्दोषैस्ते । २ विपरीतोपक्रम आमे चोष्णोपक्रम इति विरुद्धोपक्रमता । ३ उल्लिखेत् वमेत् । उग्रा-वचा । पटुर्लवणम् । फलं 'मैनफर' इति हिन्दी । ४ फलवर्ति तत्प्रयोगो यथा—विपाच्य मूत्राम्लमधुनि दन्तीपिण्डीतकृष्णा विडधूमकुष्ठैः । वर्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात् ।

अजीर्णेऔषधनिषेधः—

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
आम[1]सन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ १८ ॥
निहन्यादपि चैते[2]षां विभ्रमः सहसाऽऽतुरम् ।

अजीर्णेकदौषधंयुञ्जीत—

जीर्णाशने तु भैषज्यं युंज्यात् स्तब्धगुरूदरे ॥ १९ ॥
दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः संधुक्षणाय च ।

आमविकारशान्तिः—

शांतिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात् ॥ २० ॥
त्रिविधं त्रिविधे दोषे [3]तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ।
तत्राऽल्पे लंघनं पथ्यं, मध्ये लंघनपाचनम् ॥ २१ ॥
प्रभूते शोधनं तद्धि मूलादुन्मूलयेन्मलान् ।

अन्यव्याधिचिकित्सा—

एवमन्यानपि व्याधीन् स्वनिदानविपर्ययात् ॥ २२ ॥
चिकित्सेदनु[4]बंधे तु सति हेतुविपर्ययम् ।
त्यक्त्वा, यथायथं वैद्यो युंज्याद्व्याधिविपर्ययम् ॥ २३ ॥
[5]तदर्थकारि वा, पक्वे दोषे त्विद्धे च पावके ।
हितमभ्यंजनस्नेहपानबस्त्यादियुक्तितः ॥ २४ ॥

आमाजीर्णलक्षणम्—

अजीर्णं च कफा[6]दामं तत्र शोफोऽक्षिगंडयोः ।

---

१ आममन्न आमेनमन्दीभूतः । २ एतेषा—दोषौषधाशनानाम् । विभ्रमो विकारः । ३ तदनतर्पणमुपवासः । ४ अनुबन्धे व्याधावशान्ते, हेतुविपर्ययं त्यक्त्वा व्याधिविपर्ययं—यथा प्रमेहे हरिद्रा, कुष्ठे खदिरमित्यादिरूपं युञ्ज्यादित्यर्थः । ५ ताभ्यां—निदानव्याधिविपर्ययाभ्यामौषधाभ्यामसाध्यमर्थं—रोगशान्तिरूपं कर्तुंशीलं यस्य तत् तदर्थकारि—यथा वमने वमनम् । ६ कफात्—आममामाख्यमजीर्णम् ।

सद्यो भुक्त इवोद्गारः प्रसेकोत्क्लेशगौरवम् ॥ २५ ॥

विष्टब्धाजीर्णलक्षणम्—

विष्टब्धमनिलाच्छूलविबंधाध्मानसादकृत् ।

विदग्धाजीर्णलक्षणम्—

पित्ताद्विदग्धं[१] तृण्मोहभ्रमाम्लोद्गारदाहकृत् ॥२६॥

अजीर्ण चिकित्सा—

लंघनं कार्यमामे, तु विष्टब्धे स्वेदनं भृशम् ।

विदग्धे वमनं, यद्वा यथावस्थं हितं भजेत् ॥ २७ ॥

विलम्बिकालक्षणम्—

गरीयसो भवेल्लीनादामादेव विलंबिका ।

कफवातानुबद्धाऽऽमलिंगा त[२]त्समसाधना ॥ २८ ॥

रसाजीर्णलक्षणम्—

अश्रद्धा हृद्व्यथा शुद्धेऽप्युद्गारे रसशेषतः ।

शयीत किंचिदेवात्र[३] सर्वश्चानशितो दिवा ॥ २९ ॥

स्वप्यादजीर्णी, संजातबुभुक्षोऽद्यान्मितं लघु ।

सामान्याजीर्ण लक्षणम्—

विबंधोऽतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिर्मा[४]रुतमूढता ॥ ३० ॥

अजीर्णलिंगं सामान्यं विष्टंभो गौरवं भ्रमः ।

अजीर्ण कारणानि—

न चातिमात्रमेवान्नमामदोषाय केवलम् ॥ ३१ ॥

द्विष्टविष्टंभिदग्धामगुरूक्षहिमाशुचि ।

विदाहि शुष्कमत्यंबुप्लुतं चान्नं न जीर्यति ॥ ३२ ॥

उपतप्तेन भुक्तं च शोकक्रोधक्षुधादिभिः ।

समशनादीनांलक्षणानि—

मिश्रं पथ्यमपथ्यं च भुक्तं समशनं मतम् ॥ ३३ ॥

१—विदग्धं किञ्चिद्विपक्वम् । २ तत्समसाधनाआमतुल्यचिकित्सा । ३ अत्र रसाजीर्णे । सर्वः सर्वविधाजीर्णी । ४ मारुतमूढता वायोः प्रतिलोमता ।

विद्यादध्यशनं भूयो भुक्तस्योपरि भोजनम् ।
अकाले बहु चाल्पं वा भुक्तं तु विषमाशनम् ॥ ३४ ॥
त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन् सृजन्ति वा ।

भोजनविधिः—

काले सात्म्यं शुचि हितं स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः ॥ ३५ ॥
षड्रसं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलम्बितम् ।
स्नातः क्षुद्वान् विवि[1]क्तस्थो धौतपादकराननः ॥ ३६ ॥
तर्पयित्वा पितॄन् देवानतिथीन् बालकान्गुरून् ।
[2]प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान् ॥ ३७ ॥
समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिन्दन्नब्रुवन् द्रवम् ।
इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचि भक्तजनाहृतम् ॥ ३८ ॥

भोजनेत्याज्यानि—

भोजनं तृणकेशादिजुष्टमुष्णीकृतं पुनः ।
शाका[3]वरान्नभूयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ॥ ३९ ॥
किलाटदधिकूर्चीकाक्षारशुक्तामकमूलकम् ।
कृशशुष्कवराहाविगोमत्स्यमहिषामिषम् ॥ ४० ॥
माषनिष्पावशालूकबिसपिष्टविरूढकम् ।
शुष्कशाकानि यवकान् फाणितं च न शीलयेत् ॥ ४१ ॥

भोजनेग्राह्याणि—

शीलयेच्छालिगोधूमयवषष्टिकजाङ्गलम् ।
सुनिषण्णकजीवन्तीबालमूलकवास्तुकम् ॥ ४२ ॥
पथ्यामलकमृद्वीकापटोलीमुद्गशर्कराः ।
घृतदिव्योदकक्षीरक्षौद्रदाडिमसैन्धवम् ॥ ४३ ॥

---

१ विविक्तस्थ एकान्तस्थितः । २ प्रत्यवेक्ष्य तेषामाहारप्रबन्धं विधाय । तिरश्चो गृहस्थानपशून् । प्रतिपन्नपरिग्रहान्—शरणत्वेन कृतस्वीकारान् ।
३ अवरान्नं यवकम् ।

त्रिफलासेवनंनेत्रहितम्--

त्रिफलां मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्रबलाय च ।
स्वास्थ्यानुवृत्तिकृद्यच्च रोगोच्छेदकरं च यत् ॥ ४४ ॥
बिसेक्षुमोचचोचाम्रमोदकोत्कारिकादिकम् ।
अद्याद्द्रव्यं गुरु स्निग्धं स्वादु मंदं स्थिरं पुरः ॥ ४५ ॥
[1]विपरीतमतश्चांते मध्येऽम्ललवणोत्कटम् ।

उदरपूरणम्--

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत् ॥ ४६ ॥
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ।

अनुपानकथनम्—

अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ॥ ४७ ॥
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे, कोष्णं पिष्टमयेषु तु ।
शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्राम्लकाञ्जिकम् ॥ ४८ ॥
सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं, स्थूलानां तु मधूदकम् ।
शोषे मांसरसो, मद्यं मांसे स्वल्पे च पावके ॥ ४९ ॥
व्याध्यौषधाध्वभाष्यस्त्रीलंघनातपकर्मभिः ।
क्षीणे, वृद्धे च बाले च पयः[2] पथ्यं यथाऽमृतम् ॥ ५० ॥

अनुपान संक्षेपः--

विपरीतं यदन्नस्य गुणैः स्यादविरोधि च ।
अनुपानं समासेन सर्वदा तत्प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

अनुपानगुणाः—

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढाङ्गताम् ।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तिजरणानि च ॥ ५२ ॥

---

१ विपरीतं [illegible] । २ [illegible] । ३ ऊर्जा मनसः प्रहर्षः । व्याप्तिः शरीरे भोजनस्य व्याप्तिः । विक्लित्तिरन्नविक्लेदनम् ।

अनुपाननिषेधः—

नोर्ध्वजत्रुगदश्वासकासोरःक्षतपीनसे ।
गीतभाष्यप्रसंगे च स्वरभेदे च [1]तद्धितम् ॥ ५३ ॥
प्रक्लिन्नदेहमेहाक्षिगलरोगव्रणातुरः ।
पानं त्यजेयुः, [2]सर्वश्च भाष्याध्वशयनं त्यजेत् ॥
पीत्वा भुक्त्वाऽऽतपं वह्नि यानं प्लवनवाहनम् ॥ ५४ ॥

भोजनकालः

प्रसृष्टे विण्मूत्रे, हृदि सुविमले, दोषे स्वपथगे
विशुद्धे चोद्गारे, क्षुदुपगमने, वातेऽनुसरति ।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते [3]विशदकरणे देहे च सुलघौ
प्रयुञ्जीताहारं [4]विधिनियमितः कालः स हि मतः ॥ ५५ ॥

नवमोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथातो द्रव्यादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

रसादीनां द्रव्यंश्रेष्ठम्—

द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं [5]ते हि तदाश्रयाः ।

द्रव्यस्यपञ्चभूतात्मकत्वम्—

पंचभूतात्मकं [6]तत्तु क्ष्मामधिष्ठाय जायते ॥ १ ॥

---

१ तदनुपानम् । २ सर्वः पुरुषः । प्लवनंजलतरणम् । ३ विशदकरणे विशदानि पटूनि स्वविषयग्रहणसमर्थानीन्द्रियाणि यस्मिन्देहे तस्मिन् । ४ विधिना "काले-सात्म्यादिना पूर्वोक्तेन नियमितः । ५ ते रसादयः । तदाश्रयाद्द्रव्याश्रयाः । ६ तद्द्रव्यम् ।

अंबुयोन्यग्निपवननभसां समवायतः ।
[1]तन्निर्वृत्तिर्विशेषश्च, व्यपदेशस्तु भूयसा ॥ २ ॥
तस्मान्नैकरसं द्रव्यं भूतसंघातसंभवात् ।
नैकदोषास्ततो रोगास्तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः ॥ ३ ॥
अव्यक्तोऽनुरसः किंचिदन्ते व्यक्तोऽपि चेष्यते ।

द्रव्येगुणनिवासः—

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये ॥ ४ ॥
रसेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः[2] ।

पार्थिवद्रव्य लक्षणम्—

तत्र द्रव्यं गुरु स्थूल स्थिरसंधगुणोल्वणम् ॥ ५ ॥
पार्थिवं, गौरवस्थैर्यसंघातोपचयावहम् ।

जलीयद्रव्यलक्षणम्—

द्रवशीतगुरुस्निग्धमंदसान्द्ररसोल्वणम् ॥ ६ ॥
आप्यं स्नेहनविष्यंदक्लेदप्रह्लादबंधकृत् ।

आग्नेयद्रव्यलक्षणम्—

रूक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपगुणोल्वणम् ॥ ७ ॥
आग्नेयं दाहभावर्णप्रकाशपचनात्मकम् ।

वायव्यद्रव्यलक्षणम्—

वायव्यं रूक्षविशदं लघुस्पर्शगुणोल्वणम् ॥ ८ ॥
रौक्ष्यलाघववैशद्यविचारग्लानिकारकम् ।

---

१ तन्निर्वृत्तिर्द्रव्योत्पत्तिः । विशेषः—इदमन्यदिदमन्यद्द्रव्यमित्येवंरूपः । व्यपदेशोऽव्यवहारः, यत्रद्रव्ये यद्भूतमधिकंतेनैवभूतेन तस्यद्रव्यस्य व्यवहारः । यथा पार्थिवं तैजसमित्यादि । २ गुर्वादयोगुणा वस्तुतो रसाश्रये पृथिव्यादौ द्रव्ये समाश्रिता न तु रसे, किन्तु साहचर्येण उपचारः क्रियते रसे यथा गुरुद्रव्ये मधुरोरसस्तद्गुरुगुणोऽपि सहैवास्ते ततो रसगुणयोरेकस्मिन् द्रव्ये सहावस्थानात् मधुरोगुरुरिति व्यवह्रियते ।

दशमोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथाऽतो रसभेदीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

षड्सोत्पत्तिः—

"क्ष्मांभोऽग्निक्ष्मांऽबुतेजःखवाय्वग्न्यनिलगो[१]ऽनिलैः ।
द्वयोल्बणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः ॥ १ ॥

मधुरादिरसलक्षणम्—

तेषां विद्याद्रसं स्वादुं यो वक्त्रमनुलिंपति ।
आस्वाद्यमानो देहस्य ह्लादनोऽ[२]क्षप्रसादनः ॥ २ ॥
प्रियः पिपीलिकादीनाम्, अम्लः क्षालयते मुखम् ।
हर्षणो रोमदंतानामक्षिभ्रुवनिकोचनः ॥ ३ ॥
लवणः स्यंदयत्यास्यं कपोलगलदाहकृत् ।
तिक्तो विशदयत्यास्यं रसनं प्रतिहंति च ॥ ४ ॥
उद्वेजयति जिह्वाग्रं कुर्वंश्चिमिचिमां कटुः ।
स्रावयत्यक्षिनासास्यं कपोलौ दहतीव च ॥ ५ ॥
कषायो जडयेज्जिह्वां कंठस्रोतोविबंधकृत् ।
रसानामिति रूपाणि, कर्माणि मधुरो रसः ॥ ६ ॥

मधुरादिरस कर्माणि—

आजन्मसात्म्यात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम् ।
बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेंद्रियौजसाम् ॥ ७ ॥
आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविषाऽपहः ॥ ८ ॥
कुरुतेऽत्युपयोगेन समेदःकफजान् गदान् ।
स्थौल्याग्निसादसंन्यासमेहगंडार्बुदादिकान् ॥ ९ ॥

---

१ गोशब्देन पृथिव्या ग्रहणम् । २ अक्षाणि इन्द्रियाणि ।

अम्लोऽग्निदीप्तिकृत्स्निग्धो हृद्यः पाचनरोचनः ।
उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः प्रीणनो भेदनो लघुः ॥ १० ॥
करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनम् ।
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम् ॥ ११ ॥
कंडुपांडुत्ववीसर्पशोफविस्फोटतृड्ज्वरान् ।
लवणः स्तंभसंघातबंधविध्मापनोऽग्निकृत् ॥ १२ ॥
स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेदभेदकृत् ।
सोऽतियुक्तोऽस्रपवनं खलतिं पलितं वलिम् ॥ १३ ॥
तृट्कुष्टविषवीसर्पान् जनयेत्क्षपयेद्बलम् ।
तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम् ॥ १४ ॥
कुष्टमूर्च्छाज्वरोत्क्लेशदाहपित्तकफान् जयेत् ।
क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोपशोषणः ॥ १५ ॥
लघुर्मेध्यो हिमो रूक्षःस्तन्यकंठविशोधनः ।
धातुक्षयाऽनिलव्याधीनतियोगात्करोति सः ॥ १६ ॥
कटुर्गलामयोदर्दकुष्टालसकशोफजित् ।
व्रणावसादनःस्नेहमेदःक्लेदोपशोषणः ॥ १७ ॥
दीपनः पाचनो रुच्यः शोधनोऽन्नस्य शोषणः ।
छिनत्ति बंधान्, स्रोतांसि विवृणोति कफापहः ॥ १८ ॥
कुरुते सोऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम् ।
मूर्च्छामाकुंचनं कंपं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् ॥ १९ ॥
कषायः पित्तकफहा गुरुरस्रविशोधनः ।
पीडनो रोपणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः ॥ २० ॥
आमसंस्तंभनो ग्राही रूक्षोऽतित्वक्प्रसादनः ।
करोति पीलितः सोऽति विष्टंभाध्मानहृद्रुजः ॥ २१ ॥
तृट्कार्श्यपौरुषभ्रंशस्रोतोरोधमलग्रहान् ।

मधुरद्रव्याणि—

घृतहेमगुडाक्षोडमोचचोचपरूषकम् ॥ २२ ॥
अभीरुवीरापनसराजादनबलात्रयम् ।
मेदे चतस्रः पर्ण्यो जीवंती जीवकर्षभौ ॥ २३ ॥

मधूकं मधुकं बिंबी विदारी श्रावणीयुगम् ।
क्षीरशुक्ला तुगाक्षीरी क्षीरिण्यौ काश्मरी सहे[1] ॥२४॥
क्षीरेक्षुगोक्षुरक्षौद्रद्राक्षादिर्मधुरो गणः ।

अम्लद्रव्याणि—

अम्लो धात्रीफलाम्लीकामातुलुंगाम्लवेतसम् ॥२५॥
दाडिमं रजतं तक्रं चुक्रं पालेवतं दधि ।
आम्रमाम्रातकं[2] भव्यं कपित्थं करमर्दकम् ॥२६॥

लवणद्रव्याणि—

वरं सौवर्चलं कृष्णं बिडं सामुद्रमौद्भिदम् ।
रोमकं पांसुजं शीसं क्षारश्च लवणो गणः ॥२७॥

तिक्तद्रव्याणि—

तिक्तः पटोली त्रायंती वालकोशीरचंदनम् ।
भूनिंबनिंबकटुकातगरागुरुवत्सकम् ॥२८॥
नक्तमालद्विरजनीमुस्तमूर्वाटरूपकम् ।
पाठापामार्गकांस्यायोगुडूचीधन्वयासकम् ॥२९॥
पंचमूलं महद् व्याघ्र्यौ विशालाऽतिविषा वचा ।

कटु द्रव्याणि—

कटुको हिंगुमरिचक्रिमिजित्[3]पंचकोलकम् ॥३०॥
कुठेराद्या हरितकाः पित्तं मूत्रमरुष्करम् ।

कषायद्रव्याणि—

वर्गः कषायः पथ्याक्षं शिरीषः खदिरो मधु ॥३१॥
कदंबोदुंबरं मुक्ताप्रवालाञ्जनगैरिकम् ।
बालं कपित्थं खर्जूरं बिसपद्मोत्पलादि च ॥३२॥

---

१ सहे-माषमुद्गपर्ण्यौ । २ आम्रातकः-आमड़ा, भव्यं-कमरख । ३ क्रिमिजित् विडङ्गम् ।

मधुरस्यकफकारकत्वस्यापवादः—

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो, जीर्णाच्छालियवादृते ।
मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सितायाः जांगलामिषात् ॥३३॥

अम्लस्यपित्तजननत्वस्यापवादः—

प्रायोऽम्लं पित्तजननं, दाडिमामलकादृते ।

लवणस्यनेत्रापथ्यत्वस्यापवादः—

अपथ्यं लवणं प्रायश्चक्षुषोऽन्यत्र सैंधवात् ॥३४॥

तिक्तकटुरसयोर्वातकोपनत्वयोरपवादः—

तिक्तं कटु च भूयिष्ठमवृष्यं वातकोपनम् ।
ऋतेऽमृतापटोलीभ्यां शुंठीकृष्णारसोनतः ॥३५॥

कषायस्यापवादः—

कषायं प्रायशः शीतं स्तंभनं चाऽभयामृते ।

कट्वादीनामुत्तरोत्तरमुष्णवीर्यता—

रसाः कट्वम्ललवणा वीर्येणोष्णा यथोत्तरम् ॥३६॥

तिक्तादीनांशीतवीर्यता—

तिक्तः कषायो [१]मधुरस्तद्वेव च शीतलाः

रसानांरूक्षादिगुणाः—

तिक्तः कटुः कषायश्च रूक्षा [२]बद्धमलास्तथा [३] ॥३७॥
पट्वम्लमधुराः स्निग्धाः [३]सृष्टविण्मूत्रमारुताः ।
पटोः कषायस्तस्माच्च[४] मधुरः परमो गुरुः ॥३८॥
लघुरम्लः [५]कटुस्तस्मात्तस्मादपि[६] च तिक्तकः ।

रसानां संयोगकल्पना—

संयोगाः सप्तपंचाशत्कल्पना तु त्रिषष्ठिधा ॥३९॥

---

१ तद्वदेव-यथोत्तरम् । २ तथा-यथोत्तरम् । ३ अत्रापि यथोत्तरमिति-म्यम्ते । ४ तस्मात् कषायात् । ५ तस्मात्-अम्लात् । ६ तस्मात्कटोः ।

रसाना [1]यौगिकत्वेन यथास्थूलं विभज्यते ।

रससंयोगानां विवरणम्—

[2]एकैकहीनास्तान्पंच पंच यांति रसा द्विके ॥४०॥
[3]त्रिके स्वादुशाम्लः षट्, त्रीन्पटुस्तिक्त एककम् ।
[4]चतुष्केषु दश स्वादुश्चतुरोऽम्लः पटुः सकृत् ॥४१॥
[5]पंचकेष्वेकमेवाम्लो मधुरः पंच सेवते ।
[6]द्रव्यमेकं षडास्वादमसंयुक्ताश्च षड्रसाः ॥४२॥

संयुक्तरसभेदसंख्या--

[7]षट्पंचकाः, षट् च पृथग्रसाः स्यु-
श्चतुर्द्विकौ पंचदशप्रकारौ ।
भेदास्त्रिका विंशतिरेकमेवं
द्रव्यं षडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥४३॥

संयुक्तरसोपयोगः--

[8]ते रसानुरसतो रसभेदास्तारतम्यपरिकल्पनया च ।
संभवंति गणना समतीता दोषभेजवशादुपयोज्याः ॥

---

१ यौगिकत्वेन-शरीरोपयोग्यत्वेन । २ द्विके-रससंयोगे, पंचरसाः—मधुराम्ललवणतिक्तकटुकाः । एकैकहीनाभृतान्पञ्च-अम्ललवणतिक्तकटुकषायान् यान्ति मिलन्ति । येनैकेनयुक्तास्तद्रहितानित्यर्थः । मधुरस्याम्लादिभिः पंचभिः संयोगे पञ्चभेदाः, अम्लस्य लवणादिभिश्चतुर्भिः संयोगे चत्वारो भेदाः । लवणस्य कट्वादिभिस्त्रिभिः संयोगे त्रयोभेदाः । कटोः स्तिक्तकषायाभ्यां संयोगे द्वे भेदौ । तिक्तस्य कषायेण सह एकोभेदः । एवं पञ्चदशभेदाः । ३ त्रिके-रसत्रयसंयोगे भेदास्तु-विंशतिः । ४ चतुष्के चतूरससंयोगे भेदास्तु पञ्चदश । ५ पञ्चके पञ्चरससंयोगे । अम्लएकमेव भेदं, मधुरस्तु पञ्चभेदान् याति, एवं रसपंचकसंयोगे षड्भेदाः । ६ एकं द्रव्यं षडास्वादंषड्रससंयुक्तम् यथा—कृष्णहरिणमांसम् । असंयुक्ता भिन्नाः षड्रसाः । ७ पञ्चकाः पञ्चकरससंयोगाः षट्संख्याः । चतुः-रसचतुष्टयसंयोगाः । द्विकोरसद्वयसंयोगाः । ८ मधुरोमधुरतरोमधुरतम इति तारतम्यकल्पना । गणनांसमतीता असंख्या भवन्तीत्यर्थः ।

एकादशोऽध्यायः।

रोगविज्ञानविषयकः।

अथातो दोषादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

देहमूलानि दोषादीनि—

"दोषधातुमला मूलं सदा देहस्य तं[1] चलः।
उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टावेगप्रवर्तनैः ॥१॥
सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवेन च।
अनुगृह्णात्यविकृतः, पित्तं पक्त्यूष्मदर्शनैः ॥२॥
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः।
[2]श्लेष्मा स्थिरत्वस्निग्धत्वसंधिबंधक्षमादिभिः ॥३॥

रसादिधातुमलानांश्रेष्ठकर्माणि—

[3]प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे।
गर्भोत्पादश्च धातूनां श्रेष्ठं कर्म क्रमात्स्मृतम् ॥४॥
अवष्टंभः पुरीषस्य, मूत्रस्य क्लेदवाहनम्।
स्वेदस्य क्लेदविधृतिः,

वृद्धवायोःकर्माणि—

वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः ॥५॥
कार्श्यकार्ष्ण्योष्णकामित्वकंपाऽनाहशकृद्ग्रहान्।
[4]बलनिद्रेंद्रियभ्रंशप्रलापभ्रमदीनताः ॥६॥

वृद्धपित्तकर्माणि—

[5]पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाऽल्पनिद्रताः।
पित्तम्,

---

१ चलोवायुः। २ श्लेष्मास्थिरत्वादिभिरनुगृह्णाति। ३ प्रीणनमिन्द्रियप्रीतिकरम्। लेपोऽस्थ्नांलेपकरम्। शरीरस्योर्ध्वधारणमस्थ्नः कर्म, पूरणं स्नेहेनास्थ्नांमज्ज्ञः कर्म। ४ भ्रंशशब्दोबलादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते। ५ पीतशब्दो विडादित्वगन्तैः प्रत्येकं सम्बध्यते।

वृद्धकफकर्माणि—

श्लेष्माऽग्निसदनप्रसेकालस्यगौरवम् ॥७॥
श्वैत्यशैत्यश्लथांगत्वं श्वासकासातिनिद्रताः ।

वृद्धरसरक्तयोः कर्माणि—

रसोऽपि श्लेष्मवद्रक्तं विसर्पप्लीहविद्रधीन् ॥८॥
कुष्ठवातास्रपित्तास्रगुल्मोपकुशकामलाः ।
[1]व्यंगाग्निनाशसंमोहरक्तत्वङ्नेत्रमूत्रताः ॥९॥

वृद्धमांसकर्माणि—

मांसं गंडार्बुदग्रंथिगंडोरूदरवृद्धताः ।
कंठादिष्वधिमांसं च,

वृद्धमेदसःकर्माणि—

[2]तद्वन्मेदस्तथा श्रमम् ॥१०॥
अल्पेऽपि चेष्टिते श्वासं स्फिक्स्तनोदरलंबनम् ।

वृद्धास्थ्नःकर्माणि—

अस्थ्यध्यस्थ्यधिदंताश्च

वृद्धमज्ज्ञः कर्माणि—

मज्जा नेत्रांगगौरवम् ॥११॥
पर्वसु स्थूलमूलानि कुर्यात्कृच्छ्राण्यरूंषि च ।

वृद्धशुक्रकर्माणि—

अतिस्त्रीकामता वृद्धं शुक्रं शुक्राश्मरीमपि ॥१२॥

वृद्धपुरीष कर्माणि—

कुक्षावाध्मानमाटोपं गौरवं वेदनां शकृत् ।

वृद्धमूत्र कर्माणि—

मूत्रं तु बस्तिनिस्तोदं कृतेऽ[3]प्यकृतसंज्ञताम् ॥१३॥

---

१ रक्तशब्दो त्वगादिभिः प्रत्येकंयुज्यते । २ तद्वत्-मांसवत् गण्डदीदीन् कुरुते । ३ मूत्रे कृतेऽपि अकृतमिव, सततं मूत्रवेगःस्यात् ।

नेत्रादिमलानां क्षयलिङ्गम्—

मलानामतिसूक्ष्माणां दुर्लक्ष्यं लक्षयेत् क्षयम् ।
स्वमलायनसंशोषतोदशून्यत्वलाघवैः ॥२३॥

दोषादीनां संक्षेपतोवृद्धिक्षयलिङ्गम्—

दोषादीनां यथास्वं च विद्याद्वृद्धिक्षयौ भिषक् ।
[1]क्षयेण विपरीतानां गुणानां वर्धनेन च ॥२४॥
वृद्धिं मलानां संगाच्च, क्षयं चाऽतिविसर्गतः ।

वृद्धिक्षययोस्तारतम्यम्—

मलोचितत्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः ॥२५॥

दोषादीनामाश्रयाश्रयिभावः—

तत्राऽस्थनि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः ।
श्लेष्मा शेषेषु, तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः ॥२६॥

वृद्धिक्षयप्रतीकारः—

[2]यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधम् ।
अस्थिमारुतयोर्नैवं, प्रायो वृद्धिर्हि तर्पणात् ॥२७॥
श्लेष्मणाऽनुगता, तस्मात् संक्षयस्तद्विपर्ययात् ।
वायुनाऽनुगतः, अस्माच्च वृद्धिक्षयसमुद्भवाप् ॥२८॥
विकाराम् साधयेच्छीघ्रं क्रमाल्लंघनबृंहणैः ।
[3]वायोरन्यत्र, तज्जांस्तु तैरेवोत्क्रमयोजितैः ॥२९॥

---

१ दोषादीना विपरीतानांगुणानां क्षयेण वर्धनेन च क्रमाद्वृद्धिक्षयौ जानीयात् । यथा वातस्य विपरीता गुणाः स्निग्धगुरूष्णादयस्तेषां देहे क्षये वायुवृद्धिः, तेषामेव च वृद्धया वायोः क्षयः । एवमेव धातूनांमलानाञ्च वृद्धिक्षयौ । सङ्गाच्च मलानां वृद्धिमतिविसर्गतश्चक्षयं व्यवस्येत् । २ यदौषधमेकस्याश्रयस्य-यथा-स्वेद रक्तात्मकस्य वृद्धिक्षयकरं तदेवाश्रयिणः पित्तस्यापि वृद्धिक्षयावहम् । परमस्थि-मारुतयोरेवमाश्रयाश्रयिभावेन न वृद्धिक्षयकरत्वम् । तद्विपर्ययादपतर्पणात् लंघनादि-त्यर्थः अपतर्पणश्चवायुसम्बद्धम् । ३ तज्जाम् वातजाम्रोगाम् तैर्लंघनबृहणै रुत्क्रमयोजितैर्विपरीतयोजितैः, यथा वातवृद्धिजाम् बृंहणैः वातक्षयोत्पन्नांश्चलङ्घ-नैरितिभावः ।

रक्तादिधातुवृद्धिजातरोगप्रतीकारः—

विदोषाद्रक्तवृद्धयु त्थान् रक्तस्रु तिविरेचनैः ।
मांसवृद्धिभवान् रोगान् शस्त्रक्षाराग्निकर्मभिः ॥३०॥
[१]स्थौल्यकार्श्योपचारेण मेदोजानस्थिसं-
क्षयात्, जातान् क्षीरघृतैस्तिक्तसंयुक्तैर्वस्तिभिस्तथा ॥३१॥
विड्वृद्धिजानतीसारक्रियया, विट्क्षयोद्भवान् ।
मेषाजमध्यकुल्मापयवमापद्वयादिभिः[२] ॥३२॥
मूत्रवृद्धिक्षयोत्थांश्च [३]मेहकृच्छ्रचिकित्सया ।
व्यायामाऽभ्यंजनस्वेदमद्यैः स्वेदक्षयोद्भवान् ॥३३॥

धातुवृद्धिक्षयप्रकारः—

स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेरंशा धातुषु संश्रिताः ।
तेषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भवः ॥३४॥
पूर्वो धातुः परं कुर्याद्वृद्धः क्षीणश्च तद्विधम्[४] ।

दुष्टदोषाणांधातुदूषणत्वम्—

दोषा दुष्टा[५] रसैर्धातून् दूषयंत्युभये मलान् ॥३५॥
अधो द्वे सप्त शिरसि खानि, स्वेदवहानि च ।
मला मलायनानि स्युर्यथास्वं तेष्वतो गदाः ॥३६॥

ओजोनिरूपणम्—

ओजस्तु तेजोधातूनां शुक्रांतानां परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम् ॥३७॥
स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमिपल्लोहितपीतकम् ।
यन्नाशे[६] नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति ॥३८॥
निष्पद्यंते यतो[७] भावा विविधा देहसंश्रयाः ।

---

१ मेदोजान्स्थौल्योपचारेण, अस्थिसमुत्पन्नांश्च कार्श्योपचारेण । २ माषद्वयं बृहत्क्षुद्रभेदेन । ३ मेहचिकित्सया मूत्रवृद्धिजान्, कृच्छ्रचिकित्सयाच मूत्रक्षयोत्थान् । ४ तद्विधं वृद्धं क्षीणं च । ५ रसैर्मधुरादिभिः । उभये दोषाधातवश्च । ६ यन्नाशे-यस्योजसोनाशे । ७ यतश्चोजसः ।

सं०	भेद०	रसाः	सं०	भेद०	रसाः
१	१	मधुरः	३३	१२	अ० ल० ति०
२	२	अम्लः	३४	१३	अ० ल० कषा०
३	३	लवणः	३५	१४	अ० कटु० कषा०
४	४	कटुः	३६	१५	अ० कटु० ति०
५	५	तिक्तः	३७	१६	अ० ति० कषा०
६	६	कषायः	३८	१७	ल० कटु० ति०
		(२)	३९	१८	ल० कटु० कषा०
७	१	मधुराम्लम्	४०	१९	ल० ति० कषा०
८	२	मधुर लवणम्	४१	२०	कटु० ति० कषा०
९	३	मधुर कटुकम्			(४)
१०	४	मधुर तिक्तम्	४२	१	म० अ० ल० कटु०
११	५	मधुर कषायम्	४३	२	म० अ० ल० ति०
१२	६	अम्ल लवणम्	४४	३	म० अ० ल० कषा०
१३	७	अम्लकटुकम्	४५	४	म० अ० कटु० ति०
१४	८	अम्लतिक्तम्	४६	५	म० अ० कटु० कषा०
१५	९	अम्लकषायम्	४७	६	म० अ० ति० कषा०
१६	१०	लवणकटुकम्	४८	७	म० ल० कटु० ति०
१७	११	लवणतिक्तम्	४९	८	म० ल० ति० कषा०
१८	१२	लवणकषायम्	५०	९	म० ल० कटु० कषा०
१९	१३	कटुतिक्तम्	५१	१०	म० कटु० ति० कषा०
२०	१४	कटुकषायम्	५२	११	अ० ल० कटु० ति०
२१	१५	तिक्तकषायम्	५३	१२	अ० ल० कटु० कषा०
		(३)	५४	१३	अ० ल० ति० कषा०
२२	१	म० अ० ल०	५५	१४	अ० कटु० तिक्त० कषा०
२३	२	म० अ० कटु०	५६	१५	ल० कटु० ति० कषा०
२४	३	म० अ० ति०			(५)
२५	४	म० अ० कषा०	५७	१	म० अ० ल० कटु० ति०
२६	५	म० ल० कटु०	५८	२	म० अ० ल० कटु० कषा०
२७	६	म० ल० ति०	५९	३	म० अ० ल० ति० कषा०
२८	७	म० ल० कषा०	६०	४	म० अ० कटु० ति० कषा०
२९	८	म० कटु० ति०	६१	५	म० ल० कटु० ति० कषा०
३०	९	म० कटु० कषा०	६२	६	अ० ल० कटु० ति० कषा०
३१	१०	म० ति० कषा०			(६)
३२	११	म० ल० कटु०	६३	१	म. अ. ल. कटु. ति. कषा.

ओजः क्षीयेत कोपक्षुद्ध्यानशोकश्रमादिभिः ॥३९॥
बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेंद्रियः ।
विच्छायो दुर्मनो रूक्षो भवेत्क्षामश्च तत्क्षये[1] ॥४०॥
जीवनीयौषधक्षीररसाद्यास्तत्र भेषजम् ।
ओजोविवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः ॥४१॥

संक्षेपेणवृद्धिक्षयचिकित्सा--

[2]यदन्नं द्वेष्टि यदपि प्रार्थयेताविरोधि तु ।
तत्तत्यजन् समश्नंश्च तौ तौ वृद्धिक्षयौ जयेत् ॥४२॥

दोषाणां वृद्धिक्षयसाम्यलक्षणानि--

यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।
रूपाणि, जहति क्षीणाः, समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥४४॥

दोषरक्षणम्--

य एव देहस्य समा विवृद्ध्यै
त एव दोषा विषमा वधाय ।
यस्मादतस्ते हितचर्ययैव
[4]क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः" ॥४५॥

द्वादशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथातो दोषभेदीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

देहे वायोः स्थाननिर्देशः---

"पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्राऽस्थिस्पर्शनेंद्रियम् ।

---

१ तत्क्षये तस्यौजसः क्षये । २ तत्तद्-द्विष्टंत्यजन्, प्रार्थितं समश्नन् । ३ वृद्धादोषादोषविपरीते, क्षीणाश्च समाने । यथावृद्धो वातो विपरीते स्निग्धादौ, क्षीणश्चसमाने रूक्षादौ । ४ यथा विवृद्धे रक्षणीयास्तथा क्षयादपि ।

स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥१॥

पित्तस्थानम्—

नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका[1] रुधिरं रसः ।
दृक् स्पर्शनं च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः ॥२॥

कफस्थानम्—

उरः कंठशिरः क्लोमपर्वाण्यामाशयो रसः ।
मेदो घ्राणं च जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः ॥३॥

वायोः पञ्चविधत्वम्—

प्राणादिभेदात्पंचात्मा वायुः, प्राणोऽत्र[2] मूर्धगः ।
उरः कंठचरो बुद्धिहृदयेंद्रियचित्तधृक् ॥४॥
ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासान्नप्रवेशकृत् ।
उरःस्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत् ॥५॥
वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्मृतिक्रियः ।
व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी[3] महाजवः ॥६॥
गत्यपक्षे[4]पणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ।
प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन्[5] प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥७॥
समानोऽग्निसमीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वतः ।
अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति[6] मुंचति ॥८॥
अपानोऽपानगः श्रोणिबस्तिमेढ्रोरुगोचरः[7] ।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥९॥

पित्तस्य पंचभेदाः—

पित्तं पंचात्मकं, तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥१०॥

---

१ लसीका-त्वङ्मांसयोर्मध्येस्थितमुदकम् । २ अत्रपञ्चसु । ३ कृत्स्नं सम्पूर्णम् । ४ अपक्षेपणमङ्गानामधोनयनम् । ५ तस्मिन् व्याने । ६ विवेचयति सारकिट्टौ पृथक् करोति । ७ मेढ्रं लिङ्गम् ।

त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥११॥
तत्रस्थमेव[1] पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेनपाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥१२॥
आमाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात् ।
बुद्धिमेधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात् ॥१३॥
साधकं[2] हृद्गतं पित्तं,
रूपालोचनतः स्मृतम् ।
दृक्स्थमालोचकं,
त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥१४॥

कफस्यपञ्चविधत्वम्—

श्लेष्मा तु पंचधा,
उरस्थः स त्रिकस्य[3] स्ववीर्यतः ।
हृदयस्यान्नवीर्याच्च तत्स्थ[4] एवाम्बुकर्मणा ॥१५॥
कफधाम्ना च शेषाणां यत्करोत्यवलंबनम् ।
अतोऽवलंबकः श्लेष्मा, यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥१६॥
क्लेदकः सोऽन्नसंघातक्लेदनात्, रसबोधनात् ।
बोधको रसनास्थायी, शिरःसंस्थोऽक्षतर्पणात् ॥१७॥
तर्पकः, संधिसंश्लेषाच्छ्लेषकः संधिषु स्थितः ।

दोषोपसंहरणम्—

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम् ॥१८॥
व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ।

दोषाणां चयकोपशमहेतवः—

उष्णेन युक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वंति संचयम् ॥१९॥
शीतेन[5] कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः ।

---

१ तत्र पक्वामाशयमध्यस्थमेव । २ साधकं बुद्ध्यादीनाम् । ३ त्रिकमन्नोपरिस्थम् । ४ तत्स्थ उरस्थः । ५ शीतेन युक्तारुक्षाद्याः ।

शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याश्चयं पित्तस्य कुर्वते ॥२०॥
उष्णेन[1] कोपं, मंदाद्याः शमं शीतोपसंहिताः ।
शीतेन युक्ताः स्निग्धाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम् ॥२१॥
उष्णेन कोपं, तेनैव[2] गुणा रूक्षादयः शमम् ।

चयादीनां लक्षणानि—

चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु ॥२२॥
विपरीतगुणेच्छा च, कोपस्तून्मार्गगामिता[3] ।
लिंगानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसंभवः ॥२३॥
स्वस्थानस्थस्य समता विकारासंभवः शमः ।

ऋतुषुवातादीनां चयादयः—

चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु[4] त्रिषु ॥२४॥
वर्षादिषु तु पित्तस्य, श्लेष्मणः शिशिरादिषु ।
चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः ॥२५॥
तद्विधस्तद्विधे[5] देहे, कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति ।
अद्भिरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम्[6] ॥२६॥
पित्तं याति चयं, कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ।
चीयते स्निग्धशीताभिरुदकौषधिभिः कफः ॥२७॥
तुल्येऽपि काले देहे[7] च, स्कन्नत्वान्न प्रकुप्यति ।
इति कालस्वभावोऽयं, आहारादिवशात्पुनः ॥२८॥
चयादीन् याति सद्योऽपि दोषाः कालेऽपि वा न[8] तु ।

दोषाणां व्याप्तिनिवृत्तिवैचित्र्यम्—

व्याप्नोति सहसा देहमापादतलमस्तकम् ॥२९॥
निवर्तते तु कुपितो मलोऽल्पाल्पं जलौघवत् ।

---

१ उष्णेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याः । २ तेनैव-उष्णेनैव । ३ उन्मार्गेतिस्वस्थानमपरित्यज्यान्यमार्गग्रहणम् । ४ यथा-ग्रीष्मे वायोश्चयो, वर्षासु कोपः शरदि च शमः । ५ तद्विधोलघुरूक्षः, तद्विधे लघुरूक्षे देहे । ६ तादृशमम्लविपाकम् । ७ देहे स्निग्धशीते । ८ न तु चयादीन् यान्ति ।

कुपितदोषजविकारहेत्वादिकम्—

नानारूपैरसंख्येयैर्विकारैः कुपिता मलाः ॥३०॥
तापयन्ति तनुं तस्मात्तद्धेत्वाकृतिसाधनम्[१] ।
शक्यं नैकैकशो वक्तुमतः सामान्यमुच्यते ॥३१॥

दोषाणांसर्वरोगकारणत्वम्—

दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् ।
यथा पक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमप्यहः ॥३२॥
छायामत्येति नात्मीयां यथा वा कृत्स्नमप्यदः ।
विकारजातं[२] विविधं त्रीन् गुणान्नाऽतिवर्तते ॥३३॥
तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्तमपि सर्वदा ।
विकारजातं त्रीन्दोषान्,

दोषाणांकोपे कारणम्—

तेषां[४] कोपे तु कारणम् ॥३४॥
अर्थैरसात्म्यैः[५] संयोगः, कालः, कर्म च दुष्कृतम् ।
हीनातिमिथ्यायोगेन भिद्यते तत्पुनस्त्रिधा ॥३५॥

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोगः—

हीनोऽर्थेनेन्द्रियस्याल्पः संयोगः स्वेन नैव वा ।
अतियोगोऽतिसंसर्गः, सूक्ष्मभासुरभैरवम्[६] ॥३६॥
अत्यासन्नाऽतिदूरस्थं विप्रियं विकृतादि च ।
यदक्ष्णा वीक्ष्यते रूपं मिथ्यायोगः स दारुणः ॥३७॥
एवमत्युच्चपूत्यादीनिन्द्रियार्थान् यथायथम् ।
विद्यात्, कालस्तु शीतोष्णवर्षभेदात्त्रिधा मतः ॥३८॥

कालः—

स[७] हीनो हीनशीतादिरतियोगोऽतिलक्षणः ।

---

१ तेषां विकाराणां हेत्वादीनि । २ विकारजातं विकारसमूहः सांसारिकः सर्वः पदार्थः स्थावरजङ्गमात्मकः । ३ गुणान् सत्त्वरजस्तमांसि । ४ तेषां दोषाणाम् । ५ अर्थैरिन्द्रियाणां विषयैः । असात्म्यैरहितैः । ६ भासुरमुज्ज्वलम् । ७ स कालः ।

मिथ्यायोगस्तु निर्दिष्टो [1]विपरीतस्य लक्षणः ॥३९॥

त्रिविधं कर्म

कायवाक्चित्तभेदेन कर्मापि विभजेत्त्रिधा ।
कायादिकर्मणो हीना प्रवृत्तिर्हीनगामिका ॥४०॥
अतियोगोऽतिवृत्तिस्तु, [3]वेगोदीरणधारणम् ।
विषमाङ्गक्रियारंभः पतनस्खलनादिकम् ॥४१॥
भाषणं [2]सामिभुक्तस्य, रागद्वेषभयादि च ।
कर्म प्राणातिपातादि दशधा[4] यच्च निन्दितम् ॥४२॥
मिथ्यायोगः समस्तोऽयमिह चामुत्र वा कृतम् ।
निदानमेतद्दोषाणां, कुपितास्तेन[5] नैकधा ॥४३॥
कुर्वंति विविधान् व्याधीन् शाखाकोष्ठास्थिमर्मसु ।

बाह्यरोगस्थानम्—

शाखा रक्तादयस्त्वक् च बाह्यरोगायनं हि तत् ॥४४॥
[5]तदाश्रया मषव्यंगगंडालज्यर्बुदादयः ।
बहिर्मार्गाश्च दुर्नामगुल्मशोफादयो गदाः ॥४५॥

आन्तररोगमार्गः—

अंतःकोष्ठो [6]महास्रोत आमपक्वाशयाश्रयः ।
तत्स्थानाश्छर्द्यतीसारकासश्वासोदरज्वराः ॥४६॥
अंतर्मार्गं च शोफार्शोगुल्मवीसर्पविद्रधि ।

मध्यमरोगमार्गः—

शिरोहृदयबस्त्यादिमर्माण्यस्थ्नां च संधयः ॥४७॥
[7]तन्निबद्धाः शिरास्नायुकंडराद्याश्च मध्यमाः ।

---

१ विपरीतेति यथा ग्रीष्मे शीतः शीते उष्णता । २ सामिभुक्तस्यार्धभुक्तस्य । ३ वेगोदीरणादारभ्य पतनान्तं कायमिथ्या योगः । भाषणं सामिभुक्तस्येति वाङ्मिथ्यायोगः । रागेति मानसो मिथ्यायोगः । ४ दशधा-दिनचर्यायां "हिंसास्तेयादिना" उक्तं यथायथं कायवाङ्मिथ्यायोगः । तेन निदानेन । ५ तदाश्रयाः शाखाश्रयाः । ६ महास्रोत आमपक्वाशयः कोष्ठोऽन्तर्मार्गः । ७ तन्निबद्धाः—शिरोहृदयाद्याश्रयाः ।

रोगमार्गाः, स्थितास्तत्र यक्ष्मपक्षवधार्दिताः ॥४८॥
मूर्धादिरोगाः संध्यस्थित्रिकशूलग्रहादयः ।

कुपितवायुकर्माणि

[१]स्रंसव्यासव्यधस्वापसादरुक्तोदभेदनम् ॥४९॥
संगांगभंगसंकोचवर्तहर्षणतर्षणम् ।
कंपपारुष्यसौषिर्यशोषस्पंदनवेष्टनम् ॥५०॥
स्तंभः कषायरसता वर्णः श्यावोऽरुणोऽपि वा ।
कर्माणि वायोः,

कुपितपित्तकर्माणि—

पित्तस्य दाहरागोष्मपाकिताः ॥५१॥
स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः सदनं मूर्च्छनं मदः ।
कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाण्डुरारुणवर्जितः ॥५२॥

कुपितकफकर्माणि—

श्लेष्मणः स्नेहकाठिन्यकंडूशीतत्वगौरवम् ।
बंधोपलेपस्तैमित्यशोफापक्त्यतिनिद्रताः ॥५३॥
वर्णः श्वेतो रसौ स्वादुलवणौ चिरकारिता ।

पुनःपुनरार्तदर्शनम्—

इत्यशेषामयव्यापि यदुक्तं दोषलक्षणम् ॥५४॥
दर्शनाद्यैरवहितस्तत्सम्यगुपलक्षयेत् ।
व्याध्यवस्थाविभागज्ञः पश्यन्नार्तान् प्रतिक्षणम् ॥५५॥
अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥५६॥

व्याधेस्त्रैविध्यम्—

दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।

---

१ *स्रंसः सन्धिभ्रंशः । व्यास आक्षेपः । संगःपुरीषवागादीनाम् ।* वर्तः पुरीषादीनांपिण्डीकरणम् ।

तत्संकरादुभयरयन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः ॥५७॥

त्रिविधव्याधिलक्षणानि—

यथानिदानं दोषोत्थः, कर्मजो हेतुभिर्विना ।
महारंभोऽल्पके हेतावातंको दोषकर्मजः ॥५८॥

तच्चिकित्सा—

विपक्षशीलनात्पूर्वः, कर्मजः कर्मसंक्षयात् ।
गच्छत्युभयजन्मा तु दोषकर्मक्षयात्क्षयम् ॥५९॥

रोगद्वैविध्यम्—

द्विधा स्वपरतंत्रत्वात्ताभ्यः,

अन्त्यस्यद्वैविध्यम्—

अंत्याः पुनर्द्विधा ।
पूर्वजाः पूर्वरूपाख्या, जाताः पश्चादुपद्रवाः ॥६०॥

स्वतन्त्रलक्षणम्—

यथास्वजन्मोपशयाः स्वतंत्राः स्पष्टलक्षणाः ।

परतन्त्रकथनम्—

[1]विपरीतास्ततोऽन्ये तु विद्यादेवं[2] मलानपि ॥६१॥

मलानांस्वतन्त्रपरतन्त्रते—

तान् लक्षयेदवहितो विकुर्वाणान् प्रतिज्वरम् ।

तच्चिकित्सा—

[3]तेषां प्रधानप्रशमे प्रशमोऽशाम्यतस्तथा ॥६२॥
पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्णं वा बलवंतमुपद्रवम् ।
व्याधिक्लिष्टशरीरस्य पीडाकरतरो हि सः[4] ॥६३॥

---

१ त तःस्वतन्त्रलक्षणेभ्यो विपरीता अन्ये परतन्त्राः । २ एवं स्वतन्त्रांश्च । तान् वातादीन् । ३ तेषां परतन्त्राणाम् । ४ स उपद्रवः ।

अशेषरोगाणां न नामतः स्थितिः—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥६४॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानांतराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥६५॥

चिकित्साविधिः—

तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानांतराणि[1] च ।
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम् ॥६६॥
दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः ।
सत्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः ॥६७॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे ।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित् ॥६८॥

चिकित्सायां सावधानता—

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्वदेहबलाबलात् ।
दृश्यतेऽप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेद् ॥६९॥

अल्पज्ञवैद्यनिन्दा—

गुरुं लघुमिति व्याधिं कल्पयंस्तु भिषग्ब्रुवः[2] ।
अल्पदोषाकलनया पथ्ये विप्रतिपद्यते[3] ॥७०॥
ततोऽल्पमलवीर्यं वा गुरुव्याधौ प्रयोजितम् ।
उदीरयेत्तरां रोगान् संशोधनमयोगतः ॥७१॥
शोधनं त्वतियोगेन विपरीतं[4] विपर्यये ।
क्षिणुयान्न मलानेव केवलं वपुरस्यति ॥७२॥

---

१ विकारप्रकृती रोगकारणानि । २ भिषग्ब्रुवःकुत्सितवैद्यः । ३ पथ्ये चिकित्सते । विप्रतिपद्यते ज्ञान रहितो भवति । ४ विपर्यये लघुव्याधौ, विपरीत-गुरुवीर्यमतिमात्रं च ।

यतोऽभियुक्तः[1] सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।
तथा युञ्जीत भैषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥७३॥

दोषभेदाः—

वर्धतेऽन्तरं दोषा वृद्धिक्षयविभेदतः ।
पृथक् त्रीन्[2] विद्धि, संसर्गे त्रिधा, [3]तत्र तु तान्नव ॥७४॥
त्रीनेव समया वृद्ध्या, षडेकस्यातिशायने ।
त्रयोदश [4]समस्तेषु
षड्द्वयेऽतिशयेन तु ॥७५॥
एकं तुल्याधिकैः,
षट् च तारतम्यविकल्पनात् ।
पंचविंशतिमित्येवं वृद्धैः,
क्षीणैश्च तावतः[5] ॥७६॥
एकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ते,
पुनश्च षट् ।
एकक्षयद्वन्द्ववृद्ध्या [6]सविपर्यययापि ते ।
भेदा द्विषष्टिर्निर्दिष्टाः
त्रिषष्टः स्वास्थ्यकारणम् ॥७७॥

दोषभेदानामानन्त्यम्—

संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तथैषां[8] ।
दोषांस्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः ।

---

१ अभियुक्तः सर्वदायुर्वेदपाठावबोधानुष्ठानतत्परः । २ त्रीन् १ वातः, २ पित्तं, ३ कफः । ३ तत्र-संसर्गे तान् भेदान् । नवेत्यस्य विवरणं त्रीनेवेत्यादिना । ४ समस्तेषु-सन्निपातेषु । द्वयोरतिशयेनाधिकेन त्रयोभेदाः, एकस्याधिक्येन च त्रयोभेदाः, एवं सङ्कलनया षट् । तारतम्येति-वृद्धोवृद्धतरोवृद्धतम इति । ५ तावतः पञ्चविंशतिः । ६ एकस्य वृद्धिरेकस्य समता एकस्य च क्षयः । ७ सविपर्यया-द्वन्द्वक्षय एकवृद्धिरित्यर्थः । ८ एषां दोषभेदानाम् ।

आनंत्यं तरतमयोगतश्च यासाम्
जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥७८॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथातो दोषोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वातचिकित्सा—

वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदः संशोधनं मृदु ।
स्वाद्वम्ललवणोष्णानि भोज्यान्यभ्यंगमर्दनम् ॥१॥
वेष्टनं त्रासनं[1] सेको मद्यं पैष्टिकगौडिकम् ।
स्निग्धोष्णा बस्तयो बस्तिनियमः सुखशीलता[2] ॥२॥
दीपनैः पाचनैः सिद्धाः स्नेहाश्चानेकयोनयः ।
विशेषान्मेद्यपिशितरसतैलानुवासनम् ॥३॥

पित्तचिकित्सा—

पित्तस्य सर्पिषः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम् ।
स्वादुतिक्तकषायाणि भोजनान्यौषधानि च ॥४॥
सुगंधशीतहृद्यानां गंधानामुपसेवनम् ।
कंठे[3] गुणानां हाराणां मणीनामुरसा धृतिः ॥५॥
कर्पूरचंदनोशीरैरनुलेपः क्षणे क्षणे ।
प्रदोषश्चंद्रमाः[4] सौधं हारि गीतं हिमोऽनिलः ॥६॥
अयंत्रणसुखं मित्रं पुत्रः[5] संदिग्धमुग्धवाक् ।
छंदानुवर्तिनो दाराः प्रियाः शीलविभूषिताः ॥७॥

---

१ त्रासनं मनसिउद्वेगकरणम् । २ सुखशीलता सौख्यवृत्तित्वम् । ३ कण्ठेगुण-संज्ञानां हाराणाम् ४ सुधाभिश्चूर्णैः कृतं सौधं धवलगृहम् । ५ संदिग्धाऽव्यक्ता मुग्धाऽप्रौढा च वाक्यस्य एवंविधः पुत्रः ।

शीतांबुधारागर्भाणि गृहाण्युद्यानदीर्घिका:[1] ।
सुतीर्थविपुलस्वच्छसलिलाशयसैकते ॥८॥
सांभोजजलतीरांते कायमाने[2] द्रुमाकुले ।
सौम्या भावा: पय:सर्पिर्विरेकश्च विशेषत: ॥९॥

कफ चिकित्सा—

श्लेष्मणो विधिना युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।
अन्नं रूक्षाऽल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम् ॥१०॥
दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रीतिप्रजागर: ।
अनेकरूपो व्यायामश्चिंता रूक्षं विमर्दनम् ॥११॥
धूमोपवासगंडूषा नि:सुखत्वं सुखाय च ॥१२॥

संसर्गचिकित्सा –

उपक्रम: पृथग्दोषाणां योऽयमुद्दिश्य कीर्तित: ।
संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत् ॥१३॥
ग्रैष्म: प्रायो मरुत्पित्ते, वासंत: कफमारुते ।
मरुतो योगवाहित्वात्कफपित्ते तु शारद: ॥१४॥

चिकित्साकाल :—

चय एव जयेद्दोषं कुपितं त्वविरोधयन् ।
सर्वकोपे बलीयांसं शेषदोषाविरोधत: ॥१५॥
प्रयोग: शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत् ।
नाऽसौ[3] विशुद्ध:, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥१६॥

दोषाणांकोष्ठाच्छाखादिगमनम्—

व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्यादहिताचरणादपि ।
कोष्ठाच्छाखास्थिमर्माणि द्रुतत्वान्मारुतस्य च ॥१७॥
दोषा यांति, तथा तेभ्य:[4] स्रोतोमुखविशोधनात् ।

शाखादिभ्य:कोष्ठगमनम्—

वृद्ध्याऽभिष्यंदनात्पाकात्कोष्ठं वायोश्च निग्रहात् ॥१८॥

---

१ दीर्घिका वापी । २ कायमाने वेत्रवादिरचितगृहे । ३ असौ प्रयोग: । ४ तेभ्य: शाखादिभ्य: ।

तत्रस्थाश्च[1] विलंबेरन् भूयो हेतुप्रतीक्षिणः ।
ते कालादिबलं लब्ध्वा कुप्यंत्यन्याश्रयेष्वपि ॥१९॥

परस्थानगतदोषाणां चिकित्साविधिः—

[2]तत्राऽन्यस्थानसंस्थेषु तदीयामबलेषु तु ।
कुर्याच्चिकित्सां स्वामेव बलेनान्याभिभाविषु ॥२०॥
आगंतुं शमयेद्दोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य वा ।
प्रायस्तिर्यग्गता दोषाः क्लेशयंत्यातुरांश्चिरम् ॥२१॥

तिर्यग्गतदोषचिकित्सा—

कुर्यान्न तेषु त्वरया देहाग्निबलवित्क्रियाम् ।
शमयेत्तान् प्रयोगेण सुखं वा कोष्ठमानयेत् ॥२२॥
ज्ञात्वा कोष्ठप्रपन्नांश्च यथासन्नं[3] विनिर्हरेत् ।

साममल लक्षणानि—

स्रोतोरोधबलभ्रंशगौरवानिलमूढताः ॥२३॥
आलस्यापक्तिनिष्ठीवमलसंगारुचिक्लमाः ।
लिंगं मलानां सामानां, निरामाणां विपर्ययः ॥२४॥

आमस्वरूपम्—

[4]ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् ।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥२५॥
[5]अन्ये दोषेभ्य एवातिदुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्च्छनात् ।
कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदंत्यामस्य संभवम् ॥२६॥

अत्र प्रक्षिप्तौ—

विण्मूत्रनखदंतत्वक्चक्षुषां पीतता भवेत् ।

---

१ तत्रस्थाः कोष्ठस्थाः । २ तत्रतेषुवातादिषु । तदीया तस्यान्यस्थानदोषस्येयं तदीयाता न स्वकीयाम् । अन्यमन्यस्थानदोषमभिभवितुं शीलं येषां तेषु । अन्यदोषस्थानंगतोऽन्यो दोषोऽबलश्चेत् । स्थानस्थितदोषस्यैवोपक्रमणं कार्यं, गतो दोषः प्रबलश्चेत् गतदोषस्यैव चिकित्सा कार्येत्यर्थः । ३ यथासन्नं यथासमीपम् । ४ ऊष्मणो जाठराग्नेः । ५ अन्य आचार्याः ।

रक्तत्वमतितृष्णत्वं पृष्ठास्थिकटिसंधिरुक् ॥
शिरोरुक् जायते तीव्रा निद्रा विरसता मुखे ।
क्वचिच्च श्वयथुर्गात्रे ज्वरोऽतीसारहर्षणम् ॥

सामरोगाः—

आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः ।
सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः[1] ॥२७॥

सामदोषचिकित्साविधिः—

सर्वदेहप्रविसृताम् सामाम् दोषान्न निर्हरेत् ।
लीनाम् धातुष्वनुत्क्लिष्टाम् फलादामाद्रसानिव ॥२८॥
आश्रयस्य हि नाशाय ते[2] स्युर्दुर्निर्हरत्वतः ।
पाचनैर्दीपनैः स्नेहैस्ताम्[3] स्वेदैश्च परिष्कृताम् ॥२९॥
शोधयेच्छोधनैः काले यथासन्नं यथाबलम् ।
हंत्याशु युक्तं वक्त्रेण द्रव्यमामाशयान्मलाम् ॥३०॥
घ्राणेन[4] चोर्ध्वजत्रूत्थाम्, पक्वाधानाद्गुदेन[5] च ।
उत्क्लिष्टानध ऊर्ध्वं वा न चामान्वहतः स्वयम् ॥३१॥
धारयेदौषधैर्दोषाम्, विधृतास्ते[6] हि रोगदाः ।
प्रवृत्ताम् प्रागतो दोषानुपेक्षेत हिताशिनः ॥३२॥
विबद्धाम् पाचनैस्तैस्तैः पाचयेन्निर्हरेत वा ।

शोधनकालः—

श्रावणे कार्तिके चैत्रे मासि साधारणे क्रमात् ॥३३॥
ग्रीष्मवर्षाहिमचिताम् वाय्वादीनाशु निर्हरेत् ।
अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः ॥३४॥
संधौ साधारणे तेषां दुष्टाम् दोषाम् विशोधयेत् ।
स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य, व्याधौ व्याधिवशेन तु ॥३५॥

---

१ तदुद्भवा आमोत्पन्नाः । २ ते सामादोषाः । ३ ताम् सामदोषान् । ४ घ्राणेन नासया युक्तं शिरोविरेचनमौषधम् । ५ गुदेन युक्तं बस्तिरित्यर्थः । ६ ते दोषाः ।

कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम् ।
प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥३६॥

औषधभक्षणकालाः—

[1]भुञ्ज्यादनन्नमन्ना[2]दौ, [3]मध्येऽन्ते[4] कवलांतरे[5] ।
ग्रासे[6] ग्रासे, मुहुः[7] सान्नं[8] [9]सामुद्गं, निशि[10] चौषधम् ॥३७॥
कफोद्रेके गदेऽनन्नं[1] बलिनो रोगरोगिणोः ।
[2]अन्नादौ विगुणेऽपाने समाने[3] मध्य इष्यते ॥३८॥
व्यानेऽन्ते [4]प्रातराशस्य, [5]सायमाशस्य तूत्तरे[6] ।
[7]ग्रासग्रासांतयोः[8] प्राणे प्रदुष्टे मातरिश्वनि ॥३९॥
[9]मुहुर्मुहुर्विषच्छर्दिहिध्मातृट्श्वासकासिषु ।
योज्यं सभोज्यं भैषज्यं भोज्यैश्चित्रैररोचके[1] ॥४०॥
[2]कंपाक्षेपकहिध्मासु[3] सामुद्गं लघुभोजिनाम् ।
ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु [10]स्वप्नकाले प्रशस्यते ॥४१॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथाऽतो द्विविधोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

द्विविधउपक्रमः—

"उपक्रम्यस्य हि द्वित्वाद्द्विधैवोपक्रमो मतः ।
एकः संतर्पणस्तत्र द्वितीयश्चापतर्पणः ॥१॥
बृंहणं यद्बृहत्त्वाय, लंघनं लाघवाय यत् ॥२॥

---

१ उंत्तरे—उदानवायौविगुणे सायमाशस्यान्ते । २ ग्रासश्चग्रासान्तश्चतयोः । ग्रासोग्रासयुक्तमौषधम् । ग्रासान्तोग्रासमध्ये च । ३ सामुद्गं-भोजन स्यादावन्ते च ।

देहस्य,

भवतः प्रायो भौमापमितरच्च[1] ते ।

चतुर्णां द्वयोरेवान्तर्भावः ।

स्नेहनं रूक्षणं कर्म स्वेदनं स्तंभनं च यत् ॥३॥

भूतानां तदपि द्वैध्याद्वितयं नाऽतिवर्तते ।

लंघनस्य द्वैविध्यम्—

शोधनं शमनं चेति द्विधा तत्राऽपि लंघनम् ॥४॥

शोधनलक्षणं तद्भेदाश्च—

यदीरयेद्बहिर्दोषान्पंचधा शोधनं च तत् ।

निरूहो वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः[2] ॥५॥

शमनस्यलक्षणं भेदाश्च—

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।

समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा ॥६॥

पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः[3] ।

वाते पित्ते च बृंहणं शमनमेव—

बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च ॥७॥

बृंहणार्हाः—

बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्शितान् ।

भाराध्वोरःक्षतक्षीणरूक्षदुर्बलवातलान् ॥८॥

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धान् ग्रीष्मेऽपरानपि[4] ।

बृंहणोपायाः—

मांसक्षीरसितासर्पिर्मधुरस्निग्धबस्तिभिः ॥९॥

---

१ ते सन्तर्पणापतर्पणे । सन्तर्पणं पृथिवीजलप्रायम् । इतरत् भौमापा-दन्यत्—अग्निवाय्वाकाशात्मकमपतर्पणम् । २ कायरेकोविरेचनम् । ३ क्षुदिति—क्षुत्तृषोर्निरोधः । ४ अपरान्—एभ्योऽनुक्तान् स्वस्थानित्यर्थः ।

स्वप्नशय्यासुखाभ्यंगस्नानिर्वृतिहर्षणैः[1] ।

लंघनार्हाः –

मेहामदोषातिस्निग्धज्वरोरुस्तंभकुष्ठिनः ॥१०॥
विसर्पविद्रधिप्लीहशिरःकंठाऽक्षिरोगिणः ।
स्थूलांश्च लंघयेन्नित्यं शिशिरे त्वपरानपि[2] ॥११॥

संशोधन विषय कथनम् —

तत्र संशोधनैः स्थौल्यबलपित्तकफाऽधिकान् ।
आमदोषज्वरच्छर्दिरतीसारहृदामयैः ॥१२॥
विबंधगौरवोद्गारहृल्लासादिभिरातुरान् ।
मध्यस्थौल्यादिकान् प्रायः पूर्वं पाचनदीपनैः ॥१३॥
[3]एभिरेवाऽमयैरार्तान् हीनस्थौल्यबलादिकान् ।
क्षुत्तृष्णानिग्रहैर्दोषैस्त्वार्तान्मध्यबलैर्दृढान् ॥१४॥
समीरणातपाऽऽयासैः किमुताऽल्पबलैर्नरान् ।
न बृंहयेल्लंघनीयान्,
बृंह्यास्तु मृदु लंघयेत् ॥१५॥

बृंहणलंघनयोः संशयेकर्तव्यता—

युक्त्या वा देशकालादिबलतस्तानुपाचरेत्[4] ।

बृंहितस्य लक्षणम्—

बृंहिते स्याद्बलं पुष्टिस्तत्साध्यामयसंक्षयः[5] ॥१६॥
विमलेंद्रियता सर्गो मलानां, लाघवं रुचिः ।

लंघितस्य लक्षणम्—

क्षुत्तृट्सहोदयः शुद्धहृदयोद्गारकंठता ॥१७॥

---

१ निर्वृतिः—मनसोऽव्याकुलत्वम् । २ अपरान् व्याधितान् । ३ एभिराम-दोषादिभिः । ४ तान्-बृंह्यान् । ५ तत्साध्येति तेनबृंहणेनसाध्य आमयः ।

व्याधिमार्दवमुत्साहस्तंद्रानाशश्च लंघिते ।

अतिबृंहितलंघितयोर्लक्षणम्—

अनपेक्षितमात्रादिसेविते कुरुतस्तु ते ॥ १८॥
अतिस्थौल्याऽतिकार्श्यादीन् वक्ष्यंते ते च सोपधाः ।
रूपं तैरेव[1] च ज्ञेयमतिबृंहितलंघिते ॥१९॥
अतिस्थौल्यापचीमेहज्वरोदरभगंदरान् ।
कासर्संन्यासकृच्छ्रामकुष्ठादीनतिदारुणाम् ।।२०॥

अतिस्थौल्य चिकित्सा—

[2]तत्र मेदोऽनिलश्लेष्मनाशनं सर्वमिष्यते ।
कुलत्थजूर्णश्यामाकयवमुद्गमधूदकम् ॥२१॥
मस्तुदंडाहतारिष्टचिंताशोधनजागरम् ।
मधुना त्रिफलां लिह्याद्गुडूचीममयां घनम् ॥२२॥
रसांजनस्य महतः पंचमूलस्य गुग्गुलोः ।
शिलाजतुप्रयोगश्च माग्निमंथरसो हितः ॥२३॥
विडंगं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित् ॥२४॥
[3]व्योपकट्वीवराशिग्रुविडंगाऽतिविषास्थिराः ।
हिंगुसौवर्चलाजाजीयवानीधान्यचित्रकाः ॥२५॥
[4]निशे बृहत्यौ हपुषा पाठा मूलं च केंबुकात् ।
एषां चूर्णं मधु घृतं तैलं च सदृशांशकम् ॥२६॥
सक्तुभिः षोडशगुणैर्युक्तं पीतं निहंति तत् ।
अतिस्थौल्यादिकान् सर्वान् रोगानन्यांश्च तद्विधान् ॥२७॥

---

१५ तैरति स्थौल्यादिभिरतिकार्श्यादिभिश्च । २ तत्र तेषु अतिस्थौल्यादिषु । ३ दण्डाहतंतक्रम् । ३ व्योषः कटुत्रयम् । कट्वी 'कुटकी' हि० वरा त्रिफला । शिग्रुः 'सहिजन' हि० । अतिविषा 'अतीस' हि० । स्थिरा शालपर्णी । ४ निशे 'हरिद्रा, दारुहरिद्रा च । बृहत्यौ 'भटकटैया, बनभांटा' हि० । हपुषा 'हाउबेर' हि० ।

हृद्रोगकामलाश्विग्रश्वासकासगलग्रहाम् ।
बुद्धिमेधास्मृतिकरं सन्नस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ८॥

अतिलंघितोत्पन्नरोगाः—

अतिकार्श्यं भ्रमः कासस्तृष्णाधिक्यमरोचकः ।
स्नेहाग्निनिद्राहक्छोत्रशुक्रौजःक्षुत्स्वरक्षयः ॥२९॥
बस्तिहृन्मूर्धजंघोरुत्रिकपार्श्वरुजा ज्वरः ।
प्रलापोऽर्ध्वानिलग्लानिच्छर्दिपर्वास्थिभेदनम्[1] ॥३०॥
विण्मूत्रादिग्रहाद्याश्च जायतेऽतिविलंघनात् ।

स्थौल्यापेक्षयाकार्श्यंवरम्—

कार्श्यमेव वरं स्थौल्यात्,
नहि स्थूलस्य भेषजम् ॥३१॥
बृंहणं लंघनं नालमतिमेदोऽग्निवातजित् ।
मधुरस्निग्धसौहित्यैर्यत्सौख्येन विनश्यति ॥३२॥
[2]क्रशिमा, स्थविमाऽत्यंतविपरीतनिषेवणैः ।

कृशेभैषज्यम्—

योजयेद्बृंहणं तत्र सर्वं पानान्नभेषजम् ॥३३॥
अचितया हर्षणेन ध्रुवं संतर्पणेन च ।
स्वप्नप्रसंगाच्च कृशो वराह इव पुष्यति ॥३४॥
नहि मांससमं किंचिदन्यद्देहबृंहत्वकृत् ।
मांसादमांसं[3] मासेन संभृतत्वाद्विशेषतः ॥३५॥

स्थूलकृशयोः समासेनचिकित्सितम्—

गुरु चाऽतर्पणं स्थूले, विपरीतं हितं कृशे ।
यवगोधूममुभयोस्तद्योग्याहितकल्पनम्[4] ॥३६॥

---

१ ऊर्ध्वानिल ऊर्ध्ववातः । २ कृशस्यभावः क्रशिमा । स्थूलस्यभावः स्थविमा । ३ मांसमत्ति भक्षयतीति मांसादोमांसभक्षी । संभृतत्वात्पुष्टत्वात् । ४ तयोः स्थूलकृशयोर्योग्योचिता, आहिता कृता कल्पना संयोगसंस्कारादिनोपयोग उपायो यस्मिन् यवे गोधूमे च ।

अन्योपक्रमस्यद्वयोरेवान्तर्भाव :--

दोषगत्याऽतिरिच्यंते[1] ग्राहिभेद्यादिभेदत: ।
उपक्रमा न ते द्वित्वादिभन्ना अपि गदा इव" ॥३७॥

पंचदशोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम् ।

अथाऽत: शोधनादिगणसंग्रहमध्यायं व्याख्यास्याम: ।

वमनकराणि—

[2]मदनमधुकलंबानिंबबिंबीविशाला
त्रपुसकुटजमूर्वादेवदालीकृमिघ्नम् ।
विदुलदहनचित्रा: कोशवत्यौ करंज:
कणालवणवचैलासर्पपाश्छर्दनानि ॥१॥

विरेचन कराणि—

[3]निकुंभकुंभत्रिफलागवाक्षी-
स्नुक्शंखिनीनीलिनितिल्वकानि ।
शम्याककंपिल्लकहेमदुग्धा
दुग्धं च मूत्रं च विरेचनानि ॥२॥

---

१ ग्राही च भेदी च ग्राहिभेदिनौ-आदी येषामुपक्रमाणा तेषाभेदस्तस्मात् । अतिरिच्यन्ते, अधिका भवन्ति । द्वित्वात्मन्तर्पणापतर्पणरुपात् । २ लंबा 'कड्डवी' तूंबी, बिम्बी-'कुंदुरु' । विशाला 'इन्द्रायण' । त्रपुसं 'कडवाखीरा' । देवदाली 'बन्नाल' । कृमिघ्नं 'बायविडग' । विदुल: 'जलबे ।' । दहनं 'चीत' । चित्रा मूपापर्णी कोशवत्यौ-'कडवा नेनुवा, तरोई' । कणा: 'पीपर' । इति हिन्दी भाषायाम् । ३ निकुम्भ: 'जमाल गोटा' । कुम्भ: 'निसोथ' । गवाक्षी 'इन्द्रायण' । स्नुक् 'सेंहुड' । शाखिनी 'मवतिक्ता' । नीलिनी 'नील' । शम्याक: 'अमलतास' । कम्पिल्लक: 'कबीला' । इति हिन्दी ।

निरूहणसाधनानि—

मदनकुटजकुष्ठदेवदाली-
मधुकवचादशमूलदारुरास्नाः ।
[1]यवमिसिकृतवेधनं कुलत्थो
मधुलवणं त्रिवृता निरूहणानि ॥३॥

शिरोविरेचनानि—

वेल्लाऽपामार्गव्योषदार्वीसुराला[2]
बीजं शैरीषं बार्हतं शैग्रवं च ।
सारो माधूकः सैंधवं तार्क्ष्यशैलं
त्रुट्यौ पृथ्वीका शोधयंत्युत्तमागम् ॥४॥

वातहराणि—

भद्रदारु[3] नतं कुष्ठं दशमूलं बलाद्वयम् ।
वायुं वीरतरादिश्च विदार्यादिश्च नाशयेत् ॥५॥

पित्तहराणि—

दूर्वाऽनंता[4] निंबवासाऽऽत्मगुप्ता
गुंद्राऽभीरुः शीतपाकी प्रियंगुः ।
न्यग्रोधादिः पद्मकादिः स्थिरे द्वे
पद्मंवन्यं सारिवादिश्च पित्तम् ॥६॥

कफहराणि—

आरग्वधादिरर्कादिर्मुष्ककाद्योऽसनादिकः[5] ।

---

१ मिसिः 'सौंफ'। कृतवेधनः कड़वा नेनुवा' इति हिन्दी। २ वेल्लः 'वायविडङ्ग'। दार्वी 'दारुहरदी'। सुराला 'राल'। शैरीषंबीजं 'सिरसाबीज'। बार्हतंबी० 'वनभांटा का बीज'। शैग्रवं 'सहिजन बीज'। सारो माधूकः–महुवा सार'। तार्क्ष्यशैलं 'रसवत'। त्रुट्यौ 'छोटी बड़ी इलायची'। पृथ्वीका 'मंगरैल'। इति हिन्दी। ३ भद्रदारु-'देवदार'। नतं 'तगर' बलाद्वयं 'बरियरा' ककही'। ४ अनन्ता 'जवासा' वासा = रूसा। आत्मगुप्ता = कैंवाच। गुन्द्रा = 'गोदनी'। अभीरुः = शतावर। शीतपाकी-गुञ्जाभेदः स्थिरे = सरिवन, पिठवन। वन्यम् = क्षुद्रमुस्ता। ५ बलासजित् कफजित्।

सुरसादिः समुस्तादिर्वत्सकादिर्बलासजित् ॥७॥

जीवनीयगणः—

जीवंती[1] काकोल्यौ मेदे द्वे मुद्गमाषपर्ण्यौ च ।
ऋषभकजीवकमधुकं चेति गणो जीवनीयाख्यः ॥८॥

विदार्यादिगणः—

विदारिपंचांगुलवृश्चिकाली[2]
वृश्चीवदेवाह्वयशूर्पपर्ण्यः ।
कंडूकरी जीवनह्रस्वसंज्ञे
द्वे पंचके गोपसुता त्रिपादी ॥९॥
विदार्यादिरयं हृद्यो बृंहणो वातपित्तहा ।
शोषगुल्माऽङ्गमर्दोर्ध्वश्वासकासहरो गणः ॥१०॥

दाहादिनाशकानि—

सारिवोशीरकाश्मर्यमधूकशिशिरद्वयम्[3] ।
यष्टी परूषकं हंति दाहपित्तास्रतृड्ज्वरान् ॥११॥

स्तन्यादिकरोगणः—

[4]पद्मकपुंड्रौ वृद्धितुगर्ध्यः
शृंग्यमृता दशजीवनसंज्ञाः ।
स्तन्यकरा घ्नंतीरणपित्तं

---

१ काकोली, क्षीरकाकोली । मेदा, महामेदा । २ विदारी = विदारीकंद । पश्चाङ्गुलः = रेंड । वृश्चिकाली = मेषशृङ्गी । वृश्चीवः = पथरी । देवाह्वयः = देवदारु । शूर्पपर्ण्यौ = माषपर्णी (वनउर्द) मुद्गपर्णी वनमूंग । कंडूकरी = कौंवाच । ह्रस्वजीवनम् (१) शतावर (२) क्षीर काकोली (३) जीवन्ती (४) जीवक (५) ऋषभक । शालपर्णी पृष्ठपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुराख्यम् । गोपसुता = सारिवा । त्रिपादी = हंसपादी हंसराज । ३ शिशिरद्वयम् = श्वेतरक्तभेदेन चन्दनद्वयम् । परुषकं = फालसा । ४ पद्मकं = हेमपद्मम् । पुण्ड्रः = सफेद कमल । वृद्धिः = मुण्डी । तुगा = वंशलोचन । शृङ्गी = काकड़ासिंगी ।

प्रीणनजीवनबृंहणवृष्याः ॥१२॥

तृष्णादिनाशकोगणः—

[1]परूषकं वरा द्राक्षा कट्फलं कतकात्फलम् ।
राजाह्वं दाडिमं शाकं तृणमूत्रामयवातजित् ॥१३॥

विषादिनाशकोगणः—

[2]अंजनं फलिनी मांसी पद्मोत्पलरसांजनम् ।
सैलामधुकनागाह्वं विषांतर्दाहपित्तनुत् ॥१४॥

कफादिनाशकोगणः—

[3]पटोलकटुरोहिणीचंदनं
मधुस्रवगुडूचिपाठान्वितम् ।
निहंति कफपित्तकुष्ठज्वरान्
विषं वमिमरोचकं कामलाम् ॥१५॥

गुडूच्यादिपञ्चकम्—

[4]गुडूचीपद्मकारिष्टधानका रक्तचंदनम् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत् ॥१६॥

आरग्वधादिर्गणः—

[5]आरग्वधेंद्रयवपाटलिकाकतिक्ता
निंबाऽमृतामधुरसास्रुववृक्षपाठाः ।
भूनिंबसैर्यकपटोलकरंजयुग्मं

---

१ वरा = त्रिफला । कतकं = निर्मली । राजाह्वं = खिन्नी । शाकं = शाकवृक्षः । २ अंजनं = सफेद काला सुर्मा । फलिनी = प्रियङ्गु । मांसी = जटामासी । नागाह्वं = नागकेसर । ३ कटुकरोहिणी = कुटकी । मधुस्रवा = मूर्वा ४ पद्मकं = पदमाख । अरिष्ट = नीम । ५ आरग्वधः = अमलतास । पाटलिः = पाँड़र । काकतिक्ता = काकजंघा । मधुरसा = मूर्वा । स्रुववृक्षः = भटकटैया । भूनिम्बः = चिरायता । सैर्यकः = कटसरैयालालफूलको सप्तच्छदः = छितउन । अग्निश्चित्रकः । सुषवी = कालाजीरा । फलं = मैनफर । बाणः = कटसरैयापीले फूल की । घोण्टा = बदरी ।

वीरतरादिर्गणः—

[1]वेल्लंतरारणिकबूक वृषाऽश्मभेद-
गोकंटकेत्कटसहाचरबाणकाशाः ।
वृक्षादनीनलकुशद्वयगुंठगुंद्रा-
भल्लूकमोरटकुरंटकरंभपार्थाः ॥२४॥
वर्गो वीरतराद्योऽयं हंति वातकृताम् गदाम् ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राऽघाततरुजाहरः ॥२५॥

रोध्रादिर्गणः—

[2]रोध्रशाबररोध्रपलाशा
जिंगिणीसरलकट्फलमुक्ताः ।
कुत्सितांबकदलीगतशोकाः
एलवालुपरिपेलवमोचाः ॥२६॥
एषरोध्रादिको नाम मेदःकफहरो गणः ।
योनिदोषहरः स्तंभी वर्ण्यो विषविनाशनः ॥२७॥

अर्कादिर्गण :—

अर्कालर्को[1] नागदंती विशल्या

---

१ बेल्लन्तरः = खश । अरणिकोऽग्निमन्थः । बूक = शिव लिङ्गी । वृषः = अडूसा । अश्मभेदः = पाखानभेद । गोकण्टकः = गोखुरु । इत्कटः = इक्षुरिति-हेमाद्रिः । सहाचरः = कटसरैया । वृक्षादनी = बादा । नलः = 'नरकट' । कुशद्वयं स्थूल सूक्ष्म भेदेन । गुण्ठः = तृणविशेषः । भल्लूकः = सोनापाढा । मोरटः = मूर्वा । कुरण्टः = पीले फूल की कटसरैया । करम्भः = उत्तमारणी । पार्थाः = आदित्य-भक्ता, २ जिंगिणी = कृष्णशाल्मली । सरलं = देवदारु । मुक्ता = रास्ना । कुत्सिताम्बः = कदम्बः । गतशोकः = अशोकः । एलवालुरेलेयम् । परिपेलवं = क्षुद्रमुक्ता । मोचा = शाल्मली । अलर्कः = श्वेत पुष्पोमन्दारः । अर्कोरक्तपुष्पो मन्दारः । नागदन्ती = पर्वपुष्पी । विशल्या = करियारी ।

[1]भार्गी रास्ना वृश्चिकाली प्रकीर्या ।
प्रत्यक्पुष्पी पीततैलोदकीर्या
श्वेतायुग्मं तापसानां च वृक्षः ॥२८॥
अयमर्कादिको वर्गः कफमेदोविषापहः ।
कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥२९॥

सुरसादिर्गणः—

सुरसयुगफणिज्झं[2] कालमाला विडंगं
खरबुसवृषकर्णीकट्फलं कासमर्दः ।
क्षवकसरसिभार्गी कार्मुका काकमाची
कुलहलविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥३०॥
सुरसादिगणः श्लेष्मभेदःकृमिनिषूदनः ।
प्रतिश्यायाऽरुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥३१॥

मुष्ककादिर्गणः—

[3]मुष्ककस्नुग्वराद्वीपिपलाशधवशिंशपाः ।
गुल्ममेहाश्मरीपाण्डुमेदोऽर्शःकफशुक्रजित् ॥३२॥

वत्सकादिर्गणः

वत्सकमूर्वाभार्गी[4]
कटुकामरिचंघुणप्रिया च गंडीरम् ।

---

१ वृश्चिकाली = उष्ट्रधूमकः । प्रकीर्या = करंज । प्रत्यक्पुष्पी = अपामार्गः । पीततैला = ज्योतिष्मती । उदकीर्या = करंज । श्वेतायुग्मं = विष्णुक्रान्ता । तापसवृक्षः = इंगुदी 'हिंगोट, इंगुवा' हिन्दी । २ सुरसयुगं = तुलसी गौरकृष्ण भेदेन । फणिज्झं = मरुवकः । कालमाला = कृष्णार्जकः । खरबुसः = खरपत्रकः । वृषकर्णी = मूषकपर्णी । कासमर्दः = 'कसौंदी' हिन्दी । क्षवकः = नकछिकनी । सरसी-कपित्थपत्रा, कार्मुका = रक्तमंजरी काकमाची = मकोय । कुलहलः = मुंडी । विषमुष्टिः = कुचिला, बकाइन । भूस्तृणम् = सुगन्धतृण । भूतकेशी = निर्गुण्डी । ३ मुष्ककः = मोखा । द्वीपी = चीत । ४ घुणप्रिया = अतीस । गण्डीरम् = सेंहुड़ ।

[1]एलापाठाजाजी

कट्वङ्गफलाजमोदसिद्धार्थवचाः ॥३३॥

जीरकहिंगुविडंगं पशुगंधा पंचकोलकं हन्ति ।

चलकफमेदःपीनसगुल्मज्वरशूलदुर्नाम्निः ॥३४॥

वचादिर्गण :—

[2]वचाजलददेवाह्वनागराऽतिविषाऽभयाः ।

हरिद्रादिर्गण :—

[3]हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकलशीकुटजोद्भवाः ॥३५॥

वचाहरिद्रादिगणावामातीसारनाशनौ ।

मेदःकफाढ्यपवनतन्यदोषनिबर्हणौ ॥३६॥

प्रियङ्ग्वादिर्गणः—

प्रियंगुपुष्पाञ्जनयुग्मपद्मा-

[3]पद्मादरजोयोजनवल्ल्यनन्ता ।

मानद्रुमो मोचरसः समंगा

पुन्नागशीतं मदनीयहेतुः ॥३७॥

अंबष्ठादिर्गणः—

अंबष्ठा मधुकं नमस्करी

[4]नंदीवृक्षपलाशकच्छुराः ।

रोध्रं धातकिबिल्वपेशिके

कट्वंगः कमलोद्भवं रजः ॥३८॥

गणौ प्रियंग्वबष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ ।

---

१ पाठा = पाढी अजाजी = जीरा । कट्वङ्गफलं = सोनापाढा फल । सिद्धार्थकः = सफेद सरसो । पशुगन्धा = ममरी । २ जलदोमुस्ता । देवाह्वं = देवदार । नागरं = सोठ । कलशी = पृश्निपर्णी । कुटजोद्भव इन्द्रयवः । ३ पुष्पाञ्जनम् = सफेद काला सुर्मा । पद्मा = भाङ्गीं । योजनवल्ली = मजीठ । अनन्ता = जवासा । मानद्रुमः = शाल्मली । समंगा = लजाधुर । पुंनागः = रक्तकेसरः । शीतं = चन्दनम् । मदनीयहेतुः = धवः । ४ अम्बष्ठा = पाढी । नमस्करी = लजाधुर । नन्दीवृक्षः = जयवृक्षः । कच्छुरा = धन्वयासकः ।

संधानीयौ हितौ पित्ते व्रणानामपि रोपणौ ॥३९॥

मुस्तादिर्गणः—

[1]मुस्तावचाऽग्निद्विनिशाद्वितिक्ता-
भल्लातपाठत्रिफलाविषाख्याः ।
कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि-
स्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥४०॥

न्यग्रोधादिर्गणः—

[2]न्यग्रोधपिप्पलसदाफलरोध्रयुग्मं
जंबूद्वयाऽर्जुनकपीतनसोमवल्काः ।
प्लक्षाऽम्रवंजुलपियालपलाशनंदी-
कोलीकदंबविरलामधुकं मधूकम् ॥४१॥
न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः संग्राही भग्नसाधनः ।
मेदःपित्तास्रतृड्दाहयोनिरोगनिबर्हणः ॥४२॥

एलादिर्गणः—

[3]एलायुग्मतुरुष्ककुष्ठफलिनीमांसीजलध्यामकं
स्पृक्काचोरकचोचपत्रतगरस्थौणेयजातीरसाः ।

---

१ अग्निश्चित्रकः । द्वितिक्ता = कटुकाकाकतिक्ता च । विषा = अतीस । कुष्ठं = कूट । त्रुटी = एला । हैमवती = वचा । २ न्यग्रोधः = वटवृक्षः । सदाफलः = उदुम्बरः गूलर । जम्बूद्वयं वृहद्दलभेदेन । कपीतनः = पारिसपिप्पलः । सोमवल्कः = खदिरः । प्लक्षः = पाकर । वंजुलः = वेतसः । प्रियाल = चिरौंजी । कोली = बैर । विरला = तेंदुवावृक्ष । ३ तुरुष्कः = लोहबान । जलं = सुगंधबाला । ध्यामकं = सुगंधतृण । स्पृक्का = देवीलता । चोरकः = ग्रंथिपर्णः चोचं = दालचीनी । पत्रं = तेजपात । स्थौणेयं = "कुकरौंधा" । जातीरसः = बोल ।

[1]शुक्तिर्व्याघ्रनखोऽमराह्वमगुरुः श्रीवासकं कुंकुमं
चंडागुग्गुलुदेवधूपखपुराः पुन्नागनागाह्वयम् ॥४३॥
एलादिको वातकफौ विषं च विनियच्छति ।
वर्णप्रसादनः कंडूपिटिकाकोठनाशनः ॥४४॥

श्यामादिर्गणः—

[2]श्यामा दंती द्रवंतीक्रमुककुटरणी
शंखिनी चर्मसाह्वा
स्वर्णक्षीरी गवाक्षी शिखरिरजनक-
च्छिन्नरोहाकरंजाः ।
बस्तांत्री व्याधिघातो बहलबहुरस-
स्तीक्ष्णवृक्षात् फलानि
श्यामाद्यो हंति गुल्मं विषमरुचिकफौ
हृद्रुजं मूत्रकृच्छ्रम् ॥४५॥

वर्गाणां प्रयोग व्यवस्था—

त्रयस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्गास्तेषु त्वलाभतः ।
युंज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्यादयौगिकम् ॥४६॥
एते वर्गा दोषदूष्याद्यपेक्ष्य
कल्कक्वाथस्नेहले ादियुक्ताः ।
पाने नस्येऽन्वासनेऽन्तर्बहिर्वा
लेपाभ्यंगैर्घ्नंति रोगान् सुकृच्छ्रान्" ॥४७॥

---

१ अमराह्वं = देवदार । श्रीवासकं = गंधा विरोजा । चंडा = चोरपुष्पी । देवधूवः = राल । खपुरः = कुंदुरुवागोद । नागाह्वयं = नागकेसरम् । २ श्यामा = निसोथ । क्रमुकः पठानीलोध । कुटरणी = सफेद निसोथ । चर्मसाह्वा = सातला । गवाक्षी = इन्द्रायण । शिखरी = अपामार्गः । रजनकः = कम्पिल्लकः । छिन्नरोहा— गिलोय । बस्तांत्री = त्रिधारा । व्याधिघातः = अमलतास । बहुलबहुरसः = ऊख । तीक्ष्णवृक्षः पीलु ।

षोडशोऽध्यायः ।

इतः १६ अध्यायतः २४ अ० पर्यन्तं
कायचिकित्साविषयः

अथाऽतः स्नेहविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

स्नेहनविरूक्षणयोः स्वरूपम्—

"गुरुशीतसरस्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम् ।
औषधं स्नेहनं प्रायो, विपरीतं विरूक्षणम् ॥१॥

स्नेहाः—

सर्पिर्मज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।
तत्राऽपि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्याऽनुवर्तनात्[1] ॥२॥
पित्तघ्नास्ते यथापूर्वमितरघ्ना[2] यथोत्तरम् ।
घृतात्तैलं गुरु वसा तैलान्मज्जा ततोऽपि च ॥३॥

यमकादि स्नेहनिरूपणम्—

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो[4] महान् ।

स्नेह्याः—

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः[5] ॥४॥
वृद्धबालाऽबलकृशा रूक्षाः क्षीणास्ररेतसः ।
वातार्तस्यंदतिमिरदारुणप्रतिबोधिनः[6] ॥५॥
स्नेह्या

---

१ संस्कारस्य=द्रव्यस्य अनुसहवर्तनात् । यदि घृतमन्यद्रव्यैरुष्णवीर्यैः सह संस्क्रियते चेत् तद्गुणान्स्वस्मिन्नाधत्ते न च स्ववीर्यं जहाति । तैलादौ तु एवं न विद्यते । यथा-चन्दनाद्यं तैलम् । २ यथापूर्वं यथा घृतमुत्तमं पित्तघ्नमन्ये स्नेहाः क्रमशो हीनाः । इतरघ्नावात कफघ्नाः । ततस्तैलात् । ४ द्वाभ्यां यथा-सर्पिस्तैलाभ्यां, सर्पिर्वसाभ्यां, सर्पिर्मज्जभ्याम् यमकः । एवमन्येष्वपियोज्यम् । ५ आसक्तशब्दो मद्यादिभिःसर्वैर्युज्यते । ६ दारुणप्रतिबोधिनः कृच्छ्रोन्मीलिनः ।

स्नेहनायोग्याः—

न त्वतिमंदाऽग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ।
ऊरुस्तंभाऽतिसाराऽऽमगलरोगगरोदरैः ॥६॥
मूर्च्छाच्छर्द्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्च पीडिताः ।
[1]अपप्रसूता, युक्ते च नस्ये वस्तौ विरेचने ॥७॥

घृत विषयः—

[2]तत्र धीस्मृतिमेधाऽग्निकांक्षिणां शस्यते घृतम् ।

तैल विषयः—

ग्रंथिनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥८॥
तैलं लाघवदार्ढ्यार्थिक्रूरकोष्ठेषु देहिषु ।

वसामज्जविषयः—

वाताऽऽतपाऽध्वभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु ॥६॥
रूक्षक्लेशक्षमाऽत्यग्निवातावृतपथेषु च ।
[3]शेषौ,

वसाया अन्य विषयः—

वसा तु संध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासु च ॥१०॥
तथा दग्धाऽऽहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ।

स्वस्थस्य स्नेहसेवनकालः—

तैलं प्रावृषि, वर्षांते सर्पिरन्यौ[4] तु माधवे ॥११॥

शोधनात्पूर्वस्नेहसेवनकालः—

ऋतौ साधारणे स्नेहः शस्तोऽह्नि विमले रवौ ।
तैलं त्वरायां शीतेऽपि,
घर्मेऽपि च घृतं निशि ॥१२॥
निश्येव पित्ते पवने संसर्गे पित्तवत्यपि ।
निश्यन्यथा[5] वातकफाद्रोगाः स्युः पित्ततो दिवा ॥१३॥

---

१ अपप्रसूता पतितगर्भा । २ तत्र स्नेहचतुष्टयेषु । ३ शेषौ-वसामज्जानौ । ४ अन्यौ वसामज्जानौ । माधवे-वैशाखे । घर्मे ग्रीष्मे । ५ अन्यथा उक्तविधितोऽन्यविधिना-यथा शीतकाले निशि घृतसेवया वातकफजारोगास्तथाग्रीष्मे दिवा तैलसेवया पित्तरोगाः स्युः ।

स्नेहसेवनयुक्तिः—

युक्त्याऽवचारयेत्स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन वस्तिभिः ।
नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाऽक्षितर्पणैः ॥१४॥

स्नेहप्रयोगकल्पना—

[1]रसभेदैककत्वाभ्यां चतुःषष्टिर्विचारणाः ।
स्नेहस्यान्याभिभूतत्वादल्पत्वाच्च क्रमात्स्मृताः ॥१५॥
[2]यथोक्तहेत्वभावाच्च नाच्छपेयो विचारणा ।
स्नेहस्य कल्पः स[3] श्रेष्ठः स्नेहकर्माशुसाधनात् ॥१६॥

स्नेहस्यति स्रोमात्राः—

द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामैर्जीर्यंति याः क्रमात् ।
ह्रस्वमध्योत्तमा मात्रास्तास्ताभ्यश्च[4] ह्रसीयसीम् ॥१७॥
कल्पयेद्वीक्ष्य दोषादीन्, प्रागेव तु ह्रसीयसीम् ।

त्रिविधस्नेहस्य कालमात्रालक्षणम्—

ह्यस्तने जीर्ण एवान्ने स्नेहोऽच्छः [5]शुद्धये बहुः ॥१८॥
शमनः क्षुद्वतोऽनन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते ।
बृंहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः,
हितः स[6] च ॥१९॥
बालवृद्धपिपासार्तस्नेहद्विएमद्यशीलिषु ।
स्त्रीस्नेहनित्यमंदाग्निसुखितक्लेशभीरुषु ॥२०॥
मृदुकोष्ठाऽल्पदोषेषु काले चोष्णे कृशेषु च ।

---

१ रसानांभेदः-एकैकत्वं च ताभ्याम्, रसाना भेदास्त्रिषष्टिः । एकैकत्वं केवलस्नेहः । विचारणा स्नेहप्रयोगकल्पना । भक्ष्याद्यन्नेन तया रसभेदेन मूर्धादितर्पणेन च याः कल्पनाःक्रमान्निर्दिष्टास्ताः स्नेहस्य अन्येन भक्ष्यादिना अभिभूतत्वातथाल्पत्वादल्पयोगित्वात् विचारणाःस्मृता इत्यर्थः । २ यथोक्तस्य विचारणायां निर्दिष्टस्य रसभेदेत्यादिरूपस्य हेतोरभावादच्छपेयः केवल स्नेहो न विचारणा । ३ स अच्छपेयः । ४ ताभ्यस्तिसृभ्यो ह्रस्वादिमात्राभ्यः । ह्रसीयसीमतिशयेनाल्पाम् । ५ शुद्धये शुद्धयर्थम् । ६ स बृंहणोऽल्पःस्नेहः ।

भोजनस्यादिमध्यावसानेषु पीतस्यस्नेहस्य फलम्—

प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदेहजान् ॥२१॥
व्याधीन् जयेद्बलं कुर्यादंगानां च यथाक्रमम् ।

स्नेहेऽनुपान व्यवस्था—

वार्युष्णमच्छेऽनुपिवेत् स्नेहे [1]तत्सुखपक्तये ॥२२॥
आस्योपलेपशुद्ध्यर्थं च, तौवरारुष्करे न[2] तु ।
जीर्णाजीर्णविशंकायां पुनरुष्णोदकं पिबेत् ॥२३॥
तेनोद्गारविशुद्धिः स्यात्ततश्च लघुता रुचिः ।

स्नेह पानेऽन्नविधिः—

भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन् श्वः पिबन् पीतवानपि ॥२४॥
द्रवोष्णमनभिष्यंदि नातिस्निग्धमसंकरम् ।

स्नेहपाने पथ्यापथ्यनिरुपणम्—

उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी [3]क्षपाशयः ॥२५॥
न वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ।
प्रवातयानयानाध्वभाष्यात्यासनसंस्थितिः ॥२६॥
[4]नोचात्युच्चोपधानाहः स्वप्नधूमरजांसि च ।
यान्यहानि पिबेत्तानि तावंत्यन्यान्यपि त्यजेत् ॥२७॥
सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिक्षीणेषु च क्रमः ।

स्नेहप्रयोगेविरिक्तवदुपचारः—

उपचारस्तु शमने कार्यः स्नेहे विरिक्तवत् ॥२८॥

स्नेहपानेदिनपरिमाणम्—

त्र्यहमच्छ[5] मृदौ कोष्ठे, क्रूरे सप्तदिनं पिबेत् ।

---

१ तस्य स्नेहस्य सुखपक्तये सुखेन पाकाय । २ तौवरे तुवरतैले, आरुष्करे चोष्णं वारिनानुपिबेत्, तयोरुष्णवीर्यत्वाद्विरोधः । तुवरं 'चालमोगरा' अरुष्कर 'भिलावा' इति हिन्दी । ३ क्षपाशयः-दिवास्वप्नं न कुर्यात्, रात्रावेव शयीत । ४ उपधानं 'तकिया' हिन्दी । ५ अच्छं केवलं स्नेहम् ।

संस्नेह्य शोधयेदेवं स्नेहव्यापन्न जायते ॥३८॥
मलं मलानीरयितुं स्नेहश्चासात्म्यतां गतः।

बालादिषु सद्यः स्नेहकरणम्—

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ॥३९॥
योगानिमाननुद्वेगान् सद्यः स्नेहान् प्रयोजयेत्।
प्राज्यमांसरसास्तेषु[1] पेया वा स्नेहभर्जिता ॥४०॥
तिलचूर्णश्च सस्नेहफाणितः कृशरा तथा।
क्षीरपेया घृताढ्योष्णा दध्नो वा सगुडः सरः ॥४१॥
पेया च पंचप्रसृता स्नेहैस्तंडुलपंचमैः।
सप्तैते स्नेहनाः सद्यः स्नेहाश्च लवणोल्बणाः ॥४२॥
[2]तद्ध्यभिष्यंद्यरूक्षं च सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च।

कुष्ठादिषुस्नेहननिषेधः—

गुडानूपाऽमिषक्षीरतिलमाषसुरादधि ॥४३॥
कुष्ठशोफप्रमेहेषु स्नेहार्थं न प्रकल्पयेत्।

तेषां स्नेहनप्रकारः—

त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गुल्वादिविपाचितान् ॥४४॥
स्नेहान्यथास्वमेतेषां[3] योजयेदविकारिणः।

व्याधिक्षीणानां स्नेहन प्रकारः

क्षीणानां त्वामयैरग्निदेहसंधुक्षणक्षमान् ॥४५॥

स्नेहसेवनफलम्—

दीप्तांतराग्निः परिशुद्धकोष्ठः
[4]प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः।
दृढेंद्रियो मंदजरः शतायुः
स्नेहोपसेवी पुरुषः प्रदिष्टः ॥४६॥

---

१ तेषु—बालादिषु। २ तत्—लवणम्। ३ एतेषांकुष्ठादीनाम्। अग्निसंधुक्षण-क्षमान् स्नेहान्। ४ प्रत्यग्रो नूतनः।

सप्तदशोऽध्यायः ।

स्वेदस्य चातुर्विध्यम्—

अथाऽतः स्वेदविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
"स्वेदस्तापोपनाहोष्मद्रवभेदाच्चतुर्विधः ।
तापोऽग्नितप्तवसनफालहस्ततलादिभिः[1] ॥१॥
उपनाहो वचाकिण्वशताह्वादेवदारुभिः ।
धान्यैः समस्तैर्गन्धैश्च रास्नैरण्डजटामिषैः ॥२॥
उद्रिक्तलवणैः स्नेहचुक्रतक्रपयः प्लुतैः ।
केवले पवने, श्लेष्मसंसृष्टे सुरसादिभिः ॥३॥
पित्तेन पद्मकाद्यैस्तु साल्वणाख्यैः[2] पुनः पुनः ।

बन्धनद्रव्याणि—

स्निग्धोष्णवीर्यैर्मृदुभिश्चर्मपट्टैरपूतिभिः ॥४॥
अलाभे वातजित्पत्रकौशेयाऽविकशाटकैः ।
रात्रौ बद्धं दिवा मुंचेन्मुंचेद्रात्रौ दिवाकृतम् ॥५॥
ऊष्मा [3]तूत्कारिकालोष्टकपालोपलपांसुभिः ।
[4]पत्रभंगेन धान्येन करीषसिकतातुषैः ॥६॥
अनेकोपायसंतप्तैः प्रयोज्यो देशकालतः ।

द्रवस्वेदः—

[5]शिग्रुवीरणकैरंडकारंजसुरसार्जकात् ॥७॥
शिरीषवासावंशार्कमालतीदीर्घवृंततः ।
पत्रभंगैर्वचाद्यैश्च मासैश्चाऽनूपवारिजैः ॥८॥
दशमूलेन च पृथक् सहितैर्वा यथामलम् ।
स्नेहवद्भिः सुराशुक्तवारिक्षीरादिसाधितैः ॥९॥

---

१ फालो लोहमयंहलाग्रम् । किण्वं सुराबीजम् । २ उपनाहस्वेदस्यापरं नाम साल्वण इति । ३ उत्कारिका 'लपसी' हि० लोष्टः मृत्पिण्डः । कपालं 'खपरा' हि० । ४ पत्रभङ्गेन-पत्रसमूहेन । करीषो गोमयचूर्णम् । तुषः 'भूसी' हि० । ५ दीर्घवृन्तः स्योनाकः ।

[1]कुंभीर्गलंतीर्नाडीर्वा पूरयित्वा रुजादितम् ।
वाससाऽऽच्छादितं गात्रं स्निग्धं सिंचेद्यथासुखम् ॥१०॥

अवगाह स्वेदः—

[2]तैरेव वा द्रवैः पूर्णं कुंडं सर्वांगगेऽनिले ।
अवगाह्याऽऽतुरस्तिष्ठेदर्शः कृच्छ्रादिरुक्षु च ॥११॥

स्वेद विधिः—

निवातेऽन्तर्बहिः स्निग्धो जीर्णान्नः स्वेदमाचरेत् ।
व्याधिव्याधितदेशर्तुवशान्मध्य[3]वरावरम् ॥१२॥

दोषविशेषे स्वेदः—

कफार्तो रूक्षणं रूक्षो, रूक्षस्निग्धं कफानिले ।
आमाशयगते वायौ, कफे पक्वाशयाश्रिते ॥१३॥
रूक्षपूर्वं तथा स्नेहपूर्वं स्थानानुरोधतः ।

वङ्क्षणादावल्पस्वेदः—

अल्पं वंक्षणयोः, स्वल्पं दृङ्मुष्कहृदये, न वा ॥१४॥

सम्यक्स्विन्न लक्षणम्—

शीतशूलक्षये स्विन्नो जातेऽगाना च मार्दवे ।
स्याच्छनैर्मृदितः स्नातस्ततः स्नेहविधिं भजेत् ॥१५॥

अतिस्वेदाचिह्नानि—

पित्तास्रकोपतृण्मूर्छास्वरागसदनभ्रमाः ।
संधिपीडाज्वरश्यावरक्तमंडलदर्शनम् ॥१६॥
स्वेदाऽतियोगाच्छर्दिश्च, तत्र[4] स्तंभनमौषधम् ।
विषक्षाराऽग्न्यतीसारच्छर्दिमोहातुरेषु च ॥१७॥

गुर्वादि द्रव्यं स्वेदकरम्

स्वेदनं गुरु तीक्ष्णोष्णं प्रायः, स्तंभनमन्यथा ।
द्रवस्थिरसरस्निग्धरूक्षसूक्ष्मं च भेषजम् ॥१८॥

---

१ कुम्भी 'वटलोही' हि० । गलन्ती 'गगरी' हि० । तैः पूर्वोक्तद्रवैः । ३ मध्येत्यादि स्वेदस्य विशेषणम् । ४ तत्र-स्वेदातियोगजन्यरोगेषु । विषाद्यातुरेषु च स्तम्भनमेवौषधम् ।

निवातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥२८॥
उपनाहाऽऽहवक्रोधभूरिपानं[1] क्षुधातपः ।

—:स्वेदगुणाः—

स्नेहक्लिन्नाः कोष्ठगा धातुगा वा
स्रोतोलीना ये च शाखाऽस्थिसंस्थाः ।
दोषाः स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं
नीताः [2]सम्यकशुद्धिभिर्निर्ह्रियंते ॥२९॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनविरेचनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः
"कफे विदध्याद्वमनं संयोगे वा कफोल्वणे ।
[3]तद्वद्विरेचनं पित्ते,

वमनयोग्यरोगिणः—

विशेषेण तु वामयेत् ॥१॥
नवज्वरातिसाराधः पित्तासृग्राजयक्ष्मणः ।
कुष्ठमेहाऽपचीग्रन्थिश्लीपदोन्मादकासिनः ॥२॥
श्वासहृल्लासवीसर्पस्तन्यदोषोर्ध्वरोगिणः ।

वमननिषेधः—

अवम्या गर्भिणी रूक्षः क्षुधितो नित्यदुःखितः ॥३॥
बालवृद्धकृशस्थूलहृद्रोगिक्षतदुर्बलाः ।
[4]प्रसक्तवमथुप्लीहतिमिरक्रिमिकोष्ठिनः ॥४॥
ऊर्ध्वप्रवृत्तवाय्वस्रदत्तबस्तिहतस्वराः ।
मूत्राघात्युदरी गुल्मी दुर्वमोऽत्यग्निरर्शसः ॥५॥
उदावर्तभ्रमाऽष्ठीलापार्श्वरुग्वातरोगिणः ।

---

१ भूरिपानं बहुमद्यपानम् । २ शुद्धिभिर्वमनविरेचनैः । ३ तद्वत्-पित्ते पित्तोल्वणे संयोगे वा । ४ प्रसक्तवमथु रतिशयवमनरोगी ।

कोष्ठं विमज्य भैषज्यमात्रां मंत्राभिमंत्रिताम् ॥१५॥

मन्त्राः—

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कोऽनिलाऽनलाः ।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पांतु वः ॥१६॥
रसायनमिवर्षीणाममराणामिवाऽमृतम् ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥१७॥
ॐ नमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजाय
तथा गतायाऽर्हते सम्यक्संबुद्धाय । तद्यथा—
ॐ भैषज्ये भैषज्ये महाभैषज्ये समुद्गते स्वाहा ॥
प्राङ्मुखं पाययेत् पीतं मुहूर्तमनुपालयेत् ।
तन्मनाः[1] जातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥१८॥
अंगुलिभ्यामनायस्तो[2] नालेन मृदुनाऽथवा ।
गलताल्वरुजन्वेगानप्रवृत्तान् प्रवर्तयन् ॥१९॥
प्रवर्तयेत् प्रवृत्तांश्च जानुतुल्यासने स्थितः ।
उभे पार्श्वे ललाटं च वमतश्चाऽस्य धारयेत् ॥ २० ॥
प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिलोमतः ।

रसैर्वमनम्—

कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैः पित्ते स्वादुहिमैरिति ॥ २१ ॥
वमेत् स्निग्धाम्ललवणैः संसृष्टे मरुता कफे ।
पित्तस्य दर्शनं यावच्छेदो वा श्लेष्मणो भवेत् ॥२२॥
हीनवेगः कणाधात्रीसिद्धार्थलवणोदकैः ।
वमेत्पुनः पुनः,

वमनस्यायोग लक्षणम्—

तत्रवेगानामप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥
प्रवृत्तिः सविबंधा वा केवलस्यौषधस्य वा ।
अयोगस्तेन निष्ठीवकंडूकोठज्वरादयः ॥ २४ ॥

---

१ तन्मनाः—वमिगतचित्तः । २ अनायस्तोऽनायासेन । नालेनैरण्डादिनालेन ।

सम्यग्योगलक्षणम्—

निर्विबंधं प्रवर्तंते कफपित्ताऽनिलाः क्रमात् ।
सम्यग्योगे,

वमनातियोग लक्षणम्—

अतियोगे तु फेनचंद्रकरक्तवत् ॥ २५ ॥
वमितं क्षामता दाहः कंठशोषस्तमो भ्रमः ।
घोरा वाय्वामया मृत्युर्जीवशोणितनिर्गमात् ॥ २६ ॥

सम्यग्वमिते धूमपानादि—

सम्यग्योगेन वमितं क्षणमाश्वास्य पाययेत् ।
धूमत्र[1]यस्यान्यतम स्नेहाचारमथाऽऽदिशेत् ॥ २७ ॥
ततः सायं प्रभाते वा क्षुद्वान् स्नातः सुखाम्बुना ।
भुंजानो रक्तशाल्यन्नं भजेत्पेयादिकं क्रमम् ॥ २८ ॥

पेयादिक्रमः—

[2]पेया विलेपीमकृतं कृतं च
यूषं रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।
क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान्
प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ २९ ॥

पेयादिक्रमस्य फलम्—

यथाऽणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः

---

१ धूमत्रयस्य स्निग्धमध्यतीक्ष्णाख्यस्य । स्नेहाचारमुष्णोदकोपचारीत्यादिकम् । २ प्रधानशुद्धिशुद्धस्त्रीन् भोजनकालान् पेयादिकं सेवेत । मध्यशुद्धिशुद्धो द्वौभोजनकालौ, हीनशुद्धिशुद्ध एकं भोजनकालं पेयादिकं सेवेत । कृतं शुण्ठी लवणादिसंस्कृतमकृत तद्विपरीतम् । यथा—प्रधानशुद्धिशुद्धः प्रथमदिने प्रातः सायं पेयां, द्वितीयदिनेऽपि प्रातः पेयामेवंतस्मिन्नेव दिने सायं विलेपी; तृतीयदिने द्वौकालौ विलेपीमेव । चतुर्थे कालद्वयमकृतं कृतं यूषं, पञ्चमे पूर्वाह्णे यूषमेव, सायं मांसरसम्, षष्ठदिने कालद्वयं मांसरसम् । सप्तमदिनात्प्रकृतिभोजनं कुर्यात् । एवं मध्यशुद्धौ कालद्वयं, हीनशुद्धावेककालं पेयादिकं भजेत् ।

संधुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥ ३० ॥

वमनविरेकयोर्वेग संख्या—

[1]जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-
श्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ ।
दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके
प्रस्थस्तथा स्याद्द्विचतुर्गुणश्च ॥३१॥

पित्ताद्यन्तंवमनादि—

पित्तावसानं वमनं विरेका-
[2]दर्धं कफान्तं च विरेकमाहुः
द्वित्रान् सविट्कानपनीय वेगान्
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥३२॥

कृतवमनस्य पुनर्विरेकः—

अथैनं वामितं भूयः स्नेहस्वेदोपपादितम् ।
श्लेष्मकाले गते ज्ञात्वा कोष्ठं सम्यग्विरेचयेत् ॥३३॥
बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणाऽपि विरेच्यते ।
प्रभूतमारुतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि ॥३४॥

दोषाधिक्ये रसतो विरेकः—

कषायमधुरैः पित्ते, विरेकः कटुकैः कफे ।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायौ,

विरेकाप्रवृत्तौ कर्तव्यम्—

अप्रवृत्तौ तु पाययेत् ॥३५॥

---

१ वमने हीनशुद्धौचत्वारो, मध्ये षट् प्रवरेऽष्टौ वेगाः । जघन्यं हीनम् । एवं विरेचने हीनशुद्धौदश, मध्ये द्विगुणादश-विंशतिः, प्रवरे त्रिगुणा दश-त्रिंशद्वेगा इष्टाः । मानतो—हीने प्रस्थो, मध्ये प्रस्थद्वयं, प्रवरे प्रस्थत्रयम् ।
२ पित्तान्तं विरेकादर्धं वमनं, कफान्तं च विरेकम् । सविट्कान् पुरीषसहितान् ।

उष्णांनु, स्वेदयेदस्य पाणितापेन चोदरम् ।
[1]उत्थानेऽल्पे दिने तस्मिन्भुक्त्वाऽन्येद्युः पुनः पिबेत् ॥३६॥

अदृढस्नेहकोष्ठस्यविरेचनविधिः—

अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहतः ।
भूयोऽप्युपस्कृततनुः स्वेदस्नेहैर्विरेचनम् ॥३७॥
[2]यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमतिक्रमम् ।

विरेकायोगलक्षणम्—

हृत्कुक्ष्यशुद्धिररुचिरुत्क्लेशः श्लेष्मपित्तयोः ॥३८॥
कंडूर्विदाहः पिटिका पीनसो वातविड्ग्रहः ।
अयोगलक्षणम्,

योगलक्षम्—

योगो वैपरीत्ये यथोदितात्[3] ॥३९॥

अतिविरिक्तस्यलक्षणम्—

विट्पित्तकफवातेषु निःसृतेषु क्रमात्स्रवेत् ।
निःश्लेष्मपित्तमुदकं श्वेतं कृष्णं सलोहितम् ॥४०॥
मांसधावनतुल्यं वा मेदःखंडाभमेव वा ।
गुदनिःसरणं तृष्णा भ्रमो नेत्रप्रवेशनम् ॥ ४१ ॥
भवंत्यतिविरिक्तस्य तथाऽतिवमनामयाः ।

सम्यग्विरिक्त कर्म—

सम्यग्विरिक्तमेनं च वमनोक्तेन योजयेत् ॥ ४२ ॥
धूमवर्ज्येन विधिना,
ततो वमितवानिव ।
क्रमेणान्नानि भुंजानो भजेत्प्रकृतिभोजनम् ॥ ४३ ॥

पीतभेषजस्य लङ्घनम्

अदृष्टजीर्णलिंगं च लंघयेत्पीतभेषजम् ॥ ४४ ॥

---

१ उत्थानेऽल्पे अल्पप्रवृत्तौ । २ यौगिकं विरेचनं, पूर्वमनुक्रमं मन्त्राभिमन्त्रित भैषज्यमात्रोष्णाम्बुपानादिकम् । ३ यथोदितात् हृत्कुक्ष्यशुद्धिरित्यादितः ।

स्नेहस्वेदोपधोत्क्लेशसंसर्गैरिति न बाध्यते ।

अग्निमान्द्यात् पेयादिक्रमः—

संशोधनास्रविस्रावस्नेहयोजनलंघनैः ॥ ४५ ॥
यात्यग्निर्मंदतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ।

सुताल्पपित्तादौ पेयानिषेधः—

सुताल्पपित्तश्लेष्माणां मद्यपं वातपैत्तिकम् ॥ ४६ ॥
पेयां न पाययेत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः ।

वमनस्यपाकाप्रतीक्षायां हेतुः—

अपक्वं वमनं दोषान्, पच्यमानं विरेचनम् ॥ ४७ ॥
निर्हरेद्वमनस्याऽतः पाकं न प्रतिपालयेत् ।

भेदनीयभोज्यम्

दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यः स्वयम् ॥ ४८ ॥
विरिच्यते भेदनीयैर्भोज्यैस्तमुपपादयेत् ।

मृद्वल्पौषधप्रयोगः—

दुर्बलः शोधितः [1]पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः ॥ ४९ ॥
अपरिज्ञातकोष्ठश्च पिबेन्मृद्वल्पमौषधम् ।
वरं तद[2]सकृत्पीतमन्यथा संशयावहम् ॥ ५० ॥
हरेद्बहूश्चलान्दोषानल्पाऽनल्पान् पुनः पुनः ।
दुर्बलस्य मृ[3]दुद्रव्यैः, रल्पान् संशमयेत्तु तान् ॥ ५१ ॥
च शयंति चिरं ते हि हन्युर्वैनमनिर्हृताः ।

मन्दाग्न्यादेः शोधनम्—

मंदाग्निं क्रूरकोष्ठं च सक्षारलवणैर्घृतैः ॥ ५२ ॥
संधुक्षिताग्निं विजितकफवातं च शोधयेत् ।

१—पूर्वशोधितः २—तद्विरेचनौषधम् । असकृत्पुनः पुनः । अन्यथा—बहु-मात्रंतीक्ष्णं चौषधम् । ३—मृदुद्रव्यैर्निहरेत् । अल्पान् तान्दोषान् सम्यक् शमयेत् । ते दोषाः ।

रूक्षादीनामौषधपरिणामादि—

रूक्षबह्वनिलक्रूर कोष्ठव्यायामशीलिनाम् ॥ ५३ ॥
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति ।
तेभ्यो बस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम् ॥ ५४ ॥
शकृन्निर्हृत्य वा किंचित्तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः ।
प्रवृत्तं हि मलं स्निग्धो विरेको निर्हरेत्सुखम् ॥ ५५ ॥

विषाद्यार्तेषु विरेचनम्—

विषाभिघातपिटिकाकुष्ठशोफविसर्पिणः ।
कामलापांडुमेहार्तांश्चाविस्निग्धान् विरेचयेत् ॥ ५६ ॥
[१]सर्वान् स्नेहविरेकैश्च रूक्षैस्तु स्नेहभावितान् ।

वमनादीनांमध्येस्नेहस्वेद प्रयोगः—

कर्मणां वमनादीनां पुनरप्यंतरेऽन्तरे ॥ ५७ ॥
स्नेहस्वेदौ प्रयुंजीत स्नेहमंते बलाय च ।
मलो हि देहादुत्क्लेश्य ह्रियते वाससो यथा ॥ ५८ ॥
स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्य ह्रियते शोधनैर्मलः ।
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य कुर्यात्संशोधनं तु यः ॥ ५९ ॥
दारु शुष्कमिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते ।

संशोधनफलम्—

बुद्धिप्रसादं बलमिंद्रियाणां
धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति
संशोधनं सम्यगुपास्यमानम्" ॥६०॥

१—सर्वान् विषाद्यानदीन् ईषत्स्निग्धान्स्नेहविरेकैः, स्नेहभावितान्रूक्षविरेकैः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

अथातो बस्तिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

वातोल्बणेषुबस्तिः—

"वातोल्बणेषु दोषेषु वाते वा बस्तिरिष्यते।
उपक्रमाणां सर्वेषां सोऽग्रणीस्त्रिविधश्च सः[1] ॥१॥
निरूहोऽन्वासनो बस्तिरुत्तरः

बस्तिसाध्या गदाः—

[2]तेन साधयेत्।
गुल्माऽनाहखु[3]डप्लीहशुद्धाऽतीसारशूलिनः ॥२॥
जीर्णज्वरप्रतिश्यायशुक्राऽनिलमलग्रहान्।
वर्ध्माऽश्मरीरजोनाशान् दारुणांश्चाऽनिलामयान् ॥३॥

निरूहायोग्य कथनम्—

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशं कृशः।
आमातिसारी वमिमान् संशुद्धो दत्तनावनः ॥४॥
कासश्वासप्रमेहार्शोहिध्माऽऽध्मानाल्पवह्नयः।
शूनपायुः कृताहारो बद्धच्छिद्रो दकोदरी ॥५॥
कुष्ठी च मधुमेही च मासाद् सप्त च गर्भिणी।

अनुवासन योग्याः—

[4]आस्थाप्या एव चान्वास्या विशेषादतिवह्नयः ॥६॥
रूक्षाः केवलवातार्ताः,

अनुवासना योग्याः—

नाऽनुवास्यास्त एव च।
येऽनास्थाप्यास्तथा पांडुकामलामेहपीनसाः ॥७॥

---

१ स बस्तिः। २ तेन निरूह बस्तिना। ३ खुडं—वातरक्तम्। शुद्धातिसारो-निरामातिसार इति हेमाद्रिः। ४ आस्थाप्या निरूहणयोग्याः।

निरन्नप्लीहविड्भेदिगुरुकोष्ठकफोदराः ।
अभिष्यंदिकृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुताः ॥८॥
पीते विषे गरेऽपच्यां श्लीपदी गलगंडवान् ।

निरूहान्वासनयोर्यन्त्रस्वरूपम्—

[1]तयोस्तु नेत्रं हेमादिधातुदार्वेस्थिवेणुजम ॥९॥
गोपुच्छाकारमच्छिद्रं श्लक्ष्णर्जु गुलिकामुखम् ।

नेत्रप्रमाणम्—

[2]ऊनेऽब्दे पंच, पूर्णेऽस्मिन्नासप्तम्योंऽगुलानि षट् ॥१०॥
सप्तमे सप्त, तान्यष्टौ द्वादशे, षोडशे नव ।
द्वादशैव परं विद्यात्,
वीक्ष्य वर्षांतरेषु च ॥११॥
वयोबलशरीराणि प्रमाणमभिवर्धयेत् ।

ने[illegible]कारणम्—

[3]स्वांगुष्ठेन समं मूले स्थौल्येनाग्रे कनिष्ठया ॥१२॥
पूर्णेऽब्देऽगुलमादाय तदर्धार्धप्रवर्धितम् ।

---

१ तयोर्निरूहणानुवासयोः । २ ऊनेऽपूर्णे पञ्चांगुलानि दैर्घ्येण रोगिणोऽ गुलमानेनेत्यर्थः आसप्तम्यः सप्तवर्षाणि मर्यादीकृत्य तेन, षड्वर्षे षडंगुलानि । तानि अंगुलानि । विंशात्परं द्वादशांगुलानि एव । प्रमाणं नेत्रस्यांगुलमानेन । ३ नेत्रस्यस्थौल्यं, मूले रोगिण मंगुष्ठेनसममग्रे तु कनिष्ठया समम् । पूर्ण वर्षे नेत्रमूले यत्र बस्तियोजनामवति, अंगुलमात्रं छिद्रं षड्वर्षपर्यन्त, सप्तमवर्षात्प्रभृति एकादशपर्यन्तं सपादमंगुलं, द्वादशवर्षात्षोडशवर्षपर्यन्तं सार्धमगुलं, षोडशवर्षे पादोनमंगुलं, सप्तदशेऽङ्गुलद्वयमष्टादशे सपादमंगुलद्वयमेकोनविंशतिवर्षे सार्धमंगुल द्वयं, विंशतिवर्षे पादोनमंगुलित्रयमेकविंशति वर्षे त्र्यंगुलं छिद्रम् । अर्धस्यार्धमर्धार्धं तस्यांगुलस्यार्धार्धं तदर्धार्धं तेन प्रवर्धितम् । अग्रे नेत्राग्रे योहिभागो गुदे प्रवेश्यते वर्षात्षड्वर्षं पर्यन्तं मुद्गवाहि, सप्तवर्षादिकादशपर्यन्तं माषवाहि द्वादशवर्षेकलायवाहि, षोडशवर्षे क्लिन्नकलायवाहि, एकविंशति वर्षेकर्कन्धुवाहि छिद्रम् ।

त्र्यंगुलं परमं छिद्रं मूलेऽग्रेवहते तु यत् ॥१३॥
मुद्गं माषं कलायं च क्लिन्नं कर्कन्धुकं क्रमात् ।
मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्रांते घटितकर्णिकम् ॥१४॥
वर्त्याऽग्रे पिहितं मूले यथास्वं द्व्यंगुलान्तरम्[1] ।
कर्णिकाद्वितयं नेत्रे कुर्यात्,

नेत्रबस्तियोजना—

[2]तत्र च योजयेत् ॥१५॥
अजाविमहिषादीनां बस्तिं सुमृदितं दृढम् ।
कषायरक्तं निश्छिद्रग्रंथिगंधसिरं तनुम् ॥१६॥
ग्रथितं साधु सूत्रेण सुखसंस्थाप्यभेषजम् ।
बस्त्यभावेऽङ्कपादं[3] वा न्यसेद्वासोऽथवा घनम् ॥१७॥

निरूहणमात्रा—

निरूहमात्रा [4]प्रथमे प्रकुंचो, वत्सरात्परम् ।
प्रकुंचवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः ॥१८॥
प्रसृतं वर्धयेदूर्ध्वं द्वादशाऽष्टादशस्य च ।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ १९ ॥

अनुवासनमात्रा—

यथायथं निरूहस्य पादो मात्राऽनुवासने ।

निरूहात्पूर्वमनुवासनम्—

आस्थाप्यं स्नेहितं स्विन्नं शुद्धं लब्धबलं पुनः ॥२०॥

१—कर्णिका छत्राकारा गुदाधिक्रान्तः प्रवेशरोधिनी । मूले यथास्वमून वर्षादिकस्याङ्गुलप्रमाणेन कर्णिकाद्वयंकुर्याद्बस्ति पुटबन्धनार्थम् । २—तत्र कर्णिकायें । ३—अङ्कपादं ऊरुचर्म, वासो वस्त्रम् । ४—प्रथमेवर्षे प्रकुंचः पलमात्रम् । षट्प्रसृता द्वादशपलानि द्वादशवर्षस्यैवततस्त्रयोदशादिषु पलद्वयवृद्धिःप्रतिवर्षमेव मष्टादशवर्षस्य द्वादशप्रसृताः सप्ततिवर्षपर्यन्तमिदं मानं ततः परं दशैव प्रसृताः ।

शीते वसंते च दिवा रात्रौ केचित्ततोऽन्यदा[1] ॥२१॥

निरूहणविधिः—

अभ्यक्तस्नातमुचितात्पादहीनं हितं लघु ।
अस्निग्धरूक्षमशितं सानुपानं द्रवादि च ॥ २२ ॥
कृतचंक्रमणं मुक्तविण्मूत्रं शयने सुखे ।
नात्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्श्वतः ॥२३॥
संकोच्य दक्षिणं सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम् ।
अथाऽस्य नेत्रं प्रणयेत्स्निग्धे स्निग्धमुखं गुदे ॥२४॥
उच्छ्वास्य बस्तेर्वदनं बद्ध्वा हस्तमकंपयन् ।
पृष्ठवंशं प्रति ततो नाऽतिद्रुतविलंबितम् ॥२५॥
नाऽतिवेगं न वा मंदं सकृदेव प्रपीडयेत् ।
[2]सावशेषं च कुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति ॥२६॥

निरूहादनन्तरं कर्तव्यविधिः—

दत्ते तूत्तानदेहस्य पाणिना ताडयेत्स्फिजौ ।
तत्पार्ष्णिभ्यां तथा शय्यां पादतश्च त्रिरुत्क्षिपेत् ॥ २७ ॥
ततः प्रसारितांगस्य सोपधानस्य पार्ष्णिके ।
आहन्यान्मुष्टिनांगं च[3] स्नेहेनाभ्यज्य मर्दयेत् ॥२८॥
वेदनार्तमिति स्नेहो नहि शीघ्रं निवर्तते ।
योऽयः शीघ्रं निवृत्तोऽन्यः स्नेहोऽतिष्ठन्नकार्यकृत् ॥२९॥

लघुभोजनम्—

दीप्ताग्नि त्वागतस्नेहं सायाह्ने भोजयेल्लघु ।

अहोरात्रमुपेक्षा—

निवृत्तिकालः परमस्त्रयो यामास्ततः परम् ॥३०॥

---

१ ततोऽन्यदा शीतवसन्तातिरिक्तकाले, उचितादभ्यस्तात् पादहीने चतुर्थभाग-हीने । नात्युच्छ्रिते-नात्युन्नते । उच्छीर्षेत्यत्रतोच्छीर्षे । वामसक्थ्नउपरिदक्षिणं सक्थिसंकोच्य, ततो दक्षिणसक्थ्नोऽपरं वामंसक्थि । २ स्नेहं सावशेषं कुर्यात् । ३ पार्ष्णिके मुष्टिना हन्यादंगं च स्नेहेनाभ्यज्यमर्दयेत् । अनागच्छन् स्नेह इति शेषः ।

अहोरात्रमुपेक्षेत परतः फलवर्तिभिः ।
तीक्ष्णैर्वा बस्तिभिः कुर्याद्यत्नं स्नेहनिवृत्तये ॥३१॥
अतिरौक्ष्यादनागच्छन्न चेज्जाड्यादिदोषकृत् ।
उपेक्षेतैव हि ततोऽम्बुपितश्च निशां पिबेत् ॥३२॥
प्रातर्नागरधान्याभ्यां कोष्णं केवलमेव वा ।

तृतीयादौ दिनेऽन्वासनम्—

अन्वासयेत्तृतीयेऽह्नि पंचमे वा पुनश्च तम् ॥३३॥
यथा वा स्नेहपक्तिः स्यादतोऽत्युल्बणमारुताम् ।
व्यायामनित्यान् दीप्ताग्नीन् रूक्षांश्च प्रतिवासरम् ॥३४॥

निरूहशोधनप्रकारः—

इति स्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये ।
निरूहं शोधनं युंज्यादस्निग्धे[1] स्नेहनं तनोः ॥३५॥
पंचमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे ।
मध्याह्ने किंचिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमंगले ॥३६॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम् ।
अवेक्ष्य पुरुषं दोषभेषजादीनि चादरात् ॥३७॥
बस्तिं प्रकल्पयेत्वैद्यस्तद्विद्यैर्बहुभिः सह ।

निरूहकल्पनाप्रकारः—

क्वाथ[2]विंशतिपलं द्रव्यस्याष्टौ फलानि च ॥ ३८ ॥
ततः क्वाथाच्चतुर्थांशं स्नेहं वाते प्रकल्पयेत् ।
पित्ते स्वस्थे च षष्ठांशमष्टमांशं कफाधिके ॥ ३९ ॥
[3]सर्वत्र चाऽष्टमं भागं कल्काद्भवति वा यथा ।
नाऽत्यच्छसान्द्रता बस्तेः
पलमात्रं गुडस्य च ॥ ४० ॥

१—अस्निग्धेसति तनोः शरीरस्य स्नेहनं कुर्यात् । २—द्रव्यस्य बस्तिकल्पोक्तस्य द्रव्यस्य । फलानिमदनफलानि अष्टौपलानि । ३—सर्वत्र वातेपित्ते कफे च कल्कस्याष्टमंभागं, वा यथा अत्यच्छसान्द्रता बस्तेर्नभवेत्तावान्कल्कोदेयः ।

मधुपट्वादिशेषं च युक्त्या
सर्वं तदेकतः ।
उष्णाम्बुकुंभीवाष्पेण तप्तं खजसमाहृतम् ॥ ४१ ॥

औषधस्यगुदे प्रणयनम्—

प्रक्षिप्य बस्तौ प्रणयेत्पायौ नात्युष्णशीतलम् ।
नातिस्निग्धं नवा रूक्षं नाऽतितीक्ष्णं नवा मृदु ॥ ४२ ॥
नात्यच्छसांद्रं नो [1]नाऽतिमात्रं नाऽपटु नाऽति च ।
लवणं तद्वदम्लं च

अन्यमतम्—

पठंत्यन्ये तु तद्विदः ॥ ४३ ॥
मात्रां त्रिपलिकां कुर्यात्स्नेहमाक्षिकयोः पृथक् ।
कर्षार्धं [2]माणिमंथस्य स्वस्थे कल्कपलद्वयम् ॥४४॥
सर्वद्रवाणां शेषाणां पलानि दश कल्पयेत् ।

निरूहणसंयोजनविधिः—

माक्षिकं लवणं स्नेहं कल्कं क्वाथमिति क्रमात् ॥ ४५ ॥
आवपेत निरूहाणामेष संयोजने विधिः ।

दत्तेनिरूहे विधिः—

उत्ताने दत्तमात्रे तु निरूहे तन्मना भवेत् ॥ ४६ ॥
कृतोपधानः संजातवेगश्चोत्कटकः सृजेत् ।

निरूहानागतावन्यबस्तिः—

[3]आगतौ परमःकालो मुहूर्तो मृत्यवेऽपरम् ॥ ४७॥
[4]तत्राऽनुलोमिकं स्नेहक्षारमूत्राऽम्लकल्पितम् ।
त्वरितं स्निग्धतीक्ष्णोष्णं बस्तिमन्यं प्रपीडयेत् ॥ ४८ ॥

१—न ऊनम् । तद्वदम्लं नात्यम्लमित्यर्थः । २—माणिमन्थस्य लवणस्य । ३—दत्तनिरूहस्यागमने कालो मुहूर्तो घटिकाद्वयात्मकः ४८ मिनट । ४—तत्र अनागते निरूहे ।

विदध्यात्फलवर्ति वा स्वेदनोऽत्रासनादि च ।
स्वयमेव निवृत्ते तु द्वितीयो बस्तिरिष्यते ॥ ४९ ॥
तृतीयोऽपि चतुर्थोऽपि यावद्वा सुनिरूढता ।

सम्यङ्निरूढ लिङ्गम्—

विरिक्तवच्च योगादीन्विद्यात्

भोजनादि—

योगे तु भोजयेत् ॥ ५० ॥
कोष्णेन वारिणा स्नातं तनुधन्वरसौदनम्[१] ।
विकारा ये निरूहस्य भवंति प्रचलैर्मलैः ॥ ५१ ॥
ते सुखोष्णांबुसिक्तस्य यांति भुक्तवतः शमम् ।

वातार्दितस्यानुवासनम्

अथ वातार्दितं भूयः सद्य एवाऽनुवासयेत् ॥ ५२ ॥
सम्यग्घीनाऽतियोगाश्च तस्य स्युः स्नेहपीतवत् ।

अनुवासनस्यान्यत्सम्यग्योग लक्षणम्—

किंचित्काल स्थितो यश्च सपुरीषो निवर्तते ॥ ५३ ॥
साऽनुलोमानिलः स्नेहस्तत्सिद्धमनुवासनम् ।

कफादिरोगेस्नेह बस्तिमानम्—

एकं त्रीन् वा बलासे तु स्नेहबस्तीन् प्रकल्पयेत् ॥५४॥
पञ्च वा सप्त वा पित्ते, नवैकादश वाऽनिले ।
पुनस्ततोऽप्ययुग्मांस्तु पुनरास्थापनं ततः ॥५५

यूपादिभोजनम्—

कफपित्ताऽनिलेष्वन्नं यूषक्षीररसैः क्रमात् ।

वातेबस्तिप्रकारः—

वातघ्नौषधनिःक्वाथत्रिवृतासैन्धवैर्युतः ॥५६॥
बस्तिरेकोऽनिले स्निग्धः स्वाद्वम्लोष्णरसान्वितः ।

१—धन्वरसो जाङ्गलजन्तुमांसरसः ।

पित्तेबस्तिः—

न्यग्रोधादिगणक्वाथौ पद्मकादिसितायुतौ ॥५७॥
पित्ते स्वादुहिमौ साज्यक्षीरेक्षुरसमाक्षिकौ ।

कफेबस्तिः—

आरग्वधादिनिःक्वाथवत्सकादियुतास्त्रयः ॥५८॥
रूक्षाः सक्षौद्रगोमूत्रास्तीक्ष्णोष्णकटुकाः कफे ।

संनिपाते बस्तित्रयम्—

त्रयश्च सनिपातेऽपि दोषान्घ्नंति यतः क्रमात् ॥५९॥
त्रिभ्यः परं वस्तिमतो नेच्छंत्यन्ये चिकित्सकाः ।
नहि दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दीयेत य प्रति ॥६०॥

अन्यमतम्—

उत्क्लेशनं शुद्धिकर दोषाणा शमनं क्रमात् ।
त्रिधैवं कल्पयेद्बस्तिमित्यन्येऽपि प्रचक्षते ॥६१॥
दोषौषधादिबलतः सर्वमे[१]तत्प्रमाणयेत् ।
सम्यङ्निरूढलिगं तु नाऽसंभाव्य निवर्तयेत् ॥६२॥

कर्मकालयोगाख्यबस्तिः—

[२]प्राक्स्नेह एकः पंचाते द्वादशाऽऽस्थापनानि च ।
सान्वासनानि कर्मैवं बस्तयस्त्रिंशदीरिताः ॥६३॥
[३]कालः पंचदशैकोऽत्र प्राक् स्नेहांते त्रयस्तथा ।
षट् पंच बस्त्यंतरिताः
योगोऽष्टौ वस्तयोऽत्र तु ॥६४॥
त्रयो निरूहाः स्नेहा[४]श्च स्नेहावाद्यंतयोरुभौ ।

१—एतत्-उत्क्लेशनादिकम् । २—अन्ते निरूहान्ते । द्वादशास्थापनानि निरूहवस्तयः सान्वासनानि प्रत्येकनिरूहणस्यानन्तरमनुवासनं कार्यम् । ३—अन्ते निरूहणसमाप्तौ त्रीणि अनुवासनानि । षट् स्ने ।: पञ्चभिर्बस्ति-:भिन्तरन्तरिताः । ४—स्नेहाश्चत्रयः ।

बस्तिकर्मत्रिदोषजित्—

स्नेहबस्ति निरूहं वा नैकमेवाऽतिशीलयेत् ॥६५॥
उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहान्निरूहान्मरुतो भयम् ।
तस्मान्नि[1]रूढः स्नेह्यः स्यान्निरूह्यश्चाऽनुवासितः ॥६६॥
स्नेहशोधनयुक्त्यैवं बस्तिकर्म त्रिदोषजित् ।

मात्राबस्तिः—

ह्रस्वया स्नेहपानस्य मात्रया योजितः समः ॥६७॥
मात्राबस्तिः स्मृतः स्नेहः शीलनीयः सदा च सः :
बालवृद्धाध्वभारस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकैः ॥६८॥
वातभग्नबलाऽल्पाग्निनृपेश्वरसुखात्मभिः ।
दोषघ्नो निष्परीहारो बल्यः सृष्टमल. सुखः ॥६९॥

उत्तरबस्तिः—

बस्तौ रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च ।
[1]द्वित्रास्थापनशुद्धेभ्यो विदध्याद्बस्तिमुत्तरम् ॥७०॥

नेत्रस्यपरिमाणम्—

आतुरांगुलमानेन तन्नेत्रं द्वादशांगुलम् ।
वृत्तं गोपुच्छवन्मूलमध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥७१॥
सिद्धार्थकप्रवेशाग्रं श्लक्ष्णं हेमादिसंभवम् ।
[2]कुंदाश्वमारसुमनःपुष्पवृंतोपमं दृढम् ॥७२॥
तस्य बस्तिर्मृदुलघुर्मात्रा शुक्तिर्विकल्प्य वा ।

उत्तरबस्तिदानप्रकारः—

अथ स्नाताशितस्यास्य स्नेहबस्तिविधानत. ॥७३॥
ऋजोः सुखोपविष्टस्य पीठे जानुसमे मृदौ ।

१—निरूढः कृतनिरूहणबस्तिः स्नेह्यः स्नेहनयोग्यः । निरूह्योनिरूहण-योग्यः । द्वे वा त्रीणिवेतिद्वित्राणि । तन्नेत्रमुत्तरबस्तिनेत्रम् । कृतकर्णिकमितिमूल मध्ययोरित्यत्र सम्बध्यते । २—अश्वमारः 'कनेर' । सुमनाः 'चमेली' हि० ।

हृष्टे मेढ्रे स्थिते चर्मो शनैः स्रोतोविशुद्धये ॥७४॥
सूक्ष्मां शलाकां प्रणयेत्¹या शुद्धेऽनुसेवनीम् ।
आमेहनात नेत्रं च निष्कंपं गुदवत्ततः ॥७५॥
पीडितेऽतेऽऽगते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ।

त्रिचतुरा बस्तयः

बस्तीननेन विधिना दद्यात्त्रींश्चतुरोऽपिवा ॥७६॥
अनुवासनवच्छेषंसर्वं²मेवाऽस्य चिंतयेत् ।

स्त्रीणांबस्तिदान विधिः—

स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतेः³ ॥७७॥
विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये ।
योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापदसृग्दरे ॥७८॥
नेत्रं दशांगुलं मुद्गप्रवेशं चतुरंगुलम् ।
अपत्यमार्गे योज्यं स्याद्, द्व्यंगुलं मूत्रवर्त्मनि ॥७९॥
मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
प्रकुंचो मध्यमा मात्रा, बालाना शुक्तिरेव तु ॥८०॥
उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् संकोच्य सक्थिनी ।
ऊर्ध्वजान्वास्त्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत् ॥८१॥
बस्तीस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयेत् ।
त्र्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात् पुनस्त्र्यहम् ॥८२॥

शुद्धेवमितेविरेकादि—

⁴पक्षाद्विरेको वमिते ततः पक्षान्निरूहणम् ।

१—तया शलाकया । २—शेषं सर्वं विधिपरिहारादिसम्यग्योगादिलक्षणादि च । ३—अपावृतेरावरणराहित्यात् । तदा ऋतुकाले । अत्यये विनाशकरे योनिविभ्रंशादौ अनृतौ ऋतुभिन्नकालेऽपि दद्यादुत्तरवस्तिम् । बालानां कन्यकानाम् । ४—पक्षादिति सम्यग्योगयुक्तवमनानन्तरं सप्ताह पेयादिक्रमस्ततो सप्ताहमनुवासनदानमित्यनया परिपाट्या पक्षादनन्तरमेव विरेचनम् । ततो विरेकादनन्तरं तथैव परिपाट्या पक्षादनन्तरं निरूहणं कार्यम् । कृतनिरूहः सद्यएवानुवासनयोग्यः । कृतविरेचनः सप्ताहादूर्ध्वमनुवासनयोग्योयतः सप्ताहंप्रकृतिभोजनापादनम् ।

सद्यो निरूढश्चान्वास्यः सप्तरात्रादविरेचितः ॥८३॥

बस्तेर्मलनिर्हरणे दृष्टान्तः—

यथा कुसुंभादियुतात्तोयाद्रागं हरेत्पटः
तथा द्रवीकृताद्देहाद्बस्तिर्निर्हरते मलान् ॥८४॥

रोगोत्पत्तौवायुर्हेतुः—

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा
मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च ।
ये संति तेषां नतु कश्चिदन्यो
वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥८५॥

वायोः शमायबस्तिरेवभेषजम्—

विट्श्लेष्मपित्तादिमलाचयानां
विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।
[1]तस्याऽतिवृद्धस्य शमाय नान्य-
द्बस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचित् ॥८६॥

बस्तेः श्रेष्ठता—

तस्माच्चिकित्सार्धं इति प्रदिष्टः
कृत्स्ना चिकित्साऽपि च बस्तिरेकैः ।
तथा निजागंतुविकारकारि-
रक्तौषधत्वेन सिराव्यधोऽपि ॥८७॥

---

१ तस्य वायोः । दोषजागन्तुजरोगोत्पादकं यद्रक्तं तस्यौषधत्वेन सिराव्यधोऽपि चिकित्सार्धः सर्वापि चिकित्सेत्यर्थः ।

षडंगुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया ॥ ८ ॥
स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ।

मर्शस्नेहस्यपरिमाणादि—

प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात् ॥९॥
यावत्पतत्यसौ बिंदुर्दशाष्टौ षट् क्रमेण ते[1] ।
मर्शस्योत्कृष्टमध्योना मात्रास्ता एव च क्रमात् ॥१०॥
बिंदुद्वयोनाः कल्कादेः

नस्येऽयोग्याः

योजयेन्न तु नावनम् ।
तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥११॥
भुक्तभक्तशिरः स्नातुकामस्रुतासृजाम् ।
नवपीनसवेगार्तसूतिकाश्वासकासिनाम् ॥१२॥
शुद्धानां दत्तबस्तीनां तथाऽनार्तवदुर्दिने ।
अन्यत्राऽत्ययिकाव्याधेः

नस्येकालदोषौ—

अथ नस्यं प्रयोजयेत् ॥१३॥
प्रातः श्लेष्मणि, मध्याह्ने पित्ते, सायंनिशोश्चले[2] ।
स्वस्थवृत्ते तु पूर्वाह्णे शरत्कालवसंतयोः ॥१४॥
शीते मध्यंदिने, ग्रीष्मे सायं, वर्षासु सातपे ।
वाताभिभूते शिरसि हिध्मायामपतानके ॥१५॥
मन्यास्तंभे स्वरभ्रंशे सायंप्रातर्दिने दिने
एकाहांतरम[3]न्यत्र सप्ताहं च तदाचरेत् ॥१६॥

१—ते बिन्दवः । ता मात्रा बिन्दुद्वयेनोनान्यूनाः कल्कादेः । २—चले वाते शीते शीतकाले मध्यंदिने मध्याह्ने नस्यं दद्यात् । ३—अन्यत्रवाताभिभूतमूर्धादिभ्योऽन्यस्मिन् रोगे एकाहान्तरं सप्तदिनपर्यन्तं नस्यमाचरेत् वाताभिभूतादिषु तु नैकाहान्तरितम् ।

नस्यदानप्रकारः—

स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य प्राक्कृता[1]वश्यकस्य च ।
निवातशयनस्थस्य जत्रूर्ध्वं स्वेदयेत् पुनः ॥१७॥
अथोत्तानर्जुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।
किंचिदुन्नतपादस्य किंचिन्मूर्धनि नामिते ॥१८॥
नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् ।
उष्णांबुतप्तं भैषज्यं प्र[2]नाड्या पिचुनाऽथवा ॥१९॥

नस्यानन्तरं कर्तव्यविधिः—

दत्ते पादतलस्कंधहस्तकर्णादि मर्दयेत् ।
शनैरुच्छिंघ निष्ठीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः ॥२०॥
आभेषजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।
मूर्च्छायां शीततोयेन सिंचेत्परिहरन् शिरः ॥२१॥
स्नेहं विरेच[3]नस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ।
नस्यान्ते वाक्शतं तिष्ठेदुत्तानः
[4]धारयेत्ततः ॥२२॥
धूमं पीत्वा कवोष्णांबुकवलान् कंठशुद्धये ।

नस्यस्य सम्यक्-हीनातियोग लक्षणानि

सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षपाटवम् ॥२३॥
रूक्षेऽक्षिस्तब्धता, शोषो नासास्ये, मूर्धशून्यता ।
स्निग्धेऽतिकंडूगुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः ॥२४॥
सुविरिक्तेऽक्षिलघुतास्वरवक्त्रविशुद्धयः ।
दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः, क्षामतातिविरेचिते ॥२५॥

प्रतिमर्शविषयः—

प्रतिमर्शः क्षतक्षामबालवृद्धसुखात्मसु ।
प्रयोज्योऽकालवर्षेऽपि

---

१ प्राक्पूर्वं कृतमावश्यकं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकं येन तस्य । २ प्रनाडी 'नली' पिचुः 'फाहा' इति हिन्दी । उत्तोमर्दनानन्तरम् । ३ विरेचनस्य नस्यस्यान्ते स्नेहं नस्यं दद्यात् । ४ ततो वाक्शतावस्थानादनन्तरं कवोष्णाम्बु कवलान् धारयेत् ।

प्रतिमर्शनिषेधः—

न त्विष्टो दुष्टपीनसे ॥२६॥
मद्यपीतेऽबलश्रोत्रे कृमिदूषितमूर्धनि ।
[1]उत्कृष्टोत्क्लिष्टदोषे च
हीनमात्रतया हि [2]सः ॥२७॥

प्रतिमर्शस्य प्रयोगे कालाः—

निशाहर्भुक्तवांताहःस्वप्नाध्वश्रमरेतसाम् ।
शिरोभ्यंजनगंडूषप्रस्रावाजनवर्चसाम् ॥२८॥
दंतकाष्ठस्य हासस्य योज्योऽन्तेऽसौ[3] द्विबिंदुकः ।
[4]पंचसु स्रोतसां शुद्धिः, क्लमनाशस्त्रिपु क्रमात् ॥२९॥
दृग्बलं पंचसु ततो दंतदार्ढ्यं मरुच्छमः ।

नस्यादीनां वयोविशेषेनिषेधः—

न नस्यमूनसप्ताब्दे नाऽतीताऽशीतिवत्सरे ॥३०॥
न चोनाष्टादशे धूमः, कवलो नोनपंचमे ।
न शुद्धिरूनदशमे न चाऽतिक्रांतसप्ततौ ॥३१॥

प्रतिमर्शः सदाहितकरः—

आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु बस्तिवत् ।
मर्शवच्च गुणान् कुर्यात्स हि नित्योपसेवनात् ॥३२॥
न चाऽत्र यंत्रणा नाऽपि व्यापद्भ्यो मर्शवद्भयम् ।
शिरसः श्लेष्मधामत्वात्स्नेहाः स्वस्थस्य नेतरे[5] ।

मर्शप्रतिमर्शभेदादि—

आशुकृच्चिरकारित्वं गुणोत्कर्षापकृष्टता[6] ॥३४॥

१—उत्कृष्टो वृद्धः । उत्क्लिष्टश्चञ्चलः । २—सः प्रतिमर्शः, हीनमात्रतया दीयत अतो दोषोत्क्लेशएवभवति । ३—असौ प्रतिमर्शः । ४—पञ्चसु-निशाहर्भुक्तवान्ताहःस्वप्नान्तेषु । त्रिषु-अध्वश्रमरेतसामन्तेषु, पञ्चसु शिरोऽभ्यञ्जनादीनामन्तेषु । ततोदन्तकाष्टहासयोरन्ते । ५—इतरेस्नेहा इत्यन्वयः । ६—मर्शे-आशुकारिता गुणोत्कर्षता, प्रतिमर्शे च चिरकारित्वं गुणापकृष्टताच ।

मर्शे च प्रतिमर्शे च विशेषो न भवेद्यदि ।
को मर्शं सपरीहारं सापदं च भजेत्ततः ॥३५॥
[1]अच्छपानविकाराख्यौ कुटीवातातपस्थिती ।
अन्वासमात्राबस्ती च तद्वदेव च निर्दिशेत् ॥३६॥

अणुतैलनिर्देशः—

[2]जीवंतीजलदेवदारुजलदत्वक्सेव्यगोपीहिमम्
दार्वीत्वङ्मधुकप्लवागुरुवरापुंड्राह्वबिल्वोत्पलम् ।
धावन्यौ सुरभिः स्थिरे कृमिहरं पत्रं त्रुटिं रेणुकम्
किंजल्कं कमलाह्वयं शतगुणे दिव्येऽम्भसि क्वाथयेत् ॥३७॥
तैलादसं दशगुणं परिशेष्य तेन[3]
तैलं पचेच्च सलिलेन दशैव वारान् ।
पाके क्षिपेच्च दशमे सममाजदुग्धं
नस्यं महागुणमुशंत्यणुतैलमेतत् ॥३८॥

नस्यशीलिनःफलम्—

घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कंधग्रीवाऽऽस्यवक्षसः ।
दृढेंद्रियास्त्वपलिता भवेयुर्नस्यशीलिनः" ॥३९॥

१—स्नेहपानंद्विविधं केवलस्नेहो विचारणामहितश्च । रसायनंद्विविधं कुटीप्रावेशिकं वातातपिकं च । अनुवासनं मात्राबस्तिश्च बस्तिद्वयम् । तद्वत्प्रमर्शवत् शीघ्रकारित्वादिनानिर्दिशेत् । २—जलं 'सुगन्धबाला' हिन्दी । जलदोमुस्तकम् । त्वक् 'दालचीनी' हि० । सेव्यमुशीरम । गोपीसारिवा । हिमचन्दनम् । प्लवः 'केवटीमोथा' हि० । वरात्रिफला । पुंड्राह्वं सिताम्भोजम् । धावन्यौ कंटकारीद्वयम् । स्थिरे-शालपर्णीपृष्ठपर्णी च । कृमिहरं विडंगम् । त्रुटिरेला । दिव्यमाकाशीयंजलम् । ३—तेन क्वाथेन । अणुषु स्रोतःसु प्रविश्य रोगहरणादणुतैलम् ।

एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो धूमपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
"ऊर्ध्वं कफवातोत्थविकाराणामजन्मने ।
उच्छेदाय च जातानां पिबेद्धूमं सदात्मवान् ॥१॥

त्रिविधोधूमः—

स्निग्धो मध्यः [1]स तीक्ष्णश्च वाते वातकफे कफे ।
योज्यः

धूमनिषेधः—

न रक्तपित्तातिविरिक्तोदरमेहिषु ॥२॥
तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहिणीदत्तबस्तिषु ।
मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषाशिषु ॥ ३ ॥
शिरस्यभिहते पांडुरोगे जागरिते निशि ।

अविधिपीतोधूमोरक्तादिकृत्—

रक्तपित्तान्ध्यबाधिर्यतृण्मूर्छामदमोहकृत् ॥ ४ ॥
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा
तत्र[2] शीतो विधिर्हितः ।

त्रयाणां धूमानां पृथक्कालः

क्षुतजृंभितविण्मूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम् ॥ ५ ॥
हासस्य दंतकाष्ठस्य धूममंते पिबेन्मृदुम् ।
कालेष्वेषु निशाऽऽहारनावनांते च मध्यमम् ॥ ६ ॥
निद्रानस्याजनस्नानच्छर्दितांते विरेचनम् ।

धूमनेत्रस्वरूपम्—

[3]बस्तिनेत्रसमद्रव्यं त्रिकोशं कारयेहजु ॥ ७ ॥

---

१ सधूमः । २ तत्र अकालपीतधूमजन्यविकारे । ३ बस्ति इति—यैर्द्रव्यैर्धात्वादिभिर्बस्तेर्नेत्रं क्रियते तैरेवद्रव्यैर्धूमपानार्थमपिनेत्रं विधेयम् । त्रिकोशंपर्वत्रययुक्तम् । मूलेऽङ्गुष्ठप्रवेशमग्रे च कोलास्थिप्रवेशम् ।

मूलाग्रेऽगुंष्ठकोलास्थिप्रवेशं वमनेऽपकम् ।
[1]तीक्ष्णस्नेहनमध्येषु त्रीणि चत्वारि पंच च ॥ ८ ॥
अंगुलानां क्रमात्पातुः प्रमाणेनाष्टकानि तत् ।

धूमपान विधिः—

ऋजूपविष्टस्त[2]च्चेता विवृतास्यस्त्रिपर्ययम् ॥ ६ ॥
पिधाय च्छिद्रमेकैकं धूमं नासिकया पिबेत् ।
प्राक् पिबेन्नासयोत्क्लिष्टे दोषे घ्राणशिरोगते ॥ १० ॥
उत्क्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं[3] तु कंठगे ।
मुखेनैव वमेद्धूमं नासया[4] दृग्विघातकृत् ॥ ११ ॥
आक्षेपमोक्षैः पातव्यो धूमस्तु [5]त्रिस्त्रिभिस्त्रिभिः ।

स्निग्धादि धूमपानम्—

अह्नः पिबेत्सकृत् स्निग्धं, द्विर्मध्यं, शोधनं परम् ॥ १२ ॥
त्रिश्चतुर्वा

मृदुधूमद्रव्याणि—

मृदौ तत्र द्रव्याण्यगुरु गुग्गुलुः ।
मुस्त[6]स्थौणेयशैलेयनलदोशीरवालकम् ॥ १३ ॥
वरांगकौंतीमधुकबिल्वमज्जैलवालुकम् ।
श्रीवेष्टकं सर्जरसो ध्यामकं मदनं प्लवम् ॥ १४ ॥

---

१ पातुः—धूमपातुरंगुलानां त्रीणि अष्टकानि चतुर्विंशत्यंगुलानि दैर्घ्येण तीक्ष्णधूमे । स्नेहने चत्वार्यष्टकानिद्वात्रिंदंगुलानि । स्नेहने पञ्चाष्टकानिचत्वारिंशदंगुलानि । नेत्रप्रमाणं । २ तच्चेता धूमपानलग्नमानसः । ३ अनुत्क्लिष्टे दोषे उत्क्लेशनार्थंप्राक् वक्त्रेण पश्चान्नासया पिबेत् । कण्ठगेदोषे विपरीतं प्राङ्नासया पश्चाद्वक्त्रेण पिबेत् । ४ नासयापीतोधूमोदृग्विघातकृद्भवति । ५ त्रिस्त्रिवारम् । ६ स्थौणेयः 'थुनेर' हि० । वरांगं 'दालचीनी' हि० । कौन्तीरेणुका । श्रीवेष्टकं 'बिरोजा' हि० । ध्यामकं सुगन्धतृणम् । फलानामक्षोटनालिकेरादीनां तथा साराणांखदिरासनादीनाञ्चस्नेहः ।

शल्लकी कुंकुमं माषा यवाः कुंदुरकं तिलाः ।
स्नेहः फलानां साराणां मेदोमज्जावसाघृतम् ॥ १५ ॥

शमनधूम द्रव्याणि—

[1]शमने शल्लकी लाक्षा पृथ्वीका कमलोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षरोध्रत्वचः सिता ॥ १६ ॥
यष्टीमधुः सुवर्णत्वक् पद्मकं रक्तयष्टिका ।
गंधाश्चाकुष्ठतगराः --

तीक्ष्णधूमद्रव्याणि—

[2]तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा ॥ १७ ॥
दशमूलमनोह्वाल लाक्षाश्वेताफलत्रयम् ।
गंधद्रव्याणि तीक्ष्णानि गणो मूर्धविरेचनः ॥ १८ ॥

धूमवर्तिविधानम्—

जले स्थितामहोरात्रमिषीकां द्वादशांगुलाम् ।
पिष्टैर्धूमौषधैरेवं पञ्चकृत्वः प्रलेपयेत् ॥ १६ ॥
वर्तिरंगुष्ठवत्स्थूला यवमध्या यथा भवेत् ।
छायाशुष्का विगर्भां तां स्नेहाभ्यक्ता यथायथम् ॥२०॥
धूमनेत्रार्पिता पातुमग्निप्लुष्टां प्रयोजयेत् ।

कासघ्नधूम विधिः

शरावसंपुटच्छिद्रे नाडीं न्यस्य दशांगुलाम् ॥२१॥
अष्टांगुलां वा वक्त्रेण कासवान् धूममापिबेत् ।

---

१ पृथ्वीका 'मगरैल' हि० । सुवर्णत्वक नागकेशरम् आरग्वध इति हेमाद्रिः । रक्तयष्टिका मंजिष्ठा । अकुष्ठगन्धा इति कुष्ठतगररहितानि गन्धद्रव्याणि ।
२ ज्योतिष्मती 'मालकांगुनी' हि० । निशा हरिद्रा । मनोह्वा–मैनसिल हि० । आलं हरितालम् । श्वेता कटभी ।
तीक्ष्णानि गंधद्रव्याणि कुष्ठतगरादीनि ।
गणः शोधनादिगणोक्तो वेल्लायामार्गेत्यादिकः ॥
३—इषीका 'सीक' हि० । ४ विगर्भामिषीकारहिताम् ।

धूमपान फलम्—

कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्वं
पूतिर्गंधः पांडुता केशदोषः।
कर्णाऽस्य क्षिस्रावकंड्वर्तिजाड्यं
तंद्रा हिध्मा धूमपं न स्पृशंति" ॥२२॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

अथाऽतो गंडूषादिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

चतुर्विधा गण्डूषः—

"चतुष्प्रकारो गंडूषः[१] स्निग्धः शमनशोधनौ।
रोपणश्च

तेषां योजना—

[२]त्रयस्तत्र त्रिषु योज्याश्चलादिषु ॥१॥
[३]अंत्यो व्रणघ्नः

गण्डूषद्रव्याणि—

स्निग्धोऽत्र स्वाद्वम्ल[४]पटुसाधितैः।
स्नेहैः,
संशमनस्तिक्तकषायमधुरौषधैः ॥२॥
शोधनस्तिक्तकट्वम्लपटूष्णैः,
रोपणः पुनः।
कषायतिक्तकैः,

गण्डूषे स्नेहादि प्रयोगः—

तत्र स्नेहः क्षीरं मधूदकम् ॥३॥
शुक्तं मद्यं रसो मूत्रं धान्याम्लं च यथायथम्।
कल्कैर्युक्तं विपक्वं वा यथास्पर्शं प्रयोजयेत् ॥४॥

१—गंडूषः 'कुल्ला' हि०। २—त्रयगंडूषेषु। त्रयःस्निग्धशमनशोधनाः। चलादिषु वातादिषु। ३—अन्त्यो रोपणः। ४—पटुर्लवणम्।

दन्तहर्षादौ तिलकल्कोदकं हितम्—

दंतहर्षे दंतचाले मुखरोगे च वातिके।
सुखोष्णमथवा शीतं तिलकल्कोदकं हितम् ॥५॥

तैलादीनांगण्डूषः—

गंडूषधारणे नित्यं तैलं मांसरसोऽथवा।

घृतादीनांगण्डूषः—

[1]ऊषादाहान्विते पाके क्षते वाऽऽगंतुसंभवे ॥६॥
विषक्षाराऽग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा।
वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ॥७॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम्।
[2]धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गंध्यनाशनम् ॥८॥
तदेवाऽलवणं शीतं मुखशोषहरं परम्।
आशु क्षारांबुगंडूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ॥९॥
सुखोष्णोदकगंडूषैर्जायते वक्त्रलाघवम्।

गण्डूषधारण प्रकारः—

निवाते सातपे स्विन्नमृदितस्कंधकंधरः[3] ॥१०॥
गंडूषमपिबन् किंचिदुन्नतास्यो विधारयेत्।
कफपूर्णास्यता यावत्स्रवद्घ्राणाक्षताऽथवा ॥

गण्डूषकवलयोर्भेदः—

असंचार्यो मुखे पूर्णो गंडूषः कवलोऽन्यथा ॥११॥

कवलग्रह साध्यरोगाः—

मन्याशिरः कर्णमुखाक्षिरोगाः
प्रसेककंठामयवक्त्रशोषाः।
हृल्लासतंद्रारुचिपीनसाश्च
साध्या विशेषात्कवलग्रहेण ॥१२॥

---

१ ऊषा-एकदेशिको दाहस्तुसर्वाङ्गगतः। २ धान्याम्लं-काञ्जिकम्। ३ कंधराग्रीवा।

प्रतिसारणम्—

कल्को रसक्रिया चूर्णस्त्रिविधं[1] प्रतिसारणम् ।
युंज्यात्तत् कफरोगेषु गंडूषविहितौषधैः ॥१३॥

मुखलेपः—

मुखालेपस्त्रिधा दोषविषहा वर्णकृच्च सः ।
उष्णो वातकफे शस्तः [2]शेषेष्वत्यर्थशीतलः ॥१४॥

लेपस्य त्रैविध्यम्—

त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धांगुलोन्नतिः ।

लेपस्य स्थित्यादि—

अशुष्कस्य स्थितिस्तस्य शुष्को दूषयति च्छविम् ॥१५॥
तमार्द्रयित्वाऽपनयेत्तदंतेऽभ्यंगमाचरेत् ।

लेपेपथ्यम्—

विवर्जयेद्दिवास्वप्नभाष्याऽग्न्यातपशुक्क्रुधः ॥१६॥

लेपनिषेधः—

न योज्य. पीनसेऽजीर्णे दत्तनस्ये हनुग्रहे ।
अरोचके जागरिते,

लेपगुणाः—

स च हंति सुयोजितः ॥१७॥
अकालपलितव्यंगवलीतिमिरनीलिकाः ।

ऋतुविशेषेणमुखालेपाः—

कोलमज्जा वृषान्मूल शाबरं गौरसर्षपाः ॥१८॥
सिंहीमूलं तिलाः कृष्णा दार्वीत्वङ् निस्तुषा यवाः ।
दर्भमूलहिमोशीरशिरीषमिशितंडुलाः ॥१९॥
कुमुदोत्पलकह्लारदूर्वामधुकचंदनम् ।
कालीयकतिलोशीरमांसीतगरपद्मकम् ॥२०॥

१—प्रतिसारणम् 'मंजन' हि० । दाहः । २—शेषेष्विति, वात पित्ते विषे च ।

तालीसगुंद्रापुंड्राह्वयष्टीकाशनतागुरुः ।
इत्यर्धार्धोदिता लेपा हेमंतादिषु षट् स्मृताः ॥२१॥

मुखालेप प्रयोजनम्—

मुखालेपनशीलानां दृढं भवति दर्शनम् ।
वदनं चाऽपरिम्लानं श्लक्ष्णं [1]तामरसोपमम् ॥२२॥

मूर्धतैलस्य चातुर्विध्यम्—

अभ्यंगसेकपिचवो बस्तिश्चेति चतुर्विधम् ।
मूर्धतैलम्,
बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरोत्तरम् ॥२३॥

अभ्यङ्ग विषयः—

तत्राऽभ्यंगः प्रयोक्तव्यो रौक्ष्यकंडूमलादिषु ।

परिषेक विषयः—

अरुंषिकाशिरस्तोददाहपाकव्रणेषु तु ॥२४॥
परिषेकः

पिचु विषयः—

पिचुः केशशातस्फुटनधूपने ।
नेत्रस्तंभे च

बस्तिविषयः—

बस्तिस्तु प्रसुप्त्यर्दितजागरे ॥२५॥
नासाऽस्यशोषे तिमिरे शिरोरोगे च दारुणे ।

शिरोबस्ति विधानम्—

विधिस्तस्य निषण्णस्य पीठे जानुसमे मृदौ ॥२६॥
शुद्धा[2]क्तस्विन्नदेहस्य दिनांते गव्यमाहिषम् ।
द्वादशांगुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं शिरःसमम् ॥२७॥
आकर्णबंधनस्थानं ललाटे वस्त्रवेष्टिते ।
चैलवेणिकया बद्ध्वा माषकल्केन लेपयेत् ॥२८॥
ततो यथाव्याधि शृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत् ।

१—तामरसं कमलम् । २—भावतस्तैलादिभिः ।

ऊर्ध्वं केशभुवो यावद् द्व्यंगुलम्,
धारयेच्च तम्[1] ॥२९॥

आवक्त्रनासिकोत्क्लेदात्,
[2]दशाऽष्टौ षट् चलादिषु ।

मात्रासहस्राणि,
[3]अरुजे त्वेकम्,
स्कंधादि मर्दयेत् ॥३०॥

मुक्तस्नेहस्य
परमं सप्ताहं तस्य[4] सेवनम् ।

कर्णतैलविधिः—

धारयेत्पूरणं कर्णे कर्णमूलं विमर्दयन् ॥ ३१ ॥
रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदने ।

मात्राप्रमाणम्—

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमंडलम् ॥ ३२ ॥
निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता ।

मूर्धतैल फलम्—

[5]कचसदनसितत्वपिंजरत्वं
परिफुटनं शिरसः समीररोगान् ।
जयति जनयतीन्द्रियप्रसादं
स्वरहनुमूर्धबलं च मूर्धतैलम् ॥ ३३ ॥

१—तंस्नेहम् । २—चले वाते दशमात्रासहस्राणि, पित्तेऽष्टौमात्रासहस्राणि कफे च षट्मात्रासहस्राणि । ३—अरुजे स्वस्थवृत्ते एकं मात्रासहस्रम् । ४—तस्य स्नेह वस्तेः । ५—कचानां सदनादिभिः सम्बन्धः । कचाः केशास्तेषां सदनपातः । पिंजरत्वं पिङ्गलवर्णता ।

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथात आश्च्योतनांजनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

नेत्ररोगाणांपरिषेकोहितः—

"सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनं हितम् ।
रुक्तोदकंडूघर्षाश्रुदाहरोगनिबर्हणम् ॥ १ ॥
उष्णं वाते, कफे कोष्णं, तच्छीतं रक्तपित्तयोः ।

आश्च्योतनविधिः—

निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम्
शुक्त्या प्रलम्बयाऽन्येन[1] पिचुवर्त्या कनीनिके ।
दश द्वादश वा बिन्दून् द्व्यंगुलादवसेचयेत् ॥३॥
ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः ।
[2]अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥ ४ ॥

अत्युष्णाद्याश्च्योतनाद्रोगादि—

अत्युष्णतीक्ष्णं रुग्रागदृङ्नाशायाऽक्षिसेचनम् ।
अतिशीत तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः ॥ ५ ॥
कषायवर्त्मता घर्षं, कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु[3] ।
विकारवृद्धिमत्यल्पं संरंभमपरिस्रुतम् ॥ ६ ॥
गत्वा सन्धिशिरोघ्राणमुखस्रोतांसि भेषजम् ।
ऊर्ध्वगान्नयने न्यस्तमपवर्तयते मलान् ॥ ७ ॥

अञ्जनप्रयोगः—

अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले ।
पक्वलिङ्गेऽल्पशोफार्तिकंडूपैच्छिल्यलक्षिते ॥ ८ ॥

१—अन्येन दक्षिणहस्तेन । २—अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन चैलेन वस्त्रखण्डेन । ३—बहु अतिमात्रमाश्च्योतनम् । अत्यल्पमक्षिसेचनम् । अपरिस्रुतमक्षिसेचनम् ।

मंदपर्यायुरोगेऽक्षिण प्रयोज्यं पनदूषिके[1]।
मार्ते पित्तकफासृग्भिर्मारुतेन विशेषतः ॥ ६ ॥

अंजनस्यत्रैविध्यम्—

लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा ।
अंजनम्,
लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः ॥ १० ॥
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः
स्वादुशीतैः प्रसादनम् ।

अंजनशलाका प्रकारः—

दशांगुला, तनुर्मध्ये, शलाका मुकुलानना ॥ ११ ॥
प्रशस्ता लेखने ताम्री, रोपणे काललोहजा ।
अंगुली च, सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥ १२ ।

त्रिविधांजनकल्पना—

पिंडो रसक्रिया चूर्णस्त्रिधैवाञ्जनकल्पना ।
गुरौ, मध्ये, लघौ, दोषे ता:[2] क्रमेण प्रयोजयेत् ॥१३॥
[3]हरेणुमात्रं पिंडस्य, वेल्लमात्रा रसक्रिया ।
तीक्ष्णस्य द्विगुणं [4]तस्य मृदुनः,
चूर्णितस्य च ॥ १४ ॥
द्वे शलाके तु तीक्ष्णस्य तिस्रः स्युरितरस्य[5] च ।

निशादावञ्जनानिषेधप्रकारः—

निशि स्वप्ने न मध्याह्ने म्लानेनोष्णगभस्तिभिः ॥१५॥
अक्षिरोगाय दोषाः स्युर्वर्धितोत्पीडितद्रुताः
प्रातःसायं च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा ॥१६॥

---

१ दूषिका नेत्रयोर्मलम् । रोपणेऽङ्गुली च शस्ता । २ ता अञ्जन कल्पनाः । ३ हरेणुर्वर्तुलकलायः । वेल्लोविडङ्गः । ४ तस्य पिण्डस्य मृदुद्रव्यकृतस्य द्विगुणं द्विहरेणुमात्रम् । ५ इतरस्य मृदुचूर्णाञ्जनस्य । ६ वर्धिता—वृद्धिंनीताः, उत्पीडिता अन्यस्थानगताः । द्रुता विलय गताः ।

अन्याचार्यमतम्—

वदन्त्यन्ये तु न दिवा प्रयोज्यं तीक्ष्णमंजनम् ।
विरेकदुर्बलं चक्षुरादित्यं प्राप्य सीदति ॥१७॥
स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सौम्यत्वेन च तर्पिता ।
शीतसात्म्या दृगाग्नेयी स्थिरतां लभते पुनः ॥१८॥

तन्मतदूषणम्—

अत्युद्रिक्ते बलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे ।
काममह्न्यपि नात्युष्णे तीक्ष्णमक्ष्णि प्रयोजयेत् ॥१९॥
अश्मनो जन्म लोहस्य तत एव च तीक्ष्णता ।
उपघातोऽपि तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः ॥२०॥

रात्रावञ्जननिषेधः—

न रात्रावपि शीतेति नेत्रे तीक्ष्णांजनं हितम् ।
दोषमस्रावयत्स्तंभकंडूजाड्यादिकारि तत्[1] ॥२१॥

भीतादीनामञ्जननिषेधः—

नांजयेद्भीतवमितविरिक्ताऽशीतवेगिते ।
क्रुद्धज्वरितता[2]ताक्षिशिरोरुक्शोकजागरे ॥२२॥
अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः ।
अजीर्णेऽग्न्यर्कसंतप्ते दिवा सुप्ते पिपासिते ॥२३॥

अतितीक्ष्णाद्यञ्जननिषेधः—

अतितीक्ष्णमृदुस्तोकबहुच्छघनकर्कशम् ।
अत्यर्थशीतलं चैवमंजनं नावचारयेत् ॥२४॥

नेत्रेऽञ्जितेकर्तव्यम्—

अथानुन्मीलयन् दृष्टिमन्तः संचारयेच्छनैः ।
अंजिते वर्त्मनी किंचिच्चालयेच्चै[3]वमंजनम् ॥२५॥
तीक्ष्णं व्याप्नोति, सहसा न चोन्मेषनिमेषणम् ।

---

१ तदंजनम् । २ तान्ताक्षिम्लानाक्षि । ३ एवं वर्त्मचालनेन तीक्ष्णमंजनं नेत्रं व्याप्नोति ।

निष्पीडनं च वर्त्मभ्यां क्षालनं वा समाचरेत् ॥२६॥

नेत्रक्षालनप्रकारः—

अपेतौषध[1]सरभं निर्वृतं नयनं यदा ।
व्याधिदोषर्तुयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा ॥२७॥
दक्षिणांगुष्ठकेनाऽक्षि ततो वामं सवाससा ।
ऊर्ध्ववर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत्[2] ॥२८॥
वर्त्मप्राप्ताञ्जनाद्दोषो रोगान्कुर्यादतोऽन्यथा ।
कंडूजाड्येऽञ्जनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत् पुनः ।
तीक्ष्णांजनाऽभितप्ते तु चूर्णं प्रत्यंजनं हितम्" ॥२९॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतस्तर्पणपुटपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तर्पणयोजनम्—

"नयने [4]ताम्यति स्तब्धे शुष्के रूक्षेऽभिघातिते ।
वातपित्तातुरे जिह्मे शीर्णपक्ष्माविलेक्षणे ॥१॥
कृच्छ्रोन्मीलशिराहर्षशिरोत्पाततमोऽर्जुनैः ।
स्यंदमंथान्यतोवातवातपर्यायशुक्रकैः ॥२॥
आतुरे शांतरागाश्रुशूलसंरंभदूषिके ।
निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः ॥३॥

तर्पणप्रकारः—

काले[5] साधारणे प्रातः सायं चोष्णान्तशामिनः ।
यवमाषमयी पाली नेत्रकोशाद्बहिः समाम् ॥४॥

---

१ अपगतांजनौषधक्षोभम् । वामनेत्रम् । २ इतरत् दक्षिणं नेत्रं वामेनाङ्गुष्ठकेन शोधनम् । ३ नेत्राशोधनेन । ४ ताम्यति म्लायति । ५ साधारणे काले वसन्ते शरदि च ।

र्घ्यंगुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत् ।
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्ताम्बुप्रविलापितम् ॥५॥

नक्तान्ध्यादिपु वसाप्रक्षेपः—

नक्तांध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिके वसाम् ।
आपक्ष्माग्राद्,

अनन्तरंमात्राविगणनादि—

अथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः ॥६॥
मात्रां[1] विगणयेत्तत्र वर्त्मसंधिसितासिते ।
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शत त्रीणि च पंच च ॥७॥
शतानि सप्त चाऽष्टौ च, दश मंथे दशानिले ।
पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च, बलासे पंच धारयेत् ॥८॥

अपाङ्गदेशे द्वारकरणादि—

कृत्वाऽपाङ्गे[2] ततो द्वार स्नेहं पात्रे तु गालयेत् ।
पिबेच्च धूमं, नेक्षेत व्योम रूपं च भास्वरम् ॥९॥
इत्थं प्रतिदिन वायौ, पित्ते त्वेकान्तरं, कफे ।
स्वस्थे च द्व्यंतरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् ॥१०॥

तृप्तादिलक्षणम्—

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम् ।
तृप्ते, विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः ॥११॥
स्नेहपीता तनुरिव क्लान्ता दृष्टिर्हि सीदति ।

पुटपाकप्रयोगः—

तर्पणानंतरं तस्माद्दृग्बलाधानकारिणम् ॥१२॥
पुटपाकं प्रयुंजीत पूर्वोक्तेष्वेव[3] यक्ष्मसु ।

वातादौस्नेहनादिः पुटपाकः—

[4]स वाते स्नेहनः, श्लेष्मसहिते लेखनो हितः ।

---

१ वर्त्मरोगे मात्राशतं, सन्धौ त्रीणि शतानि, सिते पंचशतानि, असिते सप्तशतानि, दृष्टावष्टौशतानि । २ अपाङ्गो नेत्रयोरन्तः । ३ पूर्वोक्तेषु तर्पणायुक्तेषु । ४ स पुटपाकः ।

दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः ।

स्नेहनपुटपाककल्पना—

भूशयप्रसहानूपमेदोमज्जावसामिषैः ॥१४॥
स्नेहनं पयसा पिष्टैर्जीवनीयैश्च कल्पयेत् ।

लेखनपुटपाककल्पना—

मृगपक्षियकृन्मांसमुक्तायस्ताम्रसैन्धवैः ॥१५॥
स्रोतोजशङ्खफेनाऽलैर्लेखनं मस्तुकल्कितैः ।

प्रसादनपुटपाककल्पना—

मृगपक्षियकृन्मज्जवसान्त्रहृदयामिषैः ॥१६॥
मधुरैः सघृतैः स्तन्यक्षीरपिष्टैः प्रसादनम् ।

पुटपाककरणप्रकारः—

बिल्वमात्रं पृथक्पिण्डं मांसभेषजकल्कयोः ॥१७॥
²उरुबूकवटाम्भोजपत्रैः स्नेहादिषु क्रमात् ।
वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः ॥१८॥
पचेत्प्रदीप्तैरग्न्याभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम् ।
नेत्रे तर्पणवद्युञ्ज्यात्

मात्राधारणादि—

शतं द्वे त्रीणि धारयेत् ॥१९॥
लेखनस्नेहनान्त्येषु³
पूर्वौ कोष्णौ हिमोऽपरः ।
धूमपोऽन्ते त⁴योरेव
योगास्त⁵त्र च तृप्तिवत् ॥२०॥

तर्पणनिषेधः—

तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हे न योजयेत् ।

१—आलैर्हरितालम् । २—उरुबूक एरण्डः । ३—लेखने शतं, स्नेहने द्वेशते, अन्त्ये प्रसादने त्रीणिशतानि । पूर्वौ स्नेहनलेखनौ । अपरः प्रसादनः । ४—तयोः स्नेहनलेखनयोः ५—तत्र पुटपाकेषु ।

मुखैर्मुखानि यंत्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च ।

स्वस्तिक यन्त्रनिर्देशः—

अष्टादशांगुलायामान्यायसानि च भूरिशः ॥५॥
मसूराकारपर्यंतैः कंठे बद्धानि कीलकैः ।
विद्यात्स्वस्तिकयंत्राणि मूलेऽकुशनतानि च ॥६॥
[1]तैर्दृढैरस्थिसंलग्नशल्याहरणमिष्यते ।

संदंशयन्त्रनिर्देशः—

कीलबद्धविमुक्ताग्रो संदंशौ षोडशांगुलौ ॥७॥
त्वक्शिरास्नायुपिशितलग्नशल्यापकर्षणौ ।

अन्यसंदंशः—

षडंगुलोऽन्यो हरणे सूक्ष्मशल्योपपक्ष्मणाम् ॥८॥

मुचुंडीयन्त्रम्—

मुचुंडी सूक्ष्मदंतर्जुमूले रुचकभूषणा ।
गंभीरव्रणमांसानामर्मणः शोषितस्य च ॥९॥

द्वेतालयन्त्रे—

द्वे द्वादशांगुले मत्स्यतालवद् व्येकतालके ।
तालयंत्रे स्मृते कर्णनाडी शल्यापहारिणी ॥१०॥

नाडीयन्त्राणि—

नाडीयंत्राणि शुषिराण्येकानेकमुखानि च ।
स्रोतोगतानां शल्यानामामयानां च दर्शने ॥११॥
[2]क्रियाणां सुकरत्वाय कुर्यादाचूषणाय च ।
तद्विस्तारपरीणाहदैर्घ्यं स्रोतोनुरोधतः ॥१२॥
दशांगुलार्ध[3]नाहांतः कंठशल्यावलोकने ।

---

१ तैः कङ्कमुखादिभिः । २ क्रियाणामग्निक्षारादिक्रियाणाम् । ३ अर्धनाहा पञ्चांगुलनाहा ।

नाडी

[1]पंचमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य संग्रहे ॥१३॥
वारंगस्य द्विकर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः ।
वारंगकर्णसंस्थानानाहदैर्घ्यानुरोधनः ॥१४॥
नाडीरेवंविधाश्चान्या द्रष्टुं शल्यानि कारयेत् ।
पद्मकर्णिकया मूर्ध्नि सदृशी द्वादशांगुला ॥१५॥
[2]चतुर्थसुषिरा नाडी शल्यनिर्घातिनी मता ।

अर्शोयन्त्रनिर्देशः—

अर्शसां गोस्तनाकारं यंत्रकं चतुरंगुलम् ॥१६॥
नाहे पंचांगुलं पुंसां, प्रमदानां षडंगुलम् ।
द्विच्छिद्रं दर्शने व्याधेरेकच्छिद्रं तु कर्मणि ॥१७॥
मध्येऽस्य त्र्यंगुलं छिद्रमंगुष्ठोदरविस्तृतम् ।

शमीयन्त्रम्—

[3]अर्धांगुलोच्छ्रितोद्वृत्तकर्णिकं तु तदूर्ध्वतः ॥१८॥
शम्याख्यं [4]तादृगच्छिद्रं यंत्रमर्शःप्रपीडनम् ।

भगन्दरयन्त्रम्—

सर्वथाऽर्शनयेदोष्ठं छिद्रादूर्ध्वं भगंदरे ॥१९॥

एकच्छिद्रानाडी—

घ्राणार्बुदार्शसामेकच्छिद्रा नाड्यंगुलद्वया ।
प्रदेशिनीपरीणाहा स्याद्भगंदरयंत्रवत् ॥२०॥

अंगुलित्राणकम्—

अंगुलित्राणकं दान्तं [5]वार्क्षं वा चतुरंगुलम् ।
द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तदास्यविवृतौ सुखम् ॥२१॥

---

१ चतुष्कर्णस्य संग्रहे पञ्चमुखच्छिद्रा, चतुष्कर्णस्यवारङ्गस्यसंग्रहे त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतोवारङ्ग प्रमाणतः । वारङ्गः शस्त्रादेर्ग्रहण स्थानम् । २, चतुर्थ सुषिरांगुलिच्छिद्रा । ३ तदूर्ध्वत अर्धाङ्गुलाउच्छ्रिता उद्वृत्ताकर्णिकायस्यतत् । ४ तादृक् गोस्तनादि लक्षण युक्तम् । ५ दान्तं दन्तकृतं, वार्क्षं काष्ठकृतम् ।

योनिव्रणेक्षणयन्त्रम्—

योनिव्रणेक्षणं मध्ये सुषिरं षोडशांगुलम् ।
मुद्राबद्धं [1]चतुर्भित्तमंभोजमुकुलाननम् ॥२२॥
[2]चतुःशलाकमाक्रांतं मूले, तद्विकसेन्मुखे ।

द्वेपङ्गुलेयन्त्रे—

यंत्रे नाडीव्रणाभ्यंगक्षालनाय षडंगुले ॥२३॥
बस्तियंत्राकृती मूले [3]मुखेऽगुष्ठकलायखे ।
अग्रतोऽकर्णिके मूले निबद्धमृदुचर्मणी ॥२४॥

उदकोदरेनलिका—

द्विद्वारा नलिका पिच्छनलिका वोदकोदरे ।

धूमादियन्त्राणि—

धूमबस्त्यादियंत्राणि निर्दिष्टानि यथायथम् ॥२५॥

शृङ्गाख्ययन्त्रम्—

त्र्यंगुलास्यं भवेच्छृंगं चूषणेऽष्टादशांगुलम् ।
अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनद्धं चूचुकाकृति ॥२६॥

अलाबुयन्त्रम्—

स्याद्द्वादशांगुलोऽलाबुर्नाहे त्वष्टादशांगुलः ।
चतुस्त्र्यंगुलवृत्तास्यो दीप्तोऽतः श्लेष्मरक्तहृत् ॥२७॥

घटीयन्त्रम्—

[4]तद्वद् घटी हिता गुल्मविलयोन्नमने च सा ।

शलाकायन्त्राणि—

शलाकाख्यानि यंत्राणि नानाकर्माकृतीनि च ॥२८॥
यथायोगप्रमाणानि
[5]तेषामेषणकर्मणी ।

---

१ त्वचारोभित्ताः पत्राणियस्यतत् । २ मूले चतसृभिःशलाकाभिर्युक्तम् । ३ मूलेऽङ्गुष्ठच्छिद्रं मुखे च कलायच्छिद्रम् । ४ तद्वत् अलाबुवत् दैर्घ्यानाह युक्ता । ५ तेषां शलाकायन्त्राणांमध्ये ।

उभे गंडूपदमुखे; स्रोतोभ्यः शल्यहारिणी ॥२९॥
मसूरदलवक्त्रे द्वे स्यातामष्टनवांगुले ।

षट्शङ्कवः—

शंकवः षट्,
उभौ [1]तेषां षोडशद्वादशांगुलौ ॥३०॥
व्यूहनेऽहिफणावक्त्रौ,
द्वौ दशद्वादशांगुलौ ॥३०॥
चालने शरपुंखास्यौ,
आहार्ये [2]बडिशाकृती ॥३१॥

गर्भशंकु—

नतोऽग्रे शंकुना तुल्यो गर्भशंकुरिति स्मृतः ।
अष्टांगुलायतस्तेन[3] मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाः ॥३१॥

सर्पफणाख्ययन्त्रम्—

अश्मर्याहरणे सर्पफणावद्वक्रमग्रत. ।

शरपुङ्खयन्त्रम्—

शरपुंखमुखं दंतपातनं चतुरंगुलम् ॥३३॥

शलाका—

कार्पासविहितोष्णीषाः शलाकाः षट् प्रमार्जने ।
पायावासन्नदूरार्थे द्वे दशद्वादशांगुले ॥३४॥
द्वे षट्सप्तांगुले घ्राणे, द्वे कर्णेऽष्टनवांगुले ।

कर्णशोधनाख्ययन्त्रम्—

कर्णशोधनमश्वत्थपत्रप्रांतं स्रुवाननम् ॥३५॥

शलाकादीनामुपयोगाः—

[4]शलाका जांबवोष्ठानां क्षारेऽग्नौ च पृथक् त्रयम् ।

---

१ तेषां शंकूनांमध्ये । व्यूहने-ऊर्ध्वीकरणे । २ बडिशोमत्स्यवेधनम् । ३ तेन-गर्भशंकुना । ४ शलाकाश्च जाम्बवोष्ठानि चतेषां, स्थूलाणुदीर्घाणां त्रय, शलाका-तिस्रस्तिस्रोऽग्नौक्षारे चैवं षट्, एवमेव जाम्बवोष्ठान्यग्नौक्षारे च पृथक् स्तिस्रस्तिस्र एवं द्वादश शलाकायन्त्राणि ।

युंजात् स्थूलाणुदीर्घाणाम्,
शलाकामंत्रवर्त्मनि ॥३६॥
मध्यो[1]र्ध्ववृत्तदंडां च मूले चार्धेंदुसंनिभाम् ।
कोलास्थिदलतुल्यास्या नासार्शोर्बुददाहकृत् ॥३७॥
अष्टांगुला निम्नमुखास्तिस्रः क्षारौषधक्रमे ।
[2]कनीनीमध्यमानामिनखमानसमैर्मुखैः ॥३८॥
स्वंस्वमुक्तानि यन्त्राणि मेढ्रगुह्यघ्रजनादिषु ।

अनुयन्त्राण्येकोनविंशतिः—

अनुयंत्राण्य[3]स्कांतरज्जुवस्त्राश्ममुद्गराः ॥३९॥
वध्रांत्रजिह्वावालाश्च शाखानखमुखद्विजाः ।
कालः पाकः करः पादौ भयं हर्षश्च तत्क्रियाः ।
उपायवित्प्रविभजेदालोच्य निपुणं धिया ॥४०॥

यन्त्रकर्माणि—

[4]निर्घातनोन्मथनपूरणमार्गशुद्धि-
संव्यूहनाहरणबंधनपीडनानि ।
आचूषणोन्नमननामनचालभंग-
व्यावर्तनर्जुकरणानि च यन्त्रकर्म ॥४१॥

कंकमुखस्यप्राधान्यम्—

निवर्तते साध्ववगाहते च
ग्राह्यं गृहीत्वोद्धरते च यस्मात् ।
यंत्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानं
स्थानेषु सर्वेष्वविकारि यच्च ॥४२॥

---

१ मध्यादूर्ध्वं वृत्तो दंडोयस्यास्ताम् । २ कनीन्यादीनामंगुलीनांनखानां मानेन समैस्तुल्यैर्मुखैरुपलक्षिताः । ३ अयस्कान्तश्चुम्बकलोहः । वध्रः-वेणिका द्विजोदन्तः । तत्क्रिया, निर्घातनादिकाः । ४ निर्घातनम् इतश्चेतश्चविचाल्यपातनम् । उन्मथनं-प्रनष्टशल्यस्यमार्गेशलाकादिभिरालोडनम् । पूरणंवस्तिनेत्रादिभिस्तैलादिना । संव्यूहनमुत्तुण्डितशल्यस्योद्धरणार्थं छित्वा ऊर्ध्वीकरणम् । व्यावर्तनं यन्त्रभ्रमणम् ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातः शस्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शस्त्राणि—

षड्विंशतिः [1]सुकर्मारैर्घटितानि यथाविधि ।
शस्त्राणि रोमवाहीनि बाहुल्येनाङ्गुलानि षट् ॥१॥
सुरूपाणि सुधाराणि सुग्रहाणि च कारयेत् ।
अकरालानि सुध्मातसुतीक्ष्णावर्तितेऽयसि ॥२॥
समाहितमुखाग्राणि नीलाम्भोजच्छवीनि च ।
नामानुगतरूपाणि सदा सन्निहितानि च ॥३॥
स्वोन्मानार्धचतुर्थांशफलान्येकैकशोऽपि च ।
प्रायो द्विधाराणि युंजीत तानि स्थानविशेषतः ॥४॥
मंडलाग्रं फले तेषां[2] तर्जन्यंतर्नखाकृति ।
लेखने छेदने योज्यं पोथकीशुंडिकादिषु ॥५॥
वृद्धिपत्रं क्षुराकारं छेदभेदनपाटने ।
ऋज्वग्रमुन्नते शोफे, गंभीरे च तदन्यथा[3] ॥६॥
नताग्रं पृष्ठतो,
दीर्घह्रस्ववक्त्रं यथाशयम् ।
उत्पलाध्यर्धधाराख्ये छेदने भेदने,
तथा ॥७॥

---

१ कर्मारैः कर्मकुशलैर्नरैः । रोमवाहीनि लोमशातनसमर्थानि । सुखेन गृह्यन्त इति सुग्रहाणि । अकरालानि सुदर्शनानि । सुध्मातं सुतीक्ष्णमावर्तितं च यदयस्तस्मिन् । स्वे च तदुन्मानं शल्यमानं तस्मादर्धं तस्य चतुर्थांशोऽङ्गुलषट्कमानस्य शल्यस्याष्टमो भागस्तत्प्रमाणफलं येषां तानि । द्वेधा धाराणि वेति द्विधाराणि । २ तेषां शस्त्राणां मध्ये । तर्जन्या अन्तर्नखस्तस्येवाकृतिर्यस्य । ३ तद्वृद्धिपत्रम् अन्यथा—पृष्ठतः पृष्ठदेशे नतमग्रं यस्य तत् । उत्पलधारमध्यर्धधारं च ।

सर्पास्यं घ्राणकर्णार्शश्छेदनेऽर्धांगुलं फले ।
गतेरन्वेषणे श्लक्ष्णा गंडूपदमुखैषिणी ॥८॥
भेदनार्थेऽपरा सूचीमुखा मूलनिविष्टखा[1] ।
वेतसं व्यधने,
स्राव्ये शरार्यास्यंत्रिकूर्चके[2] ॥९॥
कुशाटा वदने स्राव्ये द्व्यंगुलं स्यात्तयो[3]: फलम् ।
तद्वदंतर्मुखं तस्य फलमध्यर्धमंगुलम् ॥१०॥
अर्धचंद्राननं चैततया[4]
ऽध्यर्धांगुलं फले ।
व्रीहिवक्त्रं प्रयोज्यं च तच्छिरोदरयोर्व्यधे ॥११॥
पृथुः कुठारी गोदंतसदृशार्धांगुलानना ।
तयोर्ध्वदंडया विध्येदुपर्यस्थ्नां स्थितां शिराम् ॥१२॥
ताम्री शलाका द्विमुखी मुखे कुरुबकाकृतिः ।
लिंगनाशं तया विध्येत्
कुर्यादंगुलिशस्त्रकम् ॥१३॥
मुद्रिकानिर्गतमुखं फले त्वर्धांगुलायतम् ।
योगतो वृद्धिपत्रेण मंडलाग्रेण वा समम् ॥१४॥
[5]तत्प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रमाणार्पणमुद्रिकम् ।
सूत्रबद्धं गलस्रोतोरोगच्छेदनभेदने ॥१५॥
ग्रहणे शुंडिकामदिर्यर्हिशं सुनतानम् ।
छेदेऽस्थ्नां करपत्रं तु खरधारं दशांगुलम् ॥१६॥
विस्तारे द्व्यंगुलं सूक्ष्मदंतं सु[6]त्सरुबंधनम् ।
स्नायुसूत्रकचच्छेदे कर्तरी कर्तरीनिभा ॥१७॥
वक्रर्जुधारं द्विमुखं नखशस्त्रं नवांगुलम् ।

---

१ मूले निविष्ट विहित खं छिद्रे यस्याः । २ त्रिकूर्चकेस्राव्ये । ३ तयोः शरारिकुशाटयोः । तद्वत्कुशाटा तुल्यम् । ४ तया कुशाटा सदृशम् । कुरुबकाकृतिः-रक्तमहचरपुष्पमुकुलाकारा । ५ तस्य वंद्यस्य प्रदेशिन्यास्तर्जन्या अग्रपर्वण प्रमाणं तेनार्पणीमुद्रिका यस्मिस्तत् । ६ त्सरुःशस्त्रमुष्टिः ।

सूक्ष्मशल्योद्धृतिच्छेदभेदप्रच्छानलेखने ॥१८॥
एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चैकतः ।
दन्तलेखनकं तेन शोधयेद्दन्तशर्कराम् ॥१९॥
वृत्ता गूढदृढाः पाशे तिस्रः सूच्योऽत्र सीवने ।
मांसलानां प्रदेशानां [1]त्र्यस्रा त्र्यङ्गुलमायता ॥२०॥
अल्पमांसाऽस्थिसंधिस्थव्रणानां द्व्यङ्गुलायता ।
व्रीहिवक्त्रा धनुर्वक्रा पक्वामाशयमर्मसु ॥२१॥
सा सार्धद्व्यङ्गुला, सर्ववृत्तास्ताश्चतुरङ्गुलाः ।
कूर्चो वृत्तैकपीठस्थाः सप्ताऽष्टौ वा सुबंधनाः ॥२२॥
संयोज्यो नीलिकाव्यंगकेशशातनकुट्टने ।
अर्धाङ्गुलमुखैर्वृत्तैरष्टाभिः कण्टकैः खजः ॥२३॥
पाणिभ्यां मथ्यमानेन घ्राणात्तेन हरेदसृक् ।
व्यधने कर्णपालीनां यूथिका मुकुलानना ॥२४॥
आराऽर्धाङ्गुलवृत्तास्या तत्प्रवे[2]शो तथोर्ध्वतः ।
चतुरस्रा तया विध्येच्छोफं पक्वामसंशये ॥२५॥
कर्णपाली च बहुलाम, बहुलायाश्च शस्यते ।
सूचा त्रिभागसुषिरा त्र्यङ्गुला कर्णवेधनी ॥२६॥

अनुशस्त्राणि—

[3]जलौक.क्षारदहनकाचोपलनखादयः ।
अलौहान्यनुशस्त्राणि तान्येव च विकल्पयेत् ॥२७॥
अपराण्यपि यंत्रादीन्युपयोगं च यौगिकम् ।

शस्त्रकर्माणि—

[4]उत्पाट्यपाट्यसीव्यैष्यलेख्यप्रच्छानकुट्टनम् ॥२८॥

---

१ त्र्यस्रा त्रिकोणा । २ तत्प्रवेशार्धाङ्गुलप्रवेशा । ३ जलौका ।"जोंक" हि॰ । दहनमग्निः । ४ उत्पाट्यमूर्ध्वनयनम् । भावे यत्प्रत्ययः । तत्र नखशस्त्रं योज्यम् । पाट्यं पाटनंस्फोटनं तत्र वृद्धिपत्रादि । सीव्ये सीवने सूच्यः । लेख्ये लेखने मण्डलाग्रम् । प्रच्छाने कुट्टने कूर्चः ।

[1]छेद्यं भेद्यं व्यधो मंथो ग्रहो दाहश्च तत्क्रियाः ।

शस्त्रदोषाः—

[2]कुंठखंडतनुस्थूलह्रस्वदीर्घत्ववक्रताः ॥२९॥
शस्त्राणांखरधारत्वमष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ।

शस्त्रग्रहणविधिः—

छेदभेदन लेखार्थं शस्त्रं वृंतफलान्तरे[3] ॥३०॥
तर्जनीमध्यमांगुष्ठैर्गृह्णीयात्सुसमाहितः ।
विस्रावणानि वृंताग्रे तर्जन्यंगुष्ठकेन च ॥३१॥
तलप्रच्छन्नवृंताग्रं ग्राह्यं व्रीहिमुखं मुखे ।
मूलेष्वाहरणार्थं तु क्रियासौकर्यतोऽपरम् ॥३२॥

शस्त्रस्थापनार्थं शस्त्रकोषः—

स्यान्नवांगुलविस्तारः सुघनो द्वादशांगुलः ।
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः॥३३॥
विन्यस्तपाशः सुस्यूत. सांतरोर्णास्थशस्त्रकः[4] ।
शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसंचयः ॥३४॥

जलौकसां योजनम्—

जलौकसस्तु सुखिना रक्तस्रावाय योजयेत् ॥३५॥

सविषजलौकोनिर्देशः—

दुष्टाम्बुमत्स्यभेकाहिशवकोथमलोद्भवाः ।
रक्ताः श्वेता भृशं कृष्णाश्चपलाः स्थूलपिच्छिलाः ॥३६॥
इंद्रायुधविचित्रोर्ध्वराजयो रोमशाश्च ताः[5] ।
सविषा वर्जयेत्,

[6]ताभिः कंडूपाकज्वरभ्रमाः ॥३७॥

---

१ छेदने द्वैधीकरणे करपत्रम् । भेद्ये भेदने सूचीमुखी एषणी । व्यधे वेतसादि मंथनेखजः । ग्रहे संदंशः । दाहेशलाका । तत्क्रिया तेषांषड्विंशतिशस्त्राणां क्रियाः कर्माणि । २ कुण्ठं स्थूलधारम् । वक्रता-कुटिलता खरधारत्वं कर्कशधारत्वम् । ३ वृन्तं शस्त्रमूलम् । ४ सान्तराणि सव्यवधानानि उर्णास्थानिशस्त्राणि यस्मिन् । सुश्रुते शस्त्रकोशो न पठ्यते । ५ ता जलौकसः । ६ ताभिःसविषाभिर्जलौकोभिः ।

विषपित्तासनुकार्यं तत्र

निर्विषजलौकोनिर्देशः—

शुद्धाम्बुजाः पुनः ।
निर्विषाः शैवलश्यावा वृत्ता नीलोर्ध्वराजयः ॥३८॥
कषायपृष्ठास्तन्वंग्यः किंचित्पीतोदराश्च याः ।

रक्तमत्तजलौकोनिर्देशः—

[1]ता अप्यसम्यग्वमनात्प्रततं च निपातनात् ॥३९॥
सीदंतीः सलिलं प्राप्य रक्तमत्ता इति त्यजेत् ।

जलौकोयोजनाविधिः—

अथेत[2]रा निशाकल्कयुक्तेऽम्भसि परिप्लुताः ॥४०॥
[3]अवंतिसोमे तक्रे वा पुनश्चाऽऽश्वासिता जले ।
लागयेद्धृतमृत्स्नागशस्त्ररक्तनिपातनं ॥४१॥
पिबंतीरुन्नतस्कधाश्छादयेन्मृदुवाससा ।

जलौकसांदुष्टरक्तस्यैवग्रहणेदृष्टान्तः—

संपृक्ताद् दुष्टशुद्धास्राज्जलौका दुष्टशोणितम् ॥४२॥
आदत्ते प्रथमं हंसः क्षीरं क्षीरोदकादिव ।

जलौकसांमोक्षरक्तनिःसारणे—

दंशस्य तोदे कंड्वा वा मोक्षयेद्वाममेच्च ताम् ॥४३॥
गुल्मार्शोविद्रधीकुष्ठवातरक्तगलामयान् ।
नेत्ररुग्विषवीसर्पान् शमयंति जलौकसः ॥४४॥
पटुतैलाक्तवदना श्लक्ष्णकं[4]डनरूक्षिताम् ।

पुनःसप्ताहंतासांयोजनाभावः—

रक्षम् रक्तमदाद्भूयः सप्ताहं तां न पातयेत् ॥४५॥

१—ता निर्विषाः । २—इतरा रक्तमत्तातिरिक्ताः । ३—अवन्तिसोमे कांजिके । प्रशस्तामृन्मृत्स्ना । ४—कण्डनं तण्डुलानां धूलिः 'कना' इतिलोके ।

तासांरक्तनिःसारणेयोगादयः—

पूर्ववत् पटुताढ्यं सम्यग्वांते जलौकसाम् ।
क्लमोऽतियोगान्मृत्युर्वा,
दुर्वांते स्तम्भता मदः ॥४६॥

जलौकः स्थापनविधिः—

अन्यत्राऽन्यत्र ताः स्थाप्या घटे मृत्स्नांबुगर्भिणि ।
लालादिकोथनाशार्थं सविषाः स्युस्तदन्वयात्[१] ॥४७॥

दंशस्रावादि—

अशुद्धौ स्रावयेद्दंशम् हरिद्रागुडमाक्षिकैः ।
शतधौताज्यपिचवस्ततो लेपाश्च शीतलाः ॥४८॥
दुष्टरक्तापगमनात्सद्योरागरुजां शमः ।

अशुद्धरक्तस्यपुनःस्रावः—

अशुद्धं चलितं स्थानास्थितं रक्तं व्रणाशये ॥४९॥
अम्लीभवेत्पर्युषितं तस्मात्तन्स्रावयेत्पुनः ।

अलाबुघटिकाविषयः—

युंज्यान्नालाबुघटिका रक्ते पित्तेन दूषिते ॥५०॥
[२]तासामनलसंयोगात्
युंज्याच्च कफवायुना ।

शृंग विषयः—

कफेन दुष्टं रुधिरं न शृंगेण विनिर्हरेत् ॥५१॥
स्कन्नत्वाद्
वातपित्ताभ्यां दुष्टं शृगेण निर्हरेद् ।

प्रच्छानविधिः—

गात्रं बद्ध्वोपरि दृढं रज्ज्वा पट्टेन वा समम् ॥५२॥
स्नायुसंध्यस्थिमर्माणि त्यजन् [३]प्रच्छानमाचरन् ।

---

१ तदन्वयाल्लालादिनयोगात् । २ तासामलाबुघटिकानाम् । ३ प्रच्छानं शस्त्रकृतं चिह्नम् "पछना" इति लोके ।

अधोदेशप्रविसृतैः पदैरुपरिगामिभिः ॥५३॥
न गाढघनतिर्यग्भिर्न पदे पदमाचरेत् ।

प्रच्छानादि विषयः—

प्रच्छानेनैकदेशस्थं, ग्रथितं जलजन्मभिः ॥५४॥
हरेच्छृङ्गादिभिः सुप्तमसृग्व्यापि सिराव्यधैः ।
प्रच्छानं पिण्डिते वा स्यात्,
अवगाढे जलौकसः ॥५५॥
त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृङ्गम्
सिरैव व्यापकेऽसृजि ।
वातादिधाम वा शृङ्गजलौकोलाबुभिः क्रमात् ॥५६॥

स्रुतरक्तस्य सर्पिषा सेकः

स्रुतासृजः प्रदेहाद्यैः शीतैः स्याद्वायुकोपतः ।
सतोदकण्डूशोफस्तं सर्पिषोष्णेन सेचयेत्" ॥५७॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातः सिराव्यधविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शुद्धरक्त-लक्षणम्—

"मधुरं लवणं किंचिदशीतोष्णमसंहतम् ।
[1]पद्मेन्द्रगोपहेमाविशशलोहितलोहितम् ॥१॥
लोहितं प्रवदेच्छुद्धं तनोस्तेनैव च स्थितिः ।

रक्तदोषस्तज्जारोगाश्च—

[2]तत्पित्तश्लेष्मलैः प्रायो दूष्यते कुरुते ततः ॥२॥
विसर्पविद्रधिप्लीहगुल्माग्निसदनज्वरान् ।
मुखनेत्रशिरोरोगमदतृड्लवणास्यताः ॥३॥

---

१ इन्द्रगोपः 'बीरबहूटी' इति लोके । आविर्मेषः, अविशशयोर्लोहितं रक्तमिव लोहितं रक्तवर्णम् । लोहितं रक्तधातुम् । तेन . शुद्धरक्तेन । २ तद्रक्तम् ।

कुष्ठवाताऽस्रपित्तास्रकट्वम्लोद्गोरणभ्रमान् ।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः ॥४॥
सम्यक् साध्या न सिध्यंति ते च रक्तप्रकोपजाः ।

रक्तस्रावार्थंसिराव्यधः—

[1]तेषु स्रावयितुं रक्तमुद्रिक्तं व्यधयेत्सिराम् ॥५॥

सिराव्यधनिषेधः—

न तूनषोडशातीतसप्तत्यब्दस्रुतासृजाम् ।
अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम् ॥६॥
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् ।
अतीसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वांगशोफिनाम् ॥७॥
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पचसु कर्मसु ।
नायंत्रितां सिरां विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम् ॥८॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्राऽत्ययिकाद्गदात् ।

रोगविशेषु सिराविशेषव्यधः—

शिरोनेत्रविकारेषु [2]ललाट्यां मोक्षयेत्सिराम् ॥९॥
अपांग्यामुपनास्यां वा,
कर्णरोगेषु कर्णजाम् ।
नासारोगेषु नासाग्रे स्थिताम्,
[3]नासाललाटयोः ॥१०॥
पीनसे मुखरोगेषु जिह्वौष्ठहनुतालुगाः ।,
जत्रूर्ध्वं ग्रंथिषु ग्रीवाकर्णशंखशिरःश्रिताः ॥११॥
उरोऽपांगललाटस्था उन्मादे, ऽपस्मृतौ पुनः ।
हनुसंधौ सम[4]स्ते वा सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् ॥१२॥
विद्रधौ पार्श्वशूले च पार्श्वकक्षास्तनांतरे ।

१—तेषु विसर्पादिरोगेषु। २—ललाट्यां ललाटस्थिताम्। ३—पीनसे ललाटयोः स्थितां सिरांविध्येत्। ४—समस्ते सकलहनुप्रदेशे। अपस्मृतौ-भ्रूमध्यस्थितां वा सिरां विध्येत्।

तृतीयकेंऽसयोर्मध्ये,
 स्कंधस्याधश्चतुर्थके ॥१३॥
प्रवाहिकायां शूलिन्यां [1]श्रोणितो द्व्यंगुले स्थिताम् ।
शुक्रमेढ्रामये मेढ्रे,
 ऊरुणां गलगंडयोः ॥१४॥
गृध्रस्यां जानुनोऽधस्तादूर्ध्वं वा चतुरंगुले ।
इंद्रवस्तेरधोऽपच्यां द्व्यंगुले,
 चतुरंगुले ॥१५॥
ऊर्ध्वं गुल्फस्य सक्थ्यर्तौ
[2]तथा क्रोष्टुकशीर्षके ।
पाददाहे खुडे हर्षे विपाद्यां वातकंटके ॥१६॥
चिप्पे च द्व्यंगुले विध्येदुपरि क्षिप्रमर्मणः ।
गृध्रस्यामिव विश्वाच्याम्

यथोक्तसिराऽदर्शने व्यधप्रकारः—

 यथोक्तानामदर्शने ॥१७॥
मर्महीने यथासन्ने देशेऽन्यां व्यधयेत् सिराम् ।
अथ स्निग्धतनुः सज्जसर्वोपकरणो बली ॥१८॥
कृतस्वस्त्ययनः स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः ।
अग्नितापातपस्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः ॥१९॥
मृदुपट्टात्तकेशान्तो जानुस्थापितकूर्परः ।
मुष्टिभ्यां वस्त्रगर्भाभ्यां मन्ये गाढं निपीडयेत् ॥२०॥
दंतप्रपीडनोत्कासगंडाऽऽध्मानानि चाऽचरेत् ।

सिरायन्त्रणविधिः—

पृष्ठतो यंत्रयेच्चैनं वस्त्रमावेष्टयन्नरः ॥२१॥
कंधरायां परिक्षिप्य न्यस्यांतर्वामतर्जनीम् ।
एषोऽन्तर्मुखवर्जानां सिराणां यन्त्रणे विधिः ॥२२॥

१—श्रोणितः कस्याः । २—तथा क्रोष्टुशीर्षके गुल्फस्योर्ध्वं चतुरङ्गुले विध्येदित्यर्थः । पाददाहादौ क्षिप्रमर्मण उपरि द्व्यङ्गुले विध्येत् ।

सिराताडनविधिः—

तथा मध्यमयाऽङ्गुल्या वैद्योऽङ्गुष्ठविमुक्तया ।
ताडयेत्

सिरामोक्षणम्—

उत्थितां ज्ञात्वा स्पर्शाङ्गुष्ठप्रपीडनैः ॥ २३ ॥
कुठार्या लक्षयेन्मध्ये वामहस्तगृहीतया ।
फलोद्देशे सुनिष्कम्पं सिरां [1]तद्वच्च मोक्षयेत् ॥ २४ ॥
ताडयन् पीडयेच्चैनां विध्येद्व्रीहिमुखेन तु ।
"अङ्गुष्ठेनोन्नमय्याग्रे नासिकामुपनासिकाम्" ॥ २५ ॥
"अभ्युन्नतविदष्टाग्रजिह्वस्याधस्[2]तदाश्रयाम् ।"
"[3]यंत्रयेत्स्तनयोरूर्ध्वं ग्रीवाश्रितसिराव्यधे ॥ २६ ॥
पाषाणगर्भहस्तस्य जानुस्थे प्रसृते भुजे ।
कुक्षेरारभ्य मृदिते विध्येद्बद्धोर्ध्वपट्टके ॥ २७ ॥
"विध्येद्धस्तसिरां बाहावनाकुंजितकूर्परे ।
बद्ध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमङ्गुष्ठगर्भिणीम् ॥ २८ ॥
ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिका चतुरङ्गुले ।"
"विध्येदालंब[4]मानस्य बाहुभ्यां पार्श्वयोः सिराम् ॥ २९ ॥
प्रहृष्टे मेहने, जंघासिरा जानुन्यकुंचिते ।
पादे तु सुस्थितेऽधस्ताज्जानुसंधेर्निपीडिते ॥ ३० ॥
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि ।
द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदारूढे हस्तवत्ततः ॥ ३१ ॥
बद्ध्वा विध्येत्सिराम्

अनुक्तेष्वपिकल्पनाप्रकारः—

इत्थमनुक्तेष्वपि कल्पयेत् ।

१—यथैव लक्षयेत्तथैव मोक्षयेत् । व्रीहिमुखेन पुनस्ताडयन् विध्यंस्तथांगुष्ठादिना पीडयेत् । एनां कुठारिका विषयजांसिराम् । २ तदाश्रयां जिह्वाधःश्रिताम् । ३ यंत्रयेदित्यतः पट्टके इत्यन्तं ग्रीवाश्रितसिराव्यधविधिः । मृदिते ग्रीवापर्यन्तम् । बद्ध ऊर्ध्वं पट्टको यस्य सबद्धः यस्मिन् । ४ आलम्बयं यस्तु भुजाभ्यामामजतः ।

तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायवित् ॥ ३२ ॥

मांसलदेशेप्रकारः—

मांसले निक्षिपेद्देशे व्रीह्यास्यं व्रीहिमात्रकम् ।
यवार्धमस्थ्नामुपरि सिरां विध्येत् कुठारिकाम् ॥ ३३ ॥

सम्यक् विद्धादौस्रावादि—

सम्यग्विद्धे स्रवेद्धारां यन्त्रे मुक्ते तु न स्रवेत् ।
अल्पकालं वहत्यल्पं[1], दुर्विद्धा तैलचूर्णनैः ॥ ३४ ॥
सशब्दमतिविद्धा तु स्रवेद्दुःखेन धार्यते ।

रक्तस्यास्रावहेतवः—

भीमूर्च्छायंत्रशैथिल्यकुण्ठशस्त्रातितृप्तयः ॥ ३५ ॥
क्षामत्ववेगितास्वेदा रक्तस्यास्रुतिहेतवः ।

असम्यगस्रावेसिरालेपः

असम्यगस्रे स्रवति वेल्लव्योषनिशानतैः ॥ ३६ ॥
सागारधूमलवणतैलैर्दिह्याच्छिरामुखम् ।

सम्यक्प्रवृत्तेतैलादिलेपः—

सम्यक्प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ॥ ३६ ।
अग्रे स्रवति दुष्टास्रं कुसुंभादिव पीतिका ।

शुद्धस्यनस्रावः—

सम्यक्स्रुत्वा स्वयं तिष्ठेच्छुद्धं तदिति [3]नाहरेत् ॥ ३८ ॥

मूर्च्छायां यन्त्रविमोचनानि—

यंत्रं विमुच्य[4] मूर्च्छाया बीजिते व्यजनैः पुनः ।
स्रावयेन्मूर्च्छति पुनस्त्वपरेद्युस्त्र्यहेऽपि वा ॥ ३९ ॥

वातादिदुष्टरक्त लक्षणम्—

वाताच्छ्यावारुणं रूक्षं वेगस्राव्यच्छफेनिलम् ।

---

१ अल्पंविद्धाल्पकालं वहति । २ अतितृप्तिरतिभोजनम् । क्षामत्वं निर्बलता । ३ नाहरेन्नस्रावयेत् । ४ मूर्च्छाया सत्यां यन्त्रं विमुच्य व्यजनैः पवने कृते मूर्च्छापगमेस्रावयेत् पुनर्मूर्च्छने तद्दिने न स्रावयेदित्यर्थः ।

पित्तात्पीतासितं विस्रमस्कन्द्यौष्ण्यात्ससचन्द्रकम् ॥४०॥
कफात् स्निग्धमसृक्पाण्डु तन्तुमत्पिच्छिलं घनम् ।
संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्
त्रिदोषं मलिनाविलम् ॥४१॥

रक्तस्यातिस्रुतिविषयः—

अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात्स्रावयेत्परम् ।
अतिस्रुतौ हि मृत्युः स्याद्दारुणा वा चलामयाः ॥४२॥
त[1]त्राभ्यङ्गरसक्षीररक्तपानानि भेषजम् ।

रक्तेस्रुते बन्धनादि—

स्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय, हिमाम्बुना ॥४३॥
प्रक्षाल्य, तैलप्लोताक्तं बन्धनीयं सिरामुखम् ।

अशुद्धेरक्ते पुनः स्रावः—

अशुद्धं स्रावयेद्भूयः सायमह्न्यपरेऽपि वा ॥४४॥
स्नेहोपस्कृतदेहस्य पक्षाद्वा भृशदूषितम् ।

किंचिद्दुष्टरक्तशेषेनस्रुतिः—

किंचिद्धि शेषे दुष्टास्रे नैव रोगोऽतिवर्तते ॥४५॥
सशेषमप्यतो धार्यं न चातिस्रुतिमाचरेत् ।
हरेच्छृङ्गादिभिः शेषम्,
प्रसादमथवा नयेत् ॥४६॥
शीतोपचारपित्तास्रक्रियाशुद्धिविशोषणैः ।
दुष्टं रक्तमनुद्रिक्तमेवमेव प्रसादयेत् ॥४७॥

रक्तस्य स्तम्भनीक्रियानिर्देशः—

रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तम्भनीमाचरेत्क्रियाम् ।
लोध्रप्रियङ्गुपत्तङ्गमाषयष्ट्याह्वगैरिकैः ॥४८॥

---

१ तत्र रक्तातिस्रुतौ ।

[1]मृत्कपालांजनक्षौमसपीक्षीरित्वगंकुरैः ।
विचूर्णयेद्व्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥४६॥
तामेव वा सिरां विध्येद्व्यधात्तस्मादनंतरम् ।
सिरामुखं च त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥५०॥

हिताहारविहारकथनम्—

उन्मार्गगा यंत्रनिपीडनेन
स्वस्थानमायाति पुनर्न यावत् ।
दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं प्रपन्ना-
स्तावद्धिताहारविहारभाक्स्यात् ॥५१॥
नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं
रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम् ।
तदा शरीरं ह्यनवस्थितास्र-
मग्निर्विशेषादिति रक्षणीयः ॥५२॥

विशुद्ध रक्तपुरुषलक्षणम्—

प्रसन्नवर्णेंद्रियमिंद्रियार्था-
निच्छंतमव्याहतप[2]क्तृवेगम् ।
सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं
विशुद्धरक्तं पुरुषं वदंति ॥५३॥

अथ विंशोऽध्यायः ।

अथातः शल्याहरणविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शल्यानां पंचधागतिः—

"वक्रर्जुतिर्यगूर्ध्वधः शल्यानां पंचधा गतिः ।

अन्तःस्थितशल्यस्य ज्ञानोपायः—

[3]ध्यामं शोफं रुजावंतं स्रवंतं शोणितं मुहुः ॥१॥

---

१. अंजनं रसाञ्जनम् । क्षौमपदेन कौशेयवस्त्रमपि । क्षीरिणां वृक्षाणाम् वटादीनां त्वग्भिरङ्कुरैश्च । २ पक्ता जाठराग्निः । ३ ध्यामं श्यामवर्णम् । अभ्युद्गतमुन्नतम् ।

अभ्युद्गतं बुद्बुदवत्पिटिकोपचितं व्रणम् ।
मृदुमांसं विजानीयादंतःशल्यं समासतः ॥२॥

स्वगादिस्थशल्यस्यलक्षणम्—

विशेषात्त्वग्गते शल्ये विवर्णः कठिनायतः ।
शोफो भवति मांसस्थे चोषः शोफो विवर्धते ॥३॥
पीडनाक्षमता पाकः शल्यमार्गो न रोहति ।
पेश्यंतरगतं मांसप्राप्तवच्छ्वयथुं विना ॥४॥
"[1]आक्षेपः स्नायुजालस्य संरंभस्तंभवेदनाः ।
स्नायुगे दुर्हरं चैतत्
सिराध्मानं सिराश्रिते ॥५॥
स्वकर्मगुणहानिः स्यात्स्रोतसां स्रोतसि स्थिते ।
"धमनिस्थेऽनिलो रक्तं फेनयुक्तमुदीरयेत् ॥६॥
निर्याति शब्दवान् स्याच्च हृल्लासः सांगवेदनः ।"
"संघर्षो बलवानस्थिसंधिप्राप्तेऽस्थिपूर्णता" ॥७॥
नैकरूपा रुजोऽस्थिस्थे शोफः,
[2]तद्वच्च संधिगे ।
चेष्टानिवृत्तिश्च भवेत्,
आटोपः कोष्ठसंश्रिते ॥८॥
आनाहोऽन्नशकृन्मूत्रदर्शनं च व्रणानने ।
"विद्यान्मर्मगतं शल्यं मर्मविद्धोपलक्षणैः" ॥९॥

स्वगादिस्थस्य लक्षणम्—

यथास्वं च परिस्रावैस्त्वगादिषु विभावयेत् ।

शल्यस्यरोहादि—

[3]रुह्यते शुद्धदेहानामनुलोमस्थितं तु तत् ॥

---

१ आक्षेप आकर्षणम् । संरम्भः क्षोभः । २ तद्वदस्थिसन्धिवल्लक्षणम् । इदं लक्षणमनुक्तसन्धेः पूर्वं स्वस्थिसन्धिलक्षणम् । कोष्ठमुदरम् । ३ रुह्यते रूढाभासो नतु सम्यग्रूढोयतो दोषकोपादिभिःपुनर्बाधते ।

दोषकोपाऽभिघातादिक्षोभाद्भूयोऽपि बाधते ॥१०॥

त्वगादिनष्टे शल्ये स्थानपरीक्षा—

"त्वङ्नष्टे यत्र तत्र स्युरभ्यंगस्वेदमर्दनैः ।
रागरुग्दाहसंरंभा यत्र चाज्यं विलीयते ॥११॥
आशु शुष्यति लेपो वा तत्स्थानं शल्यवद्वदेत् ।"
मांसप्रनष्टं संशुद्धया कर्शनाच्छ्लथतां गतम् ॥१२॥
क्षोभाद्रागादिभिः शल्यं लक्षयेत्, तद्वदेव[1] च ।
पेश्यस्थिसंधिकोष्ठेषु नष्टम्, अस्थिषु लक्षयेत् ॥१३॥
अस्थ्नामभ्यंजनस्वेदबधपीडनमर्दनैः ।
प्रसारणाकुंचनतः, संधिनष्टं तथाऽस्थिवत् ॥१४॥
नष्टे स्नायुशिरास्रोतोधमनिष्वसमे पथि ।
अश्वयुक्तं रथं खंडचक्रमारोप्य रोगिणम् ॥१५॥
शीघ्रं नयेत्ततस्तस्य[2] संरंभाच्छल्यमादिशेत् ।
मर्मनष्टं पृथङ्नोक्तं [3]तेषां मांसादिसंश्रयात् ॥१६॥

नष्टशल्यस्यसामान्य लक्षणम्—

सामान्येन सशल्यं तु क्षाभिण्या क्रियया महक् ।

शल्यसंस्थान ज्ञानम्—

वृत्तं पृथु चतुष्कोणं त्रिपुटं[4] च समासतः ॥१७॥
अदृश्यशल्यसंस्थानं व्रणाकृत्या विभावयेत् ।

शल्याहरणोपायकथनम्—

तेषामाहरणो[5]पायौ प्रतिलोमानुलोमकौ ॥१८॥
[6]अर्वाचीनपराचीने निर्हरेत्तद्विपर्ययात् ।

---

१ तद्वन्मांसप्रनष्टवत् । २ संरम्भात्क्षोभात् । ३ तेषां मर्मणाम् । ४ त्रिपुटं-त्रिकोणम् । ५ तेषां शल्यानाम् । प्रतिलोमः—प्रवेशमार्गेणैवाहरणम्, अनुलोमस्तद्विपरीतः । ६ तयोः प्रतिलोमानुलोमयोर्विपर्ययस्तस्मात् । अर्वाचीनं नातिदूरप्रविष्टं शरीरस्यार्धभागस्थितं शल्यं प्रतिलोमं प्रवेशमार्गेणैवाहरेत् । पराचीनंदूरप्रविष्टं कायस्य परार्धनिर्गतं शल्यमनुलोममप्रवेशनदेशेनानयेत् । तिर्यग्गतं शल्यं यतोयस्माच्छरीरप्रदेशाच्छित्त्वा सुखाहार्यं ततस्तस्माच्छरीरप्रदेशात्त्वङ्मांसादि छित्वाहरेत् । निर्घात्यमितस्तेवस्तो विचाल्याहार्यम् ।

सुखाहार्यं यवश्छित्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत् ॥१९॥
शल्यं न निर्घात्यमुरः कक्षावंक्षणपार्श्वगम् ।
प्रतिलोममनुत्तुण्डं छेद्यं पृथुमुखं च यत् ॥२०॥

शल्यविशेषस्याहरणनिषेधः—

नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुपद्रवम् ।

आहरण प्रकारः—

अथाऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव[1]
इतरत्पुनः ॥२१॥
दृश्यं सिंहाहिमकरर्क्षमिकर्कटकाननैः ।
अदृश्यं व्रणसंस्थानाद्ग्रहीतुं शक्यते यतः ॥२२॥
कंकभृंगाह्वकुररशरारीवायसाननैः ।
संदंशाभ्यां त्वगादिस्थम्
तालाभ्यां शुषिरं हरेत् ॥२३॥
शुषिरस्थं तु नलकैः[2]
शेषं शेषैर्यथायथम् ।

शस्त्रेण वा विशसनादि—

शस्त्रेण वा विशस्याऽदौ, ततो निर्लोहितं व्रणम् ॥२४॥
कृत्वा घृतेन संस्वेद्य बद्ध्वाऽऽचारिकमादिशेत् ।
सिरास्नायुविलग्नं तु चालयित्वा शलाकया ॥२५॥
हृदये संस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमाम्बुना ।
ततः स्थानान्तरं प्राप्तमाहरेत्तद्यथायथम् ॥२६॥
यथामार्गं दुराकर्षमन्यतोऽप्येवमाहरेत् ।

अस्थिगतशल्याहरणोपायः—

अस्थिदष्टे नरं पद्भ्यां पीडयित्वा विनिर्हरेत् ॥२७॥

---

१ इतरदकरप्राप्यम् । २ नलकैः नाडीयन्त्रैः । शेषैर्यन्त्रैः शेषं शल्यं यथायोग्यमाहरेत् विशस्य छित्वा ।

हृत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य किंकरैः ।
तथाऽप्यशक्ये [1]वारंगं वक्रीकृत्य धनुर्ज्यया ॥२८॥
सुबद्धं पञ्चरटके बध्नीयात्सुसमाहितः ।
सुसंयतस्य पंचांग्या वाजिनः कशयाऽथ तम् ॥२९॥
ताडयेदिति मूर्धानं वेगेनाऽन्नमयन् यथा ।
उद्धरेच्छल्यम्, एवं वा शाखाया कल्पयेत्तरोः ॥३०॥
बद्ध्वा दुर्बलवारंगं कुशाभिः शल्यमाहरेत् ।
श्वयथुमस्तवारंगं शोफमुत्पीड्य युक्तितः ॥३१॥

अत्तुंडितानुत्तुंडितशल्याहरणम्—

मुद्गराहतया नाड्या निर्घात्योत्तुंडितं हरेत् ।
तैरेव नाऽनयेन्मार्गममार्गोत्तुंडितं तु यत् ॥३२॥

सकर्णनिष्कर्णशल्याहरणम्—

मृदित्वा कर्णिनां कर्णं नाड्यास्येन निगृह्य वा ।
अयस्कान्तेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुस्थितम् ॥३३॥

पक्वाशयगतशल्याहरणम्—

पक्वाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत् ।

दुष्टवातादिशल्यनिर्हरणम्—

दुष्टवातविषस्तन्यरक्ततोयादि चूषणैः ॥३४॥

कंठगतशल्याहरणम्—

कंठस्रोतोगते शल्ये सूत्रं कंठे प्रवेशयेत् ।
बिसेनात्ते ततः शल्ये बिसं[2] सूत्रं सम हरेत् ॥३५॥
नाड्याऽग्नितापितां क्षिप्त्वा शलाकामप्स्थिरीकृताम् ।
आनयेज्जातुषं कंठात्,
जतुदिग्धामजातुषम् ॥३६॥
केशोंदुकेन पीतेन द्रवैः कंटकमाक्षिपेत् ।

---

१ वारङ्गः शल्यस्य ग्रहणस्थानम् 'मुठिया' । कटकं "लगाम" इतिभाषा । कशा "कोड़ा" इतिभाषा । तैर्मुद्गरादिभिः । २ बिसं कमलतन्तुः ।

सुखाहार्यं यतश्छित्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत् ॥१९॥
शल्यं न निर्घात्यमुर: कक्षावंक्षणपार्श्वगम् ।
प्रतिलोममनुत्तुण्डं छेद्यं पृथुमुखं च यत् ॥२०॥

शल्यविशेषस्याहरणनिषेधः—

नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुपद्रवम् ।

आहरण प्रकारः—

अथाऽऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव[1]

इतरत्पुनः ॥२१॥

दृश्यं सिंहाहिमकरर्क्षमिकर्कटकाननैः ।
अदृश्यं व्रणसंस्थानाद्गृहीतुं शक्यते यतः ॥२२॥
कंकभृंगाह्वकुररशरारीवायसाननैः ।
संदंशाभ्यां त्वगादिस्थम्

तालाभ्यां शुषिरं हरेत् ॥२३॥

शुषिरस्थं तु नलकैः[2]

शेषं शेषैर्यथायथम् ।

शस्त्रेण वा विशसनादि—

शस्त्रेण वा विशस्याऽऽदौ, ततो निर्लोहितं व्रणम् ॥२४॥
कृत्वा घृतेन सस्वेद्य बद्ध्वाऽऽचारिकमादिशेत् ।
सिरास्नायुविलग्नं तु चालयित्वा शलाकया ॥२५॥
हृदये संस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमाम्बुना ।
ततः स्थानान्तरं प्राप्तमाहरेत्तद्यथायथम् ॥२६॥
यथामार्गं दुराकर्षमन्यतोऽप्येवमाहरेत् ।

अस्थिगतशल्याहरणोपायः—

अस्थिदष्टे नरं पद्भ्यां पीडयित्वा विनिर्हरेत् ॥२७॥

---

१ करदकरप्राप्यम् । २ नलकैः नाडीयन्त्रैः । शेषैर्यन्त्रैः शेषं यथायोगमाहरेत् विशस्य छित्वा ।

इत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य किंकरैः ।
तथाऽप्यशक्ये [1]वारङ्गं वक्रीकृत्य धनुर्ज्यया ॥२८॥
सुबद्धं वक्त्रकटके बध्नीयात्सुसमाहितः ।
सुसंयतस्य पंचांग्या वाजिनः कशयाऽथ तम् ॥२९॥
ताडयेदिति मूर्धानं वेगेनान्नमयन् यथा ।
उद्धरेच्छल्यम्, एवं वा शाखाया कल्पयेत्तरोः ॥३०॥
बद्ध्वा दुर्बलवारंगं कुशाभिः शल्यमाहरेत् ।
श्वयथुग्रस्तवारंगं शोफमुत्पीड्य युक्तितः ॥३१॥

अतुंडितानुत्तुंडितशल्याहरणम्—

मुद्गराहतया नाड्या निर्घात्योत्तुंडितं हरेत् ।
तैरेव चाऽन्यथेन्मार्गमसमार्गोत्तुंडितं तु यत् ॥३२॥

सकर्णनिष्कर्णशल्याहरणम्—

मृदित्वा कर्णिना कर्णं नाड्यास्येन निगृह्य वा ।
अयस्कातेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुस्थितम् ॥३३॥

पक्वाशयगतशल्याहरणम्—

पक्वाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत् ।

दुष्टवातादिशल्यनिर्हरणम्—

दुष्टवातविषस्तन्यरक्ततोयादि चूषणैः ॥३४॥

कंठगतशल्याहरणम्—

कंठस्रोतोगते शल्ये सूत्रं कंठे प्रवेशयेत् ।
बिसेनाक्ते ततः शल्ये [2]बिसं सूत्रं समं हरेत् ॥३५॥
नाड्याऽग्नितापिता क्षिप्त्वा शलाकामप्स्थिरीकृताम् ।
आनयेज्जातुषं कंठात्,
जतुदिग्धामजातुषम् ॥३६॥
केशोंडुकेन पीतेन द्रवैः कंटकमाक्षिपेत् ।

---

१ वारङ्गः शल्यस्य ग्रहणस्थानम् 'मुठिया' । कटकं "लगाम" इतिभाषा । कशा "कोड़ा" इतिभाषा । तैर्मुद्गरादिभिः । २ बिसं कमलतन्तुः ।

सहसा सूत्रबद्धेन यमतः, [2]तेन चेतरत् ॥३७॥
अशक्यं मुखनासाभ्यामाहर्तुं परतो नुदेत् ।
अप्पानस्कन्धघाताभ्यां ग्रासशल्यं प्रवेशयेत् ॥३८॥

अक्षिप्रणगतशल्याहरणम्—
सूक्ष्माक्षिव्रणशल्यानि क्षौमवालजलैर्हरेत् ।

जलमग्नस्योदरस्थजलाहरणोपायः—
अपां पूर्णं विधुनुयादवाक्शिरसमायतम् ॥३९॥
वामयेद्वाऽऽमुखं भस्मराशौ वा निखनेन्नरम् ।

कर्णगतजलाहरणम्—
कर्णेऽम्बुपूर्णे हस्तेन मथित्वा तैलवारिणी ॥४०॥
क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वा चूषयेत वा ।

कर्णगतकीटाहरणम्—
कीटे स्रोतोगते कर्णं पूरयेल्लवणाम्बुना ॥४१॥
शुक्तेन वा सुखोष्णेन, मृते, क्लेदहरो विधिः ।

शल्यानां देहोष्मणा विलयः—
जातुषं हेमरूप्यादिधातुजं च चिरस्थितम् ॥ ४२ ॥
ऊष्मणा प्रायशः शल्यं देहजेन विलीयते ।

मृद्वेण्वादीनां निविलयः—
मृद्वेणुदारुशृङ्गास्थिदंतवालोपलानि च ॥ ४३ ॥
शल्यानि न विशीर्यंते शरीरे मृण्मयानि वा ।

विषाणादिशल्यस्यविलयाभावादि—
विषाणवेणवयस्तालदारुशल्यं चिरादपि ॥ ४४ ॥
प्रायो निर्भुज्यते तद्धि पचत्याशु पलासृजी ।

मांसावगाढशल्याहरणप्रकारः—
शल्ये मांसावगाढे च स देशो न विदह्यते ॥ ४५ ॥

---

२ तेन कण्टकेन इतरत् केशोन्दुकं प्रमादपीतम् ।

ततस्तं मर्दनस्वेदशुद्धिकर्षणबृंहणैः ।
तीक्ष्णोपनाहपानान्नघनशस्त्रपदाङ्कनैः ॥ ४६ ॥
पाचयित्वा हरेच्छल्यं पाटनैषणभेदनैः ।

संक्षेपेणशल्याहरण प्रकारः—

शल्यप्रदेशयन्त्राणामवेक्ष्य बहुरूपताम् ।
तैस्तैरुपायैर्मतिमान् शल्यं विद्यात्तथा हरेत्" ॥ ४७ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शस्त्रकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

श्वयथूपक्रमादि—

"व्रणः संजायते प्रायः पाकाच्छ्वयथुपूर्वकात् ।
तमेवोपचरेत्तस्माद्रक्षन्पाकं प्रयत्नतः ॥ १ ॥
सुशीतलेपसेकास्रमोक्षसंशोधनादिभिः ।

आमशोथ लक्षणम्—

शोफोऽल्पोऽल्पोष्णरुक्सामः सवर्णः कठिनः स्थिरः ॥ २ ॥

पच्यमानशोथलक्षणम्—

पच्यमानो विवर्णस्तु रागी बस्तिरिवाततः ।
स्फुटतीव सनिस्तोदः साङ्गमर्दविजृम्भिकः ॥ ३ ॥
संरम्भारुचिदाहोषातृड्ज्वरानिद्रतान्वितः ।
स्त्यानं विष्यन्दयत्याज्यं व्रणवत्स्पर्शनासहः ॥ ४ ॥

पक्वशोथलक्षणम्—

पक्वेऽल्पवेगता म्लानिः पाण्डुता वलिसंभवः ।
नामोऽन्तेषून्नतिर्मध्ये कण्डूशोफादिमार्दवम् ॥ ५ ॥
स्पृष्टे पूयस्य संचारो भवेद्वस्ताविवाम्भसः ।

शोथपाककालेसर्वदोषप्रकोपः—

शूलं नर्तेऽनिलाद्दाहः पित्ताच्छोफः कफोदयात् ॥ ६ ॥

रागो रक्तत्वाच्च पाकः स्यादतो दोषैः सशोणितैः ।

अधिकपक्वशोथलक्षणम्—

पाकेऽतिवृत्ते सुषिरस्तनुत्वग्दोषभक्षितः ॥ ७ ॥
वलीभिराचितः श्यावः शीर्यमाणतनूरुहः ।

रक्तपाकलक्षणम्—

कफजेषु तु शोफेषु गंभीरं पाकमेत्यसृक् ॥ ८ ॥
पक्वलिंगं ततोऽस्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ।
त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥९॥
रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ।

अथशोफदारणादि—

अलसत्वेऽबले बाले पाके चात्यर्थमुद्धते ॥१०॥
[1]दारणं मर्मसंध्यादिस्थिते, चाऽ यत्र पाटनम् ।

आमशोथच्छेदेदोषाः—

आमच्छेदे सिरास्नायुव्यापदोसृगतिस्रुतिः ॥११॥
रुजोऽतिवृद्धिर्दरणं विसर्पो वा क्षतोद्भवः ।

पक्वशोथाच्छेदेदोषाः—

तिष्ठन्नंतः पुनः पूयः सिरास्नाय्वसृगामिषम् ॥१२॥
विवृद्धो दहति क्षिप्रं [2]तृणोलुपमिवानलः ।

आमच्छेदकादेर्निन्दा—

यश्छिनत्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ॥१३॥
श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ।

शस्त्रकर्मणःपूर्वभोजनव्यवस्था—

प्राक् शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम् ॥१४॥
पानपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं, यो वेदनाक्षमः ।

---

१ दारणं भेदनं दारणद्रव्यैः । पाटनंदारणं शस्त्रेण । अन्यत्र यद्विधेव्रणे दारणं तदितरव्रणे, इत्यर्थः । २ तृणोलुपं तृणसमूहम् ।

न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते ॥१५॥
[1]अन्यत्र मूढगर्भाश्ममुखरोगोदरातुरात् ।

शस्त्रनिक्षेपप्रकारादि—

अथाऽऽहृतोपकरणो वैद्यः प्राङ्मुखमातुरम् ॥१६॥
संमुखो यन्त्रयित्वाऽऽशु न्यस्येन्मर्मादि वर्जयन् ।
अनुलोमं सुनिशितं शस्त्रमापूयदर्शनात् ॥१७॥
सकृदेवाऽऽहरेत्तच्च[2], पाके तु सुमहत्यपि
पाटयेद् द्व्यंगुलं सम्यग्द्व्यंगुलं त्र्यंगुलान्तरम् ॥१८॥
[3]एषित्वा सम्यगेषिण्या परितः सुनिरूपितम् ।
अंगुलीनालवालैर्वा यथादेशं यथाशयम् ॥१९॥
यतो गतां गतिं विद्यादुत्सङ्गो यत्र यत्र च ।
तत्र तत्र व्रणं कुर्यात्सुविभक्तं निराशयम् ॥२०॥
आयतं च विशालं च यथा दोषो न तिष्ठति ।

शस्त्रकर्मणि वैद्यगुणाः—

शौर्यमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमस्वेदवेपथुः ॥२१॥
असंमोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ।

ललाटादौ तिर्यक्छेदः—

तिर्यक्छिन्द्याल्ललाटभ्रूदन्तवेष्टकजत्रुणि ॥२२॥
कुक्षिकक्षाक्षिकूटौष्ठकपोलगलवङ्क्षणे ।
अन्यत्र छेदनात्तिर्यक् सिरास्नायुविपाटनम् ॥२३॥

शस्त्रेऽवचारिते कर्तव्यविधिः—

शस्त्रेऽवचारिते वाग्भिः शीताम्भोभिश्च रोगिणम् ।

१—मूढगर्भादिभिरातुरेषु मद्यपानमिष्टभोजनं च निषिद्धमित्यर्थः । २—आपूयदर्शनपर्यन्तमाहरेत तत्र व्रणे स्थाप्यं शस्त्रम् । सकृदेव शस्त्रं न्यस्येत्ताऽपयेच्च बहून् वारान् । द्व्यङ्गुलमङ्गुलद्वयप्रमाणं व्रणं कुर्यान्नाधिकम् । अन्यस्मिन् व्रणे करणीये द्व्यङ्गुलं त्र्यंगुलं वान्तरीकृत्यान्यं व्रणं कुर्यान्नसमीपम् । ३—एषिण्याऽङ्गुली बालनालैर्वा परितः सुनिरूपितं पर्यालोचितम् ।

आश्वास्य, परितोऽङ्गुल्या परिपीड्य व्रणं, ततः ॥२४॥
क्षालयित्वा कषायेण, प्लो[1]तेनांभोऽपनीय च ।
गुग्गुल्वगुरुसिद्धार्थहिंगुसर्जरसान्वितैः ॥२५॥
धूपयेत्पटुपत्रैश्च[2]निवातैर्घृतप्लुतैः ।
तिलकल्काज्यमधुभिर्यथास्वं भेषजेन च ॥२६॥
दिग्धां वर्तिं ततो दद्यात्तैर[2]श्चाऽऽच्छादयेच्च ताम् ।
घृताक्तैःसक्तुभिश्चोर्ध्वम् घनां कवलिकां ततः ॥२७॥
निधाय युक्त्या, बध्नीयात्पट्टेन सु समाहितम् ।
पार्श्वे सव्येऽसव्ये वा, नाऽधस्तान्नैव चोपरि ॥२८॥

हितपट्टादिकथनम्—

शुचिसूक्ष्मदृढाः पट्टाः कवल्यः सविकेशिकाः ।
धूपिता मृदवः श्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः ॥२९॥

व्रणिनोरक्षाकरणम्—

कुर्वीताऽनंतरं [3]तस्य रक्षां रक्षोनिषिद्धये ।
बलिं चापहरे[4]त्तेभ्यः, सदा मूर्ध्ना विधारयेत् ॥३०॥
[5]लक्ष्मी गुहामतिगुहां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ।
वचां छत्रामतिच्छत्रां दूर्वां सिद्धार्थकानपि ॥३१

१—प्लोतेनकार्पासादिजवस्त्रखण्डेन । गुग्गुल्वादिनिम्बपत्रान्तैर्घृतप्लुतैः धूपयेच्च । वर्तिवस्त्रमयी तिलादिभिर्लिप्ता यद्दोषजो व्रणःस्यात्तदौषधैश्च लिप्ताम् । वातव्रणे तिलकल्कलिप्तां पित्तजे घृतेन कफजे च मधुना । एवम्भूतांवर्तिं व्रणान्तः प्रवेशयेत् । तांवर्तिं तिलकल्कादिभिराच्छादयेच्च । ऊर्ध्वं घृतयुक्तैःसक्तुभिश्चाच्छादयेत् । कवलिका-वस्त्रपट्टिका विकेशिका-व्रणान्तः प्रवेश्या वर्तिः । ३—तस्य व्रणिनः । ४—तेभ्यो रक्षोभ्यः । ५—लक्ष्मी-शमी, हरिद्रा, स्थलपद्मिनी, विष्णुक्रान्ता, लक्ष्मणा । गुहा-शालपर्णी अतिगुहा-पृश्निपर्णी । जटिला-मांसी । ब्रह्मचारिणी-ब्राह्मणयष्टिका मुण्डितिकेत्यपरे । छत्रातिच्छत्रे-द्रोणपुष्पीद्वयमितिडल्हणः । छत्रा-शतपुष्पा अतिच्छत्रा-विषाणिकेत्यरुणदत्तः । सिद्धार्थको गौरसर्षपः ।

व्रणिनःपथ्यापथ्यनिरूपणम्—

ततः स्नेहदिने[1]होक्तं तस्याऽऽचारं समादिशेत् ।
दिवास्वप्नो व्रणे कण्डूरागरुक्शोफपूयकृत् ॥३२॥
स्त्रीणां तु स्मृतिसंस्पर्शदर्शनैश्चलितेस्रुते ।
शुक्रे, व्यवायजान् दोषानसं[2]सर्गेऽप्यवाप्नुयात् ॥३३॥

व्रणिनोभोजन व्यवस्था—

भोजनं तु यथासात्म्यं यवगोधूमषष्टिकाः ।
मसूरमुद्गतुव[3]रीजीवंतीसुनिषण्णकाः ॥३४॥
बालमूलकवार्ताकितंडुलीयकवास्तुकम् ।
कारवेल्लककर्कोटपटोलकटुकाफलम् ॥३५॥
सैंधवं दाडिमं धात्री घृतं तप्तहिमं जलम् ।
जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥३६॥
भुंजानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ।

व्रणिनोऽजीर्णे दोषाः—

अशितं मात्रया काले पथ्यं याति जरां सुखम् ॥३७॥
अजीर्णे त्वनिलादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत् ।
ततः शोफरुजापाकदाहानाहानवाप्नुयात् ॥३८॥

व्रणिनोत्याज्याः—

नवधान्यं तिलान् माषान् मद्यं मांसं त्वजांगलम् ।
क्षीरेक्षुविकृतीरम्लं लवणं कटुकं त्यजेत् ॥३९॥
यच्चान्यदपि विष्टंभि विदाहि गुरु शीतलम् ।
वर्ज्यं नवधान्यादिर्व्रणिनः सर्वदोषकृत् ॥४०॥

व्रणिनो मद्यनिषेधः—

मद्यं तीक्ष्णोष्णरूक्षाम्लमाशु व्यापादयेद्व्रणम् ।

---

१ स्नेहदिनस्य स्नेहपानदिनस्येहा चेष्टा तत्रोक्तमाचारम् "उष्णोदकोपचारी स्यात्" इत्यादिकम् । २ स्त्रीणामसम्भोगेऽपि । ३ तुवरी 'अरहर' इति भाषा ।

वालोशीरैर्व्यजनादि—

वालोशीरैश्च [1]वीज्येत न चैनं परिघट्टयेत् ॥४१॥
न तुदेन्न च कंडूयेच्चेष्टमानश्च पालयेत् ।
स्निग्धवृद्धद्विजातीनां कथाः शृण्वन्मनःप्रियाः ॥४२॥
आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं व्रणमपोहति ।

तृतीयदिनेपुनः क्षालनादि—

तृतीयेऽहनि पुनः कुर्याद्व्रणकर्म च पूर्ववत् [2] ॥४३॥

द्वितीयदिने प्रक्षालनादिनिषेधः—

प्रक्षालनादि दिवसे द्वितीये नाचरेत्
[3]तथा ।
तीव्रव्यथो विग्रथितश्चिरात्संरोहति व्रणः ॥४४॥

व्रणान्तर्दीयमान वर्तिका विषयः—

स्निग्धां रूक्षां श्लथां गाढां दुर्न्यस्तां च विकेशिकाम् ।
व्रणे न दद्यात्कल्कं च
स्नेहात्क्लेदो विवर्धते ॥४५॥
मांसच्छेदोऽतिरौक्ष्याद्दरणं शोणितागमः ।
श्लथातिगाढदुर्न्यासैर्व्रणवर्त्मविघर्षणम् ॥४६॥

विकेशिकादानफलम्—

सपूतिमांसं सोत्संगं सगतिं पूयगर्भिणम् ।
व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता सन्तर्विकेशिका ॥४७॥

पाचनयोग्यव्रणः—

[4]व्यम्लं तु पाटितं शोफं पाचनैः समुपाचरेत् ।
भोजनैरुपनाहैश्च नातिव्रणविरोधिभिः ॥४८॥

---

१ वीज्येत पवनं कुर्यात् । एनं व्रणम् । २ पूर्वेण, व्रणकर्मणा तुल्यं प्रक्षालनादि । ३ तथा द्वितीये दिने प्रक्षालनादिकर्मणा कृतेन । विग्रथितो बहुभिर्ग्रंथिभिर्युतः । ४ व्यम्लं विदग्धंरक्तम् ।

सीव्यव्रणाः—

सद्यः सद्योव्रणान् सीव्येद्विवृतानभिघातजान् ।
मेदोजान् लिखितान् ग्रन्थीन् ह्रस्वाः पाल्योश्च कर्णयोः ॥४९॥
शिरोऽक्षिकूट नासौष्ठगण्डकर्णोरुबाहुषु ।
ग्रीवाललाटमुष्कस्फिङ्मेढ्रपायूदरादिषु ॥५०॥
गंभीरेषु प्रदेशेषु मांसलेष्वचलेषु च ।

सीवननिषेधः—

न तु वंक्षणकक्षादावल्पमांसचले व्रणान् ॥५१॥
वायुनिर्वाहिणः शल्यगर्भान्क्षारविषाग्निजान् ।

सीवनात्पूर्वं व्रणप्रकारः—

सीव्येच्चलास्थिशुष्कास्रतृणरोमापनीय तु ॥५२॥
प्रलम्बि मांसं विच्छिन्नं निवेश्य स्वनिवेशने ।
संधेस्थ्यवस्थिते रक्ते स्नाव्ना सूत्रेण वल्कलैः ॥५३॥
सीव्येन्न दूरे नाऽऽसन्ने गृह्णन्नाल्पं न वा बहु ।

आतसान्त्वनपूर्वकबंधादि—

सांत्वयित्वा ततश्चार्तं व्रणे मधुघृतद्रुतैः ॥५४॥
अञ्जनक्षौमज[1]मषीफलिनीलज्ज्वकीफलैः ।
सरोध्रमधुकैर्दिग्धे युञ्ज्याद्बंधादि पूर्ववत् ॥५५॥

व्रणविशेषेसीवनप्रकारः—

व्रणो निःशोणितौष्ठो यः किंचिदेवावलिख्य तम् ।
सञ्जातरुधिरं सीव्येत्सधानं ह्यस्य[2] शोणितम् ॥५६॥

देशादीन्वीक्ष्यबंधनयोग—

बंधनानि तु देशादीन् वीक्ष्य युंजीत तेषु च ।
[3]आविकाजिनकौशेयमुष्णं क्षौमं तु शीतलम् ॥५७॥
शीतोष्णं तूलसंतानकार्पासस्नायुवल्कजम् ।

---

[1] क्षौमजमषी-दग्धकौशेयवस्त्रभस्म । [2] अस्य व्रणस्य । [3] आविकमूर्णा-मयम् । अजिनंचर्म । तूलसन्तानः कार्पासशाल्मलतूलनिर्मितम् । अपुवल्कम् ।

ताम्रायस्त्रपुसीसानि व्रणे मेदःकफाधिके ॥५८॥
भंगे च मुंज्यात्फलकं चर्मवल्ककुशादि च ।

पञ्चदशबन्धाः—

स्वनामानुगताकारा वंधास्तु दश पंच च ॥५९॥
कोशस्वस्तिकमुत्तोलीचीनदामानुवेल्लितम् ।
खट्वाविबंधस्थगिकावितानोत्सगगोफणाः ॥६०॥
यमकं मंडलाख्यं च पचाङ्गी चेति योजयेत् ।
यो यत्र सुनिविष्टः स्यात्तं तेषां तत्र बुद्धिमान् ॥६१॥

बन्धनानांगाढशिथिलत्वादि—

बध्नीयाद्गाढमूरु स्फिक्कक्षावंक्षणमूर्धसु ।
[1]शाखावदनकर्णोर:पृष्ठपार्श्वगलोदरे ॥६२॥
समं मेहनमुष्के च

नेत्रे संधिषु च श्लथम् ।

बन्धेविशेषता—

बध्नीयाच्छिथिलस्थाने वातश्लेष्मोद्भवे समम् ॥६३॥
गाढमेव समस्थाने, भृशं गाढं तदा[2]श्रये ।

शीतादौमोचरण प्रकारः—

शीते वसंते च तथा मोक्षणीयो त्र्यहात्त्र्यहात् ॥६४॥
पित्तरक्तोत्थयोर्बंधो गाढस्थाने समो मतः ।
समस्थाने श्लथा, नैव [3]शिथिलस्याशये तथा ॥६५॥
सायंप्रातस्तयोर्मोक्षो ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ।

अबद्ध व्रणदोषाः—

अबद्धो दंशमशकशीतवातादिपीडितः ॥६६॥
दुष्टीभवेच्चिरं चा[4]त्र न तिष्ठेत्स्नेहभेषजम् ।

---

१ ऊर्वादिषुगाढं शाखादिषु समं नेत्रादिषुच श्लथं शिथिलं बध्नीयात् । २ तदाश्रयेगाढाश्रये । ३ शिथिलस्याशये नैव बध्नीयात् । तयोःपित्तरक्तोत्थयोः । ४ अत्र बन्धरहितेव्रणे ।

कृच्छ्रेण शुद्धि वृद्धि वा याति रूढो विवर्णताम् ॥६७॥

बद्धव्रणगुणाः—

बद्धस्तु चूर्णितो भग्नो विश्लिष्टः पाटितोऽपि वा ।
छिन्नस्नायुसिरोऽप्याशु सुखं संरोहति व्रणः ॥६८॥
उत्थानशयनाद्यासु सर्वेहासु न पीडयेत् ।
उद्वृत्तौष्ठः समुत्सन्नो विषमः कठिनोऽतिरुक् ॥६९॥
मर्मा मृदुररुक् शीघ्रं व्रणः शुध्यति रोहति ।

स्थिर व्रणादीनामौषधादौ विशेषः—

स्थिराणामल्पमांसाना रौक्ष्यादनुपरोहताम् ॥७०॥
प्रच्छाद्यमौषधं पत्रैर्यथादोषं यथतु च ।
अजीर्णतरुणाऽच्छिद्रैः समतान्सुनिवेशितैः ॥७१॥
धौतैरकर्कशै क्षीरभूर्जार्जुनकदम्बजैः ।

अबन्ध्याव्रणाः—

कुष्ठिनामग्निदग्धाना पिटिका मधुमेहिनाम् ॥७२॥
कर्णिकाश्चोन्दुरुविषे क्षारदग्धा विषान्विताः ।
न मांसपाके च बध्नीयाद्गुदपाके च दारुणे ॥७३॥
शीर्यमाणाः सरुग्दाहाः शोफावस्थाविसर्पिणः ।

सकृमीणां व्रणानां चिकित्सा—

अरक्षया व्रणे यस्मिन् मक्षिका निक्षिपेत्कृमीन् ॥७४॥
ते भक्षयंतः कुर्वन्ति रुजाशोफास्रसंस्रवान् ।
सुरसादि प्रयुञ्जीत तत्र धावनपूरणे ॥७५॥
सप्तपर्णकरञ्जार्कनिंबराजादनत्वचः ।
गोमूत्रकल्कितो लेपः सेकः क्षाराम्बुना हितः ॥७६॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा व्रणं तां¹नाशु निर्हरेत् ।

---

१ तान् क्रिमीन् ।

व्रणस्य त्वरया नोपरोहणम्—

न चैनं[1] त्वरमाणोऽन्तःसदोषमुपरोहयेत् ॥७७॥
सोऽल्पेनाप्यपचारेण भूयो विकुरुते यतः ।

रूढेऽप्यजीर्णादि विवर्जनम्—

रूढेऽप्यजीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत् ॥७८॥
हर्षं क्रोधं भयं वापि यावदास्थैर्यसंभवात् ।
आदरेणानुवर्त्योऽयं मासान्षट् सप्त वा विधिः ॥७९॥

व्रणेऽन्यरोगोत्पत्तौ चिकित्सोपदेशः—

उत्पद्यमानासु च तासु तासु
[2]वार्तासु दोषादिबलानुसारी ।
तैस्तैरुपायैः प्रयतश्चिकित्से-
दालोचयन् विस्तरमुत्तरोक्तम् ॥८०॥

त्रिंशोऽध्यायः

अथातः क्षाराग्निकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

क्षारस्य श्रेष्ठता—

"सर्वशस्त्रानुशस्त्राणां क्षारः श्रेष्ठो,
बहूनि यत् ।
छेद्यभेद्यादिकर्माणि कुरुते विषमेष्वपि ॥१॥
दुःखावचार्यशस्त्रेषु ते[3]न सिद्धिमयात्यु च ।
अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु, यच्च पानेऽपि युज्यते ॥२॥

---

१ व्रणम् । २ वार्तासु अवस्थासु । ३ तेन मार्गेण ।

पेयक्षारस्योपयोगः—

सपेयोऽर्शोऽग्निसादाश्मगुल्मोदरगरादिषु ।

मषादिषु क्षारयोजना—

योज्यः साक्षान्मषश्वित्रबाह्यार्शःकुष्ठसुप्तिषु ॥३॥
भगंदरार्बुदग्रंथिदुष्टनाडीव्रणादिषु ।

क्षारवर्जनम्—

न तु[1]भयोऽपि योक्तव्यः पित्ते रक्ते बलेऽबले ॥४॥
ज्वरेऽतिसारे हृन्मूर्धरोगे पाड्वामयेऽरुचौ ।
तिमिरे कृतसंशुद्धौ श्वयथौ सर्वगात्रगे ॥५॥
भीरुगर्भिण्यृतुमतीप्रोद्वृत्त[2]फलयोनिषु ।
अजीर्णेऽन्ने शिशौ वृद्धे धमनीसंधिमर्मसु ॥६॥
तरुणास्थिसिरास्नायुसेवनीगलनाभिषु ।
देशेऽल्पमांसे वृषणमेढ्रस्रोतोनखांतरे ॥७॥
वर्त्मरोगादृतेऽक्ष्णोश्च शीतवर्षोष्णदिने ।

क्षारनिर्माणप्रकारः—

[3]कालमुष्ककशम्याककदलीपारिभद्रकान् ॥८॥
अश्वकर्णमहावृक्षपलाशास्फोतवृक्षकान् ।
इंद्रवृक्षार्कपूतीकनक्तमालाश्वमारकान् ॥९॥
काकजंघामपामार्गमग्निमंथाग्नितिल्वकान् ।
सार्द्रान् समूलशाखादीन् खंडशः परिकल्पितान् ॥१०॥
कोशातकीश्चतस्रश्च शूकनालं यवस्य च ।
निवाते निचयीकृत्य पृथक्तानि शिलातले ॥११॥

---

१ उभयो.पानलेपनभेदेन द्विविधः । २ प्रकर्षेणोद्वृत्तं फलं रजोहरं यस्या योनेःसाचासौ प्रोद्वृत्तफलयोनिः । ३ कालमुष्ककः-मोक्षः ' मोखा वृक्ष" आस्फोतः कोविदारः । इन्द्रवृक्षोऽर्जुनः कोशातकी "तोरई" । पृथक्कालमुष्ककादीन् तथा कोशातकीप्रभृतीन् :

प्रक्षिप्य मुष्ककचये सुधा[1]श्मानि च दीपयेत् ।
ततस्तिलानां कुतालैर्दग्ध्वाऽग्नौ विगते पृथक् ॥१२॥
कृत्वा सुधाश्मनां भस्म द्रोणं त्वितरभस्मनः ।
मुष्ककोत्तरमादाय प्रत्येकं जलमूत्रयोः ॥ १३ ॥
गालयेदर्धभारेण महता वाससा च तत् ।
यावत्पिच्छिलरक्ताच्छस्तीक्ष्णो जातस्तदा च तम् ॥ १४ ॥
गृहीत्वा क्षारनिस्यंदं पचेल्लौह्यां विघट्टयन् ।
पच्यमाने ततस्तस्मिंस्ताः सुधाभस्मशर्कराः ॥ १५ ॥
शुक्तिक्षारपंक[2]शंखनाभीश्चाऽयसभाजने ।
कृत्वाग्निवर्णान् बहुशः क्षारोत्थेकुडवोन्मिते ॥ १६ ॥
निर्वाप्य पिष्ट्वा तेनैव[3] प्रतीवापं विनिक्षिपेत् ।
श्लक्ष्णं शङ्खशिखिगृध्रकंककपोतजम् ॥ १७ ॥
चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोह्वालवणानि च ।
परितः सुतरां चाऽतो दर्व्या तमवघट्टयेत् ॥ १८ ॥
सबाष्पैश्च यदोत्तिष्ठेद्बुद्बुदैर्लेहवद्घनः ।
अवतार्य ततः शीतो यवराशावयोमये ॥ १९ ॥
स्थाप्योऽयं मध्यमः क्षारो,
निर्वाप्यापनयेत् न तु[4] पिष्ट्वा क्षिपेन्मृदौ ।
[5]तीक्ष्णे पूर्ववत् प्रतिवापनम् ॥ २० ॥
तथा लांगलिकादंतिचित्रकातिविषावचाः ।
स्वर्जिकाकनकक्षीरिहिंगुपूतीक[6] पल्लवाः ॥ २१ ॥

---

१ सुधाश्मानि सुधाशर्कराः । सुधा "चूना" कुन्वाद्यैः काण्डैः । द्रोणमितरभस्मनः शम्पाकादिद्रव्यभस्मनोऽधिकमुष्ककं द्रोणपरिमाणम् । मुष्ककभस्मन उत्तरंसपादता नीतं तेनशम्पाकादीनां चत्वार आढका मुष्ककस्यैक आढक इति हेमाद्रिः । क्षारोत्थे पात्ब्दक्षारात्कुडवमितं पृथग्भाजने संस्थाप्य तस्मिन् । २ क्षारपङ्कः "सेतखडी" इतिभाषा । ३ तेन—क्षारेण । प्रतीवापं प्रक्षेपम् । ४ मृदौक्षारे सुधादीनि पिष्ट्वा न प्रक्षिपेत् । ५ तीक्ष्णे पूर्ववत्-मध्यमक्षारसदृशम् । ६ पूतीकः करंजस्तस्यपल्लवाः कोमलपत्राणि ।

[1]तालपत्री विडं चेति सप्तराग्रात्परं तु सः ।
तीक्ष्णोऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्वर्बुदादिषु ॥ २२ ॥
[2]मध्येष्वेव च मध्य;

अन्यः पित्तास्रगुदजन्मसु ।

क्षारेबलाधानार्थं क्षाराम्बुप्रक्षेपः—

बलार्थं क्षीणसानीये क्षारान्तु पुनरावपेत् ॥ २३ ॥

क्षारस्यदशगुणाः—

नातितीक्ष्णो मृदुः श्लक्ष्णः पिच्छिलः शीघ्रगः सितः ।
[3]शिखरी सुखनिर्वाप्यो न वि[4]ष्यंदी न चातिरुक् ॥ २४ ॥

रोगप्रयुक्तक्षारगुणाः—

क्षारो दशगुणः शस्त्रतेजसोरपि [5]कर्मकृत् ।
आचूषन्निव संरंभाद्गात्रमापीडयन्निव ॥ २५ ॥
सर्वतोऽनुसरन् दोषानुन्मूलयति मूलतः ।
कर्मकृत्वा गतरुजः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ २६ ॥

क्षारप्रयोगः—

क्षारसाध्ये गदेऽच्छिन्नेऽलिखितेऽस्राविते‍ऽथवा ।
क्षारं शलाकया दत्त्वा [6]प्लोतप्रावृतदेहया ॥ २७ ॥
मात्राशतमुपेक्षेत

अर्शःसुक्षारनिक्षेपादि—

तत्रार्शः स्वावृताननम् ।

हस्तेन यंत्रं कुर्वीत

---

१ तालपत्री मुसली स-क्षारः । २ मध्येषु अनिलश्लेष्मादिषुएव । ३ शिखरी चिरस्थितस्यद्रव्यस्योपरिद्धास्पिटिकोन्यतं तद्वान् शिखरं "पपड़ी" इति लोके । ४ विष्यन्दी स्रुतिमान् । ५ शस्त्रस्यकर्म छेदनादि, तेजसोऽग्नेर्यत्कर्मतत्कृत् । ६ प्लोतो वस्त्रखण्डः ।

सिरादिदाहस्तैरेव[1]

क्षारवारितानां नाग्निदाहः—

न दहेत्क्षारवारितान् ।

अंतःशल्यासृजो भिन्नकोष्ठान् भूरिव्रणातुरान् ॥४४॥

सुदग्धे लेपनादि—

सुदग्धं घृतमध्वक्तं स्निग्धशीतैः प्रदेहयेत् ।

सुदग्धलिङ्गम्—

तस्य लिंगं स्थिते रक्ते शब्दवल्लसिकान्वितम् ॥४५॥

पक्वतालकपोताभं सुरोहं नातिवेदनम् ।

दुर्दग्धादेर्लिङ्गम्—

प्रमाददग्धवत्सर्वं[2] दुर्दग्धात्यर्थदग्धयोः ॥४६॥

प्रमाददग्धं चतुर्विधम्—

चतुर्धा तत्तु तुत्थेन सह

तुत्थदग्धलक्षणम्—

तुत्थस्य लक्षणम् ।

त्वग्विवर्णोष्यतेऽत्यर्थं न च स्फोटसमुद्भवः ॥४७॥

सस्फोटदाहतीव्रोष दुर्दग्धम्

अतिदग्धलक्षणम्—

अतिदाहतः ।

मांसलंबनसंकोचदाहधूपनवेदनाः ॥४८॥

सिरादिनाशस्तृण्मूर्छाव्रणगांभीर्यमृत्यवः ।

चिकित्सितम्—

तुत्थस्याऽग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम् ॥४९॥

१ तैः मधुस्नेहादिभिः । २ तत्प्रमाद दग्धम् ।

शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रसूतितन्त्रम्—

अथातो गर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

गर्भोत्पत्तिः—

"शुद्धे शुक्रार्तवे [1]सत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः ।
गर्भः संपद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥१॥

कुक्षौगर्भवृद्धिप्रकारः—

बीजात्मकर्महाभूतैः[2] सूक्ष्मैः सत्वानुगैश्च सः ।
मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ विवर्धते ॥२॥

सत्वस्यगर्भप्रवेशानुपलब्धावभिस्थितौदृष्टान्तः—

तेजो यथार्करश्मीनां [3]स्फटिकेन तिरस्कृतम् ।
नेन्धनं दृश्यते गच्छत्सत्वो गर्भाशयं तथा ॥३॥

सत्वस्यनरादिरूपत्वे हेतुः—

[4]कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वभावता ।

---

१ सत्वो जीवः । स्वकर्माणि पूर्वजन्म कृतानि शुभाशुभानि । क्लेशाः-अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशास्तैश्चोदितः प्रेरितः । २ बीजात्मकैर्गर्भजनकबीजस्वरूपैः शुक्रार्तवरूपतः परिणतैः । सत्वानुगैर्मनोऽनुसारिभिः । ३ स्फटिकेन सूर्यकान्तमणिना, तिरस्कृतं व्यवहितम् । स्फटिकस्याधः स्थितमिन्धनं गच्छत्तेजो न दृश्यते तद्वत् । ४ कारणानुविधायित्वात् कारणस्वभावत्वात् । तत्स्वभावताकारणतुल्यता । सत्वो महाभूतानुग एकरूप एव अनेकनरपशुपक्षियोन्याकारान् धत्ते । द्रुतलोहवत्—यथालोहसुवर्णरूप्यपित्तलादिवह्निसंयोगेन द्रवरूपमेकरूपमेव मृत्तिकादिरचिते मनुष्यतुरगपक्षिव्याघ्राद्याकारे सञ्चके (साँचा) निषिक्तां तां तां मनुष्याद्याकृतिधत्ते तद्वज्जीवोऽपि ।

रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥९॥

शुक्रार्तवदोषनिर्देशः—

वातादिकुणपग्रन्थिपूयक्षीणमलाह्वयन् ।
बीजासमर्थं रेतोऽस्रम्,
स्वलिङ्गैर्दोषजं वदेत् ॥१०॥
रक्तेन कुणपं, श्लेष्मवाताभ्यां ग्रंथिसन्निभम् ।
पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां, क्षीणं मारुतपित्ततः ॥११॥
कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यं तु त्रिदोषं मूत्रविट्प्रभम् ।

चिकित्सा—

कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टे स्वौषधम्,
कुणपे पुनः ॥१२॥
धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ।
पाययेत्सर्पिरथवा विपक्वमसनादिभिः ॥१३॥
पलाशभस्माश्मभिदा ग्रंथ्याभे,
परूषकवटादिभ्याम्, पूयरेतसि ।
क्षीणे शुक्रकरी क्रिया ॥१४॥
स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिभिः ॥१५॥
संशुद्धो विट्प्रभे सर्पिर्हिंगुसेव्यादिसाधितम् ।
पिबेत्,
ग्रंथ्यार्तवे पाठाव्योषवृक्षकजं जलम् ॥१६॥
पेयं कुणपपूयास्रे चन्दनं वक्ष्यते तु यत् ।
गुह्यरोगे च तत्सर्वं कार्यं सोत्तरबस्तिकम् ॥१७॥

शुद्धशुक्रलक्षणम्—

शुक्रं शुक्लं गुरु स्निग्धं मधुरं बहुलं बहु ।
घृतमाक्षिकतैलाभं सद्गर्भाय,

शुद्धार्तवलक्षणम्—

आर्तवं पुनः ॥१८॥
लाक्षारसशशासाभं धौतं यच्च विरज्यते ।
शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः ॥१९॥

गर्भसम्भवात्पूर्वमितिकर्तव्यता—

स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलितबस्तिकम् ।
नरं विशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ॥२०॥
नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् ।

ऋतुमतीस्त्रीलक्षणम्—

क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ॥२१॥
स्रस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं स्त्रियम् ।

अनृतौगर्भस्याग्रहणम्—

पद्मं संकोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ॥२२॥
ऋतावतीते योनिः सा शुक्रं नातः प्रतीच्छति[२] ।

आर्तवप्रवृत्तौवायोर्हेतुत्वम्—

मासेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृतौ पुनः ॥२३॥
ईषत्कृष्णं विगंधं च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् ।

रजस्वलाया आहार विहार कथनम्—

ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी त्र्यहम् ॥२४॥
[३]मृजालंकाररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ।
क्षैरेयं यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ॥२५॥
पर्णे शरावे हस्ते वा भुंजीत ब्रह्मचारिणी ।

ऋतुमत्याश्चतुर्थदिनकृत्यम्—

चतुर्थेऽह्नि ततः स्नात्वा शुक्लमाल्यांबरा शुचिः ॥२६॥

---

१ संरक्तमन्योन्यमनुरागयुक्तम् । मिथुनं स्त्रीपुरुषयुगलम् । २ प्रतीच्छति-गृह्णाति । ३ मृजा शुद्धिः ।

इच्छंती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम् ।

ऋतुकालनिर्देशः—

ऋतुस्तु द्वादश निशाः पूर्वास्तिस्रश्च निन्दिताः ॥२७॥
एकादशी च, युग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका ।

पुत्रार्थयज्ञकरणम्—

उपाध्यायोऽथ पुत्रीयं कुर्वीत विधिवद्विधिम् ॥२८॥
नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मन्त्रवर्जितम् ।
अवंध्य एवं संयोगः स्यादपत्यं च कामतः ॥२९॥
संतोऽप्याहुरपत्यार्थं दंपत्योः संगतं रहः[1] ।
दुरपत्यं कुलाङ्गारो गोत्रे जातं महत्यपि ॥३०॥

इच्छानुरूपपुत्रप्राप्तिसाधनम्—

इच्छेतां यादृशं पुत्रं [2]तद्रूपचरितांश्च तौ ।
चिंतयेतां जनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ[3] ॥३१॥
[4]कर्मांते च पुमान्सर्पिः क्षीरशाल्योदनाशितः ।

दम्पत्योः शय्यारोहणादि—

प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां [5]मौहूर्तिकाज्ञया ॥३२॥
आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ।
तैलमाषोत्तराहारा तत्र मंत्रं प्रयोजयेत् ॥

तत्रमन्त्रपाठः—

अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता ।
त्वां दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवति ।
ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ ।
भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम् ।

---

१ रहः एकान्ते । २ तद्रूपचरिताम् तस्यामिलषितपुत्रस्यरूपचरिते येषां तान् जनपदान् देशान् । परिच्छदोवेशभूषादिः । ४ कर्मान्ते पुत्रीययज्ञान्ते । ५ मौहूर्तिको ज्योतिविद् ।

अन्योन्यं सान्त्वनापूर्वकं संवेशः—

सान्त्वयित्वा ततोऽन्योन्यं संविशेतां मुदान्वितौ ।
उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदंगैः सुसंस्थितैः ॥३४॥
तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणम्—

लिंगं तु सद्योगर्भाया योन्यां बीजस्य संग्रहः ॥३५॥
तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं [1]शुक्रास्रानुबंधनम् ।
हृदयस्पंदनं तंद्रा तृड् ग्लानिर्लोमहर्षणम् ॥३६॥

प्रथममासेगर्भावस्था—

अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कललो[2] भवेत् ।

पुंसवनस्यसार्थकता—

गर्भः, पुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत् ॥३७॥
बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते ।

पुंसवनप्रयोगः—

पुष्ये [3]पुरुषकं हैमं राजतं वाऽथवाऽऽयसम् ॥३८॥
कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्यांजलिं पिबेत् ।
[4]गौरदंडमपामार्गं जीवकर्षभसैर्यकान् । ३९॥
पिबेत्पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः ।
क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् ॥४०॥
पुत्रार्थं दक्षिणे सिंचेद्वामे दुहितृवांछया ।
पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् ॥४१॥
नासयाऽस्येन वा पीतं वटशृङ्गाष्टकं तथा ।

गर्भधारणसहायभूतानि—

औषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यांतरुपयोजयेत् ॥४२॥

---

१ शुक्रस्यार्तवस्य च अननुबन्धनं योन्याबहिर्निःसरणम् । २ कललः श्लेष्मतुल्यः । ३ पुरुषइव पुरुषकस्तं पुरुषाकारं पुत्तलकम् । ४ गौरदण्डम् गौर-सर्षपं । एनांगभिणीम् ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत् ॥४३॥

गर्भिण्यास्त्याज्याः—

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ॥४४॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम् ।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥ ४५ ॥
रक्तं [1]निवसनं श्वभ्रकूपेक्षा मद्यमामिषम् ।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो[2] नेच्छन्ति तत्त्यजेत् ॥ ४६ ॥
तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात् ।
एभिर्गर्भः स्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ॥ ४७ ॥

वातला द्याहारैः कुब्जाद्युत्पत्तिः—

वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्धजडवामनः ।
पित्तलैः खलतिः[3] पिङ्गः, श्वित्री पाण्डुः कफात्मभिः ॥ ४८ ॥

मृद्वाद्यौषधैर्व्याधिजयः—

व्याधींश्चास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत् ।

द्वितीयमासे गर्भावस्था—

द्वितीये मासि कललाद्घनः पेश्यथवाऽर्बुदम् ॥ ४९ ॥
पुंस्त्रीक्लीबाः क्रमात्तेभ्यः[4],

व्यक्तगर्भस्य लक्षणम्—

तत्र व्यक्तस्य लक्षणम् ।
क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्च्छा छर्दिररोचकः ॥ ५० ॥
जृम्भा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ।

१—निवसनं वस्त्रम् । श्वभ्रो गर्तः । २—स्त्रियोनेच्छन्ति—यथा नदीपारं न यायादित्यादि ३ खलतिः खल्वाटः । ४ तेभ्यः पेश्यादिभ्यः । पेशी दीर्घाकारा । अर्बुदं वर्तुलफलस्यार्धभागः ।

अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ ॥ ५१ ॥
पादशोफो विदाहोऽन्ये* श्रद्धाश्च विविधात्मिकाः ।

गर्भिण्या दौहृद कथनम्—

मातृजं ह्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन तत् ॥ ५२ ॥
संबद्धं, तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धावमाननम् ।
देयमप्यहितं तस्यै हितोपहितमल्पकम् ॥ ५३ ॥
श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ।

तृतीयेमासि गर्भावस्था—

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपंचकम् ॥ ५४ ॥
मूर्धा, द्वे सक्थिनी[१] बाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च ।
सममेव हि मूर्धाद्यैर्ज्ञानं च सुखदुःखयोः । ॥ ५५ ॥

गर्भवर्धन प्रकारः—

गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते ।
[२] यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया ॥ ५६ ॥

चतुर्थादिमासेषु गर्भावस्था—

चतुर्थे व्यक्तताङ्गाना, चेतनायाश्च पंचमे ।
षष्ठे स्नायुसिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ॥ ५७ ॥
सर्वैः सर्वाङ्गसंपूर्णो भावैः पुष्यति सप्तमे ।

किक्किसोत्पत्तिः—

गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाश्रिताः ।
कंडूं विदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किक्किसानि[३] च ॥ ५८ ॥

---

* अन्ये-आच र्या देहे विदाहो ।

१ सक्थि-ऊरुप्रदेशादारभ्यपादपर्यन्तमङ्गम । २ यया नाड्या । स गर्भः । केदारः क्षेत्रम् । कुल्या जलंवहन्ती लघ्वी नाडी, अथवा कुल्याल्पाकृत्रिमा सरित्'' इत्यमरोक्तेः ''नहर ' इतिलोके । ३ किक्किसम् कंडूयनेन रेखाकारस्त्वग्भेदः 'मेखमा' इति लोके । तत्र तेषु कण्ड्वादिषु । कोलादिभिः सिद्धं नवनीतम् । मल्लेत्यादि भोजनविशेषणम् ।

नवनीतं हितं तत्र कोलांबुमधुरौषधैः ।
सिद्धमल्पपटुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम् ॥ ५९ ॥
चंदनोशीरकल्केन लिंपेदूरुस्तनोदरम् ।
[1]श्रेष्ठया चैणहरिणशशशोणितयुक्तया ॥ ६० ॥
अश्वघ्नपत्रसिद्धेन तैलेनाभ्यज्य मर्दयेत् ।
पटोलनिंबमंजिष्ठा सुरसैः सेचयेत्पुनः ॥ ६१ ॥
दार्वीमधुकतोयेन मृजां च परिशीलयेत् ।

अष्टममासे गर्भावस्था—

ओजोऽष्टमेसंचरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ६२ ॥
[2]तेन तौ म्लानमुदितौ तत्र जातो न जीवति ।
शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारी संशयिता भवेत् ॥ ६३ ॥
क्षीरपेया च पेयाऽत्र सघृतान्वासनं हितम् ।
मधुरैः साधितं शुद्ध्यै पुराणशकृतस्तथा ॥ ६४ ॥
शुष्कमूलककोलाम्लकषायेण प्रशस्यते ।
शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैंधवः ॥ ६५ ॥

प्रसूतिकालः—

तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम् ।
वर्षाद्विकारकारी स्यात्कुक्षौ वातेन धारितः ॥ ६६ ॥

नवममासे कर्तव्यम्—

शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मांसरसौदनः ।
बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम् ॥ ६७ ॥
तत एव पिचुं चास्या योनौ नित्यं निधापयेत् ।
[3]वातघ्नपत्रभंगांभः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥६८ ॥
निस्नेहांगीं न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत् ।

---

१ श्रेष्ठा त्रिफला । अश्वघ्नः 'कनैल' इति हिन्दी । श्रेष्ठया इत्यस्य लिम्पे त्क्रिययान्वयः । दार्व्यादिना मृजा शुद्धिस्नानादिकाम् । २ तेन ओजःसंचरणेन । तौ मातापुत्रौ । ३ पत्रभंगः पत्रसमूहः ।

पुत्रगर्भविज्ञानम्—

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं [1]तत्पार्श्वचेष्टिनी ॥ ६९ ॥
पुन्नामदोर्हृदप्रश्नरता पुंस्त्वप्रदर्शिनी ।
उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले ॥ ७० ॥

कन्यागर्भविज्ञानम्—

पुत्रं सूतेऽन्यथा कन्यां या चेच्छति नृसंगतिम् ।
नृत्यवादित्रगान्धर्वगन्धमाल्यप्रिया च या ॥ ७१ ॥
क्लीबं [2]तत्संकरे तत्र मध्यं कुक्षेः समुन्नतम् ।

गर्भद्वयविज्ञानम्—

यमौ पार्श्वद्वयोन्नामात्कुक्षौ [3]द्रोण्यामिव स्थिते ॥ ७२ ॥

सूतिकागृहकरणम्—

प्राक् चैव नवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशे प्रशस्ते संभारैः संपन्न साधकेऽहनि ॥ ७३ ॥
तत्रोदीक्षेत सा सूतिं [4]सूतिकापरिवारिता ।

आसन्नप्रसवाया लक्षणम्—

अधोगुरुत्वमरुचिः प्रसेको बहुमूत्रता ।
अथाश्वः प्रसवे ग्लानिः कुक्ष्यक्षिश्लथता क्लमः ॥ ७४ ॥
वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृद्वस्तिवंक्षणे ॥ ७५ ॥
योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानि च ।

गर्भोत्पत्ति प्रकरणम्—

आवीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुतिः ॥ ७६ ॥

---

१ तेन दक्षिणेनपार्श्वेन चेष्टितं गमनस्वप्नादिकं यस्याः सा । २ तत्संकरे तयोः पुत्रकन्याप्रसूतिलक्षणयोः संकरे सम्मेलने । ३ द्रोणी मध्यनिम्नानौका । ४ सूतिका परिवारिता—बहुवारप्रसवानुभूततत्कालोचितव्यवहारकुशलाभिः स्त्रीभिः परिवारिता ।

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकौ[1]तुकमंगलाम् ।
हस्तस्थपुन्नामफलां स्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् ॥ ७७ ॥
पाययेत्सघृतां पेयां
[2]तनौ भूशयने स्थिताम् ।
आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्तांगीं पुनःपुनः ॥ ७८ ॥
अधोनाभेर्विमृद्नीयात्कारयेज्जृंभचंक्रमम् ।
गर्भः प्रयात्यवागेवं [3]तल्लिगं हृद्विमोक्षतः ॥ ७९ ॥
आविश्य जठरं गर्भो बस्तेरुपरि तिष्ठति ।
आव्यो हि त्वरयंत्येनां खट्वामारोपयेत्ततः ॥ ८० ॥
अथ संपीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसारयेत् ।
मृदु पूर्वं प्रवाहेत [5]बाढमाप्रसवाच्च सा ॥ ८१ ॥
हर्षयेत्तां मुहुः पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः ।
प्रत्यायांति तथा प्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः ॥ ८२ ॥

गर्भसंगे कृत्यम्—

धूपयेद्गर्भसंगे तु योनिं कृष्णाहिकचुकैः ।
[6]हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत् ॥ ८३ ॥
सुवर्चलां विशल्यां वा जराऽपतनेऽपि च ।
कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्य बाहोरेनां विकंपयेत् ॥ ८४ ॥
कटीमा[7]कोटयेत्ताष्ण्यां स्फिजौ गाढं निपीडयेत् ।
तालुकंठंस्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि दद्यात्स्नुहीपयः ॥ ८५ ॥
भूर्जलांगलिकीतुंबीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ।
पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ॥ ८६ ॥

---

१ अत्रकौतुकं बाहौ बन्धनीयोरक्षाबन्धः । २ तनौ मृदुनि । आभुग्ने संकुचिते सक्थिनी यस्याः । जृम्भो गात्रप्रसारणम् । ३–अवाक्-अधः । तल्लिगम् तस्याधोगमनलिङ्गम् । ४ प्रवाहेत कुन्थयेत् । कुन्थनं "कांखना" इति हिन्दी । ५ बाढमत्यन्तम् । ६–हिरण्यपुष्पी "कलिहारी" हिन्दी । सुवर्चला–सूर्यभक्ता । विशल्या–पाटला । आकोटयेत्–पीडयेत् ।

कुष्ठतालीसकल्कं वा सुरामंडेन पाययेत् ।
यूषेण वा कुलत्थानां बिल्वजेनाऽसवेन वा ॥ ८७ ॥
शताह्वासर्षपाजाजी शिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः ।
सहिंगुकुष्ठमदनैर्मूत्रे क्षीरे च साधितम् ॥ ८८ ॥
तैलं सिद्धं हितं पानी योन्या चाप्यनुवासनम् ।
शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्कितः ॥ ८९ ॥
निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम् ।
[1]तत्संगे ह्यनिलो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात् ॥ ९० ॥
कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्कॢप्तनखेन वा ।
मुक्तगर्भापरा योनिं तैलेनाग च मर्दयेत् ॥ ९१ ॥

मक्कल्लशूले चिकित्सितम्—

मक्कल्लाख्ये शिरोबस्तिकोष्ठशूले तु पाययेत् ।
सुचूर्णितं यवक्षारं घृतेनोष्णजलेन वा ॥ ९२ ॥
धन्यांबु वा गुडव्योषत्रिजातकरजोन्वितम् ।

बालोपचारः—

अथ बालोपचारेण बालं योषिदुपाचरेत् ॥ ९३ ॥

सूतिकोपचार :—

सूतिका क्षुद्वती तैलाद्घृताद्वा महतीं पिबेत् ।
पंचकोलकिनीं मात्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥ ९४ ॥
वातघ्नौषधतोयं वा तथा वायुर्न कुप्यति ।
विशुध्यति च दुष्टास्रं द्वित्रिरात्रमयं क्रमः ॥ ९५ ॥
[4]स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत् ।
पीतवत्याश्च जठरं यमकाक्तं विवेष्टयेत् ॥ ९६ ॥

१—तत्संगे अपरासंगे । तज्जयाद्वायुजयात् । कॢप्तनखेन छिन्ननखेन ।
२—अमुंविधिपूर्वोक्तं पंचकोलयुक्तगुडोदकं वातघ्नौषधतोयादिकम् । ३—स्नेहयोग्यायाः स्नेहं पीतवत्याः । ४ स्नेहायोग्यायास्तु गुडोदकं वातघ्नौषधतोयं वा पीतवत्याः । यमको घृततैले ।

गुडं किण्वं सलवणं तथातः पूरयेन्मुहुः ।
घृतेन कल्कीकृतया शाल्मल्यतसिपिच्छया ॥ २५ ॥

अन्तर्मृतगर्भाकर्षणादि—

मंत्रैर्योगैर्जरायूक्तैर्मूढगर्भो न चेत्पतेत् ।
अथापृच्छये[1]श्वरं वैद्यो यत्नेनाशु तमाहरेत् ॥ २६ ॥
हस्तमभ्यज्य योनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया ।
हस्तेन शक्यं तेनैव गात्रं च विषमं स्थितम् ॥ २७ ॥
[2]आंछनोत्पीडसंपीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।
अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम् ॥ २८ ॥

शस्त्रोपायसाध्या मूढगर्भाचिकित्सा—

[3]हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुग्नः प्रपद्यते ।
पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदं च यः ॥ २९ ॥
विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः ।
मंडलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ ३० ॥
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत् ।
पूर्वं शिरःकपालानि दारयित्वा विशोधयेत् ॥ ३१ ॥
कक्षोरस्तालुचिबुके प्रदेशेऽन्यतमे ततः ।
समालंब्य दृढं कर्षेत्कुशलो गर्भशंकुना ॥ ३२ ॥
अभिन्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गंडयोरपि ।
बाहुं छित्वांऽसमवतस्य वाताध्मानोदरस्य तु ॥ ३३ ॥
विदार्य कोष्ठमंत्राणि बहिर्वा संनिरस्य च ।
कटीसक्तस्य तद्वच्च त[4]त्कपालानि दारयेत् ॥ ३४ ॥

---

१ ईश्वरं राजानम् । तेन हस्तेन । २ आछनं दीर्घतया स्थापनम् । उत्पीडन-मूर्ध्वंपीडनम् । संपीडन समन्तात्पीडनम् । ३ हस्तेति हस्तादीनामेकेनाङ्गेन भुग्नः कुटिलो यो गर्भो योनिंप्रपद्यते इत्येको विष्कम्भः । एकेन पादेन योनिमन्येन पादेन च गर्भिण्या गुदं प्रतिपद्यते स द्वितीयो विष्कम्भः । ततः कक्षाद्यंगेऽन्यतमे प्रदेशे समालम्ब्य कर्षेत् । ४ तत्कपालानि तस्याः कट्याः कपालानि ।

उपविष्टकमाहुस्तं वर्धते तेन नोदरम् ।

नागोदरगर्भलक्षणम्—

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवा योन्यतिस्रवात् ॥ १५ ॥
वाते क्रुद्धे कृशः शुष्यद्गर्भो नागोदरं तु तत् ।
उदरं वृद्धमप्यत्र हीयते स्फुरणं चिरात् ॥ १६ ॥

तयोश्चिकित्सा—

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः ।
घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भांश्च खादयेत् ॥ १७ ॥
तैरेव च सुतृप्तायाः क्षोभणं यानवाहनैः ।

लीनगर्भचिकित्सा—

लीनाख्ये निस्फुरे श्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः ॥ १८ ॥
रसा बहुघृता देया माषमूलकजा अपि ।
बालबिल्वं तिलान्माषान्सक्तूंश्च पयसा पिबेत् ॥ १९ ॥
सस्नेहमांसं मधु वा कल्यमभ्यंगं च शीलयेत् ।
हर्षयेत्सततं चैनामेवं गर्भः प्रवर्धते ॥ २० ॥
पुष्टोऽन्यथा वर्षगणैः कृच्छ्राज्जायेत नैव वा ।

गर्भिण्या उदावर्ते क्रमः—

उदावर्तं[1] तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरां जयेत् ॥ २१ ॥
योग्यैश्चवस्तिभिर्हन्यात्सगर्भां स हि गर्भिणीम् ।

अन्तर्मृतगर्भलक्षणम्—

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोऽपि वा ॥ २२ ॥
मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम् ।
गर्भास्पंदो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः ॥ २३ ॥
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

तत्रउपचारः

तस्याः कोष्णांबुसिक्तायाः पिष्ट्वा योनिं प्रलेपयेत् ॥ २४ ॥

१—म उदावर्तः ।

पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ।
रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना ॥ ४५ ॥
स्वेदाभ्यंगपरा स्नेहान् बलातैलादिकान् भजेत् ।
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि[१] च ॥ ४६ ॥

बलातैलनिरूपणम्—

[१]बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा ।
यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥४७॥
निःक्वाथभागो भागश्च तैलस्य च चतुर्दश[२] ।
द्विमेदादारुमंजिष्ठाकाकोलीद्वयचंदनैः ॥४८॥
सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैंधवैः ।
कालानुसार्यशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ॥४९॥
अश्वगंधावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः ।
शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ५० ॥
पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित् ।
सूतिकाबालमर्मास्थिहतक्षीणेषु पूजितम् ॥ ५१ ॥
ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातान्त्रवृद्धिजित् ।
धन्वंतरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥

मृतगर्भिण्याजीवद्गर्भनिष्कासनादि—

बस्तिद्वारे विपन्नायाः[३] कुक्षिः प्रस्पंदते यदि ।
जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ ५३ ॥

१—सुखानि यथेष्टान्नपानाहारविहाररूपाणि भजेत् । २—पयसस्तथा—तथा षड्भागा गोदुग्धस्य । यवकोलकुलत्थदशमूलानां मिलितानामेकोभागः क्वाथस्य । तद्यथा-तैलं प्रस्थमितं चेद्भवेद्बलामूले चतुर्विंशतिपलेषोडशगुणंजलं प्रक्षिप्य चतुर्थांशः क्वाथोग्राह्यः । दुग्धस्य प्रस्थषट्कम् यवादीनां दशमूलस्य चतुर्पुपलेषु प्रस्थचतुष्कंजलंदत्वा प्रस्थमितो ग्राह्यः क्वाथः । अत्रयवादीनां अर्धांशा दशमूलस्य च दशांशाः । वरी-शतावरी । वरा त्रिफला । रसः-बोलः । ३ विपन्नाया मृतायाः ।

सामान्यमूढगर्भ चिकित्सा—

यद्यद्वायुवशादंगं सज्जेद्गर्भस्य खंडशः ।
तत्तच्छित्त्वा हरेत्सम्यग्रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥ ३५ ॥

तत्रवैद्येनस्वमत्य.यत्नः कार्यः—

गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः ॥
तत्राऽनल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥ ३६ ॥

जीवद्गर्भच्छेदनिषेधः—

छिद्याद्गर्भं न जीवंतं मातरं स हि मारयेत् ।
सहात्मना, न चोपेक्ष्यः क्षणमप्यस्तजीवितः ॥ ३७ ॥

मूढगर्भिण्या असाध्यलक्षणम्—

योनिसंवरणभ्रंशमक्कल्लश्वासपीडिताम् ।
पूत्युद्गारां हिमांगी च मूढगर्भां परित्यजेत् ॥ ३८ ॥
अथापतंतीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक् ।

मूढगर्भायाःकर्त्तव्यप्रकारः—

एवं निर्हृतशल्या तु सिंचेदुष्णेन वारिणा ॥ ३९ ॥
दद्यादभ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः ।
योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चास्याः प्रशाम्यति ॥ ४० ॥
दीप्यकातिविषारास्नाहिंग्वेलापंचकोलकात् ।
चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्वाथं वा पाययेत्ततः ॥ ४१ ॥
कटुकातिविषापाठाशाकत्वग्घिंगुतेजिनीः[१] ।
तद्वच्च दोषस्यंदार्थं वेदनोपशमाय च ॥ ४२ ॥
त्रिरात्रमेवं सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत् ।
सायं पिबेदरिष्टं वा तथा सुकृतमासवम् ॥ ४३ ॥
शिरीषककुभक्वाथपिचून् योनौ विनिक्षिपेत् ।
उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥ ४४ ॥

---

१ तेजिनी–तेजोवती 'तेजवल' इति लोके ।

पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ।
रसो दशाहं च परं लघुपथ्यान्नभोजना ॥ ४५ ॥
स्वेदाभ्यंगपरा स्नेहान् बलातैलादिकान् भजेत् ।
ऊर्ध्वं चतुर्थ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि[1] च ॥ ४६ ॥

बलातैलनिरूपणम्—

[2]बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा ।
यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥४७॥
निःक्वाथभागो भागश्च तैलस्य च चतुर्दश: ।
द्विमेदादारुमंजिष्ठाकाकोलीद्वयचंदनैः ॥४८॥
सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैंधवैः ।
कालानुसार्यशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ॥४९॥
अश्वगंधावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः ।
शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ५० ॥
पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित् ।
सूतिकाबालमर्मास्थिहतक्षीणेषु पूजितम् ॥ ५१ ॥
ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातान्त्रवृद्धिजित् ।
धन्वंतरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥

मृतगर्भिण्याजीवद्गर्भनिष्कासनादि—

वस्तिद्वारे विपन्नाया[3]:कुक्षिः प्रस्पंदते यदि ।
जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ ५३ ॥

१—सुखानि यथेष्टान्नपानाहारविहाररूपाणि भजेत् । २—पयसस्तथा—तथा षड्भागा गोदुग्धस्य । यवकोलकुलत्थदशमूलानां मिलितानामेकोभागः क्वाथस्य । तद्यथा-तैलं प्रस्थमितं चेद्भवेद्बलामूले चतुर्विंशतिपलेषोडशगुणंजलं प्रक्षिप्य चतुर्थांशः क्वाथोग्राह्यः । दुग्धस्य प्रस्थषट्कम् यवादीनां दशमूलस्य चतुर्पलेषु प्रस्थचतुष्कंजलंदत्वा प्रस्थमितो ग्राह्यः क्वाथः । अत्रयवादीनां त्रयोणां दशमूलस्य च दशांशाः । वरी-शतावरी । वरा त्रिफला । रसः-बोलः । ३ विपन्नाया मृताया ।

गर्भस्रवति सप्तसुमासेषुसप्तयोगाः —

[1]मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ।
अश्मंतकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ५४ ॥
वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ।
अनंता सारिवा रास्ना पद्मा च मधुयष्टिका ॥ ५५ ॥
[2]बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृङ्गत्वचो घृतम् ।
पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ५६ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता ।
सप्तैतान् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनान् ॥ ५७ ॥
क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत् ।

अष्टमादिमासेषुकृत्यम्—

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धजैः ॥ ५८ ॥
मूलैः शृतं प्रयुंजीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे ।
नवमेसारिवाऽनंतापयस्यामधुयष्टिभिः ॥ ५९ ॥
योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया ।
अथवा यष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ॥६० ॥

गर्भविपर्ययेमतिविभ्रमः—

[3]अवस्थितं लोहितमंगनाया
वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः ।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः
स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ॥ ६१ ॥

---

१ पयस्या-क्षीरविदारी । ताम्रवल्ली मंजिष्ठा । लता-गन्धप्रियंगु. गौरसरिवा उत्पलसारिवा कृष्णसारिवा । अनंता-यवासः । पद्मा भारंगी । २ शिग्रुः 'सहिजन' हि० । मधुपर्णीगुडूची । बिसं पद्ममूलं 'भसीड़ा' इति लोके । निदिग्धिकाकण्टकारी । ३—जडा अज्ञाः । तैर्भूतैः । ओजोऽशनत्वं भूतानाम् ।

गर्भं जडा भूतहृतं वदंति
मूर्तेर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः ।
ओजोशनत्वादथवाऽव्यवस्थै-
र्भूतैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता ॥ ६२ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

शल्यतन्त्रम्—

अथातोऽगविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ।
शिरोऽन्त[1]राधिर्द्वौ बाहू सक्थिनी च समासतः ।
षडंगमंगं, प्रत्यंगं तस्याक्षिहृदयादिकम् ॥ १ ॥

पञ्चमहाभूतगुणाः—

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धः क्रमाद्गुणाः ।
खानिलाग्न्यब्भुवाम्
[2]एकगुणवृद्ध्यन्वयः परे ॥ २ ॥

---

१ अन्तराधीयन्ते यथायथं शरीरस्यान्तः स्थाप्यन्ते शिरःप्रभृतयोयत्रेति अन्तराधिः शरीरमध्यभाग इत्यर्थः । २ किमाकाशस्यैवैक एव गुणो वातादीनामुताऽन्येपि गुणाइत्यतआह-एकेति-एकेनगुणेनवृद्धिस्तस्यान्वयः सम्बन्धः परे वातादौ । यथा-आकाशस्यपरत्वाभावादेको गुणः शब्दः । वायौ द्वौगुणौ शब्द स्पर्शौ । अग्नौ त्रयोगुणाः शब्दस्पर्शरूपाणीति । जलेत्वारोगुणाः शब्दस्पर्शरूपरसाः । पृथिव्यां पंचगुणाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ।

महाभूतेभ्योदेहोत्पत्तिप्रकारः—

तत्र खात् खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो [1]विविक्तता ।
वातात् स्पर्शत्वगुच्छ्वासा, वह्नेर्दृग्रूपपक्तयः ॥ ३ ॥
आप्या जिह्वा रसक्लेदा, घ्राणगंधास्थि पार्थिवम् ।

मातृपितृजभागाः

मृद्वत्र मातृजं रक्तमांसमज्जगुदादिकम् ॥ ४ ॥
पैतृकं तु स्थिरं शुक्रं धमन्यस्थिकचादिकम् ।

चेतनभागाः—

[2]चैतनं चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च ।

सात्म्यजभागाः—

सात्म्यजं चायुरारोग्यमनालस्य प्रभा बलम् ॥ ५ ॥
रसजं वपुषो जन्म [3]वृत्तिर्वृद्धिरलोलता ॥ ६ ॥

सत्वादिभागाः—

सात्विकं शौचमास्तिक्यं [4]शुक्लधर्मरुचिर्मतिः ।
राजसं बहुभाषित्वं मानक्रुद्दंभमत्सराः ॥ ७ ॥
तामसं भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता ।
इति भूतमयो देहः

रक्तात्सप्तत्वगुत्पत्तिः—

तत्र सप्त त्वचोऽसृजः ॥ ८ ॥
पच्यमानात्प्रजायंते क्षीरात्संता[5]निका इव ।

कलानिरूपणम्:—

धात्वाशयांतरक्लेदो विपक्वः स्वंस्वमूष्मणा ॥ ९ ॥
श्लेष्मस्नाय्वपराच्छन्नः कलाख्यः काष्ठसारवत् ।

---

१ विविक्तता–शून्यता छिद्रत्वमितियावत् । पक्तिः पाकः । आप्या जलीयाः ।
२ चैतनमात्मीयम् । अक्षाणीन्द्रियाणि । नानायोनिषु पशुपक्षिसरीसृपादिषु ।
३ वृत्तिर्जीवनम् । ४–शुक्ल- धर्मे निश्छिद्रधर्मे । मानः सर्वत्रोत्कर्षेणात्मनोज्ञानम् मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः । दम्भः कापट्येनधर्माचरणम् । ५–संतानिका–साढ़ीमलाई, इतिलोके ।

[1]ताः सप्त, सप्त चाधारा रक्तस्याद्यः क्रमात्परे ॥ १० ॥
कफामपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च स्मृताः ।
गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे ॥ ११ ॥

कोष्ठाङ्गानि—

कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोम फुफ्फुसम् ।
यकृत् प्लीहोण्डुकं[2] वृक्कौ नाभिडिम्बान्त्रबस्तयः ॥ १२ ॥

जीवनस्थानानि—

दश जीवितधामानि [3]शिरोरसनबन्धनम् ।
कण्ठोऽस्रं हृदयं नाभिर्बस्तिः शुक्रौजसी गुदम् ॥ १३ ॥
जालानि कण्डराश्चानि पृथक् [4]षोडश निर्दिशेत् ।
षट् कूर्चाः [5]सप्त सेवन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः ॥ १४ ॥
शस्त्रेणताः परिहरेत् चतस्रो मांसरज्जवः ।
चतुर्दश स्थिसंघाताः सीमन्ता [6]द्विगुणा नव ॥ १५ ॥

अस्थिनिरूपणम्—

अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दंतनखैः सह ।
धन्वतरिस्तु त्रीण्याह, संधीनां च शतद्वयम् ॥ १६ ॥

---

१ ताः कलाः । आधारमाशयः । २ उण्डुकं-बृहदन्त्रस्यान्तिमोभागो विभक्तमलाधारः । फुफ्फुसं, फेफड़ा, यकृत् जिगर, वृक्कः गुर्दा, हिन्दी । ३ शिरोबन्धनं रसनबन्धनच । रसना जिह्वा । ४ पृथक् षोडशजालानि षोडश कण्डराश्चेत्यर्थः । ५ मेढ्रे एका जिह्वायामेका शिरसि च पञ्चेतिसप्तसीवन्यः । ६ द्विगुणा नव अष्टादश । श्रोणि-श्रोणिशतानीत्यर्थः । गुल्फजानुवंक्षण मणिबन्धकूर्परकक्षासु एवं कद्वादश, त्रिके एक,पञ्चशिरसि, सुश्रुतेतु चतुर्दशैवसीमन्ताः कथिताः ।

विधुरे मातृकाश्चाष्टौ षोडशेति परित्यजेत् ।
हन्वोः षोडश तासां द्वे संधिबंधनकर्मणी ॥ २७ ॥

जिह्वायां हनुवत्[१]तासामधो द्वे रसबोधने ।
द्वे च वाचः प्रवर्तिन्यौ,

नासायां चतुरुत्तरा ॥ २८ ॥

विंशतिर्गंधवेदिन्य स्तासामेकां च तालुगाम् ।
षट्पंचाशन्नयनयोर्निमेषोन्मेषकर्मणी ॥ २९ ॥

द्वे द्वे अपांगयोर्द्वे च तासां षडिति वर्जयेत् ।
नासानेत्राश्रिताः षष्टिर्ललाटे स्थापनीश्रिताम् ॥ ३० ॥

मतैवं वर्जयेत्तासाम्,

कर्णयोः षोडशाऽत्र तु ॥ ३१ ॥

द्वे शब्दबोधने, शंखौ सिरास्ता[२] एव चाश्रिताः ।
द्वे शंखसंधिगे तासाम्,
मूर्ध्नि द्वादश तत्र तु ॥ ३२ ॥
एकैका पृथगुत्क्षेपसीमंताधिपतिस्थिताम् ।
इत्यवेध्यविभागार्थं प्रत्यगं वर्णिता. सिराः ॥ ३३ ॥

अवेध्यसिरासंख्या—

अवेध्यास्तत्र कार्त्स्न्येन देहेऽष्टानवतिस्तथा ।
संकीर्णा ग्रथिताः क्षुद्रा वक्राः संधिषु चाश्रिताः ॥ ३४ ॥

सिराणां रक्तादिवहत्वम्—

तासां शतानां सप्तानां पादोऽर्स्रं वहते पृथक् ।
वातपित्तकफैर्जुष्टं शुद्धं चैवं स्थिता मलाः ॥ ३५ ॥
शरीरमनुगृह्णाति पीडयंत्यन्यथा पुनः ।

१—हनुवत् षोडश । जिह्वायां चतस्रः सिरा अवेध्याः । नासायां चतुरुत्तरा-विंशतिश्चतुर्विंशतिरित्यर्थः । २—ताः कर्णाश्रिता एव ।

वातवहसिरालक्षणम्—

तत्र श्यावारुणा रूक्षाः पूर्णरिक्ताः क्षणात्सिराः ॥ ३६ ॥
प्रस्पंदिन्यश्च वातासृं वहंते,

पित्तकफवहसिरालक्षणम्—

पित्तशोणितम् ।
स्पर्शोष्णाः शीघ्रवाहिन्यो नीलपीताः, कफं पुनः ॥ ३७ ॥
गौर्यः स्निग्धाः स्थिराः शीताः, संसृष्टं लिंगसंकरे ।

शोणितवहसिरानिर्देशः—

गूढाः समस्थिताः स्निग्धा रोहिण्यः शुद्धशोणितम् ॥ ३८ ॥

धमनीवर्णनम्—

[1]धमन्यो नाभिसंबद्धा विंशतिश्चतुरुत्तराः ।
ताभिः परिवृतो नाभिश्चक्र[2]नाभिरिवारकैः ॥ ३९ ॥
ताभिश्चोर्ध्वमधस्तिर्यग्देहोऽयमनुगृह्यते ।

१—अत्र विशेषः । संग्रहे चोक्तम् । तासां खलु धमनीनां मध्याद्दश धमन्य ऊर्ध्वं प्रसृताः दशाऽधः प्रसृतास्तिर्यक् चतस्रः । ताभिर्यथास्वमंशावयवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् समाश्रिता धार्यंत आप्याय्यंते च । तासामूर्ध्वगा हृदयमभिप्रपन्नाः प्रत्येकं त्रिधा जायते । एवं तास्त्रिंशत् । तत्रास्त्रिंशता मध्याद्द्वे वातपित्तकफरक्तरसान्वहतः एवं दश । द्वे द्वे शब्दरूपरसगंधान् गृह्णीतः । एवमष्टाभिः शब्दरूपरसगंधा गृह्यते । द्वाभ्यां द्वाभ्यां भाषते घोषं करोति स्वपिति प्रतिबुध्यते च एवमष्टौ । द्वे चाश्रु वहतः । तथैव द्वे स्तनाश्रिते नार्याः स्तन्यं नरस्य शुक्रं वहतः । अधोगमाः पक्वाशयस्था दश त्रिधा जायंते । एवं ता अपि त्रिंशत् । तत्राद्याः पूर्ववद्दश द्वे द्वे वातपित्तकफरक्तरसान्वहतः । द्वे वहतोऽन्नमन्नाश्रयेण द्वे मूत्रं द्वे तोयं द्वे शुक्रं वहतः । द्वे च मुंचतः । ते एव नारीणामार्तवं वहतः । द्वे वर्चोनिरसने स्थूलान्त्रप्रतिबद्धे । एवं द्वादश । शेषास्त्वष्टौ धमन्यस्तिरश्चीनाः स्वेदमभिवर्धयंति । तिर्यग्गामिन्यस्तु चतस्रो भिद्यमानाः सुबहुधा भवंतीति ।

२—चक्रनाभिः चक्रस्यमध्यमभागः "मूडी" इति लोके । आरकं "आरा" इति लोके । अनुगृह्यते उपक्रियते ।

स्त्रीपुंसयोर्दृश्यस्रोतोवर्णनम्—

स्रोतांसि-नासिके कर्णौ नेत्रे पाय्वास्यमेहनम् ॥ ४० ॥
स्तनौ रक्तापथश्चेति नारीणामधिकं त्रयम् ।

अदृश्यस्रोतोवर्णनम्—

जीवितायतनान्यंतः स्रोतांस्याहुस्त्रयोदश ॥ ४१ ॥
प्राणधातुमलाम्भोऽन्नवाहीनि,

स्रोतसामारोग्यानारोग्यकथनम्—

अहितसेवनात् ।
तानि दुष्टानि रोगाय, विशुद्धानि सुखाय च ॥ ४२ ॥

स्रोतसांलक्षणानि—

स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च ।
स्रोतांसि दीर्घाण्ययाकृत्या प्रतानसदृशानि च ॥ ४३ ॥

आहारादीनांस्रोतोदुष्टिकरत्वम्—

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः ।
धातुभिर्विगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः ॥ ४४ ॥

स्रोतोदुष्टिलक्षणम्—

अतिप्रवृत्तिः संगो वा सिराणां ग्रंथयोऽपि वा ।
विमार्गतो वा गमनं स्रोतसां दुष्टिलक्षणम् ॥ ४५ ॥

स्रोतसांद्वाराणि—

बिसानामिव सूक्ष्माणि दूरं प्रविसृतानि च ।
द्वाराणि स्रोतसां देहे रसो यैरुपचीयते ॥ ४६ ॥

स्रोतोव्यधेरोगाः—

व्यधे तु स्रोतसां मोहकम्पाध्मानवमिज्वराः ।
प्रलापशूलविण्मूत्ररोधो मरणमेव वा ॥ ४७ ॥

मोहोविद्धमतो वैद्यः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ।
उद्धृत्य शल्यं यत्नेन सद्यः क्षतविधानतः ॥ ४८ ॥

पाचकपित्तनिर्देशः—

अन्नस्य पक्ता पित्तं तु पाचकाख्यं पुरेरितम् ।
दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ॥ ४९ ॥
तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता ।
सैव[१] धन्वंतरिमते कला पित्तधराह्वया ॥५०॥
आयुरारोग्यवीर्योजोभूतधात्वग्निपुष्टये ।
स्थिता पक्वाशयद्वारि भुक्तमार्गार्गलेव सा ॥५१॥
भुक्तमामाशये रुद्ध्वा सा विपाच्य नयत्यधः ।
बलवत्यबला त्वन्नमाममेव विमुंचति ॥५२॥

अग्निग्रहण्योः परस्परमुपकार्योपकारकभावः—

ग्रहण्या *बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः ।
दूषितेऽग्नावतो दुष्टा ग्रहणी रोगकारिणी ॥५३॥

अन्नपाकस्याग्निर्हेतुः—

यदन्नं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषणम् ।
तत्राऽग्निर्हेतुराहारान्न ह्यपक्वाद्रसादयः ॥५४॥

शरीरेऽन्नपाकप्रकारः—

अन्नं कालेऽभ्यवहृतं कोष्ठं प्राणानिलाहृतम् ।
द्रवैर्विभिन्नसंघातं नीतं स्नेहेन मार्दवम् ॥ ५५ ॥
संधुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् ।
औदर्योऽग्निर्यथा बाह्यः [२]स्थालीस्थं तोयतंडुलम् ॥ ५६ ॥

---

* क्षेपकः । वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किंचित्सूर्यस्य मंडलम् । तन्मध्ये मंडलं सौम्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः । जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १ ॥

१—सैव—ग्रहणीएव । धर्मला "कैंडा" इति लोके ।

२—स्थाली—"बटलोही" इति लोके ।

आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् ।
फेनीभूतं कफं यातं विदाहादम्लतां ततः ॥ ५७ ॥
पित्तमामाशयात्कुर्याच्च्यवमानं च्युतं पुनः ।
अग्निना शोषितं पक्वं पिंडितं कटुमारुतम् ॥ ५८ ॥

भौमाद्यग्नीनां कर्माणि—

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पंचोष्माणः सनाभसाः ।
पंचाहारगुणान्स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्त्यनु ॥ ५९ ॥
यथास्वं ते च पुष्णंति पक्वा भूतगुणान् पृथक् ।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च देहगान् ॥ ६० ॥

अन्नस्य द्विप्रकारः परिणामः—

किट्टं सारश्च तत्पक्वमन्नं संभवति द्विधा ।
तत्राऽच्छं किट्टमन्नस्य मूत्रं विद्याद्घनं शकृत् ॥ ६१ ॥

सारस्य सप्ताग्निभिः पाकः—

सारस्तु सप्तभिर्भूयो यथास्वं पच्यतेऽग्निभिः ।

शारीरधातुनिरूपणम्—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च ॥ ६२ ॥
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते ।

धातुमलनिरूपणम्—

कफः पित्तं मलाः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च ॥ ६३ ॥
[1]स्नेहोऽक्षित्वग्विशामोजो धातूनां क्रमशो मलाः ।

धातूनांपाकस्य द्वैविध्यम्—

प्रसादकिट्टौ धातूनां पाकादेवं द्विधर्च्छतः ॥ ६४ ॥

१—विट्पुरीषम् । अक्षित्वग्विशास्नेहोमज्जमलः ।

द्वावंजली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ।
समधातोरिदं मानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः ॥ ८२ ॥

प्रकृतिनिरूपणम्—

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ८३ ॥

वातप्रकृतिलक्षणम्—

[१]विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात् ।
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनिल;
दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः ।
शीतद्विषश्चल[२]धृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टा-
सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ॥ ८५ ॥
अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः
सन्नसक्तचलजर्जरवाचः ।
नास्तिका बहुभुजः सविलासा
गीतहासमृगयाकलिलोला. ॥ ८६ ॥
मधुराम्लपटूष्णसात्म्यकांक्षाः
कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः ।
न दृढा न जितेंद्रिया न चार्या
न च कांतादयिता बहुप्रजा वा ॥ ८७ ॥

१—विभुत्वात् व्यापित्वात् । अन्योपित्तकफौकोप्येते येनतस्मात् । स्वातन्त्र्या-त्प्रेरकत्वात् । नायमन्येनप्रेर्यते । बहुरोगत्वात् यथा वातजा अशीतिरोगाः, पित्त-जाश्चत्वारिंशत्कफजास्तुविंशतिः ।

२—चलशब्दोधृतेरारभ्यगत्यन्तं.सर्वैः सम्बध्यते । अल्पा पित्तादयो निद्रान्ता येषाते । सन्नवाक् शिथिलवाक् । सक्तवाक् अद्रुतवाक् । जर्जरवाक् भिन्नकांस्यसदृश-वाक् । लोलशब्दोगीतादिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । मृगया "शिकार" इति भाषा । कलिर्वाकलहः । यातंगमनम् । न चार्या अमत्सः । दयिताः प्रियाः ।

नेत्राणि चैषां खरधूसराणि
वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि ।
उन्मीलितानीव भवंति, सुप्ते
शैलद्रुमांस्ते गगनं च यांति ॥ ८८ ॥
अधन्या मत्सराध्माताः स्तेनाः प्रोद्धद्धपिंडिकाः ।
श्वसृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकानूकाश्च[1] वातिकाः ॥ ८९ ॥

पित्तप्रकृतिलक्षणम्—

[2]पित्तं वह्निर्वह्निजं वा यदस्मा-
त्पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभुक्षः ।
गौरोष्णांगस्ताम्रहस्तांघ्रिवक्त्रः
शूरो मानी पिंगकेशोऽल्परोमा ॥ ९० ॥
दयितमाल्यविलेपनमंडनः
सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः ।
विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो
भवति भीषुगतिर्द्विषतामपि ॥ ९१ ॥
मेधावी प्रशिथिलसंधिबंधमांसो
नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ।
आवासः पलिततरंगनीलिकानां
भुंक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ९२ ॥
धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगंधि-
भूर्यु्च्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः ।
सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्
दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ ९३ ॥
तनूनि पिंगानि चलानि चैषां
तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि ।
क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा
रागं व्रजंत्याशु विलोचनानि ॥ ९४ ॥

१—अनूकः स्वभावः सदृशो वा । २—पित्तं वह्निरितिसुश्रुतमते ।

मध्यायुषो मध्यबलाः पंडिताः क्लेशभीरवः ।
व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारयक्षानूकाश्च पैत्तिकाः ॥ ९५ ॥

कफप्रकृतिलक्षणम्—

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो
गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थिमांसः ।
क्षुत्तृड्दुःखक्लेशघर्मैरतप्तो
बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसंधः ॥ ९६ ॥
प्रियंगुदूर्वाशरकांडशस्त्र-
गोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ।
प्रलंबबाहुः पृथुपीनवक्षा
महाललाटो घननीलकेशः ॥ ९७ ॥
मृदुंगः समसुविभक्तचारुवर्ष्मा[१]
बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः ।
धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु
प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ ९८ ॥
समदद्विरदेंद्रतुल्ययातो
जलदांभोधिमृदंगसिंहघोषः ।
स्मृतिमानभियोगवान्[२] विनीतो
न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ९९ ॥
तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्ष-
मल्पं स भुंक्ते बलवांस्तथापि ।
रक्तांतसुस्निग्धविशालदीर्घ-
सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥ १०० ॥
अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेहः
प्राज्यायुर्वित्तो दीर्घदर्शी वदान्यः ।

१—वर्ष्म-शरीरम् । जातु-कदाचित् । प्रच्छन्नं-गुप्तम् । २—अभियोगो गौरवम् । । वदान्योदाता ।

श्राद्धो गभीरः [1]स्थूललक्ष्यः क्षमावा-
नार्यो निद्रालुर्दीर्घसूत्रः कृतज्ञः ॥ १०१ ॥
ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो
भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च ।
स्वप्ने सपद्मान्सविहंगमाला-
स्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥ १०२ ॥
ब्रह्मरुद्रेंद्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ।
श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ १०३ ॥

द्वंद्वसर्वदोषप्रकृति निर्देशः—
प्रकृतीर्द्वयसर्वोत्था द्वंद्वसर्वगुणोदये ।

सत्वादिप्रकृति निर्देशः—
शौचास्तिक्यादिभिश्चैवं गुणैर्गुणमयीर्वदेत् ॥ १०४ ॥

वयोविभाग—
वयस्त्वाषोडशाद्बालं [2]तत्र धात्विन्द्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं क्षयः ॥ १०५ ॥

शरीर प्रमाणम्—
स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुः पात्रं सुखायुषोः ।

अष्टौनिन्दिताः—
न च यद्युक्तमुद्दिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः १०६ ॥
अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैः [3]सविपर्ययैः ।

श्रेष्ठाङ्गानि—
सुस्निग्धा ऋजवः सूक्ष्मा नैकमूलाः स्थिराः कचाः ॥ १०७ ॥
ललाटमुन्नतं श्लिष्टशंखमर्धेन्दुसंनिभम् ।
कर्णौ नीचोन्नतौ पश्चान्महांतौ श्लिष्टमांसलौ ॥ १०८ ॥

---

१ स्थूललक्ष्यो भूरिदाता । दीर्घसूत्रश्चिरक्रियः । सुभगो जनप्रियः । २—तत्र बाल्ये । धासप्ततेर्मध्यवयः । ३ सविपर्ययैः अतिरोमश. । अतिसितः । अतिकृशः । अतिह्रस्वः ।

नेत्रे व्यक्तासितसिते सुबद्धे घनपक्ष्मणी ।
उन्नताग्रा महोच्छ्वासा पीनर्जुर्नासिका समा ॥ १०९ ॥
ओष्ठौ रक्तावनुद्वृत्तौ, महत्यौ नोल्बणे हनू ।
महदास्यं, घना दंताः स्निग्धाः श्लक्ष्णाः सिताः समाः ॥
जिह्वा रक्ताऽऽयता तन्वी, मांसलं चिबुकं महत् ।
ग्रीवा ह्रस्वा घना वृत्ता, स्कंधावुन्नतपीवरौ ॥ १११ ॥

उदरं दक्षिणावर्तगूढनाभि समुन्नतम् ।
तनुरक्तोन्नतनखं स्निग्धमाताम्रमांसलम् ॥ ११२ ॥

दीर्घाच्छिद्रांगुलि महत्पाणिपादं प्रतिष्ठितम् ।
गूढवंशं बृहत्पृष्ठं, निगूढाः संधयो दृढाः ॥ ११३ ॥

धीरः स्वरोऽनुनादी च, वर्णः स्निग्धः स्थिरप्रभः ।
स्वभावजं स्थिरं सत्त्वमविकारि विपत्स्वपि ॥ ११४ ॥

वपुषः शुभत्वम्—

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रं वपुर्गर्भादिनीरुजम् ।
आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैःशुभम् ॥ ११५ ॥

इति सर्वगुणोपेते शरीरेवर्षशतमायुः—

इति सर्वगुणोपेते शरीरे शरदां शतम् ।
आयुरैश्वर्यमिष्टाश्च सर्वे भावाः प्रतिष्ठिताः ॥ ११६ ॥

बलप्रमाणज्ञानम्—

[1]त्वग्रक्तादीनि सत्त्वांतान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम् ।
बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥ ११७ ॥
सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंयुतः ।
सर्वारंभेषु चाशावान्सहिष्णुः सम्मतिः स्थिरः ॥ ११८ ॥

१—त्वगित्यादि त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रसत्त्वानि । अग्र्याणि श्रेष्ठानि ।

सत्वादिप्रकृति लक्षणानि—

"अनुत्सेकमदैन्यं च सुखं दु:खं च सेवते ।
सत्ववांस्तप्यमानस्तु राजसो नैव तामसः ॥ ११९ ॥

वपुषः प्रधानफलदायि लक्षणम्—

दानशीलदयासत्य ब्रह्मचर्यकृतज्ञता: ।
रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः" ॥ १२० ॥

चतुर्थोऽध्यायः

शारीरं शल्यतन्त्रं च ।

अथातो मर्मविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

मर्मसंख्या—

"सप्तोत्तरं मर्मशतम् तेषामेकादशादिशेत् ।
पृथक्सक्थ्योस्तथा बाह्वोस्त्रीणि कोष्ठे नवोरसि ॥ १
पृष्ठे चतुर्दशोर्ध्वं तु जत्रोस्त्रिंशच्च सप्त च ।

सक्थिबाहुगतमर्मणां नामानि—

मध्ये पादतलस्याहुरभितो मध्यमांगुलिम् ॥ २ ॥
तलहृन्नाम रुजया तत्र विद्धस्य पंचता ।
अंगुष्ठांगुलिमध्यस्थं क्षिप्रमाक्षेपमारणम् ॥ ३ ॥

---

१ अनुत्सेकम् उत्सेकोऽभिमानः ।

तस्योर्ध्वं त्र्यंगुले कूर्चः पादभ्रमणकंपकृत् ।
गुल्फसंधेरधः कूर्चशिरः शोफरुजाकरम् ॥ ४ ॥
जंघांचरणयोः संधौ गुल्फौ रुक्स्तंभमांद्यकृत् ।
जंघांतरे हिन्द्रबस्तिर्मारमरयसृजः क्षयात् ॥ ५ ॥
जंघोर्वोः संगमे जानु खंजता तत्र जीवतः ।
जानूनरुयंगुलादूर्ध्वमाण्यूरुस्तंभशोफकृत् ॥ ६ ॥
उर्व्यु रुमध्ये तद्व धात्मविषशोषोऽस्त्रसंक्षयात् ।
ऊरुमूले लोहिताख्यं हंति पक्षमसृक्क्षयात् ॥ ७ ॥
मुष्कवंक्षणयोर्मध्ये विटपं षढताकरम् ।
इति सक्थ्योस्तथा* बाह्वोर्मणिबंधोऽत्र गुल्फवत् ॥ ८ ॥
कूर्परं जानुवत्कौण्यं तयोर्विटपवत्पुनः ।
कक्षासमध्ये कक्षाधृक् कुणित्वं तत्र जायते ॥ ९ ॥

कोष्ठगतमर्मणां नामानि—

स्थूलांत्रबद्धः सद्योघ्नो विड्वातवमनो गुदः ।
मूत्राशयो धनुर्वक्रो बस्तिरल्पास्रमांसगः ॥ १० ॥
एकाधोवदनो मध्ये कट्याः सद्यो निहंत्यसून् ।
†ऋतेऽश्मरीव्रणाद्विद्धस्तत्राप्युभयतश्च सः
मूत्रस्राव्येकतो भिन्नो व्रणो रोहेच्च यत्नतः ।
देहामपक्वस्थानानां मध्ये सर्वसिराश्रयः ॥ १२ ॥
नाभिः सोऽपि हि सद्योघ्नो

उरोगतमर्मनामधेयानि—

द्वारमामाशयस्य च ।

---

*तथा एकादश । पादे गुल्फो बाहौ तु तत्स्थाने मणिबन्धः । पादे जानु, बाहौ तत्स्थाने कूर्परम् । पादे विटपं, बाहौ तु कक्षाधृक् । कौण्यं करभङ्गत्ता "लूलापन" इति हिन्दी । तयोर्बाह्वोः । † ऋत इति मश्मरो व्रणं वर्जयित्वा । स बस्तिरुभय पार्श्वयोर्विद्धस्तत्रापिश्मश्मरीव्रणे सद्यो निहन्ति । एक पार्श्वतो भिन्ने मूत्रस्रावी व्रणः स्यात् स च यत्नतो रोहेत् ।

मत्स्यादिधाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम् ॥ १३ ॥
[1]स्तनरोहितमूलाख्ये द्व्यंगुले स्तनयोर्वदेत् ।
ऊर्ध्वाधोऽस्रकफापूर्णकोष्ठो नश्येत्तयोः क्रमात् ॥ १४ ॥
अपस्तंभावुरःपार्श्वे नाड्यावनिलवाहिनी ।
रक्तेन पूर्णकोष्ठोऽत्र श्वासात्कासाच्च नश्यति ॥ १५ ॥
पृष्ठवंशोरसोर्मध्ये तयोरेव च पार्श्वयोः ।
अधोंऽसकूटयोर्विद्यादपलापाख्यमर्मणी ॥ १६ ॥
तयोः कोष्ठेऽसृजा पूर्णे नश्येद्यातेन पूयताम् ।

पृष्ठगतमर्मणांनामानि—

पार्श्वयोः पृष्ठवंशस्य श्रोणीकर्णौ प्रतिष्ठितौ ॥ १७ ॥
वंशाश्रिते स्फिजोरूर्ध्वं कटीकतरुणे स्मृते ।
तत्र रक्तक्षयात्पाण्डुर्हीनरूपो विनश्यति ॥ १८ ॥
पृष्ठवंशमुभयतो यौ संधी कटिपार्श्वयोः ।
जघनस्य बहिर्भागे मर्मणी तौ कुकुंदरौ ॥ १९ ॥
चेष्टाहानिरधःकाये स्पर्शाज्ञानं च तद्वधात् ।
पार्श्वांतरनिबद्धौ यावुपरि श्रोणिकर्णयोः ॥ २० ॥
आशयच्छादनौ तौ तु नितंबौ तरुणास्थिगौ ।
अधःशरीरे शोषोऽत्र दौर्बल्यं मरणं ततः ॥ २१ ॥
पार्श्वांतरनिबद्धौ च मध्ये जघनपार्श्वयोः ।
तिर्यगूर्ध्वं च निर्दिष्टौ पार्श्वसंधी तयोर्व्यधात् ॥ २२ ॥
रक्तपूरितकोष्ठस्य शरीरातरसंभवः ।
स्तनमूलार्जवे भागे पृष्ठवंशाश्रये सिरे ॥ २३ ॥
बृहत्यौ तत्र विद्धस्य मरणं रक्तसंक्षयात् ।
बाहुमूलाभिसंबद्धे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ॥ २४ ॥
अंसयोः फलके बाहुस्वापशोषौ तयोर्व्यधात् ।
ग्रीवामुभयतः *स्नाव्नी ग्रीवाबाहुशिरोंतरे ॥ २५ ॥

---

[1] स्तनरोहितं स्तनमूलश्चेति मर्मद्वयम् । एवंचस्तनद्वये चत्वारि, तथा चैवंमंष्ट ग्रोरसि नव मर्माणि । * स्नाव्नी—स्नायुसम्बन्धिनी ।

स्कंधांसपीठसंबंधावंसौ बाहुक्रियाहरौ ।

अथोर्ध्वगतमर्मणां नामानि—

कंठनाडीमुभयतः सिरा हनुसमाश्रिताः ॥ २६ ॥
चतस्रस्तासु नीले द्वे मन्ये द्वे मर्मणी स्मृते ।
स्वरप्रणाशवैकृत्यं रसाज्ञानं च तद्वधे ॥ २७ ॥
कंठनाडीमुभयतो जिह्वानासागताः सिराः ।
पृथक् चतस्रस्ताः सद्यो घ्नन्त्यसून्मातृकाह्वयाः ॥ २८ ॥
कृकाटिके शिरोग्रीवासंधौ तत्र चलं शिरः ।
अधस्तात्कर्णयोर्निम्ने विधुरे श्रुतिहारिणी ॥ २९ ॥
फणावुभयतो घ्राणमार्गं श्रोत्रपथानुगौ ।
अंतर्गलस्थितौ वेधाद्गंधविज्ञानहारिणौ ॥ ३० ॥
नेत्रयोर्बाह्यतोऽपांगौ भ्रुवोः पुच्छान्तयोरधः ।
तथोपरि भ्रुवोर्निम्नावावर्तावांध्यमेषु तु ॥ ३१ ॥
अनुकर्णं ललाटांते शंखौ सद्योविनाशनौ ।
केशांते शंखयोरूर्ध्वमुत्क्षेपौ, स्थपनी पुनः ॥ ३२ ॥
भ्रुवोर्मध्ये, ॐत्रयेऽप्यत्र शल्ये जीवेदनुद्धृते ।
स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यति तूद्धृते ॥ ३३ ॥
जिह्वाक्षिनासिकाश्रोत्रखचतुष्टयसंगमे ।
तालुन्यास्यानि चत्वारि स्रोतसां तेषु मर्मसु ॥ ३४ ॥
विद्धः शृंगाटकाख्येषु सद्यस्त्यजति जीवितम् ।
कपाले संधयः पंच सीमंतास्तिर्यगूर्ध्वगाः ॥ ३५ ॥
भ्रमोन्मादमनोनाशैस्तेषु विद्धेषु नश्यति ।
अंतरो मस्तकस्योर्ध्वं सिरासन्धिसमागमः ॥ ३६ ॥
रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून् ।

सामान्यमर्मलक्षणम्—

विषमं [1]स्पंदनं यत्र पीडिते रुक् च मर्म तत् ॥ ३७ ॥

ॐ त्रये उत्क्षेपस्थपनीत्रिये । १ स्पन्दनंस्फुरणम् ।

मांसादिसमागमोमम—

मांसास्थिस्नायुधमनीसिरामर्मसमागमः ।
स्यान्मर्मेति च तेनाऽत्र [1]सुतरां जीवितं स्थितम् ॥३८॥

बाहुल्येन मर्मणां निर्देशः—

बाहुल्येन तु निर्देशः षोढैवं मर्मकल्पना ।
प्राणायतनसामान्यादैक्यं वा मर्मणां मतम् ॥ ३९ ॥

मांसजानिदशमर्माणि—

मांसजानि दशे[2]न्द्राख्यतलहृत्स्तनरोहिताः ।

अष्टावस्थि मर्माणि—

शंखौ कटीकतरुणे नितम्बावसयौ. फले ॥ ४० ॥
अस्थ्यष्टौ,

स्नायुमर्माणि—

स्नायुमर्माणि [3]त्रयोविंशतिराणयः ।
कूर्चकूर्चशिरोऽणिक्षिप्रोत्क्षेपांसवस्तयः ॥ ४१ ॥

धमनीस्थमर्माणि

[4]गुदापस्तंभविधुर शृंगाटानि नवादिशेत् ।
मर्माणि धमनीस्थानि,

सिरामर्माणि—

सप्तत्रिंशत्सिराश्रयाः ॥ ४२ ॥

---

१ सुतरामतिशयेन । २ इन्द्रबस्तिः पादयोर्द्धे हस्तयोर्द्धे इति चत्वारि, तलहृन्मर्माण्यपि चत्वारि पादहस्तयोः । स्तनद्वये स्तनरोहितेद्धे, एवं दश । ३ आणयश्चत्वारि, कूर्चाख्यानि चत्वारि । कूर्चं शिरः संज्ञानि चत्वारि, अपाङ्गद्वयम् । क्षिप्राणि चत्वारि । उत्क्षेपौ द्वौ अंसौ द्वौ । बस्तिरेकः, एवं त्रयोविंशतिः । ४ गुदमेकम् । अपस्तम्भाख्ये द्वे मर्मणी । विधुरे द्वे । शृङ्गाटकानि चत्वारि एवं धमनीस्थानि नव ।

बृहत्यौ [1]मातृका नीले मन्ये कक्षाधरौ फणौ ।
विटपे हृदयं नाभिः पार्श्वसंधी स्तनांतरे ॥ ४३ ॥
अपलापौ स्थपन्यूर्ध्वश्रतम्रो लोहितानि च ।

संधिमर्माणि

संधौ विंशतिरावर्तौ मणिबन्धौ कुकुंदरौ ॥ ४४ ॥
सीमंताः कूर्परौ गुल्फौ कृकाट्यौ जानुनी पतिः

अन्यमतम्—

मांसमर्म गुदोऽन्येषां स्नान्वी कक्षाधरौ तथा ॥ ४५ ॥
विटपौ विधुराख्ये च शृंगाटानि सिरासु तु ।
अपस्तंभावपांगौ च धमनीस्थं न तैः स्मृतम् ॥ ४६ ॥

मांसादिजमर्मणांविद्धलक्षणानि—

विद्धेऽजस्रमसृक्स्रावो मांसधावनवत्तनुः ।
पांडुत्वमिंद्रियाज्ञानं मरणं चाशु मांसजे ॥ ४७ ॥
मज्जान्वितोऽच्छो [2]विच्छिन्नस्रावो रुक्चास्थिमर्मणि ।
आयामाक्षेपकस्तंभा स्नावजेऽभ्यधिकं रुजा ॥ ४८ ॥
यानस्थानासनाशक्तिर्वैकल्कमथवातकः ।
रक्तं सशब्दफेनोष्णं धमनीस्थे विचेतनः ॥ ४९ ॥
सिरामर्मण्यधे सान्द्रमजस्रं बह्वसृक्स्रवेत् ।
तत्क्षयात्तृड्भ्रमश्वासमोहहिध्माभिरंतकः ॥ ५० ॥
वस्तु शूर्करिवाकीर्णं रूढे च कुणिखंजता ।
बलचेष्टाक्षयः शोषः पर्वशोफश्च संधिजे ॥ ५१ ॥

सद्यःप्राणहरमर्मनिर्देशः—

नाभिशंखाधिपापानहृच्छृंगाटकबस्तयः ।
अष्टौ च मातृकाः सद्यो निघ्नन्त्येकोनविंशतिः ॥ ५२ ॥
सप्ताहः परमस्तेषां कालः कालस्य कर्षणे ।

---

[1] मातृका अष्टौ । स्थपनी एका । लोहितानि चत्वारि । अत्र सीमन्ताः पञ्च । पतिरधिपतिरेकः । [2] विच्छिन्नो न निरन्तरः ।

कालान्तर प्राणहरमर्मनिर्देशः–

त्रयस्त्रिंशदपस्तंभतलहृत्पार्श्वसंधयः ॥ ५३ ॥
कटीतरुणसीमंतस्तनमूलेंद्रबस्तयः ।
क्षिप्रापलापबृहतीनितंबस्तनरोहिताः ॥ ५४ ॥
कालांतरप्राणहरा मासमासार्धजीविताः ।

विशल्यघ्नमर्मनिर्देशः–

उत्क्षेपौ स्थपनी त्रीणि विशल्यघ्नानितत्र हि ॥ ५५ ॥
वायुर्मांसवसामज्जमस्तुलुंगानि शोषयन् ।
शल्यापाये विनिर्गच्छन् श्वासात्कासाच्च हंत्यसून् ॥५६॥

वैकल्यकरमर्मनिर्देशः—

फणावपांगौ विधुरौ नीले मन्ये कृकाटिके ।
अंसांसफलकावर्तविटपोर्वीकुकुंदराः ॥ ५७ ॥
मजानुलोहिताख्याऽऽणिकक्षाधृक्कूर्चकूर्पराः ।
वैकल्यमिति चत्वारि चत्वारिंशच्च कुर्वते ॥ ५८ ॥
हरंति तान्यपि प्राणान् कदाचिदभिघाततः ।

रुजाकरमर्मनिर्देशः—

अष्टौ कूर्चशिरोगुल्फमणिबंधा रुजाकराः ॥ ५९ ॥

ममर्णां प्रमाणम्

तेषा विटपकक्षाधृगुल्र्वः कूर्चशिरांसि च ।
द्वादशांगुलमानानि, द्व्यंगुले मणिबंधने ॥ ६० ॥
गुल्फौ च स्तनमूले च, त्र्यंगुलौ जानुकूर्परौ ।
अपालबस्तिहृन्नाभिनीलाः सीमंतमातृकाः ॥ ६१ ॥
कूर्चशृंगाटमन्याश्च त्रिशदेकेन[1] वर्जिताः ।
स्वात्मपाणितलोन्मानाः, [2]शेषाण्यर्धांगुलं वदेत् ॥ ६२ ॥

---

१ एकेनेति ऊनत्रिंशत् । २ शेषाणि षट्पंचाशत् मर्माणि अर्धाङ्गुलं वदेत् ।

पंचाशत्षट् च मर्माणि तिलव्रीहिसमान्यपि ।
इष्टानि मर्माण्यन्येषाम्[1]

मर्माभिघातेमरणप्रकारः—

चतुर्धोक्ताः सिरास्तु याः ॥ ६३ ॥
तर्पयंति वपुः कृत्स्नं ता मर्माण्याश्रितास्ततः ।
तत्क्षतात्क्षतजात्यर्थप्रवृत्तेर्धातुसंक्षये ॥ ६४ ॥
वृद्धश्चलो रुजस्तीव्राः प्रतनोति समीरयन् ।
तेजस्तदुद्धृतं धत्ते तृष्णाशोषमदभ्रमान् ॥ ६५ ॥
स्विन्नस्रस्तश्लथतनुं हरत्येनं ततोऽन्तकः ।

मर्माभिघातेचिकित्सा—

[2]वर्धयेत्संधितो गात्रं मर्मण्यभिहते द्रुतम् ॥ ६६ ॥
छेदनात्संधिदेशस्य संकुचंति सिरा ह्यतः ।
जीवितं प्राणिनां तत्र रक्ते तिष्ठति तिष्ठति ॥ ६७ ॥

अमर्मणिविद्धस्यजीवनादि–

सुविक्षतोऽप्यतो जीवेदमर्मणि न मर्मणि ।
प्राणघातिनि जीवेत्तु कश्चिद्वैद्यगुणेन चेत् ॥ ६८ ॥
असमग्राभिघाताच्च सोऽपि वैकल्यमश्नुते ।
तस्मात्क्षारविषाग्न्यादीन् यत्नान्मर्मसु वर्जयेत् ॥ ६९ ॥

मर्माभिघातो रुग्दः—

मर्माभिघातः स्वल्पोऽपि प्रायशो बाधतेतराम् ।
रोगा मर्माश्रितास्तद्वत्प्रक्रांता[3] यत्नतोऽपि च" ॥ ७० ॥

---

१ अन्येषामाचार्याणांमते तिलव्रीहिसमानीष्टानि । २ वर्द्धयेत् छेदयेत् । ३ तद्वत् बाधतेतराम् । प्रक्रान्ताश्चिकित्सता ।

पंचमोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम्

अथातो विकृतिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

रिष्टं मृत्योर्लक्षणम्—

पुष्पं फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदयः ।
यथा भविष्यतो लिंगं[1] रिष्टं मृत्योस्तथा ध्रुवम् ॥ १ ॥

रिष्टाभावे मरणाभावः—

अरिष्टं नास्ति मरणं दृष्टरिष्टं च जीवितम् ।
अरिष्टे रिष्टविज्ञानं न च रिष्टेऽप्यनैपुणात् ॥ २ ॥

आत्रेयमते रिष्टभेदनिर्देशः—

केचित्तु तद्द्विधेत्याहुः स्थाय्यस्थायिविभेदतः ।
दोषाणामपि बाहुल्याद्रिष्टाभासः समुद्भवेत् ॥ ३ ॥
स दोषाणां शमे शाम्येत्स्थाय्यवश्यं तु मृत्यवे ।

रिष्टलक्षणम्—

रूपेंद्रियस्वरच्छाया[2]प्रतिच्छायाक्रियादिषु ॥ ४ ॥
अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतेष्वनिमित्ततः ।
विकृतिर्या समासेन रिष्टं तदिति लक्षयेत् ॥ ५ ॥

केशरोमादौ रिष्टलक्षणम्—

केशरोम निरभ्यंगं यस्याऽभ्यक्तमिवेक्ष्यते ।

नेत्रादौ रिष्टलक्षणम्—

यस्यातर्थं चले नेत्रे स्तब्धांतर्गतनिर्गते ॥ ६ ॥

---

१ रिष्टमरिष्टं मरणख्यापकम् । २ छायाकान्तिःशरीरगता ।

जिह्मे विस्तृतसंक्षिप्ते संक्षिप्तविनतभ्रुणी ।
उद्भ्रांतदर्शने हीनदर्शने नकुलोपमे[१] ॥ ७ ॥
कपोताभे अलाताभे स्रुते लुलितपक्ष्मणी ।
नासिकाऽत्यर्थविवृता संवृता पिटिकाचिता ॥ ८ ॥
उच्छूना स्फुटिता म्लाना

ओष्ठादौरिष्टलक्षणम्—

यस्यौष्ठौ यात्यधोऽपरः ।
ऊर्ध्वं द्वितीयः स्यातां वा पक्वजंबूनिभावुभौ ॥ ९ ॥
दंताः सशर्कराः श्यावास्ताम्राः पुष्पितपंक्तिताः ।
सहसैव पतेयुर्वा, जिह्वा जिह्मा विसर्पिणी[२] ॥ १० ॥
श्वेता शुष्का गुरु. श्यावा लिप्ता सुप्ता सकण्टका ।

शिरआदौरिष्टलक्षणम्—

शिरः शिरोधरा वोढुं पृष्ठं वा भारमात्मनः ॥ ११ ॥
हनू वा पिंडमास्यस्य शक्नुवंति न यस्य च ।
यस्यानिमित्तमगानि गुरूण्यतिलघूनि वा ॥ १२ ॥
विषदोषाद्विना यस्य खेभ्यो रक्तं प्रवर्तते ।
[३]उत्सिक्तं मेहनं, यस्य वृषणावतिनि.सृतौ ॥ १३ ॥
अतो[४]ऽन्यथा वा यस्य स्यात्सर्वे ते कालचोदिताः ।

ललाटगतरिष्टलक्षणम्—

यस्याऽपूर्वाः सिरालेखा बालेंद्वाकृतयोऽपि वा ॥ १४ ॥
ललाटे बस्तिशीर्षे वा षण्मासान्न स जीवति ।
पद्मिनीपत्रवत्तोयं शरीरे यस्य देहिनः ॥ १५ ॥

---

१ नकुलोपमा इति नकुलाभ्वस्तुदिवापु-श्वलानिरूपाणिपश्यति । कपोताभ इति—कपोताभ्वस्तुदिवा कृष्णानि रूपाणि पश्यति । अलातस्तप्ताङ्गारः । २ विसर्पिणी प्रसृता । ३ उत्सिक्तमन्तः प्रविष्टम् । ४ अतोऽन्यथेति मेहनमति नि.सृतं वृषणौ चांत: प्रविष्टौ ।

प्लवते ¹प्लवमानस्य षण्मासं तस्य जीवितम् ।

सिरादौरिष्टलक्षणम्—

हरिताभाः सिरा यस्य रोमकूपाश्च संवृताः ॥ १६ ॥
सोऽम्लाभिलाषी पुरुषः पित्तान्मरणमश्नुते ।

मूर्धादौरिष्टलक्षणम्—

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्ध्नि मुखेपि वा ॥ १७ ॥
सस्नेहं मूर्ध्नि धूमो वा मासांतं तस्य जीवितम् ।
मूर्ध्नि भ्रुवोर्वा कुर्वन्ति ²सीमंतावर्तका नवाः ॥ १८ ॥
मृत्युं स्वस्थस्य षड्रात्रात्त्रिरात्रादातुरस्य तु ।
जिह्वा श्यामा मुखं पूति सव्यमक्षि निमज्जति ॥ १९ ॥
खगा वा मूर्ध्नि लीयन्ते यस्य तं परिवर्जयेत् ।

उरआदौरिष्टलक्षणम्—

यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं शुष्यत्युरो भृशम् ॥ २० ॥
आर्द्रेषु सर्वगात्रेषु सोऽर्धमासं न जीवति ।

गात्रेप्राकृतवैकृतवर्णादिरिष्टलक्षणम्—

अकस्माद्युगपद्गात्रे वर्णौ प्राकृतवैकृतौ ॥ २१ ॥
तथैवोपचयग्लानिरौक्ष्यस्नेहादि मृत्यवे ।
यस्य स्फुटेयुरंगुल्यो नाकृष्टा न स जीवति ॥ २२ ॥
क्षवकासादिषु तथा यस्याऽपूर्वो ध्वनिर्भवेत् ।
ह्रस्वो दीर्घोऽति वोच्छ्वासः पूतिः सुरभिरेव वा ॥ २३ ॥
³आप्लुतानाप्लुते काये यस्य गंधोऽतिमानुषः ।
मलवस्त्रव्रणादौ वर्षान्तं तस्य जीवितम् ॥ २४ ॥

यूकामक्षिकादिकृतस्त्रीकार त्यागादि रिष्टचिह्नम्

भजंतेऽत्यंगसौरस्याद्यं यूकामक्षिकादयः ।

---

१ प्लवमानस्य–स्नानं कुर्वतः । २ सीमतः रेखा । ३ आप्लुतानाप्लुते स्नातास्नाते ।

तद्वद्धरमस्पर्शान् मन्यते यो विपर्ययात् ॥ ३५ ॥
सर्वशो वा न यो यश्च दीपगंधं न जिघ्रति ।
विधिना यस्य दोषाय स्वास्थ्यायाविधिना रसाः ॥ ३६ ॥
यः पांसुनेव कीर्णांगो योऽगघातं न वेत्ति वा ।

तपआदिनाविनाऽतीन्द्रियविज्ञानम्—

[1]अंतरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥
जानात्यतींद्रियं यश्च तेषां मरणमादिशेत् ।

स्वरविकृतिः—

हीनो दीनः स्वरोऽव्यक्तो यस्य स्याद्गद्गदोऽपि वा ॥ ३८ ॥
सहसा यो विमुह्येद्वा विवक्षुर्न स जीवति ।
स्वरस्य दुर्बलीभावं हानिं वा बलवर्णयोः ॥ ३९ ॥
रोगवृद्धिमयुक्त्या च दृष्ट्वा मरणमादिशेत् ।
[2]अपस्वरं भाषमाणं प्राप्तं मरणमात्मनः ॥ ४० ॥
श्रोतारं चास्य शब्दस्य दूरतः परिवर्जयेत् ।

छायाश्रयंरिष्टम्—

मस्थानेन प्रमाणेन वर्णेन प्रभयाऽपि वा ॥ ४१ ॥
छाया विवर्तते यस्य स्वप्नेऽपि प्रेत एव सः ।
आतपादर्शतोयादौ या संस्थानप्रमाणतः ॥ ४२ ॥
छायाऽगात्संभवत्युक्ता प्रतिच्छायेति सा पुनः ।
वर्णप्रभाश्रया या तु सा छायैव शरीरगा ॥ ४३ ॥
भवेद्यस्य प्रतिच्छाया छिन्ना भिन्नाऽधिकाऽकुला ।
विशिरा द्विशिरा जिह्मा विकृता यदि वाऽन्यथा ॥ ४४ ॥
तं समासायुषं विद्यान्न चेल्लक्ष्यनिमित्तजा ।

१—अन्तरेण विना । २—अपस्वरमिति—मरिष्यामि मरिष्यामीति ब्रुवन्तमित्यर्थः । ३—लक्षयितुं प्रत्यक्षादि । प्रमाणैः शक्यं, लक्ष्यं च तन्निमित्तं च तस्माज्जाता । दृश्यकारणोत्पन्ना ।

प्रतिच्छायामयी यस्य न चाक्ष्णीक्ष्येत कन्यका[1] ॥ ४५ ॥
खादीनां पंच पंचानां छाया विविधलक्षणाः ।
नाभसी निर्मलाऽनीला सस्नेहा सप्रभेव च ॥ ४६ ॥
वाताद्रजोऽरुणा श्यावा भस्मरूक्षा हतप्रभा ।
विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्ताभादर्शनप्रिया ॥ ४७ ॥
[2]शुद्धवैदूर्यविमला सुस्निग्धा तोयजा सुखा ।
स्थिरा स्निग्धा घना शुद्धा श्यामा श्वेता च पार्थिवी ॥ ४८ ॥
वायवी रोगमरणक्लेशायान्याः सुखोदयाः ।

प्रभायाः सप्तप्रकारत्वम्—

प्रभोक्ता तैजसी सर्वा सा तु सप्तविधा स्मृता ॥ ४९ ॥
रक्ता पीतासिता श्यामा हरिता पाडुराऽसिता ।
तासां याः स्युर्विकासिन्यः स्निग्धाश्च विमलाश्च याः ॥ ५० ॥
ताः शुभा, मलिना रूक्षाः संक्षिप्ताश्चासुखोदयाः ।
वर्णमाक्रामति छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥ ५१ ॥
आसन्ने लक्ष्यते छाया विकृष्टे भा प्रकाशते ।
नाऽच्छायो नाऽप्रभः कश्चिद्विशेषाश्चिह्नयंति तु ॥ ५२ ॥
नृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायासमाश्रया ।

गमनेपादन्यासरिष्टचिह्नम्—

निकषन्निव यः पादौ च्युतांसः परिसर्पति ॥ ५३ ॥

भोजनाश्रयंरिष्टम्—

हीयते बलतः शश्वद्योऽन्नमश्नन् हितं बहु ।
योऽल्पाशी बहुविण्मूत्रो बह्वाशी चाल्पमूत्रविट् ॥ ५४ ॥
योऽल्पाशी वा कफेनार्तो दीर्घं श्वसिति चेष्टते ।
दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं निःश्वस्य परिताम्यति ॥ ५५ ॥

१—कन्यका प्रतिबिम्बकुमारिकान्यस्य पुरुषस्य, आतुरनयनगताएव तारका वा । २—वैदूर्य "लहसुनिया" इतिलोके ।

ह्रस्वं च यः प्रभ्रमिति व्याविद्धं[1] स्पंदते भृशम् ।
शिरो विक्षिपते कृच्छ्राद्योऽञ्चयित्वा प्रपाणिकौ ॥ ५६ ॥
यो ललाटात्स्रुतस्वेदः श्लथसंधानबंधनः ।
उत्थाप्यमानः संमुह्येद्यो बली दुर्बलोऽपि वा ॥ ५७ ॥
उत्तान एव स्वपिति यः पादौ विकरोति च ।
शयनासनकुड्यादौ योऽसदेव जिघृक्षति ॥ ५८ ॥
महास्यहासी संमुह्यन् यो लेढि दशदच्छदौ ।

उत्तरोष्ठ परिलेहनादि मृत्युचिह्नम्—

उत्तरोष्ठं परिलिहन् फूत्कारांश्च करोति यः ॥ ५९ ॥
यमभिद्रवति च्छाया कृष्णा पीताऽरुणापि वा ।
भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्रद्विषश्च ये ॥ ६० ॥
वशगाः सर्व एवैते विज्ञेयाः समवर्तिनः[2] ।

ग्रीवादीनां शीतलादि रिष्ट चिह्नम्—

ग्रीवाललाटहृदयं यस्य स्विद्यति शीतलम् ॥ ६१ ॥
उष्णोऽपरः प्रदेशश्च शरणं तस्य देवता ।

स्तोकदृक्त्वादि—

[3]योऽणुज्योतिरनेकाग्रो दुश्छायो दुर्मनाः सदा ॥ ६२ ॥
बलिं बलिभृतो यस्य प्रणीतं नोपभुंजते ।
निर्निमित्तं च यो मेधां शोभामुपचयं श्रियम् ॥ ६३ ॥
प्राप्नोत्यतो वा विभ्रंशं स प्राप्नोति यमक्षयम् ।
गुणदोषमयी यस्य स्वस्थस्य व्याधितस्य वा ॥ ६४ ॥
यात्यन्यथात्वं प्रकृतिः षण्मासान्न स जीवति ।

भक्त्यादिनिवर्तनंचिह्नम्—

[4]भक्तिः शीलं स्मृतिस्त्यागो बुद्धिर्बलमहेतुकम् ॥ ६५ ॥

---

१ व्याविद्धं विषमम् । प्रपाणिकौ मणिबन्धात्कूर्परपर्यन्तौ भागः प्रपाणिकः "गट्टा" इति हिन्दी । २ समवर्तिनो यमस्य । ३ यणुज्योतिर्मन्दाग्निः । बलि-भृतःकाकादयः । ४ भक्तिरिच्छा ।

षडेतानि निवर्तंते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ।

मत्तवद्गत्यादि चिह्नम्—

मत्तवद्गतिवाक्कंपमोहा मासान्मरिष्यतः ॥ ६६ ॥

केशलुंचनाऽज्ञानादि चिह्नम्—

नश्यत्यजानन् षड्हात्केशलुंचनवेदनाम् ।
न याति यस्य चाहारः कंठं कंठामयादृते ॥ ६७ ॥
[1]प्रेष्याः प्रतीपतां यांतिप्रेताकृतिरदीर्यते ।
यस्य निद्रा भवेन्नित्यं नैव वा न स जीवति ॥ ६८ ॥
वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूणा स्विद्यतश्चरणौ भृशम् ।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराज्यं गमिष्यतः ॥ ६९ ॥
यैः पुरा रमते भावैररतिस्तैर्न जीवति ।

सहसाविकारोत्पत्तिनाशौ—

सहसा जायते यस्य विकारः सर्वलक्षणः ॥ ७० ॥
निवर्तते वा सहसा सहसा स विनश्यति ।

ज्वरेरिष्टचिह्नम्—

ज्वरो निहंति बलवान् गंभीरो दैर्घरात्रिकः ॥ ७१ ॥
सप्रलापभ्रमश्वासः क्षीणं शूनं हतानलम् ।
अक्षामं सक्तवचनं रक्ताक्षं हृदि शूलिनम् ॥ ७२ ॥
संशुष्कंकासः पूर्वाह्णे योपराह्णेऽपि वा भवेत् ।
बलमांसविहीनस्य श्लेष्मकाससमन्वितः ॥ ७३ ॥

रक्तपित्तविकृतिलक्षणारिष्टचिह्नम्—

रक्तपित्तं भृशं रक्तं कृष्णमिंद्रधनुःप्रभम् ।
ताम्रहारिद्रहरितं रूपं रक्तं प्रदर्शयेत् ॥ ७४ ॥
रोमकूपप्रविसृतं कंठास्यहृदये सजत् ।
वाससो रंजनं पूति वेगवच्चातिभूरि च ॥ ७५ ॥

1—प्रेष्याःभृत्याः । प्रतीपतां प्रातिकूल्यम् ।

वृद्धं पाण्डुज्वरच्छर्दिकासशोफातिसारिणम् ।
कासश्वासौ ज्वरच्छर्दितृष्णातीसारशोफिनम् ॥ ७६ ॥
यक्ष्मा पार्श्वरुजानाहरक्तच्छर्द्यंसतापिनम् ।
छर्दिर्वेगवती मूत्रशकृद्गंधिः सचन्द्रिका ॥ ७७ ॥
सास्रविट्पूयरुक्कासश्वासवत्यनुषंगिणी ।
तृष्णाऽन्यरोगक्षपितं बहिर्जिह्वं विचेतनम् ॥ ७८ ॥
मदात्ययोऽतिशीतार्तं क्षीणं तैलप्रभाननम् ।
अर्शांसि पाणिपन्नाभिगुदमुष्कास्यशोफिनम् ॥ ७९ ॥
हृत्पार्श्वाङ्गरुजाछर्दिपायुपाकज्वरातुरम् ।
अतीसारो यकृत्पिण्डमांसधावनमेचकैः ॥ ८० ॥
तुल्यस्तैलघृतक्षीरदधिमज्जवसासवैः ।
मस्तुलुंगमषीपूयवेसवारांबुमाक्षिकैः ॥ ८१ ॥
अतिरक्तासितस्निग्धपूत्यच्छघनवेदनः ।
कर्बुरः प्रस्रवन् धातून् निष्पुरीषोऽथवातिविट् ॥ ८२ ॥
तन्तुमान् मक्षिकाक्रान्तो राजीमांश्चंद्रकैर्युतः ।
शीर्णपायुवलिं मुक्तनालं पर्वास्थिशूलिनम् ॥ ८३ ॥
स्रस्तपायुं बलक्षीणमन्नमेवोपवेशयेत् ।
सतृट्श्वासज्वरच्छर्दिदाहानाहप्रवाहिकः ॥ ८४ ॥
अश्मरी शूनवृषणं बद्धमूत्रं रुजार्दितम् ।
मेहस्तृड्दाहपिटिकामांसकोथातिसारिणम् ॥ ८५ ॥
पिटिका मर्महृत्पृष्ठस्तनांसगुदमूर्धगाः ।
पर्वपादकरस्था वा मंदोत्साहं प्रमेहिणम् ॥ ८६ ॥
[1]सर्वं च मांससंकोचदाहतृष्णामदज्वरैः ।
विसर्पमर्मसंरोधहिध्माश्वासभ्रमक्लमैः ॥ ८७ ॥
गुल्मः पृथुपरीणाहो घनः कूर्म इवोन्नतः ।
सिरानद्धो ज्वरच्छर्दिहिध्माध्मानरुजान्वितः ॥ ८८ ॥
कासपीनसहृल्लासश्वासातीसारशोफवान् ।

१—सर्वं नरं मांससंकोचादिभिर्युक्ता पिटिकाहन्ति ।

उदररोगेरिष्टचिह्नम्—

विएमूत्रसंग्रहश्वासशोफहिध्माज्वरभ्रमैः ॥ ८९ ॥
मूर्छाछर्द्यतिसारैश्च जठरं हंति दुर्बलम् ।
शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ॥ ९० ॥
विरेचनहृतानाहमानाह्यंतं पुनः पुनः ।
पांडुरोगः श्वयथुमान् पीताक्षिनखदर्शनम् ॥ ९१ ॥

शोफेरिष्टचिह्नम्—

तंद्रादाहारुचिच्छर्दिमूर्छाध्मानातिसारवान् ।
अनेकोपद्रवयुतः पादाभ्यां प्रसृतो नरम् ॥ ९२ ॥
नारी शोफो मुखाद्धंति कुक्षिगुह्यादुभावपि[१] ।
राजीचितः स्रवंश्छर्दिज्वरश्वासातिसारिणम् ॥ ९३ ॥

ज्वराद्यामृत्युहेतवः—

ज्वरातिसारौ शोफांते श्वयथुर्वा तयोः क्षये ।
दुर्बलस्य विशेषेण जायतेऽन्ताय देहिनः ॥ ९४ ॥

पादस्थश्वयथुचिह्नम्—

श्वयथुर्यस्य पादस्थः परिस्रस्ते च पिंडिके ।
सीदतः सक्थिनी चैव तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ ९५ ॥

मुखादेर्विशेषशोषोमृत्युहेतुः—

आननं हस्तपादं च विशेषाद्यस्य शुष्यतः ।
[२]शूयेते वा विना देहात्स मासाद्याति पंचताम् ॥ ९६ ॥
विसर्पः कासवैवर्ण्यज्वरमूर्छांगभंगवान् ।
भ्रमास्यशोषहृल्लासदेहसादातिसारवान् ॥ ९७ ॥

कुष्ठेरिष्टचिह्नम्—

कुष्ठं विशीर्यमाणांगं रक्तनेत्रं हतस्वरम् ।
मदाग्निं जंतुभिर्जुष्टं हंति तृष्णातिसारिणम् ॥ ९८ ॥

---

१ उभौ नारी नरं च । २ शूयेते शोथयुक्ते भवतः

वायुः मुखरवचं भग्नं कफशोफरुजातुरम् ।
वातास्रं मोहमूर्छामदम्भ्रज्वरान्वितम् ॥ ९९ ॥
शिरोग्रहारुचिश्वाससंकोचस्फोटकोथवत् ।
शिरोरोगारुचिश्वासमोहविड्भेदतृड्भ्रमैः ॥ १०० ॥
घ्नंति सर्वामयाः क्षीणस्वरधातुबलानलम् ।

वातरोगादीनांरिष्टचिह्नम्—

वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी रक्त्युदरी क्षयी ॥ १०१ ॥
गुल्मी मेही च तान् क्षीणान् विकारेऽल्पेऽपि वर्जयेत् ।

बलमांसक्षयादिचिह्नम्—

बलमांसक्षयस्तीव्रो रोगवृद्धिररोचकः ॥ १०२ ॥
यस्यातुरस्य लक्ष्यंते त्रीन् पक्षान्न स जीवति ।
वाताऽष्ठीलाऽतिसंवृद्धा तिष्ठती दारुणा हृदि ॥ १०३ ॥
तृष्णया तु परीतस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम् ।
शैथिल्यं पिंडिके वायुर्नीत्वा नासां च जिह्मताम् ॥ १०४ ॥
क्षीणस्यायम्य मन्ये वा सद्यो मुष्णाति जीवितम् ।
नाभीगुदांतरं गत्वा वंक्षणौ वा समाश्रयन् ॥ १०५ ॥
गृहीत्वा पायुहृदये क्षीणदेहस्य वा बली ।
नलान् वस्तिशिरो नाभिं विबद्ध्य जनयन् रुजम् ॥ १०६ ॥
कुर्वन् वंक्षणयोः शूलं तृष्णां भिन्नपुरीषताम् ।
श्वासं वा जनयन् वायुर्गृहीत्वा गुदवंक्षणम् ॥ १०७ ॥
[1]वितत्य पर्शुकाग्राणि गृहीत्वोरश्च मारुतः ।
स्तिमितस्याततासस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम् ॥१०८॥

ज्वरसंतापादीनांरिष्टत्वम्—

सहसा ज्वरसंतापस्तृष्णा मूर्छा बलक्षयः ।
विश्लेषणं च संधीनां मुमूर्षोरुपजायते ॥१०९॥

---

१ वितत्य विस्तृतानि कृत्वा ।

[1]गोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।
लेपज्वरोपतप्तस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥११०॥
प्रवालगुलिकाभासा यस्य गात्रे मसूरिकाः ।
उत्पद्याशु विनश्यंति नचिरात्स विनश्यति ॥१११॥
मसूरविदलप्रख्यास्तथा विद्रुमसन्निभाः ।
अंतर्वक्त्राः किणाभाश्च विस्फोटा देहनाशनाः ॥११२॥
कामलाऽक्ष्णोर्मुखं पूर्णं [2]शंखयोर्मुक्तमांसता ।
संत्रासश्चोष्णताऽङ्गे च यस्य तं परिवर्जयेत् ॥११३॥
अकस्मादनुधावच्च विघृष्टं त्वक्नमाश्रयम्* ।

व्रणेरिष्टचिह्नम्—

यो वातजो न शूलाय स्यान्न दाहाय पित्तजः ॥११४॥
कफजो न च पूयाय मर्मजश्च रुजे न यः ।
अचूर्णश्चूर्णकीर्णाभो यत्राऽकस्माच्च दृश्यते ॥११५॥
रूपं शक्तिध्वजादीनां सर्वांस्तान्वर्जयेद्व्रणान् ।
विण्मूत्रमारुतवहं कृमिणं च भगंदरम् ॥११६॥
*क्षेपकः—चंदनोशीरमदिराकुणपध्वाक्षगंधयः । शैवाल-कुचकुर्दशिखाकुंदशालिमयप्रभाः । अंतर्दाहा निरूष्माणः प्राणनाशकरा व्रणाः ॥१॥

जानुघट्टनादिरिष्टचिन्हम्—

घट्टयन् जानुना जानु पादावुद्यम्य पातयन् ।
योऽपास्यति मुहुर्वक्त्रमातुरो न स जीवति ॥११७॥

आतुरस्यव्यापारविशेषः—

दंतैश्छिंदन्नखाग्राणि तैश्च केशांस्तृणानि च ।
भूमिं काष्ठेन विलिखन् लोष्टं लोष्टेन ताडयन् ॥११८॥
हृष्टरोमा सांद्रमूत्रः शुष्ककासी ज्वरी च यः ।

---

१. गोसर्गे- प्रातःकाले । वदनान्मुखात् । २. मुखं पूर्णं पीतवर्णेनाथवा शोफयुक्तम् ।

मुहुर्हसन् मुहुः क्ष्वेडन् शय्यां पादेन हन्ति यः ॥११९॥
मुहुश्छिद्राणि[1] विमृशन्नातुरो न स जीवति ।

तिलकव्यंगादिरिष्टचिन्हम्—

मृत्यवे सहसार्तस्य तिलकव्यंगविप्लवः ॥१२०॥
मुखे दन्तनखे पुष्पं जठरे विविधाः सिराः ।

ऊर्ध्वश्वासादिरिष्टचिन्हम्—

ऊर्ध्वश्वासं गतोष्माणं शूलोपहतवंक्षणम् ॥१२१॥
शर्म चाऽनधिगच्छंतं बुद्धिमान् परिवर्जयेत् ।

सहसाविकारिरिष्टचिन्हम्—

विकारा यस्य वर्धन्ते प्रकृतिः परिहीयते ॥१२२॥
सहसा सहसा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम् ।

औषधसम्बन्धिरिष्टम्—

यमुद्दिश्यातुरं वैद्यः संपादयितुमौषधम् ॥१२३॥
यतमानो न शक्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम् ।
विज्ञातं बहुशः सिद्ध विधिवच्चावचारितम् ॥१२४॥
न सिध्यत्यौषधं यस्य नास्ति तस्य चिकित्सितम् ।
भवेद्यस्यौषधेऽन्ने वा कल्प्यमाने विपर्ययः ॥१२५॥
अकस्माद्वर्णगंधादेः स्वस्थोऽपि न स जीवति ।

अग्न्यादिसम्बन्धिरिष्टम्—

निवाते सैंधनं यस्य ज्योतिश्चाप्युपशाम्यति ॥१२६॥
आतुरस्य गृहे यस्य भिद्यंते वा पतंति वा ।
अतिमात्रममत्राणि[2] दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १२७ ॥
यं नरं सहसा रोगो दुर्बलं परिमुंचति ।
संशयं प्राप्तमात्रेयो जीवितं तस्य मन्यते ॥ १२८ ॥

पृष्टस्यापिवैद्यस्य आतुरमरणकथन निषेधः—

---

१ छिद्राणि नासिकादीनि विमृशन्-स्पृशन् । २ अमत्राणि-पात्राणि ।

कथयेन्नैव पृष्टोऽपि दुःश्रवं मरणं भिषक् ।
गतासोर्बन्धुमित्राणां न चेच्छेत्तं चिकित्सितुम् ॥ १२९ ॥

मुमूर्षोर्यमदूतादीनामौषधवीर्य हन्तृत्वम्—

यमदूतपिशाचाद्यैर्यत्परासुरुपास्यते ।
घ्नद्भिरौषधवीर्याणि तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ १३० ॥

भिषजोरिष्टज्ञानादरणम्—

आयुर्वेदफलं कृत्स्नं यदायुर्ज्ञे प्रतिष्ठितम् ।
रिष्टज्ञानादृतस्तस्मात्सर्वदैव भवेद्भिषक् ॥ १३१ ॥

मरणे पुण्यायुःक्षयस्यहेतुत्वम्—

मरणं प्राणिनां दृष्टमायुःपुण्योभयक्षयात् ।
[1]तयोरप्यक्षयाद्दृष्टं विषमापरिहारिणाम् ॥ १३२ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम्

अथातो दूतादिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

पाषण्डादिदूतानां शुभाशुभसूचकत्वम्—

[2]पाखंडाश्रमवर्णानां सवर्णाः कर्मसिद्धये ।
त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ १ ॥

दीनादिदूतनिषिद्धाः—

दीनं भीतं द्रुतं त्रस्तं रूक्षमंगलवादिनम् ।
शस्त्रिणं दंडिनं षंडं मुंडश्मश्रुं जटाधरम् ॥ २ ॥

---

१ तयो राशुः पुण्ययोः । २ पाखण्डाः कापालिकादयः । पालनाच्चत्रयीधर्मात् पाशब्देन निगद्यते, तं खण्डयन्ति ते यस्मात्पाखण्डास्तेन हेतुना । आश्रमाः—ब्रह्मचारिगृहस्थादयः, वर्णा ब्राह्मणादयः । कर्मचिकित्सा ।

अमंगलाह्वयं क्रूरकर्माणं मलिनं छिन्नम् ।
अनेकव्याधितं व्यंगं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ ३ ॥
तैलपंकाङ्कितं जीर्णविवर्णैकवाससम् ।
खरोष्ट्रमहिषारूढं काष्ठलोष्टादिमर्दिनम् ॥ ४ ॥
नानुगच्छेद्भिषग्दूतमाह्वयन्तं च दूरतः ।

कार्यविशेषासक्तैर्वैद्ये दूतागमनं मृत्युसूचकम्—

अशस्तचिन्तावचने, नग्ने छिन्दति भिन्दति ॥ ५ ॥
जुह्वाने पावकं, पिण्डान् पितृभ्यो निर्वपत्यपि ।
सुप्ते मुक्तकचेऽभ्यक्ते रुदत्यप्रयते[1] तथा ॥ ६ ॥
वैद्ये दूता मनुष्याणामागच्छन्ति मुमूर्षताम् ।

देशविशेषादागतो दूतोऽशुभः

[2]विकारसामान्यगुणे देशे कालेऽथवा भिषक् ॥ ७ ॥
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ।

अशुभदूतव्यापाराः—

स्पृशन्तो नाभिनासास्यकेशरोमनखद्विजान् ॥ ८ ॥
गुह्यपृष्ठस्तनग्रीवाजठरानामिकाङ्गुलीः ।
कार्पासबु[3]समसीसास्थिकपालमुशलोपलम् ॥ ९ ॥
मार्जनीशूर्पचैलान्तभस्माङ्गारदशातुषान् ।
रज्जूपानत्तुलापाशमन्यद्वा भग्नविच्युतम् ॥ १० ॥
तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहरन्ति मरिष्यताम् ।

कालविशेषआगतो दूतोऽशुभः

तथार्धरात्रे मध्याह्ने संध्ययोः [4]पर्ववासरे ॥ ११ ॥

---

१ अप्रयतेऽपवित्रे । २ विकारेण-रोगेण सामान्यस्तुल्यो गुणो यस्य तस्मिन्-यथा कफजे विकारे जलसमीपे देशे, काले प्रावरागतो दूतोऽशुभः । ३ बुसं "भूसा" । मार्जनी "झाडू" चैलान्तम्-वस्त्राञ्चलम् "अँचरा" दशा "किनारा" इति हिन्दी । तत्पूर्वदर्शने तस्य वैद्यस्य प्रथमदर्शने । ४ पर्ववासरे व्यतीपातादौ । पंच्यं मघा । नैर्ऋत मूलम् ।

पष्ठीचतुर्थीनवमीराहुकेतूदयादिषु ।
भरणीकृत्तिकाऽऽश्लेषापूर्वाऽऽर्द्राप्रेष्यनैर्ऋते ॥ १२ ॥

अशुभं दूतवाक्यम्—

यस्मिश्च दूते ब्रुवति वाक्य[1]मातुरसंश्रयम् ।
पश्येन्निमित्तमशुभं तं च नानुव्रजेद्भिषक् ॥ १३ ॥

अशुभप्रकाराः

तद्यथा विकलः प्रेतः प्रेतालंकार एव वा ।
छिन्नं दग्धं विनष्टं वा [६]तद्वादीनि वचांसि वा ॥ १४ ॥
रसो वा कटुकस्तीव्रो गंधो वा कौणपो महान् ।
स्पर्शो वा विपुलः क्रूरो यद्वान्यदपि तादृशम् ॥ १५॥
तत्सर्वमभितो वाक्यं वाक्यकालेऽथवा पुनः ।
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ॥१६॥

अन्यदशुभंनिमित्तम्—

हाहाक्रन्दित[2]मुत्क्रुष्टं रुदितं स्खलनं क्षुतम् ।
वस्त्रातपत्रपादत्रव्यसनं व्यसनीक्षणम् ॥१७॥
चैत्यध्वजानां पात्राणां पूर्णानां च निमज्जनम् ।
हतानिष्टप्रवादाश्च दूषणं भस्मपांसुभिः ॥१८॥

मार्जारादिभिःपथच्छेदोऽशुभः—

[3]पथश्छेदोऽहिमार्जारगोधासरटवानरैः ।

क्रूराणां मृगपक्षिणांवाचोऽशुभाः—

दीप्तां प्रतिदिशं वाचं क्रूराणां मृगपक्षिणाम् ॥१६॥

---

१ आतुरसंश्रयं रोगिसम्बन्धिवाक्यं ब्रुवति भिषगशुभंनिमित्तं पश्येदित्यन्वयः । ६ तद्वादीनि छिन्नादिवाचकानि । २ हाहाक्रन्दितं रुदितम् । उत्क्रुष्टं दर्पादतिमात्रंशब्दितम् । व्यसनं विनाशः । व्यसनिनामापद्गतानामीक्षणमवलोकनम् । ३ सरटः कृकलासकः, दीप्तांदिशम्-यस्यां दिशिसूर्यःस्थित.सादीप्ता । क्रूराणां मांसभुजां, मृगाणां शृगालादीनां पक्षिणांश्येनादीनाम् । उदश्वित्तक्रम् । क्रूरोनिष्ठुरवादी । श्वपाकश्चाण्डालः ।

वैद्यस्यातुरगृहं गच्छतः कृष्णधान्यादीनां दर्शनमशुभम्—

कृष्णधान्यगुडोदश्विल्लवणासवचर्मणाम् ।
सर्पपाणां वसातैलतृणपंकेंधनस्य च ॥२०॥
क्लीबक्रूरश्वपाकानां जालवागु[1]र्योरपि ।
छर्दितस्य पुरीषस्य पूतिदुर्दर्शनस्य च ॥२१॥
निःसारस्य व्यवायस्य कार्पासादेररेरपि ।
शयनासनयानानामुत्तानानां तु दर्शनम् ॥२२॥
न्युब्जानामितरेषां च पात्रादीनामशोभनम् ।

मृगपक्षिणां गमनाद्यशुभम्—

पुंसंज्ञाः पक्षिणो वामाः स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः शुभाः ॥२३॥
प्रदक्षिणं खगमृगा यांतो, नैवं श्वजंबुकाः ।
अयुग्माश्च मृगाः शस्ता शस्ता नित्यं च दर्शने ॥२४॥
चापभासभरद्वाजनकुलच्छागबर्हिणः ।
अशुभं सर्वथोलूकबिडालसरठेक्षणम् ॥२५॥
प्रशस्ताः कीर्तने[2] कोलगोधाहिशशजाहकाः ।
न दर्शने न विरुते, वानरर्क्षावतोऽन्यथा ॥२६॥

ऐन्द्रधनुषः शुभाशुभत्वे—

धनुरैंद्रं च लालाटमशुभं शुभमन्यतः ।

अग्निपूर्णादीनि पात्राण्यशुभानि—

अग्निपूर्णानि पात्राणि भिन्नानि विशिखानि[3] च ॥२७॥

आतुरगृहे दध्यादिदर्शनमशुभम्—

दध्यक्षतादि निर्गच्छत् वक्ष्यमाणं च मंगलम् ।
वैद्यो मरिष्यता वेश्म प्रविशन्नेव पश्यति ॥२८॥

---

१ वागुरा-मृगबन्धनी । न्युब्जोऽधोमुखः । २ कोलादयः कीर्तनेशस्ताः, दर्शने विरुते च न शस्ताः । वानरर्क्षौतु अतोऽन्यथा—दर्शने विरुते च शस्तौ कीर्तनेतु न शस्तौ । ३ विशिखानि अन्तः शून्यानि खण्डितानिवा ।

दूतादयमाशु दृष्ट्वा तं त्यजेदार्तमन्यथा ।
करुणाशुद्धसंतानो यत्नतः समुपाचरेत् ॥२९॥

दध्यादिशुभनिर्देशः—

दध्यक्षतेक्षुनिष्पावप्रियंगुमधुसर्पिषाम् ।
[1]यावकांजनभृंगारघंटादीपसरोरुहाम् ॥३०॥
दूर्वार्द्रमत्स्यमांसानां लाजानां फलभक्षयोः ।
रत्नेभपूर्णकुंभानां कन्यायाः स्यंदनस्य च ॥३१॥
नरस्य वर्धमा[2]नस्य देवतानां नृपस्य च ।
शुक्लानां सुमनोवालचामराबरवाजिनाम् ॥३२॥
शंखसाधुद्विजोष्णीषतोरण[3]स्वस्तिकस्य च ।
भूमेः समुद्धृतायाश्च वह्नेः प्रज्वलितस्य च ॥३३॥
मनोज्ञस्यान्नपानस्य पूर्णस्य शकटस्य[4]च ।
नृभिर्धेन्वाः सवत्साया वडवायाः, स्त्रिया अपि ॥३४॥
जीवंजीवकसारंगसारसप्रियवादिनाम्[5] ।
रुचकादर्शसिद्धार्थरोचनानां च दर्शनम् ॥३५॥
गंधः सुसुरभिर्वर्णः सुशुक्लो मधुरो रसः ।
गोपतेरनुकूलस्य स्वरस्तद्वद्गवामपि ॥३६॥
मृगपक्षिनराणां च शोभिना शोभना गिरः ।
छत्रध्वजपताकाना[6]मुत्क्षेपणमभिष्टुतिः ॥३७॥
भेरीमृदंगशंखानां शब्दाः पुण्याहनिःस्वनाः ।

---

१ भृङ्गारः "झारी" यावकमलक्तकः "महावर" इति इतिलोके । २ वर्धमानस्य निरस्य नत्यमम्युदययुक्तस्येनरस्य । सुमनः पुष्पम् । ३ तोरणम् "तोरन" इति हिन्दी । स्वस्तिकम् मङ्गलद्रव्यम् । ४ नृभिः पूर्णस्य शकटस्ये-त्यन्वयः । ५ प्रियवादी चातकः । रुचकः कङ्कणम् । सिद्धार्थः सर्षपः । रोचना "रुचकल्हारे गोपित्तवरयोषितो." इतिकोषः । ६ उत्क्षेपणमुपरिस्थापनम् । अभिष्टुतिः—जयजयेत्यादि शब्दपूर्वा अभिमुखमुच्चारितास्तुतिः । पुण्याह निःस्वनाः—प्रशस्तशब्दाः ।

श्वेदाध्ययनशब्दाश्च मुखो वायुः प्रदक्षिणः ॥३८॥
पथि वेश्मप्रवेशे च विद्यादारोग्यलक्षणम् ।

अशुभस्वप्नकथनम्—

इत्युक्तं दूतशकुनं स्वप्नानूर्ध्वं प्रचक्षते ॥३९॥
स्वप्ने मद्यं सह प्रेतैर्यः पिबन् कृष्यते शुना ।
स मर्त्यो मृत्युना शीघ्रं ज्वररूपेण नीयते ॥४०॥
रक्तमाल्यवपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया ।
सोऽस्रपित्तेन,
महिषश्ववराहोष्ट्रगर्दभैः ॥४१॥
यः प्रयाति दिशं याम्यां मरणं तस्य यक्ष्मणा ।
लता कंटकिनी वंशस्तालो वा हृदि जायते ॥४२॥
यस्य तस्याशु गुल्मेन, यस्य वह्निमनर्चिषम् ।
जुह्वतो घृतसिक्तस्य नग्नस्योरसि जायते ॥४३॥
पद्मं स नश्येत्कुष्ठेन, चंडालैः सह यः पिबत् ।
स्नेहं बहुविधं स्वप्ने स प्रमेहेण नश्यति ॥४४॥
उन्मादेन जले मज्जेद्यो नृत्यन् राक्षसैः सह ।
अपस्मारेण यो मर्त्यो नृत्यन् प्रेतेन नीयते ॥४५॥
यानं खरोष्ट्रमार्जारकपिशार्दूलसूकरैः ।
यस्य प्रेतैः शृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते मुखे ॥४६
अपूपशष्कुलीर्जग्ध्वा विबुद्धस्तद्विधं वमन् ।
नर्जीवति, अक्षिरोगाय सूर्येन्दुग्रहणेक्षणम् ॥४७॥
सूर्याचन्द्रमसोः पातदर्शनं दृग्विनाशनम् ।
मूर्ध्नि वंशलतादीनां संभवो [1]वयसां तथा ॥४८॥
निलयो मुंडता काकगृध्राद्यैः परिवारणम् ।
तथा प्रेतपिशाचस्त्रीद्रविडान्ध्रगवाशनैः ॥४९॥
संगो वेत्रलतावंशतृणकंटकसंकटे ।

---

१ वयसां पक्षिणां मूर्ध्निनिलय उपवेशनम् । गवाशनो गोमांसभक्षकः ।

अश्मश्मशानशयनं पतनं पांसुभस्मनोः ॥५०॥
मज्जनं जलपंकादौ शीघ्रेण [१]स्रोतसा हृतिः ।
नृत्यवादित्रगीतानि रक्तस्रग्वस्त्रधारणम् ॥५१॥
वयोंऽगवृद्धिरभ्यंगो विवाहः श्मश्रुकर्म च ।
पक्वान्नस्नेहमद्याशः प्रच्छर्दनविरेचने ॥५२॥
हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्बंधपराजयौ ।
उपानद्युगनाशश्च प्रपातः पादचर्मणोः ॥५३॥
हर्षो भृशं प्रकुपितैः पितृभिश्चावभर्त्सनम् ।
प्रदीपग्रहनक्षत्रदंतदैवतचक्षुषाम् ॥५४॥
पतनं वा विनाशो वा भेदनं पर्वतस्य च ।
कानने रक्तकुसुमे पापकर्मनिवेशने ॥५५॥
चितांधकारसंबाधे जनन्यां च प्रवेशनम् ।
पातः प्रासादशैलादेर्मत्स्येन ग्रसनं तथा ॥५६॥
काषायिणामसौम्यानां नग्नानां दंडधारिणाम् ।
रक्ताक्षाणां च कृष्णानां दर्शनं जातु नेष्यते ॥५७॥
कृष्णा पापाननाचारा दीर्घकेशनखस्तनी ।
विरागमाल्यवसना स्वप्नकालनिशा मता ॥५८॥

स्वप्नोद्भवकारणम्—

मनोवहानां पूर्णत्वात्स्रोतसां प्रबलैर्मलैः ।
दृश्यंते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पंचताम् ॥५९॥
अरोगः संशयं प्राप्य कश्चिदेव विमुच्यते ।

सप्तविधःस्वप्नः—

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च [२]प्रार्थितः कल्पितस्तथा ॥६०॥
भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः ।

स्वप्नानां सफलाफलत्वविचारः—

तेष्वाद्या निष्फलाः पंच यथास्वप्रकृतिर्दिवा ॥६१॥

---

१ स्रोतसा—नद्या । २ अनुभूतः—चक्षुःकर्णेन्द्रियादितरेन्द्रियज्ञातो विषयः । कल्पितो मनसाचिन्तितः दृष्टश्रुताद्यसम्बद्धः ।

विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽति,
पूर्वरात्रे चिरात्फलम् ॥६२॥
दृष्टः करोति तुच्छं,
[1]गोसर्गे तदहर्महत् ॥६३॥
निद्रया चानुपहतः प्रतीपैर्वचनैस्तथा ।

अशुभस्वप्नशान्तिः—

याति पापोऽल्पफलतां दानहोमजपादिभिः ॥६४॥

दुःस्वप्नान्तरं सुखप्रदर्शनं शुभम्—

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव वा पुनः ।
पश्येत्सौम्यं शुभं तस्य शुभमेव फलं भवेत् ॥६५॥

शुभस्वप्ननिर्देशः—

देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतः सुहृदो नृपान् ।
साधून् यशस्विनो वह्निमिद्धं स्वच्छान् जलाशयान् ॥६६॥
कन्या कुमारकान् गौरान् शुक्लवस्त्रान्सुतेजसः ।
[2]नराशनं दीप्ततनुं समंताद्रुधिरोक्षितं ॥६७॥
यः पश्येल्लभते यो वा छत्रादर्शविषामिषम् ,
शुक्लाः सुमनसो वस्त्रममेध्यालेपनं फलम् ॥६८॥
शैलप्रासादसफलवृक्षसिंहनरद्विपान् ।
आरोहेद्गोऽश्वयानं च तरेन्नदह्रदोदधीन् ॥६९॥
पूर्वोत्तरेण गमनमगम्यागमनं मृतम् ।
संबाधान्निःसृतिर्देवैः पितृभिश्चाभिनंदनम् ॥७०॥
रोदनं पतितोत्थानं द्विषतां चावमर्दनम् ।
यस्य स्यादायुरारोग्यं वित्तं बहु च सोऽश्नुते ॥७१॥

---

१ भाविकः भाविशुभाशुभसूचकः । दोषज उल्बण वातादिदोषजनितः । यथास्वप्रकृतिः वातादिप्रकृत्यनुरूपतः स्वप्नः । शुभःस्वप्नः, १ गोसर्गे-प्रातः । तथा प्रतीपवचनैः प्रतिकूल वचनैरनुपहतः, तदहर्महत्फलं करोति । पापोऽशुभः स्वप्नः ।
२ नराशनंराक्षसम् । संबाधनिःसृतिः सङ्कटनिस्तरणम् ।

आरोग्यलक्षणम्—

मंगलाचारसंपन्नः परिवारस्तथातुरः ।
श्रद्दधानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥७२॥
[1]सत्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ।
[2]चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम् ॥७३॥

शारीरस्थाननिरुक्तिः—

इत्यत्र जन्ममरणं यतः सम्यगुदाहृतम् ।
शरीरस्य ततः स्थानं शारीरमिदमुच्यते" ॥७४॥
इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तसूनोर्वाग्भटस्य कृतावष्टांगहृदय
संहितायां शारीरस्थाने समाप्तमध्यायश्च षष्ठः ॥६॥

—:०:—

१ सत्वस्यगुणस्य लक्षणं. संयोगः । २ अनिर्वेदः सोत्साहता ।

इति वैद्यवर श्रीपूर्णदत्तशर्मसूनु-आयुर्वेदाचार्य श्री हरिनारायण-
शर्मनिर्मितायामष्टाङ्गहृदयटिप्पण्यां प्रभाख्यायां
शारीर स्थानं समाप्तम् ।

निदानस्थानम्

प्रथमोऽध्यायः

सर्वस्थानं रोगविज्ञानम् ।

अथाऽतः सर्वरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

रोगपर्यायाः—

"रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः ।
यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः ॥ १ ॥

रोगविज्ञानम्—

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ २ ॥

निदानलक्षणम्—

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः

पूर्वरूपलक्षणम्—

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ३ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ४ ॥

रूपलक्षणम्—

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।
संस्थानं व्यंजनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ५ ॥

उपशयानुपशयलक्षणम्—

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ६ ॥
विद्यादुपशयं;
व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः ॥ ७ ॥

सम्प्राप्तिलक्षणम्—

यथादुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ ८ ॥

सम्प्राप्तिभेदाः—

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ॥
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ९ ॥
दोषाणां सम[1]वेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ।
स्वातंत्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १० ॥
हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबल विशेषणम् ।
नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ ११ ॥
इति प्रोक्तो निदानार्थः त व्यासेनोपदेक्ष्यते ।

सर्वरोगाणांकुपितामला निदानम्—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ १२ ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
अहितं त्रिविधो[2] योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥ १३ ॥

वातकोपकारणानि—

तिक्तोषणकषायाल्परूक्षप्रमितभोजनैः ।
धारणोदीरणनिशाजागरात्युच्चभाषणैः ॥ १४ ॥

---

१ समवेतानां परस्परं सम्मिलितानाम् । २ त्रिविधोयोगः—हीनमिथ्याति मात्रात्मकः ।

[1]क्रियातियोगभीशोकचिंताव्यायाममैथुनैः ।
ग्रीष्माहोरात्रिभुक्तान्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥ १५ ॥

पित्तकोपकारणानि—

पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णपटुक्रोधविदाहिभिः ।
शरन्मध्याह्नरात्र्यर्धविदा[2]हसमयेषु च ॥ १६ ॥

कफकोप कारणानि—

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यंदिशीतलैः ।
[3]आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नातिबृंहणैः ॥ १७ ॥
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसंतयोः ।
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा द्वन्द्व तु संकरात् ॥१८॥

सन्निपात प्रकोपकारणानि—

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः ।
संकीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाध्यशनादिभिः ॥१९॥
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः ।
पिण्याकमृद्यवसुरापूतिशुष्ककृशामिषैः ॥२०॥
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्ततः[4] ।
धातोर्दुष्टात्पुरोवाताद् ग्रहावेशाद्विषाद्गरात् ॥२१॥
दुष्टान्नात्पर्वताश्लेषाद्ग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् ।
मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानां च निषेवणात् ॥२२॥
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारतः ।

दोषाणांदेहेविकारकारित्वम्—

प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः ॥२३॥
रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते" ।

---

१ क्रियातियोगः वमनादीनामतिसेवनम् । २ विदाहसमयोऽन्नपरिपाककालः । ३ आस्या-आसनम् । ४ अन्नपरिवर्ततः-अभ्यस्तान्नपरिवर्तनैः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

ज्वरनिर्देशः—

"ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोऽशनोऽन्तकः ।
क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१॥
जन्मांतयोर्मोहमयः संतापात्माऽपचारजः ।
विविधैर्नामभिः क्रूरो ना[१]नायोनिषु वर्तते ॥२॥

ज्वरस्यानेकविधत्वम्—

स जायतेऽष्टधा दोषैः पृथङ्मिश्रैः समागतैः ।

ज्वर सम्प्राप्तिः—

आगंतुश्च, मलास्तत्र स्वैः स्वैर्दुष्टाः प्रदूषणैः ॥३॥
आमाशयं प्रविश्याममनुगम्य पिधाय च ।
स्रोतांसि पक्तिस्थानाच्च निरस्य ज्वलनं बहिः ॥४॥
सह तेनाभिसर्पंतस्तपंतः सकलं वपुः ।
कुर्वंतो गात्रमत्युष्णं ज्वरं निर्वर्तयंति ते ॥५॥
स्रोतोविबंधात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते ।

ज्वरपूर्वरूपम्—

तस्य प्राग्रूपमालस्यमरतिर्गात्रगौरवम् ॥६॥
आस्यवैरस्यमरुचिर्जृंभा सा[२]स्राकुलाक्षता ।
अंगमर्दोऽविपाकोऽल्पप्राणता बहुनिद्रता ॥७॥

---

१ नानायोनिषु-हस्त्यश्वगोपश्वादिषु-तद्यथा-पाकलःमतुनागानाम्, अभितापस्त वाजिनाम् । गवां गोकर्णकश्चैव, पक्षशावस्तुपक्षिणाम् । वान्तादानामलर्कः स्यान्मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः । ओषधीषु तथा ज्योतिश्चूर्णको धान्यजातिषु । जले नीलिका, भूमौ चूषो नृणां ज्वरो मतः । २ सास्राकुलाक्षता-अश्रुपूर्णनेत्रत्वम् ।

रोमहर्षो विन१मनं पिंडिकोद्वेष्टनं क्लमः ।
हितोपदेशेष्वक्षांतिः प्रीतिरम्लपटूषणे ॥८॥
द्वेषः स्वादुषु भक्ष्येषु तथा बालेषु, तृड् भृशम् ।
शब्दाग्निशीतवातांवुच्छायोष्णेष्वनिमित्ततः ॥९॥
इच्छा द्वेषश्च तदनु ज्वरस्य व्यक्तता भवेत् ।

वातज्वर लक्षणम्—

आगमापगमक्षोभमृदुतावेदनाऽमणाम् ॥१०॥
वैषम्यं तत्र तत्रागे तास्ता. स्युर्वेदनाश्चलाः ।
पादयोः सुप्तता स्तंभ. पिंडिकोद्वेष्टनं श्रमः ॥११॥
विश्लेष इव सधीनां साद ऊर्वोः कटीग्रहः ।
पृष्ठं क्षोदमिवाप्नोति निष्पीड्यत इवोदरम् ॥१२॥
छिद्यंत इव चास्थीनि पार्श्वगानि विशेषतः ।
हृदयस्य ग्रहस्तोद ३ प्राजनेनेव वक्षस ॥१३॥
स्कंधयोर्मंथन वाह्वोर्भेदः पीडनमसयो. ।
अशक्तिर्भक्षणे हन्वोर्जृंभणं कर्णयो. स्वनः ॥१४॥
निस्तोदः शंखयोर्मूर्ध्नि वेदना विरसास्यता ।
कषायास्यत्वमथवा मलानामप्रवर्तनम् ॥१५॥
रूक्षारुणत्वगास्याक्षिनखमूत्रपुरीषता ।
प्रसेकारोचकाश्रद्धाविपाकास्वेदजागराः ॥१६॥
कंठौष्ठशोषस्तृट् शुष्कौ छर्दिकासौ विषादिता ।
हर्षो रोमांगदंतेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ॥१७॥
भ्रम प्रलापो घर्मेच्छा विनामश्चानिलज्वरे ।

पित्तज्वरलक्षणम्—

युगपद्व्याप्तिरंगानां प्रलापः कटुवक्त्रता ॥१८॥
नासास्यपाकः शीतेच्छा भ्रमो मूर्च्छा मदोऽरतिः ।
विट्स्रंसः पित्तवमनं रक्तष्ठीवनमम्लकः ॥१९॥

---

१ विनमनमङ्गानां नम्रता । २ क्षोदंचूर्णत्वम् । ३ प्राजनेन प्रतोदनशस्त्रेण

शीते शीतेऽन्यजो मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते ।
दाहादौ पुनरन्ते स्युस्तन्द्रानिष्ठीववम्यिवक्लमाः ॥ ३७ ॥

आगन्तुज्वरस्यचातुर्विध्यम्

[1]आगंतुरभिघाताभिषंगशापाभिचारतः ।

अभिघातज ज्वरस्यलक्षणम्

चतुर्धा, अत्र क्षतच्छेददाहाद्यैरभिघातजः ॥ ३८ ॥
श्रमाच्च, तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन् ।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं सरुज कुरुते ज्वरम् ॥ ३९ ॥

अभिषंगज्वर लक्षणम्

ग्रहाविशोषधिविषक्रोधभीशोककामज. ।

अभिषंगात्, ग्रहेणाऽस्मिन्नकस्माद्धासरोदने ॥ ४० ॥
ओषधीगंधजे मूर्च्छा शिरोरुग्वेपथु क्षव: ।
विषान्मूर्च्छातिसारास्यश्यावतादाहहृद्गदाः ॥ ४१ ॥
क्रोधात्कंपः शिरोरुक् च, प्रलापो भयशोकजे ।
कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रानिद्राधीधृतिक्षयः ॥ ४२ ॥

आगन्तुज्वरे दोषकोपकथनम्

[2]ग्रहादौ सन्निपातस्य, भयादौ मरुतस्त्रये
कोप कोपेऽपि पित्तस्य

शापाभिचारयोरसह्यतमत्वम्

यौ तु शापाभिचारजौ ॥ ४३ ॥
सन्निपातज्वरो घोरो तावसह्यतमौ मतौ ।

मन्त्रोत्पन्नज्वरलक्षणम्

तत्राभिचारिकैर्मंत्रैर्हूयमानस्य तप्यते ॥ ४४ ॥

---

१ अभिचार :—मारणमोहनोच्चाटनादिकम्-यथा-विपरीतमन्त्रैर्लोहस्नु चा सर्षपादिना होमः । २ ग्रहादौत्रये-ग्रहावेशोषधिविषजे । भयादौत्रये भीशोककामजे ।

पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः ।
सदाहमूर्च्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥ ७५ ॥
इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः,

संक्षेपाज्ज्वर द्वैविध्यम्

समासाद्द्विविधस्तु सः ।
शारीरो मानसः, सौम्यस्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः ॥ ७६ ॥
प्राकृतो वैकृतः, साध्योऽसाध्यः, सामो निरामकः ।
पूर्वं शरीरे शारीरे तापो, मनसि मानसे ॥ ७७ ॥
पवने [1]योगवाहित्वाच्छीतं श्लेष्मयुते भवेत् ।
दाहःपित्तयुते, मिश्रं मिश्रे,
अंतःसंश्रये पुनः ॥ ७८ ॥
ज्वरेधिकविकाराः स्युरंतः क्षोभो मलग्रहः ।
बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च सुसाध्यता ॥७९॥

प्राकृतवैकृतयोर्लक्षणम्—

वर्षाशरद्वसंतेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च प्राकृतोऽनिलात् ॥५०॥
वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।
कुर्यात्,
पित्तं च शरदि तस्य चानुबलं कफः ॥५१॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।
कफो वसंते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥५२॥

साध्यासाध्ययोर्निर्देशः—

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।
सर्वथा विकृतिज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः ॥५३॥

सामज्वरलक्षणम्—

ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमग्लानिर्बहुमूत्रता ।

---

१ योगवाहित्वात्पवनस्य, श्लेष्मयुते पवने शीतं तस्मात् वातश्लेष्मज्वरःसौम्यः ।

न प्रवृत्तिर्न विड् जीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः ॥५४॥
ज्वरवेगोऽधिकं तृष्णाप्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥५५॥
जीर्णताऽऽमविपर्यासात्सप्तरात्रं च लंघनात् ।

ज्वरस्यपञ्चविधत्वम्—

ज्वर पञ्चविधः प्रोक्तो[1] मलकालबलाबलात् ॥५६॥
प्रायशः सन्निपातेन भूयसा तूपदिश्यते ।
संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥५७॥

संततसम्प्राप्तिः—

धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसां व्यापिनो मलाः ।
तापयंतस्त्वनु सर्वं तुल्यदूष्यादिवर्धिताः ॥५८॥
बलिनो गुरवः स्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः ।
संततं[2] निष्प्रतिद्वन्द्वा ज्वरं कुर्युः सुदुःसहम् ॥५९॥

ज्वरोष्मणो मलादिक्षेपकत्वम्

मलं ज्वरोष्मा धातून्वा स शीघ्रं क्षपयेत्, ततः ।

ज्वराणांस्थितिमर्यादायां मतद्वैविध्यम्—

सर्वाकारं रसादीनां शुद्धयाऽशुद्धयाऽपि वा क्रमात् ॥६०॥
वातपित्तकफैः सप्तदशद्वादशवासराम् ।
प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च ॥६१॥
इत्यग्निवेशस्य मतं, हारीतस्य पुनः स्मृतिः ।
द्विगुणा सप्तमी यावन्नवम्येकादशी तथा ॥६२॥
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ।
शुद्धयशुद्धौ ज्वरः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते ॥६३॥

विषमज्वरप्रकारः—

कृशानां व्याधिमुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम् ।

---

१ बलञ्चाबलञ्चेति बलाबलं काले बलाबल कालबलाबलं, मलानां काल बलाबलं तस्मात् । २ निष्प्रतिद्वन्द्वाः प्रत्यनीकरहिताः ।

अल्पोऽपि दोषो दूष्यादेर्लब्ध्वाऽन्यतमतो बलम् ॥६४॥
[1]सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षयवृद्धिभाक् ।

दोषस्यप्रवृत्तिनिवृत्ती—

दोषः प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् वली ॥६५॥
निवर्तते पुनश्चैवप्रत्यनीकबलाबलः ।

ज्वरस्यरसादिधातुपुलीनता—

क्षीणे दोषे ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते ॥६६॥
लीनत्वात्कार्श्यवैवर्ण्यजाड्यादीनादधाति सः ।
आसन्नविवृतास्यत्वात्स्रोतसां रसवाहिनाम् ॥६७॥
आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिर्दोषेण जायते ।
संततः [2]सततस्तेन
[3]विपरीतो विपर्ययात् ॥ ६८ ॥
विषमो विषमारंभक्रियाकालाऽनुषगवान् ।
दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सततं ज्वरम् ॥ ६९ ॥
अहोरात्रस्य सद्विः स्यात्, सकृदन्येद्यु राश्रितः ।
तस्मिन्मांसवहा नाडीः मेदोनाडीस्तृतीयके ॥ ७० ॥
ग्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः ।
सपृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहान्तरः स्मृतः ॥ ७१ ॥
चतुर्थको मले मेदोमज्जास्थ्यन्यतमस्थिते ।
मज्जस्थ एवेत्यरे प्रभाव स तु दर्शयेत् ॥ ७२ ॥
द्विधा, कफेन जंघाभ्या स पूर्वं शिरसोऽनिलात् ।
अस्थिमज्जोभयगते चतुर्थकविपर्ययः ॥ ७३ ॥

---

१ सविपक्षः प्रत्यनीकदूष्याद्यन्यतमसहितः । २ संततो निरन्तरः । ३ विपरीतःसन्ततविपरीतः सततादिज्वरो निरन्तरो न भवति, विपर्ययात् आसन्नेत्या-देरक्तारम्भंततज्वरे विपरीतात्-सततादौ रक्तादि वाहीनि स्रोतांसिदूरतराणि सूक्ष्मतराणि च तैर्दोषश्चिरेण तथा असम्पूर्णतयाशरीरं व्याप्नुवन् विच्छिन्नकालं ज्वरं करोति ।

त्रिधा, द्व्यहं ज्वरयति दिनमेकं तु मुंचति ।

दोषाणांबलाबलेनज्वरः—

बलाबलेन दोषाणामन्नचेष्टादिजन्मना ॥ ७४ ॥
ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा ।
दोषदूष्यर्त्वहोरात्रप्रभृतीनां बलाज्ज्वरः ॥ ७५ ॥
मनसो विषयाणां च कालं तं तं प्रपद्यते ।

ज्वरमोक्षकाललक्षणम्

धातून् प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले विलीयते ॥ ७६ ॥
ततो नरः श्वसन् स्विद्यन् कूजन वमति चेष्टते ।
वेपते प्रलपत्युष्णैः शीतैश्चाङ्गैर्हतप्रभः ॥ ७७ ॥
विसंज्ञो ज्वरवेगार्तः सक्रोध इव वीक्षते ।
सदोषशब्दं च शकृद्द्रवं सृजति वेगवत् ॥ ७८ ॥

विगतज्वरलक्षणम्

देहो लघुर्व्यपगत [1]क्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगि मनोऽन्नलिप्सा
कंडूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि" ॥ ७९ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो रक्तपित्तकासनिदानं व्याख्यास्यामः ।

रक्तपित्तस्यनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः

"भृशोष्णतीक्ष्णकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ।
[2]कोद्रवोद्दालकैश्चान्नैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः ॥ १ ॥

---

१ क्लमः—प्रायासं विना श्रमः । २ उद्दालको वनकोद्रवः ।

कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्छिते ।
ते मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम् ॥ २ ॥
पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ।
गंधवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥
प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत्[1] ।

रक्तपित्तस्य पूर्वरूपम्

शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लक. ॥ ४ ॥
छर्दिश्छर्दितबैभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ।
लोहलोहितमत्स्यामगंधास्यत्वं स्वरक्षयः ॥ ५ ॥
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ।
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ॥६॥
स्वप्ने तद्वर्णदर्शित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ।

रक्तपित्तस्य त्रैविध्यम्—

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ॥७॥
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ।

ऊर्ध्वगरक्तपित्तस्यसाध्यता—

ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधनम् ॥८॥
बह्वौषधं च पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ।
अनुबंधी कफो यश्च तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ॥९॥
कषायाः स्वादवोऽप्यस्य विशुद्धश्लेष्मणो हिताः ।
किमु तिक्ताः कषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः ॥१०॥

अधोगरक्तपित्तस्य याप्यता—

अधो याप्यं चलाद्यस्मात्तत्प्रच्छर्दनसाधनम् ।
अल्पौषधं च पित्तस्य वमनं न वरौषधम् ॥११॥
अनुबंधी चलो यश्च शांतयेऽपि न तस्य तत् ।
कषायाश्च हितास्तस्य मधुरा एव केवलम् ॥१२॥

---

१ तत्पित्तम् ।

उभयगरक्तपित्तस्यासाध्यता—

कफमारुतसंसृष्टमसाध्यमुभयायनम् ।
[1]अशक्यप्रातिलोम्यत्वादभावादौषधस्य च ॥१३॥
न हि संशोधनं किंचिदस्त्यस्य प्रतिलोमगम् ।
[2]शोधनं प्रतिलोमं च रक्तपित्ते भिषग्जितम् ॥१४॥
एवमेवोपशमनं सर्वशो नास्य विद्यते ।
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वजिच्छमनं हितम् ॥१५॥

रक्तपित्तेदोषसम्बन्धज्ञानम्—

तत्र दोषानुगमनं सिरास इव लक्षयेत् ।
उपद्रवांश्च विकृतिज्ञानतः[3],

कासस्याशुकारित्वम्—

[4]तेषु चाधिकम् ॥१६॥
आशुकारी यतः कासस्तमेवाऽतः प्रवक्ष्यति ।

कासानांपञ्चविधत्वम्—

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥१७॥
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ।

कासपूर्वरूपम्—

तेषां भविष्यतां रूपं कंठे कंडूररोचकः ॥१८॥
शूकपूर्णाभिकंठत्वम् तत्राधो विहतोऽनिलः ।

कासस्म्प्राप्तिः—

ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन् कंठे च संसजन् ॥१९॥
शिरःस्रोतांसि संपूर्य ततोऽगान्युत्क्षिपन्निव ।
क्षिपन्निवाक्षिणी पृष्ठमुरः पार्श्वे च पीडयन् ॥२०॥

---

१ अशक्यंप्रातिलोम्यंयस्यरक्तपित्तस्य तस्यभावस्तत्त्वं तस्मात् । २ प्रतिलोमं शोधनं-यथा—ऊर्ध्वगेविरेचनमधोगे तु वमनम् । ३ विकृतिविज्ञानीयोऽध्यायः शारीरोक्तस्तस्मात् तच्च "रक्त पित्तं भृशरक्तमित्यादि । ४ तेषु-उपद्रवेषु । कासः (खांसी) हिं० ।

प्रवर्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः ।
हेतुभेदात्प्रतीघातभेदो वायोः सरंहसः ॥२१॥
यद्रुजाशब्दवैषम्यं कासानां जायते ततः ।

वातजकासलक्षणम्—

कुपितो वातलैर्वातः शुष्कोरः कंठवक्त्रताम् ॥२२॥
हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलं मोहक्षोभस्वरक्षयम् ।
करोति शुष्कं कासं च महावेगरुजास्वनम् ॥२३॥
सोऽङ्गहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाऽल्पतां व्रजेत् ।

पित्तजकासलक्षणम्—

पित्तात्पीताक्षिकफता तिक्तास्यत्वं ज्वरो भ्रमः ॥२४॥
पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्यं धूमको मदः ।
प्रततं कासवेगेन ज्योतिषामिव दर्शनम् ॥२५॥

कफजकासलक्षणम्—

कफादुरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु ।
कंठोपलेप सदनं पीनसच्छर्द्यरोचकाः ॥ २६ ॥
रोमहर्षो घनस्निग्धश्वेतश्लेष्मप्रवर्तनम् ।

क्षतजकासलक्षणम्

युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् ॥ २७ ॥
उरस्यंतःक्षते वायुः पित्तेनानुगतो बली ।
कुपितः कुरुते कासं कफं तेन सशोणितम् ॥ २८ ॥
पीतं श्यामं च शुष्कं च ग्रथितं कुथितं बहु ।
ष्ठीवेत्कंठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ॥ २९ ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यकंपवान् ॥ ३० ॥
पारावत इवाकूजनम् पार्श्वशूली ततोऽस्य च ।
क्रमाद्वीर्यं रुचि. पक्तिर्बलं वर्णश्च हीयते ॥ ३१ ॥
क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं स्याच्च पृष्ठकटीग्रहः ।

क्षयकासलक्षणम्

वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मिणः ॥ ३२ ॥
कुर्वंति यक्ष्मायतनैः[1] कासं छीवेत्कफं ततः ।
पूतिपूयोपमं पीतं विस्रं हरितलोहितम् ॥ ३३ ॥
लुंच्येते इव पार्श्वे च हृदयं पततीव च ।
अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः ॥ ३४ ॥
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता ।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवंति च ॥ ३५ ॥

क्षयकासोदेहनाशनः—

इत्येष क्षयजःकास.क्षीणानां देहनाशनः ।
याप्यो वा बलिनां तद्वत् क्षतजोऽभिनवो तु[2] तौ ॥ ३६ ॥
सिध्येतामपि सानाथ्या[3]त्

कासानांसाध्यत्वादि—

साध्या दोषैः पृथक् त्रयः ।
मिश्रा याप्या द्वयात्सर्वे जरसा स्थविरस्य च ॥ ३७ ॥

कासजये कारणम्

कासाच्छ्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः ।
भवंत्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्" ॥ ३८ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः श्वासहिध्मानिदानं व्याख्यास्यामः ।

श्वासनिदानादिलक्षणम्

"कासवृद्धया भवेच्छ्वासः [4]पूर्वैर्वा दोषकोपनैः ।

---

१ यक्ष्मायतनैः यक्ष्मनिदानोक्तैः साहसादिभिः । २ तौ क्षयजक्षतजौ कासौ ।
३ सानाथ्यात् भिषगादिचतुष्पात्सम्पत्तेः । ४ सर्वनिदानोक्तैः दोषकोपनैराहारविहारैः ।

आमातिसारवमथुविषपाण्डुज्वरैरपि ॥१॥

रजोधूमानिलैर्मर्मघातादतिहिमांबुना ।

श्वासस्यपञ्चविधत्वम्

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पंचमः ॥ २ ॥

श्वाससम्प्राप्तिः—

कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः ।

प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टः स्रोतांसि दूषयन् ॥ ३ ॥

उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ।

श्वासपूर्वरूपम्

प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता ॥ ४ ॥

आनाहः शंखभेदश्च, तत्रायासातिभोजनैः ।

क्षुद्रश्वासलक्षणम्

प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संशमनं मरुत् ॥ ५ ॥

तमकश्वासलक्षणम्

प्रतिलोमं सिरा गच्छन्नुदीर्य पवनः कफम् ।

परिगृह्य शिरोग्रीवमुरः पार्श्वे च पीडयन् ॥ ६ ॥

कासं घुर्घुरकं मोहमरुचिं पीनसं तृषम् ।

करोति तीव्रवेगं च श्वासं प्राणोपतापिनं ॥७॥

प्रताम्येत्तस्य वेगेन निष्ठ्यूताते क्षणं सुखं ।

कृच्छ्राच्छयानः श्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमृच्छति ॥७॥

उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान् ।

विशुष्कास्यः मुहुः श्वासी काङ्क्षत्युष्णं सवेपथुः ॥९॥

मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लैष्मलैश्च विवर्धते ।

स याप्यस्तमकः, साध्यो नवो वा बलिनो भवेत् ॥१०॥

प्रतमकलक्षणम्—

ज्वरमूर्च्छायुतः शीतैः शाम्येत्प्रतमकस्तु सः ।

---

१ चिकित्सा विना स्वयं शाम्यति ।

छिन्नश्वासलक्षणम्—

छिन्नाच्छ्वसिति विच्छि¹न्नं मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥११॥
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहनिरोध²वान् ।
अधोदृग्विप्लुताक्षश्च मुह्यन् रक्तैकलोचनः ॥१२॥
शुष्कास्यः प्रलपन् दीनो नष्टच्छायो विचेतनः ।

महाश्वासस्यलक्षणम्—

³महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्रथन् ॥१३॥
उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ।
प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रांतनयनाननः ॥१४॥
वक्षः समाक्षिपन् बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ।
शुष्ककंठो मुहुर्मुह्यन् कर्णशंखशिरोऽतिरुक् ॥१५॥

ऊर्ध्वश्वासस्यलक्षणम्—

दीर्घमूर्ध्वं श्वसित्यूर्ध्वान्न च प्रत्याहरत्यधः ।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥१६॥
ऊर्ध्वदृग्वीक्षते भ्रांतमक्षिणी परितः क्षिपन् ।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु परि⁴देवी निरुद्धवाक् ॥१७॥

श्वासस्य साध्यत्वादि—

एते सिद्ध्ये युरव्यक्ता, व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ।

⁵हिध्मास्वरूपम्—

श्वासैकहेतुप्राग्रूपसंख्याप्रकृतिसंश्रयाः ॥१८॥
हिध्मा भवतोद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च ।
गंभीरा च,

---

१ विच्छिन्नं सविच्छेदं ननिरन्तरमित्यर्थः । २ दाहश्चनिरोधश्चदाहनिरोधौ बस्तौदाह निरोधौयस्यास्ति बस्तिदाहनिरोधवान् । ३ महताश्वासेन । महता-नादेनेत्यन्वयः । दीनोऽप्रसन्नचित्तः, अनाथमात्मानं मन्यमानो वा । क्रथन् शब्दं कुर्वन् । उद्धूयमानः ऊर्ध्वं नीयमानो वातोवस्य उत्कम्प्यमान इत्यर्थः । संरब्धः मंक्षोभयुक्तः । ४ परिदेवी-दुःखितः । ५ हिध्मा (हिचकी) हि०

अन्नजाहिध्मालक्षणम्—

मरुतत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः ॥१९॥
रूक्षतीक्ष्णखरासात्म्यैरन्नपानैः प्रपीडितः ।
करोति हिध्मामरुजां मंदशब्दा क्षवानुगाम् ॥२०॥
शमं सात्म्यान्नपानेन या प्रयाति च साऽन्नजा ।

क्षुद्राहिध्मालक्षणम्—

आयासात्पवनः क्षुद्रः क्षुद्रां हिध्मां प्रवर्तयेत् ॥२१॥
जत्रुमूलप्रविसृतामल्पवेगां मृदु च सा ।
वृद्धिमायास्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् ॥२२॥

यमलाहिध्मालक्षणम्—

चिरेण यमलैर्वेगैराहारे या प्रवर्तते ।
परिणामोन्मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति ॥२३॥
कंपयंती शिरोग्रीवमाध्मातस्यातितृष्यतः ।
प्रलापच्छर्दतीसारनेत्रविप्लुतजृंभिणः ॥२४॥
यमला वेगिनी हिध्मा परिणामवती च सा ।

महाहिध्मालक्षणम्—

स्तब्धभ्रूशङ्खयुग्मस्य सास्त्रविप्लुतचक्षुषः ॥२५॥
स्तंभयंती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञां च मुष्णती ।
रुंधती मार्गमन्नस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ॥२६॥
पृष्ठतो नमनं शोषं महाहिध्मा प्रवर्तते ।
महामूला महाशब्दा महावेगा महाबला ॥२७॥

गम्भीराहिध्मालक्षणम्—

पक्वाशयाद्वा नाभेर्वा पूर्ववद्या प्रवर्तते ।
[1]तद्रूपा सा मुहुः कुर्याज्जृम्भामंगप्रसारणम् ॥२८॥
गंभीरेणानुनादेन गंभीरा तासु साधयेत् ।

१—तद्रूपा-महाहिध्मासदृशरूपा ।

तासां साध्यासाध्यत्वम्—

[1]आद्ये द्वे, वर्जयेदन्त्ये सर्वलिंगां च वेगिनीम् ॥२९॥
सर्वाश्च संचितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदक्षतस्य वा ॥३०॥

हिध्माश्वासयोः शीघ्रकारित्वम्—

सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः ।
हिध्माश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ" ॥३१॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो राजयक्ष्मादिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

राजयक्ष्मसंज्ञा—

"अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः ॥१॥
नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ।
[2]यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥२॥
देहौषधक्षयकृतेः क्षयस्तत्संभवाच्च सः ।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात् ॥३॥

राजयक्ष्मणो हेतवः—

साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसंक्षयः ।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥४॥

१—आद्येद्वे-भक्तोद्भवाक्षुद्रे । अन्त्येमहागम्भीरे । वेगिनीयमलाम् । २ राजाचासौ यक्ष्मा च राजयक्ष्मेति कर्मधारयसमासेन ।

राजयक्ष्मणि पवनस्य हेतुत्वम्—

तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्य सर्वतः।
शरीरसंधीनाविश्य [1]तान् सिराश्च प्रपीडयन् ॥५॥
मुखानि स्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविवृत्य च।
सर्पन्नूर्ध्वमधस्तिर्यग्यथास्वं जनयेद्गदान् ॥६॥

राजयक्ष्मणः पूर्वरूपम्—

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं क्षवः।
प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं वह्निदेहयोः ॥ ७ ॥
स्थाल्यमत्रान्नपानादौ शुचावप्यशुचीक्षणम्।
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः ॥ ८ ॥
हृल्लासश्छर्दिररुचिरश्नतोऽपि बलक्षयः।
पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽक्ष्णोरतिशुक्लता ॥ ९ ॥
बाह्वोः प्रमाणजिज्ञासा काये बैभत्स्यदर्शनम्।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणित्वं [2]मूर्धगुण्ठनम् ॥१०॥
नखकेशातिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत्।
[3]पतंगकृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ॥११॥
केशास्थितुषभस्मादिराशौ समधिरोहणम्।
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ॥१२॥
ज्योतिर्गिरीणां पततां ज्वलतां च महीरुहाम्।

राजयक्ष्मण एकादशरूपाणि—

पीनसश्वासकासांऽसमूर्धस्वररुजोऽरुचिः ॥१३॥
ऊर्ध्वं विड्भ्रंशसंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे।
तिर्यक्स्थे पार्श्वरुग्दोषे संधिगे भवति ज्वरः ॥१४॥
रूपाण्येकादशैतानि जायंते राजयक्ष्मिणः।

१—तान् शरीरसन्धीन्। २ मूर्ध्नो मस्तकस्य गुण्ठनं वस्त्रादिना संछादनम्।
३ पतंगः पक्षी। कृकलासः "गिरगिट" इति लोके।

पीनसादीनामुपद्रवाः—

तेषामुपद्रवान् विद्या [1]त्कंठोद्ध्वंसमुरोरुजम् ॥१५॥
ज्वरांगमर्दनिष्ठीववह्निसादास्यपूतिताः ।
तत्र वाताच्छिरःपार्श्वशूलमंसांगमर्दनम् ॥१६॥
कंठोद्ध्वंसः स्वरभ्रंशः, पित्तात्पादासपाणिषु ।
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगंधो ज्वरो मदः ॥१७॥
कफादरोचकश्छर्दिः कासो मूर्धांगगौरवम् ।
प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरसादोऽल्पवह्निताः ॥१८॥

यक्ष्मिणोधातुपुष्ट्यभावे युक्तिः—

दोषैर्मंदानलत्वेन सोपलेपैः कफोल्बणैः ।
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातूष्मस्वल्पकेषु च ॥१९॥
विदह्यमानः स्वस्थाने रसस्तांस्तानुपद्रवान् ।
कुर्यादगच्छन्मांसादीनसृक् चोर्ध्वं प्रधावति ॥२०॥
पच्यते कोष्ठ एवान्नमन्नपक्त्रैव चाऽस्य यत् ।
प्रायोऽस्मान्मलतां यातं नैवालं धातुपुष्टये ॥२१॥
रसोऽप्यस्य न रक्ताय मांसाय कुत एव तु ।

यक्ष्मिणोजीवने हेतुः—

[2]उपस्तब्धः स शकृता केवलं वर्तते क्षयी ॥२२॥

यक्ष्मिणःसाध्यासाध्यत्वम्—

लिंगेष्वल्पेष्वपि क्षीणं व्याध्यौषधबलाक्षमम् ।
वर्जयेत्, साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥२३॥

स्वरभेदनिर्देशः—

दोषै[4]र्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात् षष्ठश्च मेदसा ।
स्वरभेदो भवेत् तत्र क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः ॥२४॥

१—कण्ठोद्ध्वंस उत्कासिका । २—उपस्तब्धः धृतावष्टम्भः शकृता, ३—ततोऽन्यथा-अक्षीणंव्याध्यौषधबलक्षमम् । ४—व्यस्तैः पृथक्स्थितैः ।

शुकपूर्णाभकंठत्वं, स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात् ।
पित्तात्तालुगले दाहः शोष उक्तावसूयनम् ॥२५॥
लिपन्निव कफात्कंठं मंदः खुरखुरायते ।
स्वरो विबद्धः, सर्वैस्तु सर्वलिंगः, क्षयात्क्षयेत् ॥२६॥
धूमायतीव चात्यर्थम्, मेदसा श्लेष्मलक्षणः ।
कृच्छ्रलक्ष्याक्षरश्चं, ग्रंते सर्वैरंत्यं च वर्जयेत् ॥२७॥

अरोचकनिर्देशः—

अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः ।
सन्निपातेन मनसः संतापेन च पंचमः ॥ २८ ॥
कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात् ।
सर्वोत्थे विरसंशोकक्रोधादिषु यथामलम् ॥ २९ ॥

छर्दिनिर्देशः—

छर्दिर्दोषैः पृथक्सर्वैर्द्विष्टैरर्थैश्च पंचमी ।

छर्दिसम्प्राप्तिः—

उदानो विकृतो दोषान् सर्वास्व्यूर्ध्वमस्यति ॥ ३० ॥

छर्दिपूर्वरूपम्—

तामूक्लेशास्यलावण्यप्रसेकारुचयोऽग्रगाः ।

वातजच्छर्दिलिङ्गम्—

नाभिपृष्ठं रुजन् वायुः पार्श्वे चाहारमुत्क्षिपेत् ॥ ३१ ॥
ततो विच्छिन्नमल्पाल्पं कषायं फेनिलं वमेत् ।
शब्दोद्गारयुतं कृष्णमच्छं कृच्छ्रेण वेगवत् ॥ ३२ ॥
पित्तात्क्षारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम् ॥३३॥
सासृगम्लं कटूष्णं च तृण्मूर्च्छातापदाहवत् ।
कफात् स्निग्धं घनं शीतं श्लेष्मतंतुगवाक्षितम् ॥३४॥
मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम् ।
मुखश्वयथुमाधुर्यतंद्राहृल्लासकासवत् ॥३५॥

सर्वलिंगा मलैः सर्वैरिष्टो¹क्ता या च तां त्यजेद् ।

द्विष्टार्थयोगजालक्षणम्—

पूत्यमेध्याशुचिद्विष्टदर्शनश्रवणादिभिः ॥३६॥
तप्ते चित्ते हृदि क्लिष्टे छर्दिर्द्विष्टार्थयोगजा ।

क्रिम्यादिजच्छर्दिविमर्शः—

वातादीनेव विमृशेत्कृमितृष्णामदोहृदे ॥३७॥
शूलवेपथुहृल्लासैर्विशेषात् कृमिजां वदेत् ।
कृमिहृद्रोगलिंगैश्च, स्मृताः पञ्च तु हृद्गदाः ॥३८॥

हृद्रोगनिर्देशः—

तेषां गुल्मनिदानोक्तैः समुत्थानैश्च संभवः ।
वातेन शूल्यतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव च ॥३९॥
भिद्यते शुष्यति स्तब्धं हृदयं शून्यता द्रवः ।
अकस्माद्दीनता शोको भयं शब्दासहिष्णुता ॥४०॥
वेपथुर्वेष्टनं मोहः श्वासरोधोऽल्पनिद्रता ।
पित्तात्तृष्णा भ्रमो मूर्छा दाहः स्वेदोऽम्लकः क्लमः ॥४१॥
छर्दनं चाम्लपित्तस्य धूमकः पीतता ज्वरः ।
श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धं भारकं साश्मगर्भवत् ॥४२॥
कासाग्निसादनिष्ठीवनिद्रालस्यारुचिज्वराः ।
सर्वलिंगस्त्रिभिर्दोषैः

क्रिमिजहृद्रोगलिङ्गम्—

कृमिभिः श्यावनेत्रता ॥४३॥
तमःप्रवेशो हृल्लासः शोषः कण्डूः कफस्रुतिः ।
हृदयं प्रततं चात्र क्रकचेनेव दार्यते ॥४४॥
चिकित्सेदामयं घोरं तं शीघ्रं शीघ्रकारिणम् ।

१—रिष्टोक्ता विकृतिविज्ञानीयेशारीरे "छर्दिर्वेगवती" इत्यादिना साऽपि सर्वैर्मलैः। २—क्रकचः "आरा" शस्त्रम् ।

तृष्णानिर्देशः—

वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्रसक्षयात् ॥४५॥
षष्ठी स्यादुपसर्गाच्च,
वातपित्ते तु कारणम् ।
सर्वासु, तत्प्रकोपो हि सौम्यधातुप्रशोषणात् ॥४६॥

तृष्णासमुत्पत्तिः—

सर्वदेहभ्रमोत्कंपतापतृड्दाहमोहकृत् ।
जिह्वामूलगलक्लोमतालुतोयवहाः सिराः ॥४७॥
संशोष्य तृष्णा जायते

तृष्णासामान्य लक्षणम्—

तासां सामान्यलक्षणम् ।
मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः ॥४८॥
कंठोष्ठजिह्वाकार्कश्यं जिह्वानिष्क्रमणं क्लमः ।
प्रलापश्चित्तविभ्रंशस्तृड्ग्रहोक्तास्तथाऽमयाः ॥४९॥

वातजतृष्णालिङ्गम्—

मारुतात् क्षामता दैन्यं शंखतोदः शिरोभ्रमः ।
गंधाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः ॥५०॥
शीतांबुपानाद्वृद्धिश्च

पित्तजतृष्णालिङ्गम्—

पित्तान्मूर्च्छास्यतिक्तता ।
रक्तेक्षणत्वं प्रततं शोषो दाहोऽतिधूमकः ॥५१॥

कफजतृष्णालिङ्गम्—

कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम् ।
स्रोतःसु सकफस्तेन पंकवच्छोष्यते ततः ॥५२॥
शूकैरिवाचितः कंठो निद्रा मधुरवक्त्रता ।
आध्मानं शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्दरोचकाः ॥५३॥

आलस्यमविपाकश्च, सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणा ।
आमोद्भवा च भक्तस्य संरोधाद्वातपित्तजा ॥५४॥

स्नेहजतृष्णा पित्तजा—

उष्णक्लान्तस्य सहसा शीताम्भो भजतस्तृषम् ।
ऊष्मा रुद्धो गतः कोष्ठं यां कुर्यात्पित्तजैव सा ॥५५॥
या च पानातिपानोत्था तीक्ष्णाग्नेः स्नेहजा च या ।

अन्नजातृष्णाकफजा—

स्निग्धगुर्वम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा ॥५६॥

क्षयात्मिकातृष्णा

तृष्णा रसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका ।

उपसर्गात्मिकातृष्णा—

शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गतः ।
या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिका स्मृता ॥५७॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययनिदानं व्याख्यास्यामः ।

मद्यगुणाः—

"तीक्ष्णोष्णरूक्षसूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुकरं लघु ।
विकाशि विशदं [1]मद्यमोजसोऽस्माद्विपर्ययः ॥१॥

मद्येन चेतोविकारस्यप्रकारः—

तीक्ष्णादयो विषेऽप्युक्ताश्चित्तोपप्लाविनो गुणाः ।

१—ओजसोऽस्माद् मद्यगुणाद्विपर्ययो विपरीतगुणः ।

जीवितांताय जायते विषे तूत्कर्षवृत्तितः ॥२॥
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यं मंदादीनोजसो गुणान् ।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥३॥

द्वितीयमदलक्षणम्—

आद्ये मदे, द्वितीये स प्रमादायतने स्थितः ।
[1]दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्यधिमुच्यते ॥४॥

द्वितीयतृतीयमदसन्ध्यवस्था

मध्यमोत्तमयोः संधि प्राप्य राजसतामस. ।
निरंकुश इव व्यालो न किंचिन्नाचरेज्जड. ॥५॥
इयं भूमिरवद्यानां दौःशील्यस्येदमास्पदम् ।
एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्देशिकः[2] परम् ॥६॥

तृतीयमदावस्था—

निश्चेष्टः शववच्छेते तृतीये तु मदे स्थितः ।
मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम् ॥७॥
धर्माधर्मं सुखं दुःखमर्थानर्थं हिताहितम् ।
यदासक्तो न जानाति कथं तच्छीलयेद्बुधः ॥८॥

मद्ये पीते मोहादयः—

मद्ये मोहो भयं शोक. क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः ।
सोन्मादमदमूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः ॥९॥
यत्रैक. स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत् ।

युक्तिहीनंमद्यं व्याधिकरम्—

अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा ॥१०॥

---

१ द्वितीये मदे प्रमादानां साहसानामुभयलोकेऽशुभहेतूनामायतनेस्थाने स्थितः, दुर्विकल्पैःस्वार्थैर्दुष्टैस्तैस्तैर्हत.पुरुषार्थाद्विनष्टः, मूढः कार्याकार्यानभिज्ञः सुखमितिज्ञाने न प्रथमदोत्पनेनाधिमुच्यतेत्यज्यत इत्यर्थः । २ देशिक आचार्यः ।

मद्यं [1]त्रिवर्गधीधैर्यलज्जादेरपि नाशनम् ।

अतिमदाभावेहेतुः—

नातिमाद्यंति बलिनः कृताहारा महाशनाः ॥११॥
स्निग्धाः सत्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः[2] ।
कासास्यशोषहृन्मूर्धस्वरपीडाबलमान्वितः ।
मेदःकफाधिका मंदवातपित्ता दृढाग्नयः ॥ १२ ॥
[3]विपर्ययेऽतिमाद्यंति विस्रब्धाः कुपिताश्च ये ।
मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहु नाति च ॥ १३ ॥

वातादिभ्यश्चत्वारोमदात्ययाः—

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैश्चत्वारः स्युर्मदात्ययाः ।
सर्वेऽपि सर्वजायंते व्यपदेशस्तु भूयसा ॥ १४ ॥

मदात्ययसामान्यलक्षणम्—

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ।
विड्भेदः प्रततं तृष्णा सौम्याग्नेयो ज्वरोऽरुचिः ॥ १५ ॥
शिरःपार्श्वास्थिहृत्कंपो मर्मभेदस्त्रिकग्रहः ।
उरोविबंधस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः ॥ १६ ॥
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टंभः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
प्रलापश्छर्दिरुत्क्लेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १७ ॥

वातजमदात्ययः—

विशेषाज्जागरश्वासकंपमूर्धरुजोऽनिलात् ।
स्वप्ने भ्रमत्युत्पतति प्रेतैश्च सहभाषते ॥ १८ ॥

पित्तजमदात्ययः—

पित्ताद्दाहज्वरस्वेदमोहातीसारतृड्भ्रमाः ।
देहो हरितहारिद्रो रक्तनेत्रकपोलता ॥ १९ ॥

---

[1]—त्रिवर्गः-धर्मार्थकामाः । [2] तदन्वयाः-मद्यपकुलप्रसूताः । [3] विपर्यये पूर्वोक्त "स्निग्धाःसत्ववयोयुक्ताः" इत्यादिविपरीते ।

श्लेष्मणश्छर्दिहृल्लासनिद्रोदर्दाङ्गगौरवम् ।
सर्वजे सर्वलिङ्गत्वम्

अतिपानकर्तुर्ध्वंसकविक्षयौ व्याधी—

¹मुक्त्वा मद्यं पिबेत्तु यः ॥
सहसाऽनुचितं चान्यत्तस्य ध्वंसकविक्षयौ ।
भवेतां मारुतात्कष्टौ दुर्बलस्य विशेषतः ॥ २१ ॥

ध्वंसकलक्षणम्—

ध्वंसके श्लेष्मनिष्ठीवः कण्ठशोषोऽतिनिद्रिता ।
शब्दासहत्वं तन्द्रा च,

विक्षयलक्षणम्—

विक्षयेऽङ्गशिरोतिरुक् ॥ २२ ॥
हृत्कण्ठरोगः संमोहः कासस्तृष्णा वमिर्ज्वरः ।

मद्यपानरहितस्य गुणाः—

निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् ॥ २३ ॥
विकारैः स्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः ।

रजःप्रधानादेस्त्रयोगदाः—

रजोमोहाहिताहारपरस्य स्युस्त्रयो गदाः ॥ २४ ॥
रसासृक्चेतनावाहिस्रोतोरोधसमुद्भवाः ।
मदमूर्च्छायसंन्यासा यथोत्तरबलोत्तराः ॥ २५ ॥

¹मदः सप्तधा—

¹मदोऽत्र दोषैः सर्वैश्च रक्तमद्यविषैरपि ।
सक्तानल्पद्रुताभाषश्चलः स्खलितचेष्टितः ॥ २६ ॥
रूक्षश्यावारुणतनुर्मदे वातोद्भवे भवेत् ।
पित्तेन क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः ॥ २७ ॥

१—मद्यं मद्यपानचिरकालमुक्त्वा यः पिबेदित्यन्वयोऽत्र ।

स्वल्पासंबद्धवाक्याङ्गः कफाद्ध्यानपरोऽलसः ।
सर्वात्मा सन्निपातेन, रक्तात्स्तब्धाङ्गदृष्टिता ॥ २८ ॥
पित्तलिङ्गं च [1]मद्येन विकृतेहास्वराङ्गता ।
विषे कंपोऽतिनिद्रा च सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तु सः ॥ २९ ॥

शोणितादिष्वपि मदेषु वातादिज्ञानम्—

लक्षयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वातादीन् शोणितादिषु ।

वातमूर्च्छालक्षणम्—

अरुणं कृष्णनीलं वा खं पश्यन्प्रविशेत्तमः ॥ ३० ॥
शीघ्रं च प्रतिबुध्येत हृत्पीडा वेपथुर्भ्रमः ।
कार्श्यं श्यावारुणा छाया मूर्च्छाये मारुतात्मके ॥३१॥

पित्तमूर्च्छालक्षणम्—

पित्तेन रक्तं पीतं वा नभः पश्यन् विशेत्तमः ।
विबुध्येत च सस्वेदो दाहतृट्तापपीडितः ॥३२॥
भिन्नविण्नीलपीताभो रक्तपीताकुलेक्षणः ।

कफमूर्च्छालक्षणम्—

कफेन मेघसंकाशं पश्यन्नाकाशमाविशेत् ॥३३॥
तमश्चिराच्च बुध्येत सहृल्लासः प्रसेकवान् ।
गुरुभिः स्तिमितैरंगैरार्द्रचर्मावनद्धवत् ॥३४॥

सन्निपातमूर्च्छालक्षणम्—

सर्वाकृतिस्त्रिभिर्दोषैरपस्मार इवाऽपरः ।
पातयत्याशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितैः ॥३५॥

संन्यासलक्षणम्—

दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यंति संन्यासो नौषधैर्विना ॥३६॥

—[1]मद्येनोत्पन्ने मदे चेष्टास्वराङ्गानाविकृतत्वम् ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबलोत्कलाः ।
संन्यास सन्निपतिताः प्राणायतनसंश्रयाः ॥३७॥
कुर्वंति तेन पुरुषः काष्ठभूतो मृतोपमः ।
म्रियेत शीघ्रं, शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते ॥३८॥

शीघ्रं चिकित्सनाज्जीवनम्—

अगाधे ग्राहबहुले सलिलौघ इवातटे ।
सन्यासे विनिमज्जंत नरमाशु निवर्तयेत् ॥३९॥

मद्येनैवमद्यस्योपसंहारः—

मदमानरोषतोष-प्रभृतिभिररिभिर्निजैः परिष्वंगः ।
युक्तायुक्तं च समं युक्तिवियुक्तेन मद्येन ॥४०॥

मद्यपानेयुक्तिः—

बलकालदेशसात्म्य-प्रकृतिसहायामयवयांसि ।
प्रविभज्य तदनुरूपं यदि पिबति ततः पिबत्यमृतम्" ॥४१॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथार्शसां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अर्शोनिरुक्तिः—

"अरिवत्प्राणिनो मांसकीलका विशसंति यत् ।
अर्शांसि तस्मादुच्यंते गुदमार्गनिरोधतः ॥१॥

अर्शःसम्प्राप्तिः—

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ।
मांसांकुरानपानादौ कुर्वंत्यर्शांसि तान् जगुः ॥२॥

१—चेद्यदिशीघ्रं चिकित्सा न प्रयुज्यते तर्हि शीघ्रंम्रियेत ।

अर्शोद्वैविध्यम्—

सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद्द्वेधा समासतः ।
शुष्कस्राविविभेदाच्च, गुदः स्थूलान्त्रसंश्रयः ॥३॥

गुदवलीस्वरूपम्—

[1]अर्धपञ्चाङ्गुलस्तस्मिंस्तिस्रोऽध्यर्धाङ्गुलाः स्थिताः ।
वल्यः प्रवाहिणी तासामन्तर्मध्ये विसर्जनी ॥४॥
बाह्या संवरणी तस्या गुदौष्ठो बहिरङ्गुले ।
यवाध्यर्धप्रमाणेन रोमाण्यत्र ततः परम् ॥५॥

सहजार्शसोहेतुः—

तत्र हेतुः सहोत्थानां वलीबीजो[2]पतप्तता ।
अर्शसां बीजतप्तिस्तु मातापित्रपचारतः ॥६॥
दैवाच्च[3] ताभ्यां कोपो हि सन्निपातस्य तान्यतः ।
असाध्यान्येवमाख्याताः सर्वे रोगाः कुलोद्भवाः ॥७॥
सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि च ।
अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च ॥८॥

अन्यार्शसः षट्प्रकारत्वम्—

षोढान्यानि पृथग्दोषसंसर्गनिच[4]यास्रतः ॥९॥
शुष्काणि वातश्लेष्मभ्यामार्द्राणि त्वस्रपित्ततः ॥९॥

अर्शोजननप्रकारः—

दोषप्रकोपहेतुस्तु प्रागुक्तस्तेन सादिते ।

१—अर्धपञ्चमङ्गुलं यस्मिन् तत्, सार्धचतुरङ्गुलप्रमाणं गुदमित्यर्थः च तत्रोपरितनं वलिद्वयं सार्धैकाङ्गुलं प्रत्येकमन्तिमा वलिश्च एकाङ्गुलप्रमाणा । गुदौष्ठो यवाध्यर्धोऽर्धाङ्गुलमित इत्यर्थः । २ वलिबीजोपतप्तता-भवति शुक्रेचार्तवे-सर्वेषां स्थूलसूक्ष्मनाणामङ्गावयवानामुत्पादकं बीजं तथा च गुदवल्यारम्भकस्य बीजस्योपतप्तता, अर्शोरोगोत्पादनशक्तैर्वातादिभिः दुष्टिः । ३ ताभ्यां-मातापितृ द्वारा दैवाभ्याम् । ४—निचयः सन्निपातः । अर्शः "बवासीर" हिन्दी ।—

अग्नौ मलेऽतिनिचिते पुनश्चातिव्यवायतः ॥१०॥
यानसंक्षोभविषमकठिनोत्कटकासनात् ।
बस्तिनेत्राश्मलोष्ठोर्वीतलचैलादिघट्टनात् ॥११॥
भृशं शीतांबुसंस्पर्शात्प्रततातिप्रवाहणात् ।
वातमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात् ॥१२॥
ज्वरगुल्मातिसारामग्रहणीशोफपांडुभिः ।
कर्शनाद्विषमाभ्यश्च चेष्टाभ्यो, योषितां पुनः ॥१३॥
आमगर्भप्रपतनाद्गर्भवृद्धि[1]प्रपीडनात् ।
ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मलम् ॥१४॥
पायोर्वलीषु सधत्ते [2]तास्वभिष्यण्णमूर्तिषु ।

अर्शसांपूर्वरूपम्—

जायतेऽर्शांसि, तत्पूर्वलक्षणं मंदवह्निता ॥१५॥
विष्टंभः सक्थिसदनं पिंडिकोद्वेष्टनं भ्रमः ।
सादोऽङ्गे नेत्रयोः शोफः शकृद्भेदोऽथवा ग्रहः ॥१६॥
मारुतः प्रचुरो [3]मूढः प्रायो नाभेरधश्चरन् ।
सरुक् सपरिकर्तश्च कृच्छ्रान्निर्गच्छति स्वनन् ॥१७॥
अंत्रकूजनमाटोपः क्षामतोद्गारभूरिता ।
प्रभूतं मूत्रमल्पा विट् अश्रद्धा धूमकोऽम्लकः ॥१८॥
शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्यं भिन्नवर्णता ।
तथेंद्रियाणां दौर्बल्यं क्रोधो दुःखोपचारता ॥१९॥
आशंका ग्रहणीदोषपांडुगुल्मोदरेषु च ।

अर्शस उत्पत्तौ महत्त्वादयः—

एतान्येव विवर्धंते जातेषु [4]हतनामसु ॥२०॥

अर्शसःसम्भवनप्रकारादि—

निवर्तमानोऽपानो हि तैरधोमार्गरोधतः ।

---

१ गर्भस्यवृद्ध्या प्रपीडनंतस्मात् । २ अभिष्यण्णा अभिष्यंदयुक्ताःविच्छिन्नाः मूर्तयोयासां तासु । ३ मूढः क्रियारहितः । ४ हतनाम अर्शः ।

क्षोभयन्ननिलानन्यान् सर्वेन्द्रियशरीरगान् ॥२१॥
तथा मूत्रशकृत्पित्तकफान् धातूंश्च साशयान् ।
मृद्नात्यग्निं ततः सर्वो भवति प्रायशोऽर्शसः ॥२२॥
कृशो भृशं हतोत्साहो दीनः क्षामोऽतिनिष्प्रभः ।
असारो विगतच्छायो जंतुजुष्ट इव द्रुमः ॥२३॥
कृत्स्नैरुपद्रवैर्ग्रस्तो यथोक्तैर्मर्मपीडनैः ।
तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनसैः ॥२५॥
क्लमांगभंगवमथुक्षवथुश्वयथुज्वरैः ।
क्लैब्यबाधिर्यतैमिर्यशर्कराश्मरिपीडितः ॥२५॥
क्षामभिन्नस्वरो ध्यायन्मुहुः ष्ठीवन्नरोचकी ।
सर्वपर्वास्थिहृन्नाभिपायुवंक्षणशूलवान् ॥२६॥
गुदेन स्रवता पिच्छां पुलाकोदकसन्निभाम् ।
विबद्धमुक्तं शुष्कार्द्रं पक्वामं चांतरांतरा ॥२७॥
पांडु पीतं हरिद्रक्तं पिच्छिलं चोपवेश्यते[1] ।

वातजार्शसोलक्षणम्—

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः ॥ २८ ॥
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषमाः परुषाः खराः ।
मिथोविसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ २९ ॥
बिंबीकर्कंधुखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ।
केचित्कदंबपुष्पभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ ३० ॥
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ।
क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ ३१ ॥
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ।
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ३२ ॥
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ।
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ॥ ३३ ॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ।

---

१ उपवेश्यते पुरीषं निर्गच्छतीत्यर्थः ।

पित्तजार्शसोलक्षणम्—

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥ ३४ ॥
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ।
शुकजिह्वायकृत्खंडजलौकावक्त्रसन्निभाः ॥ ३५ ॥
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्छारुचिमोहदाः ।
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥ ३६ ॥
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ।

कफजार्शसोलक्षणम्—

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मंदरुजः सिताः ॥ ३७ ॥
उच्छूनोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कंड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ॥३८॥
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ।
वंक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्तिनः ॥३९॥
सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ।
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥४०॥
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ।
वसाभाः सकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ ४१ ॥
न स्रवंति न भिद्यंते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ।
संसृष्टलिंगाः संसर्गात् निचयात्सर्वलक्षणाः ॥ ४२ ॥

रक्तजार्शसोलक्षणम्—

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ।
वटप्ररोहसदृशा गुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥ ४३ ॥
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्प्रतिपीडिताः ।
स्रवंति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ ४४ ॥
भेकाभो पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ।
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेंद्रियः ॥ ४५ ॥

अर्शस्युदावर्तः—

मुद्गकोद्रव[1]जूर्णाह्वकरीरचणकादिभिः ।
रूक्षैः संग्राहिभिर्वायुः स्वस्थाने कुपितो बली ॥ ४६ ॥
अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रदूषयन् ।
पुरीषं वातविण्मूत्रसंगं कुर्वीत दारुणम् ॥ ४७ ॥
तेन तीव्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत् ।
आध्मानमुदरावेष्टो हृल्लासः परिकर्तनम् ॥ ४८ ॥
बस्तौ च सुतरां शूलं गण्डः श्वयथुसंभवः ।
पवनस्योर्ध्वगामित्वं ततश्छर्द्यरुचिज्वराः ॥ ४९ ॥
हृद्रोगग्रहणीदोषमूत्रसंगप्रवाहिकाः ।
बाधिर्यतिमिरश्वासशिरोरुक्कासपीनसाः ॥ ५० ॥
मनोविकारस्तृष्णास्रपित्तगुल्मोदरादयः ।
ते ते च वातजा रोगा जायंते भृशदारुणाः ॥ ५१ ॥
दुर्नाम्नामित्युदावर्तः परमोऽयमुपद्रवः ।
वाताभिभूतकोष्ठाना[2] तैर्विनाऽपि स जायते ॥ ५२ ॥

अर्शसांसाध्यासाध्यत्वम्—

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरे वलौ ।
स्थितानि तान्यसाध्यानि याप्यतेऽग्निबलादिभिः ॥ ५३ ॥
द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ५४ ॥
बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ५५ ॥

मेढ्रादिगतार्शसांनिर्देशः—

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यते यथास्वं, नाभिजानि तु ।
गंडूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ५६ ॥

१—जूर्णाह्वः "जोवरी" इति लोके । २ तैरर्शोभिः, दुर्नाम अर्शः ।

चर्मकीलोत्पत्तिः—

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तं विदुः ॥ ५७ ॥
वातेन तोदः पारुष्यं पित्तादसितरक्तता ।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५८ ॥

अर्शसांप्रशमे हेतुः—

अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् ।
तान्याशु हि गुदं बद्ध्वा कुर्युर्बद्धगुदोदरम्" ॥ ५९ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारग्रहणीरोगयोर्निदानं व्याख्यास्यामः ।

अतीसारः षड्विधः—

"दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः ।

अतीसारस्यनिदानसम्प्राप्ती—

अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ॥ १ ॥
कृशशुष्कामिषासात्म्यतिलपिष्टविरूढकैः[१] ।
मद्यरूक्षातिमात्रान्नैरर्शोभिः स्नेहविभ्रमात्[२] ॥ २ ॥
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितोऽनिलः ।
विस्रंसयत्यधोऽब्धातुं हत्वा तेनैव चानलम् ॥ ३ ॥
व्यापद्यानुशकृत्कोष्ठं पुरीषं द्रवतां नयन् ।

अतीसारपूर्वरूपम्

प्रकल्पतेऽतिसाराय, लक्षणं तस्य भाविनः ॥ ४ ॥
तोदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रसादो मलग्रहः ।

---

१ अतीसारः—"पतला दस्त" । विरूढकमंकुरितधान्यम् ।
२ स्नेहविभ्रमात्स्नेहपानविधिभ्रंशात् ।

वातजातीसारलक्षणम्—

आध्मानमविपाकश्वतत्र, वातेन विड्जलम् ॥ ५ ॥
अल्पाल्पं शब्दशूलाढ्यं विबद्धमुपवेश्यते ।
रूक्षं सफेनमच्छं च ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥
तथा दग्धगुडाभासं सपिच्छापरिकर्तिकम् ।
शुष्कास्यो भ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा[1] विनिष्टनन् ॥ ७ ॥

पित्तातिसारलक्षणम्—

पित्तेन पीतमसितं हारितं शाद्वलप्रभम् ।
सरक्तमतिदुर्गंधं तृण्मूर्छास्वेददाहवान् ॥ ८ ॥
सशूलपायुसंतापं पाकवान्, श्लेष्मणा घनम् ।

कफातिसारलक्षणम्—

पिच्छिलं तंतुमच्छ्वेतं स्निग्धमामं कफान्वितम् ॥ ६ ॥
अभीक्ष्णं गुरु दुर्गंधं विबद्धमनुबद्धरुक् ।
निद्रालुरलसोऽन्नद्विडल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ॥ १० ॥
सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुबस्तिगुदोदरः ।
कृतेऽप्यकृतसंज्ञश्च, सर्वात्मा सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥

भयातिसार लक्षणम्—

भयेनक्षोभिते चित्ते सपित्तो द्रावयेच्छकृत् ।
वायुस्ततोऽतिसार्येत क्षिप्रमुष्णं द्रवं प्लवम् ॥ १२ ॥
वातपित्तसमं लिंगैराहुस्तद्वच्च शोकतः ।

अतिसारस्यद्वैविध्यम्—

अतीसारः समासेन द्विधा सामो निरामकः ॥ १३ ॥

आमनिरामपुरीषलक्षणम्—

सासृद्निरस्रः तत्राद्ये गौरवादप्सु मज्जति ।
शकृद्दुर्गंधमाटोपविष्टंभार्तिप्रसेकिनः ॥ १४ ॥
विपरीतो निरामस्तु कफात्पक्वोऽपि मज्जति ।

१—विनिष्टनन् विनिःश्वसन्

ग्रहणी रोगलक्षणम्—

अतीसारेषु यो नातिमरन्तवान् ग्रहणीगदः ॥ १५ ॥
तस्य स्यादग्निविध्वंसकरैरत्यर्थसेवितैः ।

अतिसारग्रहणीरोगयोर्भेदः—

मामं शकृन्निरामं वा जीर्णं येनातिसार्यते ॥ १६ ॥
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ।
मामं सान्नमजीर्णेऽन्ने जीर्णे पक्वं तु नैव वा ॥ १७ ॥
अकस्माद्वा मुहुर्बद्धमकस्माच्छिथिलं मुहुः ।
चिरकृद्ग्रहणीदोषः संचयाच्चोपवेशयेत् ॥ १८ ॥

ग्रहणी रोगस्यचातुर्विध्यम्—

स चतुर्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ।

ग्रहणीरोगस्य पूर्वरूपम्—

प्राग्रूपं तस्य सदनं चिरात्पचनमम्लकः ॥ १९ ॥
प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट् क्लमो भ्रमः ।
आनद्धोदरता छर्दिः कर्णक्ष्वेडोऽन्त्रकूजनम् ॥ २० ॥

ग्रहणीरोगस्यसामान्यलक्षणम्—

सामान्यं लक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः ।
मूर्च्छा शिरोरुग्विष्टंभ श्वयथु करपादयोः ॥ २१ ॥

वातजग्रहणीलक्षणम्—

तत्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।
पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुजाऽभीक्ष्णं विसूचिका ॥ २२ ॥
रसेषु [1]गृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णा परिकीर्तिता ।
जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं समश्नुते ॥ २३ ॥
वातहृद्रोगगुल्मार्शःप्लीहपाण्डुत्वशङ्कितः ।

१—गृद्धिराकाङ्क्षा ।

चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥२४॥
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः पायुरुक्श्वासकासवान् ।

पित्तजग्रहणीलक्षणम्—

पित्तेन नीलं पीताभं पीताभः सृजति द्रवम् ॥२५॥
पूत्यम्लोद्गारहृत्कंठदाहारुचितृडर्दितः ।

कफजग्रहणी लक्षणम्—

श्लेष्मणा पच्यते दुःखमन्नं छर्दिररोचकः ॥२६॥
आस्योपदेहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः ।
हृदयं मन्यते [1]स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥२७॥
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ।
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम् ॥२८॥
अकृशस्यापि दौर्बल्यम्, सर्वजे सर्वसंकरः ।

विषमाद्यग्निर्ग्रहणीरोगः—

विमार्गेऽग्नस्य ये चोक्ता विषमाद्यास्त्रयोऽग्नयः ॥२९॥
तेऽपि स्युर्ग्रहणीदोषाः, समस्तु स्वास्थ्यकारणम् ।

अष्टौ महारोगाः—

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः" ॥३०॥

नवमोऽध्यायः

अथातो मूत्राघातनिदानं व्याख्यास्यामः

बस्त्यादय एकसम्बन्धनाः—

"वस्तिर्बस्तिशिरो मेढ्रं कटी वृषणपायवः ।
एकसंबन्धनाः प्रोक्ता गुदास्थिविवराश्रयाः ॥१॥

१—स्त्यानं पिण्डितमिव ।

मूत्राघातोत्पत्तौ कारणम्—

अधोमुखोऽपि वस्तिर्हि मूत्रवाहिसिरामुखैः ।
पार्श्वेभ्यः पूर्यते सूक्ष्मैः स्यन्दमानैरनारतम् ॥२॥
यैस्तैरेव प्रविश्यैनं दोषाः कुर्वन्ति विंशतिम् ।
मूत्राघातान् प्रमेहांश्च कृच्छ्रान्मर्मसमाश्रयान् ॥३॥
वस्तिवंक्षणमेढ्रार्तियुक्तोऽल्पाल्पं मुहुर्मुहुः ।
मूत्रयेद्वातजे कृच्छ्रे, पैत्ते पीतं सदाहरुक् ॥४॥
रक्तं वा, कफजे वस्तिमेढ्रगौरवशोफवान् ।
सपिच्छं सविबन्धं च, सर्वैः सर्वात्मकं मलैः ॥५॥

अश्मरीलक्षणम्—

यदा वायुर्मुखं वस्तेरावृत्य परिशोषयेत् ।
मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात् ॥६॥
सजायतेऽश्मरी घोरा पित्ताद्गोरिव रोचना ।
श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यात्, अथाऽस्याः पूर्वलक्षणम् ॥७॥

अश्मर्याः पूर्वरूपम्—

बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ।
मूत्रे च बस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥८॥

अश्मर्याः सामान्यलक्षणम्

सामान्यलिङ्गं रुङ् नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु ।
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥९॥
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ।
तत्संक्षोभात् क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥१०॥

वाताश्मरीलक्षणम्—

तत्र वाताद्भृशार्त्तो दन्तान् खादति वेपते ।
मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥११॥

---

१ विंशतिं मूत्राघातान् प्रमेहांश्च । मर्मेति वस्तिरूपंमर्म समाश्रयो येषांतान् ।

सानिलं मुंचति शकृन्मुहुर्मेहति विदुशः ।
श्यावा रूक्षाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कंटकैरिव ॥१२॥

पित्ताश्मर्यालक्षणम्—

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी ॥१३॥

कफाश्मर्यालक्षणम्

वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ।
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ॥१४॥

अश्मरीत्रयाणां बालेष्वेवोत्पत्ति :—

एता भवंति बालानां तेषामेव च भूयसा ।
[1]आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ॥१५॥

शुक्राश्मरी लक्षणम्

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।
स्थानाच्युतममुक्तं हि मुष्कयोरंतरेऽनिलः ॥१७॥
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ।
बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी ॥१७॥
[2]तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्, अश्मर्येव च शर्करा ॥१८॥

शर्करानिर्देश :—

अणुशो वायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमगे ।
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ॥१९॥

---

१ आश्रयमाधारो वस्तिरित्यर्थः, उपचयोऽश्मर्याः स्थौल्यं तयोरल्पत्वाद् ग्रहणे वडिशादिना, आहरणे शस्त्रादिनाचसुखाः सुखोपाया इत्यर्थः । २ तस्यामश्मर्यामुत्पन्नमात्रायां न चिरकालोत्पन्नायामस्मिन्नवकाशे शुक्राश्मरीस्थाने पीडिते शुक्रमेतिवर्त्तत्यागच्छतिवा ।

वातबस्तिलक्षणम्

मूत्रसंधारिणः कुर्याद्रुद्ध्वा बस्तेर्मुखं मरुत् ।
मूत्रसंगं रुजं कंडूं कदाचिच्च स्वधामतः ॥२०॥
प्रच्याव्य बस्तिमुद्वृत्तं गर्भाभं स्थूलविप्लुतम् ।
करोति तत्र रुग्दाहस्पंदनोद्वेष्टनानि च ॥२१॥
बिंदुशश्च प्रवर्तेत मूत्रं बस्तौ तु पीडिते ।
धारया द्विविधोऽप्येष वातबस्तिरिति स्मृतः ॥ २२ ॥
[1]दुस्तरो दुस्तरतरो, द्वितीयः प्रबलानिलः ।

वाताष्ठीलालक्षणम्—

शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः ॥ २३ ॥
अष्ठीलाभं घनं ग्रंथिं करोत्यचलमुन्नतम्
वाताष्ठीलेति साऽऽध्मानविण्मूत्रानिलसंगकृत् ॥२४॥

वातकुंडलिका लक्षणम्—

विगुणः कुंडलीभूतो बस्तौ तीव्रव्यथोऽनिलः ।
आविश्य मूत्रं भ्रमति सस्तंभोद्वेष्टगौरवः ॥२५॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा विमुंचति शकृज्जम् ।

मूत्रातीत लक्षणम्—

वातकुंडलिकैरेषा, मूत्रं तु विधृतं चिरम् ॥२६॥
न निरेति विबद्धं वा मूत्रातीतं तदल्परुक् ।

मूत्रजठर लक्षणम्—

विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तितं यदा ॥२७॥
नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्तदा ।
कुर्यात्तीव्ररुगाध्मानमपवितमलग्रहम् ॥२८॥

---

१ उद्वृत्तमूर्ध्वमुखम् । विप्लुतं चलनम् । २ प्रथमो दुस्तरः कृच्छ्रसाध्यः, द्वितीयो यत्रमूत्रस्य बिंदुशः प्रवर्तनं, दुस्तरतरः ।

मूत्रोत्संगलक्षणम्—

तन्मूत्रजठरम्, छिद्रवैगुण्येनानिलेन वा ।
आक्षिप्तमल्पं मूत्रं तु बस्तौ नालेऽथवा मणौ[१] ॥२९॥
स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्सरुजं वाऽथवाऽरुजम् ।
मूत्रोत्संगः स विच्छिन्नतच्छेषगुरुशेफसः ॥३०॥

मूत्रग्रंथिलक्षणम्—

अंतर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुक् ग्रंथिर्मूत्रग्रंथिः स उच्यते ॥३१॥

मूत्रशुक्रलक्षणम्—

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥३२॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

विड्विघातलक्षणम्—

रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा ॥ ३२ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपर्येति संसृष्टं शकृता तदा ।
मूत्रं विट्तुल्यगंधं स्याद्विड्विघातं तमादिशेत् ॥ ६४ ॥

उष्णवातलक्षणम्—

पित्तं व्यायामतीक्ष्णोष्णभोजनाध्वातपादिभिः ।
प्रवृद्धं वायुना क्षिप्तं बस्तुपस्थातिदाहवत् ॥ ३५ ॥
मूत्रं प्रवर्तयेत्पीत सरक्तं रक्तमेव वा ।
उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्रादुष्णवातं वदंति तम् ॥ ३६ ॥

मूत्रक्षयलक्षणम्—

रूक्षस्य क्लांतदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ ३७ ॥

---

१ नालेशिश्नदण्डे, मणौ शिश्नाग्रे । २ उष्णवात एव प्राचीनम (सुज़ाक) इति हि० ।

मूत्रसादलक्षणम्—

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ।
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ ३८ ॥
सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदंति तम् ॥ ३९ ॥

मूत्रातिप्रवृत्तिजरोगलक्षणमिमे—

इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राऽप्रवृत्तिजा-
निदानलक्षणैरूर्ध्वं वक्ष्यंतेऽतिप्रवृत्तिजाः" ॥ ४० ॥

दशमोऽध्यायः

अथाऽतः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः ।

विंशतिः प्रमेहाः—

"प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश, पित्ततः :
षट्, चत्वारोऽनिलात्, तेषां मेदोमूत्रकफावहम् ॥१॥

प्रमेहाणामुत्पादकादि—

अन्नपानक्रियाजातं यत्प्रायं [१]तत्प्रवर्तकम् ।
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम् ॥२॥
नवधान्यसुरानूपमांसेक्षुगुडगोरसम् ।
एकस्थानासनरतिः शयनं विधिवर्जितम् ॥३॥

कफजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

बस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान् दूषितः कफः ।
दूषयित्वा वपुः क्लेदस्वेदमेदोरसामिषम् ॥४॥

---

१ तेषां प्रमेहाणां । मेदोमूत्रकफकरं यदन्नपानक्रियाजातं तदन्नादि तत्प्रवर्तकम् प्रमेहोत्पादकम् । क्रिया विहारः ।

पित्तजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम् ।

वातजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

धातून् बस्तिमुपानीय तत्क्षयेऽपि च मारुतः ॥५॥

साध्यासाध्यविभागः—

साध्ययाप्यपरित्याज्या मेहास्तेनैव तद्भवाः ।
[1]समासमक्रियतया महात्ययतयाऽपि च ॥६॥

प्रमेहस्य सामान्यलक्षणम्—

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

प्रमेहाऽनेकत्वेहेतुः—

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥७॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ।

कफजादशमेहाः—

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥८॥
मेहत्युदकमेहेन किंचिच्चाविलपिच्छिलम् ।
इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥९॥
सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेही प्रमेहति ।
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥१०॥
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ।

---

१ समक्रियया कफमेहः साध्यः । असम (विषम) क्रियया पित्तमेहो याप्यः, वातमेहो महात्ययतया शीघ्रविनाशकतया परित्याज्यः । तत्र कफमेहे कफस्य तथा दूष्यस्य शरीरक्लेदादेश्चापतर्पणरूपा समा क्रिया । पित्तमेहे पित्तस्य शीतमधुरादि क्रियादूष्यस्य विरुद्धत्वादसमा विषमेत्यर्थः । वातमेहे रूक्षतीक्ष्णादिकं दूष्यक्रिया वातस्य च स्निग्धमधुरादिकं सन्तर्पणरूपा क्रिया तदेवं विरुद्धक्रियत्वाद्वातमेहो

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ ११ ॥
मूत्रयन्मूत्रं सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ।
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ १२ ॥
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ।
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १३ ॥

पित्तजाः षट् प्रमेहाः—

गंधवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ।
नीलमेहेन नीलाभं, कालमेही मषीनिभम् ॥ १४ ॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ।
विस्रं मांजिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ॥ १५ ॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ।

चत्वारो वातजप्रमेहाः—

वसामेही वसामिश्रं वसां वा मूत्रयेन्मुहुः ॥ १६ ॥
मज्जानं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ।
हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ १७ ॥
सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ।

मधुमेहस्य द्वैविध्यम्—

मधुमेहो मधुसमम् जायते स किल द्विधा ॥ १८ ॥
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायो दोषावृतपथेऽथवा ।
आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥
क्षीणः क्षणात्क्षणात् पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ।

उपेक्षया सर्वेषांमधुमेहत्वम्—

कालेनोपेक्षिताः सर्वे यान्ति मधुमेहताम् ॥ २० ॥
मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥२१॥

प्रमेहोपद्रवाः—

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ।

उपद्रवाःप्रजायंते मेहानां कफजन्मनाम् ॥२२॥
बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।
दाहस्तृष्णाम्लकं मूर्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥२३॥
वातिकानामुदावर्तकंठहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥२४॥

प्रमेहिणां दश पिटिकाः—

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥२५॥
विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।
संधिमर्मसु जायंते मांसलेषु च धामसु ॥२६॥
अंतोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरुजान्विता ।
शरावमानसंस्थाना पिटिका स्याच्छराविका ॥२७॥
अवगाढातिनिस्तोदा महावास्तुपरिग्रहा ।
श्लक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिटिका कच्छपी मता ॥२८॥
स्तब्धा सिराजालवती स्निग्धस्रावा महाशया ।
रुजानिस्तोदबहुला सूक्ष्मच्छिद्रा च जालिनी ॥२९॥
अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।
महती पिटिका नीला विनता स्मृता ॥ ३० ॥
दहति त्वचमुत्थाने भृशं कष्टा विसर्पिणी ।
रक्तकृष्णातितृट्स्फोटदाहमोहज्वराऽलजी ॥३१॥
मानसंस्थानयोस्तुल्या मसूरेण मसूरिका ।
सर्षपामानसंस्थाना क्षिप्रपाका महारुजा ॥३२॥
सर्षपा सर्षपातुल्यपिटिकापरिवारिता ।
पुत्रिणी महती भूरिसूक्ष्मपिटिकावृता ॥३३॥
विदारीकंदवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ।

पिटिकानांसाध्यत्वादि—

विद्रधिर्वक्ष्यतेऽन्यत्र, तत्राद्यं पिटिकात्रयम् ॥३४॥

पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः ।
मह्याः पित्तोल्बणास्त्वन्याः संभवंत्यल्पमेदसः ॥३५॥

तासु मेहवशाद्दोषोद्रेकः—

[1]तासु मेहवशाच्च स्याद्दोषोद्रेको यथायथम् ।
प्रमेहेण विनाप्येता जायंते दुष्टमेदसः ।
तावच्च नोपलक्ष्यंते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥३६॥

रक्तपित्तप्रमेहयोर्भेदः—

हारिद्रवर्णं रक्तं वा मेहप्राग्रूपवर्जितम् ।
यो मूत्रयेन्न तं मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः ॥३७॥

प्रमेहाणां पूर्वरूपम्—

स्वेदोऽगगंधः शिथिलत्वमंगे
शय्यासनस्वप्नसुखाभिषंगः ।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो
घनांगता केशनखातिवृद्धि ॥३८॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो
माधुर्यमास्ये करपाददाह ।
[2]भविष्यतो मेहगणस्य रूपं
मूत्रेऽभिधावति पिपीलिकाश्च ॥३९॥

प्रमेहे द्विविधो विचारः—

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं
मधूपमं स्याद् द्विविधो विचारः ।
संतर्पणाद्वा कफसंभवः स्यात्
क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥४०॥

---

१ तासुपिडकासु । यो मेहो यद्दोषजस्तत्पिडकापि तद्दोषजा । २ यद्यपि निदानानंतरं पूर्वरूपं वक्तव्यं तथापि निदानलक्षणानंतरमत्र निदानलिंगयोश्चिकित्सांगत्वप्रतिपादनार्थं त्वनयोः पूर्वमभिधानम् । अथवा । अवश्यं च वक्तव्यानां यामचारमभिधानम् । एवमन्यत्रापि व्यतिक्रमे द्रष्टव्यम् । इति मधुकोशभाष्ये ।

मेदसोनातिदुष्टत्वे प्रमेहाणांसाध्यत्वम्—

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः
क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः।
साध्या न ते, पित्तकृतास्तु याप्याः
साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम्" ॥४१॥

एकादशोऽध्यायः।

अथातो विद्रधिवृद्धिगुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः।

विद्रधेःषड्विधत्वम्—

"भुक्तैः पर्युषितात्युष्णरूक्षशुष्कविदाहिभिः।
जिह्मशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः ॥१॥
दुष्टत्वङ्मांसमेदोस्थिस्नावासृक्कण्डराश्रयः।
यः शोफो बहिरन्तर्वा महामूलो महारुजः ॥ २ ॥
वृत्तः स्याद्दायतो यो वा स्मृतः षोढा स विद्रधिः[1]।
दोषैः पृथक्समुदितैः शोणितेन क्षतेन च ॥ ३॥

पण्णांपुनर्द्वैविध्यम्—

बाह्योऽत्र तत्रतत्राङ्गे दारुणो ग्रथितोन्नतः।
आंतरो दारुणतरो गंभीरो गुल्मवद्धनः ॥ ४ ॥
वल्मीकवत्समुच्छ्रायो शीघ्रघात्यग्निशस्त्रवत्।

उत्पत्तिस्थानम्—

नाभिबस्तियकृत्प्लीहक्लोमहृत्कुक्षिवंक्षणे ॥ ५ ॥
स्याद्वृक्कयोरपाने च, वातात्तत्रातितीव्ररुक्।

१-विद्रधिः 'जहरबाद फोड़ा'।

वातजलक्षणम्—

श्यावारुणश्चिरोत्थानपाको विषमसंस्थितिः ॥ ६ ॥
व्यधच्छेदभ्रमानाहस्पन्दसर्पणशब्दवान् ।

पित्तजलक्षणम्—

रक्तताम्रासितः पित्तात्तृण्मोहज्वरदाहवान् ॥ ७ ॥
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च पाण्डुः कण्डुयुतः कफात् ।

कफजलक्षणम्—

सोत्क्लेशशीतकस्तंभजृंभारोचकगौरवः ॥ ८ ॥
चिरोत्थानविदाहश्च, संकीर्णः सन्निपाततः ।
[1]सामर्थ्याच्चात्र विभजेद्बाह्याभ्यंतरलक्षणम् ॥ ९ ॥

रक्तजलक्षणम्—

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ।
पित्तलिंगोऽसृजा बाह्यः स्त्रीणामेव तथान्तरः ॥ १० ॥

क्षतविद्रधिलक्षणम्—

शस्त्राद्यैरभिघातेन क्षते वाऽपथ्यकारिणः ।
क्षतोष्मा वायुविक्षिप्तः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥११॥
पित्तासृग्लक्षणं कुर्याद्विद्रधिं भूर्युपद्रवम् ।

विद्रधिषुउपद्रवविशेषः—

तेषूपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः ॥ १२ ॥

आभ्यन्तरविद्रधावधिष्ठानभेदेन विशेषलक्षणम्—

नाभ्यां हिध्मा, भवेद्बस्तौ मूत्रं कृच्छ्रेण पूति च ।
श्वासो यकृति, रोधस्तु [2]प्लीह्न्युच्छ्वासस्य, तृट् पुनः ॥१३॥
गलग्रहश्च क्लोम्नि, स्यात्सर्वांगप्रग्रहो हृदि ।

---

१ सामर्थ्यात्-शक्तेः पूर्वोक्ताद्धारणात्तरत्वादिलक्षणादित्यर्थः । २ प्लीह्नि उच्छ्वासस्यरोधः ।

प्रमोहस्तमकः कासो हृदये घट्टनं व्यथा ॥१४॥
कुक्षिपार्श्वान्तरांसार्तिः कुक्ष्याटोपजन्म च ।
सक्थ्नोर्ग्रहो वंक्षणयोः, वृक्कयोः कटिपृष्ठयोः ॥१५॥
पार्श्वयोश्च व्यथा, पायौ पवनस्य निरोधनम् ।

तेषामामत्वादि—

आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोफवदादिशेत् ॥१६॥

तेषां स्रावः—

नाभेरूर्ध्वं मुखात्पक्वाः, प्रस्रवंत्यधरे गुदात् ।
उभाभ्यां नाभिजो विद्याद्दोषं क्लेदाच्च विद्रधौ ॥१७

दोषज्ञानम्—

यथास्वं व्रणवत्, तत्र विवर्ज्यः सन्निपातजः ।

साध्यासाध्यविभागः—

पक्वो हृन्नाभिबस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव वा ॥१८॥
पक्वश्चातः स्रवन्वक्त्रात्, क्षीणस्योपद्रवान्वितः ।

स्त्रीणांस्तनविद्रधिः—

एवमेव स्तनसिरा विवृताः प्राप्य योषिताम् ॥१९॥
सूतानां गर्भिणीनां वा संभवेच्छ्वयथुर्घनः ।
स्तने सदुग्धेऽदुग्धे वा बाह्यविद्रधिलक्षणः ॥२०॥
नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात्कन्यानां तु न जायते ।

[२]वृद्धिनिर्देशः—

क्रुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन् ॥२१॥
मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ।
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥२२॥
दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ।

२ वृद्धिः, अण्डवृद्धिरोगः ।

मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥२३॥
वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ।
पक्वोदुंबरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥२४॥
कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंडूमान् कठिनोऽल्परुक् ।
कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगश्च रक्ततः ॥२५॥
कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ।
मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ॥२६॥
अंभोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ।
मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च[1] वलयं फलकोशयोः ॥२७॥

अन्त्रवृद्धिः—

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः ॥२८॥
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ।
कुर्याद्वंक्षणसंधिस्थो ग्रंथ्याभं श्वयथुं तदा ॥२९॥
उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि-
[2]माध्मानरुक्स्तंभवतीं स वायुः ।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति
प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥३०॥
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ।

[3]गुल्मलक्षणम्—

रूक्षकृष्णारुणसिरातंतुजालगवाक्षितः ॥३१॥
गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतैः ।
आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥३२॥

---

१ मूत्रकृच्छ्रंस्यात्फलकोषयोरधस्ताच्च वलयकंटकंस्यात् । २ उपेक्ष्यमाणस्याचिकित्स्यमानस्यवायुराध्मानादिमतीं मुष्कवृद्धिंकुर्यात् । ३ गुल्मः (वायगोला) हि० ।

गुल्मनिदानम्—

ज्वरच्छर्द्यतिसाराद्यैर्वमनाद्यैश्च कर्मभिः ।
कर्शितो वातलान्यत्ति शीतं वाम्बु बुभुक्षितः ॥३३॥
यः पिबत्यनु चान्नानि लंघनं प्लवनादिकम् ।
सेवते देहसंक्षोभिश्छर्दिं वा समुदीरयेत् ॥३४॥
अनुदीर्णामुदीर्णान्वा वातादीन् विमुंचति ।
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोधनं वा निषेवते ॥३५॥
शुद्धो वाऽऽशु विदाहीनि भजते स्यन्दनानि वा ।
वातोल्बणास्तस्य मलाः पृथक् क्रुद्धा द्विशोऽथवा ॥३६॥
सर्वे वा रक्तयुक्ता वा महास्रोतोऽनुशायिनः ।
ऊर्ध्वाधोमार्गमावृत्य कुर्वते शूलपूर्वकम् ॥३७॥
स्पर्शोपलभ्यं गुल्माख्यमुत्प्लुतं ग्रथिरूपिणम् ।
कर्शनात्कफविट्पित्तमार्गस्यावरणेन वा ॥३८॥
वायुः कृताशयः कोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः ।
स्वतंत्रः स्वाश्रये दुष्टः परतंत्रः पराश्रये ॥३९॥
पिंडितत्वादमूर्तोऽपि मूर्तत्वमिव संश्रितः ।
गुल्म इत्युच्यते बस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः ॥ ४० ॥

वातगुल्मलक्षणम्—

वातान्मन्याशिरः शूलं ज्वरप्लीहान्त्रकूजनम्
व्यधः सूच्येव विट्संगः कृच्छ्रादुच्छ्वसनं मुहुः ॥४१॥
स्तंभो गात्रे मुखे शोषः कार्श्यं विषमवह्निता ।
रूक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च ॥४२॥
अनिरूपितसंस्थानस्थानवृद्धिक्षयव्यथः ।
पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति तुद्यते ॥४३॥

पित्तगुल्मलक्षणम्—

पित्ताद्दाहोऽम्लको मूर्छाविड्भेदस्वेदतृड्ज्वराः
हारिद्रत्वं त्वगाद्येषु गुल्मश्च स्पर्शनासहः ॥४४॥

दूयते दीप्यते सोष्मा स्वस्थानं दहतीव च ।

कफगुल्मलक्षणम्—

कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिशिरज्वरः ॥४५॥
पीनसालस्यहृल्लासकासशुक्लत्वगादिताः ।
गुल्मोऽवगाढः कठिनो गुरुः सुप्तः स्थिरोऽल्परुक् ॥४६॥
स्वदोषस्थानधामानः स्वे स्वे काले च रुक्कराः ।
प्रायः, त्रयस्तु द्वंद्वोत्था गुल्माः संसृष्टलक्षणाः ॥४७॥
सर्वजस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः ।

रक्तगुल्मलक्षणम्—

सोऽसाध्यो, रक्तगुल्मस्तु स्त्रियाएव प्रजायते ॥४८॥
ऋतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी ।
सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्या समीरणः ॥४९॥
निरुणद्ध्यार्तवं योन्यां प्रतिमासमवस्थितम् ।
कुक्षिं करोति तद्गर्भलिंगमाविष्करोति च ॥५०॥
हृल्लासदोहृदस्तन्यदर्शनं क्षामतादिकम् ।
क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत् ॥५१॥
शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजाम् ।
रुक्स्तंभदाहातीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ॥५२॥
गर्भाशये च सुतरां शूलं दुष्टासृगाश्रये ।
योन्याश्च स्रावदौर्गंध्यतोदस्पंदनवेदनाः ॥५३॥
न चांगैर्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान् ।
पिंडीभूतः स एवास्याः कदाचित्स्पंदते चिरात् ॥५४॥
न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते ।

गुल्मविद्रध्योर्लक्षणभेदः—

स्वदोषसंश्रयो गुल्मः गर्वो भवति तेन सः ॥५५॥
पाकं चिरेण भजते नैव वा, विद्रधिः पुनः ।
पच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयत्वतः ॥५६॥

अतः शीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते ।
गुल्मेऽन्तराश्रये बस्तिकुक्षिहृत्प्लीहवेदनाः ॥५७॥
अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम् ।
अतो विपर्ययो बाह्ये कोष्ठांगेषु तु नातिरुक् ॥५८॥
वैवर्ण्यमवकाशस्य बहिरन्ततताऽधिकम् ।

आनाह (अफरा) लक्षणम्—

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम् ॥५९॥
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते ।

प्रत्यष्ठीलालक्षणम्—

घनोऽष्ठीलोपमा ग्रंथिरष्ठीलोर्ध्वं समुन्नतः ॥६०॥
मानाहलिंगस्तिर्यक्तु प्रत्यष्ठीला तदाकृतिः ।

तूनीप्रतून्योर्लक्षणम्—

पक्काशयाद्गुदोपस्थं वायुस्तीव्ररुजः प्रयात् ।
तूनी, प्रतूनी तु भवेत्स एवातो विपर्यये ॥६१॥

गुल्मपूर्वरूपम्—

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
साटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिमासन्नगुल्मस्य वदंति चिह्नम्" ॥६२॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथाऽत उदरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

उदररोगसम्प्राप्तिः—

"रोगाः सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि तु ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायंते मलसंचयात् ॥१॥

ऊर्ध्वाधो धातवो रुद्ध्वा वाहिनीरम्बुवाहिनीः ।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य कुर्युस्त्वङ्मांससंधिगाः ॥२॥

उदरस्याष्टौ भेदाः—

आध्माप्य कुक्षिमुदरम्, अष्टधा तच्च भिद्यते ।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥३॥

उदरपीडितानां लक्षणम्—

तेनार्ताः शुष्कताल्वोष्ठाः शूनपादकरोदराः ।
नष्टचेष्टाबलाहाराः कृशाः प्रध्मातकुक्षयः ॥४॥

उदररोगपूर्वरूपम्—

स्युः प्रेतरूपाः पुरुषा, भाविनस्तस्य लक्षणम् ।
क्षुन्नाशोऽन्नं चिरात्सर्वं सविदाहं च पच्यते ॥५॥
जीर्णाजीर्णं न जानाति सौहित्यं सहते न च ।
क्षीयते बलतः शश्वच्छ्वसित्यल्पेऽपि चेष्टिते ॥६॥
वृद्धिर्विशोऽप्रवृत्तिश्च किंचिच्छोफश्च पादयोः ।
रुग्वस्तिसंधौ ततता लघ्वल्पाभोजनैरपि ॥७॥

सामान्यलक्षणम्—

राजीजन्म वलीनाशो जठरे जठरेषु तु ।
सर्वेषु तन्द्रा सदनं मलसंगोऽल्पवह्निता ॥८॥
दाहः श्वयथुराध्मानमन्ते सलिलसंभवः ।

अतोयमुदरम्—

सर्वं त्वतोयमरुणमशोफं नातिभारिकम् ॥९॥
गवाक्षितं सिराजालैः सदा गुडगुडायते ।
नाभिमन्त्रं च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥१०॥
मारुतो हृत्कटीनाभिपायुवंक्षणवेदनः ।
सशब्दो निश्चरेद्वायुर्विड्बंधो मूत्रमल्पकम् ॥११॥
नातिमंदोऽनलो लौल्यं न च स्याद्विरसं मुखम् ।

वातोदरलक्षणम्—

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्मुष्ककुक्षिषु ॥१२॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम् ।
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसंग्रहः ॥१३॥
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ।
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णसिराततम् ॥ १४ ॥
आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ १५ ॥

पित्तोदरलक्षणम्—

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ १६ ॥
पीतताम्रसिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।
धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १७ ॥

कफोदर लक्षणम्—

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम् ।
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १८ ॥
उदरं स्तिमितं श्लक्ष्णं शुक्लराजीततं महत् ।
चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १९ ॥

सन्निपातोदरलक्षणम्—

त्रिदोषकोपनैस्तैस्तैः स्त्रीदत्तैश्च रजोमलैः ।
गरदूषीविषाद्यैश्च सरक्ताः संचिता मलाः ॥ २० ॥
कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाः शोषमूर्च्छाभ्रमान्वितम् ।
कुर्युस्त्रिलिङ्गमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम् ॥ २१ ॥
बाधते तच्च सुतरां शीतवाताभ्रदर्शने ।

प्लीहोदर (बरवट-तिल्ली) लक्षणम्—

अत्याशितस्य संक्षोभाद्यानयानादिचेष्टितैः ॥ २२ ॥
अतिव्यवायकर्माध्वयमनव्याधिकर्शनैः ।

वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानाद्विवर्धते ॥ २३ ॥
शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत् ।
सोऽष्ठीलेवातिकठिनः प्राक्ततः कूर्मपृष्ठवत् ॥ २४ ॥
क्रमेण वर्धमानश्च कुक्षावुदरमावहेत् ।
श्वासकासपिपासास्यवैरस्याध्मानकज्वरैः ॥ २५ ॥
पांडुत्वच्छर्दिमूर्छार्तिदाहमोहैश्च संयुतम् ।
अरुणाभं विवर्णं वा नीलहारिद्रराजिमत् ॥ २६ ॥

प्लीहोदरेवातादिलिङ्गम्—

उदावर्तरुगानाहैः मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २७ ॥

यकृदुदर (जिगर) लक्षणम्—

प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात् कुर्याद्यकृदपि च्युतम् ।

बद्धोदरलक्षणम्—

पक्ष्मवालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे ॥ २८ ॥
दुर्नामभिरुदावर्तैरन्यैर्वान्त्रोपलेपिभिः ।
वर्चःपित्तकफान् रुद्ध्वा करोति कुपितोऽनिलः ॥ २९ ॥
अपानो जठरं तेन स्युर्दाहज्वरतृट्क्षवाः ।
कासश्वासोरुसदन शिरोहृन्नाभिपायुरुक् ॥ ३० ॥
मलसंगोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम् ।
स्थिरं नीलारुणसिराराजिवद्धेमराजि वा ॥ ३१ ॥
नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ।

छिद्रोदरलक्षणम्—

ग्रस्थ्यादिशल्यैः सान्नैश्चैद्भुक्तैरत्यशनेन वा ॥ ३२ ॥
भिद्यते पच्यते वान्त्रं तच्छिद्रैश्च स्रवन्बहिः ।
आम एव गुदादेति ततोऽल्पाल्पं स विड्रसः ॥ ३३ ॥
तुल्यः कुणपगंधेन पिच्छिलः पीतलोहितः ।

दोषश्चापूर्य जठरं जठरं घोरमावहेत् ॥ ३४ ॥
वर्धते तदधो नाभेराशु चैति जलात्मताम् ।
उद्रिक्तदोषरूपं च व्याप्तं च श्वासतृड्भ्रमैः ॥ ३५ ॥
छिद्रोदरमिदं प्राहुः परिस्रावीति चापरे ।
प्रवृत्तस्नेहपानादेः सहसाऽम्बुपायिनः ॥ ३६ ॥

जलोदरलक्षणम्

अत्यंबुपानान्मदाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा ।
रुद्ध्वाऽम्बुमार्गाननिलः कफश्च जलमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥
वर्धयेतां तदेवांबु तत्स्थानादुदराश्रितौ ।
ततः स्यादुदरं तृष्णागुदस्रुतिरुजान्वितम् ॥ ३८ ॥
कासश्वासारुचियुतं नानावर्णसिराततम् ।
तोयपूर्णदृतिस्पर्शशब्दप्रक्षोभवेपथु ॥ ३९ ॥
दकोदरं महस्निग्धं स्थिरमावृत्तनाभि तत् ।

सर्वोदरान्ते जलसम्भवः—

उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः ॥ ४० ॥
पाकाद्द्रवा द्रवीकुर्युः संधिस्रोतोमुखान्यपि ।
स्वेदश्च बाह्यस्रोतःसु विहतस्तिर्यगास्थितः ॥ ४१ ॥
तदेवोदकमाध्माप्य पिच्छां कुर्यात्तदा भवेत् ।
गुरूदरं स्थिरं वृत्तमाहतं च न शब्दवत् ॥ ४२ ॥
मृदु व्यपेतराजीकं नाभ्यां स्पृष्टं च सर्पति ।
तदनूदकजन्मास्मिन्कुक्षिवृद्धिस्ततोऽधिकम् ॥ ४३ ॥
सिराततर्धानमुदकजठरोक्तं च लक्षणम् ।

उदररोगाणां साध्यासाध्यविभागः—

वातपित्तकफप्लीहसंनिपातोदकोदरम् ॥ ४४ ॥
कृच्छ्रं यथोत्तरम्, पक्षात्परं प्रायोऽ[१]परे हतः ।

---

१ अपरे बद्धक्षतोदरे।

सर्वं च जातसलिलं रिष्टोक्तोपद्रवान्वितम् ॥ ४५ ॥

जन्मनैवोदरस्य कृच्छ्रत्वलक्षणम्

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्" ॥ ४६ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः पाण्डुरोगशोफविसर्पनिदानं व्याख्यास्यामः ।

पाण्डुरोगस्य सम्प्राप्तिः—

"पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः ।
तत्रानिलेन बलिना क्षिप्तं पित्तं हृदि स्थितम् ॥ १ ॥
धमनीर्दश संप्राप्य व्याप्नुवत्सकलां तनुम्
श्लेष्मत्वग्रक्तमांसानि प्रदूष्यान्तरमाश्रितम् ॥ २ ॥
त्वङ्मांसयोस्तत्कुरुते त्वचि वर्णान् पृथग्विधान् ।
पाण्डुहारिद्रहरितान् पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम् ॥ ३ ॥
यतोऽतः पाण्डुरित्युक्तः स रोगः, तेन गौरवम् ।

पाण्डुरोगस्यसामान्य लक्षणम्

धातूनां स्याच्च शैथिल्यमोजसश्च गुणक्षयः ॥ ४ ॥
ततोऽल्परक्तमेदस्को निःसारः स्याच्छ्लथेन्द्रियः ।
मृद्यमानैरिवाङ्गैर्ना [1]द्रवता हृदयेन च ॥ ५ ॥
शूनाक्षिकूटः सदनः कोपनः ष्ठीवनोऽल्पवाक् ।
अन्नद्विट् शिशिरद्वेषी शीर्णरोमा हतानलः ॥ ६ ॥
सन्नसक्थो ज्वरी श्वासी कर्णक्ष्वेडी भ्रमी श्रमी ।

---

१ निःसारोऽल्पबलः । द्रवता कम्पमानेन ।

पाण्डुरोगस्यपञ्चविधत्वम्—

स पंचधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात् ॥७॥

पाण्डुरोगस्यपूर्वरूपम्—

प्राग्रूपमस्य हृदयस्पंदनं रूक्षता त्वचि ।
अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पवह्निता ॥८॥

वातजपाण्डुरोगलक्षणम्—

सादः श्रमः, अनिलात्तत्र गात्ररुक्तोदकंपनम् ।
कृष्णरूक्षारुणसिरानखविण्मूत्रनेत्रता ॥९॥
शोफानाहास्यवैरस्यविट्शोषाः पार्श्वमूर्धरुक् ।

पित्तजपाण्डुरोगलक्षणम्—

पित्ताद्धरितपीताभसिरादित्वं ज्वरस्तमः ॥१०॥
तृट्स्वेदमूर्च्छाशीतेच्छा दौर्गन्ध्यं कटुवक्त्रता ।

कफजपाण्डुरोगलक्षणम्—

वर्चोभेदोऽम्लको दाहः, कफाच्छुक्लसिरादिता ॥११॥
तंद्रा लवणवक्त्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः ।

सन्निपातजपाण्डुरोगलक्षणम्—

कासश्छर्दिश्च निचयान्मिश्रलिंगोऽतिदुःसहः ॥१२॥

मृत्तिकाजपाण्डुरोगलक्षणम्—

मृत्कषायाऽनिलं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ।
दूषयित्वा रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं विरूक्ष्य च ॥१३॥
स्रोतास्यपक्वैवापूर्य कुर्याद्रुद्ध्वा च पूर्ववत् ।
पाडुरोगं ततः शूननाभपादास्यमेहनः ॥१४॥
पुरीषं कृमिमन्मुंचेद्भिन्नं सासृक्कफं नरः ।

कामला (कमल-पीलिया)—

यः पांडुरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलाम् ॥१५॥

कोष्ठशाखाश्रयं पित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमावहेत् ।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वङ्नखवक्त्रशकृत्तया ॥१६॥
दाहाविपाकतृष्णावान् भेकाभो दुर्बलेंद्रियः ।

पाण्डुरोगं विनापि कामलोत्पत्तिः—

भवेत्पित्तोल्बणस्यासौ पाडुरोगादृतेपि च ॥१७॥

कुम्भकामलालक्षणम्—

उपेक्षया च शोफाढ्या सा कृच्छ्रा [1]कुंभकामला ।

हलीमकलक्षणम्--

हरितश्यावपीतत्वं पाडुरोगे यदा भवेत् ॥१८॥
वातपित्ताद्भ्रमस्तृष्णा स्त्रीष्वहर्षो मृदुर्ज्वरः ।
तंद्रा बलानलभ्रंशो लोढरं तं हलीमकम् ॥१९॥

शोफ (सूजन) सम्प्राप्तिः--

अलसं चेति शंसति, तेषा पूर्वमुपद्रवाः ।
शोफप्रधानाः कथिताः स एवातो निगद्यते ॥२०॥
पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टाम् बहिः शिराः ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥२१॥
उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ।

शोफस्यनवविधत्वम्--

सर्वं, हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥२२॥
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ।
द्विधा वा निजमागन्तु सर्वांगैकांगजं च तम् ॥२३॥
पृथून्नतग्रथितताविशेषैश्च त्रिधा विदुः ।
सामान्यहेतुः शोफानां दोषजानां विशेषतः ॥२४॥

शोफस्यविशेषकारणानि—

व्याधिकर्मोपवासादिक्षीणस्य भजतो द्रुतम् ।

१—कुम्भःकोष्ठस्तद्गता कामला ।

अतिमात्रमथान्य[1]स्य गुर्वम्लस्निग्धशीतलम् ॥२५॥
लवणक्षारतीक्ष्णोष्णं शाकांबु स्वप्नजागरम् ।
मृद्ग्राम्यमांसवल्लूरमजीर्णश्रममैथुनम् ॥ २६ ॥
पदातेर्मार्गगमनं यानेन क्षोभिणाऽपि वा ।
श्वासकासातिसारार्शोजठरप्रदरज्वराः ॥ २७ ॥
विषूच्यलसकच्छर्दिगर्भवीसर्पपाण्डवः ।
अन्ये च मिथ्योपक्रान्तास्तैर्दोषा वक्षसि स्थिताः ॥ २८ ॥
ऊर्ध्वं शोफमधोवस्तौ मध्ये कुर्वंति मध्यगाः ।
सर्वांगगाः सर्वगतं प्रत्यंगेषु तदाश्रयाः ॥ २९ ॥

शोफस्यपूर्वरूपम्—

तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौरवम् ।

वातजशोफलक्षणम्—

वाताच्छोफश्चलो रूक्षः खररोमारुणासितः ॥ ३० ॥
संकोचस्पंदहर्षार्तितोदभेदप्रसुप्तिमान् ।
क्षिप्रोत्थानशमः शीघ्रमुन्नमेत्पीडितस्तनुः ॥ ३१ ॥
स्निग्धोष्णमर्दनैः शाम्येद्रात्रावल्पो दिवा महान् ।
त्वक् च सर्षपलिप्तेव तस्मिश्चिमिचिमायते ॥ ३२ ॥

पित्तजशोफलक्षणम्—

पीतरक्तासिताभासः पित्तादाताम्ररोमकृत् ।
शीघ्रानुसारप्रशमो मध्ये प्राग्जायते तनुः ॥ ३३ ॥
सतृड्दाहज्वरस्वेदद्रवक्लेदमदभ्रमः ।
शीताभिलाषी विड्भेदी गंधी स्पर्शासहो मृदुः ॥ ३४ ॥

कफजशोफलक्षणम्—

कंडूमान् पांडुरोमत्वक्कठिनः शीतलो गुरुः ।
स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः स्त्यानो निद्राच्छर्द्यग्निसादकृत् ॥ ३५ ॥

---

१ व्याध्यातिक्षीणस्य गुर्वादिकंदुतभजतस्तथा ग्रन्यस्य-स्वस्थादेरपि अतिमात्रंगुर्वादिरम्भजतः ।

[1]आक्रांतो नोन्नमेत्कृच्छ्रशमजन्मा निशाबलः ।
स्रवेन्नासकृचिराच्चिद्धा कुशशस्त्रादिविक्षतः ॥ ३६ ॥
स्पर्शोष्णकांक्षी च कफात्, यथास्वं द्वंद्वजास्त्रयः ।
संकराद्धेतुलिंगानाम्, निचयान्निचयात्मकः ॥ ३७ ॥

अभिघातजशोफलक्षणम्—

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ३८ ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ ३९ ॥

विषजशोफलक्षणम्—

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ।
दंष्ट्रादतनखापातादविषप्राणिनामपि ॥ ४० ॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् ।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ ४१ ॥
मृदुश्चलोऽवलंबी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ।

शोफस्यसाध्यासाध्यत्वम्—

नवोऽनुपद्रवः शोफः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ ४२ ॥

विसर्प निर्देशः—

स्याद्विसर्पोऽभिघातान्तैर्दोषैर्दूष्यैश्च शोफवत् ।
अधिष्ठानं च तं प्राहुर्बाह्यान्तरुभयाश्रयात् ॥ ४३ ॥

विसर्पे दोषाणां विसर्पणम्—

यथोत्तरं च दुसाध्याः, तत्र दोषा यथायथम् ।
प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः ॥ ४४ ॥
देहे शीघ्रं विसर्पन्ति तेऽन्तरन्तःस्थिता, बहिः ।
बहिःस्था, द्वितये द्विस्थाः विद्यात्तत्रांतरात्ययम् ॥४५॥

१—आक्रान्तः-अङ्गुल्यादिना पीडितः ।

अन्तर्बहिराश्रयविसर्पस्यवेदनाप्रकारादि—

मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात् ।
तृष्णातियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥४६॥
आशु चाग्निबलभ्रंशादतो बाह्यं विपर्ययात् ।

वातजादिविसर्पलक्षणम्—

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥४७॥
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ।
पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥४८॥
कफात्कंडूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।

उपेक्षायांविसर्पस्यस्फोटयुतत्वम्—

स्वदोषलिंगैश्चीयंते सर्वे स्फोटैरुपेक्षिताः ॥४९॥
ते पक्वभिन्नाः स्वं स्वं च बिभ्रति व्रणलक्षणम् ।

अग्निविसर्पलक्षणम्—

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्छातीसारतृड्भ्रमैः ॥५०॥
अस्थिभेदाग्निमदनतमकारोचकैर्युतः ।
करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकीर्णवत् ॥५१॥
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ।
शांतांगारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते ॥५२॥
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं च सः ।
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥५३॥
व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ।
हिध्मां च, स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना ॥५४॥
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ।
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम् ॥५५॥
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ।

ग्रंथिविसर्पलक्षणम्—

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥५६॥

रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्सिरास्नायुमांसगम् ।
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥५७॥
ग्रंथीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ।
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥५८॥
मोहवैवर्ण्यमूर्छाङ्गभंगाग्निसदनैर्युताम् ।
इत्ययं ग्रंथिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥५९॥

कर्दमविसर्पलक्षणम्—

कफपित्ताज्ज्वरःस्तंभो निद्रातंद्राशिरोरुजः ।
अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥६०॥
मूर्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेंद्रियगौरवम् ।
[1]आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥६१॥
प्रायेणामाशये गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ।
पिटकैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपाण्डुरैः ॥६२॥
मेचकाभोऽसितस्निग्धो मलिनः शोफवान् गुरुः ।
गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥६३॥
पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुसिरागणः ।
शवगंधिश्च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥६४॥

सर्वजविसर्पलक्षणम्—

सर्वजो लक्षणैः सर्वैः सर्वधात्वतिसर्पणः ।

क्षतजविसर्प लक्षणम्

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयम् ॥ ६५ ॥
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशैश्चितम् ।
स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यं श्यावलोहितम् ॥ ६६ ॥

विसर्पाणां साध्यासाध्यविभागः—

पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वंद्वजाश्चानुपद्रवाः ।

१—आमोपवेशनमामवर्चस्त्यागः । स विसर्पः ।

भवत्यतो हतसर्वेन्द्रियो गर्भे नाशाभिसर्पणः ॥ ६७ ॥
शीर्णस्नायुसिरामांसः प्रक्लिन्नः शवगन्धवान् ।"

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठश्वित्र (सफेददोड़दाग) कृमिनिदानं व्याख्यामः ।

कुष्ठनिदानम्

"मिथ्याहारविहारेण विशेषेण विरोधिना ।
साधुनिन्दावधान्यस्वहरणाद्यैश्च सेवितैः ॥ १ ॥
पाप्मभिः कर्मभिः सद्यःप्राक्तनैः प्रेरिता मलाः ।
सिराः प्रपद्य तिर्यग्गास्त्वग्लसीका सृगामिषम् ॥ २ ॥
दूषयंति श्लथीकृत्य निश्चरंतस्ततो बहिः ।
त्वचः कुर्वंति वैवर्ण्यं दुष्टाः [1]कुष्ठमुशंति तत् ॥ ३ ॥

कुष्ठसंज्ञायांहेतुः—

कालेनोपेक्षितं यस्मात्सर्वं कुष्णाति तद्वपुः ।
प्रपद्य धातून्व्याप्यांतः सर्वान् संक्लेद्य, चावहेत् ॥ ४ ॥
सस्वेदक्लेदसंकोथान् कृमीन्सूक्ष्मान्सुदारुणान् ।
रोमत्वक्स्नायुधमनीतरुणास्थीनि यैः क्रमात् ॥ ५ ॥
भक्षये, च्छ्वित्रमस्माच्च कुष्ठबाह्यमुदाहृतम् ।

कुष्ठस्य सप्तविधत्वम्

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथङ्मिश्रैः समागतैः ॥ ६ ॥

त्रिदोषेष्वपिपृथक्दोषजत्वलक्षणम्

कुष्ठानामष्टादशप्रकाराः—

सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ।

---

१ कुष्ठं (कोढ) उशन्ति—इच्छन्ति ।

वातेन कुष्ठं कापालं, पित्तादौदुंबरं, कफात् ॥ ७ ॥
मंडलाख्यं विचर्ची च, ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिमसिध्मालसविपादिकाः ॥ ८ ॥
वातश्लेष्मोद्भवाः, श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ।
पुंडरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा, ॥ ९ ॥
सर्वैः स्यात्काकणं, पूर्वं [1]त्रिकं दद्रु सकाकणम् ।
पुंडरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ १० ॥

कुष्ठस्यपूर्वरूपम्

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।
दाहः कंडूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः ॥ ११ ॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥ १२ ॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ।

कापालकुष्ठलक्षणम्

कृष्णारुणकपालाभं रूक्षं सुप्तं खरं तनु ॥ १३ ॥
विस्तृतासमपर्यन्तं दूषितैर्लोमभिश्चितम् ।
तोदाढ्यमल्पकंडूकं कापालं शीघ्रमपि च ॥ १४ ॥

उदुम्बरकुष्ठलक्षणम्

पक्वोदुंबरताम्रत्वग्रोमगौरसिराचितम् ।
[2]बहलं बहुलक्लेदं रक्तं दाहरुजाधिकम् ॥ १५ ॥
आशूत्थानावदरणकृमि विद्यादुदुंबरम् ।

मण्डलकुष्ठलक्षणम्

स्थिरं स्त्यानं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तमनाशुगम् ॥ १६ ॥
अन्योन्यसक्तमुत्सन्नं बहुकंडूस्रुतिक्रिमि ।
श्लक्ष्णपीताभपर्यंतं मंडलं परिमंडलम् ॥ १७ ॥

---

१ पूर्वं त्रिकं—कपालोदुम्बरमण्डलाख्यम् । २ बहलं स्थूलम् ।

विचर्चिकाकुष्ठलक्षणम्

सकंडूपिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ।

ऋक्षजिह्वकुष्ठलक्षणम्

परुषं तनुरक्तान्तमन्तःश्यावं समुन्नतम् ॥ १८ ॥
सतोददाहरुक्क्लेदं कर्कशैः पिटिकैश्चितम् ।
ऋक्षजिह्वाकृति प्रोक्तमृक्षजिह्वं बहुक्रिमि ॥ १९ ॥
हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्म, एककुष्ठं महाश्रयम्[1] ।
अस्वेदं मत्स्यशकलसन्निभम्, किटिभं पुनः ॥ २० ॥
रूक्षं किणखरस्पर्शं कंडूमत्परुषासितम् ।

सिध्म (सेहुवा) कुष्ठलक्षणम्

सिध्मं रूक्षं बहिः स्निग्धमन्तर्घृष्टं रजः किरेत् ॥ २१ ॥
श्लक्ष्णस्पर्शं तनु श्वेतताम्रं दौग्धिकपुष्पवत् ।
प्रायेण चोर्ध्वकाये स्यात्, गंडैः कंडूयुतैश्चितम् ॥ २२ ॥

विपादिका कुष्ठलक्षणम्

रक्तैरलसकम्, पाणिपाददार्यो विपादिकाः
तीव्रार्त्यो मंदकंड्वश्च सरागपिटिकाचिताः ॥ २३ ॥

दद्रुकुष्ठलक्षणम्

दीर्घप्रतानदूर्वावदतसीकुसुमच्छविः ।
उत्सन्नमंडला दद्रूः कंडूमत्यनुषंगिणी ॥ २४ ॥

शतारुः कुष्ठलक्षणम्

स्थूलमूलं सदाहार्ति रक्तश्यावं बहुव्रणम् ।
शतारुः क्लेदजंत्वाढ्यं प्रायशः पर्वजन्म च ॥ २५ ॥

---

१ महाश्रयम्—विस्तीर्णाश्रयम् । २ किणः व्रणस्थानम् "घट्टा" इतिलोके ।
३ दौग्धिकपुष्पवत्—अलाबु (लौकी) कुसुमाभम् ।

पुण्डरीककुष्ठलक्षणम्

रक्तांतमंतरा पांडु कंडूदाहरुजान्वितम् ।
सोत्सेधमाचितं रक्तैः पद्मपत्रमिवांशुभिः ॥ २६ ॥
घनभूरिलमीकासृग्बहुलमाशु विभेदि च ।
पुंडरीकम्, तनुत्वग्भिश्चितं स्फोटैः सितारुणैः ॥ २७ ॥
विस्फोटम्, पिटिकाः पामा कंडूक्लेदरुजाधिकाः ।
सूक्ष्माः श्यावारुणा बह्व्यः प्रायः स्फिक्पाणिकूर्परे ॥ २८ ॥
सस्फोटमस्पर्शमह कंडूघातोददाहवत् ।
रक्तं दलच्चर्मदलम्, काकणं तीव्रदाहरुक् ॥ २९ ॥
पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणंतीफलोपमम् ।
कुष्ठलिंगैर्युतं सर्वैर्नैकवर्णं ततो भवेत् ॥ ३० ॥

कुष्ठेषु दोषाधिक्यम्—

दोषभेदीयविहितैरादिशेल्लिंगकर्मभिः ।
कुष्ठेषु दोषोल्बणताम्, सर्वदोषोल्बणं त्यजेत् ॥ ३१ ॥

कुष्ठस्यासाध्यादि विभागः

रिष्टोक्तं यच्चाऽस्थि मज्जशुक्रसमाश्रयम्, ।
याप्यं मेदोगतम्, कृच्छ्रं पित्तद्वंद्वास्रमांसगम्, ॥ ३२ ॥
अकृच्छ्रं कफवाताढ्यं त्वक्स्थमेकमलं च यत् ।

त्वगादिस्थितकुष्ठलक्षणम्—

तत्र त्वचि स्थिते कुष्ठे तोदवैवर्ण्यरूक्षताः, ॥ ३३ ॥
स्वेदस्वापश्वयथुः शोणिते, पिशिते पुनः ।
पाणिपादाश्रिताः स्फोटाः क्लेदः संधिषु चाधिकम् ॥ ३४ ॥
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां दलनं स्याच्च मेदसि ।
नासाभंगोऽस्थिमज्जस्थे नेत्ररागः स्वरक्षयः ॥ ३५ ॥
क्षते च कृमयः, शुक्रे स्वदारापत्यबाधनम् ।
[1]यथापूर्वं च सर्वाणिस्युर्लिंगान्यसृगादिषु ॥ ३६ ॥

---

१ असृगादिषु स्वेदादीनि यानि लिङ्गान्युक्तानि तान्यपि यथापूर्वं शुक्रस्थे कुष्ठे भवन्तीत्यर्थः ।

पुरीषोत्थाःक्रिमयः—

शकृज्जा बहुविड्धान्यपर्णशाकोलकादिभिः ॥ ४६ ॥

कफजाः क्रिमयः—[1]

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।
पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ४७ ॥
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ४८ ॥
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः ।
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ४९ ॥
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ॥ ५० ॥

रक्तजाःक्रिमयः—

रक्तवाहिशिरोत्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः ।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ५१ ॥
केशादा लोमविध्वंसा लोमद्वीपा उदुंबराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ ५२ ॥

विड्भेदादिजनका क्रिमयः—

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ ५३ ॥
तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ ५४ ॥
ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः ।
सौसुरादाः सलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ ५५ ॥
विड्भेदशूलविष्टंभकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ।
रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विनिर्गमात् ॥ ५६ ॥

---

१ उलूकं हरितं शिम्बीधान्यम् ।

पंचदशोऽध्यायः

अथाऽतो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अर्थानर्थकरणेपवनोहेतुः—

[1]"सर्वार्थानर्थकरणे विश्वस्यास्यैककारणम् ।
अदुष्टदुष्टः पवनः शरीरस्य विशेषतः ॥ १ ॥

तत्रकारणम्—

स विश्वकर्मा विश्वात्मा[2] विश्वरूपः प्रजापतिः ।
स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरंतकः ॥ २ ॥
तददुष्टौ प्रयत्नेन यतितव्यमतः सदा ।
तस्योक्तं दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम् ॥ ३ ॥
समासाद्व्यासतो दोषभेदीये नाम धाम च ।
प्रत्येकं पंचधा [3]चारो व्यापारश्चे ह वैकृतम् ॥ ४ ॥
तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम् ।

वायोःकोपद्वयम्—

धातुक्षयकरैर्वायुः कुप्यत्यतिनिषेवितैः ॥ ५ ॥
चरन् स्रोतःसु रिक्तेषु भृश [4]तान्येव पूरयन् ।
[5]तेभ्योऽन्यदोषपूर्णेभ्यः प्राप्य वाऽऽवरणं बली ॥ ६ ॥

पक्वाशयेक्रुद्धस्यवायोःकर्म—

तत्र पक्वाशये क्रुद्धः शूलानाहान्त्रकूजनम् ।

---

१ सवार्थस्यशुभस्य करणोऽदुष्टपवनः । सर्वानर्थकरणे दुष्टपवनो हेतुः
२ विश्वानिसर्वाणि—शरीररक्षणनाशार्थाऽनर्थं । करणानि कर्माणि यस्य
विश्वेषां शुभानामात्माहेतुः । विश्वंसमस्तं बाह्याभ्यात्मिकंरूपं यस्य । प्रजापतिः-
रक्षकः । ३ चारोगतिः । ४ तानि स्रोतांसि । ५ तेभ्यः स्रोतोभ्यः ।

मलरोधाश्मवर्घ्मार्शस्त्रिकपृष्ठकटीग्रहम् ॥ ७ ॥
करोत्यधरकायेषु तांस्तान्कृच्छ्रानुपद्रवान् ।

आमाशयेक्रुद्धस्यकर्म—

आमाशये तृड्वमथुश्वासकासविसूचिकाः ॥ ८ ॥
कंठोपरोधमुद्गारान् व्याधीनूर्ध्वं च नाभितः ।

त्वगादिगतवायोःकर्म—

श्रोत्रादिष्विंद्रियवधं, त्वचि स्फुटनरूक्षणे, ॥ ९ ॥
रक्तं तीव्रा रुजः स्वापं ताप रोग विवर्णताम् ।
मस्त्यत्नस्य विष्टंभमरुचिं कृशता भ्रमम् ॥१०॥
मांसमेदोगतो ग्रंथीस्तोदाढ्यान् कर्कशान् श्रमम् ।
गुर्वंगं चातिरुक्स्तब्धमुष्टिदण्डहतोपमम् ॥११॥
अस्थिस्थः सक्थिसंध्यस्थिशूलं तीव्रं बलक्षयम् ।
मज्जस्थोऽस्थिषु सौषिर्यमस्वप्नं स्तब्धता रुजम् ॥१२॥
शुक्रस्य शीघ्रमुत्सर्गं सगं विकृतिमेव वा ।
[1]तद्वद्गर्भस्य शुक्रस्थः, सिरास्वाध्मानरिक्तते ॥१३॥
[2]तत्स्थः, स्नावस्थितः कुर्याद्गृध्रस्यायामकुब्जताः ।
वातपूर्णदृतिस्पर्शं शोफं संधिगतोऽनिलः ॥१४॥
प्रसारणाऽकुंचनयोः प्रवृत्तिं च सवेदनाम् ।

सर्वांगकुपितवायुलक्षणम्—

सर्वांगसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभंजनम् ॥ १५ ॥
स्तंभमाक्षेपणं स्वापं सध्याकुंचनकंपनम् ।

धमनीगतवायुलक्षणम्—

यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽभ्येति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
तदांगमाक्षिपत्येष व्याधिराक्षेपकः स्मृतः ।

अपतन्त्रकलक्षणम्—

अधः प्रतिहतो वायुर्व्रजत्यूर्ध्वं हृदाश्रयः ॥ १७ ॥

---

१ तद्वत्शीघ्रोत्सर्गादि गर्भस्य । २ तत्स्थः सिरास्थः ।

हनुस्रंसलक्षणम्—

जिह्वातिलेखनात् शुष्कभक्षणादभिघाततः ।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनू ॥२९॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।
हनुस्रंसः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥३०॥

जिह्वास्तम्भलक्षणम्—

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तंभयतेऽनिलः ।
जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥३१॥

अर्दित (लकवा) लक्षणम्—

शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रभाषणात् ।
[1]उत्त्रासवक्त्रक्षवथुखरकार्मुककर्षणात् ॥३२॥
विषमादुपधानाच्च कठिनानां च चर्वणात् ।
वायुर्विवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरूर्ध्वमास्थितः ॥३३॥
वक्रीकरोति वक्त्रार्धमुक्तं हसितमीक्षितम् ।
ततोऽस्य कंपते मूर्धा वाक्संगः स्तब्धनेत्रता ॥३४॥
दंतचालः स्वरभ्रंशः श्रुतिहानिः क्षवग्रहः ।
गंधाज्ञानं स्मृतेर्मोहस्त्रासः [2]सुप्तस्य जायते ॥३५॥
निष्ठीवः पार्श्वतो यायादेकस्याक्ष्णो निमीलनम् ।
जत्रोरूर्ध्वं रुजा तीव्रा शरीरार्धेऽपरेऽपि वा ॥ ३६ ॥
तमाहुरर्दितं केचिदेकायाममथापरे ।

सिराग्रहः—

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः ॥ ३७ ॥
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः ।

---

१ उत्त्रासो भयं "विहुंकना" ववथेण क्षवथुः । कार्मुकं धनुः । २ सुप्तस्य-नासोनिद्रितेभयम् ।

एकाङ्गरोगः (फालिज)—

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायूर्विशोष्य च ॥ ३८ ॥
पक्षमन्यतरं हंति संधिबंधान् विमोक्षयन् ।
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ ३९ ॥
एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवध विदुः ।

सर्वाङ्गरोगः—

सर्वांगरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ ४० ॥
शुद्धवातहतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः ।
कृच्छ्रस्त्वन्येन संसृष्टो विवर्ज्यः क्षयहेतुकः ॥ ४१ ॥

दण्डकायामः—

आमबद्धायनः कुर्यात्संस्तभ्यांगं कफान्वितः ।
असाध्यं हतसर्वेहं दंडवद्दंडक मरुत् ॥ ४२ ॥

अवबाहुकलक्षणम्—

अंसमूलस्थितो वायुः सिराः संकोच्य तत्रगाः ।
बाहुप्रस्पंदितहरं जनयत्यवबाहुकम् ॥ ४३ ॥

विश्वाची—

तलं प्रत्यंगुलीनां या कंडरा बाहुपृष्ठतः ।
बाहुचेष्टापहरणी विश्वाची नाम सा स्मृता ॥ ४४ ॥

खञ्जपङ्गुलक्षणम्—

वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा ।
तदा खंजो भवेज्जंतुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोरपि ॥ ४५ ॥

कलायखञ्जः—

कंपते गमनारंभे खंजन्निव च याति यः ।
कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥ ४६ ॥

ऊरुस्तम्भलक्षणम्—

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।

जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ ४७ ॥
सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसंचितम् ।
अभिभूयेतरं [1]दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ ४८ ॥
सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन तत् ।
तदा [2]स्कम्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ४९ ॥
परकीयाविव गुरु स्यातामतिभृशव्यथौ ।
ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ५० ॥
संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ।
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५१ ॥

क्रोष्टुकशीर्षलक्षणम्—

वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः ।
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षश्च स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५२ ॥

वातकंटकलक्षणम्—

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम् ॥ ५३ ॥

गृध्रसी लक्षणम्—

पार्ष्णि प्रत्यङ्गुलीनां या कंडरा मारुतार्दिता ।
सक्थ्युत्क्षेपं निगृह्णाति गृध्रसीं तां प्रचक्षते ॥ ५४ ॥

खल्लीनिर्देशः—

विश्वाची गृध्रसी चोक्ता खल्ली तीव्ररुजान्विता ।

पादहर्षः

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां च प्रसुप्तवत् ॥ ५५ ॥
पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः ।

पाददाहः—

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥ ५६ ॥
विशेषतश्चंक्रमिते पाददाहं तमादिशेत्" ॥

---

१ इतरं दोषं— पित्तम् । २ स्कम्नाति-स्तभ्नाति ।

षोडशोऽध्यायः ।

अथातो वातशोणितनिदानं व्याख्यास्यामः ।

वातशोणितनिदानम्—

"विदाह्यन्नं विरुद्धं च तत्तच्चासृक्प्रदूषणम् ।
भजतां विधिहीनं च स्वप्नजागरमैथुनम् ॥१॥
प्रायेण सुकुमाराणामचंक्रमणशीलिनाम् ।
अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते ॥२॥
वातलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः ।
तादृशेनासृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदूषयेत् ॥३॥
आढ्यरोगं खुडं वातबलासं वातशोणितम् ।
तदाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति ॥४॥
विशेषाद्यानयानाद्यैः प्रलम्बौ, तस्य लक्षणम् ।

पूर्वरूपम्—

भविष्यतः कुष्ठसमं तथा सादः श्लथांगता ॥५॥
जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादांगसंधिषु ।
कंडूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः ॥६॥
भूत्वा भूत्वा प्रणश्यंति मुहुराविर्भवंति च ।

वातशोणितस्यसर्वाङ्गसंचारित्वम्—

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥७॥
आखोरिव विषं क्रुद्धं कृत्स्नं देहं विधावति ।

वातशोणितद्वैविध्यम्—

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः ॥८॥
कालांतरेण गंभीरं सर्वान् धातूनभिद्रवत् ।

उत्तानवातशोणितनिर्देशः—

कंड्वादिसंयुतोत्ताने त्वक्ताम्रश्यावलोहिता ॥९॥

गम्भीरवातशोणितनिर्देशः—

सायामा भृशदाहोषा, गंभीरेऽधिकपूर्वरुक् ।
श्वयथुर्ग्रथितः पाकी वायुः संध्यस्थिमज्जसु ॥१०॥
छिन्दन्निव चरत्यन्तर्वक्रीकुर्वंश्च वेगवान् ।
करोति खंजं पंगुं वा शरीरे सर्वतश्चरन् ॥११॥

वाताद्यधिकवातशोणितनिर्देशः—

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ।
शोफस्य रौक्ष्यकृष्णत्वश्यावतावृद्धिहानयः ॥१२॥
धमन्यंगुलिसंधीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ।
शीतद्वेषानुपशयौ स्तंभवेपथुसुप्तयः ॥१३॥
रक्ते शोफोऽतिरुक् तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कंडूक्लेदसमन्वितः ॥१४॥
पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्छा मदः सतृट् ।
स्पर्शाक्षमत्वं रुग्रागः शोफपाको भृशोष्मता ॥१५॥
कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।
कंडूर्मंदा च रुग्, द्वंद्वसर्वलिंगं च संकरे ॥१६॥

वातशोणितस्यसाध्यादिविभागः—

एकदोषानुगं साध्यं नवं, याप्यं द्विदोषजम् ।
त्रिदोषजं त्यजेत्स्रावि स्तब्धमर्बुदकारि च ॥१७॥

वायुनारक्तमार्गच्छन्ननिर्देशः—

रक्तमार्गं निहन्त्याशु शाखासंधिषु मारुतः ।
निविश्यान्योन्यमावार्य[1] वेदनाभिर्हरत्यसून् ॥१८॥

---

१ आवार्य रोधं कृत्वा । वातेन रक्तस्यावरणं, रक्तेन वातस्यावरणमित्यर्थः ।

वायुपञ्चककोपलक्षणानि—

वायौ पञ्चात्मके प्राणो रौक्ष्यव्यायामलङ्घनैः ।
अत्याहाराभिघाताध्ववेगोदीरणधारणैः ॥१९॥
कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रवर्तयेत् ।
पीनसार्दिततृट्कासश्वासादींश्चामयान्बहून् ॥२०॥
उदानः क्षवथूद्गारच्छर्दिनिद्राविधारणैः ।
गुरुभारातिरुदितहास्याद्यैर्विकृतो गदान् ॥२१॥
कंठरोधमनोभ्रंशच्छर्द्यरोचकपीनसान् ।
कुर्याच्च गलगंडादींस्तांस्तान् जत्रूर्ध्वसंश्रयान् ॥२२॥
व्यानोऽतिगमनध्यानक्रीडाविषमचेष्टितैः ।
विरोधिरूक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः ॥२३॥
पुंस्त्वोत्साहबलभ्रंशशोफचित्तोत्प्लवज्वरान् ।
सर्वांगरोगनिस्तोदरोमहर्षांगसुप्तताः ॥२४॥
कुष्ठं विसर्पमन्यांश्च कुर्यात्सर्वांगगान् गदान् ।
समानो विषमाजीर्णशीतसंकीर्णभोजनैः ॥२५॥
करोत्यकालशयनजागराद्यैश्च दूषितः ।
शूलगुल्मग्रहण्यादीन् पक्वामाशयजान् गदान् ॥२६॥
अपानो रूक्षगुर्वन्नवेगघातातिवाहनैः ।
यानयानासनस्थानचङ्क्रमैश्चातिसेवितैः ॥२७॥
कुपितः कुरुते रोगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान् ।
मूत्रशुक्रप्रदोषार्शोगुदभ्रंशादिकान्बहून् ॥२८॥

सामनिरामवायुलक्षणम्—

सर्वं च मारुतं सामं तंद्रास्तैमित्यगौरवैः ।
स्निग्धत्वारोचकालस्यशैत्यशोफाग्निहानिभिः ॥२९॥
कटुरूक्षाभिलाषेण तद्विधोपशयेन च ।
युक्तं विद्यान्निरामं तु तंद्रादीनां विपर्ययात् ॥३०॥

वातावरणभेदाः—

वायोरावरणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते ।

लिंगं पित्तावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः ॥ ३१ ॥
कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहः शीतकामता ।,
शैत्यगौरवशूलानि कट्वाद्युपशयोऽधिकम् ॥ ३२ ॥
लंघनायासरूक्षोष्णकामता च कफावृते ।,
रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वङ्मांसांतरजा भृशम् ॥ ३३ ॥
भवेच्च रागी श्वयथुर्जायंते मंडलानि च ।,
मांसेन कठिनः शोफो विवर्णः पिटिकास्तथा ॥ ३४ ॥
हर्षः पिपीलिकानां च संचार इव जायते ।,
चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफो गात्रेष्वरोचकः ॥ ३५ ॥
आढ्यवात इति ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसाऽऽवृते ।,
स्पर्शमस्थ्यावृतेऽत्युष्णं पीडनं चाभिनंदति ॥ ३६ ॥
सूच्येव तुद्यतेऽत्यर्थमंगं सीदति शूल्यते ।,
मज्जावृते विनमनं जृंभणं परिवेष्टनम् ॥ ३७ ॥
शूलं च पीड्यमानेन पाणिभ्यां लभते सुखम् ।,
शुक्रावृतेऽतिवेगो वा न वा [1]निष्फलताऽपि वा ॥ ३८ ॥
भुक्ते कुक्षौ रुजा जीर्णे शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले ।
मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं बस्तौ मूत्रावृते भवेत् ॥ ३९ ॥
विडावृते विबंधोऽधः स्वस्थाने परिकृतति ।
व्रजत्याशु जरां स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः ॥ ४० ॥
शकृत्पीडितमन्नेन दुःखं शुष्कं चिरात्सृजेत् ।,
सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणीवंक्षणपृष्ठरुक् ॥ ४१ ॥
विलोमो मारुतोऽस्वस्थं हृदयं पीड्यतेऽपि च ।

प्राणादिपञ्चवायोःपित्तेनावरणम्—

भ्रमोमूर्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते ॥ ४२ ॥

---

१ निष्फलता-गर्भस्याकरणम् ।

विदाधेऽग्ने च वमनम्,

उदानेऽपि भ्रमादयः ।

दाहोऽन्तरूर्जाभ्रंशश्च,

दाहो व्याने च सर्वगः ॥ ४३ ॥

क्लमोऽङ्गचेष्टासङ्गश्च ससंतापः सवेदनः ।,

समाने ऊष्मोपहतिरतिस्वेदोऽरतिः सतृट् ॥ ४४ ॥

दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता ।

रजोऽतिवृद्धिस्तापश्च योनिमेहनपायुषु ॥ ४५ ॥

प्राणादिपञ्चवायोः कफेनावरणम्—

श्लेष्मणा त्वावृते प्राणे सादस्तंद्रारुचिर्वमिः ।

ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ॥ ४६ ॥

चलवर्णे गुरुगात्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः ।

बलवर्णप्रणाशश्च,

व्याने पर्वास्थिवाग्ग्रहः ॥ ४७ ॥

गुरुताऽङ्गेषु सर्वेषु स्खलितं च गतौ भृशम् ।,

समानेऽतिहिमाङ्गत्वमस्वेदो मंदवह्निता ॥ ४८ ॥,

अपाने सकफं मूत्रशकृतः स्यात्प्रवर्तनम् ।

इति द्वाविंशतिविधं वायोरावरणं विदुः ॥ ४९ ॥

प्राणादीनां परस्परमावरणम्—

प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वंति यथाक्रमम् ।

सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणं च तत् ॥ ५० ॥

निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः ।

हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनोदान आवृते ॥ ५१ ॥

उदानेनाऽऽवृते प्राणे वर्णौजोबलसंक्षयः ।

दिशाऽनया च विमृशेदावरणं भिषक् ॥ ५२ ॥

स्थानान्यवेक्ष्य वातानां वृद्धिं हानिं च कर्मणाम् ।

आवृतेरसंख्येयत्वम्—

प्राणादीनां च पंचानां मिश्रमावरणं मिथः ॥ ५३ ॥
पित्तादिभिर्द्वादशभिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः ॥

आवरणप्रकारः—

मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्रणाभिरनेकधा ॥ ५४ ॥
तारतम्यविकल्पाच्च [1]यात्यावृत्तिरसंख्यताम् ।
तां लक्षयेदवहितो यथास्वं लक्षणोदयात् ॥ ५५ ॥
शनैः शनैश्चोपशयाद्गूढामपि मुहुर्मुहुः ।

प्राणादेर्जीवितत्वादि—

विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते ॥ ५६ ॥
स्यात्तयोः पीडनाद्धानिरायुषश्च बलस्य च ।

आवृतानां कृच्छ्रसाध्यता—

आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाता वा वत्सरं स्थिताः ॥ ५७ ॥
प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वानुपक्रमाः ।

आवृतानामुपेक्षणाद्रोगोत्पत्तिः—

विद्रधिप्लीहहृद्रोगगुल्माग्निसदनादयः ।
भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात्" ॥ ५८ ॥
इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्ग-
हृदयसंहितायां तृतीयं निदानस्थानं समाप्तम् ॥

अ० ॥ १६ ॥ श्लो० ॥ ७८४ ॥

समाप्तमिदं निदानस्थानम् ।

---

१ आवृतिरावरणम् ।

इति वैद्यवर श्री पूर्णदत्तशर्मसूनु आयुर्वेदाचार्य श्री हरिनारायण शर्म वैद्य निर्मितायामष्टाङ्गहृदयटिप्पण्यां प्रभाख्यायां निदानस्थानं समाप्तम् ।

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय,
नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी-१

श्रीगणेशाय नमः

अष्टाङ्ग हृदयम् ।

द्वितीय खण्डात्मकम्

चिकित्सितं स्थानम्—

प्रथमोऽध्यायः

कायचिकित्सा १२ अध्यायान्तम् ।

अथाऽतो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

ज्वरादौलंघनम्—

''आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो [1]मार्गान् पिधाय यत् ।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मात्कुर्वीत लंघनम् ॥ १ ॥
प्राग्रूपेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

लंघनफलम्—

लंघनैः क्षपिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति ।
स्वास्थ्यं क्षुत्तृड् रुचिः पक्तिर्बलमोजश्च जायते ॥ ३ ॥

ज्वरेवमननिर्देश :—

तत्रोत्कृष्टे समुत्क्लिष्टे कफप्राये चले मले ।
सहृल्लासप्रसेकान्नद्वेषकासविसूचिके ॥ ४ ॥

---

१ मार्गान् स्रोतांसि ।

सद्योभुक्तस्य संजाते ज्वरे सामे विशेषतः ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तं कुर्यात्तदन्यथा ॥ ५ ॥
श्वासातिसारसंमोहहृद्रोगविषमज्वरान् ।

वमनद्रव्याणि—

पिप्पलीभिर्युतान् गालान्[1] कलिङ्गैर्मधुकेन वा ॥ ६ ॥
उष्णाम्भसा समधुना पिबेत्सलवणेन वा ।
पटोलनिम्बकर्कोटवेत्रपत्रोदकेन वा ॥ ७ ॥
तर्पणेन रसेनेक्षोर्मद्यैः कल्पोदितानि वा ।
वमनानि प्रयुञ्जीत बलकालविभागवित् ॥ ८ ॥

ज्वरे विशोषणम्—

कृतेऽकृते वा वमने ज्वरी कुर्याद्विशोषणम् ।
दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमाय च ॥ ९ ॥

(उपवासः)

आमेन भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते ।
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥ १० ॥

वातकफज्वरउष्णाम्बुपानम्—

तृड्वानल्पाल्पमुष्णांबु पिबेद्वातकफज्वरे ।
तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ११ ॥
उदीर्य चाऽग्निं स्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत् ।
लीनपित्तानिलस्वेदशकृन्मूत्रानुलोमनम् ॥ २ ॥
निद्राजाड्यारुचिहरं प्राणानामवलंबनम् ।
विपरीतमतः शीतं दोषसंघातवर्धनम् ॥ १३ ॥

उष्णाम्बुनिषेधः—

उष्णमेवंगुणत्वेऽपि युंज्यान्नैकान्तपित्तले ।
उद्रिक्तपित्ते दवथुदाहमोहातिसारिणि ॥ १४ ॥
विषमद्योत्थिते ग्रीष्मे क्षतक्षीणेऽस्रपित्तिनि ।

---

१ गालान् मदनफलानि ।

शीतजलविधि :—

घनचंदनशुंठ्यं बुपर्पटोशीरसाधितम् ॥ १५ ॥
शीतं तेभ्यो हितं तोयं पाचनं तृट्ज्वरापहम् ।

ज्वरस्यपित्तसम्बन्ध :—

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना ॥ १६ ॥
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ताधिकेऽधिकम् ।

ज्वरे स्नानादित्याग :—

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्च परिशेषं च लंघनम् ॥ १७ ॥

आमज्वरेत्वौषधनिषेध :—

अजीर्ण इव शूलघ्नं सामे तीव्ररुजि ज्वरे ।
न पिबेदौषधं तद्धि भूय एवाममावहेत् ॥ १८ ॥

क्षीरनिषेध :—

आमाभिभूतकोष्ठस्य क्षीरं विषमहेरिव ।

ज्वरेस्वेदविचार :—

सोदर्दपीनसश्वासे जंघापर्वास्थिशूलिनि ॥ १९ ॥
वातश्लेष्मात्मके स्वेदः प्रशस्तः संप्रवर्तयेत् ।
स्वेदमूत्रशकृद्वातान् कुर्यादग्नेश्च पाटवम् ॥ २० ॥
स्नेहोक्तमाचारविधिं सर्वशश्चानुपालयेत् ।

मलानांपाचनानि—

लंघनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः ॥ २१ ॥
मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्थं क्रमेण वा ।

लङ्घनापवाद :—

शुद्धवातक्षयागंतुजीर्णज्वरिषु लंघनम् ॥ २२ ॥
नेष्यते,

तेषुशमनम्—

तेषु हि हितं शमनं यन्न कर्शनम् ।

लंघितालंघितलक्षणम्—

तत्र सामज्वराकृत्या जानीयादविशोषितम् ॥ २३ ॥
द्विविधोपक्रमज्ञानमवेक्षेत च लंघने ।

ज्वरितस्य पेयादिभिरुपचारः—

[1]युक्तं लंघितलिंगैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत् ॥ २४ ॥
यथास्वौषधसिद्धाभिर्मंडपूर्वाभिरादितः ।
तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्भिरिव पावकः ॥ २५ ॥
षडहं वा मृदुत्वं वा ज्वरो यावदवाप्नुयात् ।

पेयानिर्देश :—

प्राग्लाजपेया सुजरां सशुंठीधान्यपिप्पलीम् ॥ २६ ॥
ससैंधवां तथाम्लार्थो तां पिबेत्सहदाडिमाम् ।
सृष्टविड् बहुपित्तो वा सशुंठीमाक्षिकां हिमाम् ॥ २७ ॥
बस्तिपार्श्वशिरःशूली व्याघ्रीगोक्षुरसाधिताम् ।
पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ॥ २८ ।
सिद्धां ज्वरातिसार्यम्ला पेयां दीपनपाचनीम् ।
ह्रस्वेन पंचमूलेन हिक्कारुक्श्वासकासवान् ॥ २९ ॥
पंचमूलेन महता कफार्तो यवसाधिताम् ।
विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः कृताम् ॥ ३० ॥
यवागूं सर्पिषा भृष्टां मलदोषानुलोमनीम् ।
चविकापिप्पलीमूलद्राक्षामलकनागरैः ॥ ३१ ॥
कोष्ठे विबद्धे सरुजि,
पिबेत्तु परिकर्तिनि ।
[2]कोलवृक्षाम्लकलशीधावनीश्रीफलैः कृताम् ॥ ३२ ॥
अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्तः सितामलकनागरैः ।
सितावदरमृद्वीकासारिवामुस्तचन्दनैः ॥ ३३ ॥

---

१ सम्यग् लंघितलिङ्गैर्युक्तंनरम् । २ कलशी-पृश्निपर्णी (पिठवन) । धावनी कंटकारी (भटकटैया) । श्रीफलं बिल्वम् ।

तृष्णाच्छर्दिपरी दाहज्वरघ्नी क्षौद्रसंयुताम् ।

पेयौषधैरसादिकरणम्—

कुर्यात्पेयौषधैरेव　रसयूषादिकानपि ॥ ३४ ॥

पेयानिषेध :—

मद्योद्भवे मद्यनित्ये पित्तस्थानगते कफे ।
ग्रीष्मे [1]तयोर्वाधिकयोस्तृट्छर्दिर्दाहपीडिते ॥ ३५ ॥
ऊर्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेया नेच्छंति,

तेषु तु ।

ज्वरापहैः फलरसैरद्भिर्वा लाजतर्पणम् ॥ ३६ ॥
पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं,

ततोजीर्णेतर्पणभोजनादि—

ततो जीर्णे च तर्पणे ।
यवाग्वामोदनं क्षुद्वानश्नीयाद्भृष्टतंडुलम् ॥ ३७ ॥
[2]दकलावणिकैर्यूषै रसैर्वा मुद्गलावजैः ।

एवं ज्वरस्य षडहोतिवाह्य :—

इत्ययं षडहो नेयो बलं दोषं च रक्षता ॥ ३८ ॥

ततः कषायः (काढ़ा)

ततः पक्वेषु दोषेषु लंघनाद्यैः प्रयस्यते ।
कषायो दोषशेषस्य पाचनः शमनोऽथवा ॥ ३९ ॥
तिक्तः पित्ते विशेषेण, प्रयोज्यः कटुकः कफे ।

नवज्वरे कषायनिषेध :—

पित्तश्लेष्महरत्वेऽपि कषायस्तु न दास्यते ॥ ४० ॥
नवज्वरे मलस्तंभात्कषायो विषमज्वरम् ।
कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिध्माध्मानादिकानपि ॥ ४१ ॥

---

१ तयोः पित्तकफयोः । २ दकलावणिकैर्मुद्गकुलत्थादियूषैः ।

औषधदाने मतभेद :—

सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः ।
केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्य योज्यमामोल्बणे न तु ॥ ४२ ॥

तत्र कारणम् :—

तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगोदये यतः ।
दोषेऽथवाऽतिनिचिते तंद्रास्तैमित्यकारिणि ॥ ४३ ॥
अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।

औषधदाने काल :—

मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा ॥ ४४ ॥
अचिरज्वरितस्यापि भेषजं कारयेत्तदा ।

औषधम्

मुस्तया पर्पटं युक्तं शुंठ्या [१] दुःस्पर्शयाऽपि वा ॥ ४५ ॥
पाक्यं शीतकषायं वा पाठोशीरं सवालकम् ।
पिबेत्तद्वच्च भूनिंबगुडूचीमुस्तनागरम् ॥ ४६ ॥
यथायोगमिमे योज्याः कषाया दोषपाचनाः ।
ज्वरारोचकतृष्णास्यवैरस्यापक्तिनाशनाः ॥ ४७ ॥

संततादि ज्वरशमनाः कषाया :—

[२]कलिंगकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥ ४८ ॥
पटोलं सारिवा मुस्ता पाठा कटुकरोहिणी ।
पटोलनिंबत्रिफलामृद्वीकामुस्तवत्सकाः ॥ ४९ ॥
किराततिक्तममृता चंदनं विश्वभेषजम् ।
धात्रीमुस्तामृताक्षौद्रमर्धश्लोकसमापनाः ॥ ५० ॥
पंचैते संततादीनां पंचानां शमना मताः ।
दुरालभाऽमृता मुस्ता नागरं वातजे ज्वरे ॥ ५१ ॥

---

१ दुःस्पर्शा 'जवासा' । पाक्यं अष्टमांश शिष्टम् । शीतकषायम् हिमसंज्ञकम् ।
२ कलिङ्गकः इन्द्र जव हि० ।

अथवा पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभेषजम् ।
कनीयः पंचमूलं च,
पिबेत् शक्रयवा घनम् ॥ ५२ ॥
कटुका चेति सक्षौद्रं मुस्ता पर्पटकं तथा ।
सधन्वयासभूनिंबं,
वत्सकाद्यो गणः कफे ॥ ५३ ॥
अथवा [1]वृषगांगेयीशृंगवेरदुरालभाः ।
रुचिबंधानिलश्लेष्मयुक्ते दीपनपाचनम् ॥ ५४ ॥
अभया पिप्पलीमूलशम्याककटुकाघनम् ।

वातपित्त-ज्वरापहः कषाय :—

द्राक्षामधूकमधुकं रोध्रकाश्मर्यसारिवाः ॥ ५५ ॥
मुस्तामलकह्रीबेरपद्मकेसरपद्मकम् ।
मृणालचंदनोशीरनीलोत्पलपरूषकम् ॥ ५६ ॥
फांटो हिमो वा द्राक्षादिर्जातीकुसुमवासितः ।
युक्तो मधुसितालाजैर्जयत्यनिलपित्तजम् ॥ ५७ ॥
ज्वरं मदात्ययं छर्दिं मूर्छां दाहं श्रमं भ्रमम् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं च पिपासां कामलामपि ॥ ५८ ॥

ज्वरदाहजित् रस :—

पाचयेत्कटुकां पिष्ट्वा कर्परेऽभिनवे शुचौ ।
निष्पीडितो घृतयुतस्तद्रसो ज्वरदाहजित् ॥ ५९ ॥

कफवातज्वरे कषाया :—

कफवाते वचातिक्तापाठाऽरग्वधवत्सकाः ।
पिप्पलीचूर्णयुक्तो वा क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः ॥ ६० ॥
व्याघ्रीशुण्ठ्यमृताक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
वातश्लेष्मज्वरश्वासकासपीनसशूलजित् ॥ ६१ ॥

---

१ गांगेयी मुस्ता । वृषः—'अडूसा' हि० ।

पथ्या[1]कुस्तुंबरीमुस्ताशुंठीकट्तृणपर्पटम् ।
सकट्फलवचाभार्ङ्गीदेवाह्वं मधुहिंगुमत् ॥ ६२ ॥
कफवातज्वरेष्वेव कुक्षिहृत्पार्श्ववेदनाः ।
कंठामयास्यश्वयथुकासश्वासान्नियच्छति ॥ ६३ ॥

वातपित्तज्वरे कषायद्वयम् :—

आरग्वधादिः सक्षौद्रः कफपित्तज्वरं जयेत् ।
तथा तिक्तावृषोशीरत्रायंतीत्रिफलामृताः ॥ ६४ ॥

सन्निपाते पाचनम् :—

संनिपातज्वरे व्याघ्री देवदारुनिशाघनम् ।
पटोलपत्रनिंबत्वक्त्रिफलाकटुकायुतम् ॥ ६५ ॥
नागरं पौष्करं मूलं गुडूची कंटकारिका ।
सकासश्वासपार्श्वार्तौ वातश्लेष्मोत्तरे ज्वरे ॥ ६६ ॥
मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परूषकम् ।
सोशीरतिक्ता त्रिफला काश्मर्यं कल्पयेद्धिमम् ॥ ६७ ॥
मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परूषकम् ।
सोशीरतिक्ता त्रिफला काश्मर्यं कल्पयेद्धिमम् ॥ ६७ ॥
कषायं तं पिबन् काले ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ।
जात्यामलकमुस्तानि तद्वद्वन्वयवासकम् ॥ ६८ ॥
यद्वद्विद् कटुकाद्राक्षात्रायंतीत्रिफलागुडान् ।

जीर्णापथ्येपेयाद्यन्ने व्यवस्था

जीर्णापथ्योऽन्नं पेयाद्यमाचरेच्छ्लेष्मवान्नतु ॥ ६९ ॥

---

१ कुस्तुम्बरी धान्यकम् । देवाह्वं देवदारु । कट् तृणं (हरिद्वारी सुगा) व्याघ्री (भट कटैया हि०) छिन्ना अमृता (गुर्च) कटफलम् (कायफर) उशीरं (खस) त्रायंती (त्रायमाणा) निशा (हल्दी) कटुका (कुटकी) नागरं (सोंठ) पौष्करं (पोहकर मूल) मधूकं (महुवा) काश्मर्यं (खंभारी) जाती (चमेली की पत्ती) ।

देया कफं वर्धयति पंकं पांसुषु वृष्टिवत् ।

तन्त्रकारस्याप्ययं मार्ग :—

श्लेष्माभिपन्न देहानामतः प्रागपि योजयेत् ॥ ७० ॥
यूषान् कुलत्थचणकदाडिमादिकृतान् लघून् ।
रूक्षांस्तिक्तरसोपेतान् हृद्यान् रुचिकरान् पटून् ॥ ७१ ॥

ज्वरेशाल्यादय :—

रक्ताद्याः शालयो जीर्णाः षष्टिकाश्च ज्वरे हिताः ।

कफज्वरे (धानी) यवाः पथ्या :—

श्लेष्मोत्तरे वीततुषास्तथा [1]वाट्यकृता यवाः ॥ ७२ ॥

ज्वरेण ओदन (भात) प्रकाराः

ओदनस्तैः शृतो द्वित्रिः प्रयोक्तव्यो यथायथम् ।
दोषदूष्यादिवलतो ज्वरघ्नक्वाथसाधितः ॥ ७३ ॥

ज्वरापहा यूषाः (जूस) —

मुद्गाद्यैर्लघुभिर्यूषाः कुलत्थैश्च ज्वरापहाः ।

ज्वरेहितारसाः (शोरवा) :—

कारवेल्लककर्कोटबालमूलकपर्पटैः ॥ ७४ ॥
वार्ताकिनिम्बकुसुमपटोलफलपल्लवैः ।
अत्यंतलघुभिर्मांसैर्जाङ्गलैश्च हिता रसाः ॥ ७५ ॥
व्याघ्रीपरूषतर्कारीद्राक्षामलकदाडिमैः ।
संस्कृताः पिप्पलीशुंठीधान्यजीरकसैंधवैः ॥ ७६ ॥
सितामधुभ्यां प्रायेण संयुता वा कृता[2]कृताः ।

ज्वरेरुच्यानिव्यंजनानि :—

अनम्लतक्रसिद्धानि रुच्यानि व्यंजनानि च ॥ ७७ ॥

---

१ वाट्यकृता भृष्टविदलीकृताः 'दलिया'। २ कृता दाडिमाम्लाजिद्द्वयादिभिः संस्कृताः । अकृता असंस्कृताः । कुलत्थं (कुरथी) । कारवेल्लकं (करेला) कर्कोटः (खेकसा) वार्ताकः (भंटा) । परूषकः (फालसा) तर्कारी (अग्निमंथ) ।

अच्छान्यनलसंपदानि,

ज्वरेऽनुपानम्—

अनुपानेऽपि योजयेत् ।
तानि क्वथितशीतं च वारि मद्यं च सात्म्यतः ॥ ७८ ॥

ज्वरिणो भोजनकाल :—

सज्वरं ज्वरमुक्तं वा दिनांते भोजयेल्लघु ।
श्लेष्मक्षयविवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७९ ॥
यथोचितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधतः ।
प्रागल्पवह्निर्भुंजानो न ह्यजीर्णेन पीड्यते ॥ ८० ॥,

ज्वरेघृतपानकाल :—

कषायपानपथ्यान्नैर्दशाह इति लंघिते ।
सर्पिर्दद्यात्कफे मंदे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ ८१ ॥
पक्वेषु दोषेष्वमृतं [१]तद्विषोपममन्यथा ।
दशाहे स्यादतीतेऽपि ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ ८२ ॥
लंघनादिक्रमं तत्र कुर्यादाकफसंक्षयात् ।

जीर्णज्वरानुवृत्ति :—

देहधात्वबलत्वाच्च ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ॥ ८३ ॥

जीर्णज्वरेघृतपानम्—

रूक्षं हि तेजो ज्वरकृत्तेजसा रूक्षितस्य च ।
वमनस्वेदकालांबुकषायलघुभोजनैः ॥ ८४ ॥
यः स्यादतिबलो धातुः सहचारी सदागतिः ।
तस्य संशमनं सर्पिर्दीप्तस्येवांबु वेश्मनः ॥ ८५ ॥
वातपित्तजितामग्र्यं संस्कारमनुरुध्यते ।
सुतरां [२]तद्वयतो दद्याद्यथास्वौषधसाधितम् ॥ ८६ ॥

---

१ अन्यथा-अपक्वेषु दोषेषु कफप्रधाने सर्पिर्विषोपमम् । अयं श्रेष्ठः ।
२ तत्सर्पिः ।

[1]विपरीतं ज्वरोष्माणं जयेत्पित्तं च शैत्यतः ।
स्नेहाद्वातं घृतं तुल्ययोगसंस्कारतः कफम् ॥ ८७ ॥
पूर्वे कषायाः सघृताः सर्वे योज्या यथामलम् ।

त्रिफलादिघृतम्—

त्रिफला [2]पिचुमर्दत्वङ्मधुकं बृहतीद्वयम् ।
समसूरदलं क्वाथः सघृतो ज्वरकासहा ॥ ८८ ॥

पिप्पल्यादिघृतम्—

पिप्पलीद्वयवचावनितिक्ता-
[3]सारिवामलकतामलकीभिः ।
विल्वमुस्तहिमपालनिसेव्यै-
र्द्राक्षयातिविषया स्थिरया च ॥ ८९ ॥
घृतमाशु निहंति साधितं
ज्वरमग्निं विषमं हलीमकम् ।
अरुचिं भृशतापमंसयो-
र्वमथुं पार्श्वशिरोरुजं क्षयम् ॥ ९० ॥

द्रव्यविशेषैःसाधितंघृतंज्वरजित्—

[4]तैल्वकं पवनजन्मनि ज्वरे,
योजयेत्त्रिवृतया वियोजितम् ।,
तिक्तकं वृषघृतं च पैत्तिके
यच्च पालनिकया श्रृतं हविः ॥ ९१ ॥

…तं रूक्षतीक्ष्णादिगुणं ज्वरोष्माणं ज्वरोत्पादकं जाठरानलं घृतं
…गुणं जयेदित्यर्थः । २ पिचुमन्दः (नीम) ।
… की "भूंइ अँवरा" इति लोके । हिमं चन्दनम् । पालनी त्रायमाणा
…स्तीस), स्थिरा-शालपर्णी । ४ तैल्वकं घृतं वातव्याध्युक्तं त्रिवृता
…तम् । व्योषं (त्रिकटु) अग्निः (चीता) ।

जीर्णं कफज्वरघ्नंघृतम्—

विडंगसौवर्चलचव्यपाठा-
व्योषाग्निसिंधूद्भवयावशूकैः ।
पलांशकैः क्षीरसमं घृतस्य
प्रस्थं पचेज्जीर्णकफज्वरघ्नम् ॥ ६२ ॥

जीर्णज्वरघ्नाः पंचस्नेहा :—

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धा ज्वरच्छिदः ॥ ६३ ॥

घृतेजीर्णेरसाशनम्—

जीर्णे घृते च भुंजीत मृदु मांसरसौदनम् ।
बलं ह्यलं दोषहरं परं तच्च बलप्रदम् ॥ ६४ ॥

कफपित्तहरारसा :—

कफपित्तहरा मुद्गकारवेल्लादिजा रसाः ।
प्रायेण तस्मान्न हिता जीर्णे वातोत्तरे ज्वरे ॥ ६५ ॥
शूलोदावर्तविष्टंभजनना ज्वरवर्धनाः ।

एवं कृतेशमनाभावेवमनम्—

न शाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरः कुर्वीत शोधनम् ॥ ६६ ॥
शोधनार्हस्य वमनं प्रागुक्तं तस्य योजयेत् ।
आमाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम् ॥ ६७ ॥

पक्वे दोषे विरेचनम्—

पक्वे तु शिथिले दोषे ज्वरे वा विषमाश्रये ।
मोदकं त्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिकेसरैः ॥ ६८ ॥
ससितामधुभिर्दद्याद्व्योषाद्यं वा विरेचनम् ।
आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ॥ ६९ ॥

त्रिफलां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ।
विरिक्तानां च संसर्गी मंडपूर्वा यथाक्रमम् ॥ १०० ॥

बहिःपतन्मलस्योपेक्षा—

च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा ।
पक्वोऽपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्ठे कृतास्पदः ॥ १०१ ॥

अतिप्रवर्तमाने उपायः—

अतिप्रवर्तमानं वा पाचयन्संग्रहं नयेत् ।
आमसंग्रहणे दोषा दोषोपक्रम ईरिताः ॥ १०२ ॥

आमज्वरे दोषनिर्हरणं न कार्यम्—

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ।
प्रसुप्तं कृष्णसर्पं स कराग्रेण परामृशेत् ॥ १०३ ॥

ज्वरेणक्षीणे शोधननिषेधः—

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ १०४ ॥

ज्वरे क्षीरप्रयोगः—

क्षीरोचितस्य प्रक्षीणश्लेष्मणो दाहतृड्वतः ।
क्षीरं पित्तानिलार्तस्य पथ्यमप्यतिसारिणः ॥ १०५ ॥
तद्वपुर्लंघनोत्तप्तं प्लुष्टं वनमिवाग्निना ।
दिव्यांबु जीवयेत्तस्य ज्वरं चाशु नियच्छति ॥ १०६ ॥
संस्कृतं शीतमुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेव वा ।
विभज्य काले युंजीत ज्वरिणं हंत्यतोऽन्यथा ॥ १०७ ॥
पयः सशुंठीखर्जूरमृद्वीकाशर्कराघृतम् ।
शृतशीतं मधुयुतं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ १०८ ॥
तद्वद् द्राक्षाबलायष्टीसारिवाकणचंदनैः ।
चतुर्गुणेनांभसा वा पिप्पल्या वा शृतं पिबेत् ॥ १०९ ॥

कासाच्छ्वासाच्छिरः शूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा [1]पंचमूलीशृतं पयः ॥ ११० ॥
शृतमेरंडमूलेन बालबिल्वेन वा ज्वरात् ।
धारोष्णं वा पयः पीत्वा विबद्धानिलवर्चसः ॥ १११ ॥
सरक्तपिच्छातिसृतेः[2] सतृट्शूलप्रवाहिकात् ।
सिद्धं शुण्ठीबलाव्याघ्रीगोकंटकगुडैः पयः ॥ ११२ ॥
शोफमूत्रशकृद्वातविबंधज्वरकासजित् ।
[3]वृश्चीवबिल्ववर्षाभूसाधितं ज्वरशोफनुत् ॥ ११३ ॥
शिशिपासाररसिद्धं वा क्षीरमाशु ज्वरापहम् ।

ज्वरेनिरूहबस्ति (एनीमा) प्रयोग :—

निरूहस्तु बलं वह्निं विज्वरत्वं मुदं रुचिम् ॥ ११४ ॥
दोषे युक्तः करोत्याशु पक्वे पक्वाशयं गते ।
पित्तं वा कफपित्तं वा; पक्वाशयगतं हरेत् ॥ ११५ ॥
स्रंसनं त्रीनपि मलान्, वस्तिः पक्वाशयाश्रयान् ।

अनुवासनप्रयोग :—

प्रक्षीणकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ॥ ११६ ॥
दीप्ताग्नेर्बद्धशकृतः प्रयुंजीतानुवासनम् ।

वक्ष्यमाणबस्तयोज्वरनाशना :—

[4]पटोलनिंबच्छदनकटुकाचतुरंगुलैः ॥ ११७ ॥
[5]स्थिराबलागोक्षुरकमदनोशीरवालकैः ।
पयस्यर्धोदके क्वाथं क्षीरशेषं विमिश्रितम् ॥ ११८ ॥

---

१ पंचमूलमत्र बिल्वादिमहत्ग्राह्यम् । २ अतिसृतेरतिसारात् । ३ वृश्चीवः मूरमपुनर्नवा । वर्षाभूः स्थूला । कणा (पीपर) गोकंटकं (गोखुरू) । स्रंसनं विरेचनम् । अनुवासनं स्नेहवस्तिः । ४ छदनपत्रम् । चतुरंगुलम् (अमलतास) । ५ स्थिरा शालपर्णी ।

कल्किर्तैर्मुस्तमदनकृष्णामधुकवत्सकैः।
बस्तिं मधुघृताभ्यां च पीडयेज्ज्वरनाशनम् ॥ ११९ ॥
चतस्रः पर्णिनीर्यष्टीफलोशीरनृपद्रुमान्[१]।
क्वाथयेत्कल्कयेद्यष्टीशताह्वाफ[२]लिनीफलम् ॥ १२० ॥
मुस्तं च बस्तिः सगुडक्षौद्रसर्पिर्ज्वरापहः।
जीवंती मदनं मेदां पिप्पली मधुकं वचाम् ॥ १२१ ॥
ऋद्धिं रास्नां बला बिल्वं शतपुष्पा शतावरीम्।
पिष्ट्वा क्षीरं जलं सर्पिस्तैलं चैकत्र साधितम् ॥ १२२ ॥
ज्वरेऽनुवासनं दद्याद्यथास्नेहं यथामलम्।
ये च सिद्धिषु वक्ष्यंते बस्तयो ज्वरनाशनाः ॥ १२३ ॥

जीर्णे ज्वरे नस्यम्—

शिरोरुग्गौरवश्लेष्महरमिंद्रियबोधनम्।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्यान्नस्यं विरेचनम् ॥ १२४ ॥
स्नैहिकं शून्यशिरसो दाहार्ते पित्तनाशनम्।

यथायोगंधूमादिकल्पना—

धूमगंडूषकवलान् यथादोषं च कल्पयेत् ॥ १२५ ॥
प्रतिश्यायास्यवैरस्यशिरः कंठामयापहान्।

अरुचौ प्रतिक्रिया—

अरुचौ मातुलुंगस्य केसरं साज्यसैंधवम् ॥ १२६ ॥
धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत्।

ज्वरे अभ्यङ्गादिप्रयोग :—

यथोपशयसंस्पर्शान् शीतोष्णद्रव्यकल्पितान् ॥ १२७ ॥
अभ्यंगालेपसेकादीन् ज्वरे जीर्णे त्वगाश्रिते।
कुर्यादंजनधूमांश्च तथैवागंतुजेऽपि तान् ॥ १२८ ॥

---

१ नृपद्रुमः (अमलतास)। २ फलिनी प्रियंगुः। फलंमदनफलम्।

दाहेऽभ्यङ्गविशेष :—

दाहे सहस्रधौतेन सर्पिषाऽभ्यंगमाचरेत् ।

दाहज्वरेतैलम्—

सूत्रोक्तैश्च गणैस्तैस्तैर्मधुराम्लकषायकैः ॥ १२९ ॥
दूर्वादिभिर्वा पित्तघ्नैः शोधनादिगणोदितैः ।
शीतवीर्यैर्हिमस्पर्शैः क्वाथकल्कीकृतैः पचेत् ॥ १३० ॥
तैलं सक्षीरमभ्यंगात्सद्यो दाहज्वरापहम् ।

मस्तकलेप :—

शिरो गात्रं च [1]तैरेव नातिपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ १३१ ॥

अवगाहादि—

तत्क्वाथेन परीषेकमवगाहं च योजयेत् ।
तथाऽरनालसलिलक्षीरशुक्तघृतादिभिः ॥ १३२ ॥

अङ्गेफेनलेप :—

कपित्थमातुलिंगाम्लविदारीरोध्रदाडिमैः ।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टजेन वा ॥ १३३ ॥
लिप्तेऽङ्गे दाहरुङ्मोहच्छर्दिस्तृष्णा च शाम्यति ।

दाहज्वरेपित्तहरप्रयोग :—

यो वर्णितः पित्तहरो दोषोपक्रमणे क्रमः ॥ १३४ ॥
तं च शीलयतः शीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः ।

शीतज्वरे सुखोष्णतैलाभ्यङ्ग :—

वीर्योष्णैरुष्णसंस्पर्शैस्तगरागुरुकुंकुमैः ॥ १३५ ॥
कुष्ठस्थौणेयशैलेयसरलामरदारुभिः ।
नखराास्नापुरवचाचंडेलाद्वयचोरकैः ॥ १३६ ॥
पृथ्वीकाशिग्रुसुरसाहिंस्राध्यामकसर्षपैः ।

---

१ तैः-सूत्रोक्तैर्दूर्वादिभिश्च ।

दशमूलामृतैरंडद्वयपत्तूररोहिषैः ॥ १३७ ॥
तमालपत्रभूनिंबशल्लकीधान्यदीप्यकैः ।
मिशिमाषकुलत्थाग्निग्रकीर्यानाकुलीद्वयैः ॥ १३८ ॥
अन्यैश्च तद्विधैर्द्रव्यैः शीते तैलं ज्वरे पचेत् ।
क्वथितैः कल्कितैर्युक्तैः सुरासौवीरकादिभिः ॥ १३९ ॥
तेनाभ्यंज्यात्सुखोष्णेन,

पूर्वोक्तैर्लेपनादि—

तैः सुपिष्टैश्च लेपयेत् ।
कवोष्णैस्तैः परीषेकमवगाहं च कल्पयेत् ॥ १४० ॥
केवलैरपि तद्वच्च शुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ।
आरग्वधादिवर्गं च पानाभ्यंजनलेपनैः ॥ १४१ ॥
धूपानगरुजान्यांश्च वक्ष्यंते विषमज्वरे ।

स्वेदादिशीलनम्—

अग्न्यनग्निकृतान्स्वेदान् स्वेदिभेषजभोजनम् ॥ १४२ ॥
गर्भभूवेश्मशयनं कुथाकंबलरल्लकान् ।
निर्धूमदीप्तैरंगारैर्हसंतीश्च[1] हसंतिकाः ॥ १४३ ॥
मद्यं सच्यूषणं तक्रं कुलत्थव्रीहिकोद्रवान् ।
संशीलयेद्वेपथुमान् यच्चान्यदपि पित्तलम् ॥ १४४ ॥
दयिताः स्तनशालिन्यः पीना विभ्रमभूषणाः ।
यौवनासवमत्ताश्च तमालिंगेयुरंगनाः ॥ १४५ ॥
वीतशीतं च विज्ञाय [2]तास्ततोऽपनयेत्पुनः ।

सन्निपातज्वर चिकित्सा—

वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य च ॥ १४६ ॥
कफस्थानानुपूर्व्या या [3]तुल्यकक्षाञ्जयेन्मलान् ।

---

१ निर्धूमदीप्तैरङ्गारैर्हसन्तीरिव हसन्तिका अग्निशकटिकाः "अँगीठी," हि० । २ अङ्गनाः । ३ कफश्चस्थानञ्चतयोरानुपूर्व्या क्रमेण । तुल्यकक्षान्समान् । पूर्वं जेतव्यस्ततो पित्तं ततोवायुरितिकफानुपूर्वी । स्थानमत्रामाशयस्तेना यस्थो दोषः प्राक् जेतव्यः पश्चात्पक्वाशयस्थः । इतिस्थानानुपूर्वी चिकित्सा ।

कर्णमूलशोफचिकित्सा—

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ॥ १४७ ॥
शोफः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ।
रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिःपानैश्च तं जयेत् ॥ १४८ ॥
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः ।

ज्वरे शिरामोक्ष :—

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरो यस्य न शाम्यति ॥ १४९ ॥
शाखानुसारी तस्याशु मुंचेद्बाह्वोः क्रमाच्छिराम् ।

विषमज्वरचिकित्सा—

अयमेव विधिः कार्यो विषमेऽपि यथायथम् ॥ १५० ॥
ज्वरे विभज्य वातादीन् यश्चानंतरमुच्यते ।
पटोलकटुकामुस्ताप्राणदामधुकैः[1] कृताः ॥ १५१ ॥
त्रिचतुःपंचशः क्वाथा विषमज्वरनाशनाः ।
योजयेत्त्रिफला पथ्यां गुडूची पिप्पली पृथक् ॥ १५२ ॥
तैस्तैर्विधानैः सगुडैर्भल्लातकमथाऽपि वा ।
लंघनं बृंहणं चाऽपि ज्वरागमनवासरे ॥ १५३ ॥
प्रातः सतैलं लशुनं प्राग्भक्तं वा तथा घृतम् ।
जीर्णं तद्वद्दधिपयस्तक्रं सर्पिश्च षट्पलम् ॥ १५४ ॥
कल्याणकं पञ्चगव्यं तिक्ताख्यं वृषसाधितम् ।
त्रिफलाकोलतर्कारीक्वाथदध्ना[2] शृतं घृतम् ॥ १५५ ॥
तिल्वकत्वक्कृतावापं विषमज्वरजित्परम् ।
सुरां तीक्ष्णं च यन्मद्यं शिखितित्तिरिकुक्कुटान् ॥ १५६ ॥
मांसं मध्योष्णवीर्यं च सहान्नेन प्रकामतः ।
सेवित्वा तदहः स्वप्यादथवा पुनरुल्लिखेत् ॥ १५७ ॥

---

१ प्राणदा हरीतकी । २ तर्कारी अग्निमन्थः ।

सविषो महतीं मात्रां पीत्वा तच्छर्दयेत्पुनः ।
नीलिनीमजगंधां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥ १५८ ॥
पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः ।
मनोह्वा सैंधवं कृष्णा तैलेन नयनांजनम् ॥ १५९ ॥
योज्यं,
हिंगुसमा व्याघ्री वसा नस्यं ससैंधवम् ।
पुराणसर्पिः सिंहस्य वसा तद्वत्ससैंधवा ॥ १६० ॥
पलंकषा निंबपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी ।
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपो विड् वा बिडालजा ॥ १६१ ॥
पुरध्यामवचासर्जनिंबार्कागरुदारुभिः ।
धूपो ज्वरेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः ॥ १६२ ॥
धूपनस्यांजनत्रासा ये चोक्ताश्चित्तवैकृते ।
दैवाश्रयं च भैषज्य ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ १६३ ॥
विशेषाद्विषमान्प्रायस्ते ह्यागंत्वनुबंधजाः ।
यथास्वं च सिरा विध्येदशांतौ विषमज्वरे ॥ १६४ ॥
केवलानिलवीसर्पविस्फोटाभिहतज्वरे ।
सर्पिःपानहिमालेपसेकमांसरसाशनम् ॥ १६५ ॥
कुर्याद्यथास्वमुक्तं च रक्तमोक्षादिसाधनम् ।
ग्रहोत्थे भूतविद्योक्तं बलिमंत्रादिसाधनम् ॥ १६६ ॥
ओषधीगंधजे पित्तशमनं, विषजिद्विषे ।
इष्टैरर्थैर्मनोज्ञैश्च यथादोषशमेन च ॥ १६७ ॥
हिताहितविवेकैश्च ज्वरं क्रोधादिजं जयेत् ।
क्रोधजो याति कामेन, शांति क्रोधेन कामजः ॥ १६८ ॥
भयशोकोद्भवौ [२]ताभ्यां, भीशोकाभ्यां तथेतरौ ।
शापाथर्वणमंत्रोत्थे विधिर्दैवव्यपाश्रयः ॥ १६९ ॥

---

१ पलंकषा गुग्गुलुः । २ ताभ्यां कामक्रोधाभ्याम् । इतरौ कामक्रोधजौ ।

ते ज्वराः केवलाः पूर्वं व्याप्यंतेऽनंतर मलैः ।
तस्माद्दोषानुसारेण तेष्वाहारादि कल्पयेत् ॥ १७० ॥
नहि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विनाकृतः ।
ज्वरकालं स्मृतिं चास्य हारिभिर्विषयैर्हरेत् ॥ १७१ ॥
करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम् ।

ज्वरे व्यायामादित्याग :—

त्यजेदाबललाभाच्च व्यायामस्नानमैथुनम् ॥ १७२ ॥
गुर्वसात्म्यविदाह्यन्नं यच्चान्यज्ज्वरकारणम् ।
न विज्वरोऽपि सहसा [1]सर्वान्नीनो भवेत्तथा ।
निवृत्तोऽपि ज्वरः शीघ्रं व्यापादयति दुर्बलम् ॥ १७३ ॥
सद्यः प्राणहरो यस्मात्तमात्तस्य विशेषतः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्कुर्यादभिषग्जितम् ॥ १७४)
ओषधयो मणयश्च सुमंत्राः साधुगुरुद्विजदैवतपूजा :
प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च घ्नन्त्यपि विष्णुकृतं ज्वरमुग्रम्" ॥१७५॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

ऊर्ध्वगरक्तपित्तोपक्रम :—

"ऊर्ध्वगं [2]बलिनो वेगमेकदोषानुगं नवम् ।
रक्तपित्तं सुखे काले साधयेन्निरुपद्रवम् ॥ १ ॥

अधोगस्ययापनम्—

अधोगं यापयेद्रक्तं यच्च दोषद्वयानुगम् ।
शांतं शांतं पुनः कुप्यन्मार्गान्मार्गान्तरं च यत् ॥ २ ॥

---

१ सर्वान्नीनः सर्वान्नभक्षकः । २ बलिनो बलयुक्तस्य रोगिणः ।

अतिप्रवृत्तं मंदाग्नेस्त्रिदोषं [1]द्विपथं त्यजेत् ।
संतर्पणोत्थं बलिनो बहुदोषस्य साधयेत् ॥[2]३ ॥

रक्तपित्तस्यविरेकादिनासाधनम् :—

ऊर्ध्वभागं विरेकेण, वमनेन त्वधोगतम् ।
शमनैर्बृंहणैश्चान्यल्लंध्यबृंह्यानवेक्ष्य च ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वं प्रवृत्ते शमनौ रसौ तिक्तकषायकौ ।
उपवासश्च [3]निःशुंठीषडंगोदकपायिनः ॥ ५ ॥
अधोगे रक्तपित्ते तु बृंहणो मधुरो रसः ।
ऊर्ध्वगे तर्पणं योज्यं प्राक्च पेया त्वधोगते ॥ ६ ॥

अशुद्धरक्तधारणनिषेधादि :—

अश्नतो बलिनोऽशुद्धं न धार्यं तद्धि रोगकृत् ।
धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवच्छीघ्रकारि तत् ॥ ७ ॥

लेहादि :—

त्रिवृच्छयामाकषायेण कल्केन च सशर्करम् ।
साधयेद्विधिवल्लेहं लिह्यात्पाणितलं ततः ॥ ८ ॥

मोदक :—

त्रिवृता त्रिफला [4]श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः संनिपातोर्ध्वरक्तशोफज्वरापहः ॥ ९ ॥

त्रिवृत्समसिता तद्वत् पिप्पलीपादसंयुता ।
वमनं फलसंयुक्तं तर्पणंससितामधु ॥ १० ॥

---

१ द्विपथमुभयमार्गप्रवृत्तम् । २ अन्यदपतर्पणोत्थं रक्तपित्तं, दुर्बलस्याल्पदोषस्योर्ध्वगं शमनैरधोगं तु बृंहणैः। लङ्घ्यबृंह्यानवेक्ष्यचेति लङ्घनादुत्पन्नमधोगमपि शमनैः। बृंहणादुत्पन्नमूर्ध्वगमपि लङ्घनैरुपाचरेदित्यरुणदत्ताभिप्रायः।
३ निःशुण्ठीति शुण्ठीरहितं षडङ्गोदकम् । ४ श्यामा कृष्णत्रिवृत् (निशोथ)।

ग्रथितं वा ज्वरे क्षौद्रयुक्तं वा मधुरौषधम् ।
क्षीरं वा रक्तपित्तिनां,

मंथपेयादि—

मृद्वन्नान्तरो विधिः ॥ ११ ॥
यथास्वं मंथपेयादिः प्रयोज्यो रक्षता बलम् ।
मंथो ज्वरोक्तो द्राक्षादिः पित्तघ्नैर्वा फलैः कृतः ॥ १२ ॥
मधुखर्जूरमृद्वीकापरूषकसिताम्भसा ।
मंथो वा १पंचसारेण सघृतैर्लाजसक्तुभिः ॥ १३ ॥
दाडिमामलकाम्लो वा मन्दाग्न्यम्लाभिलाषिणाम् ।
कमलोत्पलकिंजल्कपृश्निपर्णीप्रियंगुकाः ॥ १४ ॥
उशीरं धातकी रोध्रं शृंगवेरं कुचन्दनम् ।
ह्रीवेरं धातकीपुष्पं बिल्वमध्यं दुरालभा ॥ १५ ॥
अर्धार्धविहिता पेया वक्ष्यन्ते पादयोगिकाः ।
भूनिम्बमेघजलदा मसूराः पृश्निपर्ण्यपि ॥ १६ ॥
विदारिगंधा मुद्गाश्च बला सर्पिर्हरेणुका ।
जांगलानि च मांसानि शीतवीर्याणि साधयेत् ॥ १७ ॥
पृथक्पृथग्जले तेषां यवागूः कल्पयेद्धिमे ।
शीताः सशर्कराक्षौद्रास्तद्वन्मांसरसानपि ॥ १८ ॥
ईषदम्लाननम्लान्वा घृतभृष्टान्सशर्करान् ।

रक्तपित्तेधान्यशाकादि—

शूकशिम्बीभवं धान्यं रक्ते शाकं च शस्यते ॥ १९ ॥
अन्नस्वरूपविज्ञाने यदुक्तं लघु शीतलम् ।

जलम्—

पूर्वोक्तमंबु २पानीयं पंचमूलेन वा शृतम् ॥ २० ॥

---

१ मधुखर्जूरादि पञ्चरूपकेण पञ्चसारेण । २ पूर्वोक्तमम्बुषडङ्गं शुण्ठीरहितं पानीयं पेयम् ।

लघुना शृतशीतं वा मध्वंभो वा [1]फलांबु वा ।
शशः सवास्तुकः शस्तो विबंधे, तित्तिरिः पुनः ॥ २१ ॥
उदुंबरस्य निर्यूहे साधितो मारुतेऽधिके ।
[2]प्लक्षस्य बर्हिणस्तद्वन्न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः ॥ २२ ॥

निदानवर्जनम्—

यत्किंचिद्रक्तपित्तस्य निदानं तच्च वर्जयेत् ।

पानम्—

वासारसेन फलिनी मृद्रोध्रांजनमाक्षिकम् ॥ २३ ॥
पित्तासृक् शमयेत्पीतं निर्यासो वाऽटरूषकात् ।
शर्करामधुसंयुक्तः केवलो वा शृतोऽपि वा ॥ २४ ॥
वृषः सद्यो जयत्यस्रं स ह्यस्य परमौषधम् ।

त्रयःक्वाथाः—

पटोलमालतीनिंबचंदनद्वयपद्मकम् ॥ २५ ॥
रोध्रो वृषस्तंदुलीयः कृष्णामृन्मदयंतिका ।
शतावरी [3]गोपकन्या काकोल्यौ मधुयष्टिका ॥ २६ ॥
रक्तपित्तहराः क्वाथास्त्रयः समधुशर्कराः ।

पलाशत्वक्क्वाथः—

पलाशवल्कक्वाथो वा सुशीतः शर्करान्वितः ॥ २७ ॥
पिबेद्वा मधुसर्पिर्भ्यां गवाश्वशकृतो रसम् ।

ग्रथितेरक्तपित्ते लेहः—

सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत् ॥ २८ ॥

अतिस्रुते रुधिरपानम्—

अतिनिःस्रुतरक्तश्च क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ।
जांगलं भक्षयेद्वाजमाममपित्तयुतं यकृत् ॥ २९ ॥

---

१ फलैर्द्राक्षादिभिः शृतं फलाम्बु । २ प्लक्षस्यनिर्यूहे बर्हिणो मयूरस्तद्वन्मारुतेऽधिके । न्यग्रोधस्य च निर्यूहे कुक्कुटः । ३ गोपकन्या सारिवा ।

रक्तपित्तनाशकाः कषायाः :—

चंदनोशीरजलदलाजमुद्गकणायवैः ।
बलाजले पर्युषितैः कषायो रक्तपित्तहा ॥ ३० ॥
प्रसादश्चंदनांभोजसेव्यं मृद्भृष्टलोष्टजः ।
सुशीतः ससिताक्षौद्रः शोणितातिप्रवृत्तिजित् ॥ ३१ ॥
आपोथ्य वा नवे कुंभे प्लावयेदिक्षुगंडिकाः ।
स्थितं तद्गुप्तमाकाशे रात्रिं प्रातः शृतं जलम् ॥ ३२ ॥
मधुमद्वि[1]कसांभोजकृतोत्तंसं च तद्गुणम् ।

ज्वरीयकषायाः :—

ये च पित्तज्वरे चोक्ताः कषायास्तांश्च योजयेत् ॥ ३३ ॥

छागपयआदेर्योजना :—

कषायैर्विविधैरेभिर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे ।
रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः ॥ ३४ ॥
युंज्याच्छागं शृतं तद्वद्गव्यं पंचगुणेऽम्भसि ।
पंचमूलेन लघुना शृतं वा समितामधु ॥ ३५ ॥
जीवकर्षभकद्राक्षाबलागोक्षुरनागरैः ।
पृथक्पृथक् शृतं क्षीरं सघृतं सितयाऽथवा ॥ ३६ ॥

मेढ्रप्रवृत्तरक्तपित्त चिकित्सा—

[2]गोकंटकाभीरुशृतं पर्णिनीभिस्तथा पयः ।
हंत्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम् ॥ ३७ ॥

गुदगते चिकित्सा—

विण्मार्गगे विशेषेण हितं मोचरसेन तु ।
वटप्ररोहैः शुंगैर्वा शुंठ्युदीच्योत्पलैरपि ॥ ३८ ॥

---

१ प्लावयेज्जले प्रक्षिपेत् । विकसाम्भोजकृतोत्तंसं प्रफुल्लकमलप्रक्षेपयुक्तम् ।
२ गोकण्टो गोक्षुरः ।

रक्तातिसारदुर्नामचिकित्सां चाऽत्र कल्पयेत् ।

भोजनादि—

पीत्वा कषायान् पयसा भुंजीत पयसैव च ॥ ३९ ॥
कषाययोगैरेभिर्वा विपक्वं पाययेद्घृतम् ।

वासाघृतम्—

[१]समूलमस्तकं क्षुण्णं वृषमष्टगुणेऽम्भसि ॥ ४० ॥
पक्त्वाष्टांशावशेषेण घृतं तेन विपाचयेत् ।
पुष्पगर्भं च तच्छीतं सक्षौद्रं पित्तशोणितम् ॥ ४१ ॥
पित्तगुल्मज्वरश्वासकासहृद्रोगकामलाः ।
तिमिरभ्रमवीसर्पस्वरसादांश्च नाशयेत् ॥ ४२ ॥

पलाशघृतम्—

पालाशवृंतस्वरसे तद्गर्भं च घृतं पचेत् ।
सक्षौद्रं तच्च रक्तघ्नं तथैव त्रायमाणया ॥ ४३ ॥

क्षारप्रयोग :—

रक्ते सपिच्छे सकफे ग्रथिते कंठमार्गगे ।
लिह्यान्माक्षिकसर्पिर्भ्यां क्षारमुत्पलनालजम् ॥ ४४ ॥

लेह्य :—

पृथक्पृथक् तथाम्भोजरेणुश्यामामधूकजम् ।

बस्ति :—

गुदागमे विशेषेण शोणिते बस्तिरिष्यते ॥ ४५ ॥

घ्राणगेरक्तपित्तेचिकित्सा—

घ्राणगे रुधिरे शुद्धे नावनं चानुपेचयेत् ।
कषाययोगान् पूर्वोक्तान् क्षीरेक्ष्वादिरसाप्लुतान् ॥ ४६ ॥

---

१ समूलमस्तकं पञ्चाङ्गम् । गुणाणि च वृषस्यैव । तेषां कल्कः ।

क्षीरादीन्ससितांस्तोयं केवलं वा जलं हितम् ।
रसो दाडिमपुष्पाणामाम्रोत्थः शाड्वलस्य वा ॥ ४७ ॥

प्रदेहादयः—

कल्पयेच्छीतवर्गं च प्रदेहाभ्यंजनादिषु ।

अन्यदौषधम्—

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरंतश्च भेषजम् ।
रक्तपित्ते हितं तच्च क्षतक्षीणे हितं च यत् ॥ ४८ ॥"

तृतीयोऽध्यायः

अथाऽतः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

कासे (खांसी) स्नेहाद्युपचार :—

"केवलानिलजं कासं स्नेहैरादावुपाचरेत् ।
वातघ्नसिद्धैः स्निग्धैश्च पेयायूपरसादिभिः ॥ १ ॥
लेहैर्धूमैस्तथाभ्यंगैः स्वेदसेकावगाहनैः ।
बस्तिभिर्बद्धविड्वातं सपित्तं त्वौर्ध्वभक्तिकैः ॥ २ ॥
घृतैः क्षीरैश्च सकफं जयेत्स्नेहविरेचनैः ।

गुडूच्यादिघृतम्—

गुडूचीकंटकारीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे ॥ ३ ॥
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ।

क्षारादिसिद्धंघृतम्—

क्षारराम्नावचाहिंगुपाठायष्ट्याह्वधान्यकैः ॥ ४ ॥
द्विशाणैः सर्पिषः प्रस्थं पंचकोलयुतैः पचेत् ।
दशमूलस्य निर्यूहे पीतो मंडानुपायिना ॥ ५ ॥

सकासश्वासहृत्पार्श्वग्रहणीरोगगुल्मनुत् ।

घृतविशेष :—

द्रोणेऽपः साधयेद्रास्नादशमूलशतावरीः ॥ ६ ॥
पलोन्मिता द्विकुडवं कुलत्थं बदरं यवम् ।
तुलार्धं चाजमांसस्य तेन साध्यं घृताढकम् ॥ ७ ॥
समक्षीरं पलांशैश्च जीवनीयैः समीक्ष्य तत् ।
प्रयुक्तं वातरोगेषु पाननावनबस्तिभिः ॥ ८ ॥
पंचकासान् शिरःकंपं योनिवंक्षणवेदनाम् ।
सर्वांगैकांगरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलान् जयेत् ॥ ९ ॥

विदार्यादिघृतम्—

विदार्यादिगणक्वाथकल्कसिद्धं च कासजित् ।

अन्यद् घृतम्—

अशोकबीजक्षवकजंतुघ्नाजनपद्मकैः ॥ १० ॥
सविडैश्च घृतं सिद्धं तच्चूर्णं वा घृतप्लुतम् ।
लिह्यात्पयश्चानुपिवेदाजं कासाभिपीडितः ॥ ११ ॥

विडंगादिचूर्णम्—

विडंगं नागरं रास्ना पिप्पली हिंगुसैंधवम् ।
भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिवेद्वा घृतमात्रया ॥ १२ ॥
सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिध्माहताग्निषु ।

वातजेलेहादि—

दुरालभां शृंगवेरं शठीं द्राक्षां सितोपलाम् ॥ १३ ॥
लिह्यात्कर्कटशृंगीं च कासे तैलेन वातजे ।
दुस्पर्शां पिप्पलीं मुस्तां भार्गीं कर्कटकीं शठीम् ॥ १४ ॥
पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितान्यवलेहयेत् ।,
तद्वत्सकृष्णां शुंठीं च सभार्गीं तद्वदेव च ॥ १५ ॥
पिबेच्च कृष्णां कोष्णेन सलिलेन ससैंधवाम् ।
मस्तुना समितां शुंठीं दध्ना वा कणरेणुकाम् ॥ १६ ॥

पिबेद्बदरमज्जो वा मदिरादधिमस्तुभिः ।
अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैंधवम् ॥ १७ ॥

धूमपानम्—

कासी सपीनसो धूमं स्नैहिकं विधिना पिबेत् ।
हिध्माश्वासोक्तधूमांश्च क्षीरमांसरसाशनः ॥ १८ ॥

भोजनम्—

ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ १९ ॥

पेया—

यवानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः ।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशठिपौष्करैः ॥ २० ॥
सिद्धां स्निग्धाम्ललवणां पेयामनिलजे पिबेत् ।
कटिहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिध्माप्रणाशनीम् ॥ २१ ॥
दशमूलरसे तद्वत् पञ्चकोलगुडान्विताम् ।
पिबेत्पेयां समतिलां [1]क्षैरेयीं वा ससैंधवाम् ॥ २२ ॥
मात्स्यकौक्कुटवाराहैर्मांसैर्वा साज्यसैंधवाम् ।

शाकभक्षणम्—

वास्तुको वायसी शाकं कासघ्नः सुनिषण्णकः ॥ २३ ॥
कंटकार्याः फलं पत्रं बालं शुष्कं च मूलकम् ।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ २४ ॥
दधिमस्त्वारनालाम्लफलाम्बुमदिराः पिबेत् ।

पित्तकासचिकित्सा—

पित्तकासे तु सकफे वमनं सर्पिषा हितम् ॥ २५ ॥
तथा मदनकाश्मर्यमधुकक्वथितैर्जलैः ।
फलयष्ट्याह्वकल्कैर्वा विदारीक्षुरसाप्लुतैः ॥ २६ ॥

---

१. क्षैरेयीं क्षीरकृताम्।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
युंज्याद्विरेकाय युतां घनश्लेष्मणि तिक्तकैः ॥ २७ ॥
हृतदोषो हिमं स्वादु स्निग्धं संसर्जनं भजेत् ।
घने कफे तु शिशिरं रूक्षं तिक्तोपसंहितम् ॥ २८ ॥
लेहः पैत्ते सिताधात्रीक्षौद्रद्राक्षाहिमोत्पलैः ।
सकफे [1]ऽब्दमरिचः, सघृतः सानिले हितः ॥ २९ ॥
मृद्वीकार्धशतं त्रिंशत्पिप्पलीः शर्करा पलम् ।
लेहयेन्मधुना गोर्वा क्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥ ३० ॥
त्वगेलाव्योपमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः ।
लाजमुस्ताशठीरास्नाधात्रीफलबिभीतकैः ॥ ३१ ॥
शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहो हृद्रोगकासहा ।
मधुरैर्जाङ्गलरसैर्यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ३२ ॥
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ।
घनश्लेष्मणि लेहाश्च तिक्तका मधुसंयुताः ॥ ३३ ॥
शालयः स्युस्तनुकफे षष्टिकाश्च रसादिभिः ।
शर्कराम्भोऽनुपानार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसाः पयः ॥ ३४ ॥
काकोलीबृहतीमेदाद्वयैः सवृषनागरैः ।
पित्तकासे रसक्षीरपेयायूषान् प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥
द्राक्षां कणां पंचमूलं तृणाख्यं च पचेज्जले ।
तेन क्षीरं शृतं शीतं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ३६ ॥
साधितां तेन पेयां वा सुशीतां मधुनाऽन्विताम् ।
शठीह्रीवेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ॥ ३७ ॥
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्च्छितम् ।
शर्करां जीवकं मुद्गमाषपर्ण्यौ दुरालभाम् ॥ ३८ ॥
कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः क्षीरेणाष्टगुणेन तत् ।
पानभोजनलेहेषु प्रयुक्तं पित्तकासजित् ॥ ३९ ॥

---

१ अब्दोमुस्ता ।

लिह्याद्वा चूर्णमेतेषां[1] कषायमथवा पिबेत् ।

कफकासचिकित्सा—

कफकासी पिबेदादौ सुरकाष्ठात्प्रदीपितात् ॥ ४० ॥
स्नेहं परिस्रुतं व्योपयवक्षारावचूर्णितम् ।
स्निग्धं विरेचयेदूर्ध्वमधो मूर्ध्नि च युक्तितः ॥ ४१ ॥
तीक्ष्णैर्विरेकैर्बलिनं [2]संसर्गी चास्य योजयेत् ।
यवमुद्गकुलत्थान्नैरुष्णरूक्षैःकटूत्कटैः ॥ ४२ ॥
कासमर्दकवार्ताकव्याघ्रीक्षारकणान्वितैः ।
[3]धान्वबैलरसैः स्नेहैस्तिलसर्षपनिम्बजैः ॥ ४३ ॥
दशमूलांबु धर्मांबु मद्यं मध्वंबु वा पिबेत् ।
मूलैः पौष्करशम्याकपटोलैः संस्थितं निशाम् ॥ ४४ ॥
पिबेद्वारि महर्क्षांद्रं कालेष्वन्नस्य वा त्रिषु ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं शृंगबेरं बिभीतकम् ॥ ४५ ॥
शिखिकुक्कुटपिच्छानां मषी क्षारो यवोद्भवः ।
विशाला पिप्पलीमूलं त्रिवृता च मधुद्रवाः ॥ ४६ ॥
कफकासहरा लेहास्त्रयः श्लोकार्धयोजिताः ।
मधुना मरिचं लिह्यान्मधुनैव च [4]जोंगकम् ॥ ४७ ॥
पृथग्रसांश्च मधुना व्याघ्रीवार्ताकभृंगजान् ।
[5]कासघ्नस्याश्वशकृतः सुरसस्यासितस्य च ॥ ४८ ॥
देवदारुशठीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभाः ।
पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्रीसितोपला ॥ ४९ ॥
लाजा मिसोपला सर्पिः शृंगी धात्रीफलोद्भवा ।
मधुतैलयुता लेहास्त्रयो वातानुगे कफे ॥ ५० ॥
द्वे पले दाडिमादष्टौ गुडाद्व्योषात्पलत्रयम् ।
रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासजित् ॥ ५१ ॥

---

१ एतेषां शर्कराजीवकादीनाम् । २ संसर्गीपेयादिसंसर्गी । ३ बैलरसा बिलेशयरसाः । ४ जोङ्गकम्(अगर) । ५ कासघ्नं कासमर्दः कसौंदी हि० ।

गुडक्षारोपणकणादाडिमं श्वासकासजित् ।
क्रमात्पलद्वयार्धांशकर्षांशार्धपलोन्मितम् ॥ ५२ ॥
पिबेज्ज्वरोक्तं पथ्यादि सशृंगीकं च पाचनम् ।
अथवा दीप्यकत्रिवृद्विशालाघनपौष्करम् ॥ ५३ ॥
सकणं क्वथितं मूत्रे कफकासी जलेऽपि वा ।
तैलभृष्टं च [1]वैदेहीकल्काक्षंससितोपलम् ॥ ५४ ॥
पाययेत्कफकासघ्नं कुलित्थसलिलाप्लुतम् ।

घृतानि--

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ॥ ५५ ॥
पुष्कराह्वशठीबिल्वसुरसाव्योषहिंगुभिः ।
पेयानुपानं तत्सर्पिर्वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ५६ ॥
निर्गुंडीपत्रनिर्याससाधितं कासजिद्घृतम् ।
घृतं रसे विडंगानां व्योषगर्भं च साधितम् ॥ ५७ ॥
पुनर्नवाशिवा[2]टिकासरलकासमर्दामृता-
पटोलबृहतीफणिज्जकरसैः पयःसंयुतैः ।
घृतं त्रिकटुना च सिद्धमुपयुज्य संजायते ।
न कासविषमज्वरक्षयगुदांकुरेभ्यो भयम् ॥ ५८ ॥

कण्टकारीघृतम्--

समूलफलपत्रायाः कंटकार्या रसाढके ।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडंगशठिदाडिमैः ॥ ५९ ॥
सौवर्चलयवक्षारमूलामलकपौष्करैः ।
वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीचित्रकर्द्धिभिः ॥ ६० ॥
मृद्वीकाचव्यवर्षाभूदुरालंभाम्लवेतसैः ।
शृंगीतामलकीभार्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ६१ ॥

---

१ वैदेही पिप्पली । २ शिवाटिका वंशपत्री इति शिवदास सेनः । श्वेतपुनर्नवा, शेफालिकेत्यन्ये, इति सुश्रुते डल्हणः ।

कल्कैस्तत्सर्वकासेषु श्वासहिध्मासु चेष्यते ।

व्याघ्री लेह :—

पचेद्व्याघ्रीतुलां क्षुण्णां [1]वहेऽपामाढकस्थिते ॥ ६२ ॥
क्षिपेत् पूते तु संचूर्ण्य व्योषरास्नामृताग्निकान् ।
शृंगीभार्गीघनग्रंथिधन्वयासान् पलार्धकान् ॥ ६३ ॥
सर्पिषः षोडशपलं चत्वारिंशत्पलानि च ।
मत्स्यंडिकायाः शुद्धायाः पुनश्च तदधिश्रयेत् ॥ ६४ ॥
दर्वीलेपिनि शीते च पृथक् द्विकुडवं क्षिपेत् ।
पिप्पलीनां तवक्षीर्या माक्षिकस्यानवस्य च ॥ ६५ ॥
लेहोऽयं गुल्महृद्रोगदुर्नामश्वासकासजित् ।

धूमा :—

शमनं च पिबेद्धूमं शोधनं बहुले कफे ॥ ६६ ॥
मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तेंगुदीत्वचः ।
धूमं कासघ्ननिधिना पीत्वा क्षीरं पिबेदनु ॥ ६७ ॥
[2]निष्ठ्यूताते गुडयुतं कोष्णं धूमो निहंति सः ।
वातश्लेष्मोत्तरान् कासानचिरेण चिरंतनान् ॥ ६८ ॥
तमकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबंधजः ।
पित्तकासक्रिया तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥
कफानुबंधे पवने कुर्यात्कफहरां क्रियाम् ।
पित्तानुबंधयोर्वातकफयोः पित्तनाशनीम् ॥ ७० ॥
वातश्लेष्मात्मके शुष्के स्निग्धं, चार्द्रे विरूक्षणम् ।
कासे कर्म सपित्ते तु कफजे तिक्तसयुतम् ॥ ७१ ॥

उरःक्षतचिकित्सा—

उरस्यंतःक्षते सद्यो लाक्षां क्षौद्रयुतां पिबेत् ।
क्षीरेण शालीन् जीर्णेऽद्यात्क्षीरेणैव सशर्करान् ॥ ७२ ॥

---

१ वहे चतुर्द्रोणे । २ निष्ठ्यूतान्ते धूमकरणान्ते अनुपश्चात्कोष्णं क्षीरं गुडयुतं पिबेदित्यर्थः ।

पार्श्वबस्तिसरुक्चालपित्ताग्निस्तान् सुरायुतान् ।
भिन्नविट्कः समुस्तातिविषापाठां सवत्सकान् ॥ ७३ ॥
लाक्षां सर्पिर्मधूच्छिष्टं जीवनीयं गणं मितम् ।
त्वक्क्षीरीमंमितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलः पिबेत् ॥ ७४ ॥
[१]इक्ष्वालिकाबिसग्रंथिपद्मकेसरचंदनैः ।
श्रृतं पयो मधुयुतं संधानार्थं क्षती पिबेत् ॥ ७५ ॥
यवानां चूर्णमामानां क्षीरे सिद्धं घृतान्वितम् ।
ज्वरदाहे सिताक्षौद्रसक्तून्वा पयसा पिबेत् ॥ ७६ ॥
कासवांश्च पिबेत्सर्पिर्मधुरौषधसाधितम् ।
गुडोदकं वा क्वथितं सक्षौद्रमरिचं हिमम् ॥ ७७ ॥
चूर्णमामलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम् ।
रसायनविधानेन पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥
कासी पर्वास्थिशूली च लिह्यात्सघृतमाक्षिकान् ।
मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलान् ॥ ७९ ॥

त्रिजाता (एला) दिवटी—

त्रिजातमर्धकर्षांशं पिप्पल्यर्धपलं सिता ।
द्राक्षा मधूकं खर्जूरं पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ८० ॥
मधुना गुटिका घ्नंति ता वृष्याः पित्तशोणितम् ।
कासश्वासारुचिच्छर्दिमूर्छाहिध्मामदभ्रमान् ॥ ८१ ॥
क्षतक्षयस्वरभ्रंशप्लीहशोफाढ्यमारुतान् ।
रक्तनिष्ठीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥ ८२ ॥

अन्य योगाः—

वर्षाभूशर्करारक्तशालितंडुलजं रजः ।
रक्तष्ठीवी पिबेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोघृतैः ॥ ८३ ॥
मधूकमधुकक्षीरसिद्धं वा तंडुलीयकम् ।
यथास्वं मार्गविसृते रक्ते कुर्याच्च भेषजम् ॥ ८४ ॥

---

१ इक्ष्वालिका अम्बुः ।

मूढवातस्त्वजामेदः सुराभृष्टं ससैंधवम् ।,
क्षामः क्षीणक्षतोरस्को मंदनिद्रोऽग्निदीप्तिमान् ॥ ८५ ॥
[1]शृतक्षीरसरेणाद्यात्सघृतक्षौद्रशर्करम् ।,
शर्करां यवगोधूमं जीवकर्षभकौ मधु ॥ ८६ ॥
शृतक्षीरानुपानं वा लिह्यात्क्षीणः क्षतः कृशः ।
[2]क्रव्यात्पिशितनिर्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ॥ ८७ ॥
पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्धनम् ।,
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः ॥ ८८ ॥
[3]तालमस्तकजंबूत्वक्प्रियालैश्च सपद्मकैः ।
साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादद्याज्जातेन सर्पिषा ॥ ८९ ॥
शाल्योदनं क्षतोरस्कः क्षीणशुक्रबलेन्द्रियः ।,
वातपित्तार्दितेऽभ्यंगो गात्रभेदे घृतैर्मतः ॥ ९० ॥
तैलैश्चानिलरोगघ्नैः पीडिते मातरिश्वना ।,
हृत्पार्श्वार्तिषु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः ॥ ९१ ॥
कुर्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्ताविरोधि यत् ।,
यष्ट्याह्वनागबलयोः क्वाथे क्षीरसमे घृतम् ॥ ९२ ॥
पयस्यापिप्पलीवासीकल्कैः सिद्धं क्षते हितम् ।,

अमृतप्राशोऽवलेह :—

जीवनीयो गणः शुंठी वरी [4]वीरा पुनर्नवा ॥ ९३ ॥
बला भार्गी स्वगुप्ताह्वा शठी तामलकी कणा ।
शृंगाटकं पयस्या च पचमूलं च यह्नघु ॥ ९४ ॥
द्राक्षाक्षोडादि च फलं मधुरस्निग्धबृंहणम् ।
तैः पचेत्सर्पिषः प्रस्थं कर्षांशैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ९५ ॥
क्षीरधात्रीविदारीक्षुछागमांसरसान्वितम् ।
प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलारजः ॥ ९६ ॥

---

१ गरःमग्वानिका 'मजाई' । २ क्रव्यात् मांसभक्षकः । ३ तालमस्तकं तालफलम् । ४ वीरा-क्षीरकाकोली ।

पलार्धकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसरम् ।
विनीय चूर्णितं तस्माल्लिह्यान्मात्रां यथाबलम् ॥ ९७ ॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम् ।
[1]सुधामृतरस प्राश्यं क्षीरमांसरसाशिना ॥ ९८ ॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्शितान् ।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ॥ ९९ ॥
कासहिध्माज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत् ।
पुत्रदं छर्दिमूर्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥ १०० ॥,

घृतविशेषः—

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम्[2] ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ १०१ ॥
पालिकानि पचेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
कल्कैः स्वगुप्ताजीवंतीमेदर्षभकजीवकैः ॥ १०२ ॥
शतावर्यर्द्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ १०३ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ १०४ ॥,

समसक्तुघृतम्—

मधुकाष्टपलद्राक्षाप्रस्थक्वाथे पचेद्घृतम् ।
पिप्पल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च शीतले ॥ १०५ ॥
पृथगष्टपलं क्षौद्रशर्कराभ्यां विमिश्रयेत् ।
समसक्तु क्षतक्षीणरक्तगुल्मेषु तद्धितम् ॥ १०६ ॥,

यक्ष्मादिहरं घृतम्—

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात् ।
गव्याजयोश्च पयसोः प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०७ ॥

---

१ नागानाममरत्वकरी सुधा । देवानाममरत्वसम्पादकममृतम् । २ कत्तृणं सुगन्धतृणम् ।

सिद्धपूते मिताक्षौद्रं द्विप्रस्थं विनयेत्ततः ।
यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमेहक्षयापहम् ॥ १०८ ॥
वयःस्थापनमायुष्यं मांसशुक्रबलप्रदम् ।

घृतसेवनेप्रकार :—

घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिह्याद्वाताधिके पिबेत् ॥ १०९ ॥
लीढं निर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धन्ति नानलम् ।
आक्रामत्यनिलं पीतमूष्माणं निरुणद्धि च ॥ ११० ॥
क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येव घृतानि तु ।
त्वक्क्षीरीपिप्पलीलाजचूर्णैः पानानि योजयेत् ॥ १११ ॥
सर्पिर्गुडान्समध्वंशान् कृत्वा दद्यात्पयो नु च ।
रेतो वीर्यं बलं पुष्टिं तैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ११२ ॥

कूष्माण्डावलेह :—

वीतत्वगस्थिकूष्माण्डतुलां स्विन्नां पुनः पचेत् ।
घट्टयन् सर्पिषः प्रस्थे क्षौद्रवर्णेऽत्र च क्षिपेत् ॥ ११३ ॥
खंडाच्छत कणाशुण्ठ्योर्द्विपलं जीरकादपि ।
त्रिजातधान्यमरिचं पृथगर्धपलांशकम् ॥ ११४ ॥
अवतारितशीते च दत्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
खजेनामथ्य च स्थाप्य तन्निहन्त्युपयोजितम् ॥ ११५ ॥
कासहिध्माज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान् ।
उरःसंधानजननं मेधास्मृतिबलप्रदम् ॥ ११६ ॥
अश्विभ्यां विहितं हृद्यं कूष्माण्डकरसायनम् ।

नागबलादिप्रयोग :—

पिबेन्नागबलामूलस्यार्धकर्षाभिवर्धितम् ॥ ११७ ॥
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ।
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलवर्णकरः परम् ॥ ११८ ॥

[1]मंडूकपर्ण्याः कल्पोऽयं यष्ट्या विश्वौषधस्य च ।

नागबलाघृतम्—

पाददोषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ॥ ११६ ॥
तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरेण पाचयेत् ।
पलार्धिकैश्चातिबलाबलायष्टीपुनर्नवैः ॥ १२० ॥
[2]प्रपौंडरीककाश्मर्यप्रियालकपिकच्छुभिः ।
अश्वगंधामिताभीरुमेदायुग्मत्रिकंटकैः ॥ १२१ ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीक्षीरशुक्लाद्विजीरकैः ।
एतन्नागबलासर्पिः पित्तरक्तक्षतक्षयान् ॥ १२२ ॥
जयेत्तृड्भ्रमदाहांश्च बलपुष्टिकरं परम् ।
वर्ण्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् ॥ १२३ ॥
उपयुज्य च षण्मासान् वृद्धोऽपि तरुणायते ।

दीप्तेऽग्नावेतद्विध्यादि—

दीप्तेऽग्नौ विधिरेष स्यान्मंदे दीपनपाचनः ॥ १२४ ॥
यक्ष्मोक्तः क्षतिना शस्तो, ग्राही शकृति तु द्रवे ।

अगस्त्यहरीतकी—

दशमूलं स्वयंगुप्तां शंखपुष्पीं शठीं बलाम् ॥ १२५ ॥
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ।
भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशान् यवाढकम् ॥ १२६ ॥
हरीतकीशतं चैकं जले पंचाढके पचेत् ।
यवस्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ॥ १२७ ॥
पचेद्गुडतुलां दत्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ।
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ १२८ ॥
लेहं द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ।
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ १२९ ॥

---

१ मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । विश्वौषधं शुण्ठी । २ कपिकच्छुः 'कौंवाच' ।

पंचकासान् क्षयं श्वासं सहिध्मं विषमज्वरम् ।
मेहगुल्मग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ १३० ॥
अगस्तिविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।

वसिष्ठोक्तं रसायनम्—

दशमूलं बलां मूर्वां हरिद्रे पिप्पलीद्वयम् ॥ १३१ ॥
पाठाश्वगंधापामार्गस्वगुप्तातिविषामृतम् ।
बालबिल्वं त्रिवृद्दंतीमूलं पत्रं च चित्रकात् ॥ १३२ ॥
पयस्या कुटजं हिस्रां पुष्प सारं च बीजकात् ।
बोटस्थविरभल्लातविकंकतशतावरोः ॥ १३३ ॥
पूतीकरंजशम्याकचंद्रलेखासहाचरम् ।
सौभाजनकनिंबत्वगिक्षुरं च पलाशकम् ॥ १३४ ॥
पथ्यासहस्रं सशतं यवाना चाढकद्वयम् ।
पचेदष्टगुणे तोये यवस्वेदेऽवतारयेत् ॥ १३५ ॥
पूते क्षिपेत्सपथ्ये च तत्र जीर्णगुडात्तुलाम् ।
तैलाज्यधात्रीरसतः प्रस्थं प्रस्थं ततः पुनः ॥ १३६ ॥
अधिश्रयेन्मृदावग्नौ दर्वीलेपेऽवताय च ।
शीते प्रस्थद्वयं क्षौद्रात्पिप्पलीकुडवं क्षिपेत् ॥ १३७ ॥
चूर्णीकृतं त्रिजाताच्च त्रिपलं, निखनेत्ततः ।
धान्ये पुराणकुंभस्थं मासं, खादेच्च पूर्ववत् ॥ १३८ ॥
रसायनं वसिष्ठोक्तमेतत्पूर्वगुणाधिकम् ।
स्वस्थानां निष्परीहारं सर्वर्तुषु च शस्यते ॥ १३९ ॥

चूर्णम्—

पालिकं सैंधवं शुंठी द्वे च सौवर्चलात्पले ।
कुडवाधानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमार्जकम् ॥ १४० ॥

एकैकां मरिचाजाज्योर्धान्यकाद् द्वे चतुर्थिके ।
शर्करायाः पलान्यत्र दश द्वे च प्रदापयेत् ॥ १४१ ॥
कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।
रुच्यं वह्निदीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित् ॥ १४२ ॥

खाण्डवप्रयोग :—

एकां षोडशिकां धान्याद् द्वे द्वे चाऽजाजिदीप्यकात् ।
ताभ्यां दाडिमवृक्षाम्लैर्द्विद्विः सौवर्चलात्पलम् ॥ १४३ ॥
शुण्ठ्याः कर्षं दधित्थस्य मध्यात्पंच पलानि च ।
तच्चूर्णं षोडशपलैः शर्करायाः विमिश्रयेत् ॥ १४४ ॥
खांडवोऽयं प्रदेयः स्यादन्नपानेषु पूर्ववत् ।,
विधिश्च यक्ष्मविहितो यथावस्थं क्षते हितः ॥ १४५ ॥
निवृत्ते क्षतदोषे तु कफे वृद्धे उरः शिरः ।
दाल्यते कासिनो यस्य स धूमानापिबेदिमान् ॥ १४६ ॥

धूमा :—

द्विमेदाद्विबलायष्टीकल्कैः क्षौमे सुभाविते ।
वर्तिं कृत्वा त्रिवेद्धूमं जीवनीयघृतानुपः ॥ १४७ ॥,
मनःशिलापलाशाजगंधात्वक्षीरनागरैः ।
तद्वदेवाऽनुपानं तु शर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ १४८ ॥,
पिष्ट्वा मनःशिला तुल्यामार्द्रया वटशृंगया ।
ससर्पिष्कं पिवेद्धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४९ ॥

क्षयजकासचिकित्सा—

क्षयजे बृंहणं पूर्वं कुर्याऽग्नेश्च वर्धनम् ।
बहुदोपाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम् ॥ १५० ॥,

---

१ चतुर्थिका पलम् । २ षोडशिकाकर्षः । ताभ्यांमिलिताभ्यामजाजिदीप्यकाभ्यां दाडिमवृक्षमोद्विद्विः चतस्रः षोडशिका इत्यर्थस्तेनाष्टौऽस्पौ दाडिमस्याष्टौ च वृक्षाम्लस्य ।

'शम्याकेन त्रिवृतया मृद्वीकारसयुक्तया ।
तिल्वकस्य कषायेण विदारीस्वरसेन च ॥ १५१ ॥
सर्पिः सिद्धं पिबेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधनम् ।,
पित्ते कफे धातुषु च क्षीणेषु क्षयकासवान् ॥ १५२ ॥
घृतं कर्कटकीक्षीरद्विबलासाधितं पिबेत् ।
'विदारीभिः कदंबैर्वा तालसस्यैश्च साधितम् ॥ १५३ ॥
घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रनिर्गमे ।,
'शूने सवेदने मेढ्रे पायौ सश्रोणिवंक्षणे ॥ १५४ ॥
घृतमंडेन लघुनाऽनुवास्यो मिश्रकेण वा ।,

मांसप्रयोग :—

जागलैः प्रतिभुक्तस्य वर्तकाद्या बिलेशयाः ॥ १५५ ॥
क्रमशः प्रसहास्तद्वत्प्रयोज्याः पिशिताशिनः ।
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्च स्रोतोभ्यश्च्यावयंति ते[1] ॥ १५६ ॥
कफं शुद्धैश्च तैः पुष्टिं कुर्यात्सम्यग् वहन् रसः ।,

चविकादिघृतम् —

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैः　　सचित्रकैः ॥ १५७ ॥
कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ।
शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशठिपौष्करैः ॥ १५८ ॥
पिष्टैः कर्कटशृंग्या च समैः सर्पिर्विपाचयेत् ।
सिद्धेऽस्मिश्चूर्णितौ क्षारौ द्वौ पंचलवणानि च ॥ १५९ ॥
दत्त्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः ।

शोषादिहरं घृतम्—

कासमर्दाभयामुस्तापाठाकट्फलनागरैः ॥ १६० ॥
पिप्पल्या कटुरोहिण्या काश्मर्याः स्वरसेन च ।
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं क्षीरद्राक्षारसाढके ॥ १६१ ॥

---

१ ते प्रसहाः ।

पचेच्छोपज्वरप्लीहसर्वकासहरं शिवम् ।
वृषव्याघ्रीगुडूचीनां पत्रमूलफलांकुरान् ॥ १६२ ॥
रसकल्कैर्घृतं पक्वं हंति कामज्वरादिकान् ।

[1] भोजनोपरि घृतपानम्—

द्विगुणे दाडिमरसे सिद्धं वा व्योषसंयुतम् ॥ १६३ ॥
पिबेदुपरि भुक्तस्य यवक्षारघृतं नरः ।
पिप्पलीगुडसिद्धं वा छागक्षीरयुतं घृतम् ॥ १६४ ॥
एतान्यग्निविवृद्धयर्थं सर्पींषि क्षयकामिनाम् ।
स्युर्दोषबद्धकंठोरः स्रोतसा च विशुद्धये ॥ १६५ ॥

लेह :—

प्रस्थोन्मिते यवक्वाथे विंशतिर्विजयाः पचेत् ।
स्विन्ना मृदित्वा तास्तस्मिन्पुराणात्पट्पल गुडान् ॥ १६६ ॥
पिप्पल्या द्विपलं, कर्षं मनोह्वाया, रसाजनात् ।
दत्वार्धाक्षं पचेद्भूयः स लेहः श्वासकासनुत् ॥ १६७ ॥

कासेसाधारण प्रयोगा :—

[1]श्वाविधां सूचयो दग्धाः सघृतक्षौद्रशर्कराः ।
श्वासकासहरा, बर्हिपादौ वा मधुसर्पिषा ॥ १६८ ॥
एरंडपत्रक्षारं वा व्योषतैलगुडान्वितम् ।
लेहयेत् क्षारमेवं वा सुरसैरंडपत्रजम् ॥ १६९ ॥
लिह्यात् त्र्यूषणचूर्णं वा पुराणगुडसर्पिषा ।
पद्मकं त्रिफला व्योषं विडंगं देवदारु च ॥ १७० ॥
बला रास्ना च तच्चूर्णं समस्तं समशर्करम् ।
खादेन्मधुघृताभ्यां च लिह्यात्कासहरं परम् ॥ १७१ ॥
तद्वन्मरिचचूर्णं वा मधृतक्षौद्रशर्करम् ।

---

१ श्वाविन् 'साहीका कांटा' इति लोके ।

चतुर्थोऽध्यायः

श्वासहिध्मयोस्तुल्य चिकित्सितम्

अथाऽतः श्वासहिध्माचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
"श्वासहिध्मा यतस्तुल्यहेत्वाद्याः साधनं ततः ॥ १ ॥
तुल्यमेव,

श्वासहिध्मयोः पूर्वं स्वेदप्रयोग :—

तदार्तं च पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ।
स्निग्धैर्लवणतैलाक्तं तैः खेषु ग्रथितः कफः ॥ २ ॥
सुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठं प्राप्तः सुनिर्हरः ।
स्रोतसां स्यान्मृदुत्वं च मारुतस्यानुलोमता ॥ ३ ॥

भोजनादि—

[1]दध्युत्तरेण वा दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ॥ ४ ॥
विशेषात्कासवमथुहृद्ग्रहस्वरसादिने ।
पिप्पलीसैंधवक्षौद्रयुक्तं वाताविरोधि यत् ॥ ५ ॥,

कफे निर्हृते सुखप्राप्त्यादि—

निर्हृते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे ।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ॥ ६ ॥

हिङ्ग्वादियुतान्नादि—

ध्मानोदावर्ततमके मातुलुंगाम्लवेतसैः ।
हिंगुपीलुबिडैर्युक्तमन्नं स्यादनुलोमनम् ॥ ७ ॥

---

१ दध्युत्तरं 'दही पर की मलाई' ।

समैधवं फलाम्लं वा कोष्णं दद्याद्विरेचनम् ।

अत्रहेतुः—

[1]एते हि कफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ॥ ८ ॥
तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थमूर्ध्वाधःशोधनं हितम् ।

विशोधनकारणम्—

उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्वहज्जलम् ॥ ९ ॥
यथाऽनिलस्तथा तस्य मार्गमस्माद्विशोधयेत् ।

धूमप्रयोगः—

अशान्तौ कृतसंशुद्धेर्धूमैर्लीनं मलं हरेत् ॥ १० ॥
हरिद्रापत्रमेरंडमूलं द्राक्षा मनःशिलाम् ।
सदेवदार्वलं मामो पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
ता घृताक्ता पिवेद्धूमं यवान्वा घृतसंयुतान् ।
[2]मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं वा गुरु वाऽगुरु ॥ १२ ॥
चंदनं वा तथा शृंगं वालान्वा स्नाववान्गवाम् ।
ऋक्षगोधाकुरंगैणचर्मशृंगखुराणि वा ॥ १३ ॥
गुग्गुलं वा मनोह्वां वा शालनिर्यासमेव वा ।
शल्लकी गुग्गुलं लोहं पद्मकं वा घृतप्लुतम् ॥ १४ ॥
[3]अवश्यं स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम् ।

स्वेदः—

स्वेदयेत्ससिताक्षीरैः सुखोष्णस्नेहसेचनैः ॥ १५ ॥
उत्कारिकोपनाहैश्च स्वेदाध्यायोक्तभेषजैः ।
उरः कंठं च मृदुभिः सामे त्वामनिधि चरेत् ॥ १६ ॥

---

१ एतेश्वासहिक्कारोगाः । २ मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतमेकोत्रस्य धूमं पिबेत् । वा अथवागुरुश्रेष्ठमगुरु कृष्णागुरु धूमंपिबेत् । ३ अस्वेद्याना स्वेदनाऽनर्हाणामपि हिक्काश्वासवतामवश्यं स्वेदनीयानां तत्कालंस्वेदनयोग्यानामुर आदिस्वेदयेत् ।

उद्धतेवातेस्निग्धाहारादि—

अतियोगोद्धतं वातं दृष्ट्वा पवननाशनैः ।
स्निग्धै रसाद्यैर्नात्युष्णैरभ्यंगैश्च शमं नयेत् ॥ १७ ॥

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्बलानां हि शोधनात् ।
वायुर्लब्धास्पदो मर्मसंशोष्याशु हरेदसून् ॥ १८ ॥
कषायलेहस्नेहाद्यैस्तेषां संशमयेदतः ।

मधुरादिप्रयोग :—

क्षीणक्षतातिसारासृक्पित्तदाहानुबंधजान् ॥ १९ ॥
मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिध्माश्वासानुपाचरेत् ।
कुलत्थदशमूलानां क्वाथे स्युर्जांगला रसाः ॥ २० ॥
यूषाश्च,

पेया—

[1]शिग्रुवार्ताककासघ्नवृषमूलकैः ।
पल्लवैर्निंबकुलकबृहतीमातुलुंगजैः ॥ २१ ॥

व्याघ्रीदुरालभाशृंगीबिल्वमध्यत्रिकंटकैः ।
पेया च चित्रकाजाजीशृंगीसौवर्चलैः कृता ॥ २२ ॥
दशमूलेन वा कासश्वासहिध्मारुजापहा ।

कषायपानादि—

दशमूलशठीरास्नाभार्गीबिल्वर्द्धिपुष्करैः ॥ २३ ॥
कुलीरशृंगीचपलातामलक्यमृतौषधैः ।
पिबेत्कषायं जीर्णेऽस्मिन्पेयां तैरेव साधिताम् ॥ २४ ॥

भोजनम्—

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गकुलत्थभुक् ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिध्माश्वासप्रशांतये ॥ २५ ॥

---

१ कासघ्नः कासमर्दः ।

सक्तून् वार्क्षीक्षुरक्षीरभावितानां समाक्षिकान् ।
यवानां दशमूलादिनिः क्वाथलु¹लितान् पिबेत् ॥ २६ ॥
अन्ने च योजयेत् क्षारं हिङ्ग्वाज्यबिडदाडिमान् ।
सपौष्करशठीव्योषमातुलुंगाम्लवेतसान् ॥ २७ ॥

कषायादि—

दशमूलस्य वा क्वाथमथवा देवदारुणः ।
पिबेद्वा वारुणीमंडं हिध्माश्वासी पिपासितः ॥ २८ ॥

तक्रप्रयोग :—

पिप्पलीपिप्पलीमूलपथ्याजंतुघ्नचित्रकैः ।
कल्कितैर्लेपिते² रूढे निःक्षिपेद् घृतभाजने ॥ २९ ॥
तक्रं मासस्थित तद्धि दीपनं श्वासकासजित् ।

पाठादिकपानम्—

पाठां ³मधुरसा दारु सरलं निशि संस्थितम् ॥ ३० ॥
सुरामंडेऽल्पलवणं पिबेत्प्रसृतिसंमितम् ।
भार्गीशुंठ्यौ सुखांभोभिः क्षारं वा मरिचान्वितम् ॥ ३१ ॥
स्वक्वाथपिष्टां लुलितां ⁴वाष्पिकां पाययेत वा ।

स्वरस प्रयोग :—

स्वरसः सप्तपर्णस्य पुष्पाणां वा शिरीषतः ॥ ३२ ॥
हिध्माश्वासे मधुकणायुक्तः पित्तकफानुगे ।

उत्कारिकादियोजनम्—

उत्कारिका तुगाकृष्णामधूलीघृतनागरैः ॥ ३३ ॥
पित्तानुबंधे योक्तव्या पवने त्वनुबन्धिनि ।
श्वाविच्छशामिषकणा घृतशल्यकशोणितैः ॥ ३४ ॥

---

१ लुलितानालोडितान् । २ रूढे शुष्के पिप्पल्यादिलेपे । ३ मधुरसा मूर्वा द्राक्षा वा । ४ वाष्पिका हिङ्गुपत्री "मँगरैल" इति लोके ।

चतुर्गुणाम्बुसिद्धं वा पयः सगुडनागरम् ।
सुवर्चलादिसिद्धं वा तयोः शाल्योदनादनु ॥ ३५ ॥

लेह :—

पिप्पलीमूलमधुकगुडगोश्वशकृद्रसान् ।
हिध्माभिष्यंदकासघ्नान् लिह्यान्मधुघृतान्वितान् ॥ ३६ ॥

अनेके प्रयोगा :—

गोगजाश्वखराहोष्ट्रखरमेषाजविड्रसम् ।
समध्वेकैकशो लिह्याद्बहुश्लेष्माऽथवा पिबेत् ॥ ३७ ॥
चतुष्पाच्चर्मरोमास्थिखुरशृंगोद्भवा मषीम् ।
तथैव वाजिगंधाया लिह्यात् श्वासी कफोल्बणः ॥ ३८ ॥
शठीं पुष्करधात्रीर्वा पौष्करं वा कणान्वितम् ।
गैरिकाञ्जनकृष्णा वा स्वरसं वा कपित्थजम् ॥ ३९ ॥
रसेन वा कपित्थस्य धात्रीसैंधवपिप्पलीः ।
घृतक्षौद्रेण वा पथ्याविडंगोषणपिप्पलीः ॥ ४० ॥
कोललाजामलद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा ।
गुडतैलनिशाद्राक्षाकणारास्नोषणानि वा ॥ ४१ ॥
पिबेद्वाम्बुमद्याम्लैर्लेहौषधरजांसि[१] वा ।

जीवन्त्यादिकं चूर्णम्—

जीवंतीमुस्तसुरसत्वगेलाद्वयपौष्करम् ॥ ४२ ॥
[२]चंडातामलकीलोहभार्गीनागरवालकम् ।
कर्कटाख्या शठी कृष्णा नागकेसरचोरकम् ॥ ४३ ॥
उपयुक्तं यथाकामं चूर्णं द्विगुणशर्करम् ।
पार्श्वरुग्ज्वरकासघ्नं हिध्माश्वासहरं परम् ॥ ४४ ॥'

शठ्यादि चूर्णम्—

शठी तामलकी भार्गी चंडावालकपौष्करम् ।
शर्कराष्टगुणं चूर्णं हिध्माश्वासहरं परम् ॥ ४५ ॥,

१ रजांसि चूर्णानि । लेहौषधानि अगस्त्यादेरौषधानि । २ चण्डा चोरपुष्पी ।

नस्य प्रयोगा :--

तुल्यं गुडं नागरं च भक्षयेन्नावयेत वा ।
लशुनस्य पलांडोर्वा मूलं गृंजनकस्य वा ॥ ४६ ॥
चंदनाढ्या रसं दद्यान्नारीक्षीरेण नावनम् ।
स्तन्येन मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेन वा ॥ ४७ ॥

घृतम्--

कणामौवर्चलक्षारवयस्थाहिंगुचोरकैः ।
[1]सकायस्थैर्घृतं मस्तुदशमूलरसे पचेत् ॥ ४८ ॥
तत्पिबेज्जीवनीयैर्वा लिह्यात्समधुसाधितम् ।

शाखानिलादिहरं घृतम्--

[2]तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकः शठी ।
पटुद्वयं तामलकी जीवंती बिल्वपेशिका ॥ ५० ॥
वचा पत्रं च तालीसं कर्षांशैस्तैर्विपाचयेत् ।
हिंगुपादैर्घृतप्रस्थं पीतमाशु निहंति तत् ॥ ५१ ॥
शाखानिलार्शोग्रहणीहिध्माहृत्पार्श्ववेदनाः ।,

क्षारेणसर्पिष्पानादि—

अर्धांशेन पिबेत्सर्पिः क्षारेण पटुनाऽथवा ॥ ५२ ॥
धान्वतरं वृषघृतं दाधिकं हपुषादि वा ।

हिध्माश्वासयोर्हितविहारा :—

शीतांबुसेकः सहसा त्रासविक्षेपभीशुचः ॥ ५३ ॥
[3]हर्षेर्ष्योच्छ्वासमंरोधा हितं कीटैश्च दंशनम् ।

---

१ कायस्था-हरीतकी । २ तेजोवती "तेजबल" भूतीकंकट्फलमथवायवानी ।
३ सहसा सदिति यथा पूर्वशीताम्बुसेकादिकं न जानीयात् । त्रासश्चित्तोद्वेगकर्म । विक्षेपोऽवधूननम् । कीटैः पिपीलिकादिभिः ।

सामान्यचिकित्सा--

यत्किंचित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।
तत्सेव्यं प्रायशो यच्च सुतरां मारुतापहम् ॥ ५४ ॥

हिध्माश्वासशमकरणे हेतु :—

[1]सर्वेषां बृंहणे ह्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।
नात्यर्थं शमनेऽपायो भृशोऽशक्यश्च कर्षणे ॥ ५५ ॥
शमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत् ।

कासश्वासादीनां परस्परभेषजैरुपचार :--

कासश्वासक्षयच्छर्दिहिध्माश्चान्योन्यभेषजैः" ॥ ५६ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो राजयक्ष्मादिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यक्ष्मिणः शोधनम्--

"बलिनो बहुदोषस्य स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम् ।
ऊर्ध्वाधो यक्ष्मिणः कुर्यात्सस्नेहं यन्न कर्शनम् ॥ १ ॥

वमनम्—

पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा ।
सर्पिष्मत्या यवाग्वा वा वमनद्रव्यसिद्धया ॥ २ ॥

---

१ सर्वेषां हिक्काश्वासार्तानां बृंहणे क्रियमाणेऽल्पोऽल्पोपायो हिक्कारोगः श्वासरोगश्च । किंवा बृंहणे क्रियमाणे ययोरोगःस्यादन्यरोगप्रादुर्भावो वा स्याद्दैववशात्सोल्पः प्रायशोभवेत् तथा शक्यः सुखसाध्योभवेत् बृंहणजनितबलत्वात् । शमने तु क्रियमाणेऽपायोऽत्यर्थं न, किंतर्हि हिक्काश्वासयोः शान्तिरेवशनैः शनैः स्यात् । कर्षणे क्रियमाणे तु यो रोगो जायेत सभृशो दुःसहोऽशक्योऽसाध्यश्चेत्यर्थः ।

स्रोतोविशोधनमद्यम्—

पिबेच्च सुतरां मद्यं जीर्णं स्रोतोविशोधनम् ।
पित्तादिषु विशेषेण मध्वरिष्टाः गवारुणीः ॥ १२ ॥
सिद्धं वा पंचमूलेन तामलक्याथवा जलम् ।
पर्णिनीभिश्चतसृभिर्धान्यनागरकेण वा ॥ १३ ॥
कल्पयेच्चानुकूलोऽस्य तेनान्नं शुचि यत्नवान् ।,

घृतप्रयोग :—

दशमूलेन पयसा सिद्धं मासरसेन वा ॥ १४ ॥
बलागर्भं घृतं योज्यं क्रव्यान्मासरसेन वा ।
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा ॥ १५ ॥

रोगराजहरं घृतम्—

जीवंती मधुकं द्राक्षा फलानि कुटजस्य च ।
पुष्कराह्वं शठी कृष्णा व्याघ्री गोक्षुरकं बलाम् ॥ १६ ॥
नीलोत्पलं तामलकी त्रायमाणा दुरालभाम् ।
कल्कीकृत्य घृतं पक्वं रोगराजहरं परम् ॥ १७ ॥

वैस्वर्यादिहरं घृतम्—

घृतं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासज्वरापहम् ॥ १८ ॥

पार्श्वशूलादिहरं घृतम्—

दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् ।
सपिप्पलीकं सक्षौद्रं तत्परं स्वरबोधनम् ॥ १९ ॥
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ।
पंचभिः पंचमूलैर्वा शृतावदुदियाद् घृतम् ॥ २० ॥

पीनसादिनाशकंघृतम्—

पंचानां पंचमूलानां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणः सप्तकंबलम् ॥ २१ ॥

स्रोतसांशुद्धिकरं षट्पलं घृतम्—

पंचकोलयवक्षारषट्पलेन पचेद् घृतम् ।
प्रस्थोन्मितं तुल्यपयः स्रोतसां तद्विशोधनम् ॥ २२ ॥
गुल्मज्वरोदरप्लीहग्रहणीपांडुपीनसान् ।
श्वासकासाग्निसदनश्वयथूर्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥ २३ ॥

शोषजिद्घृतद्वयम्—

रास्नाबलागोक्षुरकस्थिरावर्षाभुवारिणि ।
जीवंतीपिप्पलीगर्भं सक्षीरं शोषजिद् घृतम् ॥ २४ ॥,
अश्वगंधाच्छृतात्क्षीराद् घृतं च ससितापयः ।

मांसघृतंवातपित्तामयापहम्—

साधारणामिषतुलां तोयद्रोणद्वये पचेत् ॥ २५ ॥
तेनाष्टभागशेषेण जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
साधयेत्सर्पिषः प्रस्थं वातपित्तामयापहम् ॥ २६ ॥
मांससर्पिरिदं पीतं युक्तं मांसरसेन वा ।
कासश्वासस्वरभ्रंशशोषहृत्पार्श्वशूलजित् ॥ २७ ॥

घृतयुक्तो लेहः—

एलाजमोदात्रिफलासौराष्ट्रीव्योषचित्रकान् ।
सारानरिष्टगाय[1]त्रीशालबीजकसंभवान् ॥ २८ ॥
भल्लातकं विडंगं च पृथगष्टपलोन्मितम् ।
सलिले षोडशगुणे षोडशांशस्थितं पचेत् ॥ २९ ॥
पुनस्तेन घृतप्रस्थं सिद्धे चास्मिन्पलानि षट् ।
तवक्षीर्याः, क्षिपेत्त्रिंशत्सितायाः, द्विगुणं मधु ॥ ३० ॥
[2]घृतात्त्रिजातात्त्रिपलं ततो लीढं खजाहतम् ।
पयोनुपानं तत्प्राह्णे रसायनमयंत्रणम् ॥ ३१ ॥

---

१ गायत्री खदिरः । २ त्रिजाततः त्रिपलानि ।

मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं दीपनं हन्ति चाचिरात् ।
मेहगुल्मक्षयव्याधिपाण्डुरोगभगंदरान् ॥ ३२ ॥

क्षयेक्षतसम्बन्धिसर्पिर्गुडाः—

ये च सर्पिर्गुडाः प्रोक्ताः क्षते योज्याः क्षयेऽपि ते ।

त्वगेलादयः स्वर्याः—

त्वगेलापिप्पली[1]क्षीरीशर्कराद्विगुणाः क्रमात् ॥ ३३ ॥
चूर्णिता भक्षिताः क्षौद्रसर्पिषा चाऽवले हिताः ।
स्वर्याः कासक्षयश्वासपार्श्वरुक्कफनाशनाः ॥ ३४ ॥

नस्यधूमादि—

विशेषात्स्वरसादेऽस्य नस्यधूमादि योजयेत् ।

औत्तरभक्तिकंघृतम्—

तत्राऽपि वातजे कोष्णं पिबेदौत्तरभक्तिकम् ॥ ३५ ॥
कासमर्दकवार्ताकीमार्कवस्वरसैर्घृतम् ।
साधितं कासजित्स्वर्यं सिद्धमार्तगलेन वा ॥ ३६ ॥

बदरीपत्रकल्कः—

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैंधवम् ।

नस्यं तैलम्—

तैलं वा मधुकं द्राक्षापिप्पलीकृमिनुत्फलैः ॥ ३७ ॥
हंसपाद्याश्च मूलेन पक्वं नस्तो निषेचयेत् ।

अनुपानाशनम्—

गुर्वोश्चानुपानं च ससर्पिष्कं गुडौदनम् ॥ ३८ ॥
अश्नीयात्पायसं चैवं स्निग्धं स्वेदं नियोजयेत् ।

पित्तोद्भवेसमाक्षिकसर्पिः—

पित्तोद्भवे पिबेत्सर्पिः शृतशीतपयोनुपः ॥ ३९ ॥

---

१ मधुघृताद्द्विगुणंप्रस्थद्वयम् ।

क्षीरिवृक्षाङ्कुरक्वाथकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।
अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकसाधितम् ॥ ४० ॥

सर्पिर्नस्यम्—

बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्या मधुकेन च ।
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्वर्यमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं पिप्पली बृहती बला ।
साधितं क्षीरसर्पिश्च तत्स्वर्यं नावनं परम् ॥ ४२ ॥

लिह्यान्मधुरकाणां च चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।
पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे रूक्षभोजनः ॥ ४३ ॥

कट्फलामलकव्योषं लिह्यात्तैलमधुप्लुतम् ।
व्योषक्षाराग्निचविकाभार्गीपथ्यामधूनि वा ॥ ४४ ॥

यवैर्यवागूं यमके कणाधात्रीकृतां पिबेत् ।
भुक्त्वाद्यात्पिप्पलीं शुण्ठीं तीक्ष्णं वा वमनं भजेत् ॥ ४५ ॥

शर्कराक्षौद्रमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ।
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ४६ ॥

अरुचौचिकित्सितम्—

विचित्रमन्नमरुचौ हितैरुपहितं हितम् ।
बहिरन्तर्मृजा[1] चित्तनिर्वाणं हृद्यमौषधम् ॥ ४७ ॥
द्वौ कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनैः ।
कषायैः क्षालयेदास्यं धूमं [2]प्रायोगिकं पिबेत् ॥ ४८ ॥
तालीसचूर्णवटकाः सकर्पूरसितोपलाः ।
शशाङ्ककिरणाख्याश्च भक्ष्या रुचिकरा भृशम् ॥ ४९ ॥
वातादरोचके तत्र पिबेच्चूर्णं प्रसन्नया ।
हरेणुकृष्णाकृमिजिद्द्राक्षासैन्धवनागरात् ॥ ५० ॥

---

१ मृजा शुद्धिः । चित्तनिर्वाणं चित्तशान्तिः । २ प्रायोगिकं स्नैहिकं धूमम् ।

एलाभार्गीयवक्षारहिंगुयुक्तघृतेन वा ।
छर्दयेद्वा वचांभोभिः,
पित्ताच्च गुडवारिभिः ॥ ५१ ॥
लिह्याद्वा शर्करासर्पिर्लवणोत्तममाक्षिकम् ।
कफाद्वमेन्निंबजलैर्दीप्यकारग्वधोदकम् ॥ ५२ ॥
पानं मसच्चरिष्टाश्च तीक्ष्णाः समधुमाधवाः ।
पिबेच्चूर्णं च पूर्वोक्तं हरेण्वाद्युष्णवारिणा ॥ ५३ ॥

एलादि चूर्णम्—

एलात्वङ्नागकुसुमतीक्ष्ण[1]कृष्णामहौषधम् ।
भागवृद्ध क्रमाच्चूर्णं निहंति समशर्करम् ॥ ५४ ॥
प्रसेकारुचिहृत्पार्श्वकासश्वासगलामयान् ।

यवान्यादि चूर्णम्—

यवानीतिंतिडीकाम्लवेतसौषधदाडिमम् ॥ ५५ ॥
कृत्वा कोलं च कर्षांशं सितायाश्च चतुष्पलम् ।
धान्यसौवर्चलाजाजीवरांगं चार्धकार्षिकम् ॥ ५६ ॥
पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
चूर्णमेतत्परं रुच्यं ग्राहि हृद्यं हिनस्ति च ॥ ५७ ॥
विबंधकासहृत्पार्श्वप्लीहार्शोग्रहणीगदान् ।

तालीसादि चूर्णम्—

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली कणा ॥ ५८ ॥
यथोत्तरं भागवृद्धया त्वगेले चार्धभागिके ।
तद्द्रव्यं दीपनं चूर्णं कणाष्टगुणशर्करम् ॥ ५९ ॥
कासश्वासारुचिच्छर्दिप्लीहहृत्पार्श्वशूलनुत् ।
पांड्वरातिसारघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ६० ॥

---

[1] तीक्ष्णं मरिचम् ।

प्रसेकचिकित्सा—

अर्कामृताक्षीरजले शर्वरीमुषितैर्यवैः ।
प्रसेके कल्पितान्सक्तून् भक्ष्यांश्चाद्याद्बली वमेत् ॥ ६१ ॥

कटुतिक्तैस्तथा शूल्यं भक्षयेज्जांगलं पलम् ।
शुष्कांश्च भक्ष्यान् सुलघूँश्चणकादिरसानुपः ॥ ६२ ॥

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेन वायुः श्लेष्माणमस्यति ।
कफप्रसेकं तं विद्वान्स्निग्धोष्णैरेव निर्जयेत् ॥ ६३ ॥

पीनसेऽपि क्रममिमं वमथौ च प्रयोजयेत् ।
विशेषात्पीनसेऽभ्यंगान् स्नेहस्वेदांश्च शीलयेत् ॥ ६४ ॥

स्निग्धानुत्कारिकापिंडैः शिरःपार्श्वगलादिषु ।
लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान् स्नेहोपसंहितान् ॥ ६५ ॥

शिरोंसपार्श्वशूलेषु यथादोषविधिं चरेत् ।
औदकानूपपिशितैरुपनाहाः सुसंस्कृताः ॥ ६६ ॥
तत्रेष्टाः सचतुःस्नेहाः,

दोषसंसर्ग इष्यते ।
प्रलेपो नतयष्ट्याह्वशताह्वाकुष्ठचंदनैः ॥ ६७ ॥

बलारास्नातिलैस्तद्वत्ससर्पिर्मधुकोत्पलैः ।
पुनर्नवाकृष्णगंधाबलावीराविदारिभिः ॥ ६८ ॥

नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चौत्तरभक्तिकाः ।
तैलान्यभ्यंगयोगीनि बस्तिकर्म तथा परम् ॥ ६९ ॥

शृंगाद्यैर्वा यथादोषं दुष्टमेषां हरेदसृक् ।
प्रदेहः सघृतैः श्रेष्ठः पद्मकोशीरचंदनैः ॥ ७० ॥

दूर्वामधुकमंजिष्ठाकेसरैर्वा घृतप्लुतैः ।
वटादिसिद्धतैलेन शतधौतेन सर्पिषा ॥ ७१ ॥

अभ्यंगः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकांबुना ।
प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते ॥ ७२ ॥

तस्यातिसारग्रहणीविहितं हितमौषधम् ।

यक्ष्मिणः पुरीषरक्षणंकार्यम्—

पुरीषं यत्नतो रक्षेच्छुष्यतो राजयक्ष्मिणः ॥ ७३ ॥
सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम् ।
मांसमेवाश्नतो युक्त्या मार्द्वीकं पिबतोऽनु च ॥ ७४ ॥
अविचारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम् ।
सुरां समंडां मार्द्वीकमरिष्टान्सीधुमाधवान् ॥ ७५ ॥
यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन् ।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलौजःपुष्टये च तत् ॥ ७६ ॥
स्नेहक्षीरांबुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहैर्भूयोऽभ्यक्तं सुखैः करैः ॥ ७७ ॥
मृद्नीयात्सुखमासीनं सुख चोद्वर्तयेत्परम् ।

उद्वर्तनम्—

जीवंती शतवीर्या च विकसा सपुनर्नवाम् ॥ ७८ ॥
अश्वगंधामपामार्गं तर्कारीं मधुकं बलाम् ।
विदारी सर्षपान् कुष्ठं तंडुलानतसीफलम् ॥ ७९ ॥
माषास्तिलांश्च किण्वं च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
यवचूर्णं त्रिगुणितं दध्ना युक्तं समाक्षिकम् ॥ ८० ॥
एतदुद्वर्तनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ।

स्नानादीनि—

गौरसर्षपकल्केन स्नानीयौषधिभिश्च सः ॥ ८१ ॥
स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयोपसाधितैः ।
गंधमाल्यादिकैर्भूषामलक्ष्मीनाशनीं भजेत् ॥ ८२ ॥
सुहृदां दर्शनं गीतवादित्रोत्सवसश्रुतिः ।
बस्तयः क्षीरसर्पींषि मद्यमांससुशीलता ॥ ८३ ॥
दैवव्यपाश्रयं तत्तदथर्वोक्तं च पूजितम् ।"

---

१ विकसा मञ्जिष्ठा ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतश्छर्दिहृद्रोगतृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

छर्दिषु लंघनादि—

"आमाशयोत्क्लेशभवाः प्रायश्छर्द्यो हितं ततः ।
लंघनं प्राकृते वायोर्वमनं [1]तत्र योजयेत् ॥ १ ॥
बलिनो बहुदोषस्य वमतः प्रततं बहु ।
ततो विरेकं क्रमशो हृद्य मद्यैः फलाम्बुभिः ॥ २ ॥
क्षीरैर्वा सह स[2] ह्यूर्ध्वं गतं दोषं नयत्यधः ।
शमनं चौषधं रूक्षदुर्बलस्य तदेव[3] तु ॥ ३ ॥

अन्नादि—

परिशुष्कं प्रियं सात्म्यमन्नं लघु च शस्यते ।
उपवासस्तथा यूषा रसाः [4]कांबलिकाः खलाः ॥ ४ ॥
शाकानि लेहभोज्यानि रागखाडवपानकाः ।
भक्ष्याः शुष्का विचित्राश्च फलानि [5]स्नानघर्षणम् ॥ ५ ॥
गंधाः सुगंधयो गंधफलपुष्पान्नपानजाः ।
भुक्तमात्रस्य सहसा मुखे शीतांबुसेचनम् ॥ ६ ॥

वातजच्छर्दिचिकित्सा—

हंति मारुतजां छर्दिं सर्पिः पीतं ससैंधवम् ।
किंचिदुष्णं विशेषेण सकासहृदयद्रवाम् ॥ ७ ॥

---

१ तत्रछर्दिपुलङ्घने कृतेऽप्यनुपशान्तवेगासु वमनं योजयेदित्यर्थः । २ स विरेकः । ३ तदेव शमनमेव । ४ काम्बलिको मूलकतिलकल्काम्लप्रायः । खलः फलैः कृतः । ५ घर्षणमुद्वर्तनादिरूपेण ।

व्योषत्रिलवणाढ्यं वा सिद्धं वा दाडिमाम्बुना ।
सशुंठीदधिधान्येन [1]शृतं, तुल्याम्बु वा पयः ॥ ८ ॥
व्यक्तसैन्धवसर्पिर्वा फलाम्लो वैष्किरो रसः ।
स्निग्धं च भोजनं शुंठीदधिदाडिमसाधितम् ॥ ९ ॥
कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम् ।

पित्तजछर्दिचिकित्सा—

पित्तजायां विरेकार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसैस्त्रिवृत् ॥ १० ॥
सर्पिर्वा तैल्वकं योज्यं वृद्धं च श्लेष्मधामगम् ।
ऊर्ध्वमेव हरेत् पित्तं स्वादुतिक्तैर्विशुद्धिमान् ॥ ११ ॥
पिबेन्मन्थं यवागूं वा लाजैः समधुशर्कराम् ।
मुद्गजाङ्गलजैरद्याद्व्यंजनैः शालिषष्टिकम् ॥ १२ ॥
मृद्भृष्टलोष्टप्रभवं सुशीतं सलिलं पिबेत् ।
मुद्गोशीरकणाधान्यैः सह वा संस्थितं निशाम् ॥ १३ ॥
द्राक्षारसं रसं वेक्षोर्गुडूच्यम्बु पयोऽपि वा ।
जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटशुंगावरोहजः ॥ १४ ॥
क्वाथः क्षौद्रयुतः पीतः शीतो वा विनियच्छति ।
छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्छां तृष्णां च दुर्जयाम् ॥ १५ ॥
धात्रीरसेन वा शीतं पिबेन्मुद्गदलाम्बु वा ।
कोलमज्जसितालाजामक्षिकाविट्कणाञ्जनम् ॥ १६ ॥
लिह्यात्क्षौद्रेण पथ्यां वा द्राक्षां वा बदराणि वा ।

कफजछर्दिचिकित्सा—

कफजायां [2]वमेन्निम्बकृष्णापिंडिरसर्षपैः ॥ १७ ॥
युक्तेन कोष्णतोयेन दुर्बलं चोपवासयेत् ।
आरग्वधादिनिर्यूहं शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ १८ ॥
मन्थान्यवैर्वा बहुशश्छर्दिघ्नौषधभावितैः ।
कफघ्नमन्नं हृद्यं च रागाः सार्जकभूस्तृणाः ॥ १९ ॥

---

१ सव्योषेति दाडिमेति सशुण्ठीति च सर्पिरित्यस्य विशेषणम् । २ पिंडिरं मदनफलम् ।

लीढं मनःशिलाकृष्णामरिचं बीजपूरकात् ।
स्वरसेन कपित्थाच्च मक्षौद्रेण वमिं जयेत् ॥ २० ॥
खादेत्कपित्थं सव्योषं मधुना वा दुरालभाम् ।

आगन्तुच्छर्दिचिकित्सा—

अनुकूलोपचारेण याति द्विष्टार्थजा शमम् ॥ २१ ॥

कृमिजच्छर्दिचिकित्सा—

कृमिजा कृमिहृद्रोगगदितैश्च भिषग्जितैः ।
यथास्वं परिशेषाश्च तत्कृताश्च तथामयाः ॥ २२ ॥

छर्दिरोगेस्तम्भनबृंहणे—

छर्दिप्रसंगेन हि मातरिश्वा
धातुक्षयात्कोपमुपैत्यवश्यम् ।
कुर्यादतोऽस्मिन् वमनातियोग-
प्रोक्तं विधिं स्तंभनबृंहणीयम् ॥ २३ ॥
सर्पिर्गुडा मांसरसा घृतानि
कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि ।
पयांसि पथ्योपहितानि लेहा-
श्छर्दिं प्रसक्तां प्रशमं नयंति ॥ २४ ॥

हृद्रोगचिकित्सारम्भः ।

वातजहृद्रोगचिकित्सा—

हृद्रोगे वातजे तैलं मस्तुसौवीरतक्रवत् ।
पिबेत्सुखोष्णं सबिडं गुल्मानाहार्तिजिच्च तत् ॥ २५ ॥
तैलं च लवणैः सिद्धं समूत्राम्लं तथागुणम् ।
बिल्वं रास्नां यवान्कोलं देवदारुं पुनर्नवाम् ॥ २६ ॥

कुलत्थान्पंचमूलं च पक्त्वा तस्मिन्पचेज्जले ।
तैलं तन्नावने पाने बस्तौ च विनियोजयेत् ॥ २७ ॥
[1]शुंठीवयस्थालवणकायस्थाहिंगुपौष्करैः ।
पथ्यया च शृतं पार्श्वहृद्रुजागुल्मजिद् घृतम् ॥ २८ ॥
सौवर्चलस्य द्विपले पथ्यापंचाशदन्विते ।
घृतस्य साधितः प्रस्थो हृद्रोगश्वासगुल्मजित् ॥ २९ ॥
पुष्कराह्वशठीशुंठीबीजपूरजटाभयाः ।
पीताः कल्कीकृताः क्षारघृताम्ललवणैर्युताः ॥ ३० ॥
विकर्तिकाशूलहराः क्वाथः कोष्णश्च तद्गुणः ।
यवानीलवणक्षारवचाजाज्यौषधैः कृतः ॥ ३१ ॥
पूतीकदारुबीजाह्वविजयाशठिपौष्करैः ।
पंचकोलशठीपथ्यागुडबीजाह्वपौष्करम् ॥ ३२ ॥
वारुणीकल्कितं भृष्टं यमके लवणान्वितम् ।
हृत्पार्श्वयोनिशूलेषु खादेद्गुल्मोदरेषु च ॥ ३३ ॥
स्निग्धाश्चेह हिताः स्वेदाः संस्कृतानि घृतानि च ।
लघुना पंचमूलेन शुंठ्या वा साधितं जलम् ॥ ३४ ॥
वारुणीदधिमंडं वा धान्याम्लं वा पिबेत्तृपि ।
सायामस्तंभशूलामे हृदि मारुतदूषिते ॥ ३५ ॥
क्रियैषा सद्रवायामप्रमोहे तु हिता रसाः ।
स्नेहाढ्यास्तित्तिरिक्रौंचशिखिवर्तकदक्षजाः ॥ ३६ ॥
बलातैलं सहृद्रोगः पिबेद्वा [2]सुकुमारकम् ।
यष्ट्याह्वशतपाकं वा महास्नेहं तथोत्तमम् ॥ ३७ ॥
रास्नाजीवकजीवंतीबलाव्याघ्रीपुनर्नवैः ।
भार्गीस्थिरावचाव्योषैर्महास्नेहं विपाचयेत् ॥ ३८ ॥

---

१ वयस्था ब्राह्मी, आमलकी गुडूची वा । कायस्था—आमलकी । "कायस्था तु हरीतक्यामलक्योश्च प्रकीर्तिता" इतिरभसः । २ सुकुमारकं घृतं प्रमेहोक्तम् ।

दधिपादं तथाम्लैश्च लाभतः स निषेवितः ।
तर्पणो बृंहणो बल्यो वातहृद्रोगनाशनः ॥ ३९ ॥
दीप्तेऽग्नौ सद्रवायामे हृद्रोगे वातिके हितम् ।
क्षीरं दधि गुडः सर्पिरौदकानूपमामिषम् ॥ ४० ॥
एतान्येव च वर्ज्यानि हृद्रोगेषु चतुर्ष्वपि ।
[1]शेषेषु, स्तंभजाड्यामसंयुक्तेऽपि च वातिके ॥ ४१ ॥
कफानुबंधे तस्मिंस्तु रूक्षोष्णामाचरेत्क्रियाम् ।

पित्तजहृद्रोगचिकित्सा—

पैत्ते द्राक्षेक्षुनिर्याससिताक्षौद्रपरूषकैः ॥ ४२ ॥
युक्तो विरेको हृद्यः स्यात्क्रमः शुद्धे च पित्तहा ।
क्षतपित्तज्वरोक्तं च बाह्यान्तःपरिमार्जनम् ॥ ४३ ॥
कट्वीमधुककल्कं च पिबेत्ससितमंभसा ।
श्रेयसीशर्कराद्राक्षाजीवकर्षभकोत्पलैः ॥ ४४ ॥
बलाखर्जूरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम् ।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥ ४५ ॥
प्रपौंडरीकमधुकबिसग्रंथिकसेरुकाः ।
सशुंठीशैवलास्ताभिः सक्षीरं विपचेद् घृतम् ॥ ४६ ॥
शीतं समधु तच्चेष्टं स्वादुवर्गकृतं च यत् ।
वस्तिं च दद्यात्सक्षौद्रं तैलं मधुकसाधितम् ॥ ४७ ॥

कफजहृद्रोगचिकित्सा—

कफोद्भवे वमेत्स्विन्नः[2] पिचुमंदवचांबुना ।
कुलत्थधन्वोत्थरसतीक्ष्णमद्ययवाशनः ॥४८॥
पिबेच्चूर्णं वचाहिंगुलवणद्वयनागरान् ।
सैलायवानीककणायवक्षारान् सुखांबुना ॥ ४९ ॥

---

१ शेषेषु वातजहृद्रोगरहितेषु शेषेषु चतुर्षु । २ पिचुमन्दो निम्बम् ।

[1]फलं धान्याम्लकौलत्थयूषमूत्रासवैस्तथा ।
पुष्कराह्वाभयाशुंठीशठीरास्नावचाकणाः ॥ ५० ॥
यवाथं तथाऽभयाशुंठीमा[2]द्रीपीतद्रुकट्फलात् ।
यवाथे रौहीतकाश्वत्थखदिरोदुंबरार्जुने ॥ ५१ ॥
सपलाशवटे व्योषत्रिवृच्चूर्णान्विते शृतः ।
मुखोदकानुपानस्य लेहः कफविकारहा ॥ ५२ ॥
श्लेष्मगुल्मोदिताऽन्यानि क्षारांश्च विविधान् पिबेत् ।
प्रयोजयेच्छिलाह्वं वा [3]ब्राह्मं चात्र रसायनम् ॥ ५३ ॥
तथामलकलेहं वा प्राश्यं वाऽगस्तिनिर्मितम् ।
स्याच्छूलं यस्य भुक्तेऽन्ने जीर्यत्यल्पं जरा गते ॥ ५४ ॥
शाम्येत्तमकुष्ठकृमिजिल्लवणद्वयतिल्वकैः ।
सदेवदार्वतिविषैश्चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ५५ ॥
यस्य जीर्णेऽधिकं स्नेहैः स विरेच्यः फलैः पुनः ।
जीर्यत्यन्ने तथा मूलैस्तीक्ष्णैः शूले सदाधिके ॥ ५६ ॥
प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः कुप्यत्यामाशयं गतः ।
तस्यानुलोमनं कार्यं शुद्धिलङ्घनपाचनैः ॥ ५७ ॥

क्रिमिजहृद्रोगचिकित्सा—

कृमिघ्नमौषधं सर्वं कृमिजे हृदयामये ।

अथतृष्णाचिकित्सितारम्भः—

तृष्णासु वातपित्तघ्नो विधिः प्रायेण युज्यते ॥ ५८ ॥
सर्वासु शीतो बाह्यांतस्तथा शमनशोधनम् ।
दिव्यांबु शीतं सक्षौद्रं तद्वद्भौमं च [4]तद्गुणम् ॥ ५९ ॥

---

१ फलं मदनफलम् । २ माद्री-अतिविषा । ३ ब्राह्मं रसायनं रसायनाधिकारोक्तम् । ४ तद्गुणमाकाशीयजलसमानगुणम् "शुचिपृथ्वसिते देशे" इत्यादिलक्षणलक्षितम् ।

तत्रसामान्योविधिः—

निर्वापितं तप्तलोष्टकपालसिकतादिभिः।
सशर्करं वा क्वथितं पंचमूलेन वा जलम् ॥ ६० ॥

दर्भपूर्वेण मंथश्च प्रशस्तो लाजसक्तुभिः।
वाट्यश्चामयवैः शीतः शर्करामाक्षिकान्वितः ॥ ६१ ॥

यवागूः शालिभिस्तद्वत्कोद्रवैश्च चिरंतनैः।
शीतेन शीतवीर्यैश्च द्रव्यैः सिद्धेन भोजनम् ॥ ६२ ॥

हिमाम्बुपरिषिक्तस्य पयसा ससितामधु।
रसैश्चानम्ललवणैर्जाङ्गलैर्घृतभर्जितैः ॥ ६३ ॥

मुद्गादीनां तथा यूषैर्जीवनीयरसान्वितैः।
नस्यं क्षीरघृतं सिद्धं शीतैरिक्षोस्तथा रसः ॥ ६४ ॥

निर्वापणाश्च गंडूषाः मुखस्थानोदिता हिताः।
दाहज्वरोक्ता लेपाद्या निरीहत्वं[1] मनोरतिः ॥ ६५ ॥

महानदीह्रदादीनां दर्शनस्मरणादि च।
तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ॥ ६६ ॥

रसाश्च बृंहणाः शीता विदार्यादिगणांबु वा।

पित्तजतृष्णाचिकित्सा—

पित्तजायां सितायुक्तः पक्वोदुंबरजो रसः ॥ ६७ ॥

तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत्सारिवादिगणांबु वा।
तद्विधैश्च गणैः शीतकषायान् ससितामधून् ॥ ६८ ॥

मधुरैरौषधैस्तद्वत् क्षीरिवृक्षैश्च कल्पितान्।
बीजपूरकमृद्वीकावटवेतसपल्लवान् ॥ ६९ ॥

मूलानि कुशकाशानां यष्ट्याह्वं च जले शृतम्।
ज्वरोदितं वा द्राक्षादिं पंचसारांबु वा पिबेत् ॥ ७० ॥

---

१ निरीहत्वं व्यापार हीनत्वम्।

कफजतृष्णाचिकित्सा—

कफोद्भवायां वमनं निम्बप्रसववारिणा ।
बिल्वाढकीपंचकोलदर्भपंचकसाधितम् ॥ ७१ ॥
जलं पिबेद्रजन्या वा सिद्धं सक्षौद्रशर्करम् ।
मुद्गयूषं च सव्योषपटोलीनिंबपल्लवम् ॥ ७२ ॥
यवान्नं तीक्ष्णकवलनस्यलेहांश्च शीलयेत् ।,
सर्वैरामाद्य [1]तद्वंशो क्रियेष्टा वमनं तथा ॥ ७३ ॥
यूषणारुष्करवचाफलाम्लोष्णांबुमस्तुभि ।,
अत्यययान्मंडमुष्णं हिमं मंथं न कालवित् ॥ ७४ ॥
तृषि श्रमान्मासरस मद्य वा ससितं पिबेत् ।,
आतपात्ससितं मंथं यवकोलाबुसक्तुभिः ॥ ७५ ॥
सर्वाण्यगानि लिपेच्च तिलपिण्याककांजिकैः ।,
शीतस्नानात्तु मद्याबु पिबेत्तृष्मान् गुडाबु वा ॥ ७६ ॥
मद्यादर्धजल मद्यं स्रातोऽम्लवणैर्युतम् ।,
स्नेहतीक्ष्णतराग्निस्तु स्वभावशिशिरं जलम् ॥ ७७ ॥
स्नेहादुष्णाबु जीर्णात्तु जीर्णान्मंड पिपासित ।,
पिबेत्स्निग्धान्नतृषितो [2]हिमस्वधि गुडोदकम् ॥ ७८ ॥,
गुर्वाद्यन्नेन तृषित पीत्वोष्णाबु तदुल्लिखेत् ।,
क्षयजायां क्षयहितं सर्वं बृहणमौषधम् ॥ ७९ ॥,
कृशदुर्बलरूक्षायां क्षीरं छागो रसोऽथवा ।
क्षारं च सोर्ध्ववातायां क्षयकासहरं श्रुतम् ॥ ८० ॥,
रोगोपसर्गजातायां धान्याबु समितामधु ।
पाने प्रशस्तं सर्वाश्च क्रिया रोगाद्यपेक्षया ॥ ८१ ॥,
तृष्यन् पूर्वामयक्षीणो न लभेत जल यदि ।
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं तत. ॥ ८२ ॥
सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः ।
तस्यां जितायामन्योऽपि शक्यो व्याधिश्चिकित्सितुम्" ॥ ८३ ॥

---

[1] तद्वन्नी सन्निपातघ्नी आमघ्नी च क्रिया । [2] हिमसर्दिहिमादपिशीतलम् ।

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

मदात्ययचिकित्साप्रकार :—

"यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ १ ॥,
[1]पित्तमारुतपर्यंतः प्रायेण हि मदात्ययः ।,

मद्योत्पन्नव्याधेर्मद्येनैवशान्ति :—

हीनमिथ्यातिपीतेन यो व्याधिरुपजायते ॥ २ ॥
समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।
मद्यस्य विषसादृश्यात्,

विषान्मद्यस्य वैलक्षण्यम्—

विषं तुल्कर्पवृत्तिभिः ॥ ३ ॥

विधियुक्तं मद्यपानं हितम्—

तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्योगाद्विपातरमपेक्षते ।
तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना ॥ ४ ॥
मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धः क्षारता गतः ।
यान्कुर्यान्मदतृष्णमोहज्वरान्तर्दाहविभ्रमान् ॥ ५ ॥
मद्योत्क्लिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोत.सु मारुतः ।
सुतीव्रा वेदना याश्च शिरस्यस्थिषु संधिषु ॥ ६ ॥
जीर्णामिमद्यदोषस्य प्रकाशान्लाघवे सति ।
यौगिकं विधिवद्युक्त मद्यमेव निहंति तान् ॥ ७ ॥

---

१ मदात्यये प्रथमं कफस्याधिक्यंतत. पित्तवातयोराधिक्यम् ।

तत्रहेतु :—

क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहितः।
मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठं दोषविष्यंदनादलम् ॥ ८ ॥

मद्ये धातुसाम्यकरम्—

तीक्ष्णोष्णाद्यैः पुरा प्रोक्तैर्दीपनाद्यैस्तथा गुणैः।
सात्म्यत्वाच्च तदेवास्य धातुसाम्यकरं परम् ॥ ९ ॥

पानात्ययौषधकाल :—

सप्ताहमष्टरात्रं वा कुर्यात्पानात्ययौषधम्।
जीर्यत्येतावता पानं कालेन विपथाश्रितम् ॥ १० ॥

ततो रोगानुसारेण भेषजप्रयोग :—

परं ततोऽनुबध्नाति यो रोगस्तस्य भेषजम्।
यथायथं प्रयुञ्जीत [1]कृतपानात्ययौषधः ॥ ११ ॥

वातोल्बणे मदात्ययचिकित्सा—

तत्र वातोल्बणे मद्यं दद्यात्पिष्टकृतं युतम्।
बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमदीप्यकैः ॥ १२ ॥
यवानीहपुषाजाजीव्योषैर्लवणार्द्रकैः।
शूल्यैर्मांसैर्हरितकैः स्नेहवद्भिश्च सक्तुभिः ॥ १३ ॥
उष्णस्निग्धाम्ललवणा मेद्यमांसरसा हिताः।
आम्राम्रातकपेशीभिः संस्कृता रागखाडवाः ॥१४॥
गोधूममाषविकृतीर्मृदुचित्रा मुखप्रियाः।
[2]आर्द्रिकार्द्रककुल्माषसूक्तमांसादिगर्भिणी ॥ १५ ॥
सुरभिर्लवणा शीता निगदा वाच्छवारुणी।
स्वरसो दाडिमाद्यश्च यः पंचमूलात्कनीयसः ॥ १६ ॥

---

१ सप्ताहमष्टरात्रं वेत्यत्रोक्तानीतपानात्ययौषधो रोगी। २ आर्द्रिका "अदरक" इति हि०, आर्द्रकतण्डी।

शुण्ठी धान्यात्तथा मस्तुसूक्ताभोत्याम्लकाञ्जिकम् ।
अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमुष्णं प्रावरणं घनम् ॥ १७ ॥
घनश्चागुरुजो धूपः पंकश्चागुरुकुंकुमैः ।
कुचोरुश्रोणिशालिन्यो यौवनोष्णाङ्गयष्टयः ॥ १८ ॥
हर्षणालिंगनैर्युक्ताः प्रियाः संवाहनेषु च ।

पित्तोल्बणे मदात्ययचिकित्सा—

पित्तोल्बणे बहुजलं शार्करं मधुना युतम् ॥ १९ ॥
रसैर्दाडिमखर्जूरभव्य[1]द्राक्षापरूषकैः ।
सुशीतं मधिताधवनु योज्यं तादृक् च पानकम् ॥ २० ॥
स्वादुवर्गकषायैर्वा युक्तं मद्यं समाक्षिकम् ।
शालिषष्टिकमश्नीयाच्छशाजैणकपिञ्जलैः ॥ २१ ॥
सतीनमुद्गामलकपटोलीदाडिमैरपि ।
कफपित्ते समुत्क्लिष्टमुल्लिखेत्तृड्विदाहवान् ॥ २२ ॥
पीत्वाम्बु शीतं मद्यं वा भूरीक्षुरससंयुतम् ।
द्राक्षारसं वा संसर्गी तर्पणादिपरं हितः ॥ २३ ॥
तथाग्निर्दीप्यते तस्य दोषशेषान्नपाचनः ।
कासे सरक्तनिष्ठीवे पार्श्वस्तनरुजासु च ॥ २४ ॥
तृष्णायां सविदाहायां सोत्क्लेशे हृदयोरसि ।
गुडूचीभद्रमुस्तानां पटोलस्याथवा रसम् ॥ २५ ॥
सशृंगवेरं युंजीत तित्तिरिप्रतिभोजनम् ।
तृष्यते चातिबलवद्वातपित्ते समुद्धते ॥ २६ ॥
दद्याद् द्राक्षारसं पानं शीतं दोषानुलोमनम् ।
जीर्णेऽद्यान्मधुराम्लेन छागमांसरसेन च ॥ २७ ॥
तृष्यन्नल्पशः पिबेन्मद्यं मदं रक्षन् बहूदकम् ।
मुस्तदाडिमलाजाम्बु जलं वा पर्णिनीशृतम् ॥ २८ ॥
पटोल्युत्पलकन्दैर्वा स्वभावादेव वा हिमम् ।
मद्यातिपानादब्धातौ क्षीणे तेजसि चोद्धते ॥ २९ ॥

---

१ भव्यं "कमरख" इति हि० ।

यः शुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेष्टते ।
पाययेत्कामतोऽम्भस्तं निशीथपवनाहृतम् ॥ ३० ॥
कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ।
पंचाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ ३१ ॥
त्वचं प्राप्तश्च पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं तत्राऽतिशिशिरो विधिः ॥ ३२ ॥
अशाम्यति रसैस्तृप्ते रोहिणीं व्यधयेच्छिराम् ।

कफजमदात्ययचिकित्सा —

उल्लेखनोपवासाभ्यां जयेच्छ्लेष्मोल्बणं पिबेत् ॥ ३३ ॥
शीतं शुंठीस्थिरोदीच्यदुःस्पर्शान्यतमोदकम् ।
निरामं क्षुधितं काले पाययेद्बहुमाक्षिकम् ॥ ३४ ॥
शार्करं मधु वा जीर्णमरिष्टं सीधुमेव च ।
रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीनागरान्वितम् ॥ ३५ ॥
यूषेण यवगोधूमं तनुनाऽल्पेन भोजयेत् ।
उष्णाम्लकटुतिक्तेन कौलत्थेनाल्पसर्पिषा ॥ ३६ ॥
शुष्कमूलकजैश्छागै रसैर्वा धन्वचारिणाम् ।
साम्लवेतसवृक्षाम्लपटोलव्योषदाडिमैः ॥ ३७ ॥
प्रभूतशुंठीमरिचहरितार्द्रकपेशिकम् ।
बीजपूररसाद्यम्लभृष्टनीरसवर्तितम् ॥ ३८ ॥
करीरकरमर्दादिरोचिष्णु [1]बहुशालनम् ।
प्रव्यक्ताष्टांगलवणं [2]विकल्पितनिमर्दकम् ॥ ३९ ॥
यथाग्नि भक्षयन्मांसं माधवं निगदं पिबेत् ।
सितासौवर्चलाजाजीतिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ ४० ॥
त्वगेलामरिचार्धांशमष्टांगलवणं हितम् ।
स्रोतोविशुद्ध्यग्निकरं कफप्राये मदात्यये ॥ ४१ ॥

---

१ शालनं हरितकंमूलकादि । २ विकल्पितो निष्पादितो निमर्दको येन मांसेन तत् । प्रभूतेत्यादि निमर्दकान्तं मांसविशेषणम् । प्रभूतेत्यादिना निमर्दकस्य विविधप्रकारत्वं दर्शयति ।

रूक्षोष्णोद्वर्तनोद्घर्षस्नानभोजनलंघनैः ।
सकामाभिः सह स्त्रीभिर्युक्त्या जागरणेन च ॥ ४२ ॥
मदात्ययः कफप्रायः शीघ्रं समुपशाम्यति ।

सर्वजमदात्ययचिकित्सा—

यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति ॥ ४३ ॥
सन्निपाते दशविधे [1]तच्छेषेऽपि विकल्पयेत् ।
त्वङ्नागपुष्पमगधामरीचाजाजिधान्यकैः ॥ ४४ ॥
परूपकमधूकैलामुराह्वैश्च सितान्वितैः ।
सकपित्थरसं हृद्यं पानकं शशिबोधितम् ॥ ४५ ॥
मदात्ययेषु सर्वेषु पेयं रुच्यग्निदीपनम् ।

हर्षणीक्रिया—

नाविक्षोभ्य मनो मद्यं शरीरमविहत्य वा ॥ ४६ ॥
कुर्यान्मदात्ययं तस्मादिष्यते हर्षणी क्रिया ।

पयः पानम्—

सेशुद्धिशमनाद्येषु मददोषः कृतेष्वपि ॥ ४७ ॥
न चेच्छाम्येत्कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ।
तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ॥ ४८ ॥
ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ।

तत्रहेतुः—

मद्यक्षीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेव पुष्यति ॥ ४९ ॥

---

१ मदात्यय चिकित्सितं पृथग्दोषबलं प्रति यन्निर्दिष्टं तत् शेषेऽपि दशविधे-सन्निपाते मदात्ययजेविकल्पयेत् त्रिविधं कृत्वा कल्पयेत् । वातोल्बणस्य तथा पित्तोल्बणस्य मदात्ययस्य यत्कर्म कथितं तन्मिश्रितं कर्म वातपित्तोल्बणेसन्निपातेमदात्ययजे कुर्यादित्यर्थः । एवमन्यस्मिन्नुशेषेऽपि सन्निपातेविकल्पयेत् । दशविधः सन्निपातो यथा द्विदोषोल्बणास्त्रयः, हीनमध्याधिकदोषैःषट् समदोषैश्चैकः ।

ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतं च मद्यतः ।

पयसा रोगे जिते ऽल्पं मद्यपानम्—

पयसा विजिते रोगे बले जाते निवर्तयेत् ॥ ५० ॥
क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।
न विट्क्षयध्वंसकोत्थैः स्पृश्येतोपद्रवैर्यथा ॥ ५१ ॥

विट्क्षयध्वंसकयोश्चिकित्सा—

तयोस्तु स्याद्घृतं क्षीरं वस्तयो बृंहणाः शिवाः ।
अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमन्नपानं च वातजित् ॥ ५२ ॥,

मद्यसंभोगेकारणम्—

युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरुपजायते ।
अतोऽस्य वक्ष्यते योगो यः सुखायैव केवलम् ॥ ५३ ॥

सुरागुणाः—

आश्विनं या महत्तेजो बलं सारस्वतं च या ।
दधात्यैन्द्रं च या वीर्यं प्रभावं वैष्णवं च या ॥ ५४ ॥
अस्त्रं मकरकेतोर्या पुरुषार्थो बलस्य या ।
सौत्रामण्यां द्विजमुखे या हुताशे च हूयते ॥ ५५ ॥
या सर्वौषधिसंपूर्णान्मथ्यमानात्सुरासुरैः ।
महोदधेः समुद्भूता श्रीशशाङ्कामृतैः सह ॥ ५६ ॥
मधुमाधवमैरेयसीधुगौडासवादिभिः ।
मदशक्तिमनुज्झन्ती या रूपैर्बहुभिः स्थिता ॥ ५७ ॥
यामासाद्य विलासिन्यो यथार्थं नाम बिभ्रति ।
कुलाङ्गनाऽपि यां पीत्वा नयत्युद्धतमानसा ॥ ५८ ॥
अनंगाङ्गितैरंगैः क्वाऽपि चेतो मुनेरपि[1] ।
तरंगभंगभृकुटीतर्जनैर्माननीमनः ॥ ५९ ॥

---

१ मुनेरपि चेतः क्वापि नयतीत्यन्वयः । तरङ्गेण भङ्गा ... तया तर्जनानि प्रणयकलहनिशेषास्तैः ।

एकं प्रमाद्य कुरुते या [1]द्वयोरपि निर्वृतिम् ।
यथाकामं भटावाप्तिपरिहृष्टाप्सरोगणे ॥ ६० ॥
तृणवत्पुरुषा युद्धे यामासाद्य त्यजन्त्यसून् ।
यां शीलयित्वाऽपि चिरं बहुधा बहुविग्रहाम् ॥ ६१ ॥
नित्यं हर्षातिवेगेन तत्पूर्वमिव सेवते ।
शोकोद्वेगारतिभयैर्या दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥ ६२ ॥
गोष्ठीमहोत्सवोद्यानं न यस्याः शोभते विना ।
स्मृत्वा स्मृत्वा च बहुशो वियुक्तः शोचते यया ॥ ६३ ॥
अप्रसन्नाऽपि या प्रीत्यै प्रसन्ना स्वर्ग एव या ।
[2]अपीष्टं मन्यते दुःखं हृदयस्थितया यया ॥ ६४ ॥
अनिर्देश्यसुखास्वादा स्वयंवेद्यैव या परम् ।
[3]इति चित्रास्ववस्थासु प्रियामनुकरोति या ॥ ६५ ॥
प्रियाऽतिप्रियतां याति यत्प्रियस्य विशेषतः ।
या प्रीतिर्या रतिर्या वाग्या पुष्टिरिति च स्तुता ॥ ६६ ॥
देवदानवगंधर्वयक्षराक्षसमानुषैः ।
पानप्रवृत्तौ मत्यां ता सुरां तु विधिना पिबेत् ॥ ६७ ॥

युक्तमद्यपानात्सर्वरोगनाशः—

गंभवंति च ये रोगा मेदोऽनिलकफोद्भवाः ।
विधियुक्तादृते मद्यात्ते न सिध्यंति दारुणाः ॥ ६८ ॥
अस्ति देहस्य सावस्था यस्यां पानं निवार्यते ।
अन्यत्र मद्यान्निगदाद्विविधोपचसंभृतात् ॥ ६९ ॥

---

१ द्वयोःस्त्रीपुंसयोः निर्वृतिं सौख्यम् । भटस्य शूरपुरुषस्यावाप्त्या परिहृष्टोऽप्सरोगणोयस्मिन्युद्धे । यासुराऽप्रसन्ना समलापि प्रीत्यै हर्षाय । प्रसन्ना निर्मला स्वर्ग एव । २ हृदयस्थितया यया सुरया । पुरुष इष्टमपि दुःखं दुःस्थितं मन्यते । प्रियापक्षेऽप्रसन्ना प्रणयकलहे कुपिता । प्रसन्ना त्यक्तरोषा । यांशीलयित्वेत्यादिः प्रियायामपि योज्यः । ३ इति—एवं चित्रासु नानाविधासु । या सुरा प्रियां वल्लभां (स्त्रियम्) । यत्प्रियस्य सुराप्रियस्य । प्रिया इष्टा सुरा, अथवा प्रिया वल्लभा, यत्प्रियस्यातिप्रियतां याति । पानप्रवृत्तौ मत्यां—येषां धर्मशास्त्रेषुपानाधिकारोऽस्तीत्यर्थः ।

मद्येनविनामांसपरिणामाभाव :—

आनूपं जांगलं मांसं विधिनाऽप्युपकल्पितम् ।
मद्यं सहायमप्राप्य सम्यक् परिणमेत्कथम् ॥ ७० ॥

मद्येन विना लशुनस्याल्पोगुण :—

गुरोग्रमारुतव्याधिघातिनो लशुनस्य च ।
मद्यमांसवियुक्तस्य प्रयोगः स्यात्कियान् गुणः ॥ ७१ ॥

मद्येनशस्त्रजन्यवेदनासहत्वम्—

निगूढशल्याहरणे शस्त्रक्षाराग्निकर्मणि ।
पीतमद्यो विषहते गुरु[1] वैद्यविकत्थनाम् ॥ ७२ ॥

मद्यादन्यन्नारोग्यकृत्—

अनलोत्तेजनं रुच्यं शोकश्रमविनोदनम् ।
न चाऽतः[2] परमस्त्यन्यदारोग्यबलपुष्टिकृत् ॥ ७३ ॥

तस्मान्मद्यं पेयम्—

रक्षता जीवितं तस्मात्पेयमात्मवता सदा ।
आश्रितोपाश्रितहितं परमं धर्मसाधनम् ॥ ७४ ॥

मद्यपान विधि :—

स्नातः प्रणम्य गुरुविप्रगुरूंन्यथास्व
वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य[3] ।
आपानभूमिमथ गंधजलाभिषिक्ता-
माहारमंडपसमीपगतां श्रयेत ॥ ७५ ॥
स्यास्तृतेऽथ शयने कमनीये
शुभ्रमिश्ररमणीगमवेतः ।

---

१ विकत्थनाकदर्थना । २ अतोऽस्मान्मद्यात् । ३ परिग्रहस्य कर्मकरस्य । स्नातइत्यादिपद्यं वसन्ततिलकम् ।

स्वं यशः [1]कथकचारणसंघै-
रुद्धतं निरामयमतिलोकम् ॥ ७६ ॥
[2]विलासिनीनां च विलासशोभि
गीतं सनृत्तं कलतूर्यघोषैः ।
कांचीकलापैश्चलकिंकिणीकैः
क्रीडाविहंगैश्च कृतानुनादम् ॥ ७७ ॥
[3]मणिकनकसमुत्थैरौपगेयैर्विचित्रैः
सजलविविधलेखक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ।
अपि मुनिजनचित्तक्षोभसंपादिनीभि-
श्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिः प्रियाभिः ॥ ७८ ॥
[4]स्तननितंबकृतादतिगौरवा-
दलसमाकुलमीश्वरसंभ्रमात् ।
इति गतं दधतीभिरसंस्थितं
तरुणचित्तविलोभनकार्मणम् ॥ ७९ ॥
[5]यौवनासवमत्ताभिर्विलासाधिष्ठितात्मभिः ।
सचार्यमाणं युगपत्तन्वंगीभिरितस्ततः ॥ ८० ॥

---

१ कथकः "कत्थक" इति लोके । चारणःबन्दी—कीर्तिसञ्चारकः, यदुक्तं पद्म-पुराणे चारणलक्षणम्—"गन्धर्वाणां ततोलोकः परतः शतयोजनात् । देवानां गायनास्ते न चारणाः स्तुतिपाठकाः." । अतिलोकमद्भुतरूपम् । २ विलासिनीनां स्त्रीणाम् । विलासशोभीति गीतमित्यस्य विशेषणम् । स्वास्तूत्वइतिस्वागतावृत्तम् कला मधुरा तूर्याणां घोषाः शब्दास्तैः । चलाः किंकिणीकाः क्षुद्रघण्टिका येषां काञ्चीकलापानां तैः । विलास लक्षणं यथा—यानस्थानासनादीनां हर्षभ्रूनेत्रकर्मणां विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना । क्रीडाविहङ्गाः सारसादयः । उपगानिर्वचनः । ३ सजलं लावण्यविशिष्टं विविधलेखं यत्क्षौमवस्त्रं तेन सुसमङ्गैर्युतैः । मालिनी वृत्तमेतत् । ४ अलसंगतंगमनंदधतीभि. । ईश्वरस्य भर्तुः संभ्रमोभयं तस्मात् । कार्मणंसमर्थं वशीकरणमित्यर्थः । द्रुत विलम्बितं छन्दः । ५ यौवनासवास्वां मत्ताभिः । विलासेनाधिष्ठित आत्मा चित्तं यासां ताभिः ।

तेषामुपक्रम :—

शीताः प्रदेहा मणयः सेका व्यजनमारुताः ।
सिताद्राक्षेक्षुखर्जूरकाश्मर्यैः स्वरसाः पयः ॥ १०१ ॥
सिद्धं मधुरवर्गेण रसा यूषाः सदाडिमाः ।
षष्टिकाः शालयो रक्ता यवाः सर्पिश्च जीवनम्[1] ॥ १०२ ॥
कल्याणकं महातिक्तं षट्पलं पयसाग्निकः[2] ।
पिप्पल्यो वा शिलाह्नं वा रसायनविधानतः ॥ १०३ ॥
त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा ।

प्रसक्तवेगेषु मुखनासावरोधनादि :—

[3]प्रसक्तवेगेषु हितं मुखनासावरोधनम् ॥ १०४ ॥
पिबेद्वा मानुषीक्षीरं तेन दद्याच्च नावनम् ।
मृणालबिसतृष्णा वा लिह्यात्क्षौद्रेण साभयः ॥ १०५ ॥
दुरालभा वा मुस्तां वा शीतेन सलिलेन वा ।
पिबेन्मरिचकोलास्थिमज्जोशीराहिकेसरम् ॥ १०६ ॥
धात्रीफलरसे सिद्धं पथ्याक्वाथेन वा घृतम् ।

दोषबलानुसारेण क्रिया :—

कुर्यात्क्रियां यथोक्तां च यथादोषबलोदयम् ॥ १०७ ॥
पंचकर्माणि चेष्टानि सेचनं शोणितस्य च ।
[4]सत्त्वस्यालंबनं ज्ञानमशुद्धिविषयेषु च ॥ १०८ ॥

मदादिषु नस्यादियोजना :—

मदेष्वतिप्रवृद्धेषु मूर्च्छायेषु च योजयेत् ।
तीक्ष्णं संन्यासविहितं विषघ्नं विषजेषु च ॥ १०९ ॥

---

१ जीवनं प्राणधारणमेतत्सर्वमथवा जलम् । २ अग्निरश्चित्रकः । ३ प्रसक्तवेगेषु अतिशयवेगेषु मदादिषु । तेन मानुषी क्षीरेण । ४ सत्त्वस्य गुणस्यालम्बनमाश्रयणम् । अशुद्धिरनभिकाङ्क्षा ।

संन्यासे शीघ्रं नस्यादियोजना :—

आशु प्रयोज्यं संन्यासे मुनीक्ष्ण नस्यमंजनम् ।
धूमप्रधमन, तोदः सूचीभिश्च नखांतरे ॥ ११० ॥
केशानां लुंचनं, दाहो, दंशो दशनवृश्चिकैः ।
कट्वम्लगालनं ववत्रे कपिकच्छ्ववघर्षणम् ॥ १११ ॥
उत्थितो लब्धसंज्ञश्च लशुनस्वरसं पिबेत् ।
खादेत्सव्योपलवणं बीजपूरककेसरम् ॥ ११२ ॥
लब्धन्नं प्रति [1]तीक्ष्णोष्णमद्यारस्रोतोविशुद्धये ।

मदादिमतउपाचरणम्—

[1]विस्मापनैः संस्मरणैः प्रियश्रवणदर्शनैः ॥ ११३ ॥
पटुभिर्गीतवादित्रशब्दैर्व्यायामशीलनैः ।
त्रसनोल्लेखनैर्धूमैः शोणितस्यावमेचनैः ॥ ११४ ॥
उपाचरेत्तं प्रततमनुबधभयात्पुन. ।
तस्य संरक्षितव्यं च मनः [2]प्रलयहेतुत." ॥ ११५ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अर्शोरोगिणोयंत्रादि—

"काले साधारणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम् ।
विशुद्धकोष्ठं [3]लब्धल्पमनुलोमनमाशितम् ॥ १ ॥
शुचि कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविण्मूत्रमव्ययम् ।
शयने फलके वान्यनरोत्संगे व्यपाश्रितम् ॥ २ ॥

---

[1] तीक्ष्णोष्णंलब्धन्नं प्रति अल्पम् ।] विस्मापनैर्विस्मयकारिभिः । [2] प्रलयहेतुतः नाशहेतुतः । [3] आशितं भोजितम् ।

पूर्वेण कायेनोत्तानं प्रत्यादित्यगुदं समम् ।
समुन्नतकटीदेशमथ　　यन्त्रणवाससा ॥ ३ ॥
सक्थ्नोः शिरोधरायां च परिक्षिप्तमृजुस्थितम् ।
आलंबितं　परिचरैः　सर्पिषाभ्यक्तपायवे ॥ ४ ॥
ततोऽस्मै सर्पिषाभ्यक्तं निदध्यादृजुयंत्रकम् ।
शनैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात् ॥ ५ ॥
यंत्रे प्रविष्टं दुर्नाम स्रोतगुंठितयाऽनु च ।
शलाकयोत्पीड्य भिषग् यथोक्तविधिना दहेत् ॥ ६ ॥
[1]क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षारेण ज्वलनेन वा ।
सद्धा बलिनश्छित्त्वा वीतयन्त्रमथातुरम् ॥ ७ ॥
स्वभ्यक्तगुदजघनमवगाहे निधापयेत् ।
निर्वातमंदिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत् ॥ ८ ॥
एकैकमिति सप्ताहात्सप्ताहात्समुपाचरेत् ।

बह्वर्शसां कर्मक्रम :—

प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः ॥ ९ ॥
बह्वर्शसः,

सुदग्धलक्षणम्—

सुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता ।
रुचिरन्नेऽग्निपटुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः ॥ १० ॥

बस्तिशूले लेप :—

बस्तिशूले त्वधो नाभेर्लेपयेच्छ्लक्ष्णकल्कितैः ।
[2]वर्षाभूकुष्ठसुरभिमिशिलोहामराह्वयैः ॥ ११ ॥

पुरीषादिप्रतीघाते क्वाथादि :—

शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः ।
वरणालंबुषैरंडगोकंटकपुनर्नवैः ॥ १२ ॥

---

१ इतरदगुल्वम् । २ लोहमगुरु ।

सुपर्णासुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत् ।
सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम् ॥ १३ ॥
युंजीतान्नं शकृद्भेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान् ।

दाहायोग्यस्यतैलेनसेचनादि—

अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान् कफवातजान् ॥ १४ ॥
संस्तंभकंडूरुक्शोफानभ्यज्य गुदकीलकान् ।
[1]विल्वमूलाग्निकक्षारकुष्टैः सिद्धेन सेचयेत् ॥ १५ ॥
तैलेनाहिबिडालोष्ट्रवराहवसयाथवा ।
स्वेदयेदनुपिंडेन द्रवस्वेदेन वा पुनः ॥ १६ ॥
सक्तुना पिंडिकाभिर्वा स्निग्धाना तैलसर्पिषा ।
रास्नाया हपुषाया वा पिष्टैर्वा [2]काण्र्यगधिकैः ॥ १७ ॥

धूपनम्—

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम् ।
मार्जारचर्म सर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम् ॥ १८ ॥
तथाश्वगंधा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम् ।

गुदजशातिनीवर्ति :—

धान्याम्लपिष्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकैः[3] मृदु ॥ १९ ॥
लेपितं छायया शुष्का वर्तिर्गुदजशातनी ।

अन्यवर्ति :—

शजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते ॥ २० ॥
गुंजामूरणकूष्मांडबीजैर्वर्तिस्तथागुणा ।

लेपा :—

स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकल्कितैः ॥ २१ ॥

---

१ अग्निरग्निनरः । २ कृष्णगन्धा शोभाञ्जनम् । ३ तस्य जीमूतफलस्य जालकम् । जीमूतो 'बन्दाल' हि० ।

[1]वृकवाकुशकृत्कृष्णानिशागुंजाफलैस्तथा ।,
स्नुक्क्षीरपिष्टैः [2]षड्ग्रंथाहलिनीवारणास्थिभिः ॥ २२ ॥
कुलीरशृंगीविजयाकुष्ठारष्करतुत्थकैः ।
शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिवजैः ॥ २३ ॥
पीलुमूलेन बिल्वेन हिंगुना च समन्वितैः ।,
कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैंधवं गुडः ॥ २४ ॥
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम् ।,
आर्कं पयः स्नुहीकाडं कटुकालाबुपल्लवाः ॥ २५ ॥
करञ्जो बस्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ।,
[3]आनुवासनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः ॥ २६ ॥,

तैलाभ्यञ्जनम्—

एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलाभ्यभ्यंजनानि च ।

धूपनादिभिर्दुष्टरुधिरस्राव :—

धूपनालेपनाभ्यंगैः प्रस्रवंति गुदाकुराः ॥ २७ ॥
सचितं दुष्टरुधिरं ततः संपद्यते सुखी ।

रुधिरहरणम्—

अवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक् ॥ २८ ॥
अर्शोभ्यो [4]जलजाशस्त्रसूचीकूर्चैः पुनःपुनः ।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरपशाम्यति ॥ २९ ॥
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।

गोरसपानम्—

यो जातो गोरसः क्षीराद्वह्निचूर्णविघूर्णितात् ॥ ३० ॥

---

१ वृकवाकुः कुक्कुटः । २ हलिनी—लाङ्गली । ३ अनुवासनेभवानि आनुवासनिकानितैः पिप्पलीमदनफलमित्यादिभिः । ४ जलजा-जलौका । ५ वह्निश्चित्रकः । ६ गोरसस्तक्रः ।

पिबंस्तमेव तेनैव भुंजानो गुदजान् जयेत् ।

चूर्णपानम्—

कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत् ॥ ३१ ॥
अश्नन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते [1]हतनामभिः ।

हिंग्वादि चूर्णपानम्—

गुदश्वयथुशूलार्तो मंदाग्निर्गौल्मिकान् पिबेत् ॥ ३२ ॥
हिंग्वादीननु तक्रं वा खादेद्गुडहरीतकीम् ।
तक्रेण वा पिबेत्पथ्यावेल्लाग्निकुटजत्वचः ॥ ३३ ॥
कलिंगमगधाज्योति[2]सूरणान्वांशवर्धितान् ।
कोष्णांबुना वा त्रिपटुव्योषहिंग्वम्लवेतसम् ॥ ३४ ॥

तक्रतर्पणम्—

युक्तं बिल्वकपित्थाभ्यां महौषधविडेन वा ।
आरुष्करैर्यवान्या वा प्रदद्यात्तक्रतर्पणम् ॥ ३५ ॥
दद्याद्वा हपुषां हिंगु चित्रकं तक्रसंयुतम् ।
मासं तक्रानुपानानि खादेत्पीलुफलानि वा ॥ ३६ ॥
पिबेदहरहस्तक्रं निरन्नो वा प्रकामतः ।
अत्यर्थं मंदकायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत् ॥ ३७ ॥

तक्रप्रयोगकालादि—

सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा ।
बलकालविकारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
सायं वा लाजसक्तूनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम् ।
जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेयां ससैंधवाम् ॥ ३९ ॥
तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रौदनमतः परम् ।
यूषै रसैर्वा तक्राढ्यैः शालीन् भुंजीत मात्रया ॥ ४० ॥

---

१ हतनामभिरर्शोभिः । २ ज्योतिश्चित्रकः ।

त्रिविधतक्रप्रयोग :—

रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।
तक्रं दोषाग्निबलवत्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥

तक्रप्रयोगेगुणा :—

न प्ररोहंति गुदजा. पुनस्तक्रसमाहताः ।
निषिक्तं तद्धि दहति भूमावपि तृणोलुपम् ॥ ४२ ॥

स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसो धातूनुपैति यः ।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः परं तुष्टिश्च जायते ॥ ४३ ॥

वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तते ।

मथितविशेषपानेगुदजक्षय :—

[1]मथितं भाजने क्षुद्रवृहतीफललेपिते ॥ ४४ ॥
निशां पर्युषितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम् ।

तक्रारिष्टपानम्—

धान्योपकुंचिकाजाजीहपुषापिप्पलीद्वयैः ॥ ४५ ॥
[2]कारवीग्रंथिरशठीयवान्यग्नियवानकै. ।
चूर्णितैर्घृतपात्रस्थं नात्यम्लं तक्रमासुतम् ॥ ४६ ॥

तक्रारिष्टं पिबेज्जातं व्यक्ताम्लकटु कामतः ।
दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम् ॥ ४७ ॥
गुदश्वयथुकंड्वार्तिनाशनं बलवर्धनम् ।

तक्रप्रयोग :—

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुंभं प्रलेपयेत् ॥ ४८ ॥
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ।,
भार्ग्यास्फोतामृतापञ्चकोलेष्वप्येष संविधिः ॥ ४९ ॥

---

१ मथितं तक्रम् । २ "कारवी-मँगरैला" या "स्याहजीरा" इतिलोके ।

स्नेहतपेयादि—

पिप्पलीगजकणापाठाक्षारचीपंचकोलकैः ।
तुम्बुजाजीधनिकाबिल्वमध्यैश्च कल्पयेत् ॥ ५० ॥
फलाम्लानम्लकस्नेहान् पेयायूषरसादिकान् ।
[1]एभिरेवौषधैः साध्यं वारि सर्पिश्च दीपनम् ॥ ५१ ॥
वक्ष्यते गाढवर्चसाम् क्रमोयं भिन्नशकृताम्,

गाढवर्चसिचिकित्सा—

स्नेहाढ्यैः सक्तुभिर्युक्तां लवणां वारुणीं पिबेत् ॥ ५२ ॥
[2]लवणा एव वा तक्रसीधुधान्याम्लवारुणीः ।,
प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् सक्तुभिश्चावचूर्णितान् ॥ ५३ ॥
करंजपल्लवान् खादेद्वातवर्चोनुलोमनान् ।,
सगुड नागरं पाठां गुडक्षारघृतानि वा ॥ ५४ ॥
गोमूत्राध्युषितामद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।,

हरीतकी प्रयोग :—

पथ्याशतद्वयं मूत्रद्रोणेनाऽऽमूत्रसंक्षयात् ॥ ५५ ॥
पक्वान् खादेत्समधुना द्वे द्वे हन्ति कफोद्भवान् ।
दुर्नामकुष्ठश्वथुगुल्ममेहोदरकृमीन् ॥ ५६ ॥
ग्रंथ्यर्बुदापचीस्थौल्यपाण्डुरोगाढ्यमारुतान् ।,

गुदाङ्कुरनाशनायोगा :—

अजशृंगीजटा रक्तमजामूत्रेण यः पिबेत् ॥ ५७ ॥
गुडवार्ताकभुक्तस्य नश्यत्याशु गुदांकुराः ।,
श्वेतारसेन त्रिवृता, पथ्या तक्रेण वा सह ॥ ५८ ॥

---

१ एभिर्गजकणादिभिः पिप्पलीद्वयंपिप्पलीगजपिप्पली च । यवानकोऽजमोदा । २ लवणा लवणमहिताम् । वार्ताको वृन्ताकः । श्वेतानिकृता लवणा-मलवणाः ।

पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां गुडान्विताम् ।,
अथवा मन्त्रिवृद्दंती भक्षयेदनुलोमनीम् ॥ ५९ ॥
हृते गुदाश्रये दोषे गुदजा याति संक्षयम् ।,
दाडिमस्वरसाजाजीयवानीगुडनागरैः ॥ ६० ॥
पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोनुलोमनम् ।,
सीधुं वा गौडमथवा सचित्रकमहौषधम् ॥ ६१ ॥
पिबेत्सुरा वा हपुषा पाठासौवर्चलान्विताम् ।,
दशादिदशकैर्वृद्धा[1] पिप्पलीर्द्विपिचुं तिलान् ॥ ६२ ॥
पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहुताशयोः ।,

पाठाप्रयोग :—

दुस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा ॥ ६३ ॥
एकैकेनाऽपि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम् ।

अभयारिष्ट :—

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम् ॥ ६४ ॥
प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थाना ततोऽर्धतः ।
विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥ ६५ ॥
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले ।
दत्त्वा प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने ॥ ६६ ॥
पक्षात्स दीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहंति च ।
गुदजग्रहणीपाडुकुष्ठोदरगरज्वरान् ॥ ६७ ॥
श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमीक्रमीन् ।

अन्योऽरिष्ट :—

जलद्रोणे पचेद्दंतीदशमूलवराग्निकान् ॥ ६८ ॥

---

१ दशपिप्पल्य आदिर्येषा दशकाना दशादयस्तैर्दशकास्तै. । प्रथमदिने दश पिप्पलीस्तिलस्य च द्विपिचुमेवं प्रतिदिनं दशपिप्पलीर्द्विपिचुं च तिलस्य वर्द्धयेत् । अग्निबलस्यानुसत्वाद्यथेष्ट कालमस्य प्रयोग. कार्यः । वहे द्रोणचतुष्टये ।

पालिकान्पादशेषे तु क्षिपेद्गुडतुलां परम् ।
[1]पूर्ववत्सर्वमस्य स्यादागुडोमितरस्त्वयम् ॥ ६९ ॥

दुरालभारिष्ट :—

पचेद्दुरालभाप्रस्थं द्रोणेऽपां प्रासृतैः सह ।
[2]दंतीपाठाग्निविजयावासामलकनागरैः ॥ ७० ॥
तस्मिन् सिताशतं [3]दद्यात्पादस्थेऽन्यच्च पूर्ववत् ।
लिपेत्कुभं तु फलिनीकृष्णाचव्याज्यमाक्षिकैः ॥ ७१ ॥

घृतप्रयोग :—

प्राग्भक्तमानुलोम्याय फलाम्लं वा पिबेद् घृतम् ।
सव्योषचित्रकसिद्धं　वा　यवक्षारगुडान्वितम् ॥ ७२ ॥
पिप्पलीमूलसिद्धं वा सगुडक्षारनागरम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूल[4]धनिकादाडिमैर्घृतम् ॥ ७३ ॥
दध्ना च साधितं वातशकृन्मूत्रविबन्धहृत् ।,
पलाशक्षारतोयेन त्रिगुणेन　पचेद् घृतम् ॥ ७४ ॥
वत्सकादिप्रतीवापमर्शोघ्नं दीपनं परम् ।,
पंचकोलाभयाक्षारयवानीबिडसैन्धवैः ॥ ७५ ॥
सपाठाधान्यमरिचैः सबिल्वैर्दधिसद्धृतम् ।
साधयेत् तज्जयत्याशु गुदवंक्षणवेदनाम् ॥ ७६ ॥
प्रवाहिका गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।,

चाङ्गेरीघृतम्—

पाठाजमोदधनिकाश्वदंष्ट्रापचकोलकैः ॥ ७७ ॥
सबिल्वैर्दधि चांगेरीस्वरसे च चतुर्गुणे ।
हंत्याज्यं सिद्धमानाह मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ७८ ॥

---

१ अस्यदन्त्यरिष्टस्यपरमन्यत्सर्वं धातकीपरिमाणं - घृतभाजने - स्थापनादि पूर्ववत्–अभयारिष्टतुल्यम् । २ विजया पथ्या । ३ अन्यत्–स्थापनादि पूर्ववदभयारिष्टवत् । ४ धनिका धान्यकम् ।

गुदभ्रंशार्तिगुदजग्रहणीगदमारुतान् ।

मांसरसप्रयोगः—

शिखितित्तिरिलावानां रसानम्लान् सुसंस्कृतान् ॥ ७९ ॥
दक्षाणां वर्तकानां वा दद्याद्विड्वातसंग्रहे ।

शाकान्नादि—

वास्तुकाग्निमिवृद्दीपाठाम्लीकादिपल्लवान् ॥ ८० ॥
अन्यच्च कफवातघ्नं शाकं च लघु भेदि च ।
सहिङ्गु यमके भृष्टं सिद्धं दधिसरैः सह ॥ ८१ ॥
धनिकापञ्चकोलाभ्यां पिष्टाभ्यां दाडिमाम्बुना ।
[१]आर्द्रिकायाः किसलयैः शकलैरार्द्रकस्य च ॥ ८२ ॥
युक्तमगारधूपेन हृद्येन सुरभीकृतम् ।
सर्जीरकं ससौरिचं विडसौवर्चलोत्कटम् ॥ ८३ ॥
वातोत्तरस्य रूक्षस्य मंदाग्नेर्बद्धवर्चसः ।
कल्पयेद्रक्तशाल्यन्नं [२]व्यञ्जनं शाकवद्रसान् ॥ ८४ ॥
गोगोधाच्छागलोष्ट्राणां विशेषात्क्रव्यभोजिनाम् ।

पानम्—

मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम् ॥ ८५ ॥
अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाऽल्पकं शृतम् ।
धान्येन धान्यशुंठीभ्यां कटकारिकयाऽथवा ॥ ८६ ॥
अंते भक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोनुलोमनम् ।

विड्वाताद्यनुलोमने हेतुः—

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले ॥ ८७ ॥
गुदे शाम्यंति गुदजाः पावकश्चाभिवर्धते ।

---

१ आर्द्रिकाया धनिकायाः किसलयैः पल्लवैः । शकलैः खण्डैः । २ व्यञ्जनं सूपकर्वितादि ।

अनुवासन बस्तिप्रयोग :—

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः ॥ ८८ ॥
विलोमवाताः शूलार्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ।
पिप्पली मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् ॥ ८९ ॥
कुष्ठं शुंठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ।
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् ॥ ९० ॥
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ।
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ९१ ॥
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वंक्षणाश्रयम् ।
पिच्छास्रावं गुदे शोफं वातवर्चोविनिग्रहम् ॥ ९२ ॥
[1]उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ।

निरूहण प्रयोग :—

निरूहं वा प्रयुंजीत सक्षीरं पाञ्चमूलिकम् ॥ ९३ ॥
समूत्रस्नेहलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः ।

रक्तार्शश्चिकित्सा—

अथ रक्तार्शसो वीक्ष्य मारुतस्य कफस्य वा ॥ ९४ ॥
अनुबन्धं ततः स्निग्धं रूक्षं वा योजयेद्धिमम् ।

वातानुबन्धकफानुबंधलक्षणम्—

शकृच्छ्यावं खरं रूक्षमधो निर्याति नानिलः ॥ ९५ ॥
कट्यूरुगुदशूलं च हेतुर्यदि च रूक्षणम् ।
तत्रानुबंधो वातस्य, श्लेष्मणो यदि विट् श्लथा ॥ ९६ ॥
श्वेता पीता गुरुः स्निग्धा सपिच्छः स्तिमितो गुदः ।
हेतुःस्निग्धगुरुर्विद्याद्यथास्वं चाप्यलक्षणात् ॥ ९७ ॥

दुष्टेऽस्रे शोधनादि :—

दुष्टेऽस्रे शोधनं कार्यं लंघनं च यथाबलम् ।
यावच्च दोषैः कालुष्यं स्रुतेस्तावदुपेक्षणम् ॥ ९८ ॥

---

१ उत्थानं बुद्धिम् ।

तिक्तद्रव्यैरुपचारः—

दोषाणां पाचनार्थं च वह्निसंधुक्षणाय च ।
संग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तैरुपाचरेत् ॥ ९९ ॥

प्रक्षीणदोषादेरक्तस्रावेचिकित्सा :—

यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य वा ।
स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यंजनबस्तिषु ॥ १०० ॥

पित्तोल्बण रक्तस्यस्तम्भनम्—

यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं धर्मकाले प्रवर्तते ।
स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम् ॥ १०१ ॥

कफानुगतेरक्ते क्रिया :—

सकफेऽस्रे पिबेत्पाक्यं शुंठी कुटजवल्कलम् ।
किराततिक्तकं शुंठी धन्वयासं कुचंदनम् ॥ १०२ ॥
दार्वीत्वङ्निंबसेव्यानि त्वचं वा दाडिमोद्भवाम् ।
कुटजत्वक्फलं तार्क्ष्यं माक्षिकं [1]घुणवल्लभाम् ॥ १०३ ॥
पिबेत्तंडुलतोयेन कल्कितं वा [2]मयूरकम् ।

कुटजावलेह :—

तुला दिव्याम्भसि पचेदार्द्रायाः कुटजत्वचः ॥ १०४ ॥
नीरमाया त्वचि क्वाथे दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान् ।
समंगाफलिनीमोचरसाम्मुष्टचंशकान्समान् ॥ १०५ ॥
[3]तैश्च शक्रयवान्पूते ततो दर्वीप्रलेपनम् ।
पक्त्वावलेहं लीढ्वा च तं यथाग्निबलं पिबेत् ॥ १०६ ॥
पेयां मंडं पयश्छागं गव्यं वा छागदुग्धभुक् ।
लेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीसारपायुजान् ॥ १०७ ॥

---

१ तार्क्ष्यं रसाञ्जनम् । घुणप्रिया अतिविषा । २ मयूरकमपामार्गम् ।
३ तैः समङ्गादिभिः समान् शक्रयवान्-इन्द्रयवान् ।

बलवद्रक्तपित्तं च सवदूर्ध्वमधोऽपि वा ।

अन्यः कुटजावलेहः :—

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषिताम् ॥ १०८ ॥
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रयम् ।
रोध्रद्वयं मोचरसं बला दाडिमजां त्वचम् ॥ १०९ ॥
[1]बिल्वकर्कटिका मुस्तं समङ्गा धातकीफलम् ।
पलोन्मितं दशपलं कुटजस्यैव च त्वचः ॥ ११० ॥
त्रिंशत्पलानि गुडतो घृतात्पूते च विंशतिः ।
तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥ १११ ॥
सर्वार्शोग्रहणीदोषश्वासकासान्नियच्छति ।

रक्तस्तम्भनाः प्रयोगाः :—

रोध्रं तिलान्मोचरसं समङ्गां चंदनोत्पलम् ॥ ११२ ॥
पाययित्वाऽजदुग्धेन शालीस्तेनैव भोजयेत् ।
यष्ट्याह्वपद्मकानंतापयस्याक्षीरमोरटम् ॥ ११३ ॥
ससितामधु पातव्यं शीततोयेन तेन वा ।
रोध्रकट्फलकुटजसमंगाशाल्मलीत्वचम् ॥ ११४ ॥
[2]हिमकेसरयष्ट्याह्वसेव्यं वा तण्डुलाम्बुना ।
यवानीन्द्रयवाः पाठा बिल्वं शुंठी रसाञ्जनम् ॥ ११५ ॥
चूर्णश्च लेहितः शूले प्रवृत्ते चाऽतिशोणिते ।
दुग्धिकाकंटकारीभ्यां सिद्धं सर्पिः प्रशस्यते ॥ ११६ ॥
अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्फलोत्पलैः ।
सकेसरैर्यवक्षारदाडिमस्वरसेन वा ॥ ११७ ॥
शर्कराम्भोजकिंजल्कसहितं सह वा तिलैः ।
अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति ॥ ११८ ॥

छागनवनीतादिप्रयोगः :—

छागानि नवनीताज्यक्षीरमांसानि जाङ्गलः ।
अनम्लो वा कदम्लो वा सवास्तुकरसो रसः ॥ ११९ ॥

---

[1] बिल्वकर्कटिका लघुबिल्वफलम् । [2] हिमं श्वेतचन्दनम् ।

रक्तशालिः सरो दध्नः षष्टिकस्तरुणी सुरा ।
तरुणश्च सुरामंडः शोणितस्यौषधं परम् ॥ १२० ॥

पलाण्डु प्रयोग :—

पेयायूषरसाद्येषु पलाडुः केवलोऽपि वा ।
स जयत्युल्बणं रक्तं मारुतं च प्रयोजितः ॥ १२१ ॥

रक्तेऽतिस्रुतेचिकित्सा--

वातोल्बणानि प्रायेण भवंत्यस्रेऽतिनिःसृते ।
अर्शांसि तस्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत् ॥ १२२ ॥

रक्तेऽतिवृद्धेशीतोपचार :--

दृष्ट्वाऽस्रपित्तं प्रबलमबलौ च कफानिलौ ।
शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रशांतये ॥ १२३ ॥

एवं शमाभावेरसैस्तर्पणम्—

यदा चैवं शमो न स्यात् स्निग्धोष्णैस्तर्पयेत्ततः ।
रसैः कोष्णैश्च सर्पिभिरवपीडकयोजितैः[1] ॥ १२४ ॥
सेचयेत्त कवोष्णैश्च कामं तैलपयोघृतैः ।

पिच्छावस्ति :—

यवासकुशकाशाना मूलं पुष्पं च शाल्मलेः ॥ १२५ ॥
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थशुंगाश्च द्विपलोन्मिताः ।
त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थे च साधयेत् ॥ १२६ ॥
क्षीरशेषे कषाये च तस्मिन्पूते विमिश्रयेत् ।
कल्कीकृतं मोचरसं समंगां चदनोत्पलम् ॥ १२७ ॥
प्रियंगुं कौटज बीजं कमलस्य च केसरम् ।
पिच्छावस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः ॥ १२८ ॥

---

१ अवपीडक भक्तोत्तरं घृतपानम् ।

प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ।

अनुवासनम्—

यष्ट्याह्वपुण्डरीकेण तथा मोचरसादिभिः ॥ १२९ ॥
क्षीरद्विगुणितः पक्वो देयः स्नेहोऽनुवासनम् ।

घृतम्—

मधुकोत्पललोध्राम्बुसमङ्गाबिल्वचन्दनम् ॥ १३० ॥
चविकातिविषा मुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रजः ।
दार्वीत्वङ्नागरं मांसी चित्रको देवदारु च ॥ १३१ ॥
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः साधितं [1]तैस्त्रिदोषजित् ।
अर्शोतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ॥ १३२ ॥
मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहे प्रवाहणे ।
पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले देयं तत्परमौषधम् ॥ १३३ ॥

व्यत्यासान्मधुराम्लप्रयोगः—

व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयन् ।
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शःकृतान् गदान् ॥ १३४ ॥

स्वेदादि—

उदावर्तिनमभ्यज्य तैलैः शीतज्वरापहैः ।
सुस्निग्धैः स्वेदयेत्पिण्डैर्वर्तिमस्मै गुदे नयेत् ॥ १३५ ॥
अभ्यक्तां तरकराङ्गुष्ठनिभामनुलोमनीम् ।
दद्याच्छ्यामात्रिवृद्दन्तीपिप्पलीनीलिनीफलैः ॥ १३६ ॥
विचूर्णितैर्बिलवणैर्गुडगोमूत्रसंयुताम् ।
तद्वन्मागधिकाराठगृहधूमैः ससर्षपैः ॥ १३७ ॥
एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाड्या विनिर्धमेत् ।

स्निग्धबस्त्यादि—

सद्विघाते सुतीक्ष्णं तु बस्तिं स्निग्धं प्रपीडयेत् ॥ १३८ ॥

---

१ तैः-मधुकादिद्रव्यैः ।

ऋजू कुर्याद्गुदौधारो विण्मूत्रमरुतोऽस्य नः ।
भूयोऽनुबंधे वातघ्नैर्विरेच्यः स्नेहरेचनैः ॥ १३९ ॥
अनुवास्यश्च रौक्ष्याद्धि संगो मारुतवर्चसोः ।

कल्याणकक्षारः—

[1]त्रिकटुत्रिपटुश्रेष्ठादंत्यरुष्करचित्रकम् ॥ १४० ॥
जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमंतर्धूमं विपाचयेत् ।
शरावसंधौ मृल्लिप्ते क्षारः कल्याणकाह्वयः ॥ १४१ ॥
स पीतः सर्पिषा युक्तो भक्ते वा स्निग्धभोजिना ।
उदावर्तविबन्धार्शोगुल्मपाण्डूदरक्रिमीन् ॥ १४२ ॥
मूत्रसंगाश्मरीशोफहृद्रोगग्रहणीगदान् ।
मेहप्लीहरुजानाहश्वासकासांश्च नाशयेत् ।

गाढपुरीषस्यात्रयोज्यम्—

सर्वं च कुर्याद्यत्प्रोक्तमर्शसां गाढवर्चसाम् ॥ १४३ ॥

शुक्तप्रयोगः—

द्रोणेऽम्भसः [2]पूतिवल्काद्द्वितुलमथ पचे-
त्पादशेषे च तस्मिन्
देयाशीतिर्गुडस्य प्रतनुकरजसो
व्योषतोऽष्टौ पलानि ।
एतन्मासेन जातं जनयति परमा-
मूष्मणः पक्तिशक्ति
शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं प्रजयति गुदज-
प्लीहगुल्मोदराणि ॥ १४४ ॥

चुक्र प्रयोगः—

पचेत्तुलां पूतिकरंजवल्काद्
द्वे मूलतश्चित्रककण्टकार्योः ।
द्रोणत्रयेऽम्भश्चरणावशेषे
पूते क्षिपेत्तत्र गुडस्य दद्यात् ॥ १४५ ॥

---

१ त्रिपटुलवणत्रयम् । श्रेष्ठा त्रिफला । २ पूतिवल्कः पूतिकरञ्जः ।

पल्किं च सुचर्णितं त्रिजात-
त्रिकटुग्रथिकदाडिमाश्मभेदम् ।
पुरपुष्करमूलधान्यचव्यं
हपुषामार्द्रकमम्लवेतसं च ॥ १४६ ॥
शीतीभूतं क्षौद्रविशत्युपेत-
मार्द्रद्राक्षाबीजपूरार्धकैश्च ।
युक्त काम गण्डिकाभिस्तथेक्षोः
सर्पिः पात्रे मासमात्रेण जातम् ॥ १४७ ॥

चुक्रं क्रकचमिवेद दुर्नाम्ना वह्निदीपन परमम् ।
पांडुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाश्मकृच्छ्रघ्नम् ॥ १४८ ॥

द्वितीय श्चुक प्रयोग :--

द्रोण पीलुरसस्य वस्त्रगलित न्यस्त हविर्भाजने
युञ्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः ।
पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योषत्वगेलोत्पलैः
स्पृक्काकोलसवगनेलचपलामूलाग्निकैः पालिकैः ॥ १४९ ॥

गुडपलशतयोजित निवाते
निहितमिद प्रपिबश्च पक्षमात्रात् ।
निशमयति गुदांकुरान् सगुल्मा-
ननलबलं प्रबल करोति चाशु ॥ १५० ॥

गुडावलेह :—

एकैकशो दशपले दशमूलकुम्भे-
पाठाद्यार्कघुणवल्लभकट्फलानाम् ।
[3]दग्धे, सुतेऽनु कलशेन जलेन पक्वे
पादस्थिते गुडतुला पलपंचक च ॥ १५१ ॥

---

१ मदा-धातकी । मधुफला-द्राक्षा । मार्द्री रेणुका । २ कुम्भः त्रिवृत् ।
३ दग्धे, कलशेन द्रोणेन जलेन सुते पक्वे पाद स्थिते ।

पिण्डी—

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्वौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिंडी ॥ १५८ ॥

चूर्णम्—

पथ्यानागरकृष्णाकरंजवेल्लाग्निभिः सितातुल्यैः ।
वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १५९ ॥

वटिका—

कलिंगलाङ्गलीकृष्णावह्न्यपामार्गतण्डुलैः ।
भूनिंबसैंधवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥ १६० ॥

चूर्णतक्रयुक्तम् :—

लवणोत्तमवह्निकलिंगयवा-
श्चिरविल्वमहापिचुमंदयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथितालुडितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥ १६१ ॥

अर्शसि प्रधानमौषधम् :—

शुष्केषु भल्लातकमग्र्यमुक्तं
भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक् ।
सर्वेषु सर्वर्तुषु [1]कालशेय-
मर्शःसु बल्यं च मलापहं च ॥ १६२ ॥

अन्यरसैर्व्यत्यासेनतक्रसेवनम् :—

भित्त्वा विबंधाननुलोमनाय
यन्मारुतस्याग्निबलाय यच्च ।

---

१ कालशेयं तक्रम् ।

तदन्नपानौषधमर्शसेन[1]
सेव्यं, विवर्ज्यं विपरीतमस्मात् ॥ १६३ ॥

अर्शसिजाठराग्निरक्षा—

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः
प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ।
सन्नेऽनले संति न संति दीप्ते
रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम्" ॥ १६४ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अतीसारे लंघनम्—

"अतीसारो हि भूयिष्ठं भवत्यामाशयान्वयः ।
हत्वाग्निं वातजेऽप्यस्मात्प्राक् तस्मिल्लंघनं हितम् ॥ १ ॥

वमनम् :—

शूलानाहप्रसेकार्तं वामयेदतिसारिणम् ।

संचितदोषेपूपेक्षा—

दोषाः संनिचिता ये च विदग्धाहारमूर्छिताः ॥ २ ॥
अतीसाराय कल्पंते तेषूपेक्षैव भेषजम् ।
भृशोत्क्लेशप्रवृत्तेषु स्वयमेव चलात्मसु ॥ ३ ॥

---

१. अस्मात् विपरीतं वातविण्मूत्रनिग्रहकरमन्नपानम् ।

आमातिसारे भेषजनिषेधः—

प्रयोज्यं न तु संग्राहि पूर्वमामातिसारिणि ।

विबद्धदोषे हरीतकी—

अपि चाध्मानगुरुताशूलस्तैमित्यकारिणि ॥ ४ ॥
[१]प्राणदा प्राणदा दोषे विबद्धे संप्रवर्तिनी ।

मध्याल्पदोषयोश्चिकित्सा—

पिबेत्तां क्वथितां तोये मध्यदोषो विशोषयन् ॥ ५ ॥
भूनीकपिप्पलीशुंठीवचाधान्यहरीतकीः ।
अथवा बिल्वधनिकामुस्तानागरवालकम् ॥ ६ ॥
विडपाठावचापथ्याकृमिजिन्नागराणि वा ।
शुंठीघनवचामाद्रीबिल्ववत्सकहिंगु वा ॥ ७ ॥
शस्यते स्वल्पदोषाणामुपवासोऽतिसारिणाम् ।

साधितजलम्—

वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तापर्पटकेन वा ॥ ८ ॥
ह्रीवेरनागराभ्यां वा विपक्वं पाययेज्जलम् ।

क्षुधयामन्नम्—

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघ्वन्नं प्रतिभोजयेत् ॥ ९ ॥
तथा स दीप्तं प्राप्नोति रुचिमग्निबलं बलम् ।

भुञ्जानस्य पानम्—

तक्रेणा[३]वन्तिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा ॥ १० ॥
सुरया मधुना वाऽथ यथासात्म्यमुपाचरेत् ।

भोज्यानि—

भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं ग्राहिदीपनपाचनैः ॥ ११ ॥
बालबिल्वशठीधान्यहिंगुवृक्षाम्लदाडिमैः ।
पलाशहपुषाजाजीयवानीबिडसैन्धवैः ॥ १२ ॥

---

१ प्राणदा हरीतकी । २ माद्री रेणुका । ३ अवन्तिसोमेन काञ्जिकेन ।

लघुना पंचमूलेन पंचकोलेन पाठया ।

पेय.—

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ॥ १३ ॥
दाडिमाम्ला हिता पेया कफपित्ते समुल्बणे ।
अभयापिप्पलीमूलबिल्वैर्वातानुलोमनी ॥ १४ ॥

बहुदोषचिकित्सा—

विबद्धं दोषबहुलो दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ।
कृष्णाविडंगत्रिफलाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ १५ ॥
पेया युंज्याद्विरिक्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताम् ।

अतिसार्यामेचिकित्सा—

आमे परिणते यस्तु दीप्तेऽग्नावुपवेश्यते ॥ १६ ॥
सफेनपिच्छं सरुजं सविबंधं पुनः पुनः ।
अल्पाल्पमल्पं समलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम् ॥ १७ ॥
दधितैलघृतक्षीरैः स शुंठीं सगुडां पिबेत् ।
स्विन्नानि गुडतैलेन भक्षयेद्बदराणि वा ॥ १८ ॥
गाढविड्विहितैः शाकैर्बहुस्नेहैस्तथा रसैः ।
क्षुधितं भोजयेदन्नं दधिदाडिमसाधितैः ॥ १९ ॥
शाल्योदनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम् ।
शुंठ्याः मूल[1]कपोताया: पाठाया: स्वस्तिकस्य वा ॥ २० ॥
[2]स्नुपायवानीकर्कारुक्षीरिणीचिर्भटस्य वा ।
उपोदकाया जीवंत्या वाकुच्या वास्तुकस्य वा ॥ २१ ॥
सुवर्चलायाश्चुंचोर्वा लोणिकाया रसैरपि ।
कूर्मवर्तकलोपाकशिखितित्तिरिकौक्कुटैः ॥ २२ ॥

---

१ मूलकपोता लघुमूलकम् । स्वस्तिकम् "सुसारी" इति लोके । २ स्नुपा-प्रियङ्गुरथवा शटी । अक्षिभैषज्यं लोध्रम् ।

तक्रयवागूः—

बिल्वमुस्ताक्षिभैषज्यधातकीपुष्पनागरैः ।
पक्वातीसारजित्तक्रे यवागूर्दीपनी तथा ॥ २३ ॥
कपित्थ[1]कच्छुरापर्णीयूथिकावटशेलुजैः ।
दाडिमीशणकार्पासीशाल्मलीमोचपल्लवैः ॥ २४ ॥

प्रवाहिकौषधम्—

कल्को बिल्वशलाटूनां तिलकल्कश्च तत्समः ।
दध्नः सरोऽम्लः सस्नेहः खलो हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ २५ ॥

अपराजितः खलः—

मरिचं धनिकाजाजीतिन्तिडीकशठीबिडम् ।
दाडिमं धातकी पाठा त्रिफला पञ्चकोलकम् ॥ २६ ॥
यावशूकं कपित्थाम्रजम्बूमध्यं सदीप्यकम् ।
पिष्टैः षड्गुणबिल्वैस्तैर्दध्नि मुद्गरसे गुडे ॥ २७ ॥
स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽयमपराजितः ।
दीपनः पाचनो ग्राही रुच्यो [2]बिम्बिशिनाशनः ॥ २८ ॥

पुरीषक्षये चिकित्सा—

कोलानां बालबिल्वानां कल्कैः शालियवस्य च ।
मुद्गमाषतिलानां च धान्ययूषं प्रकल्पयेत् ॥ २९ ॥
एकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसारिकम् ।
वर्चःक्षये शुष्कमुखं शाल्यन्नं तेन भोजयेत् ॥ ३० ॥
दध्नः सरं वा यमके भृष्टं सगुडनागरम् ।
सुरां वा यमके भृष्टां व्यञ्जनार्थं प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥
फलाम्लं यमके भृष्टं यूषं गृञ्जनकस्य वा ।
भृष्टान्वा यमके सक्तून् खादेद्व्योषावचूर्णितान् ॥ ३२ ॥

---

१ कच्छुरा जवासा । शेलुः—'लसोड़ा' हि० । २ बिम्बिशी प्रवाहिका रोगः ।

माषान् सुसिद्धांस्तद्वा घृतमंडोपसेवनान् ।
रसं सुसिद्धपूतं वा छागमेषांतराधिजम्[1] ॥ ३३ ॥
पचेद्दाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम् ।
रक्तशाल्योदनं तेन भुंजानः प्रपिबंश्च तम् ॥ ३४ ॥
वर्चःक्षयकृतैराशु विकारैः परिमुच्यते ।

लेहप्रयोग :—

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीं विश्वभेषजम् ॥ ३५ ॥
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः ।
वल्कलं[2] शाबरं पुष्पं धातक्या बदरीफलम् ॥ ३६ ॥
पिबेद्दधिसरक्षौद्रकपित्थस्वरसाप्लुतम् ।
विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः ॥ ३७ ॥

क्षीरप्रयोग :—

सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तः क्षीरसौहित्यमर्हति ।
यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
शृतमेरंडमूलेन बालबिल्वेन वा पुनः ।

क्षीरपाक :—

पयस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं[3] त्रिगुणेऽम्भसि ॥ ३९ ॥
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादाम सवेदनम् ।

प्रवाहिकौषधम्—

पिप्पल्याः पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा ॥ ४० ॥
चिरकालानुषक्ताऽपि नश्यत्याशु प्रवाहिका ।

क्षारघृत प्रयोग :—

निरामरूप शूलार्तं लंघनाद्यैश्च कर्षितम् ॥ ४१ ॥

---

१ अन्तराधिर्मध्य शरीरम् । २ शाबर वल्कलं लोध्रत्वक् । ३ विंशतिर्मुस्ताः पलपरिमिताः । पाकक्रमो यथा—क्षीरपलानि चत्वारि, पानीय पलानि द्वादश, पलपरिमितमुस्ताश्च दत्वा क्षीरावशेषः कार्यः ।

स्थिरादिपकेदाग्निमक्षारं पाययेद् घृतम् ।

तैलप्रयोग :—

सिद्धं दधिसुरामंडे दशमूलस्य चांभसि ॥ ४२ ॥
बिल्वादिपंचकोलाभ्यां तैलं सद्योऽर्तिनाशनम् ।
पड्भिः शुंठ्याः पलैर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां ग्रंथ्यग्निसैंधवात् ॥ ४३ ॥
तैलप्रस्थं पचेद्धन्ना निः[1]सारकरुजापहम् ।
एकतो मासदुग्धाज्यं पुरीषग्रहशूलजित् ॥ ४४ ॥
पानानुवासनाभ्यंगप्रयुक्तं तैलमेकतः ।
तद्धि वातजितामग्र्यं शूलं च [2]विगुणोऽनिलः ॥ ४५ ॥
धात्वंतरोपमर्दाद्धि चलो व्यापी स्वधामगः ।
तैलं मंदानलस्यापि युक्त्या शर्मकरं परम् ।
वाय्वाशये सतैले हि बिबिसी नावतिष्ठते ॥ ४६ ॥

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु
दोषान्तरेष्वीरण[3] एकवीरे ।
को निष्टनन्प्राणिति कोष्ठशूली
नान्तर्बहिस्तैलपरो यदि स्यात् ॥ ४७ ॥

क्षीरघृतप्रयोग :—

गुदभ्रंशे दाघोर्मुञ्चादत्तक्षीरं साधितं हविः ।
रसे कोलाम्लचांगेर्योर्दध्नि पिष्टे च नागरे ॥ ४८ ॥

---

१ निः सारकः प्रवाहिका । २ शूलं च विगुणोऽनिलः विगुणः कुपितोऽनिलो वायुः, (चेत्) शूलमन्तरतमित्यर्थः । धात्वन्तराणां पित्तश्लेष्मादीनां मुपमर्दोऽन्यथाभावस्तस्मात् कुपितश्चलो वायुः, व्यापी सकलशरीरव्यापनशीलः, स्वधामगः पक्वाशयस्थः । ३ मलेपुरीषे । दोषान्तरेषु-वायुर्वर्जितेषुकफपित्तादिषु । ईरणे वाते । निष्टनन् प्रवाहिकां कुर्वन् । आक्रन्दनपूर्वकः सशूलः पुरीषत्यागो निष्टननं कथ्यते । प्राणिति जीवति ।

अन्यद्घृतम्—

तैरेव चाम्लैः संयोज्य सिद्धं मुस्तकल्कितैः ।
धान्योपणविडाजाजीपञ्चकोलकदाडिमैः ॥ ४९ ॥

स्नेहबस्तिः—

योजयेत्स्नेहबस्तिं वा दशमूलेन साधितम् ।
शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥ ५० ॥

गुदभ्रंश चिकित्सा—

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे ।
मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं वाप्यनुवासनम् ॥ ५१ ॥
प्रवेशयेद्गुदं ध्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु ।
कुर्याच्च गोफणाबन्धं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा ॥ ५२ ॥
पंचमूलस्य महतः क्वाथं क्षीरे विपाचयेत् ।

मूषकतैलम्—

१उंदुरुं चान्त्ररहितं तेन वातघ्नकल्कवत् ॥ ५३ ॥
तैलं पचेद्गुदभ्रंशं पानाभ्यंगेन तज्जयेत् ।
पैत्ते तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लंघनम् ॥ ५४ ॥

षडङ्गजलपानादि —

तृड्वान् पिबेत् षडङ्गांबु सभूनिंबं समारिवम् ।
पेयादि क्षुधितस्यान्नमग्निसंधुक्षणं हितम् ॥ ५५ ॥
बृहत्यादिगणाभीरुद्विबलाशूर्पपर्णिभिः ।

अनुबन्धेऽतिइन्द्रयवाख्यपिष्टपानम्—

पाययेदनुबंधे तु सक्षौद्रं तंदुलांभसा ॥ ५६ ॥
वत्सकस्य फलं पिष्टं सवल्कं सघुणाप्रियम् ।
पाठावत्सकबीजत्वग्दार्वीग्रंथिकशुंठि वा ॥ ५७ ॥

---

१ उन्दुरुर्मूषकः ।

क्वाथं चाऽतिविषाबिल्ववत्सकोदीच्यमुस्तजम् ।
अथवाऽतिविषामूर्वानिशेंद्रयवताक्ष्यजम् ॥ ५८ ॥
समध्वतिविषाशुंठीमुस्तेंद्रयवकट्फलम् ।

अन्यदौषधम्—

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत् ॥ ५९ ॥
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जाठरामयम् ।
मुस्ताकषायमेवं वा वा पिबेन्मधुसमायुतम् ॥ ६० ॥
मक्षौ शाल्मलीवृंतकषायं वा हिमाह्वयम्[1] ।

तंडुलजलेन किराततिक्तादियोगाः—

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ॥ ६१ ॥
[2]कटंकटेरी ह्रीबेरं बिल्वमध्यं दुरालभाम् ।
तिलान् मोचरसं रोध्रं समङ्गां कमलोत्पलम् ॥ ६२ ॥
नागरं धातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुत्पलम् ।
अर्धश्लोकैः स्मृता योगा सक्षौद्रास्तंडुलाम्बुना ॥ ६३ ॥

निशादिक्वाथ :—

निशेंद्रयवरोध्रैलाक्वाथः पक्वातिसारनुत् ।

रोध्रादिगणपानम्—

रोध्राम्बष्ठाप्रियंग्वादिगणास्तद्वत् पृथक् पिबेत् ॥ ६४ ॥

पेया—

कट्वंगवल्कयष्ट्याह्वफलिनीदाडिमाङ्कुरैः ।
पेयाविलेपीखलकान् कुर्यात्सदधिदाडिमान् ॥ ६५ ॥
तद्वद्दधित्थबिल्वाम्बजंबूमध्यैः प्रकल्पयेत् ।

अजापयः प्रयोग :—

अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे तेन चेच्छमः ॥ ६६ ॥

---

१ हिमाह्वयं शीतकषायम् । २ कटङ्कटेरी दारुहरिद्रा ।

दोषाधिक्यात्स जायेत बलिनं तं विरेचयेत् ।

काथादि—

व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा ॥ ६७ ॥
पलाशफलनिर्यूहं युक्तं वा पयसा पिबेत् ।
ततोऽनु कोष्णं पातव्यं क्षीरमेव यथाबलम् ॥ ६८ ॥
प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः ।

त्रायमाणा प्रयोज्या—

पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधनी ॥ ६९ ॥

अनुवासनम्—

संसर्ग्यां क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्तते ।
स्रुतदोषस्य तं शीघ्रं यथावह्न्यनुवासयेत् ॥ ७० ॥
शतपुष्पावरीभ्यां च बिल्वेन मधुकेन च ।
तैलपादं पयोयुक्तं पक्वमन्वासनं घृतम् ॥ ७१ ॥

पिच्छाबस्तिः—

अशांतावित्यतीसारे पिच्छाबस्तिः परं हितः ।

आस्थापनबस्तिः—

परिवेष्ट्य कुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानि शाल्मलेः ॥ ७२ ॥
कृष्णमृत्तिकयाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना ।
मृच्छोषे तानि संक्षुद्य तत्पिण्डं मुष्टिसंमितम् ॥ ७३ ॥
मर्दयेत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः ।
नतयष्ट्याह्वकल्काज्यक्षौद्रतैलवताऽनु च ।
स्नातो भुंजीत पयसा जांगलेन रसेन वा ॥ ७४ ॥

पित्तातिसारज्वरशोफगुल्म-
समीरणास्रग्रहणीविकारान् ।
जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृत्ति
विरेचनास्थापनयोश्च बस्तिः ॥ ७५ ॥

कुटजोत्थफाणितादि—

फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम् ।
वत्सकादिसमायुक्तं साम्बष्ठादि समाक्षिकम् ॥ ७६ ॥

पुटपाक प्रयोग :—

सरुङ्निरामं दीप्ताग्नेरपि सास्रं चिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७७ ॥

त्वक्पिण्डाद्दीर्घवृन्तस्य[1] श्रीपर्णीपत्रसंवृतात् ।
मृल्लिप्तादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं हिमम् ॥ ७८ ॥

अतीसारी पिबेद्युक्तं मधुना सितयाऽथवा ।
एवं क्षीरद्रुमत्वग्भिस्तत्प्ररोहैश्च कल्पयेत् ॥ ७९ ॥

स्योनाक प्रयोग :—

कट्वङ्गत्वग्घृतयुता स्वेदिता सलिलोष्मणा ।
सक्षौद्रा हन्त्यतीसारं बलवन्तमपि द्रुतम् ॥ ८० ॥

रक्तातिसारचिकित्सा—

पित्तातिसारी सेवेत पित्तलान्येव यः पुनः ।
रक्तातिसारं कुरुते तस्य पित्तं सतृड्ज्वरम् ॥ ८१ ॥

दारुणं गुदपाकं च तत्र छागं पयो हितम् ।
पद्मोत्पलसमङ्गाभिः शृतं मोचरसेन वा ॥ ८२ ॥

सारिवायष्टिरोध्रैर्वा प्रसवैर्वा वटादिजैः ।
सक्षौद्रशर्करं पाने भोजने गुदसेचने ॥ ८३ ॥

रसादय :—

तद्वद्रसादयोऽनम्लाः साज्याः पानान्नयोर्हिताः ।
काश्मर्यफलयूषश्च किंचिदम्लः सशर्करः ॥ ८४ ॥

---

१ दीर्घवृन्तः स्योनाकः ।

पिच्छाबस्तिः—

अल्पाऽल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते ।
यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छ्राच्चरति वा न वा ॥ ६४ ॥
पिच्छावस्तिं तदा तस्य पूर्वोक्तमुपकल्पयेत् ।
पल्लवान् जर्जरीकृत्य शिंशिपाकोविदारयोः ॥ ६५ ॥
पचेद्यवाश्च स क्वाथो घृतक्षीरसमन्वितः ।
पिच्छास्रुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरुजासु च ॥ ६६ ॥
पिच्छावस्तिः प्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणबलावहः ।

अनुवासनम्—

प्रपौण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चाऽनुवासनम् ॥ ६७ ॥

सविट्रक्तातिसारे शतावरीघृतलेहः—

रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्यते ।
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

लेहविशेषः—

शर्करार्धांशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम् ।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः ॥ ६९ ॥

अन्यो लेहः—

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थशुङ्गानापोथ्य वासयेत् ।
अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत् ॥ १०० ॥
तदर्धशर्करायुक्तं लिहेत्क्षौद्रपादिकम् ।
अधो वा यदि वाप्यूर्ध्वं यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ १०१ ॥

श्लेष्मातिसारचिकित्सा—

श्लेष्मातिसारे वातोक्तं विशेषादामपाचनम् ।
वर्तव्यमनुबन्धेऽस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम् ॥ १०२ ॥
बिल्वकर्कटिकामुस्तप्राणदाविश्वभेषजम् ।
यवानिविडंगभूतीकधानकामरदारु वा ॥ १०३ ॥

अथवा पिप्पलीमूलपिप्पलीद्वयचित्रकाः ।
पाठाग्निवत्सकग्रंथितिक्ताशुण्ठीवचाभयाः ॥ १०४ ॥
क्वथिता यदि वा पिष्टाः श्लेष्मातीसारभेषजम् ।
सौवर्चलवचाव्योषहिंगुप्रतिविषाभयाः ॥ १०५ ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्तश्चूर्णिताः कोष्णवारिणा ।

लेह :—

मध्व लीढ्वा कपित्थस्य मध्योपद्मौद्रशर्करम् ॥ १०६ ॥
कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात् ।

अन्यदौषधनिर्देश :—

कणां मधुयुता लीढ्वा तक्र पीत्वा सचित्रकम् ॥ १०७ ॥
भुक्त्वा वा बालबिल्वानि व्यपोहत्युदरामयम् ।

पाठादिपानम् —

पाठामोचरसाभोदधातकीबिल्वनागरम् ॥ १०८ ॥
गुरुच्छ्लेष्मातीसारं गुडतक्रेण नाशयेत् ।

कपित्थाष्टक चूर्णम् —

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ १०९ ॥
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ।
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः ॥ ११० ॥
[1]त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृत ।
चूर्णोऽतीसारग्रहणीक्षयगुल्मोदरामयान् ॥ १११ ॥
कासश्वासाग्निसादार्शः पीनसारोचकाञ्जयेत् ।

दाडिमाष्टक चूर्णम्—

कर्षोन्मिता तवक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ॥ ११२ ॥

---

१ अत्रयवान्यादीनि सर्वाणि द्रव्याणि समानि यथा—तोलकपरिमितानि, वृक्षाम्लादीनि त्रिगुणानि—यथा तोलक त्रयमितानि, सिता षड्गुणा, कपित्थ-मष्टगुण. ।

यवानीधान्यकाजाजीग्रंथिव्योषं पलांशकम् ।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ॥ ११३ ॥
[1]गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ।

खड :—

भोज्यो वातातिसारोक्तैर्यथावस्थं खडादिभिः ॥ ११४ ॥
सविडंगः समरिचः सकपित्थः सनागरः ।
चांगेरीतक्रकोलाम्लः खडः श्लेष्मातिसारजित् ॥ ११५ ॥
क्षीणे श्लेष्मणि पूर्वोक्तमम्लं लाक्षादिषट्पलम् ।
पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूं मंडमिश्रिताम् ॥ ११६ ॥

पिच्छाबस्ति :—

वातश्लेष्मविबंधे च स्रवत्यपि कफेऽपि वा ।
शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छाबस्तिः प्रशस्यते ॥ ११७ ॥

अनुवासनम्—

वचाबिल्वकणाकुष्ठशताह्वालवणान्वितः ।
बिल्वतैलेन, तैलेन वचाद्यैः साधितेन वा ॥ ११८ ॥
बहुशः कफवातार्ते कोष्णेनान्वासनं हितम् ।

क्षीणकफादौ वायुजयः कार्यः :—

क्षीणे कफे गुदे दीर्घकालातीसारदुर्बले ॥ ११९ ॥
अनिलः प्रबलोऽवश्यं स्वस्थानस्थः प्रजायते ।
स बली सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १२० ॥
वायोरनंतरं पित्तं पित्तस्यानंतरं कफम् ।
जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमः ॥ १२१ ॥
भीशोकाभ्यामपि चलः शीघ्रं कुप्यत्यतस्तयोः ।
कार्या क्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च ॥ १२२ ॥

---

१ चातुर्जातद्विरान्धिकं प्रत्येकं कोलमात्रंग्राह्यम् । सितायाश्चेत्यत्र चकारात् पलाया अष्टौ पलानीत्यर्थः ।

शान्तोदरामयलक्षणम्—

[१]यस्योच्चाराद्विना मूत्रं पवनो वा प्रवर्तते ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य शांतस्तस्योदरामयः ॥ १२३ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतो ग्रहणीदोषचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

ग्रहण्यामजीर्णातिसारवदुपचारः—

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥ १ ॥

अन्नकालेयवाग्वादि :—

अन्नकाले यवाग्वादि पंचकोलादिभिर्युतम् ।
त्रिनरेस्तण्डुलव्वन्न पुनर्योगाश्च दीपनान् ॥ २ ॥
दद्यान्मातिविषां पेयामामे साम्ला सनागराम् ।
पानेऽतीसारविहितं वारि तक्रं सुरादि च ॥ ३ ॥

ग्रहण्यां तक्रस्यहितत्वम्—

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राहिलाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम् ॥ ४ ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रूक्षत्वाच्च कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ५ ॥

---

१ उच्चारः पुरीषम् ।

चूर्णम्—

[1]चतुर्णां प्रस्थमम्लानां त्र्यूषणाच्च पलत्रयम् ।
लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ ६ ॥
तच्चूर्णं शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ।
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पार्श्वामयशूलनुत् ॥ ७ ॥

नागरादि क्वाथ :—

नागरातिविषामुस्तं पाक्यमामहरं पिबेत् ।
उष्णाम्बुना वा तत्कल्कं नागरं वाऽथवाऽभयाम् ॥ ८ ॥
ससैंधवं वचादिं वा तद्वन्मदिरयाऽथवा ।

आमेपुरीषेविडलवण प्रयोग :—

वर्चस्यामे सप्रवाहे पिबेद्वा दाडिमाम्बुना ॥ ९ ॥
बिडेन लवणं पिष्टं बिल्वचित्रकनागरम् ।
गामे कफानिले कोष्ठरुक्करे कोष्णवारिणा ॥ १० ॥

कलिङ्गादिक पानादि—

कलिंगहिंग्वतिविषावचासौवर्चलाभयम् ।
छर्दिहृद्रोगशूलेषु पेयमुष्णेन वारिणा ॥११॥
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम् ।

पिप्पल्यादि चूर्णम्—

पिप्पली नागरं पाठा सारिवा बृहतीद्वयम् ॥ १२ ॥
चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपंचकम् ।
चूर्णीकृत दधिसुरातन्मंडोष्णाम्बुकाञ्जिकैः ॥ १३ ॥
पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम् ।

पाचनीदीपनीगुटिका—

[2]पटूनि पंच द्वौ क्षारौ मरिचं पंचकोलकम् ॥ १४ ॥

---

१ चतुर्णामम्लानां वृक्षाम्लवेतसदाडिमबदराणाम् । २ पटूनिलवणानि ।

दीप्यकः शिग्रु गुलिका बीजपूररसे कृता ।
कोलदाडिमतोये वा परं पाचनदीपनी ॥ १५ ॥

तालीसादि गुटिका—

तालीसपत्रचविकामरिचानां पलं पलम् ।
कृष्णा तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठ्याः पलत्रयम् ॥ १६ ॥
चतुर्जातमुशीरं च कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
गुडेन वटकान्कृत्वा त्रिगुणेन सदा भजेत् ॥ १७ ॥
मद्ययूषरसारिष्टमस्तुपेयापयोऽनुपः ।
वातश्लेष्मात्मना छर्दिग्रहणीपार्श्वहृद्रुजाः ॥ १८ ॥
ज्वरश्वयथुपाण्डुत्वगुल्मपानात्ययार्शसाम् ।
प्रसेकपीनसश्वासकासानां च निवृत्तये ॥ १९ ॥
अभया नागरस्थाने दद्यादत्रैव विड्ग्रहे ।
छर्द्यादिषु च पैत्तेषु चतुर्गुणसितान्विताः ॥ २० ॥
पक्त्वेन वटकाः कार्या गुडेन सितयाऽपि वा ।
परं हि वह्निसंपर्काल्लघिमानंभजति ते[1] ॥ २१ ॥

निरामदनहग्णी चिकित्सा—

अथैनं परिपक्वाममारुतग्रहणीगदम् ।
दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदल्पशो भिषक् ॥ २२ ॥
किंचित्संधुक्षिते त्वग्नौ सक्तविण्मूत्रमारुतम् ।
द्व्यहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विन्नाभ्यक्तं निरूहयेत् ॥ २३ ॥
तत एरण्डतैलेन सर्पिषा तैल्वकेन वा ।
सक्षारेणाऽनिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत् ॥ २४ ॥

शुद्धरूक्षाशयस्यानुवासनादि—

शुद्धरूक्षाशयं बद्धवर्चस्कं चाऽनुवासयेत् ।
दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन तं ततः ॥ २५ ॥

---

१ ते वटकाः ।

निरूढं च विरिक्तं च सम्यक्चाप्यनुवासितम् ।
लघ्वन्नप्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ २६ ॥

शूलादिनाशकं घृतम्—

पंचमूलाभयाव्योषपिप्पलीमूलसैंधवैः ।
रास्नाक्षारद्वयाजाजीविडंगशठिभिर्घृतम् ॥ २७ ॥
शुक्तेन मातुलुंगस्य स्वरसेनार्द्रकस्य वा ।
शुष्कमूलककोलाम्लचुक्रिकादाडिमस्य च ॥ २८ ॥
तक्रमस्तुसुरामंडसौवीरकतुषोदकैः ।
कांजिकेन च तत्पक्वमग्निदीप्तिकरं परम् ॥ २९ ॥
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ।
सबीजपूरकरसं सिद्धं वा पाययेद्घृतम् ॥ ३० ॥
तैलमभ्यंजनार्थं च सिद्धमेभिश्चलापहम् ।
[1]एषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखाम्बुना ॥ ३१ ॥

चूर्णम्—

वातश्लेष्मावृते सामे कफे वा वायुनोद्धते ।

पित्तजग्रहणी चिकित्सा—

अग्नेर्निर्वापकं पित्तं रेकेण वमनेन वा ॥ ३२ ॥
हृत्वा तिक्तलघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः ।
अन्नैः संधुक्षयेदग्निं चूर्णैः स्नेहैश्च तिक्तकैः ॥ ३३ ॥

पटोलादि चूर्णम्—

पटोलनिंबत्रायंतीतिक्ताति[2]क्तकपर्पटम् ।
कुटजत्वक्फलं मूर्वामधुशिग्रुफलं वचा ॥ ३४ ॥
दार्वीत्वक्पद्मकोशीरयवानीमुस्तचंदनम् ।
सौराष्ट्र्यतिविषाव्योषत्वगेलापद्मदारु च ॥ ३५ ॥

---

१. एषामौषधानां पञ्चमूलाभयादीनाम् । २. तिक्तकं भूनिम्बम् ।

पेया प्रयोग :—

पंचकोलाभयाधान्यपाठागंधपलाशकैः[1] ।
बीजपूरप्रवालैश्च सिद्धाः पेयादि कल्पयेत् ॥ ४६ ॥

मधूकासव :—

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडंगं च ततोऽर्धतः ।
चित्रकस्य ततोऽर्धं च तथा भल्लातकाढकम् ॥ ४७ ॥
मंजिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत् ।
द्रोणशेषं सुतं शीतं मध्वर्धाढकसंयुतम् ॥ ४८ ॥
एलामृणालागुरुभिश्चंदनेन च रूषिते ।
कुंभे मासं स्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः पित्तरक्तनुत् ।
शोषकुष्ठकिलासानां प्रमेहाणां च नाशनः ॥ ५० ॥

द्वितीयोमधूकासव :—

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्धक्षयीकृतम् ।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्संनिधापयेत् ॥ ५१ ॥
तत्पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत्सर्वान् हिताशनः ।

अन्यासवनिर्देश :—

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत् ॥ ५२ ॥

हिंग्वाद्यक्षार प्रयोगः —

हिंगुतिक्तावचामाद्रीपाठेंद्रयवगोक्षुरम् ।
पंचकोलं च कर्षांशं पलांशं पटुपंचकम् ॥ ५३ ॥
घृततैलद्विकुडवे दध्नः प्रस्थद्वये च तत् ।
आलोड्य साधयेदग्नौ मृदावनुगते रसे ॥ ५४ ॥
अंतर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णीकृत्य घृताप्लुतम् ।
पिबेत्पाणितलं तस्मिन् जीर्णे स्यान्मधुराशनः ॥ ५५ ॥

---

१ गन्धपलाशं गन्धपत्रम् ।

वातश्लेष्मामयान् सर्वान् हन्याद्विषगरांश्च सः ।

अन्यत्क्षार :—

भूनिम्बं रोहिणीं तिक्तां पटोलं निम्बपर्पटम् ॥ ५६ ॥
दग्ध्वा महिषमूत्रेण पिबेदग्निविवर्धनम् ।

अन्यत्क्षार :—

द्वे हरिद्रे वचा कुष्टं चित्रकः कटुरोहिणी ॥ ५७ ॥
मुस्ता च छागमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः ।

गुटिका :—

चतुःपलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ॥ ५८ ॥
वार्ताककुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ।
दग्ध्वा रसेन वार्ताकाद्गुटिका भोजनोत्तराः ॥ ५९ ॥
भुक्तमन्नं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः ।
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ ६० ॥

मातुलुङ्गादि चूर्णम्—

मातुलुंगशठी रास्ना कटुत्रयहरीतकी ।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारौ पञ्चपटूनि च ॥ ६१ ॥
सुखाम्बुपीत तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

घृतम्—

श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे सवाते तैर्घृतं पचेत् ॥ ६२ ॥
धान्वंतरं षट्पलं च भल्लातकघृतादयम् ।

क्षार घृतम्—

बिडकाचोपलवणस्वर्जिकायावशूकजान् ॥ ६३ ॥
सप्तलां कटकारीं च चित्रकं चैकतो दहेत् ।
सप्तकृत्वः स्रुतस्यास्य क्षारस्यार्धाढके पचेत् ॥ ६४ ॥
आढकं सर्पिषः पेयं तदग्निबलवृद्धये ।

सन्निपातजग्रहणीरोगे पञ्चकर्मादि—

त्रिचये पंचकर्माणि युंज्याच्चैतद्यथाबलम् ॥ ६५ ॥

प्रतिदोषादिमन्दाग्नित्वमाश्रित्य चिकित्सा—

प्रसेके श्लैष्मिकेऽल्पाग्नेर्दीपनं रूक्षतिक्तकम् ।
योज्यं कृशस्य व्यत्यासात्स्निग्धरूक्षं कफादये ॥ ६६ ॥
क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम् ।
दीपनं बहुपित्तस्य तिक्तं मधुरकैर्युतम् ॥ ६७ ॥

दुर्बलानलदीपनायस्नेहःश्रेष्ठः—

स्नेहोऽम्ललवणैर्युक्तो बहुवातस्य शस्यते ।
स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ॥ ६८ ॥
नाऽलं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि ।,
योऽल्पाग्नित्वात्कफे क्षीणे वर्चः पक्वमपि श्लथम् ॥ ६९ ॥
मुञ्चेद्दीपनयुक्तं स पिबेदल्पशो **घृतम्** ।,
तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मणि नियोजितः ॥ ७० ॥
समानो दीपयत्यग्निमग्नेः संधुक्षको हि सः ।,
पुरीषं यश्च कृच्छ्रेण कठिनत्वाद्विमुञ्चति ॥ ७१ ॥
स घृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं[1] पिबेत् ।,
रौक्ष्यान्मन्देऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैः पिबेत्, ॥ ७२ ॥
क्षारचूर्णासवारिष्टान् मंदे स्नेहातिपानतः ।,
उदावर्तात्प्रयोक्तव्या निरूहस्नेहबस्तयः ॥ ७३ ॥,
दोषाऽतिवृद्ध्याऽमन्देऽग्नौ संशुद्धोऽन्नविधिं चरेत् ।,
व्याधिमुक्तस्य मन्देऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम् ॥ ७४ ॥
अध्वोपवासक्षामत्वैर्यवाग्वा पाययेद् घृतम् ।
अन्नावपीडितं बल्यं दीपनं बृंहणं च तत् ॥ ७५ ॥,

---

१ अन्नेनावग्रहः ऊर्ध्वकायगमनप्रतिबन्धो यस्य घृतस्य तत् । घृतंपीत्वाऽन्नं भोक्तव्यमित्यर्थः ।

मांसप्रयोग :—

दीर्घकालप्रसंगात्तु क्षामक्षीणकृशान्नरान् ।
प्रसहानां रसैः साम्लैर्भोजयेत्पिशिताशिनाम् ॥ ७६ ॥
लघूष्णकटुशोधित्वाद् दीपयंत्याशु तेऽनलम् ।
मांसोपचितमांसत्वात्परं च बलवर्धनम् ॥ ७७ ॥

स्नेहादिप्रयोग :—

स्नेहासवसुरारिष्टचूर्णक्वाथहिताशनैः ।
सम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते ॥ ७८ ॥

स्नेहस्याग्निवृद्धिकरत्वे दृष्टान्त :—

दीप्तो यथैव स्थाणुश्च बाह्योऽग्निः सारदारुभिः ।
सस्नेहैर्जायते तद्वदाहारैः कोष्ठगोऽनलः ॥ ७९ ॥

अभोजनातिभोजनाभ्यां नाग्निवृद्धि :—

नाऽभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात् ।
यथा निरिंधनो वह्निरल्पो वाऽतीधनावृतः ॥ ८० ॥

भस्मकरोग :—

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पवनानुगम् ।
प्रवृद्धं वर्धयत्यग्निं तदासौ सानिलोऽनलः ॥ ८१ ॥
पक्त्वान्नमाशु धातूंश्च सर्वानोजश्च संक्षिपन् ।
मारयेत्साशनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु ताम्यति ॥ ८२ ॥
तृट्कासदाहमूर्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः ।

भस्मकरोगचिकित्सा—

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धमंदसान्द्रहिमस्थिरैः ॥ ८३ ॥
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवांबुभिः ।
मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत् ॥ ८४ ॥
निरिंधनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न विपादयेत् ।
कृशरां पायसं स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम् ॥ ८५ ॥

अश्मीयादौदकानूपपिशितानि घृतानि च ।
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान् स्थिरतोयचरांश्च ये ॥ ८६ ॥
आविकं सुभृतं मांसमद्यादत्यग्निवारणम् ।
पयः सहमधूच्छिष्टं घृतं वा तृषितः पिबेत् ॥ ८७ ॥
गोधूमचूर्णं पयसा बहुसर्पिःपरिप्लुतम् ।
आनूपरसयुक्तान्वा स्नेहांस्तैलविवर्जितान् ॥ ८८ ॥
श्यामात्रिवृद्विपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ।
असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥ ८९ ॥
यत्किञ्चिद्गुरु मेद्यं च श्लेष्मकारि च भोजनम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा च स्वपनं दिवा ॥ ९० ॥
आहारमग्निः पचति, दोषानाहारवर्जितः ।
धातून् क्षीणेषु दोषेषु, जीवितं धातुसंक्षये ॥ ९१ ॥

प्रकृत्यैवविरुद्धान्नादि—

[1]एतत्प्रकृत्यैव विरुद्धमन्नं
संयोगसंस्कारवशेन चेदम् ।
इत्यन्नविज्ञाय यथेष्टचेष्टा-
श्चरन्ति यत्साऽग्निबलस्य शक्तिः ॥ ९२ ॥

जाठराग्निरक्षणोपदेशः :—

तस्मादग्निं पालयेत्सर्वयत्नै-
स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव ।
दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगसङ्घै-
र्युक्ते तु स्यान्नीरुजो दीर्घजीवी ॥ ९३ ॥

---

१. एतदन्नं प्रकृत्या स्वभावेन, संयोगेन, संस्कारेण विरुद्धमादिना मात्राका-लादिविरुद्धमिदमविज्ञायाबुद्ध्वा यथेष्टचेष्टा यथेच्छमाहारं सेवमाना यच्चरन्ति साऽग्निबलस्य शक्तिः । स्वभावादिविरुद्धमन्नमपर्यालोच्य ये यथेच्छं भुञ्जते सर्वं विषमन्नं तत् परिपाकमप्येति तत् अग्निबलस्य सामर्थ्येन परिपाकं यातीति सर्वं यत्नैरग्निपालयेदित्यर्थः । तस्मिन्नष्टे । ना पुरुष. ।

एकादशोऽध्यायः।

अथातोऽमूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

मूत्रकृच्छ्रे बला तैलेनाभ्यंगादि—

कृच्छ्रे वातघ्नतैलाक्तमधोनाभेः समीरजे।
सुस्निग्धं स्वेदयेदंगं पिंडसेकावगाहनैः ॥ १ ॥

शूलहराः स्नेहाः—

दशमूलबलैरंडयवाभीरुपुनर्नवैः।
कुलत्थकोलपत्तूर[1]वृश्चीवोपलभेदकैः ॥ २ ॥
तैलसर्पिर्वराहर्क्षवसाः क्वथितकल्कितैः।
सपंचलवणाः सिद्धाः पीताः शूलहराः परम् ॥ ३ ॥

दशमूलादिद्रव्यादीनांपानान्नैर्योजनम्—

द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिंडोपनाहने।
सहतैलफलैर्युंज्यात्साम्लानि स्नेहवंति च ॥ ४ ॥
सौवर्चलाढ्यां मदिरां पिबेन्मूत्ररुजापहाम्।

पित्तकृच्छ्र चिकित्सा—

पैत्ते युंजीत शिशिरं सेकलेपावगाहनम् ॥ ५ ॥
पिबेद्वरीं गोक्षुरकं विदारीं सकसेरुकाम्।
तृणाख्यं पंचमूलं च पाक्यं समधुशर्करम् ॥ ६ ॥
वृषकं त्रपुसैर्वारुलट्वाबीजानि कुंकुमम्।
द्राक्षाम्भोभिः पिबेत्सर्वमूत्राघातानपोहति ॥ ७ ॥

---

१. पत्तूरं-पत्रङ्गम्। वृश्चीवः श्वेतपुनर्नवा। उपलभेदकः पाषाणभेदः। लट्वाबीजं कुसुम्भबीजम् :

एर्वारुबीजयष्ट्याह्वदार्वीर्वा तंडुलाम्बुना ।
तोयेन कल्कं द्राक्षाया. पिबेत्पर्युषितेन वा ॥ ८ ॥

कफजकृच्छ्र चिकित्सा—

कफजे वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णकटुभोजनम् ।
यवाना विकृतीः क्षारं कालशेयं च शीलयेत् ॥ ९ ॥
पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैला धात्रीफलरसेन वा ।
सारसास्थिश्वदंष्ट्रैलाव्योषं वा मधुमूत्रवत् ॥ १० ॥
स्वरसं कटकार्या वा पाययेन्माक्षिकान्वितम् ।
[1]शितिवारकबीजं वा तक्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ११ ॥
धवसप्ताह्वकुटजं गुडूचीचतुरंगुलम् ।
कटुकैलाकरंजं च पाक्यं समधुगाधितम् ॥ १२ ॥
त्रैवीं पेयां प्रवालं वा चूर्णितं तंडुलाम्बुना ।
सतैलं पाटलाक्षारं सप्तकृत्वोऽथवा श्रुतम् ॥ १३ ॥
पाटलीयावशूकाभ्यां पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषक[2]संयुताम् ॥ १४ ॥
पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान् पृथक्-पृथक् ।

सन्निपातजकृच्छ्रचिकित्सा—

सन्निपातात्मके सर्वं यथावस्थमिदं हितम् ॥ १५ ॥
अश्मन्यथ चिरोत्थाने वातबस्त्यादिकेषु च ।

अश्मरीचिकित्सा—

अश्मरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मत. ॥ १६ ॥
तरुणो भेषजै. साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ।
तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १७ ॥
पाषाणभेदो वसुको [3]वशिरोऽश्मन्तको वरी ।
कपोतवंकातिबलाभल्लूकोशीरकत्तृणम् ॥ १८ ॥

---

१ शितिवारक बीजं करञ्जबीजम् । २ ऊषकः 'रेह' हि० । ३ वसुक.—शिवलिङ्गी । वशिर· सूर्यावर्त्तभेदः । कपोतवङ्का 'हुरहुर' हि० । भल्लूकः स्योनाकः । गुण्ड· 'गांदनो' हि० ।

वृषादनी शाकफलं व्याघ्री गुंठस्त्रिकंटकम् ।
यवाः कुलत्थाः कोलानि वरुणः कतकात्फलम् ॥ १९ ॥
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ।
भिनत्ति वातसंभूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम् ॥ २० ॥
गंधर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् ।
मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणाऽश्मभेदनम् ॥ २१ ॥
कुशः काशः शरो गुंठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित् ।
दर्भो विदारी वाराही शालीमूलं त्रिकंटकम् ॥ २२ ॥
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरंटकः ।
पुनर्नवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद्घृतम् ॥ २३ ॥
पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनेंदीवरेण वा ।
मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरिभेदनम् ॥ २४ ॥
वरुणादिः समीरघ्नौ गणावेला हरेणुका ।
गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः ॥ २५ ॥
तैः कल्कितैः कृतावापमूषकादिगणेन च ।
भिनत्ति कफजामाशु साधितं घृतमश्मरीम् ॥ २६ ॥
क्षारक्षीरयवाग्वादि द्रव्यैः स्वैः स्वैश्च कल्पयेत् ।

शर्कराचिकित्सा—

पिचुकाकोल्लकक्कुकशाकेंदीवरजैः फलैः ॥ २७ ॥
पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करापातनं परम् ।
क्रौंचोष्ट्रासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा [1]तालपत्रिका ॥ २८ ॥
अजमोदा कदंबस्य मूलं विल्वस्य [2]चौषधम् ।
पीतानि शर्करां भिंद्युः सुरयोष्णोदकेन वा ॥ २९ ॥
*नृत्यकुंडलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम् ॥ ३० ॥

---

१ तालपत्रिका मुसली । २ औषधं नागरम् । नृत्यकुण्डलबीजानां गोक्षुरबीजानाम् ।

* भूगकंटकबीजचूर्णमिति संग्रहे पाठः । सुश्रुतस्तु त्रिकंटकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं परमिति पठति ।

क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिपातनः ।
तिलापामार्गकदलीपलाशयवसंभवः ॥ ३१ ॥
क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ।
कपोतवंकामूलं वा पिबेदेवं सुरादिभिः ॥ ३२ ॥
तत्सिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः ।
[1]हरीतक्यस्थिसिद्धं वा साधितं वा पुनर्नवैः ॥ ३३ ॥
क्षीरान्नभुग्बर्हिशिखामूलं वा तंडुलाम्बुना ।

मूत्राघातचिकित्सा—

मूत्राघातेषु विभजेदतः शेषेष्वपि क्रियाम् ॥ ३४ ॥
बृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणीकृतगोक्षुरे ।
तोयं पयो वा सर्पिर्वा सर्वमूत्रविकारजित् ॥ ३५ ॥
देवदारु घनं मूर्वां यष्टीं मधु हरीतकीम् ।
मूत्राघातेषु सर्वेषु सुराक्षीरजलैः पिबेत् ॥ ३६ ॥
रसं वा धन्वयासस्य कषायं ककुभस्य वा ।
सुखाम्भसा वा त्रिफलां पिष्टां सैंधवसंयुताम् ॥ ३७ ॥
व्याघ्रीगोक्षुरकक्वाथे यवागूं वा सफाणिताम् ।
क्वाथे वीरतरादेर्वा [2]ताम्रचूडरसेऽपि वा ॥ ३८ ॥
अद्याद्वीरतराद्येन भावितं वा शिलाजतु ।
मद्यं वा निगदं पीत्वा रथेनाश्वेन वा व्रजेत् ॥ ३९ ॥
शीघ्रवेगेन संक्षोभात्तथाऽस्य च्यवतेऽश्मरी ।
सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः ॥ ४० ॥
रेकार्थं तैल्वकं सर्पिर्बस्तिकर्म च शीलयेत् ।
विशेषादुत्तरान् बस्तीन्,

शुक्राश्मरी चिकित्सा—

शुक्राश्मर्यां च शोधिते ॥ ४१ ॥

---

१ हरीतक्यस्थि हरीतकीबीजम् । २ ताम्रचूडः कुक्कुटः ।

[1]तैर्मूत्रमार्गे बलवान् शुक्राशयविशुद्धये ।
पुमान् सुतृप्तो वृष्याणां मांसानां कुक्कुटस्य च ॥ ४२ ॥
कामं सकामाः सेवेत प्रमदा मददायिनीः ।

शस्त्रावचारणम्—

सिद्धैरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक् ॥ ४३ ॥
इति राजानमापृच्छ्य शस्त्रं साध्ववचारयेत् ।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ४४ ॥
निश्चितस्यापि वैद्यस्य बहुशः सिद्धकर्मणः ।
अथाऽऽतुरमुपस्निग्ध शुद्धमीषच्च कर्शितम् ॥ ४५ ॥
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमंगलम् ।
आजानुफलकस्थस्य नरस्यांके व्यपाश्रितम् ॥ ४६ ॥
पूर्वेण कायेनोत्तानं निषण्णं [2]वस्त्रचुम्भले ।
ततोऽस्याकुञ्चिते जानुकूर्परे वाससा दृढम् ॥ ४७ ॥
सहाश्रयमनुष्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ।
नाभेः समंतादभ्यज्यादधस्तस्याश्च[3] वामतः ॥ ४८ ॥
मृदित्वा मुष्टिना कामं यावदश्मर्यधोगता ।
तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९ ॥
[4]अदक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम् ।
[5]आसाद्य बलयं ताभ्यामश्मरीं गुदमेढ्रयोः ॥ ५० ॥
कृत्वांतरे तथा बस्तिं निर्वलीकमनायतम् ।
उत्पीडयेदंगुलिभ्यां यावद्ग्रन्थिरिवोन्नतम् ॥ ५१ ॥
शल्यं स्यात्सेवनी मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत् ।
अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत् ॥ ५२ ॥

---

१ तैरुत्तरबस्तिभिः । २ वस्त्रचुंभले वेष्टितकुण्डलीकृतवस्त्रे । चुम्भलस्तृणचेलो घटादीनां सञ्चलनरक्षार्थमाधारः, लोके गेंडुरीति कथ्यते । ३ तस्या नाभेः । वर्धितनखैरकर्तितनखे । ४ अदक्षिणे वामे अङ्गुल्यौ तर्जनीमध्यमाङ्गुल्यौ । ताभ्यां अङ्गुलीभ्याम् ।

समग्रं सर्वतश्चैव स्त्रीणां बस्तिरतु पार्श्वगः।
गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्संगवत्ततः ॥ ५३ ॥
न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ।
मूत्रप्रसेकक्षरणान्नरस्याऽप्यपि चैकधा ॥ ५४ ॥
बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न तु द्विधा ।

शस्त्रक्रियानन्तरं विधि :—

विशल्यमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत् ॥ ५५ ॥
तथा न पूर्यतेऽस्रेण बस्तिः पूर्णं तु पीडयेत् ।
मेढ्रान्तः क्षीरिवृक्षाम्बु,

मूत्रशोधनम्—

मूत्रसशुद्धये नत ॥ ५६ ॥
कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत् ।
द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः ॥ ५७ ॥
त्र्यहं दशाहं पयसा गुडाढ्येनाऽल्पमोदनम् ।
भुंजीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जाङ्गलचारिणाम् ॥ ५८ ॥

व्रणोपचार :—

क्षीरिवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् ।
प्रपौण्डरीकमंजिष्ठायष्टयाह्वनयनौषधैः [१] ॥ ५९ ॥
व्रणाभ्यंगे पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः ।
दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तरात्रतः ॥ ६० ॥

दाह :—

मूत्रे त्वगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना ।
स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

---

१. नयनौषधं रोध्रम् ।

[१]तैर्मूत्रमार्गे बलवान् शुक्राशयविशुद्धये ।
पुमान् सुतृप्तो वृष्याणां मांसानां बृंहणस्य च ॥ ४२ ॥
कामं यथामाः सेवेत प्रमदा मददायिनीः ।

शस्त्रावचारणम्—

सिद्धैरप्रमरैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक् ॥ ४३ ॥
इति राजानमापृच्छ्य शस्त्रं साध्ववचारयेत् ।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ४४ ॥
निश्चितस्यापि वैद्यस्य बहुशः सिद्धकर्मणः ।
अथाऽऽतुरमुपस्निग्धं शुद्धमीषच्च कर्शितम् ॥ ४५ ॥
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमंगलम् ।
आजानुफलकस्थस्य नरस्याङ्के व्यपाश्रितम् ॥ ४६ ॥
पूर्वेण कायेनोत्तानं निषण्णं [२]वस्त्रकुभले ।
ततोऽस्याकुंचिते जानुकूर्परे वाससा दृढम् ॥ ४७ ॥
सहायमनुष्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ।
नाभेः समन्तादभ्यज्यादधस्तस्या[३] वामतः ॥ ४८ ॥
मृदित्वा मुष्टिना कामं यावदश्मर्यधोगता ।
तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९ ॥
[४]अदक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम् ।
[५]आसाद्य बलयं ताभ्यामश्मरीं गुदमेढ्रयोः ॥ ५० ॥
कृत्वान्तरे तथा बस्तिं निर्वलीकमनायतम् ।
उत्पीडयेदंगुलिभ्यां यावद्ग्रन्थिरिवोन्नतम् ॥ ५१ ॥
शल्यं स्यात्सेवनीं मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत् ।
अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत् ॥ ५२ ॥

---

१ तैरुक्तवस्तिभि.। २ वस्त्रकुंभले वेष्टितकुण्डलीकृतवस्त्रे । कुम्भलस्तृण-रचितो घटादीनां सन्धारणरक्षार्थमाधारः, लोके गेंडुरीति कथ्यते । ३ तस्या नाभेः । वर्धितनखे कर्तितनखे । ४ अदक्षिणे वामे अङ्गुल्यौ तर्जनीमध्यमाङ्गुल्यौ । ताभ्यां अङ्गुलीभ्याम् ।

समग्रं सर्पवक्त्रेण स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः ।
गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्संगवत्ततः ॥ ५३ ॥
न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ।
मूत्रप्रसेकक्षरणान्नरस्याप्यपि चैकधा ॥ ५४ ॥
बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न तु द्विधा ।

शस्त्रक्रियानन्तरं विधि :—

विशल्यमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत् ॥ ५५ ॥
तथा न पूर्यतेऽस्रेण बस्तिः पूर्णे तु पीडयेत् ।
मेढ्रान्तः क्षीरिवृक्षाम्बु,

मूत्रशोधनम्—

मूत्रसंशुद्धये ततः ॥ ५६ ॥
कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत् ।
द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः ॥ ५७ ॥
त्र्यहं दशाहं पयसा गुडाढ्येनाल्पमोदनम् ।
भुंजीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जांगलचारिणाम् ॥ ५८ ॥

व्रणोपचार :—

क्षीरिवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् ।
प्रपौण्डरीकमंजिष्ठायष्ट्याह्व[1]नयनौषधैः ॥ ५९ ॥
व्रणाभ्यंगे पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः ।
दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तरात्रतः ॥ ६० ॥

दाह :—

मूत्रे त्वगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना ।
स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुपायैरुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

---

१. नयनौषधं रोध्रम् ।

तं वस्तिभिः

वर्जनम्—

न चारोहेद्वर्षं रूढव्रणोऽपि सः ।
नगनागाश्ववृक्षस्त्रीरथान्नाप्सु प्लवेत सः ॥ ६२ ॥

शस्त्रावचारण निषेध :—

मूत्रशुक्रवहौ वस्तिवृषणौ सेवनीं गुदम् ।
मूत्रप्रसेकं योनिं च शस्त्रेणाष्टौ विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

मेहिनोवमनादि--

मेहिनो बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने ।
स्निग्धस्य सर्षपारिष्टनिकुंभाक्षकरंजकैः ॥ १ ॥
तैलैस्त्रिकंटकाद्येन यथास्वं साधितेन वा ।
स्नेहेन मुस्तदेवाह्वनागरप्रतिवापवत् ॥ २ ॥
सुरसादिकषायेण दद्यादास्थापनं ततः ।
न्यग्रोधादेस्तु पित्तार्तं रसैः शुद्धं च तर्पयेत् ॥ ३ ॥

शमनादि--

मूत्रग्रहरुजागुल्मक्षयाद्यास्त्वपतर्पणात् ।
ततोऽनुबन्धरक्षार्थं शमनानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत् ।

पञ्च प्रयोगाः—

धात्रीरसप्लुतां प्राह्णे हरिद्रां माक्षिकान्विताम् ॥ ५ ॥
दार्वीसुराह्वत्रिफला मुस्ता वा क्वथिता जले ।
चित्रकत्रिफलादार्वीकलिङ्गान्वा समाक्षिकान् ।
मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसमामलकस्य वा ॥ ६ ॥

कषायाः—

रोध्राभयातोयदकट्फलानां
पाठाविडङ्गार्जुनधान्यकानाम् ।
[1]गायत्रिदार्वीकृमिहृद्वचानां
कफे त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ७ ॥
उशीररोध्रार्जुनचंदनानां
पटोलनिंबामलकामृतानाम् ।
रोध्राम्बुकालीयकधातकीनां
पित्ते त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ८ ॥

रोध्रादिभिः पानान्नादि—

यथास्वमेभिः पानान्नं यवगोधूमभावनाः ।

वातजप्रमेहेषुस्नेहकल्पना :—

वातोल्बणेषु स्नेहांश्च प्रमेहेषु प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥
अपूपसक्तुवाट्यादिर्यवानां विकृतिर्हिता ।
गवाश्वगुदमुक्तानामथवा [2]वेणुजन्मनाम् ॥ १० ॥
तृणधान्यानि मुद्गाद्याः शालिर्जीर्णः सषष्टिकः ।
श्रीकुक्कुटोऽम्लः खलकस्तिलसर्षपकिट्टजः ॥ ११ ॥

---

१ गायत्री खदिरः । कृमिहृत् विडङ्गम् । २ वेणुजन्मनां यवानांयवानाम् ।
श्रीकुक्कुटसंज्ञोऽम्लखलकः ।

कपित्थं तिन्दुकं जंबूस्तत्कृता [1]रागखांडवाः ।
तिक्तं शाकं मधु श्रेष्ठा भक्ष्याः शुष्काः ससक्तवः ॥ १२ ॥
धन्वमांसानि शूल्यानि परिशुष्काण्यपस्कृतिः ।
मध्वरिष्टासवा जीर्णाः सीधुः पक्वरसोद्भवः ॥ १३ ॥
तथाऽसनादिसाराम्बु दर्भाम्भो माक्षिकोदकम् ।

सीधुनासक्तुपानम्—

वासितेषु वराक्वाथे शर्वरीं शोषितेष्वहः ॥ १४ ॥
यवेषु सुकृतान्सक्तून्सक्षौद्रान्सीधुना पिबेत् ।

कफपित्तप्रमेहेषु शालादिप्रयोग :—

[2]शालसप्ताह्वकंपिल्लवृक्षकाक्षकपित्थजम् ॥ १५ ॥
रोहीतकं च कुसुमं मधुनाऽद्यात्सुचूर्णितम् ।
कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्धात्रीरसेन वा ॥ १६ ॥

वातकफजादौ तैलादि—

त्रिकंटकनिशारोध्रसोमवल्कवचार्जुनैः ।
पद्मकाश्मकारिष्टचंदनागुरुदीप्यकैः ॥ १७ ॥
पटोलमुस्तमंजिष्ठामाद्रीभल्लातकैः पचेत् ।
तैलं वातकफे, पित्ते घृतं, मिश्रेषु मिश्रकम् ॥ १८ ॥

धान्वन्तर घृतम्

दशमूलं शठी दंती सुराह्वं द्विपुनर्नवम् ।
मूलं स्नुगर्कयोः पथ्या भूकदंबमरुष्करम् ॥ १९ ॥

---

१ रागखाण्डवा :—

"सिताख्चक सिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरुषकैः ।
निम्बूफलरसैर्युक्तो रागो रागजिकया युतः" ॥
"गुडादिपक्वं क्वथितमाममाम्रफलं पुनः
स्नेहैलानागरैर्युक्तो ज्ञातव्यो राजखाण्डव."

२ सप्ताह्वः सप्तच्छदः ।

करंजवरुणान्मूलं पिप्पल्याः पौष्करं च यत् ।
पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्थतः ॥ २० ॥
[२]त्रीश्चाष्टगुणिते तोये विपचेत्पादवर्तिना ।
तेन [३]द्विपिप्पलीचव्यवचानिचुलराह्विषं ॥ २१ ॥
त्रिवृद्विडंगकंपिल्लभार्गीबिल्वैश्च साधयेत् ।
प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वांस्तन्मेहान् पिटिकाविषम् ॥ २२ ॥
पांडुविद्रधिगुल्मार्शः शोफशोषगरोदरम् ।
श्वासं कासं वमिं वृद्धिं प्लीहानं वातशोणितम् ॥ २३ ॥
कुष्ठोन्मादावपस्मारं धान्वंतरमिदं घृतम् ।

रोध्रासव :—

[४]रोध्रमूर्वाशठीवेल्लभार्गीनतनखप्लवान् ॥ २४ ॥
कलिंगकुष्ठक्रमुकप्रियंग्वतिविषाग्निकान् ।
[१]द्वे विशाले चतुर्जातं भूनिंबं कटुरोहिणीम् ॥ २५ ॥
यवानीं पौष्करं पाठां ग्रंथिं चव्यं फलत्रयम् ।
कर्षांशमंबुकलशे पादशेषे शृते हिमे ॥ २६ ॥
द्वौ प्रस्थौ माक्षिकात्क्षिप्त्वा रक्षेत्पक्षमुपेक्षया ।
रोध्रासवोऽयं मेहार्शःश्वित्रकुष्ठारुचिकृमीन् ॥ २७ ॥
पांडुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलता च नियच्छति ।

अयस्कृति :—

साधयेदसनादीनां पलानां विंशतिं पृथक् ॥ २८ ॥
द्विवहेऽपां क्षिपेत्तत्र पादस्थे द्वे शते गुडात् ।
क्षौद्राढकार्धं पलिकं वत्सकादि च कल्कितम् ॥ २९ ॥
तत्क्षौद्रपिप्पलीचूर्णप्रदिग्धे घृतभाजने ।
स्थितं दृढे [२]जतुसृते यवराशौ निधापयेत् ॥ ३० ॥

---

२ त्रीनुप्रस्थान् यवादीनाम् । यवादि प्रत्येकं प्रस्थ परिमितं ग्राह्यम् । ३ तेन-पादशेषेण जलेन । ४ वेल्लो विडङ्गम् । प्लवःकैवर्तमुस्तकम् । १ विशाला इन्द्रवारुणी । २ जतुसृते लाक्षालिप्ते पात्रे ।

खदिराङ्गारतप्तानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत् ।
तनूनि तीक्ष्णलोहस्य पत्राण्यालोहसंक्षयात् ॥ ३१ ॥
अयस्कृतिः [1]स्थिता पीता पूर्वस्मादधिका गुणैः ।

उद्वर्तनादि—

रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः ॥ ३२ ॥
यच्चान्यच्छ्लेष्ममेदोघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ।

शिलाजतुप्रयोग :—

सुभावितां सारजलैस्तुलां पीत्वा शिलोद्भवात् ॥ ३३ ॥
साराम्बुनैव भुञ्जानः शालीन् जाङ्गलजै रसैः ।
सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहूपद्रवानपि ॥ ३४ ॥
गण्डमालार्बुदग्रन्थिस्थौल्यकुष्ठभगन्दरान् ।
कृमिश्लीपदशोफांश्च परं चैतद्रसायनम् ॥ ३५ ॥

निर्धनप्रमेहिचिकित्सा—

अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः ।
योजनानां शतं यायात्खनेद्वा सलिलाशयान् ॥ ३६ ॥
गोशकृन्मूत्रवृत्तिर्वा गोभिरेव सह भ्रमेत् ।

कृशप्रमेहिणांचिकित्सा—

बृंहयेदौषधाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम् ॥ ३७ ॥

प्रमेहपिटिकोपचार :—

शराविकाद्याः पिटिकाः शोफवत्समुपाचरेत् ।
अपक्वा, व्रणवत्पक्वाः,
[2]तासां प्रागेव एव च ॥ ३८ ॥
क्षीरिवृक्षाम्बु पानाय बस्तमूत्रं च शस्यते ।
तीक्ष्णं च शोधनं प्रायो दुर्विरेच्या हि मेहिनः ॥ ३९ ॥

---

१ स्थिता सम्यक् । पूर्वस्माद्धात्रासवात् । २ वामोपिटिकानाम् ।

तैलमेलादिना कुर्यादिगणेन व्रणरोपणम् ।
उद्वर्तने कषायं तु वर्गेणारग्वधादिना ॥ ५० ॥
परिषेकोऽश्मनाद्येन पानान्ने वत्सकादिना ।
पाठा चित्रकशार्ङ्गेष्टा सारिवा कंटकारिका ॥ ५१ ॥
सप्ताह्वं कौटजं मूलं सोमवल्कं नृपद्रुमम् ।
संचूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वच्चूर्णं नवायसम् ॥ ५२ ॥

मधुमेहे प्रयोग :—

मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः ।
शिलाजतुतुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः ॥ ५३ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

शल्यतन्त्रम्

अथाऽतो विद्रधिवृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

आमविद्रधौ शोफवदुपचार :—

विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत्समुपाचरेत् ।
प्रततं च हरेद्रक्तं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ॥ १ ॥

वातविद्रधिचिकित्सा—

पंचमूलजलैर्धौतं वातिकं लवणोत्तरैः ।
भद्रादिवर्गयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेद्व्रणम् ॥ २ ॥
वैरेचनिकयुक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च ।
विदारीवर्गसिद्धेन त्रैवृतेनैव रोपयेत् ॥ ३ ॥

क्षालितं क्षीरितोयेन लिंपेद्यष्ट्यमृतातिलैः ।

पित्तविद्रधिचिकित्सा—

पैत्तं घृतेन सिद्धेन मञ्जिष्ठोशीरपद्मकैः ॥ ४ ॥
पयस्यादिनिशाश्रेष्ठायष्टीदुग्धैश्च रोपयेत् ।
न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वा,

कफविद्रधिचिकित्सा—

कफजं पुनः ॥ ५ ॥

आरग्वधांवुना धौतं सक्तुकुंभनिशातिलैः ।
लिंपेत्कुलत्थिकादंतीत्रिवृच्छ्यामाग्नितिल्वकैः ॥ ६ ॥
ससैंधवैः सगोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ।
रक्तागंतूद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ७ ॥

आभ्यन्तरविद्रधिचिकित्सा—

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यंतरे स्थिते ।
ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाह्णे विद्रधौ पिबेत् ॥ ८ ॥
घृतं विरेचनद्रव्यैः सिद्धं [1]ताभ्यां च पाययेत् ।
निरूहं स्नेहबस्ति च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥
पानभोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः ।
दत्तावापो यथादोषमपक्वं हंति विद्रधिम् ॥ १० ॥

त्रायन्त्यादिक्काथः—

त्रायंतीत्रिफलानिंबकटुकामधुकं समम् ।
त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥
मसूराद्विस्तुषादष्टौ तत्क्वाथः सघृतो जयेत् ।
विद्रधीगुल्मवीसर्पदाहमोहमदज्वरान् ॥ १२ ॥

१ ताभ्यां वरुणाद्यूषकगणाभ्याम् ।

तृण्मूर्छाछर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ।

घृतम्—

कुडवं मायमाणायथा. साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ॥ १३ ॥
कुडवं तद्रसाद्धात्रीस्वरसात्क्षीरतो घृतात् ।
कर्षांशं कल्कितं तिक्तात्रायंतीधन्वयासकम् ॥ १४ ॥
मुस्तातामलकीवीराजीवंतीचंदनोत्पलम् ।
पचेदेकत्र संयोज्य तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः ॥ १५ ॥

अन्यद्घृतम्—

द्राक्षा मधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी ।
परूपकाणि त्रिफला तत्क्वाथे पाचयेद्घृतम् ॥ १६ ॥
क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम् ।
तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं [1]पूर्ववद्गुणैः ॥ १७ ॥

असृङ्मोक्ष :—

हरेच्छृंगादिभिरसृक् सिरया वा यथान्तिकम् ।

उपनाह :—

विद्रधिं पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरुन्नतम् ॥ १८ ॥
ज्ञात्वोपनाहयेत्

पक्वविद्रधिभेदनादि—

शूले स्थिते तत्रैव स्थिते ।
तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेषु च ॥ १९ ॥
पक्वः स्याद्विद्रधिं भित्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ।
अंतर्भागस्य चाप्येतच्चिह्नं पक्वस्य विद्रधेः ॥ २० ॥

---

१ पूर्ववद्गुणैः गुणैःपूर्ववत् त्रायमाणघृतवत् ।

विद्रधौदोषविशेषस्योपेक्षादि—

पक्वः स्रोतांसि संपूर्य स यात्यूर्ध्वमधोऽथवा ।
स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः ॥ २१ ॥
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षन् भिषगुपद्रवान् ।
असम्यग्वहति क्लेदे वरणादि मुखांभसा ॥ २२ ॥
पाययेन्मधुशिग्रुं वा यवागूं तेन वा कृताम् ।

यवादिजैर्यूषैःसहान्नम्—

यवकोलकुलत्थोत्थयूषैरन्नं च शस्यते ॥ २३ ॥

दशाहादनन्तरं शोधनादि—

ऊर्ध्वं दशाहात्त्रायंतीसर्पिषा तैलवृत्तेन वा ।
शोधयेद्बलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत् ॥ २४ ॥

विद्रधेर्गुल्मवदुपक्रमः—

सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत् ।

गुग्गुलुशिलाजतु प्रयोगः—

सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च ॥ २५ ॥
कषायैर्यौगिकैर्युञ्ज्यात्स्वैः स्वैस्तद्वच्छिलाजतु ।

यत्नेन पाकवारणादि—

पाकं च वारयेद्यत्नात्सिद्धिः पक्वे हि दैविकी ॥ २६ ॥
अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते ।
मतिं चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम् ॥ २७ ॥

स्तनजविद्रधि चिकित्सा—

स्तनजे व्रणवत्सर्वं नत्वेनमुपनाहयेत् ।
पाटयेत्पालयन्स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ ॥ २८ ॥
सर्वास्वामाद्यवस्थासु निर्दुहीत[1] च तत्स्तनम् ।

---

१ तत्स्तनस्य दोहनं कुर्यात् ।

वृद्धि चिकित्सा—

शोधयेत्त्रिवृता स्निग्धं वृद्धौ स्नेहैश्चलात्मके ॥ २९ ॥
कौशाम्रतिल्वकैरण्डसुकुमारकमिश्रकैः[1] ।
ततोऽनिलघ्ननिर्यूहकल्कस्नेहैर्निरूहयेत् ॥ ३० ॥
रसेन भोजितं यष्टितैलेनान्वासयेदनु ।
स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः पक्वे भित्त्वा व्रणक्रियाः ॥ ३१ ॥
पित्तरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम् ।
शोफव्रणक्रियां कुर्यात् प्रततं च हरेदसृक् ॥ ३२ ॥
गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं श्लैष्मिके पीतदारुजम् ।
विम्लापनादृते चाऽत्र श्लेष्मग्रथिक्रमो हितः ॥ ३३ ॥
पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते व्रणशोधनम् ।
सुमनोरुष्करांकोल्लसप्तपर्णेषु साधितम् ॥ ३४ ॥
पटोलनिंबरजनीविडंगकुटजेषु च ।
मेदोजं मूत्रपिष्टेन सुस्विन्नं सुरसादिना ॥ ३५ ॥
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा वर्जयन्फलसेवनीम् ॥
दारयेद्वृद्धिपत्रेण सम्यङ्मेदसि सूद्धृते ॥ ३६ ॥
व्रणं माक्षिककासीससैंधवप्रतिसारितम् ।
सीव्येदभ्यंजनं चाऽस्य योज्यं मेदोविशुद्धये ॥ ३७ ॥
मनःशिलैलासुमनोग्रंथिभल्लातकैः कृतम् ।
तैलमाव्रणसधानात्स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ३८ ॥
मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् ।
विध्येदधस्तात्सेवन्याः स्रावयेच्च यथोदरम् ॥ ३९ ॥
व्रणं च स्थगिकाबद्धं रोपयेत्,

अंत्रहेतुके ।

फलकोशमसंप्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत् ॥ ४० ॥

---

१ सुकुमाररसायनमिहैवाध्याये वक्ष्यमाणम् ।

गुल्मेऽप्येवं वातकफजे प्लीह्नि चायं विधिः स्मृतः ।
कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाच्यां च [1]यतो गदः ॥ ५१ ॥"

चतुर्दशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा २२ अध्यायान्तम् ।

अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

गुल्मस्यतैलसाधनादि—

"गुल्मं बद्धशकृद्वातं वातिकं तीव्रवेदनम् ।
रूक्षशीतोद्भवं तैलैः साधयेद्वातरोगिकैः ॥ १ ॥
पानान्नान्वासनाभ्यंगैः स्निग्धस्य स्वेदमाचरेत् ।
आनाहवेदनास्तम्भविबन्धेषु विशेषतः ॥ २ ॥
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ।
भित्त्वा विबंधं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ३ ॥
स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे ।
पक्वाशयगते बस्तिरुभयं जठराश्रये ॥ ४ ॥
दीप्तेऽग्नौ वातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्चसोः ।
बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रदापयेत् ॥ ५ ॥
पुन:पुन: स्नेहपानं,
निरूहाः सानुवासनाः ।
प्रयोज्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षिणः ॥ ६ ॥,

---

१ विश्वाच्या यतो यस्मिन् पार्श्वे गदस्तस्मिन्पार्श्वे कनिष्ठिकानामिकयोरुपरि यत् स्नावबद्धं तन्तुमर्मं तदुत्क्षिप्यातिर्यक् छित्वादहेदित्यर्थः ।

बस्तिकर्म गुल्मघ्नम्—

बस्तिकर्म परं विद्याद्गुल्मघ्नं तद्धि मारुतम् ।
स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति ॥ ७ ॥
तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मा निरूहैः सानुवासनैः ।
प्रयुज्यमानैः शाम्यंति वातपित्तकफात्मकाः ॥ ८ ॥

घृतम्—

हिंगुसौवर्चलव्योषबिडदाडिमदीप्यकैः ।
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ ९ ॥
शठीवचाजगंधैलासुरसैर्दधिसंयुतैः ।
शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद्वातगुल्मिनाम् ॥ १० ॥

अन्यद्घृतम्—

हपुषोषणपृथ्वीकापंचकोलकदीप्यकैः ।
साजाजीसैंधवैर्दध्ना दुग्धेन च रसेन च ॥ ११ ॥
दाडिमाम्मूलकात्कोलात्पचेत्सर्पिर्निहंति तत् ।
वातगुल्मोदरानाहपार्श्वहृत्कोष्ठवेदनाः ॥ १२ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषकासश्वासारुचिज्वरान् ।

घृतम्—

दशमूलं बला कालां सुषवी द्वौ पुनर्नवौ ॥ १३ ॥
पौष्करैरंडरास्नाश्वगंधभार्ग्यमृताशठीः ।
पचेद्गंधपलाशं च द्रोणेऽपां द्विपलोन्मितम् ॥ १४ ॥
यवैः कोलैः कुलत्थैश्च माषैश्च प्रास्थिकैः सह ।
क्वाथेऽस्मिन्दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५ ॥
स्वरसैर्दाडिमाम्रातमालुंगोद्भवैर्युतम् ।
तथा तुषांबुधान्याम्लयुतैः श्लक्ष्णैश्च कल्कितैः ॥ १६ ॥

---

१. पृथ्वीका मगरैल । २. काला-नीलिनी । सुषवीस्थूलजीरकः ।

भार्गीतुंबुरुपड्ग्रंथाग्रंथिरास्नाग्निधान्यकैः ।
[1]यवानकयवान्यम्लवेतसासितजीरकैः ॥ १७ ॥
अजाजीहिंगुहपुषाकारवीवृषकोषकैः[2] ।
निकुंभकुंभमूर्वेभपिप्पलीवेल्लदाडिमैः ॥ १८ ॥
श्वदंष्ट्रात्रपुसैर्वारुबीजहिंस्राश्मभेदकैः ।
मिसिद्विक्षारसुरसासारिवानीलिनीफलैः ॥ १९ ॥
त्रिकटुत्रिपटूपेतैर्दोधिकं यद्व्यपोहति ।
रोगानाशुतरान्पूर्वान्कष्टानपि च शीलितम् ॥ २० ॥
अपस्मारगरोन्मादमूत्राघातानिलामयान् ।

त्र्यूषणादिघृतम्—

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यचविकावेल्लचित्रकैः ॥ २१ ॥
कल्कीकृतैर्घृतं पक्वं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ।

सर्ववातगुल्मविकारजिद्घृतम्—

तुला ल्शुनकदानां पृथक्पंचपलांशकम् ॥ २२ ॥
पंचमूलं महच्चाथु[4]भारार्धे तद्विपाचयेत् ।
पादशेषं तदर्धेन दाडिमस्वरसं सुराम् ॥ २३ ॥
धान्याम्लं दधि चाऽऽदाय पिष्टांश्चार्धपलांशकान् ।
त्र्यूषणत्रिफलाहिंगुयवानीचव्यदीप्यकान् ॥ २४ ॥
साम्लवेतसमिसिधूत्थदेवदारूनपचेद्घृतात् ।
[5]तैः प्रस्थं तत्परं सर्ववातगुल्मविकारजित् ॥ २५ ॥

अन्यद्घृतम्—

षट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि ।
[6]प्रसन्नया वा क्षीरार्थः सुरया दाडिमेन वा ॥ २६ ॥

---

१ यवानकः अजमोदा, अथवा खुरासानी जवाइन । २ ऊषकः—क्षारमृत्तिका । ३ हिंस्रा-रास्ना । ४ महत्पञ्चमूलं प्रत्येकं पञ्चपलम् । भारार्धे दशशते पले तोये । तदर्धेन पादशेषार्धेन । ५ तैस्त्र्यूषणादिभिः । ६ गुल्मनाशाय षट्पलं घृतं, दुग्धं विहाय प्रसन्नादिषु केनचिदेकेन विपाचयेत् ।

घृते मारुतगुल्मघ्नः कार्यो दध्नः सरेण वा ।

वमनम्—

वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाग्निमरुचिं यदि ॥ २७ ॥
हृल्लासं गौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम् ।
शूलानाहविबंधेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ॥ २८ ॥

क्वाथादिप्रयोग :—

निर्यूहचूर्णवटकाः प्रयोज्या घृतभेषजैः ।

चूर्णपानम्—

[1]कोलदाडिमघर्माम्बुतक्रमद्याम्लकांजिकैः ॥ २९ ॥
मण्डेन वा पिबेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्य[2] वा पुरः ।

चूर्णवटका :—

चूर्णानि मातुलुंगस्य भावितान्यसकृद्रसे ।
कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् कफवातयोः ॥ ३० ॥

हिङ्ग्वादि चूर्णम्—

[3]हिंगुवचाविजयापशुगंधा-
दाडिमदीप्यकधान्यकपाठाः ।
पुष्करमूलशठीहपुषाग्नि-
क्षारयुगत्रिपटुत्रिकटूनि ॥ ३१ ॥
साजाजिचव्यं सहतिंतिडीकं
सवेतसाम्लं विनिहंति चूर्णम् ।
हृत्पार्श्वबस्तित्रिकयोनिपायु-
शूलानि वाय्वामकफोद्भवानि ॥ ३२ ॥

---

१ घर्माम्बु उष्णाम्बु । २ अन्नस्य पुरः भोजनादौ । ३ पशुगन्धा अ: "ममरी" । त्रिपटूनि सैन्धवसौवर्चलसामुद्रलवणानि ।

कृच्छ्राम् गुल्मान्वातविण्मूत्रसंगं
कंठे बंधं हृद्ग्रहं पांडुरोगम् ।
अन्नाश्रद्धाप्लीहदुर्नामहिध्मा-
वर्ध्माध्मानश्वासकासाग्निसादान् ॥ ३३ ॥

वैश्वानरचूर्णम्—

[1]लवणयवानीदीप्यक-
कणनागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।
सर्वसमांशहरीतकी-
चूर्णं वैश्वानरः साक्षात् ॥ ३४ ॥

हिङ्ग्वष्टक चूर्णम्—

त्रिकटुकमजमोदा सैंधवं जीरके द्वे
[2]समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः ।
प्रथमकवलभोज्यः सर्पिषा चूर्णकोऽयं
जनयति भृशमग्निं वातगुल्मं निहंति ॥ ३५ ॥

शार्दूलाख्यश्चूर्णम्—

[3]हिंगुप्रा विडशुंठ्यजाजिविजयावाट्याभिधानामयै-
श्चूर्णः कुंभनिकुंभमूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः ।
पीतः कोष्णजलेन कोष्ठगरुजो गुल्मोदरादीनयं
शार्दूलः प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानिव ॥३६॥

सैन्धवादि चूर्णम्—

सिंधूत्थपथ्याकणदीप्यकाना
चूर्णानि तोयैः पिबता कवोष्णैः ।

---

१ अत्र दीप्यकोऽजमोदापरनामा परिमार्जनेऽत्र अजमोदास्थानेऽपि यवानी एव ग्राह्या । २ धरणंप्रमाणम् । ३ वाट्याभिधानं पुष्करमूलम् । आमयम् कुष्ठम् । शार्दूलः सिंहः । कुम्भःत्रिवृत् । निकुम्भः-दन्ती ।

प्रयाति नाशं कफवातजन्मा
नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः ॥ ३७ ॥

क्षारचूर्णम्—

[1]पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगदोद्भवेषु ॥ ३८ ॥

रसोनरसप्रयोग :—

हिंगुत्रिगुणं सैंधवमस्मात्त्रिगुणं तु तैलमैरण्डम् ।
तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम् ॥ ३९ ॥

मातुलुंगरसप्रयोग :—

मातुलुंगरसो हिंगु दाडिमं विडसैंधवम् ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ४० ॥

शुण्ठ्यादि चूर्णम्—

शुण्ठ्याः कर्षं गुडस्य द्वौ धौतात्कृष्णतिलात्पलम् ।
खादन्नेकत्र संचूर्ण्य कोष्णक्षीरानुपो जयेत् ॥ ४१ ॥
वातहृद्रोगगुल्मार्शोयोनिशूलशकृद्ग्रहान् ।

एरण्डतैल प्रयोग :—

पिबेदेरंडतैलं तु वातगुल्मी प्रसन्नया ॥ ४२ ॥
श्लेष्मण्यनुबले वायौ, पित्ते तु पयसा सह ।

विरेचनादि—

विबद्धं यदि वा पित्तं संतापं वातगुल्मिनः ॥ ४३ ॥

---

१ पूतीकपत्रं करञ्जपत्रम् । गजचिर्भटइन्द्रवारुणी । लवणोपधानं सैन्धवगर्भम् सैन्धवं च सर्वसमम् ।

कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहैरानुलोमिकैः ।
तापानुवृत्तावेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत् ॥ ४४ ॥

लशुनपक्वक्षीरम्—

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाचयेत् ॥ ४५ ॥
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोषं साधयत्याशु तत्पयः ॥ ४६ ॥

अन्ये प्रयोगाः—

तैलं प्रसन्ना गोमूत्रमारनालं यवाग्रजः ।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत् ॥ ४७ ॥,
चित्रकग्रंथिकैरंडशुण्ठीक्वाथः परं हितः ।
शूलानाहविबंधेषु सहिंगुबिडसैंधवः ॥ ४८ ॥,
पुष्करैरंडयोर्मूलं यवधन्वयवासकम् ।
जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहरुजापहम् ॥ ४९ ॥,
वाट्याह्वैरंडदर्भाणां मूलं दारु महौषधम् ।
पीतं निःक्वाथ्य तोयेन कोष्ठपृष्ठांसशूलजित् ॥ ५० ॥

शिलाजतुप्रयोगः—

शिलाजं पयसाऽनल्पपंचमूलशृतेन वा ।
वातगुल्मी पिबेद्वाट्यमुदावर्ते तु भोजयेत् ॥ ५१ ॥
स्निग्धं पैप्पलिकैर्यूषैर्मूलकानां रसेन वा ।
बद्धविण्मारुतोऽश्नीयात्क्षीरेणोष्णेन यावकम् ॥ ५२ ॥
कुल्माषान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लवणोत्तरान् ।
नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकंपिल्लकैः　　सह ॥ ५३ ॥
समलाय घृतं देयं सविडक्षारनागरम् ।,

नीलिनीघृतम्—

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां बलां कटुकरोहिणीम् ॥ ५४ ॥

पचेद्विडंगं व्याघ्रीं च पालिकानि जलाढके ।
रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५५ ॥
दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ।
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमंडमिश्रितम् ॥ ५६ ॥
जीर्णे सम्यग्विरिक्ते च भोजयेद्रसभोजनम् ।
गुल्मकुष्ठोदरव्यंगशोफपांड्वामयज्वरान् ॥ ५७ ॥
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हंत्येतन्नीलिनीघृतम् ।

मांसादिप्रयोग :—

कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्रौंचवर्तकाः ॥ ५८ ॥
शालयो मदिराः सर्पिर्वातगुल्मचिकित्सितम् ।

भोजनादि—

मितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम् ॥ ५९ ॥
समंडावारुणीपानं तप्तं वा धान्यकैर्जलम् ।

पित्तजगुल्मचिकित्सा—

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम् ॥ ६० ॥
द्राक्षाऽभयागुडरसं कंपिल्लं वा मधुद्रुतम् ।
[1]कल्पोक्तं रक्तपित्तोक्तं,

रूक्षोष्णे घृतादि—

गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः ॥ ६१ ॥
परं संशमनं सर्पिस्तिक्तं वासाघृतं शृतम् ।
तृणाख्यपंचकक्वाथे जीवनीयगणेन वा ॥ ६२ ॥
शृतं तेनैव[2] वा क्षीरं न्यग्रोधादिगणेन वा ।

---

१ कल्पोक्तं कल्पस्थानोक्तं रक्तपित्तोक्तं त्रिफलात्रिवृतेत्यादिकम् । २ तेनैव जीवनीयगणे नैव । तत्रापि रूक्षोष्णजेऽपिगुल्मे ।

स्रंसनम्—

तत्राऽपि स्रंसनं युंज्याच्छीघ्रमात्ययिके भिषक् ॥ ६३ ॥
वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिषा पयसाऽपि वा ।

सिद्धघृतम् —

रसेनामलकेक्षूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६४ ॥
पथ्यापादं पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ।
पिबेद्वा तैल्वकं सर्पिर्यच्चोक्तं पित्तविद्रधौ ॥ ६५ ॥

द्राक्षादिपानम् —

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चंदनं पद्मकं मधु ।
पिबेत्तंडुलतोयेन पित्तगुल्मोपशांतये ॥ ६६ ॥

त्रायमाणा प्रयोग :—

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम् ।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत् ॥ ६७ ॥
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम् ।
तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥ ६८ ॥

दाहेऽभ्यङ्गादि—

दाहेऽभ्यंगो घृतैः शतधौतैर्लेपो हिमौषधैः ।
स्पर्शः सरोरुहां पत्रैः पात्रैश्च प्रचलज्जलैः ॥ ६९ ॥

रक्तहरणम् —

विदाहपूर्वरूपेषु शूले वह्नेश्च मार्दवे ।
बहुशोऽपहरेद्रक्तं पित्तगुल्मे विशेषतः ॥ ७० ॥
छिन्नमूला विदह्यंते न, गुल्मा यांति च क्षयम् ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति [1]तच्च नास्ति न चाऽस्ति रुक् ॥ ७१
हृतदोषं परिम्लानं जांगलैस्तर्पितं रसैः ।
समाश्वस्तं सशेषार्तिं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ ७२ ॥

१ तत्-रक्तम् ।

पाकोन्मुखे गुल्मेक्रिया —

रक्तपित्ताविवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्य वा ।
गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ७३ ॥

भोजनादि —

शालिर्गव्याजपयसा पटोलीं जांगलं घृतम् ।
धात्री परूपकं द्राक्षा खर्जूरं दाडिमं सिताम् ॥ ७४ ॥
भोज्यं पानेऽम्बुबलया बृहत्याद्यैश्च साधितम् ।

कफगुल्मचिकित्सा —

श्लेष्मजे वामयेत्पूर्वमवम्यमुपवासयेत् ॥ ७५ ॥
तिक्तोष्णकटुसंसर्ग्या वह्निं संधुक्षयेत्ततः ।
हिंग्वादिभिश्च द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसैः ॥ ७६ ॥
निगूढं यदि वोन्नद्धं स्तिमितं कठिनं स्थिरम् ।
आनाहादियुतं गुल्मं संशोध्य विनयेदनु ॥ ७७ ॥
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना ।
सव्योषक्षारलवणं सहिंगुविडदाडिमम् ॥ ७८ ॥
कफगुल्मं जयत्याशु दशमूलशृतं घृतम् ।

भल्लातकं घृतम् —

भल्लातकानां द्विपलं पंचमूलं पलोन्मितम् ॥ ७९ ॥
[2]अल्पं तोयाढके साध्यं पादशेषेण तेन च ।
तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेदक्षसमितैः ॥ ८० ॥
विडंगहिंगुसिंधूत्थयावशूकशठीविडैः ।
[3]सद्वीपिरास्नायष्ट्याह्वपड्ग्रंथाकणनागरैः ॥ ८१ ॥
एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥ ८२ ॥

---

१ विनयेत् उपशमयेत् । २ अल्पहस्वं पञ्चमूलं शालपर्ण्यादि ३ द्वीपीचित्रकः ।

स्वेदप्रयोग :—

ततोऽस्य गुल्मे देहे च समस्ते स्वेदमाचरेत् ।
सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते ॥ ८३ ॥
या क्रिया क्रियते याति सा सिद्धिं न विरूक्षिते ।
स्निग्धस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते ॥ ८४ ॥

घटिका योजनादि—

यथोक्ता घटिकां न्यस्येद्गृहीतेऽपनयेच्च ताम् ।
वस्त्रांतरं ततः कृत्वा छिंद्याद्गुल्मं प्रमाणवित् ॥ ८५ ॥
[1]विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभं प्रपीडयेत् ।
प्रमृज्याद्गुल्ममेवैकं न त्वंत्रहृदयं स्पृशेत् ॥ ८६ ॥
तिलैरंडातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य वा ।
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेत्ततः ॥ ८७ ॥

शोधनादि—

एवं च विसृतं स्थानात् कफगुल्मं विरेचनैः ।
सस्नेहैर्बस्तिभिश्चैनं शोधयेद्दशमूलकैः ॥ ८८ ॥

मिश्रकारकः स्नेह :—

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाद्यैः पालिकैः पचेत् ।
[2]एरंडतैलहविषोः प्रस्थौ पयसि षड्गुणे ॥ ८९ ॥
सिद्धोऽयं मिश्रकः स्नेहो गुल्मिनां स्रंसनं हितम् ।
वृद्धिविद्रधिशूलेषु वातव्याधिषु चामृतम् ॥ ९० ॥

नीलिनीघृतपानादि—

पिबेद्वा नीलिनीसर्पिर्मात्रया [3]द्विपलीकया ।
तथैव सुकुमाराख्यं घृतान्योदरिकाणि वा ॥ ९१ ॥

---

१ विमार्गः काष्ठखण्डः । २ एरण्डतैलस्य प्रस्थम् सर्पिषश्च प्रस्थम् ।
३ द्विपलीकयामात्रया द्विपलप्रमाणया मात्रया ।

दन्तीहरीतकी—

द्रोणेऽम्भसः पचेद्दन्त्याः पलानां पंचविंशतिम् ।
[1]चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे स्रुते ॥ ९२ ॥
द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गुडम् ।
तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः ॥ ९३ ॥
कणाकर्षौ तथा शुण्ठ्याः सिद्धे लेहे तु शीतले ।
मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जाताच्चतुर्थिकाम् ॥ ९४ ॥
अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन् ।
मुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ९५ ॥
गुल्महृद्रोगदुर्नामशोफानाहगरोदरान् ।
कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीहग्रहणीविषमज्वरान् ॥ ९६ ॥
घ्नन्ति दतीहरीतक्यः पांडुतां च सकामलाम् ।

सुधाक्षीर प्रयोग :—

सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम् ॥ ९७ ॥
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।

कुष्ठादि प्रयोग :—

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दन्तीविजयाक्षारगुग्गुलुम् ॥ ९८ ॥
गोमूत्रेण पिबेदेकं [3]तेन गुग्गुलुमेव वा ।

निरूहादियोजना—

निरूहान्कल्पसिद्धयुक्तान् योजयेद्गुल्मनाशनान् ॥ ९९ ॥

क्षारादिप्रयोग :—

वृत्तमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम् ।
गूढमांसं जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥ १०० ॥

---

१ तथा-चित्रकस्य पलानां पञ्चविंशतिम् । पथ्यास्तावतीः पलपञ्चविंशतिम् । पलपरिमिताम् । ३ तेन गोमूत्रेण एकमेवगुग्गुलुमेव ।

एकांतरं द्व्यंतरं वा विश्रमय्याऽथ वा त्र्यहम् ।
शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥
अर्शोश्मरीग्रहण्युक्ताः क्षारा योज्याः कफोल्वणे ।

देवदार्वादिक्षार :—

देवदारुत्रिवृद्दंतीकटुकापंचकोलकम् ॥ १०२ ॥
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठा [1]पाठोपकुंचिकाः ।
कुष्ठं [2]सर्पसुगंधा च व्यक्षांशं, पटुपंचकम् ॥ १०३ ॥
पालिकं चूर्णितं तैलवसादधिघृताप्लुतम् ।
घटस्यातः पचेत्पक्वमग्निवर्णे घटे च तम् ॥ १०४ ॥
क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत् ।
गुल्मोदावर्तवर्ध्मार्शोजठरग्रहणीकृमीन् ॥ १०५ ॥
अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्रामयाश्मरीः ।
क्षारोऽगदोऽयं शमयेद्विषं चाखुभुजंगजम् ॥ १०६ ॥
श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं रसक्षीरघृताशिनः ।
छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारत्वात्पातयत्यधः ॥ १०७ ॥

आसवादि प्रयोग :—

मदेऽग्नावल्पे सारम्यैर्गर्देः सस्नेहमश्नताम् ।
योजयेदासवारिष्टान्निगदान्मार्गशुद्धये ॥ १०८ ॥

अन्नपानम्—

शालयः षष्टिका जीर्णाः कुलत्था जागलं पलम् ।
चिरिबिल्वाग्नितर्कारीयवानीवरणांकुराः ॥ १०९ ॥
शिग्रुस्तरुणबिल्वानि बालं शुष्कं च मूलकम् ।
बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥ ११० ॥
व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ।
धान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीबिडचूर्णितम् ॥ १११ ॥

---

१ श्रेष्ठा त्रिफला । २ सर्पसुगन्धा-नाकुली

दन्तीहरीतकी—

द्रोणेऽम्भसः पचेद्दन्त्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।
[1]चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे स्रुते ॥ ९२ ॥
द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गुडम् ।
तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः ॥ ९३ ॥
कणाकर्षौ तथा शुंठ्याः सिद्धे लेहे तु शीतले ।
मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जाताच्चतुर्थिकाम् ॥ ९४ ॥
अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ९५ ॥
गुल्महृद्रोगदुर्नामशोफानाहगरोदरान् ।
कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीहग्रहणीविषमज्वरान् ॥ ९६ ॥
घ्नन्ति दंतीहरीतक्यः पाण्डुतां च सकामलाम् ।

सुधाक्षीर प्रयोग :—

सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम् ॥ ९७ ॥
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।

कुष्ठादि प्रयोग :—

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दंतीविजयाक्षारगुग्गुलुम् ॥ ९८ ॥
गोमूत्रेण पिबेदेकं [2]तेन गुग्गुलुमेव वा ।

निरूहादियोजना—

निरूहान्कल्पसिद्ध्युक्तान् योजयेद्गुल्मनाशनान् ॥ ९९ ॥

क्षारादिप्रयोग :—

इत्थमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम् ।
गूढमार्गं जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥ १०० ॥

---

१ तथा-चित्रकस्य पलानां पञ्चविंशतिम् । पथ्यास्तावतीः पलपञ्चविंशतिम् । पलपरिमिताम् । २ तेन गोमूत्रेण एकमेवगुग्गुलुमेव ।

एकांतरं द्व्यंतरं वा विश्रमय्याऽथ वा त्र्यहम् ।
शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥
अर्शोश्मरीग्रहण्युक्ताः क्षारा योज्याः कफोल्बणे ।

देवदार्वादिक्षार :—

देवदार्वग्निवृद्दंतीकटुकापंचकोलकम् ॥ १०२ ॥
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठा [1]पाठोपकुंचिका ।
कुष्ठं [2]सर्पसुगंधां च वृक्षकांशं, पटुपंचकम् ॥ १०३ ॥
पालिकं चूर्णितं तैलवसादधिघृताप्लुतम् ।
घटस्यान्तः पचेत्पक्वमग्निवर्णे घटे च तम् ॥ १०४ ॥
क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत् ।
गुल्मोदावर्तवर्ध्माशोंजठरग्रहणीकृमीन् ॥ १०५ ॥
अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्रामयाश्मरीः ।
क्षारोऽगदोऽयं शमयेद्विषं चाखुभुजंगजम् ॥ १०६ ॥
श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं रसक्षीरघृताशिनः ।
छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारत्वात्पातयत्यधः ॥ १०७ ॥

आसवादि प्रयोग :—

मदेऽग्नावरुचौ सात्म्यैर्मद्यैः सस्नेहमश्नताम् ।
योजयेदासवारिष्टान्निगदान्मार्गशुद्धये ॥ १०८ ॥

अन्नपानम्—

शालयः षष्टिका जीर्णाः कुलत्था जांगलं पलम् ।
चिरिबिल्वाग्नितर्कारीयवानीवरणांकुराः ॥ १०९ ॥
शिग्रुस्तरणबिल्वानि बालं शुष्कं च मूलकम् ।
बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥ ११० ॥
व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ।
धान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीविडचूर्णितम् ॥ १११ ॥

---

१ श्रेष्ठा त्रिफला । २ सर्पसुगन्धा-नाकुली

पंचमूलशृतं वारि जीर्णं मार्द्वीकमेव वा ।

सुरादिप्रयोग :—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैंधवैः ॥ ११२ ॥
सुरा गुल्मं जयत्याशु जांगलश्च विमिश्रितः ।

दाहकरणम् :—

वमनैर्लंघनैः स्वेदैः सर्पिःपानैर्विरेचनैः ॥ ११३ ॥
वस्तिक्षारासवारिष्टगुलिकापथ्यभोजनैः ।
श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति ॥ ११४ ॥
तस्य [1]दाहं हृते रक्ते कुर्यादन्ते शरादिभिः ।
अथ गुल्मं सपर्यंतं वाससांतरितं भिषक् ॥ ११५ ॥
नाभिवस्त्यंत्रहृदयं रोमराजीं च वर्जयन् ।
नातिगाढं परिमृशेच्छरेण ज्वलताऽथवा ॥ ११६ ॥
[2]लोहेनारणिकोत्थेन दारुणा तैंदुकेन वा ।
ततोऽग्निवेगे शमिते शीतैर्व्रण इव क्रिया ॥ ११७ ॥

आमान्वयेऽग्निसंधुक्षणादि :—

आमान्वये तु पेयाद्यैः संधुक्ष्याग्निं विलंघिते ।
स्वं स्वं कुर्यात्क्रमं मिश्रं मिश्रदोषे च कालवित् ॥ ११८ ॥

नार्यारक्तगुल्मचिकित्सितम्—

गतप्रसवकालायै नार्यै गुल्मेऽस्रसंभवे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ११९ ॥
तिलक्वाथो घृतगुडव्योषभार्गीरजोन्वितः ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः ॥ १२० ॥
भार्गीकृष्णाकरंजत्वग्ग्रंथिकामरदारुजम् ।
चूर्णं तिलानां क्वाथेन पीतं गुल्मरुजापहम् ॥ १२१ ॥

---

१ तस्य श्लैष्मिकगुल्मस्य । २ लोहेनशरेण ।

पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः ।
गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ १२२ ॥
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम् ।

योनिविशोधनादि—

क्षारेण युक्तं [1]पललं सुधाक्षीरेण वा ततः ॥ १२३ ॥
ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान् ।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्तकान्वा सुभावितान् ॥ १२४ ॥
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये ।
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १२५ ॥
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रयोजयेत् ।
बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम् ॥ १२६ ॥
अप्रवर्तमाने रुधिरे हितं गुल्मप्रभेदनम् ।
यमकाभ्यक्तदेहायाः [2]प्रवृत्ते समुपेक्षणम् ॥ १२७ ॥
रसौदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरुणी सुरा ।
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः ॥ १२८ ॥
कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः ।
[3]आनाहादावुदावर्तबलासघ्न्यो यथायथम् ॥ १२९ ॥

---

१ पललं भृष्टतिलचूर्णम् । कटुकमत्स्यकः शफरी अत्र शुष्कमत्स्य इति चरकेचक्रपाणिः । २ प्रवृत्ते रक्ते प्रवृत्ते । ३ आनाहादावुपद्रवे सति ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽत उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

उदरिणो विरेचनम्—

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।
संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ १ ॥

स्निग्धं विरेचनम्—

पाययेत्तैलमैरंडं गमूत्रं सपयोऽपि वा ।
मासं द्वौ [1]वाथवा गव्यं मूत्रं माहिषमेव वा ॥ २ ॥
पिबेद् गोक्षीरभुक् स्याद्वा [2]करभीक्षीरवर्तनः ।
दाहानाहातितृण्मूर्छापरीतस्तु विशेषतः ॥ ३ ॥

घृतयोजना—

रूक्षाणां बहुवातानां दोषसंशुद्धिकांक्षिणाम् ।
स्नेहनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि योजयेत् ॥ ४ ॥,
षट्पलं दशमूलांबु मस्तुन्याढकमाषितम् ।,
नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽऽढकम् ॥ ५ ॥
मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।
कफमारुतसंभूते गुल्मे च परमं हितम् ॥ ६ ॥,
चतुर्गुणे जले, मूत्रे द्विगुणे, चित्रकात्पले ।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥ ७ ॥,
यवकोलकुलत्थानां पंचमूलस्य चाम्भसा ।
सुरासौवीरकाभ्यां च सिद्धं वा पाययेद्घृतम् ॥ ८ ॥,

---

१ एकं मासमथवा द्वौ मासम् । २ करभी-उष्ट्री ।

स्निग्धे विरेचनम्--

एभिः स्निग्धाय संजाते बले शांते च मारुते ।
स्रस्ते दोषाशये दद्यात्कल्पदृष्टं विरेचनम् ॥ ९ ॥

पटोल चूर्णपानादि--

पटोलमूलं त्रिफलां निशा वेल्लं च कार्षिकम् ।
कंपिल्लनीलिनीकुंभभागान् द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ १० ॥
पिबेत्संचूर्ण्य मूत्रेण पेयां पूर्वं ततो रसं ।
विरक्तो जांगलैस्त्र्यात्ततः षड्दिवसं पयः ॥ ११ ॥
शृतं पिबेद्व्योषयुतं पीतमेवं पुनःपुनः ।
हंति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ १२ ॥

गवाक्ष्यादि चूर्णपानम्--

गवाक्षी शंखिनी दंती तिल्वकस्य त्वचं वचाम् ।
पिबेत्कर्कंधुमृद्वीकाकोलाभोमूत्रमीधुभिः ॥ १३ ॥

नारायण चूर्णम्--

यवानी हपुषा धान्यं शतपुष्पोपकुंचिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगंधा शठी वचा ॥ १४ ॥
चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम् ।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपंचकम् ॥ १५ ॥
विडंगं च समांशानि दंत्या भागत्रयं तथा ।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा ॥ १६ ॥
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ।
नैनं प्राप्याभिवर्धंते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ १७ ॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदरांबुना ।
आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ १८ ॥
दधिमंडेन विट्संगे दाडिमांभोभिरर्शसैः ।
परिकर्ते सवृक्षाम्लैरुष्णांबुभिरजीर्णके ॥ १९ ॥

भगंदरे पांडुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मंदेऽनले ज्वरे ॥ २० ॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २१ ॥

हपुषादि चूर्णपानम्—

हपुषां काचनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम् ।
त्रायतीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम् ॥ २२ ॥
सैंधवं काललवणं पिप्पलीं चेति चूर्णयेत् ।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ २३ ॥
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च ।
श्वित्रे कुष्ठेष्वजरके[1] सदने विषमेऽनले ॥ २४ ॥
शोफार्शःपांडुरोगेषु कामलायां हलीमके ।
वातपित्तकफांश्चाशु विरेकेण प्रसाधयेत् ॥ २५ ॥

नीलिन्यादि चूर्णम्—

नीलिनी निचुलं व्योषं क्षारौ लवणपंचकम् ।
चित्रकं च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत् ॥ २६ ॥

दुग्धप्रयोग :—

[2]पूर्ववच्च पिबेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽतरांतरा ।
कारभं गव्यमाजं वा, दद्यादात्ययिके गदे ॥ २७ ॥
स्नेहमेव विरेकार्थे दुर्बलेभ्यो विशेषतः ।

हरीतकी प्रयोग :—

हरीतकीसूक्ष्मरजःप्रस्थयुक्तं घृताढकम् ॥ २८ ॥
अग्नौ विलाप्य मथितं खजेन मत्रपह्लके ।
निधापयेत्ततो मासादुद्धृतं गालितं पचेत् ॥ २९ ॥

---

१ अजरके–अजीर्णे । २ पूर्ववच्च-यथा पटोलमूलादिके चूर्णे विधानं तथैव क्षामः जांगलरसादनन्तरमन्तराऽन्तरा दुग्धं पिबेत् । आत्ययिके गदे विरेचा स्नेहमेवदद्यात् ।

हरीतकीनां क्वाथेन दध्ना चाम्लेन संयुतम् ।
उदरं गरमष्ठीलामानाहं गुल्मविद्रधिम् ॥ ३० ॥
हंत्येतत्कुष्ठमुन्मादमपस्मारं च पानतः ।

स्नुक्क्षीरघृत प्रयोग :—

स्नुक्क्षीरयुक्ताद्गोक्षीराच्छृतशीतात्खजाहतात् ॥ ३१ ॥
यज्जातमाज्यं स्नुक्क्षीरसिद्धं तच्च [2]तथागुणम् ।
क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि ॥ ३२ ॥
जातं मथित्वा तत्सर्पिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणम् ।
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत् ॥ ३३ ॥
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च ।
एषां चाऽनु पिबेत्पेया रसं स्वादु पयोथवा ॥ ३४ ॥
घृते जीर्णे विरिक्तश्च कोष्णं नागरसाधितम् ।
पिबेदम्बु तत पेया ततो यूषं कुलत्थजम् ॥ ३५ ॥
पिबेद्रूक्षस्त्र्यहं त्वेवं भूयो वाप्रतिभोजितः ।
पुनः पुनः पिबेत्सर्पिरानुपूर्व्याऽनयैव च ॥ ३६ ॥
घृतान्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक् ।
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च शान्तये ॥ ३७ ॥
पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम् ।
तैल्वकं नीलिनीसर्पिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत् ॥ ३८ ॥
हृतदोषः क्रमादश्नन् लघुशाल्योदनं प्रति ।
उपयुंजीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये ॥ ३९ ॥

हरीतकीपिप्पली सहस्र प्रयोग :—

हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।
सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम् ॥ ४० ॥
पिप्पली वर्धमानां वा क्षीराशी वा शिलाजतु ।
तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा ॥ ४१ ॥

२ तथागुणम् पूर्वगुणम् ।

अन्ये प्रयोगा :—

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत् ।
मासं युक्तस्तथा हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ४२ ॥
विडंगं चित्रको दंती चव्यं व्योषं च तैः पयः ।
कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत् ॥ ४३ ॥
भोज्यं भुंजीत वा मासं स्नुहीक्षीरघृतान्वितम् ।
उत्कारिकां वा स्नुक्क्षीरपीतपथ्याकणाकृताम् ॥ ४४ ॥
पार्श्वशूलमुपस्तंभं हृद्ग्रहं च समीरणः ।
यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारान्वितं पिबेत् ॥ ४५ ॥
पक्वं वा टिट्टुकपलाशतिलनालजैः ।
क्षारैः कदल्यपामार्गतर्करीजैः पृथक्कृतैः ॥ ४६ ॥
कफे वातेन पित्ते वा [१]ताभ्यां वाप्यावृतेऽनिले ।
बलिनः स्वौषधयुतं तैलमेरंडजं हितम् ॥ ४७ ॥

लेप :—

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वकर्णैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं बहिः ॥ ४८ ॥

क्वाथमूत्र सेक :—

वृश्चिकालीवचाशुंठीवचमूलपुनर्नवात् ।
वर्षाभूधान्य कुष्ठाच्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत् ॥ ४९ ॥

वेष्टनम्—

विरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं साल्वलादिभिः ।
वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाऽऽध्मापयेत्पुनः ॥ ५० ॥

उपनाहनम्—

सुविरिक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम् ।

१ ताभ्यां पित्तकफाभ्यामावृतेऽनिले । स्वौषधयुतं येनदोषेणावरणं तद्दोषनाशकौषधयुतम् ।

सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

बस्तयः—

[1]सोपस्तंभोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् ।
तीक्ष्णाः सक्षारगोमूत्राः शस्यंते तस्य बस्तयः ॥ ५२ ॥

इति सामान्यतः प्रोक्ताः सिद्धा जठरिणां क्रियाः ।

वातोदर चिकित्सा—

वातोदरेऽथ बलिनं विदार्यादिशृतं घृतम् ॥ ५३ ॥
पाययेत् ततः स्निग्धं स्वेदितांगं विरेचयेत् ।
बहुशस्तैल्वकेनैनं सर्पिषा मिश्रकेण वा ॥ ५४ ॥

कृते संसर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत् ।
प्रागुत्क्लेशान्निवर्तेत बले लब्धे क्रमात्पयः ॥ ५५ ॥

यूषै रसैर्वा मंदाम्ललवणैरेधितानलम् ।
सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेत्ततः ॥ ५६ ॥

तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाशमूलिकबस्तिना ।
तिलोरुबूकतैलेन वातघ्नाम्लशृतेन च ॥ ५७ ॥

स्फुरणाक्षेपसंध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु ।
रूक्षं बद्धशकृद्वातं दीप्ताग्निमनुवासयेत् ॥ ५८ ॥

अविरेच्यस्य शमना बस्तिक्षीरघृतादयः ।

पित्तोदर चिकित्सा—

बलिनं स्वादुसिद्धेन पैत्ते संस्नेह्य सर्पिषा ॥ ५९ ॥
[2]श्यामात्रिभंडीत्रिफलाविपक्वेन विरेचयेत् ।
सितामधुघृताढ्येन निरूहोऽस्य ततो हितः ॥ ६० ॥

---

१ सोपस्तम्भः कफा धाधारकेण सह वर्तत इति सोपस्तम्भः । २ श्यामा कृष्णात्रिवृत् वृद्धदारकोवा । त्रिभंडी त्रिवृत् ।

न्यग्रोधादिकषायेण स्नेहबस्तिश्च १तच्छृतः ।
दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरवस्तिभिः ॥ ६१ ॥
जाते त्वग्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत् ।
क्षीरेण सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकशृतेन वम् ॥ ६२ ॥
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन वा ।
सकफे वा समूत्रेण, सतिक्ताज्येन सानिले ॥ ६३ ॥
पयसान्यतमेनैषा विदार्यादि शृतेन वा ।
भुञ्जीत, जठरं चाऽस्य पायसेनोपनाहयेत् ॥ ६४ ॥
पुनः क्षीरं पुनर्बस्ति पुनरेव विरेचनम् ।
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन्यतः पित्तोदरं जयेत् ॥ ६५ ॥

कफोदर चिकित्सा—

वत्सकादिविपक्वेन कफे संस्नेह्य सर्पिषा ।
स्विन्नं स्नुक्क्षीरसिद्धेन बलवंतं विरेचितम् ॥ ६६ ॥
संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः ।
मूत्रत्र्यूषणतैलाढ्यो निरूहोऽस्य ततो हितः ॥ ६७ ॥
मुष्ककादिकषायेण स्नेहबस्तिश्च तच्छृतः ।
भोजनं व्योषदुग्धेन कौलत्थेन रसेन वा ॥ ६८ ॥
स्तैमित्यारुचिहृल्लासैर्मंदेऽग्नौ मद्यपाय च ।
दद्यादरिष्टान् क्षारांश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे ॥ ६९ ॥

क्षार :—

हिंगूपकुल्ये त्रिफलां देवदारु निशाद्वयम् ।
भल्लातकं शिग्रुफलं कटुकां तिक्तकं वचाम् ॥ ७० ॥
शुंठी माद्री घनं कुष्ठं सरलं पटुपंचकम् ।
दाहयेज्जर्जरीकृत्य दधिस्नेहचतुष्कवत् ॥ ७१ ॥
अंतर्धूमं ततः क्षाराद्बिडालपदकं पिबेत् ।
मदिरादधिमंडोष्णजलारिष्टसुरासवैः ॥ ७२ ॥

---

१ तच्छृतस्तेनन्यग्रोधादिकषायेण शृतः पक्वः ।

उदरं गुल्ममष्ठीलां तून्यौ शोफं विसूचिकाम् ।
प्लीहहृद्रोगगुदजानुदावर्तं च नाशयेत् ॥ ७३ ॥

अरिष्टादिप्रयोग :—

जयेदरिष्टगोमूत्रचूर्णायस्कृतिपानतः ।
सक्षारतैलपानैश्च दुर्बलस्य कफोदरम् ॥ ७४ ॥

उपनाहनस्वेदप्रयोग :—

उपनाह्यं समिद्धार्थकिण्वैर्बीजैश्च मूलकात् ।
कल्कितैरुदरस्वेदमभीक्ष्णं चाऽत्र योजयेत् ॥ ७५ ॥

सन्निपातोदर चिकित्सा :—

सनिपातोदरे कुर्यान्नातिक्षीणबलानले ।
दोषोद्रेकानुरोधेन प्रत्याख्याय क्रियामिमाम् ॥ ७६ ॥
दंतीद्रवंतीफलजं तैलं पाने च शस्यते ।
क्रियानिवृत्ते जठरे त्रिदोषे तु विशेषत. ॥ ७७ ॥
दद्यादापृच्छ्य तज्ज्ञातीन् पातु मद्येन कल्पितम् ।
मूलं काकादनीगुञ्जाकरवीरकसंभवम् ॥ ७८ ॥

विषप्रयोग :—

पानभोजनसंयुक्तं दद्याद्वा स्थावरं विषम् ।
यस्मिन्वा कुपितः सर्पो विमुंचति फले विषम् ॥ ७९ ॥
तेनास्य दोषसंघातः स्थिरो लीनो विमार्गगः ।
बहिः प्रवर्तते भिन्नो विषेणाशु प्रमाथिना ॥ ८० ॥
तथा व्रजत्यगदतां, शरीरांतरमेव वा ।

शीतपयः पानादि—

हृतदोषं तु शीतांबुस्नातं तं पाययेत्पयः ॥ ८१ ॥
पेया वा त्रिवृतः शाकं मंडूक्या वास्तुकस्य वा ।
कालशाकं यवाख्यं वा खादेत्स्वरससाधितम् ॥ ८२ ॥

निरन्नलवणस्नेहं स्विन्नस्विन्नमनन्नभुक् ।
मासमेकं ततश्चैवं तृषितः स्वरसं पिबेत् ॥ ८३ ॥

उष्ट्रीदुग्धप्रयोगः—

एवं विनिर्हृते चार्कंदोषे मासात् परं ततः ।
दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृत्कारभं पयः ॥ ८४ ॥

प्लीहोदरचिकित्सा—

प्लीहोदरे यथादोषं स्निग्धस्य स्वेदितस्य च ।
सिरां मुक्तवतो दध्ना वामबाहौ विमोक्षयेत् ॥ ८५ ॥
लब्धे बले च भूयोऽपि स्नेहपीतं विशोधितम् ।
समुद्रशुक्तिजं क्षारं पयसा पाययेत्तथा ॥ ८६ ॥
अम्लभूतं विडकणाचूर्णाढ्यं नक्तमालजम् ।
सौभांजनस्य वा यवाथं सैन्धवाग्निकणान्वितम् ॥ ८७ ॥
हिंग्वादिचूर्णं क्षाराढ्यं युंजीत च यथाबलम् ।
पिप्पली नागरं दन्तीं समाशं द्विगुणाभयम् ॥ ८८ ॥
बिडार्धांशयुतं चूर्णमिदमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
विडङ्गं चित्रकं सक्तून् सघृतान् सैन्धवं वचाम् ॥ ८९ ॥
दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत् ।

बदरपत्रप्रयोगः—

तैलोन्मिश्रैर्बदरकपत्रैः संमर्दितैः समुपनद्धः ।
मुसलेन पीडितोऽनु याति प्लीहा पयोभुजो नाशम् ॥ ९० ॥

रोहीतकप्रयोगः—

रोहीतकलताः क्लृप्ताः खंडशः साभया जले ।
मूत्रे वाऽऽसुनुयात्तत्तु सप्तरात्रस्थितं पिबेत् ॥ ९१ ॥
कामलाप्लीहगुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम् ।

रोहीतकघृतम्—

रोहीतकत्वचः क्लृप्त्वा पलानां पंचविंशतिम् ॥ ९२ ॥

कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ।
पालिकैः पंचकोलैस्तु तैः समस्तैश्च तुल्यया ॥ ६३ ॥
हरीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
प्लीहाभिवृद्धिं शमयत्येतदाशु प्रयोजितम् ॥ ६४ ॥

अन्येप्रयोगाः—

कदल्यास्तिलनालानां क्षारेण क्षुरकस्य च ।
तैलं पक्वं जयेत्पानात्प्लीहानं कफवातजम् ॥ ६५ ॥
अशांतौ गुल्मविधिना योजयेदग्निकर्म च ।
अप्राप्तपिच्छासलिले प्लीह्नि वातकफोल्बणे ॥ ६६ ॥
पैत्तिके जीवनीयानि सर्पींषि क्षीरबस्तयः ।
रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानं च शस्यते ॥ ६७ ॥

यकृच्चिकित्सा—

यकृति प्लीहवत्कर्म दक्षिणे तु भुजे [1]सिराम् ।

बद्धोदरचिकित्सा—

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ॥ ६८ ॥
सतैलं लवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ।
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चास्मै विरेचनम् ॥ ६९ ॥
उदावर्तहरं कर्म कार्यं यच्चानिलापहम् ।

छिद्रोदर चिकित्सा—

छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥ १०० ॥
जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तद्यापयेद्भिषक् ।

उदकोदर चिकित्सा—

अपां दोषहराण्यादौ योजयेदुदकोदरे ॥ १०१ ॥

---

१ सिरा मोक्षयेदितिशेषः ।

मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवंति च ।
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥ १०२ ॥

क्षार गुटिका—

क्षारं छागकरीषाणां श्रृतं मूत्रेऽग्निना पचेत् ।
घनीभवति तस्मिंश्च कर्षांशं चूर्णितं क्षिपेत् ॥ १०३ ॥
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं शुण्ठीं लवणपंचकम् ।
निकुंभकुंभत्रिफलास्वर्णक्षीरीविषाणिकाः ॥ १०४ ॥
स्वर्जिकाक्षारषड्ग्रथासातलायवशूकजम् ।
कोलाभा गुटिकाः कृत्वा ततः सौवीरकाप्लुताः ॥ १०५ ॥
पिबेदजरके शोफे प्रवृद्धे चोदकोदरे ।

शस्त्रप्रयोग :—

इत्यौषधैरप्रशमे त्रिपु[1]बद्धोदरादिषु ॥ १०६ ॥
प्रयुंजीत भिषक् शस्त्रमार्तबंधुनृपार्थितः ।
स्निग्धस्विन्नतनोर्नाभेरधो बद्धक्षतांत्रयोः ॥ १०७ ॥
पाटयेदुदरं मुक्त्वा वामतश्चतुरंगुलात् ।
चतुरंगुलमानं तु निष्कास्यान्त्राणि तेन च ॥ १०८ ॥
निरीक्ष्यापनयेद्वालमललेपोपलादिकम् ।
छिद्रे तु शल्यमुद्धृत्य विशोध्यांत्रं परिस्रवम् ॥ १०९ ॥
[2]मर्कोटैर्दंशयेच्छिद्रं तेषु लग्नेषु चाहरेत् ।
कायं मूर्ध्नोऽनुचांत्राणि यथास्थानं निवेशयेत् ॥ ११० ॥
अक्तानि मधुसर्पिर्भ्यामथ सीव्येद्वहिर्व्रणम् ।
ततः कृष्णमृदाऽऽलिप्य बध्नीयाद्यष्टिमिश्रया ॥ १११ ॥
निवातस्थः पयोवृत्तिः स्नेहद्रोण्या वसेत्ततः ।

अन्येषां जातजलानामुदरिणां चिकित्सा—

मजले जठरे तैलैरभ्यक्तस्याऽनिलापहैः ॥ ११२ ॥

---

१ त्रिषु-बद्धछिद्रोदकोदरेषु । २ मर्कोटः 'चींटा' इति लोके ।

स्विन्नस्योष्णाम्बुनाऽऽकक्षमुदरे परिवेष्टिते ।
बद्धच्छिद्रोदितस्थाने विध्येदंगुलमात्रकम् ॥ ११३ ॥
निधाय तस्मिन्नाडी च स्रावयेदर्धमंभसः ।
अथाऽस्य नाडीमाकृष्य तैलेन लवणेन च ॥ ११४ ॥
व्रणमभ्यज्य बद्ध्वा च वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा यावदाषोडशं दिनम् ॥ ११५ ॥
तस्य विश्रम्य विश्रम्य स्रावयेदल्पशो जलम् ।
विवेष्टयेद्गाढतरं जठरं च श्लथाश्लथम् ॥ ११६ ॥
निःस्रुते लंघितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ।

जलोदरस्य संवत्सरेण जयप्रकारः—

स्यात्क्षीरवृत्तिः षण्मासांस्त्रीन्पेयां पयसा पिबेत् ॥ ११७ ॥
त्रींश्चा[1]ऽन्यान्पयसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा ।
अल्पशः स्नेहलवणं जीर्णं श्यामाककोद्रवम् ॥ ११८ ॥
प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत्तज्जलोदरम् ।

वर्ज्यावर्ज्ये

वर्ज्येषु यन्त्रितो दिष्टे[2]नाऽदिष्टे जितेंद्रियः ॥ ११९ ॥

सर्वोदर चिकित्सा—

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः ।
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वा प्रशस्यते ॥ १२० ॥

भोज्यानि—

वह्निर्मंदत्वमायाति दोषैः कुक्षौ प्रपूरिते ।
तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १२१ ॥

---

१ त्रीश्चान्यान्मासान् । २ वर्ज्येषु-अन्नपानादिषु उदररोगी यन्त्रितस्तदसेवीस्यात्, दिष्टे कथितेऽन्नपानादावयन्त्रितो न स्यात् । अदिष्टेऽकथिते जितेन्द्रियोऽलोलुपःस्यादित्यर्थः ।

सपंचमूलान्यल्पाम्लपटुस्नेहवद्वनि च ।
भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां च तंडुलैः ॥ १२२ ॥
यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ।
पिबेदिक्षुरसं चानु जठराणां निवृत्तये ॥ १२३ ॥
स्वं स्वं स्थानं व्रजंत्येषां वातपित्तकफास्तथा ।

त्याज्यानि —

अत्यर्थोष्णाम्ललवणं रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु ॥ १२४ ॥
गुडं तैलकृतं शाकं वारि पानावगाहयोः ।
आयामाध्वदिवास्वप्नयानानि च परित्यजेत् ॥ १२५ ॥

उदरेतक्रपानव्यवस्था—

नात्यर्थसांद्रं मधुरं तक्रं पाने प्रशस्यते ।
सकणालवणं वाते, पित्ते सोषणशर्करम् ॥ १२६ ॥
यवानीसैंधवाजाजीमधुव्योषैः कफोदरे ।
त्र्यूषणक्षारलवणैः संयुतं निचयोदरे ॥ १२७ ॥
मधुतैलवचाशुंठीशताह्वाकुष्ठसैंधवैः ।
प्लीह्नि[1], बद्धे तु हपुषायवानीपटुवजादिभिः ॥ १२८ ॥
सत्र्यूषणामाक्षिकं छिद्रे[2], व्योषवत्सलिलोदरे ।

तक्रप्रयोग प्रशंसा—

गौरवारोचकानाहमंदवह्न्यतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पये

क्षीरप्रयोग :—

प्रयोगाणां च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत् ॥ १३० ॥
स्थैर्यकृत्सर्वधातूनां बल्यं दोषानुबंधहृत् ।
भेषजापचितांगानां क्षीरमेवामृतायते ॥ १३१ ॥

---

१ बद्धे बद्धोदरे । २ छिद्रे छिद्रोदरे ।

षोडशोऽध्यायः।

अथाऽतः पांडुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

पाण्डुरोगिण आदौ सर्पिष्पानम्—

पांड्वामयी पिबेत्सर्पिरादौ कल्याणकाह्वयम्।
पंचगव्यं महातिक्तं घृतं वाऽऽरग्वधादिना ॥ १ ॥

सिद्धघृतम् —

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम्।
चित्रकाच्छृंगवेराच्च पिप्पल्यर्धपलं च तैः ॥ २ ॥
कल्कितैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिलाढके।
सिद्धं हृत्पाण्डुगुल्मार्शः प्लीहवातकफार्तिनुत् ॥ ३ ॥
दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम्।
दुःखप्रसविनीनांच वंध्याना च प्रशस्यते ॥ ४ ॥

स्नेहितस्यवमनादि :—

स्नेहितं वामयेत्तीक्ष्णैः पुनः स्निग्धं च शोधयेत्।
पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा ॥ ५ ॥

पानम्—

दंतीपलरसे कोष्णे काश्मर्याञ्जलिमासुतम्।
द्राक्षांजलिं वा मृदितं तत् पिबेत् पांडुरोगजित् ॥ ६ ॥
मूत्रेण पिष्टां पथ्यां वा तत्सिद्धं वा फलत्रयम्।

स्वर्णक्षीर्यादिकपानादि—

स्वर्णक्षीरीत्रिवृच्छ्यामाभद्रदारुमहौषधम् ॥ ७ ॥

गोमूत्रांजलिना पिष्टं सृतं तेनैव वा पिबेत् ।
गाथितं क्षीरमेभिर्वा पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥ ८ ॥

लौह प्रयोग :—

मूत्रे स्थितं वा सप्ताहं पयसाऽयोरजः पिबेत् ।
जीर्णे क्षीरेण भुंजीत रसेन मधुरेण वा ॥ ६ ॥
शुद्धश्चोभयतो लिह्यात्पथ्यां मधुघृतद्रुताम् ।

चूर्णपानम्—

विशाला कटुका मुस्तां कुष्ठं दारु कलिंगकः ॥ १० ॥
कर्षांशा, द्विपिचुर्मूर्वा कर्षार्धांशा [१]घुणप्रिया ।
पीत्वा तच्चूर्णमंभोभिः सुखैर्लिह्यात्ततो मधु ॥ ११ ॥
पांडुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ।
गुल्मानाहामवाताश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत् ॥ १२ ॥

क्वाथ :—

वासागुडूची त्रिफलाकट्वीभूनिंबनिंबजः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हंति पांडुपित्तास्रकामलाः ॥ १३ ॥

चूर्णम्—

व्योषाग्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः ।
चूर्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णांभोभिः प्रयोजितम् ॥ १४ ॥
कामलापांडुहृद्रोगकुष्ठार्शोमेहनाशनम् ।

मण्डूर गुटिका—

गुडनागरमंडूरतिलांशान्मानतः समान् ॥ १५ ॥
पिप्पलीद्विगुणान्दद्याद्गुटिकां पांडुरोगिणे ।

ताप्यादय :—

[२]ताप्यं दार्व्यास्त्वचं चव्यं ग्रंथिकं देवदारु च ॥ १६ ॥

---

१ घुणप्रिया-अतिविषा । २ ताप्यंस्वर्णमाक्षिकभस्म ।

व्योषादि नवकं चैतच्चूर्णयेद् द्विगुणं ततः ।
मंडूरं चाञ्जननिभं सर्वतोऽष्टगुणेऽथ तत् ॥ १७ ॥
पृथग्विपक्वे गोमूत्रे वटकीकरणक्षमे ।
प्रक्षिप्य वटकान्कुर्यात्तान्खादेत्तक्रभोजनः ॥ १८ ॥
एते मंडूरवटकाः प्राणदाः पाडुरोगिणाम् ।
कुष्ठान्यजरकं[1] शोफमूरुस्तंभमरोचकम् ॥ १९ ॥
अर्शांसि कामला मेहान् प्लीहानं शमयंति च ।

गुटिका—

ताप्याद्रिजतुरौप्यायोमलाः पच पलाः पृथक् ॥ २० ॥
चित्रकत्रिफलाव्योषविडंगैः पालिकैः सह ।
शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना द्रुताः ॥ २१ ॥
पांडुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमं ज्वरम् ।
कुष्ठान्यजरकं मेहं शोफ श्वासमरोचकम् ॥ २२ ॥
विशेषाद्धंत्यपस्मारं कामला गुदजानि च ।

वटका :—

कौटजत्रिफलानिंबपटोलघननागरैः ॥ २३ ॥
भावितानि दशाहानि रसैर्द्विगुणानि वा ।
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥ २४ ॥
त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्याः पलोन्मिताः ।
निदिग्ध्याः फलमूलाभ्या पलं, युक्त्या त्रिजातकम् ॥ २५ ॥
मधुत्रिपलसंयुक्तान् कुर्यादक्षसमान्गुडान् ।
दाडिमांबुपयःपक्षि[2]रसतोयसुरासवान् ॥ २६ ॥
तान् भक्षयित्वानुपिबेन्निरन्नो भुक्त एव वा ।
पाड्कुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगंदरम् ॥ २७ ॥
हृन्मूत्रपूतिशुक्राग्निदोषशोषगरोदरम् ।
कासासृग्दरपित्तासृक्शोफगुल्मगलामयान् ॥ २८ ॥

---

१ अजरकमजीर्णम् । २ पक्षिमांसरसः ।

मेहवर्त्मभ्रमान् हन्युः सर्वदोषहराः शिवाः ।

द्राक्षालेह :—

द्राक्षाप्रस्थं कणाप्रस्थं शर्करार्धतुलां तथा ॥ २९ ॥
[1]द्विपल मधुकं शुण्ठीत्वक्क्षीरीं च विचूर्णितम् ।
धात्रीफलरसद्रोणे तत्क्षिप्त्वा लेहवत्पचेत् ॥ ३० ॥
शीतान्मधुप्रस्थयुतान् लिह्यात्पाणितलं ततः ।
हलीमकं पाण्डुरोगं कामलां च नियच्छति ॥ ३१ ॥

पानभोजनेह्न वंपञ्चमूलं शस्तम् —

कनीयः पंचमूलांबु शस्यते पानभोजने ।
पांडूनां कामलार्तानां मृद्वीकामलकाद्रसः ॥ ३२ ॥
इति सामान्यतः प्रोक्तं पांडुरोगभिषग्जितम् ।
विकल्प्य योज्यं विदुषा पृथग्दोषबलं प्रति ॥ ३३ ॥

वाताद्युत्पन्न पाण्डुरोगचिकित्सा—

स्नेहप्रायं पवनजे तिक्तशीतं तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णं, विमिश्रं सांनिपातिके ॥ ३४ ॥

मृत्तिकाज पाण्डुरोगचिकित्सा :—

मृदं निर्पातयेत्[2]कायात्तीक्ष्णैः संशोधनैः पुरः ।
बलाधानानि सर्पीषि शुद्धे कोष्ठे तु योजयेत् ॥ ३५ ॥

घृतप्रयोग :—

व्योषबिल्वद्विरजनीत्रिफलाद्विपुनर्नवम् ।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडंगं देवदारु च ॥ ३६ ॥
वृश्चिकालीं च भार्गीं च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम् ।
सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ ३७ ॥

---

१. मधुकस्य, शुण्ठ्यास्त्वक्क्षीर्याश्च पृथक् पृथक् द्विपलम् । २. निर्पातयेत् — कुर्यात् ।

तद्वत्केसरयष्ट्याह्वपिप्पलीक्षीरशाड्वलैः।

भक्षणार्थंभावितमृद्दानम्—

मृद्वेषणाय तल्लौल्ये वितरेद्भावितां मृदम् ॥ ३८ ॥
वेल्लाग्निनिम्बप्रसवैः पाठया मूर्वयाथवा।

दोषानुसारिणी चिकित्सा—

[1]मृद्भेदभिन्नदोषानुगमाद्योज्यं च भेषजम् ॥ ३९ ॥

कामला चिकित्सितम्—

कामलायां तु पित्तघ्नं पांडुरोगाविरोधि यत्।
पथ्याशतरसे [2]पथ्यावृतार्धशतकल्कितः ॥ ४० ॥
प्रस्थः सिद्धो घृताद्गुल्मकामलापांडुरोगनुत्।
आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य वा ॥ ४१ ॥
सत्र्यूषणं बिल्वमात्रं पाययेत्कामलापहम्।
पिबेन्निकुंभकल्कं[3] वा द्विगुणं शीतवारिणा ॥ ४२ ॥
कुंभस्य चूर्णं सक्षौद्रं त्रैफलेन रसेन वा।
त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य वा रसम् ॥ ४३ ॥
प्रातः प्रातर्मधुयुतं कामलार्तः प्रयोजयेत्।
निशागैरिकधात्रीभिः कामलापहमंजनम् ॥ ४४ ॥
तिलपिष्टनिभं यस्तु कामलावान्सृजेन्मलम्।
कफरुद्धपथं तस्य पित्तं कफहरैर्जयेत् ॥ ४५ ॥

आतुर विशेषस्यचिकित्सा :—

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामबलनिग्रहैः।
कफसंमूर्छितो वायुर्यदा पित्तं बहिः क्षिपेत् ॥ ४६ ॥

---

१ मृदोभेदो विशेषः कृष्णपाण्डुरादिस्तेन भिन्नो विशेषितो यो दोषस्तस्यानुगमाज्ज्ञानात्। २ वृन्तं पथ्याफलबन्धनम्। ३ निकुम्भोदन्ती। द्विगुणं पलद्वयप्रमाणम्।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः ।
भवेत्साटोपविष्टंभो गुरुणा हृदयेन च ॥ ४७ ॥
दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्तिहिध्माश्वासारुचिज्वरैः ।
क्रमेणाल्पेऽनुषज्येत पित्ते शाखासमाश्रिते ॥ ४८ ॥
रसैस्तं रूक्षकट्वम्लैः शिखितित्तिरिदक्षजैः ।
शुष्कमूलककौलत्थैर्यूषैः कुलत्थोत्थैश्च भोजयेत् ॥ ४९ ॥
भृशाम्लतीक्ष्णकटुकलवणोष्णं च शस्यते ।
सबीजपूरकरसं लिह्याद्व्योषं तथाशयम् ॥ ५० ॥
स्वं पित्तमेति तेनास्य शकृदप्यनुरज्यते ।
वायुश्च याति प्रशमं सहाटोपाद्युपद्रवैः ॥ ५१ ॥
निवृत्तोपद्रवस्यास्य कार्यः कामलिको विधिः ।

कुम्भकामला चिकित्सा—

गोमूत्रेण पिबेत्कुंभकामलायां शिलाजतु ॥ ५२ ॥
मासं माक्षिकधातुं वा किट्टं वाऽयं[१] हिरण्यजम् ।

हलीमक चिकित्सा—

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितेन हलीमकी ॥ ५३ ॥
महिषीहविषा स्निग्धः पिबेद्धात्रीरसेन तु ।
त्रिवृतां तद्विरिक्तोऽद्यात्स्वादु पित्तानिलापहम् ॥ ५४ ॥
द्राक्षालेहं च पूर्वोक्तं सर्पींषि मधुराणि च ।
यापनाक्षीरवस्तींश्च शीलयेत्सानुवासनान् ॥ ५५ ॥
मार्द्वीकारिष्टयोगांश्च पिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये ।
कासिकं वाऽभयालेहं पिप्पलीमधुकं बलाम् ॥ ५६ ॥
पयसा च प्रयुंजीत यथादोषं यथाबलम् ।
पाण्डुरोगेषु कुशलः शोफोक्तं च क्रियाक्रमम् ॥ ५७ ॥

---

१ हिरण्यजं किट्टं सुवर्णमलम् ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

नागरादिपानम्—

सर्वत्र सर्वांगसरे दोषजे श्वयथौ पुरा ।
सामे [1]विशोषितो भुक्त्वा लघु कोष्णाम्भसा पिबेत् ॥ १ ॥
नागरातिविषादारुविडंगेंद्रयवोषणम् ।
अथवा विजयाशुंठीदेवदारुपुनर्नवम् ॥ २ ॥
नवायसं वा दोषाढ्यः शुद्ध्यै मूत्रहरीतकीः ।
वराक्वाथेन कटुकाकुंभायस्त्र्यूषणानि वा ॥ ३ ॥
अथवा गुग्गुलु तद्वज्जतु वा शैलसंभवम् ।

मन्दाग्नेस्तक्रपानादि—

मंदाग्निः शीलयेदामगुरुभिन्नविबद्धविट् ॥ ४ ॥
तक्रं सौवर्चलव्योषक्षौद्रयुक्तं गुडाभयाम् ।

अन्येप्रयोगाः—

तक्रानुपानामथवा तद्वद्वा गुडनागरम् ॥ ५ ॥
आर्द्रकं वा समगुडं [2]प्रकुंचार्धविवर्धितम् ।
परं पंचपलं मासं यूषक्षीररसाशनः ॥ ६ ॥

गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहान्
श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान्
सकामलाशोफमनोविकारान्
कासं कफं चैव जयेत्प्रयोगः ॥ ७ ॥

---

१ विशोषितः कृतापतर्पणः । २ प्रकुंचार्धं पलार्धम् ।

घृतप्रयोग :—

घृतमार्द्रकनागरस्य कल्क-
स्वरसाभ्यां पयसा च साधयित्वा ।
श्वयथुक्षयथूदराग्निसादै-
रभिभूतोऽपि पिबन् भवत्यरोगः ।

क्षीरमूत्रप्रयोग :—

निरामो बद्धशमलः पिबेच्छ्वयथुपीडितः ।
त्रिकटुत्रिवृतादंतीचित्रकैः साधितं पयः ॥ ९ ॥
मूत्रं गोर्वा महिष्या वा सक्षीरं क्षीरभोजनः ।
सप्ताहं मासमथवा स्यादुष्ट्रीक्षीरवर्तनः ॥ १० ॥

घृतम्—

[1]यवानकं यवक्षारं यवानीं पंचकोलकम् ।
मरिचं दाडिमं पाठा धानकामम्लवेतसम् ॥ ११ ॥
बालबिल्वं च कर्षांशं साधयेत्सलिलाढके ।
तेन पक्वो घृतप्रस्थः शोफार्शोगुल्ममेहहा ॥ १२ ॥
[2]दध्नश्चित्रकगर्भाद्वा घृतं तत्तक्रसंयुतम् ।
पक्वं सचित्रकं तद्वद्गुणैः,
युञ्ज्याच्च कालवित् ॥ १३ ॥
धान्वंतरं महातिक्तं कल्याणमभयाघृतम् ।

अभयालेह :—

दशमूलकषायस्य [3]कंसे पथ्याशतं पचेत् ॥ १४ ॥
दत्त्वा गुडतुलां तस्मिन् लेहे दद्याद्विचूर्णितम् ।
त्रिजातकं त्रिकटुकं किंचिच्च यवशूकजम् ॥ १५ ॥

---

१ यवानकः अजमोदा, श्यामलंदाकृत् । २ दध्नश्चित्रकगर्भात् चित्रकचूर्ण-मिश्रितादुग्धादुत्पन्नदध्नोजातं घृतम् । तक्रं च तदेव । ३ कंसे आढके ।

प्रस्यार्धं च हिमे क्षौद्रात्तद् निहंत्युपयोजितम् ।
प्रवृद्धशोफज्वरमेहगुल्म-
कार्श्यामवाताम्लकरक्तपित्तम् ।
वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोष-
श्वासारुचिप्लीहगरोदरं च ॥ १६ ॥

हितभोजनादि—

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलांबुसाधितम् ।
अल्पमल्पपटुस्नेहं भोजनं श्वयथोर्हितम् ॥ १७ ॥
क्षारव्योपान्वितैर्मौद्गैः कौलत्थैः सकणै रसैः ।
तथा जांगलजैः कूर्मगोधाशल्यकजैरपि ॥ १८ ॥
अनम्लं मथितं पाने मद्यान्यौपधवंति च ।

पेया—

अजाजीशठिजीवंतीकारवीपौष्कराग्निकैः ॥ १९ ॥
बिल्वमध्ययवक्षारवृक्षाम्लैर्बदरोन्मितैः ।
कृता पेयाऽऽज्यतैलाभ्यां युक्तिभृष्टा परं हिता ॥ २० ॥
शोफातिसारहृद्रोगगुल्मार्शोऽल्पाग्निमेहिनाम् ।
गुणैस्तद्वच्च पाठायाः पंचकोलेन साधिता ॥ २१ ॥

अभ्यञ्जनादि—

शैलेयकुष्ठस्थौणेयरेणुकागुरुपत्रकैः ।
श्रीवेष्टकनखस्पृक्कादेवदारुप्रियंगुभिः ॥ २२ ॥
मांसीमागधिकाधन्यधान्यव्यामकवालकैः ।
चतुर्जातकतालीसमुस्तागंधपलाशकैः ॥ २३ ॥
कुर्यादभ्यंजनं तैलं लेपं स्नानाय तूदकम् ।,
स्नानं वा निंबवर्षाभूनक्तमालार्कवारिणा ॥ २४ ॥

लेप :—

एकांगशोफे वर्षाभूकरवीरार्कशिग्रुकैः ।
विशालात्रिफलारोध्रनलिकादेवदारुभिः ॥ २५ ॥
हिंस्राकोशातकीमाद्रीवालपर्णीजयंतिभिः ।
स्थूलकाकादनीशालनाकुलीवृषपर्णिभिः ॥ २६ ॥
वृद्धच द्विहस्तिकर्णैश्च सुखोष्णैर्लेपनं हितम् ।

वातशोफचिकित्सा—

अथाऽनिलोत्थे श्वयथौ मासार्धं त्रिवृतं पिबेत् ॥ २७ ॥
तैलमैरंडजं वातविड्विबंधे तदेव तु ।
प्राग्भक्तं पयसा युक्तं रसैर्वा कारयेत्तथा ॥ २८ ॥
स्वेदाभ्यंगान्समीरघ्नान् लेपमेकांगगे पुनः ।
मातुलुंगाग्निमंथेन शुण्ठीहिंस्रामराह्वयैः ॥ २९ ॥

पित्तश्वयथुचिकित्सा—

पैत्ते तिक्तं पिबेत्सर्पिर्न्यग्रोधाद्येन वा शृतम् ।
क्षीरं तृड्दाहमोहेषु लेपाभ्यंगाश्च शीतलाः ॥ ३० ॥

क्वाथपानम्—

पटोलमूलत्रायंतीयष्ट्याह्वकटुकाभयाः ।
दारु दार्वी हिमं दंती विशाला निचुलं कणा ॥ ३१ ॥
तैः क्वाथः सघृतः पीतो हंत्यंवस्तापतृड्भ्रमान् ।
ससंनिपातवीसर्पशोफदाहविषज्वरान् ॥ ३२ ॥

कफश्वयथुचिकित्सा—

आरग्वधादिना सिद्धं तैलं श्लेष्मोद्भवे पिबेत् ।

क्षारादिप्रयोग :—

स्रोतोविबंधे मंदेऽग्नावरुचौ स्तिमिताशयः ॥ ३३ ॥

---

१ वालपर्णी मुसली । काकादनी 'कौवाठोंठो' हि० । वृषपर्णी-मूषकपर्णी ।

क्षारचूर्णमिवारिष्टमूत्रतक्राणि शीलयेत् ।

प्रलेपादि—

कृष्णापुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकतातसी: ॥ ३४ ॥
प्रलेपोन्मर्दने युञ्ज्यात्सुखोष्णा मूत्रकल्किताः ।
स्नानं मूत्राम्भसि सिद्धे कुष्ठनक्तारिचित्रकैः ॥ ३५ ॥
कुलत्थनागराभ्यां वा चंडागुरु विलेपने[1]
कालाज शृंगीमरलवस्तगंधाहयाह्वयाः[2] ॥ ३६ ॥
[3]एकैषिका च लेपः स्याच्छ्वयथावेकगात्रजे ।

दोषानुसारेणशुध्यादि—

यथादोषं यथासन्नं शुद्धिं रक्तावसेचनम् ।
कुर्वीत, मिश्रदोषे तु दोषोद्रेकबलात्क्रियाम् ॥ ३७ ॥

अजाज्यादिपानम्—

अजाजिपाठाघनपंचकोल-
व्याघ्रीरजन्य: सुखतोयपीता ।
शोफं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नन्ति भूनिंबमहौषधैश्च ॥ ३८ ॥
अमृताद्वितयं शिवाटिका[4]
सुरकाष्ठं सपुरं सगोजलम् ।
श्वयथूदरकुष्ठपांडुता-
कृमिमेहोर्ध्वकफानिलापहम् ॥ ३९ ॥

क्षतोत्थादि शोफेऽसृग् विशोधनादि—

इति निजमधिकृत्य पथ्यमुक्तं
क्षतजनिते क्षतजं विशोधनीयम् ।

---

१ चण्डा-चोरपुष्पी । २ काला नीलिनी । बस्तगन्धाजगन्धा ? एकैषिका त्रिवृता । हयाह्वया अश्वगन्धाश्वगिकार इत्यन्ये । ४ सुरकाष्ठं देवदारु । पुरं गुग्गुलु । गोजलंगोमूत्रम् ।

स्रुतिहिमघृतलेपसेकरेकै-
र्विषजनिते विषजिच्च शोफ इष्टम् ॥ ४० ॥

त्याज्यानि—

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं तिलान्नम्
गौडं पिष्टान्नं दधि सकृशरं [1]विज्जलं मद्यमम्लम् ।
धानावल्लूरंसमशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
स्वप्नं चारात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च" ॥ ४१ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

विसर्पेषुपूर्वलङ्घनादि—

"आदावेव विसर्पेषु हितं लंघनरूक्षणम् ।
रक्तावसेको वमनं विरेकः, स्नेहन न तु ॥ १ ॥

वमनम्—

प्रच्छर्दनं विसर्पघ्नं सयष्टीन्द्रयवं फलम् ।
पटोलपिप्पलीनिम्बपल्लवैर्वा समन्वितम् ॥ २ ॥

विरेचनम्—

रसेन युक्तं त्रायंत्या द्राक्षायास्त्रैफलेन वा ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं पयसा सर्पिषाऽथवा ॥ ३ ॥

---

१ विज्जलं पिच्छिलम् । वल्लूरं शुष्कमांसम् ।

योज्यं कोष्ठगते दोषे विशेषेण विशोधनम् ।

अल्पदोषेशमनप्रकारः—

अविशोध्यस्य दोषेऽल्पे शमनं चंदनोत्पलम् ॥ ४ ॥
मुस्तनिंबपटोलं वा पटोलादिकमेव वा ।
सारिवामलकोशीरमुस्तं वा क्वथितं जले ॥ ५ ॥

दुरालभादिपानम्—

दुरालभां पर्पटकं गुडूची विश्वभेषजम् ।
पाव्यं शीतकषायं वा तृष्णावीसर्पवान् पिबेत् ॥ ६ ॥

दार्व्यादिपानम्—

दार्वीपटोलकटुकामसूरत्रिफलास्तथा ।
सनिंबयष्टीत्रायंती. क्वथिता घृतमूर्च्छिता ॥ ७ ॥

शाखादुष्टे रक्तहरणम्—

शाखादुष्टे तु रुधिरे रक्तमेवादितो हरेत् ।
त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदो रक्तक्लेदाद्धि जायते ॥ ८ ॥

निरामेघृतम्—

निरामे श्लेष्मणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम् ।
घृतं तिक्तं महातिक्तं शृतं वा त्रायमाणया ॥ ९ ॥

प्रलेपसेकादि—

निर्हृतेऽस्त्रे विशुद्धेऽन्तर्दोषे त्वङ्मांससंश्रिते ।
बहिःक्रियाः प्रदेहाद्याः सद्यो वीसर्पशांतये ॥ १० ॥

वातविसर्पे प्रलेपः—

[1]शताह्वामुस्तवाराहीवंशार्तगलधान्यकम् ।
सुराह्वा कृष्णगंधा च कुष्ठं वा लेपनं चले ॥ ११ ॥

---

१ आर्तगलोनीलः सहचरः । कृष्णगन्धा-शोभांजनम् ।

पित्तविसर्पे प्रलेप :—

न्यग्रोधादिगणः पित्ते तथा पद्मोत्पलादिकम् ।

अन्यो लेप :—

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः ॥ १२ ॥
बिसग्रंथिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ।
पद्मिनीकर्दमः शीतः पिष्टं मौक्तिकमेव वा ॥ १३ ॥
शंखः प्रवाल शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ।

कफविसर्पहृत्—

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥ १४ ॥
नलमूलान्यनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ।

अन्यविधोलेप :—

धवमसाह्वखदिरदेवदारुकुरंटकम् ॥ १५ ॥
समुस्तारग्वधं लेपो वर्गो वा वरुणादिकः ।
आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मांतकोद्भवाः ॥ १६ ॥
इंद्राणीशाकं काकाह्वा शिरीषकुसुमानि च ।

सेकादिका :—

सेकव्रणाभ्यंगहविर्लेपचूर्णान् यथायथम् ॥ १७ ॥
एतैरेवौषधैः कुर्याद्वायो लेपा घृताधिका ।

कफस्थानगतेवायौलेप :—

कफस्थानगते सामे पित्तस्थानगतेऽथवा ॥ १८ ॥
आर्द्रातोष्णा हिता रुक्षा रक्तपित्ते घृतान्विताः ।
अत्यर्थशीतास्तनवस्तनुवस्त्रावरास्थिताः ॥ १९ ॥
योज्याः क्षणे क्षणेऽन्येऽन्ये मंदवीर्यास्त[1] एव च ।
संसृष्टदोषे संसृष्टमेतत्कर्म प्रशस्यते ॥ २० ॥

---

१ त एव ये पूर्वमुपयुक्ताः पुनः प्रयुज्यमानामन्दवीर्याःस्युः ।

अग्निविसर्पचिकित्सा—

शतधौतघृतेनाग्नि[1] प्रदिह्यात्केवलेन वा ।
सेचयेद्घृतमंडेन शीतेन[2] मधुकांबुना ॥ २१ ॥
गोतांभगांभोजजलैः क्षीरेणेक्षुरसेन वा ।
गात्रलेपनसेकेषु महातिक्तं परं हितम् ॥ २२ ॥

ग्रन्थिविसर्पचिकित्सा—

ग्रंथ्याख्ये रक्तपित्तघ्नं कृत्वा सम्यग्यथोदितम् ।
कफानिलघ्नं कर्मेष्टं पिंडस्वेदोपनाहनम् ॥ २३ ॥
ग्रंथिवीसर्पशूले तु तैलेनोष्णेन सेचयेत् ।
दशमूलविपक्वेन तद्वन्मूत्रैर्जलेन वा ॥ २४ ॥
सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया कृष्णगंधया ।
नक्तमालत्वचा शुष्कमूलकैः कलिनाऽथवा ॥ २५ ॥

दन्त्यादिलेपः—

दंती चित्रकमूलत्वक्स्नौधार्कपयसी गुडः ।
भल्लातकास्थि कासीसं लेपो भिद्याच्छिलामपि ॥ २६ ॥
बहिर्मार्गश्रितं ग्रंथिं किं पुनः कफसंभवम् ।
दीर्घकालस्थितं ग्रंथिमेभिर्भिद्याच्च भेषजैः ॥ २७ ॥

ग्रन्थिभेदनम्—

मूलकानां कुलत्थानां यूषैः सक्षारदाडिमैः ।
गोधूमान्नैर्यवान्नैश्च सशीधुमधुशर्करैः ॥ २८ ॥
मद्यैर्वारुणीमंडैर्मातुलुंगरसान्वितैः ।
त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पल्याः क्षौद्रसंयुतैः ॥ २९ ॥
देवदारुगुडूच्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च ।
मुस्तभल्लातसक्तूना प्रयोगैर्माक्षिकस्य च ॥ ३० ॥

---

१ अग्निमग्निवीसर्पम् । २ कलिना विभीतकेन ।

धूमैर्विरेकैः शिरसः पूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ।
तप्तायोहेमलवणपाषाणादिप्रपीडनैः ॥ ३१ ॥

दाह :—

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्विविधाभिर्बले स्थितः ।
ग्रन्थिः पाषाणकठिनो यदि नैवोपशाम्यति ॥ ३२ ॥
अथास्य दाह. क्षारेण शरैर्हेम्नाऽपि वा हितः ।
पाकिभिः पाचयित्वा तु पाटयित्वा तमुद्धरेत् ॥ ३३ ॥

रक्तमोक्ष :—

मोक्षयेद्बहुशश्चाऽस्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ।
पुनश्चापहृते रक्ते वातश्लेष्मजिदौषधम् ॥ ३४ ॥

तैलघृतप्रयोग :—

प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यां बाह्यांतर्व्रणवत्क्रिया ।
दार्वीविडंगकम्पिल्लैः सिद्धं तैलं व्रणे हितम् ॥ ३५ ॥
दूर्वास्वरससिद्धं तु कफपित्तोत्तरे घृतम् ।

रक्तहरणहेतु—

एकतः सर्वकर्माणि रक्तमोक्षणमेकतः ॥ ३६ ॥
विसर्पो ह्यसंसृष्टः सोऽस्मात्पित्तेन जायते ।
रक्तमेवाश्रयश्चास्य बहुशोऽस्रं हरेदतः ॥ ३७ ॥

विसर्पिणोघृतदान व्यवस्था—

न घृतं बहु दोषाय देयं यन्न विरेचनम् ।
तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वग्रक्तपिशितं पचेत्" ॥ ३८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

कुष्ठिनः स्नेहः —

"कुष्ठिनं स्नेहपानेन पूर्वं सर्वमुपाचरेत् ।
तत्र वातोत्तरे तैलं घृतं वा साधितं हितम् ॥ १ ॥
दशमूलामृतैरंडशार्ङ्गेष्टामेषशृंगिभि ।

तिक्तघृतम्—

पटोलनिंबकटुकादार्वीपाठादुरालभा ॥ २ ॥
पर्पटं त्रायमाणां च पलांशं पाचयेदपाम् ।
द्व्याढकेऽष्टांशशेषेण तेन कर्षोन्मितैस्तथा ॥ ३ ॥
त्रायंतीमुस्तभूनिंबकलिंगकणचंदनैः ।
सर्पिषो द्वादशपलं पचेत्तिक्तकं जयेत् ॥ ४ ॥
पित्तकुष्ठपरीसर्पपिटिकादाहतृड्भ्रमान् ।
कंडूपांड्वामयान् गंडान् दुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ ५ ॥
विस्फोटविद्रधीगुल्मशोफोन्मादमदानपि ।
हृद्रोगतिमिरव्यंगग्रहणीश्वित्रकामलाः ॥ ६ ॥
भगंदरमपस्मारमुदरं प्रदरं गरम् ।
अर्शोऽस्रपित्तमन्यांश्च
सुकृच्छ्रान् पित्तजान् गदान् ॥ ७ ॥

पित्तकुष्ठेषु महातिक्तघृतम्—

सप्तच्छदः पर्पटकः शम्याकः कटुका वचा ।
त्रिफला पद्मकं पाठा रजन्यौ सारिवे कणे ॥ ८ ॥

निंबचंदनयष्ट्याह्वविशालेंद्रयवामृताः ।
किराततिक्तकं सेव्यं[1] वृषो मूर्वा शतावरी ॥ ९ ॥
पटोलत्रिविषामुस्तात्रायंतीधन्वयासकम् ।
द्विर्जलेऽष्टगुणे सर्पिद्विगुणामलकीरसे ॥ १० ॥
सिद्धं तिक्ताख्यमहातिक्तं गुणैरभ्यधिकं मतम् ।

कफोत्तरेकुष्ठेघृतम्—

कफोत्तरे घृतं सिद्धं निंबसप्ताह्वचित्रकैः ॥ ११ ॥
कुष्ठोषणवचाशालप्रियालचतुरंगुलैः ।

सर्वकुष्ठचिकित्सा—

सर्वेषु चारुष्करजं तौवरं सार्षपं पिबेत् ॥ १२ ॥
स्नेहं घृतं वा कृमिजित्पथ्याभल्लातकैः शृतम् ।
आरग्वधस्य मूलेन शतकृत्वः शृतं घृतम् ॥ १३ ॥
पिबन्कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखदिरं जलम् ।
एभिरेव यथास्वं च स्नेहैरभ्यंजनं हितम् ॥ १४ ॥
स्निग्धस्य शोधनं योज्यं विसर्पे यदुदाहृतम् ।

शिराविमोचनादि—

ललाटहस्तपादेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ॥ १५ ॥
प्रच्छानमल्पके कुष्ठे शृंगाद्यांश्च यथायथम् ।

स्नेहैराप्यायनादि—

स्नेहैराप्याययेच्चैनं कुष्ठघ्नैरंतरांतरा ॥ १६ ॥
मुक्तरक्तविरिक्तस्य रिक्तकोष्ठस्य कुष्ठिनः ।
[2]प्रभंजनस्तथा ह्यस्य न स्याद्देहप्रभंजनः ॥ १७ ॥

---

१ सेव्यमुशीरम् । २ प्रभञ्जनोवायुः ।

वज्रकघृतम्—

वासामृतानिम्बवरापटोल-
व्याघ्रीकरंजोदककल्कपक्वम् ।
सर्पिर्विसर्पज्वरकामलास्र-
कुष्ठापहं वज्रकमामनंति ॥ १८ ॥

महावज्रकघृतम्—

त्रिफलाग्निकटुद्विकंटकारी-
कटुकाकुंभनिकुंभराजवृक्षैः ।
सवचातिविषाग्निकैः सपाठै-
पिचुभागैर्नववज्रदुग्धमुष्ट्या ॥ १९ ॥
पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभि
क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।
कुष्ठश्वित्रप्लीहवर्ध्माश्मगुल्मान्
हन्यात्कृच्छ्रांस्तन्महावज्रकाख्यम् ॥ २० ॥

ऊर्ध्वाधःशुद्धिकरंघृतम्—

दंत्याढकमपां द्रोणे पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ।
धामार्गवफले पीतं तदूर्ध्वाधो विशुद्धिकृत् ॥ २१ ॥
[1]आवर्तकीतुला द्रोणे पचेदष्टांशशेषितम् ।
तन्मूलैस्तत्र निर्यूहे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२ ॥

---

१ आवर्तकी—मेषशृङ्गी सौश्रुतकुष्ठचिकित्से "द्वीपंदग्धं चर्म मातङ्गजं वा भिन्ने-स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः" अस्य टीकायां उल्हणेन" तैलमत्र विषाणिकासिद्धं । तदुक्तम्—आवर्तकीमूलसिद्धेन तैलेनाभ्यज्यावचूर्णयेत् । गजद्वीपिचर्ममसीचूर्णेन त्रिफला लोह चूर्णेनवा" इति आवर्तकीशब्देन विषाणिकार्थप्रतिपादनात् । "आवर्तकी-विषाणाकारा रक्तपुष्पी रंगाकारा पीतकीलकयुक्ता चर्मरञ्जनकारिणी" इति वाचस्पत्याभिधानम् ।

अत्र "आवर्तकी" शब्देन दन्त्या अपि ग्रहणं सम्भाव्यते । दन्त्याः कुष्ठहरत्वात्, तथा चोक्तं राजनिघण्टौ पिप्पल्यादिगणे-अन्यादन्ती केशरुहा विषभद्रा जयारुहा । आवर्तकी वराङ्गी च जयाह्वा भद्रदन्तिका । अन्यादन्ती कटुष्णा च रेचनी क्रिमिहा परा ।शूलकुष्ठामदोषघ्नी त्वगामयविनाशिनी । अन्यापदेन यद्यपि कश्चिद्दन्तीभेदस्तथापि तस्या अप्राप्यत्वाद्दन्ती एव ग्राह्या तद्गुणत्वात् ।

सायोमला सामलका सतैला
कुष्ठानि कृच्छ्राणि निहंति लीढा ॥ ४६ ॥
पथ्यातिलगुडैः पिंडी कुष्ठं साऽरुष्करैर्जयेत् ।
गुडारुष्करजंतुघ्नसोमराजीकृताऽथवा ॥ ४७ ॥
विडंगाद्रिजतुक्षौद्रं सर्पिष्मत्खादिरं रजः ।
क्रिमिश्वित्रदद्रुघ्नं खादेन्नित्यहिताशनः ॥ ४८ ॥
सितार्तिलक्रिमिघ्नानि धात्र्ययोमलपिप्पलीः ।
लिहानः सर्वकुष्ठानि जयन्त्यतिगुरूण्यपि ॥ ४९ ॥

चूर्णम्—

मुस्तं व्योषं त्रिफला मंजिष्ठादारुपंचमूले द्वे ।
सप्तच्छदनिंबत्वक् सविशाला चित्रको मूर्वा ॥ ५० ॥
चूर्णं तर्पणभागैर्नवभिः संयोजितं समस्वंशम् ।
नित्यं कुष्ठनिबर्हणमेतत्प्रायोगिकं[1] खादन् ॥ ५१ ॥
श्वयथुं सपांडुरोगं श्वित्रं ग्रहणीप्रदोषमर्शांसि ।
वर्ध्मभगंदरपिडकाकंडूकोठापचीर्हंति ॥ ५२ ॥

तुवरास्थिशीलनम्—

रसायनप्रयोगेण तुवरास्थीनि शीलयेत् ।
भल्लातकं बाकुचिकां वह्निमूलं शिलाह्वयम् ॥ ५३ ॥

अन्तर्दोषेजितेलेपादि :—

इति दोषे विजितेऽन्तस्
त्वक्स्थे शमनं बहिः प्रलेपादि हितम् ।
तीक्ष्णालेपोत्क्लिष्टं
कुष्ठं हि विवृद्धिमेति मलिने देहे ॥ ५४ ॥
स्थिरकठिनमंडलानां कुष्ठानां पोट्टलैर्हितः स्वेदः ।
स्विन्नोत्सन्नं कुष्ठं शस्त्रैर्लिखितं प्रलेपनैर्लिंपेत् ॥ ५५ ॥

---

[1] प्रायोगिकं नित्यमुपयोज्यम् ।

येषु न शस्त्रं क्रमते स्पर्शेन्द्रियनाशनेषु कुष्ठेषु ।
तेषु निपात्यः क्षारो रक्तं दोषं च विस्राव्यम् ॥ ५६ ॥
लेपोऽतिकठिने परुषे सुप्ते कुष्ठे स्थिरे पुराणे च ।
पीतागदस्य कार्यो विषैः समन्त्रोऽगदैश्चानु ॥ ५७ ॥
स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदनकंडुलानि कुष्ठानि ।
घृष्टानि शुष्कगोमयफेनकशस्त्रैः प्रदेह्यानि ॥ ५८ ॥
मुस्ता त्रिफला मदनं करञ्ज आरग्वधकलिंगयवाः ।
सप्ताह्वकुष्ठफलिनीदार्व्यः सिद्धार्थकं स्नानम् ॥ ५९ ॥
एष कषायो वमनं विरेचनं वर्णकरस्तथोद्धर्षः ।
त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रबोधनः पाण्डुरोगघ्न ॥ ६० ॥
करवीरनिंबकुटजाच्छम्याकाच्चित्रकाच्च मूलानाम् ।
मूत्रे दर्वीलेपी क्वाथो लेपेन कुष्ठघ्नः ॥ ६१ ॥
श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरंजात्फलं त्वचो दार्व्याः ।
सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ६२ ॥
शैरीषीत्वक्पुष्पं कार्पास्या राजवृक्षपत्राणि ।
पिष्टा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः ॥ ६३ ॥

व्योषसर्षपनिशागृहधूम-
यावशूकपटुचित्रककुष्ठैः ।
कोलमात्रगुटिकार्धविपाशाः
श्वित्रकुष्ठहरणो वरलेपः ॥ ६४ ॥
निंबं हरिद्रे सुरसं पटोलं
कुष्ठाश्वगंधे सुरदारु शिग्रुः ।
ससर्षपं तुंबरु धान्यवन्यं
चंडाश्वचूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ ६५ ॥
तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं
तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत ।
तेनास्य कंडूपिडिकाः सकोठाः
कुष्ठानि शोफाश्च शमं व्रजंति ॥ ६६ ॥

[1]मुस्तामृतासंगकटंकटेरी-
कासीसकंपिल्लकुष्ठरोध्राः ।
गंधोपलः सर्जरसो विडंगं
मनःशिलाले करवीरकत्वक् ॥ ६७ ॥

तैलाक्तगात्रस्य कृतानि चूर्णा-
न्येतानि दद्यादवचूर्णनार्थम् ।
दद्रुः सकंडूः किटिभानि पामा
विचर्चिका चेति तथा न संति ॥ ६८ ॥

[3]स्नुग्गंडे सर्षपात्कल्कः कुकूलानलपाचितः ।
लेपाद्विचर्चिकां हंति रागवेग इव त्रपाम् ॥ ६९ ॥

मनःशिलाले मरिचानि तैल-
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।
तथा करंजप्रपुनाटबीजं
कुष्ठान्वितं गोसलिलेन पिष्टम् ॥ ७० ॥

गुग्गुलुमरिचविडंगैः सर्षपकासीससर्जरसमुस्तैः ।
श्रीवेष्टकालगंधर्मनःशिलाकुष्ठकंपिल्लैः ॥ ७१ ॥
उभयहरिद्रासहितैश्चाक्रिकतैलेन मिश्रितैरेभिः ।
दिनकरकराभितप्तैः कुष्ठं घृष्टं च नष्टं च ॥ ७२ ॥

मरिचं तमालपत्रं कुष्ठं समनःशिलं सकासीसम् ।
तैलेन युक्तमुषितं सप्ताहं भाजने ताम्रे ॥ ७३ ॥
तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहाद्धर्मसेविनोऽपैति ।
मासान्नवं किलासं स्नानेन विना विशुद्धस्य ॥ ७४ ॥

---

१ वन्यं कैवर्तमुस्तकम् । २ अमृतासङ्गं तुत्थकम्, अमृतागुडूची, सङ्गस्तुत्थकमिति वा । कटंकटेरी दारुहरिद्रा । गन्धोपलो गन्धकः आलंहरितालम् ।

३ स्नुग्गण्डे स्नुहीकाण्डे । प्रपुनाटश्चक्रमर्दकः । श्रीवेष्टकं, "गन्धाविरोजा" इतिलोके । चाक्रिकं तैलं सद्यः पीडितं चक्रस्यमेवोष्णं तैलम् ।

[1]मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते ।
सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यंगात्सिध्मनाशनम् ॥ ७५ ॥
[2]वायसजंघामूलं वमनीपत्राणि मूलकाद्बीजम् ।
तक्रेण भौमवारे लेपः सिध्मापहः सिद्धः ॥ ७६ ॥
जीवंतीमंजिष्ठादार्वीकंपिल्लकं पयस्तुत्थम् ।
एष घृततैलपाकः सिद्धः सिद्धे च सर्जरसः ॥ ७७ ॥
देयः समधूच्छिष्टो विपादिका तेन नश्यति ह्यक्ता ।
चर्मैककुष्ठकिटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलसकं च ॥ ७८ ॥

वज्रकसंज्ञंतैलम्—

मूलं सप्ताह्वारवक् शिरोपाश्वमारा-
दर्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोतनिवात् ।
बीजं कारंजं सार्षपं प्रापुनाटं
[3]श्रेष्टा जंतुघ्नं त्र्यूषणं द्वे हरिद्रे ॥ ७९ ॥
तिलतैलं साधितं तैः समूत्रै-
स्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम् ।
अभ्यंगेन श्लेष्मवातोद्भवानां
नाशायालं वज्रकं वज्रतुल्यम् ॥ ८० ॥

महावज्रकतैलम्—

एरंडतार्क्ष्यघननीपकदंबभार्गी-
कंपिल्लवेल्लफलिनीसुरवारुणीभिः ।
निर्गुंड्यरुष्करमुराह्वसुवर्णदुग्धा-
श्रीवेष्टगुग्गुलुशिलापद्रुतालविश्वैः ॥ ८१ ॥

---

१ मयूरकोऽपामार्गः । ज्योतिष्मती "माल कांगुनी" इतिलोके । २ वायस-जंघा-काकजंघा । वमनीय पत्राणि-कार्पासिकापत्राणि । तथा चोक्तं योग-रत्नाकरे—"कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजङ्घाकृतो मूलकबीजयुक्तः तक्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशम्" । ३ श्रेष्ठा त्रिफला । जन्तुघ्नं विडङ्गम् ।

तुल्यस्नुगर्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम् ।
अतिविषमितवचकगुणं शिवत्रार्थोग्रविपमालाक्ष्मम् ॥ ८२ ॥
कुष्ठारग्वधारभृङ्गार्कमूत्रस्नुकृक्षीरसैंधवैः ।
तैलं सिद्धं विपाधापमम्यंगात्कुष्टजित्परम् ॥ ८३ ॥
सिद्धं सिवथफनिद्गूरपुरतुल्यकताक्ष्यजैः ।
कच्छूं विचर्चिकां पाम्यां कटुतैलं नियच्छति ॥ ८४ ॥
लाक्षाव्योषं प्रापुनाटं च बीजं
सश्रीवेष्टं कुष्टसिद्धार्थकाभ्यं ।
तक्रोन्मिश्रः स्याद्धरिद्रा च लेपो
दद्रूपुक्तो मूलकीत्थं च बीजम् ॥ ८५ ॥

षट् लेपा :—

चित्रकसोभांजनको गुडूच्यपामार्गदेवदारूणि ।
खदिरो धवश्च लेपः श्यामा दंती द्रवंती च ॥ ८६ ॥
लाक्षारसाजनैला पुनर्नवा चेति कुष्ठिनां लेपाः ।
दधिमंडयुताः पादैः षट् प्रोक्ता मारुतकफघ्नाः ॥ ८७ ॥
[1]जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचंदनमृणालानि ।
भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे ॥ ८८ ॥

घृतविशेषैरभ्यङ्गः :—

तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगो दह्यमानकुष्ठेषु ।
तैलैश्चंदनमधुकप्रपौंडरीकोत्पलयुतैश्च ॥ ८९ ॥
क्लेदे प्रपतति चांगे दाहे विस्फोटके च चर्मदले ।
शीताः प्रदेहसेका व्यधनविरेकौ घृतं तिक्तम् ॥ ९० ॥
खदिरवृषनिंबकुटजाः
श्रेष्ठा कृमिजित्पटोलमधुपर्ण्यः ।
अंतर्बहिःप्रयुक्ताः
कृमिकुष्ठनुदः सगोमूत्राः ॥ ९१ ॥

---

१ जलं सुगन्धबालकम् । वाप्यं कुष्ठम् । लोहमगुरु ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम् ॥ ९२ ॥

लेपानां सिद्धिकरणम्—

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यते निर्हृतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ९३ ॥

दोषे हृतेऽपनीते रक्ते बाह्यांतरे कृते शमने ।
स्नेहे च कालयुक्ते न कुष्ठमतिवर्तते साध्यम् ॥ ९४ ॥

बहुदोषः कुष्ठी संशोध्यः—

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।
दोषे ह्यतिमात्रहृते वायुर्हन्यादबलमाशु ॥ ९५ ॥

वमनादिकालः—

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेया-
न्मासान्मासाच्छोधनान्यप्यधस्तात् ।
शुद्धिर्मूर्ध्नि स्यात्त्रिरात्रात्त्रिरात्रात्
षष्ठे षष्ठे मास्यसृङ्मोक्षणानि ॥ ९६ ॥

कुष्ठिनांसम्पूर्णदोषनिर्हरणं कार्यम्—

यो दुर्वांतो दुर्विरिक्तोऽथवा स्यात्
कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्यतेऽसौ ।
निःसंदेहं यात्यसाध्यत्वमेव
तस्मात्कृत्स्नान्निर्हरेदस्य दोषान् ॥ ९७ ॥

व्रतादीनिकुष्ठनाशकानि—

"[1]व्रतदमयमसेवात्यागशीलाभियोगो
द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री ।
शिवशिवसुतताराभास्कराराधनानि
प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयंति" ॥ ९८ ॥

---

१ व्रतं नियमः कृच्छ्रचान्द्रायणादि । दमोबाह्येन्द्रियजयः । यमः—अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः । सेवा दीनसेवा । त्यागो दानम् । शिवसुतोगणेशः ।

विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः श्वित्रकृमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

श्वित्रेशीघ्रं यत्नोविधेय :—

"कुष्ठादपि बीभत्सं यच्छीघ्रतरं च यात्यसाध्यत्वम् ।
श्वित्रमतस्तच्छान्त्यै यतेत दीप्ते यथा भवने ॥ १ ॥

संशोधनादि—

संशोधनं विशेषात्प्रयोजयेत्पूर्वमेव देहस्य ।
श्वित्रे स्रंसनमग्र्यं [1]मलयूरस इष्यते सगुडः ॥ २ ॥
तं पीत्वाऽभ्यक्ततनुर्यथाबलं सूर्यपादसंतापम् ।
सेवेत विरिक्तस्त्र्यहं पिपासुः पिबेत्पेयाम् ॥ ३ ॥

स्फोटभेदनादि—

श्वित्रेऽङ्गे ये स्फोटा जायंते कंटकेन तान् भिद्यात् ।
स्फोटेषु निःसृतेषु प्रातः प्रातः पिबेत् त्रिदिनम् ॥ ४ ॥
मलयूमसनं प्रियंगूं शतपुष्पां चांभसा समुत्क्वाथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथाबलं फाणितोपेतम् ॥ ५ ॥

कल्कपानादि—

[2]फल्गुवदावृक्षवल्कलनिर्यूहेणेंदुराजिकाकल्कम् ।
पीत्वोऽष्णस्थितस्य जाते स्फोटे तक्रेण भोजनं निर्लवणम् ॥६॥

---

१ मलयूः 'कठूमर' अथवा 'वकुची' । २ फल्गुः 'कठूमर' हि०, इन्दुराजी 'वकुची' ।

गोमूत्रपानम्—

गव्यं मूत्रं चित्रकव्योषयुक्तं
सर्पि:कुंभे स्थापितं क्षौद्रमिश्रम् ।
पक्षादूर्ध्वं श्वित्रिभिः पेयमेतत्
कार्यं चास्मै कुष्ठदृष्टं विधानम् ॥ ७ ॥

भृंगराजभक्षणम्—

मार्कवमथवा खादेद् भृष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम् ।
बीजकशृतं च दुग्धं तदनु पिबेच्छ्वित्रनाशाय ॥ ८ ॥

लेप :—

पूतीकार्कव्याधिघातस्नुहीना[1]
मूत्रे पिष्टाः पल्लवा जातिजाश्च ।
घ्नंत्यालेपाच्छ्वित्रदुर्नामदद्रू-
पामाकुष्ठान्दुष्टनाडीव्रणांश्च ॥ ९ ॥

दग्धचर्म लेप :—

[2]द्वैपं दग्धं चर्म मातंगजं वा
श्वित्रे लेपस्तैलयुक्तो वरिष्ठः ।
पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन
क्षारेणाक्तः श्वित्रमेकोऽपि हन्ति ॥ १० ॥

भल्लातक प्रयोग :—

रात्रौ गोमूत्रे वासितान् जर्जरांगा-
नह्नि च्छायायां शोषयेत्स्फोटहेतून्[3] ।

---

१ पूतीकः करंजः । व्याधिघातः "अमलतास" इति लोके । जातिः 'चमेली' हि० । २ द्वैपं चर्म द्वीपी विशव्याघ्रः "चीता" । ३ स्फोटहेतून् भल्लातकान् ।

एवं चारांस्त्रीस्त्वैस्ततः श्लक्ष्णपिष्टैः
स्नुह्या क्षीरेण श्वित्रनाशाय लेपः ॥ ११ ॥

लेप :—

अक्षतैलकृतो लेपः कृष्णसर्पोद्भवा मषी ।
शिखिपित्तं तथा दग्धं ह्रीवेरं वा तदाप्लुतम् ॥ १२ ॥
कुडवो वल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ।
मूत्रेण गवा पिष्टः सवर्णकरणं परं श्वित्रे ॥ १३ ॥

वाकुची लेप :—

क्षारे सुदग्धे गजलिङ्जे च[1]
गजस्य मूत्रेण परिस्रुते च ।
द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजानाम् ॥ १४ ॥
श्वित्रं जमेत्स्निग्धकणतां गतेन
तेन प्रलिप्तन्बहुशः प्रघृष्टम् ।
कुष्ठं मषी वा तिलकालक वा
यद्वा व्रणे स्यादधिमांसजातम् ॥ १५ ॥

भल्लातकादिलेपः —

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं
गुञ्जाफलत्र्यूषणशंखचूर्णम् ।
तुल्यं सकुष्ठं लवणानि पंच
क्षारद्वयं लागलिकां च पक्त्वा ॥ १६ ॥
स्नुगर्कदुग्धे घनमायसस्थं
शलाकया तद्विदधीत लेपम् ।
कुष्ठे किलासे तिलकालकेषु ।
मांसेषु दुर्नामसु चर्मकीले ॥ १७ ॥

---

१ गजलिण्डो गजपुरीषम् ।

शुद्धया शोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्च सक्तूनाम् ।
श्वित्रं कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीणपापस्य ॥ १८ ॥

इति श्वित्रचिकित्सा ।

क्रिमिचिकित्सा—

बस्तियोजनादि—

स्निग्धस्विन्ने गुडक्षीरमत्स्याद्यैः कृमिणोदरे ।
उत्क्लेशितक्रिमिकफे शर्वरीं तां सुखोषिते ॥ १९ ॥
सुरसादिगणं मूत्रे क्वाथयित्वार्धवारिणि ।
तं कषायं कणागाल्कृमिजित्कल्कयोजितम् ॥ २० ॥
सतैलस्वर्जिकाक्षारं युञ्ज्याद्बस्ति ततोऽहनि ।
तस्मिन्नेव निरूढं तं पाययेत विरेचनम् ॥ २१ ॥
त्रिवृत्कल्कं फलकणाकषायालोडितं ततः ।
ऊर्ध्वाधः शोधिते कुर्यात्पञ्चकोलयुतं क्रमम् ॥ २२ ॥
कटुतिक्तकषायाणां कषायैः परिषेचनम् ।
काले विडङ्गतैलेन तलस्तमनुवासयेत् ॥ २३ ॥

शिरोगत क्रिमिचिकित्सा—

शिरोरोगनिषेधोक्तमाचरेन्मूर्धगेष्वनु ।
उद्रिक्ततिक्तकटुकमल्पस्नेहं च भोजनम् ॥ २४ ॥

पेयापानम्—

विडङ्गकृष्णामरिचपिप्पलीमूलशिग्रुभिः ।
पिबेत्सस्वर्जिकाक्षारं यवागूं तक्रसाधिताम् ॥ २५ ॥

शिरीषादि प्रयोग :

रसं शिरीषकिणिहीपारिभद्रककेंबुकात् ।
पालाशबीजपत्तूरपूतिकाद्वा पृथक् पिबेत् ॥ २६ ॥
सक्षौद्रं सुरसादीन्वा लिह्यात्क्षौद्रयुतान् पृथक् ।

अश्वविट् प्रयोग :—

शतकृत्वोश्वविट्चूर्णं विडंगक्वाथभावितम् ॥ २७ ॥
कृमिमान्मधुना लिह्याद्भावितं वा वरारसैः ।

शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णनस्यम्—

शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णं प्रधमनं च तत् ॥ २८ ॥

पूपलिकादिभक्षणम्—

आखुकर्णीकिसलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।
पक्त्वा पूपलिकां खादेद्धान्याम्लं च पिबेदनु ॥ २९ ॥
सपंचकोलऌवणमसांद्रं तक्रमेव वा ।
नीपमार्कवनिर्गुडीपल्लवेष्वप्ययं विधिः ॥ ३० ॥
विडंगचूर्णमिश्रैर्वा पिष्टैर्भक्ष्यान् प्रकल्पयेत् ।

तैलयोजना :—

विडंगतंडुलैर्युक्तमर्धांशैरातपस्थितम् ॥ ३१ ॥
दिनमारुष्करं तैलं पाने वस्तौ च योजयेत् ।
सुराह्वसरलस्नेहं पृथगेवं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
पुरीषजेषु सुतरां दद्याद्वस्तिविरेचने ।
शिरोविरेकं वमनं शमनं कफजन्मसु ॥ ३३ ॥
रक्तजानां प्रतीकारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सितात् ।
इंद्रलुप्तविधिश्चात्र विधेयो रोमभोजिषु ॥ ३४ ॥

त्याज्यपदार्थाः—

क्षीराणि मांसानि घृतं गुडं च
दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।
समामतोम्लान्मधुरान् रसांश्च
कृमीन् जिहासुः परिवर्जयेच्च" ॥ ३५ ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

वायोरादौस्नेहोपचारादि—

"केवलं निरुपस्तंभमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।
वायु सर्पिर्वसामज्जातैलपानैर्नरं ततः ॥ १ ॥
स्नेहाक्रांतं समाश्वास्य पयोभि. स्नेहयेत्पुनः ।
यूषैर्ग्राम्योदकानूपरसैर्वा स्नेहसंयुतैः ॥ २ ॥
पायसैः कृसरैः साम्ललवणैः सानुवासनैः ।
वातघ्नैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धैः स्नेहयेत्ततः ॥ ३ ॥
स्वभ्यक्तं स्नेहसंयुक्तैः संकराद्यैः पुनः पुनः ।

स्वेदगुणाः—

स्नेहाक्तं स्विन्नमंगं तु वक्रं स्तब्धं सवेदनम् ॥ ४ ॥
यथेष्टमानमयितुं सुखमेव हि शक्यते ।
शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः ॥ ५ ॥
शक्यं कर्मण्यता नेतुं किमु गात्राणि जीवताम् ।
हर्षतोदरुगायामशोफस्तंभग्रहादयः ॥ ६ ॥

स्विन्नस्याशु प्रशाम्यंति मार्दवं चोपजायते ।
स्नेहैश्च धातून् संशुष्कान् पुष्णात्याशु प्रयोजितः ॥ ७ ॥
बलमग्निबलं पुष्टिं प्राणं चाऽस्याभिवर्धयेत् ।
असकृत्तं पुनः स्नेहैः स्वेदैश्च प्रतिपादयेत् ॥ ८ ॥
तथा स्नेहमृदौ कोष्ठे न तिष्ठंत्यनिलामयाः ।

शोधनम्—

यद्येतेन सदोपस्वारकर्मणा न प्रशाम्यति ॥ ९ ॥
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्भेषजैस्तं विशोधयेत् ।

घृतप्रयोग :—

घृतं तिल्वकसिद्धं वा मातलासिद्धमेव वा ॥ १० ॥
पयसैरंडतैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम् ।

मारुतानुलोमनेहेतु :—

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हि मलश्चितः ॥ ११ ॥
स्रोतोरुद्ध्वाऽनिलं रुंध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ।

निरूह प्रयोग :—

दुर्बलो योऽविरेच्यः स्यात्तं निरूहैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥
दीपनैः पाचनीयैर्वा भोज्यैर्वा [1]तद्युतैर्नरम् ।
संशुद्धस्योत्थिते चाऽग्नौ स्नेहस्वेदौ पुनर्हितौ ॥ १३ ॥

अङ्गगतवायुचिकित्सा—

आमाशयगते वायौ वमितप्रतिभोजिते ।
सुखांबुना षट्चरणं वचादि वा प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥
मधुरिनेऽग्नौ परतो विधिः केवलवातिकः ।
मत्स्याशाभिप्रदेशस्थे सिद्धान्बिल्वशलाटुभिः ॥ १५ ॥
बस्तिकर्म त्वधोनाभेः शस्यते चा[2]ऽवपीडकः ।
कोष्ठगे क्षारचूर्णाद्या हिताः पाचनदीपनाः ॥ १६ ॥

---

१ तद्युतैं दीपनीयपाचनीययुतैः । २ अवपीडकः स्नेहः भुक्तस्योपरिसेव्यः ।

हृत्स्थे पयः स्थिरासिद्धम्
शिरोवस्तिः शिरोगते ।
स्नैहिकं नावनं धूमः श्रोत्रादीनां च तर्पणम् ॥ १७ ॥
स्वेदाभ्यंगानि या तानि हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ।
शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ १८ ॥
विरेको मांसमेदस्थे निरूहाः शमनानि च ।
बाह्याभ्यंतरतः स्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् ॥ १९ ॥
प्रहर्षोऽन्नं च शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ।
विबद्धमार्गं दृष्ट्वा तु शुक्रं दद्याद्विरेचनम् ॥ २० ॥
विरिक्तं प्रतिभुक्तं च पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम् ।
गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां च विशुष्यताम् ॥ २१ ॥
सिताकाश्मर्यमधुकैः सिद्धमुत्थापने पयः ।
स्नावसंधिशिराप्राप्ते स्नेहदाहोपनाहनम् ॥ २२ ॥
तैलं संकुचितेऽभ्यंगो माषसैंधवसाधितम् ।
आगारधूमलवणतैललेपः स्रुतेऽसृजि ॥ २३ ॥
सुप्तेऽङ्गे वेष्टयुक्ते तु कर्तव्यमुपनाहनम् ।

अपतानक चिकित्सा—

अथाऽपतानकेनार्तमस्रस्ताक्षमवेपनम् ॥ २४ ॥
अस्तब्धमेढ्रमस्वेदं बहिरायामवर्जितम् ।
अखट्वाघातिनं चैनं त्वरितं समुपाचरेत् ॥ २५ ॥
तत्र प्रागेव सुस्निग्धस्विन्नाङ्गे तीक्ष्णनावनम् ।
स्रोतोविशुद्धये युंज्यादच्छपानं ततो घृतम् ॥ २६ ॥
विदारीशिग्रुणक्वाथदधिक्षीररसैः शृतम् ।
नाऽतिमात्रं तथा वायुर्व्याप्नोति सहसैव वा ॥ २७ ॥
कुलत्थयवकोलानि भद्रदार्वादिकं गणम् ।
निःक्वाथ्यानूपमांसं च तेनाम्लैः पयसाऽपि च ॥ २८ ॥
स्वादुस्कंधप्रतीवापं महास्नेहं विपाचयेत् ।
सेकाभ्यंगावगाहान्नपानस्यानुवासनैः ॥ २९ ॥

स हंति वातं, ते ते च स्नेहस्वेदाः सुयोजिताः ।
वेगांतरेषु मूर्धानमसकृच्चास्य रेचयेत् ॥ ३० ॥
अवपीडैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैः श्लेष्मनिबर्हणैः ।
श्वसनासु विमुक्तासु तथा संज्ञां स विंदति ॥
सौवर्चलाभयाव्योषसिद्धं सर्पिश्चलेऽधिके ॥ ३१ ॥

सिद्धघृतम्—

पलाष्टकं बिल्वशतो वरायाः
प्रस्थं पलांशं गुरुपंचमूलम् ।
सैरंडमिश्रं हिंत्रिवृतं घटेऽस्मिं
पक्त्वा पचेत्पादशृतेन तेन ॥ ३२ ॥
दध्नः पात्रे यावशूकाग्निबिल्वैः
सर्पिःप्रस्थं हंति तत्सेव्यमानम् ।
दुष्टान्वातानेकसर्वांगसंस्थान्
योनिव्यापद्गुल्मवर्ध्मोदरं च ॥ ३३ ॥
विधिस्तिल्वकवज्ज्ञेयो शम्याकाशोकयोरपि ।
चिकित्सितमिदं कुर्याच्छुद्धवातापतानके ॥ ३४ ॥
संसृष्टदोषे संसृष्टं,
चूर्णयित्वा कफान्विते ।
तुंबुरूण्यभयाहिंगुपौष्करं लवणत्रयम् ॥ ३५ ॥
यवक्वाथाम्बुना पेयं हृत्पार्श्वार्त्यपतंत्रके ।
हिंगु सौवर्चलं शुण्ठी दाडिमं साम्लवेतसम् ॥ ३६ ॥
पिबेद्वा श्लेष्मपवनहृद्रोगोक्तं च शस्यते ।

आयामचिकित्सा—

आयामयोरर्दितवद्बाह्याभ्यंतरयोः क्रिया ॥ ३७ ॥
तैलद्रोण्यां च शयनमांतरोऽत्र सुदुस्तरः ।

असाध्यत्वम्—

विवर्णदंतवदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः ॥ ३८ ॥

प्रस्विद्यंश्च धनुष्कंभी दशरात्रं न जीवति ।
वेगेष्वतोऽन्यथा जीवेन्मदेषु विनतो जडः ॥ ३९ ॥
खंजः कुणिः पक्षहतः पंगुलो विकलोऽथवा ।
हनुस्रंसे हनू स्निग्धस्विन्नौ स्वस्थानमानयेत् ॥ ४० ॥
उन्नामयेच्च कुशलश्चिबुकं विवृते मुखे ।
नामयेत्संवृते शेषमेकायामवदाचरेत् ॥ ४१ ॥
जिह्वास्तंभे यथावस्थं कार्यं वातचिकित्सितम् ।
अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं श्रोत्राक्षितर्पणम् ॥ ४२ ॥
सशोफे वमनं दाहरागयुक्ते सिराव्यध ।
स्वेदन स्नेहसंयुक्त पक्षाघाते विरेचनम् ॥ ४३ ॥
अवबाहौ हितं नस्य स्नेहश्चोत्तरभक्तिक. ।
ऊरुस्तंभे न च स्नेहो न च संशोधनं हितम् ॥ ४४ ॥
श्लेष्माममेदोबाहुल्याद्युक्त्या तत्क्षपणान्यतः ।
कुर्याद्रूक्षोपचारश्च यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ४५ ॥
शाकैरलवणै. शस्ताः किंचित्तैलैर्जलैः शृतैः ।
जागलैरघृतैर्मांसैर्मध्वंभोरिष्टपायिनः ॥ ४६ ॥
वत्सकादिर्हरिद्रादिर्वचादिर्वा ससैंधवः ।
आमवाते सुखांभोभिः पेयः षट्चरणोऽथवा ॥ ४७ ॥
लिह्यात्क्षौद्रेण वा श्रेष्ठाचव्यतिक्ताकणाघनान् ।
कल्कं समधु वा चव्यपथ्याग्निसुरदारुजम् ॥ ४८ ॥
मूत्रैर्वा क्षालयेत्पथ्या गुग्गुलु गिरिसंभवम् ।
व्योषाग्निमुस्तत्रिफलाविडंगैर्गुग्गुलु समम् ॥ ४९ ॥
खादन् सर्वान् जयेद्व्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ।

एवंवायोःशमनादि—

शाम्यत्येवं कफाक्रांतः समेदस्कः प्रभंजनः ॥ ५० ॥
क्षारमूत्रान्वितान् स्वेदान् सेकानुद्वर्तनानि च ।
कुर्याद्दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करंजफलसर्षपैः ॥ ५१ ॥

मूलैर्वाप्यर्कतर्कारीनिवजैः *मधुराह्वयैः ।*
सक्षौद्रसर्षपापक्वलोष्टवल्मीकमृत्तिकैः ॥ ५२ ॥

ऊरुस्तम्भिनो व्यायामादि—

कफक्षयार्थं व्यायामे सह्ये चैनं प्रवर्तयेत् ।
स्थलान्युल्लङ्घयेन्नारीः शक्तितः परिशीलयेत् ॥ ५३ ॥
स्थिरतोयं सरः क्षेमं प्रतिस्रोतो नदीं तरेत् ।
श्लेष्ममेदःक्षये चाऽत्र स्नेहादीनवचारयेत् ॥ ५४ ॥

शेषवातचिकित्सा—

स्थानं दूष्यादि चालोच्य कार्या शेषेष्वपि क्रिया ।

क्वाथः—

सहचरं सुरदारु सनागरं
क्वथितमंभसि तैलविमिश्रितम् ।
पवनपीडितदेहगतिः पिबेद्
द्रुतविलंबितगो भवतीच्छया ॥ ५५ ॥

रास्नादिघृतम्—

रास्नामहौषधद्वीपिपिप्पलीशठिपौष्करम् ।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥ ५६ ॥

पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु :—

निंबामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान् पृथक् दश पलान् विपचेद्घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेषितरसेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ५७ ॥
[1]पाठाविडंगसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।

---

१ गजोपकुल्या गजपिप्पली । वरया त्रिफलया । एतद्वृतं चक्रदत्तेनु कुष्ठ चिकित्सिते पठितम् ।

तेजोवतीमरिचवरसकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ ५८ ॥
मंजिष्ठयातिविषया वरया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पंचसंख्यैः ।
तत्सेवितं प्रथमति प्रबलं समीरं
संध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ ५९ ॥
नाडीव्रणार्बुदभगंदरगंडमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोफ-
हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ ६० ॥

घृतनस्यम्—

बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमंडं विपाचयेत् ।
तस्य शुक्तिः प्रकुंचो वा नस्यं वाते शिरोगते ॥ ६१ ॥
तद्वस्थिसिद्धा वसा नक्रमत्स्यकूर्मचुलूकजा ।
विशेषेण प्रयोक्तव्या केवले मातरिश्वनि ॥ ६२ ॥

तैलपानम्—

[1]जीर्णं पिण्याकं पंचमूलं पृथक्च
क्वाथ्यं क्वाथाभ्यामेकतस्तैलमाभ्याम् ।
क्षीराद्द्द्याशं पाचयेत्तेन पानाद्
वाता नश्येयुः श्लेष्मयुक्ता विशेषात् ॥ ६३ ॥

प्रसारिणी तैलम्—

प्रसारिणी तुलाक्वाथे तैलप्रस्थं पयः समम् ।
द्विमेदामिशिमंजिष्ठाकुष्ठरास्नाकुचदनैः ॥ ६४ ॥
जीवकर्षभकाकोलीयुगुलामरदारुभिः ।
कल्कितैर्विपचेत्सर्वमारुतामयनाशनम् ॥ ६५ ॥

---

१ पञ्चमूलं ह्रस्वम् ।

सहाचर तैलम् —

समूलशाखस्य सहाचरस्य
[1]तुलां समेतां दशमूलतश्च ।
पलानि पंचाशदभीरुतश्च
पादावशेषं विपचेद्वहेऽपाम् ॥ ६६ ॥
तत्र मेष्यनखकुष्ठहिमैला-
स्पृक्प्रियंगुनलिकांबुशिलाजैः ।
लोहितानलदलोहसुराह्वैः
कोपनामिशितुरुष्कनतैश्च ॥ ६७ ॥
तुल्यं क्षीरं पालिकैस्तैलपात्रं
सिद्धं कृच्छ्रान्मीलितं हन्ति वातान् ।
कम्पाक्षेपस्तंभशोषादियुक्तान्
गुल्मोन्मादौ पीनसं योनिरोगान् ॥ ६८ ॥

द्वितीयः सहाचर तैलम् —

सहाचरतुलायास्तु रसे तैलाढकं पचेत् ।
मूलकल्काद्दशपलं पयो दत्वा चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥
अथवा नतपङ्कंयास्थिराकुष्ठसुराह्वयान् ।
सैलानलदशैलेयशताह्वारक्तचंदनान् ॥ ७० ॥
सिद्धेऽस्मिन् शर्कराचूर्णादष्टादशपलं क्षिपेत् ।
भेडस्य संमतं तैलं तत्कृच्छ्राननिलामयान् ॥ ७१ ॥
वातकुंडलिकोन्मादगुल्मवर्ध्मादिकान् जयेत् ।

बलातैलम्—

बलाशतं छिन्नरुहापादं रास्नाष्टभागिकम् ॥ ७२ ॥
जलाढकशते पक्त्वा शतभागस्थिते रसे ।
दधिमस्त्विक्षुनिर्यासशुक्तैस्तैलाढकं समैः ॥ ७३ ॥

---

१ दशमूलस्यापि तुलाम् । अभीरुः शतावरी । वहे चतुर्द्रोणे । हिमं चन्दनम् तुरुष्कं केदारम् । कोपना चण्डा ।

पचेन्माजपयोधश्च कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
शठीसरलदार्वेलामंजिष्ठागुरुचंदनैः ॥ ७४ ॥
पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णीहरेणुभिः ।
यष्टयाह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः ॥ ७५ ॥
पलाशरसकस्तूरीनीलिकाजातिकोशकैः ।
स्पृक्कांकुंकुमशैलेयजातिकाकट्फलांबुभिः ॥ ७६ ॥
त्वक्कुंदरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः ।
लवगनखककोलकुष्ठमांसीप्रियंगुभिः ॥ ७७ ॥
स्थौणेयतगरध्यामवचामदनकप्लवैः ।
सनागकेसरैः सिद्धे दद्याच्चात्रावतारिते ॥ ७८ ॥
पत्रकल्कं ततः पूतं विधिना तत्प्रयोजितम् ।
कासश्वासज्वरच्छर्दिमूर्छागुल्मक्षतक्षयान् ॥ ७९ ॥
प्लीहशोषमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।
बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिविनाशनम् ॥ ८० ॥

तैल प्रयोग काला :—

पाने नस्येऽन्वासनेऽभ्यंजने च
स्नेहाः काले सम्यगेते प्रयुक्ताः ।
दुष्टान्वातानाशु शांतिं नयेयु-
र्वंध्या नारीः पुत्रभाजश्च कुर्युः ॥ ८१ ॥

कफादेर्बस्तिभिर्जय :—

अंगग्लानौ तु न साध्यं रूक्षं वातोत्तरं च यत् ॥ ३ ॥
स्नेहस्वेदैर्द्रुतः श्लेष्मा यदा पक्वाशये स्थितः ।
पित्तं वा दर्शयेद्रूपं बस्तिभिस्तं विनिर्जयेत्" ॥ ८२ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

वातशोणितिनः शोणितहरणादि :—

"वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ।
अल्पाल्पं पालयन् वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ १ ॥
रुगागतोददाहेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ।
शृंगतुंबैश्चिमिचिमाकंडूरुग्दूयनान्वितम् ॥ २ ॥

शोणितहरण निषेधः—

प्रच्छानेन सिराभिर्वा देशाद्देशांतरं व्रजेत् ।
अङ्गग्लानौ तु न स्राव्यं रूक्ष वातोत्तरं च यत् ॥ ३ ॥
गंभीरं श्वयथुं स्तंभं कंपस्नायुसिरामयान् ।
ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ ४ ॥

विरेचनयोग्यस्यविरेचनम्—

विरेच्यः स्नेहयित्वा तु स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ।

वाताधिके पुराण घृतम्—

वातोत्तरे वातरक्ते पुराणं पाययेद्धृतम् ॥ ५ ॥

सिद्धं घृतम्—

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिणीजीवकैः समैः ।
सिद्धं सर्षपकैः सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ॥ ६ ॥

सिद्धं घृतम्—

द्राक्षामधूकखर्जूरिभ्यां सिद्धं वा समितोपलम् ।
घृतं पिबेत्तथा क्षीरं गुडूचीस्वरसे शृतम् ॥ ७ ॥

तैलं पयः शर्करां च पाययेद्वा सुमूर्छितम् ।

बलादिशृतं क्षीरम्—

बलाशतावरीरास्नादशमूलैः सपीलुभिः ॥ ८ ॥
श्यामैरंडस्थिराभिश्च वातार्तिघ्नं शृतं पयः ।

धारोष्णं क्षीरम्—

धारोष्णं मूत्रयुक्तं वा क्षीरं दोषानुलोमनम् ॥ ९ ॥

पित्ताधिकेशताचर्यादिपानम्—

पैत्ते पक्त्वा वरीतिक्तापटोलत्रिफलामृताः ।
पिबेद् घृतं वा क्षीरं वा स्वादुतिक्तकसाधितम्[1] ॥ १० ॥

एरण्डतैलम्—

क्षीरेणैरंडतैलं च प्रयोगेण पिबेन्नर ।
बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरोदनाशनः ॥ ११ ॥
कषायमभयानां वा पाययेद् घृतभर्जितम् ।
क्षीरानुपानं त्रिवृताचूर्णं द्राक्षारसेन वा ॥ १२ ॥

बस्तिप्रयोग :—

निर्हरेद्वा मलं तस्य सघृतैः क्षीरबस्तिभिः ।
नहि बस्तिसमं किंचिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ १३ ॥
विशेषात्वायुपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरार्तिषु ।

कफोत्तरे मुस्तादीनां क्वाथ :—

मुस्तद्राक्षाहरिद्राणां पिबेत्क्वाथं कफोल्बणे ॥ १४ ॥
मधौद्रं त्रिफलाया वा गुडूची वा यथा तथा ।
यथाऽर्हस्नेहपीतं च वामित मृदु रूक्षयेत् ॥ १५ ॥

---

१ स्वादुतिक्तद्रव्यैःसाधितं क्षीरम् ।

शूलान्विते वातरक्ते भैषज्यम्—

त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरीचित्रकं वचाम् ।
विडंगं पिप्पलीमूलं लोमशं[1] वृषकं त्वचम् ॥ १६ ॥
ऋद्धिं लांगलिकं चव्यं समभागानि पेषयेत् ।
कर्षोलिप्त्वायसी पात्रीं मध्याह्ने भक्षयेदिदम् ॥ १७ ॥
वातास्रे सर्वदोषेऽपि परं शूलान्विते हितम् ।
[2]कोकिलाक्षकनिर्यूह पीतस्तच्छाकभोजिना ॥ १८ ॥
कृपाभ्यास इव क्रोधं वातरक्तं नियच्छति ।
पंचमूलस्य धाव्या वा रसैर्लेलीतकीं वसाम् ॥ १९ ॥
क्षुद्रं मुस्तमप्यंगे ब्रह्मचारी पिबन् जयेत् ।
इत्याभ्यंतरमुद्दिष्टं कर्म बाह्यमतः परम् ॥ २० ॥

पक्वसर्जरसतैलम्--

आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम् ।
प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥ २१ ॥

पिण्ड तैलम्--

समधूच्छिष्टमंजिष्ठं ससर्जरससारिवम् ।
पिंडतैलं तदभ्यंगाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ २२ ॥

क्षीरपाकः—

दशमूले शृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् ।
परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ २३ ॥

परिषेचनम्—

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वा चतुर्भिः परिषेचयेत् ।
स्तंभाक्षेपकशूलार्तं कोष्णैर्दाहे तु शीतलैः ॥ २४ ॥

---

१ लोमशः—मांसी—अथवा वचा । चरकेतु—ऋद्धिलाङ्गलिकमित्यत्र "ऋद्धि ताम्रवल्लीम्" इति पाठः । २ कोकिलाक्षः "ताल मखाना" इति लोके ।

तद्वद्गव्याविकच्छागैः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।
निःक्वाथैर्जीवनीयानां पंचमूलस्य वा लघोः ॥ २५ ॥
द्राक्षेक्षुरसमद्यानि दधिमस्त्वम्लकांजिकम् ।
सेकार्थे तंडुलक्षौद्रशर्कराम्भश्च शस्यते ॥ २६ ॥

स्त्रियोदाहघ्न्यः :–

प्रियाः प्रियंवदा नार्यश्चंदनार्द्रकरस्तनाः ।
स्पर्शशीताः सुखस्पर्शा घ्नंति दाहं रुजं क्लमम् ॥ २७ ॥

रुग्दाहनाशको लेप :—

सरागे सरुजे दाहे रक्तं हृत्वा प्रलेपयेत् ।
प्रपौंडरीकमंजिष्ठादार्वीमधुकचंदनैः ॥ २८ ॥
सितोपलकासेक्षुमसूरैरकसक्तुभिः ।
लेपो रुग्दाहवीसर्परागशोफनिबर्हणः ॥ २९ ॥

उपनाहनम्—

वातघ्नैः साधितः स्निग्धः कृशरो मुद्गपायसः ।
तिलसर्षपपिंडैश्च शूलघ्नमुपनाहनम् ॥ ३० ॥
औदका प्रसहानूपवेसवाराः सुसंस्कृता ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताः स्युरुपनाहने ॥ ३१ ॥
स्तंभतोदरुगायामशोफांगग्रहनाशनाः ।
जीवनीयौषधैः सिद्धाः सवयस्का वसाऽपि वा ॥ ३२ ॥

लेपाः :–

घृतं[१] सहचरान्मूलं जीवंती च्छागलं पयः ।
लेपः पिष्ट्वा तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ ३३ ॥
[२]क्षीरपिष्टक्षुमालेपमेरंडस्य फलानि वा ।
कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं शताह्वां वाऽनिलेऽधिके ॥ ३४ ॥
मूत्रक्षारसुरापक्वं घृतमभ्यंजने हितम् ।

---

१ सहचरः "कटसरैया" इति लोके । २ क्षुमा-अतसी । शताह्वा "सौंफ" इति लोके ।

सिद्धं ममधुशुक्तं वा सेकाभ्यंगाः,

कफोत्तरे ॥ ३५ ॥

गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ।

प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते,

वातकफोत्तरे ॥ ३६ ॥

मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्बीजं धान्याम्लसंयुतम् ।

मुहूर्तलिप्तमम्लैश्च सिचेद्वातकफोत्तरे ॥ ३ ॥

[1]उत्तानं लेपनाभ्यंगपरिषेकावगाहनैः ।

विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गंभीरमाचरेत् ॥ ३८ ॥

[2]वातश्लेष्मोत्तरे कोष्णा लेपाद्यास्तत्र शीतलैः ।

विदाहशोफरुक्कण्डूविवृद्धिः स्तंभनाद्भवेत् ॥ ३९ ॥

पित्तरक्तोत्तरे वातरक्ते लेपादयो हिमाः ।

उष्णे. प्लोषोरुग्रागस्वेदापदरणोद्भवः[3] ॥ ४० ॥

सिद्धतैलस्यचतुः प्रयोग :—

मधुयष्ट्या· पलशत कषाये पादशेषिते ।

तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ४१ ॥

[4]स्थिरातामलकीदूर्वापयस्याभीरुचंदनैः ।

लोहहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥ ४२ ॥

काकोलीक्षीरकाकोलीशतपुष्पाद्धिपद्मकैः ।

जीवंतीजीत्रर्षभकत्वक्पत्रनखवालकैः ॥ ४३ ॥

प्रपौंडरीकमंजिष्ठामारिवैंद्रीवितुन्नकैः ।

चतुःप्रयोगं वातासृक्पित्तदाहज्वरार्तिनुत् ॥ ४४ ॥

---

१ उत्तान त्वङ्मांसाश्रयम् । गम्भीरंत्वङ्मांसव्यतिरिक्तधात्वाश्रयम् । २ वातश्लेष्मोत्तरे उत्ताने । तत्र वात श्लेष्मोत्तरे । ३ अपदरणं त्वचः स्फुटनम् । ४ स्थिरा शालपर्णी । तामलकी भूम्यामलकम् । पयस्याक्षीरविदारी, अभीरुः शतावरी । लोहमगुरु । मधुपर्णी गुडूची । ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी । वितुन्नकम् 'धनियाँ' । चतुः प्रयोग.-अभ्यञ्जनस्यपानानुवासनरूपः ।

बलातैलम् :—

बलाकल्ककषायाभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत् ।
सहस्रशतपाकं तद्वातासृग्वातरोगनुत् ॥ ४५ ॥
रसायनं मुख्यतममिन्द्रियाणां प्रसादनम् ।
जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ४६ ॥

मार्गरोधात्कुपिते वाते स्नेहनादि :—

कुपिते मार्गसंरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।
अतिवृद्ध्याऽनिले शस्तमादौ स्नेहनबृंहणम् ॥ ४७ ॥
कृत्वा तत्राढ्यवातोक्तं वातशोणितिकं ततः ।
भेषजं स्नेहनं कुर्याद्यच्च रक्तप्रसादनम् ॥ ४८ ॥
प्राणादिकोपे युगपद्यथोद्दिष्टं यथामयम् ।
यथासन्नं च भैषज्यं विकल्प्यं स्याद्यथाबलम् ॥ ४९ ॥
लीने निरामता सामे स्वेदलङ्घनपाचनैः ।
रूक्षैश्चालेपसेकाद्यैः कुर्यात्केवलवातनुत् ॥ ५० ॥

अङ्गशोषादयोऽवश्यं चिकित्स्याः

शोषाक्षेपणसंकोचस्तम्भस्वपनकम्पनम् ।
हनुस्रंसोऽर्दितं खाञ्ज्यं पाङ्गुल्यं खुडवातता ॥ ५१ ॥
संधिच्युतिः पक्षवधो मेदोमज्जास्थिगा गदाः ।
एते स्थानस्य गाम्भीर्यात्सिध्येयुर्यत्नतो न वा ॥ ५२ ॥
तस्माज्जयेन्नवानेतान् बलिनो निरुपद्रवान् ।
वायौ पित्तावृते शीतामुष्णां च बहुशः क्रियाम् ॥ ५३ ॥
[1]व्यत्यासाद् योजयेत्सर्पिर्जीवनीयं च पाययेत् ।
धन्वमांसं यवाः शालिर्विरेकः क्षीरवान्मृदुः ॥ ५४ ॥
सक्षौद्रा बस्तयः क्षीरं पंचमूलबलाशृतम् ।
कालेऽनुवासनं तैलं मधुरौषधसाधितम् ॥ ५५ ॥

---

१ व्यत्यासात् वैपरीत्यात् शीतां कृत्वा उष्णामुष्णां कृत्वा शीताम् ।

यष्टीमधुबलातैलघृतक्षीरैश्च सेचनम् ।
पंचमूलकषायेण वारिणा शीतलेन च ॥ ५६ ॥
कफावृते यवान्नानि जांगला मृगपक्षिणः ।
स्वेदास्तीक्ष्णा निरूहाश्च वमनं सविरेचनम् ॥ ५७ ॥
पुराणसर्पिस्तैलं च तिलसर्षपजं हितम् ।
मसृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत् ॥ ५८ ॥
कारयेद्रक्तसंसृष्टे वाते शोणितिकीं क्रियाम् ।
स्वेदाभ्यंगरसाः क्षीरं स्नेहो मांसावृते हितः ॥ ५९ ॥
प्रमेहमेदोवातघ्नमाढ्यवाते भिषग्जितम् ।
महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्वोक्तं रेतसावृते ॥ ६० ॥
अन्नावृते पाचनीयं वमनं दीपनं लघु ।
मूत्रावृते मूत्रलानि स्वेदा उत्तरबस्तयः ॥ ६१ ॥
एरण्डतैलं वर्चःस्थे बस्तिस्नेहाश्च भेदिनः ।
कफपित्ताविरुद्धं यद्यच्च वातानुलोमनम् ॥ ६२ ॥
सर्वस्थानावृते त्वाशु तत्कार्यं मातरिश्वनि ।

सर्वधात्वावृते चिकित्सितम्—

अनभिष्यंदि च स्निग्धं स्रोतसां शुद्धिकारणम् ॥ ६३ ॥
पाचना बस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासनाः ।
प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु कार्यं विरेचनम् ॥ ६४ ॥
रसायनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
शिलाह्वस्य विशेषेण पयसा शुद्धगुग्गुलोः ॥ ६५ ॥
लेहो वा भार्गवस्तद्वदेकादशसिताभितः ।
अपाने त्वावृते सर्वं दीपनं ग्राहि भेषजम् ॥ ६६ ॥
वातानुलोमनं कार्यं मूत्राशयविशोधनम् ।

एतद्विचार्यभिषजाकर्तव्यम्—

इति संक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम् ॥ ६७ ॥

प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्वितथं स्वयमेव तत् ।
उदानं योजयेदूर्ध्वमपानं चानुलोमयेत् ॥ ६८ ॥
समानं शमयेद्विद्वांस्त्रिधा [1]व्यानं च योजयेत् ।
प्राणो रक्ष्यश्च[2]तुर्भ्योऽपि तत्स्थितौ देहसंस्थितिः ॥ ६९ ॥
स्वं स्वं स्थानं नयेदेवं वृतान्वातान्विमार्गगान् ।

वातावरणेलशुन प्रयोग :—

सर्वं चावरणं पित्तरक्तसंसर्गवर्जितम् ॥ ७० ॥
रसायनविधानेन लशुनो हंति शीलितः ।
पित्तावृते पित्तहरं मरुतश्चानुलोमनम् ॥ ७१ ॥
रक्तावृत्तेऽपि तद्वच्च कुष्ठोक्तं यच्च भेषजम् ।
रक्तपित्तानिलहरं विविधं च रसायनम् ॥ ७२ ॥

आयुर्वेदफलं चिकित्सितम्—

यथानिदान निर्दिष्टमिति सम्यक् चिकित्सितम् ।
आयुर्वेदफलं स्थानमेतत्सद्योतिनाशनम् ॥ ७३ ॥

चिकित्सितपर्याया :—

चिकित्सित हितं पथ्यं प्रायश्चित्तं भिषग्जितम् ।
भेषजं शमनं शस्तं पर्यायैः स्मृतमौषधम् ॥ ७४ ॥

समाप्तमिदं चिकित्सितं स्थानम् ।

अ० ॥ २२ ॥ श्लो० ॥ १९६१ ॥

---

१ त्रिधा समानमूर्ध्वाधोमध्यगमनम् । २ चतुर्भ्यः-उदानापानसमानव्यानेभ्यः ।

कल्पस्थानम् ।

समग्रंस्थानं कायचिकित्सा

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

वमनविरेचनयो र्मदनत्रिवृन्मूले श्रेष्ठे--

वमने मदनं श्रेष्ठं, त्रिवृन्मूलं विरेचने ।

जीमूतादेर्विशिष्टता--

नित्यमन्यस्य[1] तु व्याधिविशेषेण विशिष्टता ॥ १ ॥

मदनफलचूर्णयोजना--

फलानि तानि पाडूनि नचाऽतिहरितान्यपि ।
आदायाऽह्नि प्रशस्तर्क्षे मध्ये ग्रीष्मवसंतयोः ॥ २ ॥
प्रमृज्य कुशमु[2]त्तोल्या क्षिप्त्वा बद्ध्वा प्रलेपयेत् ।
गोमयेनानुमुत्तोली धान्यमध्ये निधापयेत् ॥ ३ ॥
मृदुभूतानि मध्विष्टगंधानि कुशचेष्टनात् ।
निष्कृष्य निर्गतेऽष्टाहे शोषयेत्तान्यथातपे ॥ ४ ॥
[3]तेषा ततः सुशुष्काणामुद्धृत्य फलपिप्पलीः ।
दधिमध्वाज्यप[4]ललैर्मृदित्वा शोषयेत्पुनः ॥ ५ ॥

---

१ अन्यस्य जीमूतादेरारग्वधादेश्च । २ मुत्तोली पुटकः । ३ तेषा मदन फलानाम् । फल पिप्पलीः मदनफलबीजानि । पिप्पली—"दाना" इति हिन्दी । ४ पलल तिलकल्कः ।

ततः सुगुप्तं संस्थाप्य कार्यकाले प्रयोजयेत् ।

अनन्तरं पानादि—

अथाऽऽदाय ततो मात्रां जर्जरीकृत्य वासयेत् ॥ ६ ॥
[1]शर्वरीं मधुयष्ट्या वा कोविदारस्य वा जले ।
कर्बुदारस्य बिम्ब्या वा नीपस्य विदुलस्य वा ॥ ७ ॥
[2]शणपुष्प्याः सदा[3]पुष्प्याः प्रत्यक्पुष्प्युदकेऽथवा ।
ततः पिबेत्कषायं तं प्रातमृ[4]दितगालितम् ॥ ८ ॥
मूत्रादितेन विधिना साधु तेन तथा वमेत् ।
श्लेष्मज्वरप्रतिश्यायगुल्मान्तर्विद्रधीषु च ॥ ९ ॥
प्रच्छर्दयेद्विशेषेण यावत्पित्तस्य दर्शनम् ।

फलपिप्पलीचूर्णपानादि—

फलपिप्पलिचूर्णं वा क्वाथेन स्वेन भावितम् ॥ १० ॥
त्रिभागत्रिफलाचूर्णं कोविदारादिवारिणा ।
पिबेज्ज्वरारुचिष्वेवं ग्रन्थ्यपच्यर्बुदोदरी ॥ ११ ॥
पित्ते कफस्थानगते जीमूतादिजलेन तत् ।

हृद्दाहादौ क्वथितक्षीरादिपानम् —

हृद्दाहेऽधोस्रपित्ते च क्षीरं तत्पिप्पलीशृतम् ॥ १२ ॥
[4]क्षैरेयीं वा

कफच्छर्दिप्रसेकतमकेषु तु ।
दध्युत्तरं वा दधि वा तच्छृतक्षीरसंभवम् ॥ १३ ॥

---

१ शर्वरीं रात्रिम् । कोविदारः काञ्चनारः योशरदि पुष्पवान् । कर्बुदारः काञ्चनारः—वसन्ते पुष्पवान् बिम्बी "जंगली-तोला-कुंदरू" इति लोके । नीपः कदम्बः । विदुलो वेतसः । २ शणपुष्पी घण्टारवा, आरण्य कशणः । ३ सदा-पुष्पी अर्कः । प्रत्यक्पुष्पी अपामार्गः । मूत्रादितेन सूत्रस्थानोक्तवमनविरेचना-ध्यायविहितेन "श्वोवम्यम्" इत्यादिना विधिना । ४ क्षैरेयीं मदनफल सिद्धक्षीरेण कृतां यवागूः ।

फलादिक्वाथकल्काभ्यां सिद्धं तस्मिन्दुग्धजम् ।
सर्पिः कफाभिभूतेऽग्नौ शुष्यद्देहे च वामनम् ॥ १४ ॥
स्वरसं फलमज्ज्ञो वा भल्लातकविधिशृतम् ।
आदर्वीलेपनात्सिद्ध लीढ्वा प्रच्छर्दयेत्सुखम् ॥ १५ ॥
न लेहं भक्ष्यभोज्येषु तत्कषायांश्च योजयेत् ।

फलकषाय :—

वत्सकादिप्रतीवापः कषायः फलमज्जजः ॥ १६ ॥
निम्बार्कान्यतरक्वाथसमायुक्तो नियच्छति ।
बद्धमूलानपि व्याधीन्सर्वान्संतर्पणोद्भवान् ॥ १७ ॥

घ्राणेन वमनम्—

[1]राठपुष्पफलश्लक्ष्णचूर्णैर्माल्यं सुरूक्षितम् ।
वमेन्मंडरसादीनां तृप्तो जिघ्रन् सुखं सुखी ॥ १८ ॥
एवमेव फलाभावे कल्प्यं पुष्पं शलाटु वा ।
जीमूताद्याश्च फलवत्,
[2]जीमूतं तु विशेषतः ॥ १९ ॥
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासकासहिध्मादिरोगिणाम् ।
पयः पुष्पेऽस्य निर्वृत्ते फले पेया पयस्कृता ॥ २० ॥
[3]लोमशे क्षीरसंतानं, दध्युत्तरमलोमशे ।
शृते पयसि दध्यम्लं जाते हरितपाण्डुके ॥ २१ ॥

---

१ राठो मदनफलम् । शलाटु अपक्वंफलम् । २ जीमूतो देवदाली "बन्नाल' इति लोके, निर्वृत्ते पक्वे । लोमशोलोमयुक्तः । क्षीरसन्तानः "मलाई साढ़ी" इति हिन्दी । दध्युत्तरं दधिसन्तानः । तुम्बी कटुतुम्बी । कोशातकी "तरोई" इति लोके मापितिक्तैव । पर्यागताः सम्यक् परिपक्वाः । वेणिजन्मना देवदालीकुसुमानां फलानाम्, वेणीदेवदाली । तिक्तो समस्य निम्बस्य । आरग्वधादिनवकात् आरग्वधादिवर्गाद्योपधनवकादन्यतमस्य ।

आगुत्य वारुणीमंडं पिबेन्मृदितगालितम् ।
कफादरोचके कासे पाण्डुत्वे राजयक्ष्मणि ॥ २२ ॥

तुम्बा कोशातकीष्वपियोजना :—

इयं च कल्पना कार्या तुंबीकोशातकीष्वपि ।

पित्तश्लेष्मज्वरिणश्चूर्णपानम्—

पर्यागतानां दुष्काणां फलानां वेणिजन्मनाम् ॥ २३ ॥
चूर्णस्य पयसा शुक्ति वातपित्तार्दितः पिबेत् ।
द्वे वा त्रीण्यपि वाऽऽप्लोय्य क्वाथे तिक्तोत्तमस्य वा ॥ २४ ॥
आरग्वधादिनिम्बकादामुत्यात्यतमस्य वा ।
विमृद्य पूतं तं क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरी पिबेत् ॥ २५ ॥
जीमूतचूर्णं कल्कं वा पिबेच्छीतेन वारिणा ।
ज्वरे पैत्ते कवोष्णेन कफवातात्कफादपि ॥ २६ ॥
कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्ते कफकर्शिते ।

इक्ष्वाकुकल्पः—

[1]इक्ष्वाकुर्वमने शस्त, प्रताम्यति च मानवे ॥ २७ ॥
फलपुष्पविहीनस्य प्रवालैस्तस्य साधितम् ।
पित्तश्लेष्मज्वरे क्षीरं पित्तोद्रिक्ते प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥
हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि ।
स्यात्तदा कफजे कासश्वासे वम्यं च पाययेत् ॥ २९ ॥
मस्तुना वा फलान्मध्यं पाडुकुष्ठविषार्दितः ।
[2]तेन तक्रं विपक्वं वा पिबेत्समधुसैंधवम् ॥ ३० ॥
भावयित्वाऽजदुग्धेन बीज[3] तेनैव वा पिबेत् ।
विषगुल्मोदरग्रंथिगंडेषु श्लीपदेषु च ॥ ३१ ॥
सक्तुभिर्वा पिबेन्मंथं तुंबीस्वरसभावितैः ।
कफोद्भवे ज्वरे कासे गलरोगेष्वरोचके ॥ ३२ ॥

---

१ इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी । २ तेन इक्ष्वाकुफलमध्येन । ३ बीजमिक्ष्वाकुबीजम् । तेनैव-अजादुग्धेनैव ।

गुल्मे ज्वरे प्रसक्ते च कल्कं मांसरसैः पिबेत् ।
नरः साधु वमत्येवं न च दौर्बल्यमश्नुते ॥ ३३ ॥
तुंब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम् ।
छर्दयेन्माल्यमाघ्राय गंधसंपत्सुखोचितः ॥ ३४ ॥

धामार्गव-प्रयोग :—

कासगुल्मोदरगरे वाते श्लेष्माशयस्थिते ।
कफे च कंठवक्त्रस्थे कफसंचयजेषु च ॥ ३५ ॥
[1]धामार्गवो गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च ।
जीवकर्षभकौ वीरा कपिकच्छूः शतावरी ॥ ३६ ॥
काकोली श्रावणी मेदा महामेदा मधूलिका ।
तद्रजोभिः पृथग्लेहा धामार्गवरजोऽन्विताः ॥ ३७ ॥
कासे हृदयदाहे च शस्ता मधुसिताद्रुताः ।
ते सुखांभोनुपानाः स्युः पित्तोष्मसहिते कफे ॥ ३८ ॥
धान्यतुंबरुयूषेण कल्कस्तस्य विषापहः ।
भृङ्ग्याः पुनर्नवाया वा कासमर्दस्य वा रसे ॥ ३९ ॥
एकं धामार्गवं द्वे वा मानसे मृदितं पिबेत् ।
तच्छृतक्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः ॥ ४० ॥

तिक्तकोशातकी-प्रयोग :—

[2]क्ष्वेडोऽतिकटुतीक्ष्णोष्णः प्रगाढेषु प्रशस्यते ।
कुष्ठपांड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ ४१ ॥
पृथक्फला[3]दिषट्कस्य क्वाथे मांसमनूपजम् ।
कोशातक्या समं सिद्धं तद्रसं लवणं पिबेत् ॥ ४२ ॥

---

१ धामार्गवो राजकोशातकी । २ क्ष्वेडस्तिक्तकोशातकी यातिव्यक्तरेखान्विता "तरोई" इतिलोके । ३ फलादिषट्कस्य-मदनफलेक्ष्वाकादिकस्य ।

फलादिपिप्पलीतुल्यं सिद्धं क्ष्वेडरसेऽथवा ।
क्ष्वेडक्वाथे पिबेत्सिद्धं मिश्रमिक्षुरसेन वा ॥ ४३ ॥

कुटजप्रयोग :—

कुटजं सुकुमारेषु पित्तरक्तकफोदये ।
ज्वरे विसर्पे हृद्रोगे खुडे कुष्ठे च पूजितम् ॥ ४४ ॥
सर्षपाणां मधूकानां तोयेन लवणस्य वा ।
पाययेत्कौटजं बीजं युक्तं कृशरयाऽथवा ॥ ४५ ॥
सप्ताहं वार्कदुग्धाक्तं तच्चूर्णं पाययेत्पृथक् ।
फलजीमूतकेक्ष्वाकुजीवंतीजीवकोदकैः ॥ ४६ ॥

वमनौषधकल्पना —

वमनौषधमुख्यानामिति कल्पदिशोरिता ।
बीजेनानेन मतिमानन्यान्यपि च कल्पयेत् ॥ ४७ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो विरेचनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

त्रिवृद्गुणा :—

"कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका त्रिवृत् ।
कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ १ ॥
सेदानीमौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः ।
[1]कल्पवैशेष्यमासाद्य जायते सर्वरोगजित् ॥ २ ॥
द्विधा श्वेतं च तन्मूलं श्यामं श्यामारुणं त्रिवृत् ।

१ कल्पवैशेष्यं योजनाविशेषताम् ।

त्रिवृदाख्यं वरतरं निरपायं सुखं तयोः ॥ ३ ॥
सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च शस्यितम् ।

सापायत्वेहेतु :—

मूर्छासंमोहहृत्कंठकर्षणक्षरणप्रदम् ॥ ४ ॥
श्यामं तीक्ष्णाशुकारित्वादतस्तदपि शस्यते ।
क्रूरे कोष्ठे बह्वौ दोषे क्लेशक्षमिणि चातुरे ॥ ५ ॥

तस्यामूलग्रहणउपाय :—

गंभीरानुगतं श्लक्ष्णमतिर्यग्विसृतं च यत् ।
गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठं त्वचं शुष्कां निधापयेत् ॥ ६ ॥

वातादौ तत्प्रयोगविशेष :—

अथ काले तु तच्चूर्णं किंचिन्नागरसैंधवम् ।
वातामये पिबेदम्लैः, पित्ते साज्यसितामधु ॥ ७ ॥
क्षीरद्राक्षेक्षुकाश्मर्यस्वादुस्कंधवरारसैः ॥
कफामये पीलुरसमूत्रमद्याम्लकांजिकैः ॥ ८ ॥
पंचकोलादिचूर्णैश्च युक्त्या युक्तं कफापहैः ।

हृद्यं विरेचनम्—

त्रिवृत्कल्ककषायेण साधितःससितो हिमः ॥ ९ ॥
मधुत्रिजातसंयुक्तो लेह्यो हृद्यं विरेचनम् ।
अजगंधा तवक्षीरी विदारी शर्करा त्रिवृत् ॥ १० ॥
चूर्णितं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।
संनिपातज्वरस्तंभपिपासादाहपीडितः ॥ ११ ॥

इक्षुगंडिका भक्षणम्—

लिप्तेद्दलस्त्रिवृतया द्विधा कृत्वेक्षुगंडिकाः ।
एकीकृत्य पचेत्स्विन्नं पुटपाकेन भक्षयेत् ॥ १२ ॥

तर्पणम्—

त्वगेलाभ्यां समा नीली तैस्त्रिवृत्तैश्च शर्करा ।
चूर्णं फलरसक्षौद्रसक्तुभिस्तर्पणं पिबेत् ॥ १३ ॥
वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च ।
नरेषु सुकुमारेषु निरपायं विरेचनम् ॥ १४ ॥

लेह :—

विडंगतंडुलवरायावशूककणास्त्रिवृत् ।
सर्वेभ्योऽर्धेन तल्लीढं मध्वाज्येन गुडेन वा ।
गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम् ।
कफवातकृतांश्चान्यान्परिमार्ष्टि गदान्बहून् ॥ १६ ॥

कल्याणको गुड :

विडंगपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकम् ।
मरिचेंद्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पली- ॥ १७ ॥
दीप्यकं पंचलवणं चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ १८ ॥
धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन् गुडार्धतुलान्वितान् ।
पक्त्वा मृद्वग्निना खादेत्ततो मात्रामयंत्रण. ॥ १९ ॥
कुष्ठार्शःकामलागुल्ममेहोदरभगंदरान् ।
ग्रहणीपांडुरोगांश्च हंति पुंसवनश्च सः ॥ २० ॥
गुडः कल्याणको नाम सर्वेष्वृतुषु यौगिकः ।

गुटिका :—

[1]व्योषत्रिजातकांभोदकृमिघ्नामलकैस्त्रिवृत् ॥ २१ ॥
सर्वैः समा समसिता क्षौद्रेण गुटिकाः कृताः ।
मूत्रकृच्छ्रज्वरच्छर्दिकासशोषभ्रमक्षये ॥ २२ ॥

---

१ व्योषादयः सर्वसमभागाः सर्वैरेतैः समात्रिवृत् ।

शारे पादांशमंशोऽस्या दन्त्याः सर्वविरेषु च ।

ऋतुविरेचनानि—

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ २३ ॥
क्षौद्रद्राक्षारसोपेतं वर्षाकाले विरेचनम् ।
त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् ॥ २४ ॥
द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वं सातलं जलदात्यये ।
त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजीं सरलं वचाम् ॥ २५ ॥
स्वर्णक्षीरीं च हेमन्ते चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ २६ ॥
त्रिवृत्त्रायन्तिहपुषासातलाकटुरोहिणीः ।
स्वर्णक्षीरीं च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत्त्र्यहम् ॥ २७ ॥
एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहृत् ।

रूक्षाणां विरेचनम्—

श्यामात्रिवृद्दुरालंभाहस्तिपिप्पलिवत्सकम् ॥ २८ ॥
नीलिनीकटुकामुस्ताश्रेष्ठायुक्तं सुचूर्णितम् ।
रसाज्योष्णाम्बुभिः शस्तं रूक्षाणामपि सर्वदा ॥ २९ ॥

राजवृक्षप्रयोगः—

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्तादिरोगिषु ।
[1]राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः ॥ ३० ॥
बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे ।
योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः ॥ ३१ ॥

फलग्रहणादि—

फलकाले परिणतं फलं तस्य समाहरेत् ।
तेषां गुणवतां भारं सिकतासु विनिक्षिपेत् ॥ ३२ ॥

१ राजवृक्षः "अमलतास" इति लोके ।

मत्तरात्रात्समुद्धृत्य शोषयेच्चातपे ततः ।
ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ पात्रे निधापयेत् ॥ ३३ ॥

द्राक्षारसेन तं दद्याद्दाहोदावर्तपीडिते ।
चतुर्वर्षे सुखं बाले यावद्द्वादशवार्षिके ॥ ३४ ॥

कषाय :—

चतुरगुलमज्ज्ञो वा कषायं पाययेद्धिमम् ।

दधिमंडसुरामंडधात्रीफलरसैः पृथक् ॥ ३५ ॥
सौवीरकेण वा युक्तं शल्केन शृतेन वा ।

अरिष्टः —

दन्तीकषाये तन्मज्ज्ञो गुडं जीर्णं च निक्षिपेत् ॥ ३६ ॥

तमरिष्टं स्थितं मासं पाययेत् पक्षमेव वा वा ।

तिल्वक प्रयोग :—

त्वचं [१]तिल्वकमूलस्य त्यक्त्वाभ्यन्तरवल्कलम् ॥ ३७ ॥

विशोष्य चूर्णयित्वा च द्वौ भागौ गालयेत्तत ।
रोध्रस्यैव कषायेण तृतीयं तेन भावयेत् ॥ ३८ ॥

कषाये दशमूलस्य तं भागं भावितं पुनः ।
शुष्कं चूर्णं पुनः कृत्वा ततः पाणितलं पिबेत् ॥ ३९ ॥

मस्तुमूत्रसुरामंडकोलधात्रीफलाम्बुभिः ।

लेह :—

तिल्वकस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः ॥ ४० ॥
सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठं विरेचनम् ।

---

१ तिल्वको लोध्रः । अभ्यन्तरवल्कलं कठिनत्वात्त्यक्त्वा विशोष्य चूर्णयित्वा तच्चूर्णस्य त्रिधाभागंकृत्वा भागद्वयंस्रावयित्वा तेन कषायेन तृतीयभागं भावयेत् । ततोदशमूलकषायेण भावयेत् भावनात्वेकविंशतिवारान्मदनफलवदिति ज्ञेयम् ।

सुधा प्रयोग :—

[1]सुधा भिनत्ति दोषाणां महांतमपि संचयम् ॥ ४१ ॥
आश्वेव कोष्ठविभ्रंशान्नैव तां कल्पयेदतः ।
मृदौ कोष्ठेऽबले बाले स्थविरे दीर्घरोगिणि ॥ ४२ ॥

कल्प्या गुल्मोदरगरत्वग्रोगमधुमेहिषु ।
पांडौ दूषीविषे शोफे दोषविभ्रांतचेतसि ॥ ४३ ॥

सा श्रेष्ठा कंटकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता ।

सुधागुटिका—

द्विवर्षां वा त्रिवर्षां वा शिशिरान्ते विशेषतः ॥ ४४ ॥

तां पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः ।
बिल्वादीनां बृहत्योर्वा क्वाथेन समपेक्षया ॥ ४५ ॥

मिश्रयित्वा सुधाक्षीरं ततोऽङ्गारेषु शोषयेत् ।
पिबेत्कृत्वा तु गुटिका मस्तुमूत्रसुरादिभिः ॥ ४६ ॥

घृतेन त्रिवृतादिपानम्—

त्रिवृतादीन्नव[2] वरान् स्वर्णक्षीरीं ससातलाम् ।
सप्ताहं स्नुक्पयःपीतान् रसेनाज्येन वा पिबेत् ॥ ४७ ॥

तद्वन्च्योपोत्तमाकुंभनिकुंभादीन् गुडाम्बुना ।,

शङ्खिनी सप्तला प्रयोग :—

नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शङ्खिन्या निस्तुषीकृतम् ॥ ४८ ॥

सप्तलायास्तथा मूलं ते[3] तु तीक्ष्णविकाषिणी ।
श्लेष्मामयोदरगरश्वयथ्वादिषु कल्पयेत् ॥ ४९ ॥

---

१ सुधा सेहुण्डः, सासुधा । २ त्रिवृतादीन्नव-त्रिवृत्-कृष्णत्रिवृत्, राजवृक्षः, तिल्वकः, सुधा, शङ्खिनी, सप्तला, दन्ती द्रवन्ती चेति नव । वरा त्रिफला । शंखिनी यवतिक्ता । ३ ते शंखिनीसप्तलामूले ।

तयोः पिण्ड प्रयोग :—

अक्षमात्रं तयोः पिंडं मदिरालवणान्वितम् ।
हृद्रोगे वातकफजे तद्वद्गुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥

दन्ती द्रवन्ती प्रयोग :—

दंतिदंतस्थिरं स्थूलं मूलं दंतीद्रवंतिजम् ।
आताम्रश्यावतीक्ष्णोष्णमाशुकारि विकाशि च ॥ ५१ ॥
गुरु प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम् ।

तन्मूलपानम्—

तत्क्षौद्रपिप्पलीलिप्तं स्वेद्यं मृद्दर्भवेष्टितम् ॥ ५२ ॥
शोष्यं मंदातपेऽग्न्यर्कौ हतो ह्यस्य विकाशिताम् ।
तत्पिबेन्मस्तुमदिरातक्रपीलुरसासवैः ॥ ५३ ॥
अभिष्यन्नतनुर्गुल्मी प्रमेही जठरी गरी ।
गोमृगाजरसैः पाडुः कृमिकोष्ठी भगंदरी ॥ ५४ ॥

दन्ती द्रवन्तीसिद्धं घृतादि—

सिद्धं तत्क्वाथकल्काभ्यां दशमूलरसेन च ।
विसर्पविद्रध्यरुजीकक्षादाहान् जयेद्घृतम् ॥ ५५ ॥
तैलं तु गुल्ममेहार्शोविबंधकफमारुतान् ।
महास्नेहः शकृच्छुक्रवातसंगानिलव्यथाः ॥ ५६ ॥

विरेचने मुख्यता—

विरेचने मुख्यतमा नवंते त्रिवृदादयः ।

हरीतकी प्रयोगो मोदकाश्च—

हरीतकीमपि त्रिवृद्विधानेनोपकल्पयेत् ॥ ५७ ॥
गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्यात्पलं पलम् ।
दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ ५८ ॥

प्रकल्प्य मोदकानेवं दशमे दशमेऽहनि ।
उष्णाम्भोऽनु पिबेत्खादेत्तान्सर्वान्विधिनाऽमुना ॥ ५९ ॥
एते निःपरिहाराः स्युः सर्वव्याधिनिवर्हणाः ।
विशेषाद्ग्रहणीपांडुकंडूकोठार्शसा हिताः ॥ ६० ॥

कारणविशेषैर्महाल्पकर्मत्वम्—

[1]अल्पस्याऽपि महार्थत्वं प्रभूतस्याऽल्पकर्मताम् ।
कुर्यात्संश्लेपविश्लेपकालसंस्कारयुक्तिभि. ॥ ६१ ॥

मनोऽनुकूलैः सह विरेचनप्रयोग :—

त्वक्केसराम्रातकदाडिमैला-
सितोपलामाक्षिकमातुलुंगैः ।
मद्यैश्च तैस्तैश्च मनोनुकूलै-
र्युक्तानि देयानि विरेचनानि" ॥ ६२ ॥

---

१ वीर्येण मात्रया वा अल्पस्याल्पौषधप्रयोगस्य संश्लेपादिना महार्थत्व मतिकार्यकारित्वं, तथा वीर्येण मात्रया वा प्रभूतस्य बहुकार्यकारिण औषधयोगस्य संश्लेपादिनाऽल्पकर्मतामल्पकार्यकारित्वं कुर्यात् । संश्लेपोमेलनम् । विश्लेपोऽमेलनम् । कालो मध्याह्न प्रत्यूषादिः । संस्कारोऽन्यगुणोत्पादनम् । युक्तिर्योजना प्रकार विशेषः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ॥

वमनेऽधोगते पुनर्वमनम्—

"वमनं मृदुकोष्ठेन क्षुद्वताऽल्पकफेन वा ।
अतितीक्ष्णहिमस्तोकमजीर्णे दुर्बलेन वा ॥ १ ॥
पीतं प्रयात्यधस्तस्मिन्निष्टहानिर्मलोदयः ।
वामयेत्तं पुनः स्निग्धं स्मरन् पूर्वमतिक्रमम् ॥ २ ॥

विरेचनेऽप्यूर्ध्वगते पुनर्विरेचनम्

अजीर्णिनः श्लेष्मवतो व्रजत्यूर्ध्वं विरेचनम् ।
अतितीक्ष्णोष्णलवणमहृद्यमतिभूरि वा ॥
तत्र पूर्वोदिता व्यापत्सिद्धिश्च न तथापि चेत् ॥ ३ ॥
आशये तिष्ठति ततस्तृतीयं नावचारयेत् ।
अन्यत्र सात्म्याद्धृद्याद्वा भेषजान्निरपायतः ॥ ४ ॥

विरेचनस्यायोगाः—

अस्निग्धास्विन्नदेहस्य पुराणं रूक्षमौषधम् ।
दोषानुत्क्लेश्य निर्हर्तुमशक्तं जनयेद्गदान् ॥ ५ ॥
विभ्रंशं श्वयथुं हिध्मां तमसो दर्शनं तृषम् ।
पिण्डिकोद्वेष्टनं कण्डूमूर्वोः सादं विवर्णताम् ॥ ६ ॥
स्निग्धस्विन्नस्य वाऽत्यल्पं दीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम् ।
शीतैर्वा स्तब्धमामे वा समुत्क्लेश्य हरेन्मलान् ॥ ७ ॥

---

१ इष्टहानिःसम्यक् वमनं न भवति ।

तानेव जनयेद्रोगानयोगः सर्व एव सः ।

तत्रकर्तव्यम्—

तं तैललवणाभ्यक्तं स्विन्नं प्रस्तरशंकरैः ॥ ८ ॥

-निरुढं जांगलरसैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत् ।
फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया ॥ ९ ॥

स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ।

अल्पौषधप्रयोगेव्यापत्सिद्धिश्च—

बहुदोषस्य रूक्षस्य मदाग्नेरल्पमौषधम् ॥ १० ॥
सोदावर्तस्य चोत्क्लेश्य दोषान्मार्गं निरुध्य तैः[1] ।
भृशमाध्मापयेन्नाभि पृष्ठपार्श्वशिरोरुजम् ॥ ११ ॥
श्वासं विण्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्याच्च दारुणम् ।
अभ्यंगस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ १२ ॥

उदावर्तहरं सर्वं कर्माऽऽध्मातस्य शस्यते ।

यवागूः—

पंचमूलयवक्षारवचाभूतिकसैंधवैः ॥ १३ ॥
यवागूः मुक्ता शूलविबंधानाहनाशनी ।

पिप्पल्यादिपानम्—

पिप्पलीदाडिमक्षारहिंगुशुण्ठ्यम्लवेतसान् ॥ १४ ॥
ससैंधवान्पिबेन्मद्यैः सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
प्रवाहिकापरिस्रावे वेदनापरिकर्तने ॥ १५ ॥

पीतौषधेवेगरोधाद्रोगाः—

पीतौषधस्य वेगाना निग्रहान्मारुतादयः ।
कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वंति हृद्ग्रहम् ॥ १६ ॥

१ तैर्दोषैः ।

हिध्मापार्श्वरुजाकासदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः ।
जिह्वां खादति निःसंज्ञो दंतान्कटकटाययन् ॥ १७ ॥

तत्रवमनादि—

न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु त भिषक् ।
मधुरैः पित्तमूर्च्छार्तं, कटुभिः कफमूर्च्छितम् ॥ १८ ॥
पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषं विपाचयेत् ॥
कायाऽग्निं च बलं चास्य क्रमेणाऽभिप्रवर्धयेत् ॥ १९ ॥

अतिवमने भैषज्यम्—

पवनेनाऽतिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ।
तस्मै स्निग्धाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥ २० ॥

पीतौषधस्यवेगनिग्रहादौवातहृत्स्वेदादि—

पीतौषधस्य वेगाना निग्रहेण कफेन वा ।
रुद्धोऽति वा विशुद्धस्य गृह्णात्यंगानि मारुत. ॥ २१ ॥
स्तंभवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्तिभेदनैः ।
तत्र वातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि शस्यते ॥ २२ ॥

विरेचनातियोगे विरेचनद्रव्योद्धरणम्—

बहुतीक्ष्णं क्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ।
हृत्वाऽऽशु विट्पित्तकफान्धातूनास्रावयेद्द्रवान् ॥ २३ ॥
तत्रातियोगे मधुरैः शेषमौषधमुल्लिखेत् ।

अतिवमनादौ विरेकादि—

योज्योऽतिवमने रेको विरेके वमनं मृदु ॥ २४ ॥
परिषेकावगाहाद्यैः सुशीतैः स्तंभयेच्च तम् ।

अतियोगहरं पानम्—

अंजनं चंदनोशीरमज्जासृक्शर्करोदकम् ॥ २५ ॥
लाजचूर्णैः पिबेन्मंथमतियोगहरं परम् ।,
वमनस्याऽतियोगे तु शीताबुपरिषेचितः ॥ २६ ॥

पिबेत्फलरसैर्मन्थं सघृतक्षौद्रशर्करम् ।
सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्वाया धान्यमुस्तयोः ॥ २७ ॥
समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ।
वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः ॥ २८ ॥
स्निग्धाम्ललवणा हृद्या यूषमांसरसा हिताः ।
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ २९ ॥
निःसृता तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ।
वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधिताम् ॥ ३० ॥
यवागूं तनुकां दद्यात्स्नेहस्वेदौ च कालवित् ।

जीवादानम्—

अतियोगाच्च भैषज्यं जीवं हरति शोणितम् ॥ ३१ ॥
तज्जीवादानमित्युक्तमादत्ते जीवितं यतः ।
शुने काकाय वा दद्यात्तेनान्नमसृजा सह ॥ ३२ ॥
भुक्ते तस्मिन् वदेज्जीवमभुक्ते पित्तमादिशेत् ।
शुक्लं वा भावितं वस्त्रमावानं[1] कोष्णवारिणा ॥ ३३ ॥
प्रक्षालितं विवर्णं स्यात्पित्ते शुद्धं तु शोणिते ।

जीवादाने चिकित्सा—

तृष्णामूर्छामदार्तस्य कुर्यादामरणं क्रियाम् ॥ ३४ ॥
रक्तपित्तातिसारघ्नीं तस्याशु प्राणरक्षणीम् ।
मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक् ॥ ३५ ॥
पिबेज्जीवाभिसंधानं जीवं तद्ध्याशु गच्छति ।
तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तौ निषेचयेत् ॥ ३६ ॥
श्यामाकाश्मर्यमधुकदूर्वोशीरैः शृतं पयः ।
घृतमण्डाञ्जनयुतं बस्तिं वा योजयेद्धिमम् ॥ ३७ ॥

---

१ आतानं-सुश्रुत ।

पिच्छाबस्ति सुशीतं वा घृतमंडानुवासनम् ।
गुदं भ्रष्टं कषायैश्च स्तंभयित्वा प्रवेशयेत् ॥
विसंज्ञं श्रावयेत्साम¹ वेणुगीतादिनिस्वनम्" ॥ ३८ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाऽतो दोषहरणसाकल्यं बस्तिकल्पं व्याख्यास्यामः ।

सर्वगदप्रमाथी बस्तिः—

"बला गुडूचो त्रिफलां सरास्ना
द्विपंचमूलं च पलोन्मितानि ।
अष्टौ ²फलान्यर्धतुला च मांसा-
च्छागात्पचेदप्सु चतुर्थशेषम् ॥ १ ॥
पूतो यवानीफलबिल्वकुष्ठ-
वचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम् ।
कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैः सतैलै-
र्युक्तः सुखोष्णो लवणान्वितश्च ॥ २ ॥
बस्तिः परं सर्वगदप्रमाथी
स्वस्थे हितो जीवनबृंहणश्च ।
बस्तौ च यस्मिन्पठितो न कल्कः
सर्वत्र दद्यादमुमेव तत्र ॥ ३ ॥

१ साम सामवेदः । २ फलानि मदनफलानि ।

सर्वानिलव्याधिहरोनिरूहः :—

द्विपंचमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः
सच्छागमांसस्य सपूर्वकल्कः।
त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरूहः
सर्वानिलव्याधिहरः प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

दीपनोबस्ति :—

बलापटोलीलघुपंचमूल-
त्रायन्तिकैरंडयवात्सुसिद्धात्।
प्रस्थो रसाच्छागरसार्धयुक्तः
साध्यः पुनः प्रस्थसमः स यावत् ॥ ५ ॥
प्रियंगुकृष्णाघनकल्कयुक्तः
सतैलसर्पिर्मधुसैंधवश्च।
स्याद्दीपनोमांसबलप्रदश्च
चक्षुर्बलं चोपदधाति सद्यः ॥ ६ ॥

वातकफजिद्बस्ति :—

एरंडमूलात्त्रिपलं पलाशा-
[1]त्तथा पलांशं लघुपंचमूलम्।
रास्नाबलाछिन्नरुहाश्वगंधा-
पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ ७ ॥
फलानि चाऽष्टौ सलिलाढकाभ्यां
विपाचयेदष्टमशेषितेऽस्मिन्
वचाशताह्वाहपुषाप्रियंगु-
यष्टीकणावत्सकबीजमुस्तम् ॥ ८ ॥
दद्यात्सुपिष्टं महतार्धयुतैल-
मक्षप्रमाणं लवणांशयुक्तम्।

१ तथा त्रीणिपलानि पलाशात्।

समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो
बस्तिर्जयेद्बलवन्दीपनोऽग्नौ ॥ ९ ॥

जंघोरुपादत्रिकपृष्ठकोष्ठ-
हृद्गुह्यशूलं गुरुतां विबंधम् ।
गुल्माश्मवर्ध्मग्रहणीगुदोत्थां-
स्तांस्तांश्च रोगान्कफवातजातान् ॥ १० ॥

पित्तामये यष्ट्यादिबस्तिः—

यष्ट्याह्वरोध्राभयचंदनैश्च
शृत पयोग्र्यं कमलोत्पलैश्च ।
सशर्कराक्षौद्रघृत सुशीतं
पित्तामयान्हंति सजीवनीयम् ॥ ११ ॥

दाहादिनाशको निरूहः—

रास्ना वृष [1]*लोहितिकामनंता*
बला कनीयस्तृणपंचमूल्यौ ।
[2]गोपांगनाचंदनपद्मकर्द्धी-
यष्ट्याह्वरोध्राणि पलार्धकानि ॥ १२ ॥
नि.क्वाथ्य तोयेन रसेन तेन
शृतं पयोर्धाढकमंबुहीनम् ।
जीवंतिमेदर्द्धिवरीविदारी ।
वीराद्विकाकोलिकसेरुकाभिः ॥ १३ ॥

सितोत्पलाजीवकपद्मरेणु-
पपौंडरीकोत्पलपुंडरीकैः ।
तोहात्मगुप्तामधुयष्टिकाभि-
र्नागाह्वमुजातकचंदनैश्च ॥ १४ ॥

---

१ लोहितिका—मञ्जिष्ठा । २ गोपा सारिवा ।

पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं
ससैंधवं शीतलमेव दद्यात् ।
प्रत्यागते धन्वरसेन शालीन्
क्षीरेण वाऽद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ १५ ॥
दाहातिसारप्रदरास्रपित्त-
हृत्पाण्डुरोगाग्निविषमज्वरं च ।
सर्वामयान् पित्तकृतान्निहंति ॥ १६ ॥

कफरोगितादेर्निरूहः—

कोशातकारग्बधदेवदारु-
मूर्वाश्वदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः ।
पक्त्वा कुलत्थान्बृहतीं च तोये
रसस्य तस्य प्रसृता दश स्युः ॥ १७ ॥
तान् सर्षपैलामदनैः सकुष्ठै-
रक्षप्रमाणैः प्रसृतैश्च युक्तान् ।
क्षौद्रस्य तैलस्य फलाह्वयस्य
क्षारस्य तैलस्य सर्षपिपश्च ॥ १८ ॥
दद्यान्निरूहं कफरोगिताय
मंदाग्नये चाशनविद्विषे च ।

सुकुमाराणां निरूहाः—

वक्ष्ये मृदून्स्नेहकृतो निरूहान्
सुखोचितानां प्रसृतैः पृथक् स्युः ॥ १९ ॥
अथेमान्सुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान्मृदून् ।
कर्मणा[1] विप्लुतानां तु वक्ष्यामि प्रसृतैः पृथक् ॥ २० ॥

वातघ्नोवस्तिः—

क्षीराद् द्वौ प्रसृतौ कार्यौ मधुतैलघृतात्त्रयः ।
खजेन मथितो वस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत् ॥ २१ ॥

१ कर्मणा वमनादिकर्मणा, विप्लुतानां भ्रष्टानाम् ।

वातजिद्बस्ति :—

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषाम् ।
बिल्वादिमूलक्वाथाद् द्वौ कौलत्थाद् द्वौ स
वातजित् ॥ २२ ॥

अभिष्यन्दादौबस्ति :—

पटोलनिंबभूतीकराम्रासप्तच्छदांभमः ।
प्रसृतः पृथगाज्याच्च बस्तिः सर्षपकल्कवान् ॥ २३ ॥
सपंचतिक्तोभिष्यदकृमिकुष्ठप्रमेहहा ।

विट्संगादिनाशकोबस्ति :—

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमंडाम्लकांजिकात् ॥ २४ ॥
प्रसृताः सर्षपैः पिष्टैर्विट्संगानाहभेदनः ।

शुक्रकरो बस्ति :—

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषाम् ॥ २५ ॥
एकैकप्रसृतो बस्तिः कृष्णाकल्को वृषत्वकृत् ।

सिद्धबस्तिकथनम्—

[1]सिद्धबस्तीनतो वक्ष्ये सर्वदा यान्प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥
निर्व्यापदो बहुफलान्बलपुष्टिकरान् सुखान् ।

माधुतैलिकोनिरूह :—

मधुतैले समे कर्षः सैंधवाद् द्विपिचुर्मिमिः ॥ २७ ॥
एरंडमूलक्वाथेन निरूहो [2]माधुतैलिकः ।
रसायनं प्रमेहार्शःकृमिगुल्मान्त्रवृद्धिनुत् ॥ २८ ॥
सयष्टिमधुकश्चैव चक्षुष्यो रक्तपित्तजित् ।

---

१ बलोपचयवर्णानां व्याधिरातस्य च सिद्धिकारकत्वात् सिद्धबस्तिः ।
२ मधुतैलयोः प्राधान्यान्माधुतैलिक इतिसंज्ञा ।

यापनो बस्ति :—

यापनो घनकल्केन मधुतैलरसाज्यवान् ॥ २९ ॥
पायुजघोरुवृषणबस्तिमेहनशूलजित् ।

युक्तरथोबस्ति :—

प्रसृतांशैर्घृतक्षौद्रवसातैलैः प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥
एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलः ससैंधवः ।
एष [1]युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफल. ॥ ३१ ॥

दोषहृद्बस्ति :—

सक्वाथो मधुपड्ग्रंथाशताह्वाहिंगुसैंधवः ।
मुरदारुवचारास्नाबस्तिर्दोषहरः परः ॥ ३२ ॥

सिद्ध बस्ति :—

पंचमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु ।
ससैंधवः समधुकः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ ३३ ॥

कफरोगादिजिद्बस्ति :—

द्विपंचमूलत्रिफलाफलबिल्वानि पाचयेत् ।
गोमूत्रेण च पिष्टैश्च पाठावत्सकतोयदैः ॥ ३४ ॥
सफलैः क्षौद्रतैलाभ्यां क्षारेण लवणेन च ।
युक्तो बस्तिः कफव्याधिपांडुरोगविसूचिषु ॥ ३५ ॥
शुक्रानिलविबंधेषु बस्त्याटोपे च पूजितः ।

वातह्रोग्र्यबस्ति :—

[2]मुस्तापाठामृतैरंडबलारास्नापुनर्नवा ॥ ३६ ॥

---

१ रथेष्वपि हि युक्तेषु हस्त्यश्वेष्वपि योजयेत् ।
तस्मान्न प्रतिषिद्धोऽयमतो युक्तरथः स्मृतः ॥—सुश्रुतम् ।

२ मुस्तादीनि सर्वाणिद्रव्याणि पृथक् पलप्रमाणानि । मदनफलानि अष्टौ ।

मंजिष्ठारग्वधोशीरत्रायमाणाक्षरोहिणीः ।
कनीयः पंचमूलं च पालिकं मदनाष्टकम् ॥ ३७ ॥
जलाढके पचेत्तच्च पादशेषं परिस्रुतम् ।
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं क्षीरशेषं पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥
सपादजांगलरसः ससर्पिर्मधुसैंधवः ।
पिष्टैर्यष्टिमिसिश्यामाकलिंगकरसांजनैः ॥ ३९ ॥
वस्तिः सुखोष्णो मांसाग्निबलशुक्रविवर्धनः ।
वातासृङ्मोहमेहार्शोगुल्मविण्मूत्रसंग्रहम् ॥ ४० ॥
विषमज्वरवीसर्पवर्ध्माऽध्मानप्रवाहिकाः ।
वक्षणोरुकटीकुक्षिमन्याश्रोत्रशिरोरुजः ॥ ४१ ॥
हन्यादसृग्दरोन्मादशोफकासाश्मकुंडलान्[1] ।

अत्यर्थवृष्यो बस्ति :—

चक्षुष्यः पुत्रदो राज्ञां यापनानां रसायनम् ॥ ४२ ॥
मृगाणां लघुवभ्रूणां दशमूलस्य चाम्भसा ।
हपुषामिसिगांगेयी[2]कल्कैर्वातहरः परम् ॥ ४३ ॥
निरूहोऽत्यर्थवृष्यश्च महास्नेहसमन्वितः ।

बलशुक्रकृद्बस्ति :—

मयूरं पक्षपित्तान्त्रपादविट्तुंडवर्जितम् ॥ ४४ ॥
लघुना पंचमूलेन पालिकेन समन्वितम् ।
पक्त्वा क्षीरजले क्षीरशेषं मघृतमाक्षिकम् ॥ ४५ ॥
तद्विदारीकणायष्टीमसाह्वाफलवल्कवत् ।
बस्तिरीषत्पटुयुतः परमं बलशुक्रकृत् ॥ ४६ ॥

तित्तिर्यादिष्वप्येवंकल्पना—

कल्पनेयं पृथक् कार्या तित्तिरिप्रभृतिष्वपि ।

---

१ अश्मअश्मरी । कुण्डलं वातकुण्डलिका । २ गाङ्गेयी-मुस्ता ।

विष्किरेषु समस्तेषु प्रतुदप्रसहेषु च ॥ ४७ ॥
जलचारिषु तद्वच्च मत्स्येषु क्षीरवर्जिता ।

रसायनबस्ति :—

गोधानकुलमार्जारशल्यकोंदुरजं पलम् ॥ ४८ ॥
पृथक् दशपलं क्षीरे पंचमूलं च साधयेत् ।
तत्पयः फलवैदेहीकल्कद्विलवणान्वितम् ॥ ४९ ॥
ससितातैलमध्वाज्यो वस्तिर्योज्यो रसायनम् ।
व्यायाममथितोरस्कक्षीणेंद्रियबलौजसाम् ॥ ५० ॥
विबद्धशुक्रविण्मूत्रखुडवातविकारिणाम् ।
गजवाजिरथक्षोभभग्नजर्जरितात्मनाम् ॥ ५१ ॥
पुनर्नवत्वं कुरुते वाजीकरणसत्तमः ।

भोजनम्—

सिद्धेन पयसा भोज्यमात्मगुप्तोच्चटेक्षुरैः ॥ ५२ ॥

स्नेहबस्तिकल्पनम्—

[1]स्नेहाश्चायंत्रणान् सिद्धान्सिद्धद्रव्यैः प्रकल्पयेत् ।

स्नेहबस्तिःसर्ववातविकारजित्—

दोषघ्नाः सपरीहारा वक्ष्यंते स्नेहबस्तयः ॥ ५३ ॥
दशमूलं बलां रास्नामश्वगंधां पुनर्नवाम् ।
गुडूच्येरंडभूतीकभार्गीवृषकरोहिषम् ॥ ५४ ॥
शतावरी सहचरं काकनासां पलाशकम् ।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥ ५५ ॥
वहे विपाच्य तोयस्य द्रोणशेषेण तेन च ।
पचेत्तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ५६ ॥

---

१ स्नेहान् स्नेहबस्तीन् । अयन्त्रणान् परिहार रहितान् ।

अनुवासनमित्येतत्सर्ववातविकारनुत् ।
अनूपानां वसा तद्वज्जीवनीयोपसाधिता ॥ ५७ ॥
शताह्वाचिरिबिल्वाम्लैस्तैलं सिद्धं समीरघ्नं ।
सैंधवेनाग्निवर्णेन तप्तं वाऽनिलजिद् घृतम् ॥ ५८ ॥

पुत्रीयमनुवासनम्—

जीवंतीं मदनं मेदां श्रावणी मधुकं बलाम् ।
शताह्वर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥ ५९ ॥
स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शठीं वचाम् ।
पिष्ट्वा तैलघृतं क्षीरे साधयेत्तच्चतुर्गुणे ॥ ६० ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्धनम् ।
रजःशुक्रामयहरं पुत्रीयमनुवासनम् ॥ ६१ ॥

कफरोगादिनुदनुवासनम्—

सैंधवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलो वचा ।
ह्रीवेरं मधुकं भार्गी देवदारुसकट्फलम् ॥ ६२ ॥
नागरं पुष्करं मेदा चविका चित्रकः शठी ।
विडंगातिविषा श्यामा हरेणुर्नीलिनी स्थिरा ॥ ६३ ॥
बिल्वाजमोदचपला दंती रास्ना च तैः समैः ।
साध्यमेरंडतैलं वा तैलं वा कफरोगनुत् ॥ ६४ ॥
वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीं चाशु हन्यात्तदनुवासनम् ॥ ६५ ॥

साधिततैलंकफघ्नम्—

साधितं पंचमूलेन तैलं बिल्वादिनाऽथवा ।
कफघ्नं कल्पयेत्तैलं द्रव्यैर्वा कफघातिभिः ॥ ६६ ॥
फलैरष्टगुणैश्चाम्लैः सिद्धमन्वासनं कफे ।

तीक्ष्णादिबस्ति :—

मृदुर्बस्तिर्जडीभूते तीक्ष्णोऽन्यो बस्तिरिष्यते ॥ ६७ ॥

तीक्ष्णविकल्पिने स्निग्धो मधुरः शिशिरो मृदुः ।
तीक्ष्णत्वं मूत्रपील्वग्निलवणक्षारसर्षपैः ।
प्राप्तकालं विधातव्यं, घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ॥ ६८ ॥

विचार्य प्रयुक्तोवस्तीरोगहृत :—

बलकालरोगदोषप्रकृतीः प्रविभज्य योजितो वस्तिः ।
स्वैः स्वैरोषधवर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निवर्तयति ॥ ६९ ॥

बस्तियोजना प्रकार :—

उष्णार्तानां शीताञ्छीतार्तानां तथा सुखोष्णांश्च ।
तद्योग्यौषधयुक्तान्बस्तीन्संतवर्य युंजीत ॥ ७० ॥

वस्तेरयोग्या :—

वस्तीन्न बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विशोधनीयेषु ।
मेदस्विनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥ ७१ ॥
न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशुद्धदेहानाम् ।
दद्याद्विशोधनीयान् 'दोषनिबद्धायुषो ये च" ॥ ७२ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।

वस्तेरयोग :—

"अस्निग्धस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः ।
शीतोऽल्पस्नेहलवणद्रव्यमात्रो घनोऽपि वा ॥ १ ॥

---

१ विशोधनीयाञ्छोधनकरान् वस्तीन् । दोषैर्निबद्धं सम्बद्धमायुर्जीवनं येषां ते दोषनिबद्धायुषः ।

बस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादनिर्हरन् ।
करोत्ययोगं तेन स्याद्वातमूत्रशकृद्ग्रहः ॥ २ ॥
नाभिबस्तिरुजादाहो हृल्लेपः श्वयथुर्गुदे ।
कंडूर्गण्डानि वैवर्ण्यमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥

तत्रचिकित्सा—

[1]क्वाथद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि ।
उष्णस्य तस्माद्येकस्य तत्र पानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥
फलवर्त्यस्तथा स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम् ।
विल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान् ॥ ५ ॥
सुरादिमास्तत्र बस्तिः [2]सप्राक्पेष्यस्तमानयेत् ।

अल्पवीर्यबस्तौदत्ते वायुरोधादि :—

युक्तोऽल्पवीर्यो दोषाढ्ये रूक्षे क्रूराशयेऽथवा ॥ ६ ॥
बस्तिर्दोषावृतो रुद्धमार्गो रुंद्ध्यात्समीरणम् ।
सविमार्गोनिल कुर्यादाध्मानं मर्मपीडनम् ॥ ७ ॥
विदाहं गुरुकोष्ठस्य मुष्कवंक्षणवेदनम् ।
रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति ॥ ८ ॥

तत्रचिकित्सा—

स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तत्र बर्त्ति प्रयोजयेत् ।
बिल्वादिश्च निरूहः स्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान् ॥ ९ ॥
सरलामरदारुभ्यां साधितं वाऽनुवासनम् ।

वेगरोधेन बस्तिर्मूर्च्छादिकृत्—

कुर्वतो वेगसरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया ॥ १० ॥

---

१ प्रागतिसारचिकित्सिते । क्वाथद्वयं भूतीकपिप्पल्यादिरेको, बिल्व घनिको द्वितीयः । २ प्राक्पेष्येण सह वर्तत इति सप्राक्पेष्यः । पूर्वोध्यायेबस्तिकल्पे बलांगुडूचीमित्यादौ पेष्योयवान्यादिस्तेनप्राक्पेष्येण युक्तः । तमुत्क्लिष्टदोषम् ।

तीक्ष्णेविकर्षिते स्निग्धो मधुरः शिशिरो मृदुः ।
तीक्ष्णत्वं मूत्रपील्वग्निलवणक्षारसर्षपैः ।
प्राप्तकालं विधातव्यं, घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ॥ ६८ ॥

विचार्य प्रयुक्तोबस्तीरोगघ्न :—

बलकालरोगदोषप्रकृतीः प्रविभज्य योजितो बस्तिः ।
स्वैः स्वैरोषधवर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निवर्तयति ॥ ६९ ॥

वस्तियोजना प्रकार :--

उष्णार्तानां शीताञ्छीतार्तानां तथा सुखोष्णांश्च ।
तद्योग्यौषधयुक्तान्बस्तीन्मंतव्यं युंजीत ॥ ७० ॥

वस्तेरयोग्या :—

वस्तीन्न बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विशोधनीयेषु ।
मेदस्विनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥ ७१ ॥
न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशुद्धदेहानाम् ।
दद्याद्विशोधनीयान् [1]'दोषनिबद्धायुषो ये च" ॥ ७२ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।

वस्तेरयोग :—

"अस्निग्धस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः ।
शीतोऽल्पस्नेहलवणद्रव्यमात्रो घनोऽपि वा ॥ १ ॥

---

१ विशोधनीयाञ्छोधनकरान् बस्तीन् । दोषैर्निबद्धं सम्बद्धमायुर्जीवितं येषां ते दोषनिबद्धायुषः ।

बस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादनिर्हरन् ।
करोत्ययोगं तेन स्याद्वातमूत्रशकृद्ग्रहः ॥ २ ॥
नाभिबस्तिरुजादाहो हृल्लेपः श्वयथुर्गुदे ।
कण्डूर्गण्डानि वैवर्ण्यमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥

तत्रचिकित्सा—

[1]क्वाथद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि ।
उष्णस्य तस्माद्वेधकस्य तत्र पानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥
फलवर्त्यस्तथा स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम् ।
विल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान् ॥ ५ ॥
सुरादिमास्तत्र बस्तिः [2]सप्राक्पेय्यस्तमानयेत् ।

अल्पवीर्यबस्तीदत्ते वायुरोधादि :—

युक्तोऽल्पवीर्यो दोषाढ्ये रूक्षे क्रूराशयेऽथवा ॥ ६ ॥
बस्तिर्दोषावृतो रुद्धमार्गो रुद्ध्वान्समीरणम् ।
सविमार्गोऽनिलं कुर्यादाध्मानं मर्मपीडनम् ॥ ७ ॥
विदाहं गुरुकोष्ठस्य मुष्कवङ्क्षणवेदनम् ।
रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति ॥ ८ ॥

तत्रचिकित्सा--

स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तत्र वर्तिं प्रयोजयेत् ।
विल्वादिश्च निरूहः स्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान् ॥ ९ ॥
सरलामरदारुभ्यां साधितं वाऽनुवासनम् ।

वेगरोधेन बस्तिर्मूर्च्छादिकृत्—

कुर्वतो वेगसरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया ॥ १० ॥

---

१ प्रागतिसारचिकित्सिते । क्वाथद्वयं भूतीकपिप्पल्यादिरेको, बिल्व धनिको द्वितीयः । २ प्राक्पेय्येण सह वर्तत इति सप्राक्पेय्यः । पूर्वाध्यायेबस्तिकल्पे बलागुडूच्योमित्यादौ पेय्योयवान्यादिस्नेनप्राक्पेय्येण युक्तः । तमुत्क्लिष्टदोषम् ।

अल्पेऽदोपे मृदौ कोष्ठे प्रयुक्तो वा पुनःपुनः ।
अतियोगत्वमापन्नो भवेत्कुक्षिरुजाकरः ॥ २२ ॥
विरेचनातियोगेन स तुल्याकृतिसाधनः ।

पैत्तिकस्यचक्षारादिनाकृतोबस्तिर्दाहादिकृत्—

बस्तिः क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णलवणः पैत्तिकस्य वा ॥ २३ ॥
गुदं दहन् लिखन् क्षिण्वन्करोत्यस्य परिस्रवम् ।
स विदग्धं स्रवत्यस्रं वर्णैः पित्तं च भूरिभिः ॥ २४ ॥
बहुशश्चातिवेगेन मोहं गच्छति सोऽसकृत् ।
रक्तपित्तातिसारघ्नी क्रिया तत्र प्रशस्यते ॥ २५ ॥
दाहादिषु त्रिवृत्कल्कं मृद्वीकावारिणा पिबेत् ।
तद्धि पित्तशकृद्वातान्हृत्वा दाहादिकाञ्जयेत् ॥ २६ ॥
विशुद्धश्च पिबेच्छीतां यवागूं शर्करायुताम् ।
युञ्ज्याद्वातिविरिक्तस्य क्षीणविट्कस्य भोजनम् ॥ २७ ॥
माषयूषेण कुल्माषान्पानं दध्यथवा सुराम् ।

स्नेहबस्तेर्व्यापत्सिद्धिः—

सिद्धिर्बस्त्यापदामेवं स्नेहबस्तेस्तु वक्ष्यते ॥ २८ ॥

अधिकेवातादियोगे चिकित्सा—

शीतोऽल्पो वाऽधिके वाते पित्तेऽत्युष्णः कफे मृदुः ।
अतिभुक्ते गुरुर्वर्चःसंचयेऽल्पबलस्तथा ॥ २९ ॥
दत्तस्तैरावृतस्नेहो नायात्यभिभवादपि ।
स्तंभोरुसदनाध्मानज्वरशूलांगमर्दनैः ॥ ३० ॥
पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्याद्वायुना स्नेहमावृतम् ।
स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तं रास्नापीतद्रुतैलिकैः ॥ ३१ ॥
सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसाधितैः ।
निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक् समूत्रैः पंचमूलकैः ॥ ३२ ॥

मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धो यवकोलकुलत्थवान् ।
तत्सिद्धतैलो देयः स्यान्निरूहः सानुवासनः ॥ ४२ ॥
कंठादागच्छतः स्तंभकंठग्रहविरेचनैः ।
छर्दिघ्नीभिः क्रियाभिश्च तस्य कुर्यान्निबर्हणम् ॥ ४३ ॥

अपक्वस्नेहोनयोज्य :—

नापक्वं प्रणयेत्स्नेहं गुदं स ह्युपलिंपति ।
ततः कुर्यात्तृण्मोहकंडूशोफान् क्रियाऽत्र च ॥ ४४ ॥
तीक्ष्णो बस्तिस्तथा तैलमर्कपत्ररसे शृतम् ।

अनुच्छ्वास्यबस्तेर्वदनेबद्धेचिकित्सा—

अनुच्छ्वास्य तु बद्धे वा दत्ते निःशेष एव च ॥ ४५ ॥
प्रविश्य क्षुभितो वायुः शूलतोदकरो भवेत् ।
तत्राभ्यंगो गुदे स्वेदो वातघ्नान्यशनानि च ॥ ४६ ॥

शीघ्रंप्रणीतादौचिकित्सा--

द्रुतं प्रणीते निष्कृष्टे सहसोत्क्षिप्त एव वा ।
स्यात्कटीगुदजंघोरुबस्तिस्तंभार्तिभेदनम् ॥ ४७ ॥
भोजनं तत्र वातघ्नं स्वेदाभ्यंगाः सबस्तयः ।

पीड्यमानेमध्येमुक्ते चिकित्सा--

पीड्यमानेंतरा मुक्ते गुदे प्रतिहतोनिलः ॥ ४८ ॥
उरःशिरोरुजं सादमूर्वोश्च जनयेद्बली ।
बस्तिः स्यात्तत्र बिल्वादिफलैः श्यामादिमूत्रवान् ॥ ४९ ॥

अतिप्रपीडितेचिकित्सा—

अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठत्यायाति वा गलम् ।
तत्र बस्तिर्विरेकश्च गलपीडादि कर्म च ॥ ५० ॥

विशुद्धोनरोयत्नतो रक्षणीय :—

वमनाद्यैर्विशुद्धं च क्षामदेहबलानलम् ।
यथांडं तरुणं पूर्णं तैलपात्रं यथा तथा ॥ ५१ ॥

भिषक् प्रयत्नतो रक्षेत्सर्वस्मादपचारतः ।
दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोम्ललवणौ रसौ ॥ ५२ ॥
स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः ।
अन्योन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरूक्षयोः ॥ ५३ ॥
व्यत्यासादुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत् ।
सर्वसहः स्थिरबलो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः" ॥ ५४ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो भेषजकल्पं व्याख्यास्यामः ।

प्रशस्तभेषजलक्षणम्—

"[1]धन्वसाधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ ।
श्मशानचैत्यायतनश्वभ्रवल्मीकवर्जिते ॥ १ ॥
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते ।
अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्बलवत्तरैः ॥ २ ॥
शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः ।
जंत्वजग्धं दवादग्धमविदग्धं च वैकृतैः[2] ॥ ३ ॥
भूतैश्छायातपाम्ब्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम् ।
अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ॥ ४ ॥

---

१ धन्वदेशे जाङ्गलदेशे । २ दवो वनाग्निः । वैकृतैर्विगुणैर्भूतैराकाशादिभूतैरविदग्धमनासेवितम् ।

औषधग्रहण काल :--

अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः ।
गृह्णीयादौषधं सुस्थं [1]स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥
सक्षीरं तदभावस्तावनतिक्रान्तवत्सरम् ।
ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडंगतः ॥ ६ ॥

दुग्धादेर्ग्रहणविधि :--

पयो बाष्कयण्या[2] ग्राह्यं विषमूत्रं तच्च नीरुजम् ।
वयोबलवतां धातुपित्तश्रृंगखुरादिकम् ॥ ७ ॥

कषाययोनयः पंचरसा :--

कषाययोनयः पंच रसा लवणवर्जिता ।
रसः कल्कः शृतः शीतः फांटश्चेति प्रकल्पना ॥ ८ ॥
पंचधैव कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिका ।

स्वरसादीनां लक्षणानि--

सद्यः समुद्धृतात्क्षुण्णाद्यः स्रवेत्पटपीडितात् ॥ ९ ॥
स्वरसः स समुद्दिष्टः,
　　　　कल्कः पिष्टो द्रवाप्लुतः ।,
चूर्णोऽप्लुतः[3],
　　शृतः क्वाथः,
　　शीतो रात्रिं द्रवे स्थितः ॥ १० ॥,
सद्योभिषुतपूतस्तु [4]फांटस्तन्मानकल्पने ।

मात्राविचार :—

युंज्याद्व्याध्यादिबलतस्तथा च वचनं मुनेः ॥ ११ ॥

---

१ सुस्थंस्थितं स्थिरनियुक्तमौषधम् । २ बष्कयणी तरुणवत्सागौः । ३ अप्लुतो रहितः-शुष्कमेवपिष्टं द्रव्यं चूर्णशब्दवाच्यम् । ४ तेषां स्वरसादीनां मानं च कल्पना च मानकल्पने । पेष्यस्यकल्कस्य चूर्णस्य वा कर्षे मध्यमानं । तच्चान्येऽप्यस्यकर्षं कस्यचित् द्रवस्य पलत्रये प्रक्षिप्यालोड्यम् ।

मात्राया न व्यवस्थाऽस्ति व्याधिं कोष्ठं बलं वयः ।
आलोच्य देशकालौ च योज्या तद्वच्च कल्पना ॥ १२ ॥

मानम्

मध्यं तु मानं निर्दिष्टं स्वरसस्य चतुःपलम् ।
पेष्यस्य कर्षमालोड्यं तद्द्रवस्य पलत्रये ॥ १३ ॥

कल्पना :--

क्वाथं द्रव्यपले[1] कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम् ।
शीतं पले पलैः षड्भिः,

स्नेहपाक परिभाषा--

[2]चतुर्भिश्च ततोऽपरम् ॥ १४ ॥,
स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम् ।
कल्कस्नेहद्रवं योज्यम्,

स्नेहकल्पनायां शौनकमतम्--

अधीते शौनकः पुनः ॥ १५ ॥
स्नेहे सिद्ध्यति शुद्धाम्बुनिःक्वाथस्वरसैः क्रमात् ।
कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ १६ ॥
पृथक् स्नेहसमं [3]दद्यात्पंचभृति तु द्रवम् ।

स्नेह पाकलक्षणम्--

नाङ्गुलिग्राहिता कल्के न स्नेहेऽग्नौ सशब्दता ॥ १७ ॥

---

१ क्वाथं द्रव्यपले प्रस्थार्धद्रवस्यदत्वा पाकेन पादशेषितं कुर्यात्। शीतं हिमकषायं पलद्रव्ये षड्भिःपलैर्द्रवैः कृत्वा कल्पयेत् । २ अपरं फाटं चतुर्भिश्चतुर्गुणै र्द्रवैर्द्रव्यापेक्षया कुर्यात्। स्नेहपाके कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः। शुद्धाम्बुनासिद्ध्यतिस्नेहे कल्कस्यांश स्नेहाच्चतुर्थं, क्वाथेन षष्ठं, स्वरसैरष्टमम्। यत्र स्नेहे पञ्चद्रवा. स्युस्तत्र द्रवस्य पृथङ्मानं स्नेहसमम्। न तु परस्परसाम्येन मिलितानि स्नेहचतुर्गुणानि ।

वर्णादिसंपच्च यदा तदैनं शीघ्रमाहरेत् ।

अन्यलक्षणम्—

घृतस्य फेनोपशमस्तैलस्य तु [1]तदुद्भवः ॥ १८ ॥
लेहस्य तंतुमत्ताऽप्सु मज्जनं शरणं न च ।
पाकस्तु त्रिविधो मंदश्चिक्कणः खरचिक्कणः ॥ १९ ॥
[2]मंदः कल्कसमे किंचिच्चिक्कणो मदनोपमे ।
किंचित्सीदति कृष्णे च वर्तमाने च पश्चिमः ॥ २० ॥
दग्धोत ऊर्ध्वं निःसार्यः स्यादामस्त्वग्निमादकृत् ।
मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यंगे, पाने बस्तौ च चिक्कणः ॥ २१ ॥

मानपरिभाषा—

शाणं पाणितलं मुष्टिः कुडवः प्रस्थमाढकम् ।
द्रोणं वहं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥

शुष्कार्द्रद्रव्ययोर्योजनाप्रकारः—

द्विगुणं योजयेदार्द्रं कुडवादि तथा द्रवम् ।

अनुक्ते द्रवे जलंमाह्यम्—

पेषणालोडने वारि स्नेहपाके च निर्द्रवे ॥ २३ ॥

भागमाह्यता—

कल्पयेत्सदृशान्भागान्प्रमाणं यत्र नोदितम् ।
कल्कीकुर्याच्च भैषज्यमनिरूपितकल्पनम् ॥ २४ ॥

---

१ तदुद्भवः फेनोत्पत्तिः, शरणमवयवशोगमनमप्सु एव ।

२ कल्केन समे समानेद्रव्ये कल्कोयथाङ्गुलिगृह्णातिकिञ्चितया मन्दःपाकः मृदुरित्यर्थः । मन्दपाके स्नेहस्य कल्कस्य च पृथक्त्वं भवति । चिक्कणो मध्यम इत्यर्थः । मदनोपमे मधूच्छिष्टतुल्ये । कल्के किंचित्सीदति अवमग्ने, कृष्णे कृष्ण-वर्णे । वर्तमानेवर्तिमागच्छति वर्तियत्कल्के । पश्चिमोऽन्तिमः खरचिक्कण इत्यर्थः । अतऊर्ध्वंखरचिक्कणादूर्ध्वं दग्धोदग्धपाकः, आमपाक ईषत्पाकः स्नेहः ।

मानकथनम्—

द्वौ शाणौ वटकः कोलं बदरं द्रंक्षणश्च, तौ[1] ।
अक्षं पिचुः पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ २५ ॥
कर्षो बिडालपदकं तिन्दुकः पाणिमानिका ।,
[2]शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे शुक्तिरष्टमिका पिचू ॥ २६ ॥
पलं प्रकुंचो बिल्वं च मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।,
द्वे पले प्रसृतस्तौ[3] द्वावञ्जलिस्तौ[4] तु मानिका ॥ २७ ॥
आढकं भाजनं कंसो द्रोणः कुंभो घटोऽर्मणम् ।
तुला पलशतं तानि विंशतिर्भार उच्यते ॥ २८ ॥

शैलभेदाद्द्रव्यविशेषः—

हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुंधरा ।
सौम्यं पथ्यं च तत्राद्यमाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम्[5] ॥ २९ ॥

समाप्तमिदं कल्पस्थानम् । अ० ॥ ६ ॥ श्लो० ३१२ ॥

---

१ तौ द्रंक्षणद्वयमक्षम् । २ अभिन्नेऽर्थे-एकस्मिन्नर्थे शब्दान्यत्वं शब्दानामनेकत्वं पर्यायवाचित्वमित्यर्थः । यथा वटकादयः परस्परंपर्यायाः । अक्षाद्वारभ्य पाणिमानिकान्ताः शब्दाः पर्यायाः । एवमन्यत्राप्यूह्यम् । ३ तौ द्वौ प्रसृतावञ्जलिः । ४ तौ द्वौ अञ्जली मानिका । तानि-पलशतानि विंशतिर्भारः । आद्यं हैमवतमौषधम् ।

अष्टाङ्गहृदये

उत्तरस्थानम् ।

कौमारभृत्यम्

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालोपचरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

जातमात्रस्यबालस्य उत्तरकालीनं कर्म—

"जातमात्रं विशोध्योल्बाद्बालं[1] सैंधवसर्पिषा ।
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् ॥ १ ॥
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।
अथास्य दक्षिणे कर्णे मंत्रमुच्चारयेदिमम् ॥ २ ॥

मन्त्रनिर्देश :—

"अंगादंगात्संभवसि हृदयादभिजायसे" ।
"आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां शतम्" ॥ ३ ॥
"शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि" ।
"नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु" ॥ ४ ॥

---

१ उल्वात् जरायोः ।

नालच्छेदनम्—

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरंगुलात् ।
बद्धोर्ध्वं वर्धयित्वा च [1]ग्रीवायामवसंजयेत् ॥ ५ ॥
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्स्नपयेदनु ।
क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा ॥ ६ ॥
कोष्णेन तप्तरजततपनीयनिमज्जनैः ।

तालून्नमनादि—

ततो दक्षिणतर्जन्या तालून्नम्यावगुंठयेत् ॥ ७ ॥
शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत् ।
हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमंत्रितम् ॥ ८ ॥
[2]ऐंद्रीब्राह्मीवचाशंखपुष्पीकल्कं घृतं मधु ।
चामीकरवचाब्राह्मीताप्यपथ्या रजीकृताः ॥ ९ ॥
लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा ।

गर्भाम्भोवमनम्—

गर्भाम्भः सैन्धववता सर्पिषा वामयेत्ततः ॥ १० ॥

जातकर्म—

प्राजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत् ।

मातुस्तन्यप्रवर्तने हेतुः—

सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात्प्रसूतितः ॥ ११ ॥
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ।

---

१ नाभिं चतुरंगुलादूर्ध्वं बद्ध्वा, वर्धयित्वाछेदयित्वा । छिन्नां नाड्यग्रप्रदेश-सूत्रबद्धां कृत्वा तत्सूत्रं ग्रीवायामवसजयेत्-योजयेत् शिथिलं बध्नीयात् । ग्रीवाया सूत्रयोजनं सावपरिहारार्थम् । तपनीयं स्वर्णम् । २ ऐन्द्री इन्द्रवारुणी । चामीकरं सुवर्णम् ।

बालस्यभोजन प्रकार :—

प्रथमे दिवसे तस्मात्त्रिकालं मधुसर्पिषी ॥ १२ ॥
अनंतामिश्रिते मंत्रपाविते प्राशयेच्छिशुम् ।
द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं, ततः ॥ १३ ॥
प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य [1]तत्पाणितलसमितम् ।
स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

स्तन्यपानार्थं धात्रीयोजना—

मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये ।
स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये तदसंपदि वत्सले ॥ १५ ॥
अव्यंगे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः समे ।
नीरुजे मध्यवयसौ जीवद्वत्से न लोलुपे ॥ १६ ॥
हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्च ते ।

स्तन्यनाशहेतव :—

शुक्रोधलंघनायासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः ॥ १७ ॥

स्तन्यवृद्धिहेतव :—

[2]स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः ।
क्षीरं क्षीरिण्य ओषध्यः शोकादेश्च विपर्ययः ॥ १८ ॥

स्तन्यं बालस्यरोगहेतु :—

विरुद्धाहारभुक्तायाः क्षुधिताया विचेतसः ।
प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः ॥ १९ ॥

मातुःस्तन्याभावेछागादिपय :—

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा [3]तद्गुणं पिबेत् ।
ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥ २० ॥

---

१ तस्यशिशोः पाणितलेन सम्मितं नवनीतम् । तदसम्पदि मातृस्तन्यासम्पत्तौ । २ स्तन्यस्य इत्यत्र हेतव इति योज्यम् । ३ तद्गुणं छागसमानगुणम् । पञ्चमूलेन स्थिरया पाचनेन गव्यंक्षीरंस्यात् ।

षष्ठीरात्रिकृत्यम्—

षष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः ।
जागृयुर्बान्धवास्तस्य दधतः परमां मुदम् ॥ २१ ॥

नामकरणम्—

दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः ।
कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चार्चितम् ॥ २२ ॥
बिभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्लादरोचनागुरुचंदनम् ।
नक्षत्रदेवतायुक्तं बांधवं वा समाक्षरम् ॥ २३ ॥

आयुःपरीक्षणादि :—

ततः प्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुःपरीक्षणम् ।
[1]प्रागुदक्शिरसः कुर्यात् बालस्य ज्ञानवान् भिषक् ॥ २४ ॥
शुचिधौतोपधानानि निर्वलीनि मृदूनि च ।
शय्यास्तरणवासांसि रक्षोघ्नैर्धूपितानि च ॥ २५ ॥
काकी [2]विशस्तः शस्तश्च धूपने त्रिवृतान्वितः ।

मण्यादिधारणम्—

[3]जीवत्खड्गादि शृंगोत्थान् सदा बालः शुभान् मणीन् ॥
धारयेदौषधीः श्रेष्ठा ब्राह्मींद्रीजीवकादिकाः ।
हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विशेषात्सततं वचाम् ॥ २७ ॥
आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थ्यकरी रक्षोभिरक्षिणीम् ।
पंचमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत् ॥ २८ ॥
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत् ।

कर्णव्यध :—

षट्सप्तमाष्टमासेषु नीरुजस्य शुभेऽहनि ॥ २९ ॥

---

१ प्राक् शिरसः, उत्तरशिरसोवा । २ विशस्तोमारितो न तु स्वयंमृतः ।
३ खड्गः "गैंडा" इति भाषा, मणिः "मनिया" गुरिया इतिभाषा । आयुर्मेधे-

कर्णौ हिमागमे विध्येद्धात्र्यङ्कस्थस्य सान्त्वयन् ।
प्राग्दक्षिणं कुमारस्य भिषग्वामं तु योषितः ॥ ३० ॥
दक्षिणेन दधत्सूचीं पालिमन्येन पाणिना ।
[1]मध्यतः कर्णपीठस्य किंचिद्गण्डाश्रयं प्रति ॥ ३१ ॥
जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।
धृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते ॥ ३२ ॥
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जु लाघवात् ।
नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाधः सिरास्तत्र[2] हि संश्रिताः ॥ ३३ ॥
कालिका मर्मरी रक्ता

सिराव्यधाद्रागादयः—

तद्व्यधाद्रागरुग्ज्वराः ।
सशोफदाहसंरम्भमन्यास्तम्भापतानकाः ॥ ३४ ॥
तेषां यथामयं कुर्याद्विभज्याशु चिकित्सितम् ।

सम्यग्व्यधेगुणाःकर्तव्यानि च—

स्थाने व्यधान्न रुधिरं न रुगरागादिसंभवः ॥ ३५ ॥
स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं सूत्रं चानु निधापयेत् ।
आमे तैलेन सिञ्चेच्च बहलां तद्वदारया ॥ ३६ ॥
विध्येत्पाली हितभुजः सञ्चार्याथ [3]स्थवीयसी ।
वर्तिस्त्र्यहात्ततो रूढं वर्धयेत शनैःशनैः ॥ ३७ ॥

जातदन्तस्य कर्म—

अथैनं जातदशनं क्रमेणापनयेत्स्तनात् ।
पूर्वोक्तं योजयेत्क्षीरमन्नं च लघुबृंहणम् ॥ ३८ ॥

भक्षणार्थंमोदकः—

प्रियालमज्जमधुकमधुलाजसितोपलैः ।
[4]अपस्तनस्य संयोज्यः प्रीणनो मोदकः शिशोः ॥ ३९ ॥

---

१ कर्णपीठस्यमध्यतो मध्यभागे । निश्चलंधृतस्य बालस्य । २ तत्र-ऊर्ध्वादिः पार्श्वप्रदेशे । बहलां स्थूलाम् । ३ स्थवीयसी-अतिशय स्थूलावर्तिः । पूर्वोक्तक्षीरं छागादिकम् । ४ अपस्तनस्य त्यक्तस्तनस्य ।

दीपनो बालबिल्वैलाशर्करालाजसक्तुभिः ।
संग्राही धातकीपुष्पशर्करालाजतर्पणः ॥ ४० ॥

बालस्यरोगशान्त्युपाय :—

रोगांश्चास्य जयेत्सौम्यैर्भेषजैरविषादकैः ।
अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेर्विरेकं सुतरां त्यजेत् ॥ ४१ ॥

भयोत्पादनं न कार्यम्—

[१]त्रासयेन्नाविधेयं तं त्रस्तं गृह्णन्ति हि ग्रहाः ।

रक्षणम्—

वस्त्रवातात्खरस्पर्शात् पालयेल्लंघिताच्च तम् ॥ ४२ ॥

वाङ्मेधादिकरं घृतम्—

ब्राह्मीसिद्धार्थकवचासारिवाकुष्ठसैन्धवैः ।
सकणैः साधितं पीतं वाङ्मेधास्मृतिकृद्घृतम् ॥ ४३ ॥
आयुष्यं पाप्मरक्षोघ्नं भूतोन्मादनिबर्हणम् ।

द्वितीयं घृतम्—

[२]वचेन्दुलेखा मण्डूकी शंखपुष्पी शतावरी ॥ ४४ ॥
ब्रह्मसोमामृताब्राह्मीः कल्कीकृत्य पलांशिकाः ।
अष्टांगं विपचेत्सर्पिःप्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥
तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत् ।

सारस्वतं घृतम्—

अजाक्षीराभयाव्योषपाठोग्राशिग्रुसैन्धवैः ॥ ४६ ॥
सिद्धं सारस्वतं सर्पिर्वाङ्मेधास्मृतिवह्निकृत् ।

अन्यद्घृतम्—

वचामृताशठीपथ्याशंखिनीवेल्लनागरैः ॥ ४७ ॥

---

१ अविधेयमनाज्ञाकारिणम् । २ इन्दुलेखा बाकुची । मण्डूकी मंजिष्ठा । ब्रह्म-पलाशः ।

अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद्गुणैः ।

चत्वारो लेहा :—

हेमश्वेतवचा कुष्ठमर्कपुष्पी सकांचना ॥ ४८ ॥
[1]हेममत्स्याक्षकः शंखः कैडर्यः कनकं वचा ।
चत्वार एते पादोक्ताः प्राश्या मधुघृतप्लुताः ॥ ४९ ॥
वर्षं लीढा वपुर्मेधाबलवर्णकराः शुभाः ।

वचादिभिर्वाग्विशुद्धि :—

वचायष्ट्याह्वसिंधूत्थपथ्यानागरदीप्यकैः ॥ ५० ॥
शुद्धयते वाग्घविलीढैः सकुष्ठकणजीरकैः ।"

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालामयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

त्रिविधो बाल :—

"त्रिविधः कथितो बालः [2]क्षीरान्नोभयवर्तनः ।
स्वास्थ्यं [3]ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः ॥ १ ॥

---

१ हेम स्वर्णम् । अर्कपुष्पी पयस्या अर्कतुल्यपयःपुष्पा । श्वेतदूर्वेत्यन्ये । मत्स्याक्षकोब्राह्मी । शंखः शंखपुष्पी । कैडर्यः महानिम्बः ।

२ क्षीरवर्तनः, अन्नवर्तनः, क्षीरान्नोभयवर्तनः । वर्तनं वृत्तिः । सुश्रुतेनु क्षीराद इतिशब्दव्यवहारः । ३ ताभ्यां क्षीरान्नाभ्याम् । यत् क्षीरम् । अद्भिर्जलैः ।

शुद्धक्षीरलक्षणम्—

यदद्भिरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम् ।
तद्विशुद्धं पयः

दुष्टक्षीर लक्षणम्—

वाताद्दुष्टं तु प्लवतेऽम्भसि ॥ २ ॥

कषायं फेनिलं रूक्षं वर्चोमूत्रविबंधकृत् ।
पित्ताद्दुष्टाम्लकटुकं पीतराज्यम्बु दाहकृत् ॥ ३ ॥
कफात्सलवणं गाढ़ं जले मज्जति पिच्छिलम् ।
संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगं सांनिपातिकम् ॥ ४ ॥
यथास्वलिंगास्तव्याधीन् जनयत्युपयोजितम् ।

बालस्य रोगज्ञानप्रकार :—

शिशोस्तीक्ष्णामतीक्ष्णां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ॥ ५ ॥
सोयं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः ।
तत्र विद्याद्रुजं,

मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥ ६ ॥

हृदि जिह्वौष्ठदशनश्वासमुष्टिनिपीडितैः ।
कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनैः ॥ ७ ॥
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ।
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगत्रासदिगीक्षणैः ॥ ८ ॥

धात्र्याःस्तन्यशोधनोपाय :—

अथ धात्र्याः क्रियां कुर्याद्यथादोषं यथामयम् ।
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिबेत् ॥ ९ ॥
अथवाग्निवचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।
सभार्गीदारुसरलवृश्चिकालीकणोषणम् ॥ १० ॥
ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम् ।
अनु चाच्छसुरामेवं स्निग्धं मृदु विरेचयेत् ॥ ११ ॥

बस्तिकर्म ततः कुर्यात्स्वेदादींश्चानिलापहान् ।

शिशोर्लेह :—

रास्नाजमोदासरलदेवदारुरजोन्वितम् ॥ १२ ॥
बालो लिह्याद् घृतं तैर्वा विपक्वं समितोपलम् ।
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्बचंदनम् ॥ १३ ॥
धात्री कुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा ससारिवम् ।
अथवा　　त्रिफलामुस्तभूनिम्बकटुरोहिणीः ॥ १४ ॥
सारिवादि पटोलादि पद्मकादि तथा गणम् ।
घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम् ॥ १५ ॥
शीतांश्चाभ्यंगलेपादीन् युञ्ज्यात्,
　　　　श्लेष्मात्मके पुनः ।
यष्ट्याह्वसैंधवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम् ॥ १६ ॥
सिंधूत्थपिप्पलीमद्य पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ ।
राठपुष्पैः स्तनौ लिपेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ॥ १७ ॥
मुखमेवं वमेद्बालः

धात्र्यावमनादि :—

तीक्ष्णैर्धात्री तु वामयेत् ।
अथाचरितसंसर्गी मुस्तादि क्वथितं पिबेत् ॥ १८ ॥
तद्वत्तगरपृथ्वीकासुरदारुकलिंगकान् ।
अथवाऽतिविषामुस्तषड्ग्रंथापंचकोलकम् ॥ १९ ॥

क्षीरालसक गदोपक्रम :—

स्तन्ये त्रिदोषमलिने दुर्गन्ध्यामं जलोपमम् ।
विबद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते ॥ २० ॥
शकृन्नानाव्यथावर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम् ।
ज्वरारोचकतृट्छर्दिशुष्कोद्गारविजृंभिकाः ॥ २१ ॥
अंगभंगोऽगविक्षेपः कूजनं वेपथुर्भ्रमः ।
घ्राणाक्षिमुखपाकाद्या जायंतेऽन्येऽपि तं गदम् ॥ २२ ॥

क्षीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम् ।
[1]तत्राशु धात्री बालं च वमनेनोपपादयेत् ॥ २३ ॥
विहितायां च संसर्ग्यां वचादि योजयेद्गणम् ।
निरादि वाऽथवा [2]माद्रीपाठाविक्ताघनामयान् ॥ २४ ॥
पाठाशुण्ठ्यमृतातिक्तातिक्तादेवाह्वमारिवाः ।
समुस्तमूर्वेंद्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम् ॥ २५ ॥
अनुबंधे यथाव्याधि प्रतिकुर्वीत कालवित् ।

दन्तोद्भेद प्रकरणम्—

दंतोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम् ॥ २६ ॥
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ।
अतिस्यंदस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते[3] ॥ २७ ॥
पृष्ठभंगे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे ।
दंतोद्भवे च बालानां नहि किंचिन्न दूयते ॥ २८ ॥
यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम् ।
विभज्य देशकालादींस्तत्र योज्यं भिषग्जितम् ॥ २९ ॥
त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च यत् ।
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा [4]त्वस्य कनीयसी ॥ ३० ॥
सौकुमार्याल्पकायत्वात्सर्वान्नानुपसेवनात् ।
स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात् ॥ ३१ ॥
सद्यस्तान्वमनं तस्मात्पाययेन्मतिमान् मृदु ।
स्तन्यस्य तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीरान्नसेविनम् ॥ ३२ ॥
पीतवंतं तनुं पेयामन्नादं घृतसंयुताम् ।
बस्तिं साध्ये विरेकेण मर्शेन प्रतिमर्शनम् ॥ ३३ ॥
युंज्याद्विरेचनादींस्तु धात्र्या एव यथोदितान् ।
मूर्वाव्योषवराकोलजंबूत्वग्दारुसर्षपाः ॥ ३४ ॥

---

१ तत्रक्षीरालसकगदे । संसर्ग्यां पेयादिक्रमे । २ माद्री अतिविषा, रेणुका वा । ३ जायते कारणमित्याहार्यम् । ४ अस्य बालस्य ।

मपाठा मधुना लीढाः स्तन्यदोषहराः परम् ।
दंतपाली समधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ॥ ३५ ॥
पिप्पल्या धातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा ।
लावतित्तिरवल्लूररजः [1]पुष्परसप्लुतम् ॥ ३६ ॥
द्रुतं करोति बालानां दंतकेसरवन्मुखम् ।
वचाद्विबृहतीपाठाकटुकातिविषाघनैः ॥ ३७ ॥
मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजन्मनि ।

रजन्यादिचूर्णलेहः—

रजनी दारु सरल. श्रेयसी बृहतीद्वयम् ॥ ३८ ॥
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ।
ग्रहणीदीपनं श्रेष्ठं मारुतस्यानुलोमनम् ॥ ३९ ॥
अतीसारज्वरश्वासकामलापाण्डुकासनुत् ।
बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्णदम् ॥ ४० ॥

घृतम्—

समंगाधातकीरोध्रकुटनटबलाह्वयैः ।
महासहाक्षुद्रसहाक्षुद्रबिल्वशलाटुभिः ॥ ४१ ॥
सकार्पासीफलैस्तोये [2]साधितैः साधितं घृतम् ।
क्षीरमस्तुयुतं हंति शीघ्रं दंतोद्भवोद्भवान् ॥ ४२ ॥
विविधानामयानेतद्वृद्धकश्यपनिर्मितम् ।

दन्तोद्भवरोगेपुनाति बालयन्त्रणाम्—

दंतोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियंत्रयेत् ॥ ४३ ॥
स्वयमप्युपशाम्यंति जातदंतस्य यद्गदाः ।

बालशोषः (सुखंडी)—

अत्यहःस्वप्नशीतांबुश्लैष्मिकस्तन्यसेविनः ॥ ४४ ॥

---

१ पुष्परसः क्षौद्रम् । २ तोये साधितैः समङ्गादिभिःसाधितं घृतमित्यन्वयः ।

शिशोः कफेन रुद्धेषु स्रोतःसु रसवाहिषु ।
अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते ॥ ४५ ॥
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः ।

(१)

तत्रप्रयोगा :—

सैंधवव्योषशार्ङ्गेष्टापाठागिरिकदंबकान् ॥ ४६ ॥
शुष्यतो मधुसर्पिर्भ्यामरुच्यादिषु योजयेत् ।,

(२)

अशोकरोहिणीयुक्तं पचकोलं च चूर्णितम् ॥ ४७ ॥

(३)

बदरीधातकीधात्रीचूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम् ।
स्थिरावचाद्विबृहतीकाकोलीपिप्पलीनतैः ॥ ४८ ॥
निचुलोत्पलवर्षाभूभार्गीमुस्तैश्च कार्षिकैः ।
सिद्धं प्रस्थार्धमाज्यस्य स्रोतसां शोधनं परम् ॥ ४९ ॥

(४)

सिद्धाश्वगंधा सुरसा कणागर्भं च तद्गुणम् ।

(५)

यष्ट्याह्वपिप्पलीरोध्रपद्मकोत्पलचंदनैः ॥ ५० ॥
तालीसमारिवाभ्यां च साधितं शोषजिद्घृतम् ।

(६)

शृंगीमधूलिकाभार्गीपिप्पलीदेवदारुभिः ॥ ५१ ॥
अश्वगंधाद्विकाकोलीरास्नर्षभकजीवकैः ।
शूर्पपर्णीविडंगैश्च कल्कितैः साधितं घृतम् ॥ ५२ ॥
शशोत्तमाङ्गनिर्यूहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम् ।

(७)

वचावयस्थातगरकायस्थाचोरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥

वस्तमूत्रमुराभ्यां च तैलमभ्यंजने हितम् ।

लाक्षादितैलम्—

लाक्षारससमं तैलप्रस्थं मस्तुचतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥

अश्वगंधानिशादारुकौंतीकुष्ठाब्दचंदनैः ।

समूर्वारोहिणीरास्नामवाह्वामधुकैः समैः ॥ ५५ ॥

सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यंजनादिदम् ।

बल्यं ज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत् ॥ ५६ ॥

यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ।

लेह :—

मधुनाऽतिविषाशृंगीपिप्पलीर्लेहयेच्छिशुम् ॥ ५७ ॥

एका वातिविषा कासज्वरच्छर्दिरुपद्रुतम् ।

दुग्धवमने चिकित्सा—

पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा ॥ ५८ ॥

द्विवार्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ।

पिप्पली पंचलवणं कृमिजित्पारिभद्रकम् ॥ ५९ ॥

तद्वल्लिह्यात्तथा व्योषं मषीं वा रोमचर्मणाम् ।

लाभतः शल्यकश्वाविद्गोधर्क्षशिखिजन्मनाम् ॥ ६० ॥

घृतम्—

खदिरार्जुनतालीसकुष्ठचंदनजे रसे ।

सक्षीरं साधितं सर्पिर्बमधुं विनियच्छति ॥ ६१ ॥

सदन्तेबालेजातेशान्त्यादिकम्—

सदंतो जायते यस्तु दंताः प्राग्यस्य चोत्तराः ।

कुर्वीत तस्मिन्नुत्पाते शांतिकं च द्विजातये ॥ ६२ ॥

दद्यात्मदक्षिणं वालं नैगमेयं च पूजयेत् ।

तालुकण्टकरोग :—

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकंटकम् ॥ ६३ ॥
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ।
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् ॥ ६४ ॥
तृडास्यकङ्वक्षिरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ।

तालुकण्टकचिकित्सा—

तत्रोत्क्षिप्य यवक्षारक्षौद्राभ्यां प्रतिसारयेत् ॥ ६५ ॥
तालु तद्वत्कणाशुण्ठीगोशकृद्रससैंधवैः ।
शृंगवेरनिशाभृंगं कल्कितं वटपल्लवैः ॥ ६६ ॥
बद्ध्वा गोशकृता लिप्तं कुकूले स्वेदयेत्ततः ।
रसेन लिंपेत्ताल्वास्यं नेत्रे च परिषेचयेत् ॥ ६७ ॥
हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात् ॥ ६८ ॥

बालस्यगुदरोग :—

मलोपलेपात्स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भव. ।
ताम्रो व्रणोऽन्तःकण्डूमान् जायते भूर्युपद्रवः ॥ ६९ ॥
[2]केचित्तं मातृकादोषं वदंत्यन्येऽपि पूतनम् ।
अष्टाश्गुदकुंदं च केचिच्च तमनामिकम् ॥ ७० ॥

---

१ क्षेपकावत्रवर्तेते पूजयेदित्यनन्तरम्—
हनुमूलगतो वायुर्दंतदेशेऽस्थिगोचरः ।
यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठंति तदा द्विजाः ॥ १ ॥
रूक्षादिनो वातिकस्य चाल्पत्वन्निलः शिराः ।
हन्वाश्रयाः प्रमुतस्य दंतैः शब्दं करोत्यतः ॥ २ ॥

२ केचिदाचार्याः ।

तत्रचिकित्सा—

तत्र धात्र्याः पयः शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः ।
शृतशीतं च शीतांबुयुक्तमंतरपानकम्[1] ॥ ७१ ॥
[2]सक्षौद्रताक्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत् ।
त्रिफलाबदरीप्लक्षत्वक्क्वाथपरिषेचितम् ॥ ७२ ॥
कासीसरोचनातुत्थमनोह्वालरसांजनैः ।
लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वा विचूर्णयेत् ॥ ७३ ॥
सुश्लक्ष्णैरथवा यष्टीशंखसौवीरकांजनैः ।
सारिवाशंखनाभिभ्यामसनस्य त्वचाऽथवा ॥ ७४ ॥
रागकंडूत्कटे कुर्याद्रक्तस्रावं जलौकसा ।
सर्वं च पित्तव्रणजिच्छस्यते गुदकुट्टके ॥ ७५ ॥

मृद्भवरोगनाशको लेह :—

पाठावेल्लद्विरजनीमुस्तभार्गीपुनर्नवैः ।
सबिल्वश्यूपर्णैः सर्पिर्बृश्रिकालीयुतैः शृतम् ॥ ७६ ॥
लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः ।

औषधैर्लिप्तैस्तने रोगनाश :—

व्याधेर्यद्यस्य भैषज्यं स्तनस्तेन प्रलेपितः ।
स्थितो मुहूर्तं धौतोनु पीतस्तं तं जयेद्गदम्" ॥ ७७ ॥

---

१ शृतं जलं पश्चाच्छीतमेवंविधशीताम्बुयुक्तं अन्तरश्चानाश्च हितम् ।
२ ताक्ष्यशैलं रसवत ।

तृतीयोऽध्यायः।

भूतविद्या।

अथातो बालग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

द्वादशग्रहाः—

"पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना।
मनुष्यविग्रहा- पंच, सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः ॥ १ ॥

ग्रहनामानि—

स्कंदो विशाखो मेषाख्यः श्वग्रहः पितृसंज्ञितः।
शकुनिः पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना ॥ २ ॥
मुखमण्डिका तद्वद्रेवती शुष्करेवती।

ग्रहीष्यतां ग्रहाणां पूर्वरूपम्—

तेषां ग्रहीष्यतां रूपं प्रततं रोदनं ज्वरः ॥ ३ ॥

सामान्य लक्षणम्—

सामान्यं रूपमुत्त्रासजृंभाभ्रूक्षेपदीनताः।
फेनस्रावोर्ध्वदृष्टयोष्ठदंतदंशप्रजागराः ॥ ४ ॥
रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम्।
नखैरकस्मात्परितः स्वधात्र्यंगविलेखनम् ॥ ५ ॥

स्कन्दगृहीतस्य लक्षणम्—

तत्रैकनयनस्रावी शिरो विक्षिपते मुहुः।
हतैकपक्षः स्तब्धांगः सस्वेदो नतकंधरः ॥ ६ ॥
दंतखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति विस्वरः।
वक्रवक्त्रो वमेल्लालां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते ॥ ७ ॥

वसासृग्गंधिरुद्विग्नो बद्धमुष्टिशकृच्छिशुः ।
चलितैकाक्षिगंडभ्रूः संरक्तोभयलोचनः ॥ ८ ॥
स्कंदार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भवेद्ध्रुवम् ।

विशाखलक्षणम्—

संज्ञानाशो मुहुः केशलुंचनं कंधरानतिः ॥ ९ ॥
विनम्य जृम्भमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम् ।
फेनोद्वमनमूर्ध्वेक्षा हस्तभ्रूपादनर्तनम् ॥ १० ॥
स्तनस्वजिह्वासंदंशसंरंभज्वरजागराः ।
पूयशोणितगंधिश्च स्कंदापस्मारलक्षणम् ॥ ११ ॥

मेषाख्यलक्षणम्—

आध्मानं पाणिपादास्यस्पंदनं फेननिर्वम ।
तृण्मुष्टिबधातीसारस्वरदैन्यविवर्णता. ॥ १२ ॥
कूजनं [1]स्तननं छर्दि. कासहिध्माप्रजागराः ।
ओष्ठदंशाग्रसंकोचस्तम्भवस्तामगंधता. ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वर. ।
मूर्छैकनेत्रशोफश्च नैगमेषग्रहाकृतिः ॥ १४ ॥

श्वग्रह लक्षणम्—

कंपो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम् ।
बहिरायामनं जिह्वादंशोऽन्तः कंठकूजनम् ॥ १५ ॥
धावनं विट्सगंधत्वं क्रोशनं [2] श्वानवच्छुनि ।

पितृग्रह लक्षणम्—

रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः ॥ १६ ॥
कासातीसारवमथुजृंभातृट्शवगंधताः ।
अंगेष्वाक्षेपविक्षेपः शोषस्तंभविवर्णताः ॥ १७ ॥

---

१ स्तननं शब्दकरणम् । २ क्रोशनं शब्दः श्वानवत् । शुनि श्वग्रहे ।

मुष्टिबंधः सुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे ।

शकुनिग्रह लक्षणम्—

स्रस्तांगत्वमतीसारो जिह्वातालुगले व्रणाः ॥ १८ ॥
स्फोटाः सदाहरुक्पाकाः संधिषु स्युः पुनः पुनः ।
निश्यह्नि[1] प्रविलीयंते पाको वक्त्रे गुदेऽपि वा ॥ १९ ॥
भयं शकुनिगंधत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे ।

पूतनाया लक्षणम्—

पूतनाया वमिः कंपस्तंद्रा रात्रौ प्रजागरः ॥ २० ॥
हिध्माध्मानं शकृद्भेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः ।
स्रस्तहृष्टाग्ररोमत्वं काकवत्पूतिगंधता ॥ २१ ॥

शीतपूतना लक्षणम्—

शीतपूतनया कंपो रोदनं तिर्यगीक्षणम् ।
तृष्णान्त्रकूजोऽतीसारो वसावद्विस्रगंधता ॥ २२ ॥
पार्श्वस्यैकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च ।

अन्धपूतना लक्षणम्—

अंधपूतनया छर्दिर्ज्वरः कासोऽल्पवह्निता ॥ २३ ॥
वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गंध्यान्यंगशोषणम् ।
दृष्टिमादोऽतिरुक्कंडूपोथकीजन्मशून्यताः ॥ २४ ॥
हिध्मोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्य स्वरतीक्ष्णता ।
वेपथुर्मत्स्यगंधित्वमथवा साम्लगंधिता ॥ २५ ॥

मुखमण्डिका लक्षणम्—

मुखमंडितया पाणिपादस्य रमणीयता ।
सिराभिरसिताभाभिराचितोदरता ज्वरः ॥ २६ ॥
अरोचकोऽगग्लपनं गोमूत्रसमगंधता ।

१ निशि स्फोटाः स्युरह्नि प्रविलीयन्ते ।

रेवती लक्षणम्—

रेवत्या श्यावनीलत्वं कर्णनासाक्षिमर्दनम् । २७ ॥
कासहिध्माक्षिविक्षेपवक्त्रवक्त्रस्वरक्तता: ।
बस्तगंधो ज्वर: शोष: पुरीषं हरितं द्रवम् ॥ २८ ॥
जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वांगसंक्षय: ।

ग्रहगृहीतस्य बालस्यासाध्य-लक्षणम्—

केशपातोऽन्नविद्वेष: स्वरदैन्यं विवर्णता ॥ २९ ॥
रोदनं गृध्रगंधित्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ।
उदरे ग्रथयो वृत्ता यस्य नानाविध शकृत् ॥ ३० ॥
जिह्वाया निम्नता, मध्ये श्याव तालु च तं[1] त्यजेत् ।
"भुजानोऽन्नं बहुविधं यो बाल: परिहीयते ॥ ३१ ॥
तृष्णागृहीत: क्षामाक्षो हंति तं शुष्करेवती ।"

ग्रहग्रहणेहेतुत्रयम्--

हिंमारत्यर्चनाकाक्षा ग्रहग्रहणकारणम् ॥ ३२ ॥

हिंसात्मके ग्रहे लक्षणानि--

तत्र हिंसात्मके बालो महान् वा स्तुतनासिक: ।
क्षतजिह्व: क्वणेद् बाढमसुखो साश्रुलोचन: ॥ ३३ ॥
दुर्वर्णो हीनवचन: पूतिगंधिश्च जायते ।
क्षामो मूत्रपुरीषं स्वं मृद्नाति न जुगुप्सते ॥ ३४ ॥
हस्तौ चोद्यम्य संरब्धो हंत्यात्मानं तथा परम् ।
तद्वच्च शस्त्रकाष्ठाद्यैरग्निं वा दीप्तमाविशेत् ॥ ३५ ॥
अप्सु मज्जेत्पतेत्कूपे कुर्यादन्यच्च तद्विधम् ।
तृड्दाहमोहान् पूयस्य छर्दनं च प्रवर्तयेत् ॥ ३३ ॥
रक्तं च सर्वमार्गेभ्यो रिष्टोदरतिश्च तं त्यजेत् ।

---

१ तंबालम् ।

रतिकामेग्रहे लक्षणानि—

रहःस्त्रीरतिसंलापगंधस्रग्भूषणप्रियः ॥ ३७ ॥
हृष्टः शांतश्च दुःसाध्यो रतिकामेन पीडितः ।

अर्चाकामेग्रहे लक्षणानि—

दीनः परिमृशेद्वक्त्रं शुष्कोष्ठगलतालुकः ॥ ३८ ॥
शंकितं वीक्षते रौति ध्यायत्यायाति दीनताम् ।
अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नात्ति बुभुक्षते ॥ ३९ ॥
गृहीतं बलिकामेन तं विद्यात्सुखसाधनम् ।

ग्रह चिकित्सा—

हंतुकामं जयेद्धोमैः सिद्धमंत्रप्रवर्तितैः ॥ ४० ॥
[1]इतरौ तु यथाकामं रतिबल्यादिदानतः ।
अथ साध्यग्रहं बालं[2] विविक्ते शरणे स्थितम् ॥ ४१ ॥
त्रिरह्नः [3]सिक्तसंसृष्टे सदा संनिहितानले ।
[4]विकीर्णभूतिकुसुमपत्रबीजान्नसर्षपे ॥ ४२ ॥
रक्षोघ्नतैलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि ।
व्यवायमद्यपिशितनिवृत्तपरिचारके ॥ ४३ ॥
पुराणसर्पिषाभ्यक्तं परिषिक्तं सुखांबुना ।
साधितेन बलानिंबवैजयंतीनृपद्रुमैः ॥ ४४ ॥
पारिभद्रककटभंगजंबूवरुणकट्तृणैः ।
कपोतवंकापामार्गपाटलामधुशिग्रुभिः ॥ ४५ ॥
काकजंघामहाश्वेताकपित्थक्षीरपादपैः ।
सकदंबकरंजैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत् ॥ ४६ ॥

---

१ इतरौरत्यर्चाकामौ । २ विविक्ते शरणे-एकान्तगृहे । ३ अह्नोदिवसस्य त्रिस्त्रीन् वारान् सिक्ते संसृष्टेशोधिते च । ४ विकीर्णभूत्यादिका यस्मिन् गृहे । रक्षोघ्नः सर्षपः । व्यवायादिकर्मविमुखपरिचारके गृहे । वैजयन्ती अरणी । कपोतवङ्का ब्राह्मी । महाश्वेता कटभी ।

द्वीपिव्याघ्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्घृतमिश्रितैः ।

धूप :—

पूतीदशाङ्गीसिद्धार्थवचाभल्लातदीप्यकैः ॥ ४७ ॥

[1]सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ।

दशाङ्गोधूप :—

वचाहिंगुविडंगानि सैंधवं गजपिप्पली ॥ ४८ ॥

पाठा प्रतिविषा ध्योषं दशाङ्गः कश्यपोदितः ।

सर्वग्रह निवारणोधूप :—

सर्षपा निंबपत्राणि मूलमश्वखुरा वचा ॥ ४९ ॥

भूर्जपत्रं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारणः ।

ग्रहजिद्धृतम्—

अनंताऽऽम्रास्थितगरं मरिचं मधुरो गणः ॥ ५० ॥

[2]शृगालविन्ना मुस्ता च कल्कितैस्तैर्घृतं पचेत् ।

दशमूलरसक्षीरं युक्तं तद्ग्रहजित्परम् ॥ ५१ ॥

सर्वग्रह रोगहरंघृतम्—

रास्नांश्वंशुमती[3]वृद्धपंचमूलवचाघनात् ।

क्वाथे सर्पिः पचेत्पिष्टैः सारिवाव्योषचित्रकैः ॥ ५२ ॥

पाठाविडंगमधुकपयस्याहिंगुदारुभिः ।

सग्रंथिकैः सेंद्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम् ॥ ५३ ॥

सर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम् ।

सारिवादि घृतम्—

सारिवासुर[4]भीब्राह्मीशंखिनीकृष्णसर्षपैः ॥ ५४ ॥

---

१ पूतीकरञ्जः । दशाङ्गीवक्ष्यमाणा वचादिः । २ शृगालविन्ना पृश्निपर्णी । ३ द्वयंशुमती शालपर्णीपृश्निपर्णी । वृद्धंमहत् । ४ सुरभी रास्ना ।

वचाश्वगंधासुरसायुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत् ।
तन्नाशयेद्ग्रहान्सर्वान्पानेनाभ्यंजनेन च ॥ ५५ ॥

धूपः—

गोशृंगलोमवालाहिनिर्मोकवृषदंशविट् ।
निंबपत्राज्यकटुका मदनं बृहतीद्वयम् ॥ ५६ ॥
कार्पासास्थियवच्छागरोमदेवाह्वसर्षपम् ।
मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम् ॥ ५७ ॥
मृद्भांडे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
धूपनार्थं हितं सर्वे भूतेषु विषमे ज्वरे ॥ ५८ ॥

घृतानि—

घृतानि भूतविद्यायां वक्ष्यंते यानि तानि च ।
युंज्यात्तथा बलिं होमं स्नपनं मंत्रतंत्रवित् ॥ ५९ ॥

स्नपनम्—

पूतीकरंजत्वक्पत्रं क्षीरिभ्यो बर्बरादपि ।
कुंबीविशालारलुकाशमीबिल्वकपित्थकाः ॥ ६० ॥
उत्क्वाथ्य तोयं तद्रात्रौ बालानां स्नपनं शिवम् ।

अन्यरोगहरमौषधम्—

अनुबंधान्यथाकृच्छ्रं ग्रहापायेऽप्युपद्रवान् ।
बालामयनिषेधोक्तभेषजैः समुपाचरेत्" ॥ ६१ ॥
इत्यष्टांगहृदये कौमारतंत्रं द्वितीयं समाप्तम् ।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः।

सामान्यंभूतविज्ञानम्—

"लक्षयेज्ज्ञानविज्ञानवाक्चेष्टाबलपौरुषम्।
पुरुषेऽपौरुषं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत्॥ १॥

अष्टादश भूतसंख्या—

भूतस्य रूपप्रकृतिभाषागत्यादिचेष्टितैः।
यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं तमादिशेत्॥ २॥
सोऽष्टादशविधो देवदानवादिविभेदतः।

भूतग्रहणे हेतु :—

हेतुस्तदनुपत्तौ तु सद्यः पूर्वकृतोऽथवा॥ ३॥
प्रज्ञापराधः सुतरां तेन [1]कामादिजन्मना।
लुप्तधर्मव्रताचारः पूज्यानप्यतिवर्तते॥ ४॥
तं तथा भिन्नमर्यादं पापमात्मोपघातिनम्।
देवादयोऽप्यनुघ्नन्ति ग्रहाश्छिद्रप्रहारिणः॥ ५॥
छिद्रं पापक्रियारंभः पाकोऽनिष्टस्य कर्मणः।
एकस्य शून्येऽवस्थानं श्मशानादिषु वा निशि॥ ६॥
[2]दिग्वासस्त्वं गुरोर्निंदा रतेरविधिसेवनम्।
अशुचेर्देवतार्चादिपरभूतकसंकरः॥ ७॥
होममंत्रबलीज्यानां विगुणं [3]परिकर्म च।
समासाद्दिनचर्यादिप्रोक्ताचारव्यतिक्रमः॥ ८॥

---

१ तेन प्रज्ञापराधेन। २ दिग्वासस्त्वनग्नत्वम्। ३ परिकर्म करणम्।

भूतग्रहण कालः—

गृह्णन्ति शुक्लप्रतिपत्त्रयोदश्योः सुरा नरम् ।
शुक्लत्रयोदशीकृष्णद्वादश्योर्दानवा ग्रहाः ॥ ९ ॥
गंधर्वास्तु चतुर्दश्यां द्वादश्यां चोरगाः पुनः ।
पंचम्यां शुक्लसप्तम्येकादश्योस्तु धनेश्वराः ॥ १० ॥
शुक्लाष्टपंचमीपूर्णमासीषु ब्रह्मराक्षसाः ।
कृष्णे रक्षःपिशाचाद्या नवद्वादशपर्वसु ॥ ११ ॥
दशामावास्ययोरष्टनवम्योः पितरोऽपरे ।
गुरुवृद्धादयः प्रायः कालं संध्यासु लक्षयेत् ॥ १२ ॥

देवग्रहगृहीत लक्षणम्—

फुल्लपद्मोपममुखं सौम्यदृष्टिमकोपनम् ।
अल्पवाक्स्वेदविण्मूत्रं भोजनानभिलाषिणम् ॥ १३ ॥
देवद्विजातिपरमं शुचिसंस्कृतवादिनम् ।
मीलयंतं चिरान्नेत्रे सुरभिं वरदायिनम् ॥ १४ ॥
शुक्लमाल्याम्बरसरिच्छैलोच्चभवनप्रियम् ।
अनिद्रमप्रधृष्यं च विद्याद्देववशीकृतम् ॥ १५ ॥

दैत्यग्रहगृहीत लक्षणम्—

जिह्मदृष्टिं दुरात्मानं गुरुदेवद्विजद्विषम् ।
निर्भयं मानिनं शूरं क्रोधनं व्यवसायिनम् ॥ १६ ॥
रुद्रः स्कंदो विशाखोऽहमिन्द्रोऽहमिति वादिनम् ।
सुरामांसरुचिं विद्याद् दैत्यग्रहगृहीतकम् ॥ १७ ॥

गन्धर्वग्रहगृहीत लक्षणम्—

स्वाचारं सुरभिं हृष्टं गीतनर्तनकारिणम् ।
स्नानोद्यानरुचिं रक्तवस्त्रमाल्यानुलेपनम् ॥ १८ ॥
शृंगारलीलाभिरतं गंधर्वाध्युषितं वदेत् ।

सर्पग्रहगृहीत लक्षणम्—

रक्ताक्षं क्रोधनं स्तब्धदृष्टिं वक्रगतिं चलम् ॥ १९ ॥
श्वसंतमनिशं जिह्वालोलिनं सृक्किणीलिहम् ।
प्रियदुग्धगुडस्नानमधोवदनशायिनम् ॥ २० ॥
उरगाधिष्ठितं विद्यात्स्खलंतं चातपत्रतः ।

यक्षग्रहगृहीत लक्षणम्—

[1]विप्लुतं रक्तरक्ताक्षं शुभगंधं सुतेजसम् ॥ २१ ॥
प्रियनृत्यकथागीतस्नानमाल्यानुलेपनम् ।
मत्स्यमांसरुचिं हृष्टं तुष्टं बलिनमव्ययम् ॥ २२ ॥
चलिताग्रकरं कस्मै किं ददामीति वादिनम् ।
रहस्यभाषिणं वैद्यद्विजातिपरिभाविनम् ॥ २३ ॥
अल्परोषं द्रुतगतिं विद्याद्यक्षगृहीतकम् ।

ब्रह्मराक्षसगृहीत लक्षणम्—

हास्यनृत्यप्रियं रौद्रचेष्टं छिद्रप्रहारिणम् ॥ २४ ॥
[2]आक्रोशिनं शीघ्रगतिं देवद्विजभिषग्द्विषम् ।
आत्मानं काष्ठशस्त्राद्यैर्घ्नंतं भोः शब्दवादिनम् ॥ २५ ॥
शास्त्रवेदपठं विद्याद् गृहीतं ब्रह्मराक्षसैः ।

राक्षसगृहीत लक्षणम्—

सक्रोधदृष्टिं भ्रुकुटिमुद्वहंतं ससंभ्रमम् ॥ २६ ॥
प्रहरंतं प्रधावंतं शब्दतं भैरवाननम् ।
अन्नादिनापि बलिनं नष्टनिद्रं निशाचरम् ॥ २७ ॥
निर्लज्जमशुचिं शूरं क्रूरं परुषभाषिणम् ।
रोषणं रक्तमाल्यस्त्रीरक्तमद्यामिषप्रियम् ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा च रक्तं मांसं वा लिहानं दशनच्छदौ ।
द्गसंतमन्नकाले च राक्षसाधिष्ठितं वदेत् ॥ २९ ॥

---

१ विप्लुतमश्रुपूर्णनेत्रम् ।　२ आक्रोशिनम् दर्पादुच्चैः शब्दं कुर्वाणम् ।

पिशाचगृहीत लक्षणम्—

अस्वस्थचित्तं नैकत्र तिष्ठंतं परिधाविनम् ।
उच्छिष्टनृत्यगांधर्वहासमद्यामिषप्रियम् ॥ ३० ॥
[1]निर्भर्त्सनाद्दीनमुखं रुदंतमनिमित्ततः ।
नखैर्लिखंतमात्मानं रूक्षध्वस्तवपुःस्वरम् ॥ ३१ ॥
आवेदयंतं दुःखानि संबद्धाबद्धभाषिणम् ।
नष्टस्मृतिं शून्यरतिं लोलं नग्नं मलीमसम् ॥ ३२ ॥
[2]रथ्याचैलपरीधानं तृणमालाविभूषणम् ।
आरोहंतं च काष्ठाश्वं तथा [3]संकरकूटकम् ॥ ३३ ॥
बह्वाशिनं पिशाचेन विजानीयादधिष्ठितम् ।

प्रेतगृहीतलक्षणम्—

प्रेताकृतिक्रियागंधं भीतमाहारविद्विषम् ॥ ३४ ॥
तृणच्छिदं च प्रेतेन गृहीतं नरमादिशेत् ।

कूष्माण्डाधिष्ठितलक्षणम्—

बहुप्रलापं कृष्णास्यं प्रविलंबितयायिनम् ॥ ३५ ॥
शूनप्रलंबवृषणं कुष्मांडाधिष्ठितं वदेत् ।

निषादाधिष्ठितलक्षणम्—

गृहीत्वा काष्ठलोष्टादि भ्रमंतं चीरवाससम् ॥ ३६ ॥
नग्नं धावंतमुत्त्रस्तदृष्टिं तृणविभूषणम् ।
श्मशानशून्यायतनं रथ्यैकद्रुमसेविनम् ॥ ३७ ॥
तिलान्नमद्यमांसेषु सततं सक्तलोचनम् ।
निषादाधिष्ठितं विद्याद् वदंतं परुषाणि च ॥ ३८ ॥

---

१ निर्भर्त्सनात् भयदर्शकवाक्यकथनात् । २ रथ्या प्रतोली मार्गः । चैलं- . . । ३ संकरकूटकम् । संकरः "कूंडा" इतिलोके कूटकोराशिः ।

औकिरणगृहीत लक्षणम्—

यार्चतमुदकं चान्नं ग्रस्तालोहितलोचनम् ।
उग्रवाक्यं च जानीयात्परमौकिरणार्दितम् ॥ ३९ ॥

वेतालगृहीत लक्षणम्—

गंधमाल्यरतिं मत्यवादिनं परिवेपिनम् ।
बहुच्छिद्रं च जानीयाद्वेतालेन[1] वशीकृतम् ॥ ४० ॥

पितृग्रहगृहीत लक्षणम्—

अप्रसन्नदृशं दीनवदनं शुष्कतालुकम् ।
चलन्नयनपक्ष्माणं निद्रालुं मंदपावकम् ॥ ४१ ॥
अपसव्यपरीधानं तिलमांसगुडप्रियम् ।
स्खलद्वाचं च जानीयात् पितृग्रहवशीकृतम् ॥ ४२ ॥

गुर्वादीनांशापाद्यनुसारेण ग्रहविज्ञानम्—

गुरुवृद्धर्षिसिद्धाभिशापचितानुरूपतः ।
व्याहाराहारचेष्टाभिर्यथास्वं तद्ग्रहं वदेत् ॥ ४३ ॥

असाध्यलक्षणम्—

कुमारवृंदानुगतं नग्नमुद्धतमूर्धजम् ।
अस्वस्थमनसं दैर्घ्यकालिकं तं ग्रहं त्यजेत्" ॥ ४४ ॥

---

१ वेतालो भूताविष्टः शवः ।

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो भूतप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अहिंसाकामभूतस्य जपादिभिर्जयः :—

"भूतं जयेदहिंसेच्छं जपहोमबलिव्रतैः।
तपःशीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः॥ १॥

ग्रहापहाः प्रयोगाः :—

हिंगुव्योषालनेपालीलशुनार्कजटाजटाः।
अजलोमी सगोलोमी भूतकेशी वचा लता॥ २॥
कुक्कुटी सर्पगंधाख्या तिलाः काणविकाणिके।
वज्रप्रोक्ता वयस्था च भृंगी मोहनवल्ल्यपि॥ ३॥
स्रोतोजांजनरक्षोघ्नं रक्षोघ्नं चान्यदौषधम्।
खराश्वश्वाविदुष्ट्रर्क्षगोधानकुलशल्यकान्॥ ४॥
द्वीपिमार्जारगोसिंहव्याघ्रसामुद्रसत्वतः।
चर्मपित्तद्विजनखा वर्गेऽस्मिन् भावयेद्घृतम्॥ ५॥
पुराणमथवा तैलं नवं तत्स्नानतस्ययोः।
अभ्यंगे च प्रयोक्तव्यमेषां चूर्णं च धूपने॥ ६॥

---

१ समाधानं मनसो बाह्यविषयेभ्यो निवारणम्। २ नेपाली मनःशिला अथवा कस्तूरी। अर्कजटा-अर्कमूलम्। जटागन्धमांसी। अजलोमी-श्वेतदूर्वा गोलोमी-दूर्वा, भूतकेशी-मांसी। लता प्रियङ्गुः। कुक्कुटी शितिवारकः-कुक्कुट-सहनन्दा। सर्पगन्धा वर्षानुछत्राकारा। काणविकाणिके काकोलीक्षीरकाकोल्यौ वज्रप्रोक्ता-वज्रकन्द। वयःस्थागुडूची शृङ्गी, अतिविषा कर्कटशृङ्गी वा, मोहन वल्ली-वटपत्री।

एभिश्च गुटिकां युंज्यादंजने सावपीडने ।
प्रलेपे कल्कमेतेषां क्वाथं च परिषेचने ॥ ७ ॥
प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादान्सापस्माराञ्छमं नयेत् ।

नावनादि—

गजाह्वापिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ॥ ८ ॥
गोधानकुलमार्जारऋक्षपित्तप्रपेषितान् ।
नावनाभ्यंगसेकेषु विदधीत ग्रहापहान् ॥ ९ ॥

सिद्धार्थकं घृतम्—

सिद्धार्थकं वचा हिंगु प्रियंगुरजनीद्वयम् ।
मंजिष्ठा श्वेतकटभी वचा [1]श्वेताद्रिकर्णिका ॥ १० ॥
निंबस्य पत्रं बीजं तु नक्तमालशिरीषयोः ।
सुराह्वं त्र्यूषणं सर्पिर्गोमूत्रे तैश्चतुर्गुणे ॥ ११ ॥
सिद्धं सिद्धार्थकं नाम पाने नस्ये च योजितम् ।
ग्रहान्सर्वान्निहंत्याशु विशेषादासुरान् ग्रहान् ॥ १२ ॥
कृत्यालक्ष्मीविषोन्मादज्वरापस्मारपाप्म च ।

एभिरगद प्रयोग :—

एभिरेवौषधैर्बस्तवारिणा कल्पितोऽगदः ॥ १३ ॥
पाननस्याजनालेपस्नानोद्वर्षणयोजितः ।
गुणैः पूर्ववदुद्दिष्टो राजद्वारे च सिद्धिदः ॥ १४ ॥

गुटिका :—

सिद्धार्थकव्योषवचाश्वगंधा
निशाद्वयं हिंगुपलांडुकंदम् ।
बीजं करंजात्कुसुमं शिरीषात्
फलं च वल्कश्च कपित्थवृक्षात् ॥ १५ ॥

---

[1] श्वेतकटभी-श्वेतगुञ्जा । श्वेताद्रिकर्णिका शुक्ला गिरिकर्णिका-अपराजि ता।

समाणिमंथं सनतं सकुष्ठं
स्योनाकमूलं किणिही सिता[1] च ।
बस्तस्य मूत्रेण विभावितं तत् ।
पित्तेन गव्येन गुडान् विदध्यात् ॥ १६ ॥
दुष्टव्रणोन्मादतमोनिशांधा-
[2]नुद्बद्धकान् वारिनिमग्नदेहान् ।
दिग्धाहतान् दर्पितसर्पदष्टां-
स्तान् साधयंत्यंजननस्यलेपैः ॥ १७ ॥

स्कन्दादिघ्नं धूपनम्—

[3]कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिंडीतक-
त्वङ्मांसीवृकदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः ।
नागेंद्रद्विजशृंगहिंगुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं
स्कंदोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नं परम् ॥ १८ ॥

भूतरावाह्वयं पानम्—

[4]त्रिकटुकदलकुंकुमग्रंथिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः
सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्तावचा-
तुत्थयष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः ।
दधितगरमधूकसारप्रियाह्वाविषाख्या-
विषातार्क्ष्यशैलैः सचव्यामयैः
कल्कितैर्घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं
भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् ॥ १९ ॥

---

१ सिता-श्वेतदूर्वा ।

२ उद्बद्धकान् दत्तगलपाशान् 'फांसी'। ३ निर्माल्यं शिवनिर्माल्यमिति शिवदासः। स्पृक्का इति वाचस्पत्याभिधानम्, वृकदंशविट् मार्जारविष्ठा । अहिनिर्मोचनं 'सांप का केंचुर'। नागेन्द्र द्विजो गजदन्तः । ४ दलं पत्रम् । सिद्धार्थयुग्मं सर्षपद्वयम् सितं श्वेतचन्दनम् । लोहिता मञ्जिष्ठा, प्रियाह्वा प्रियंगुः । विषा अतिविषा, विष
वालोलो लाङ्गली वा, शक्राह्व इन्द्रयवः । तार्क्ष्यशैलम् रसाञ्जनम् । आमयं कुष्ठम्

महाभूतरावसंज्ञकं घृतम्—

[1]नतमधुकरंजलाक्षापटोलीममंगावचा-
पाटलीहिंगुसिद्धार्थसिंहीनिशायुगलतारोहिणी-
बदरकटुफलत्रिकाकांडदारुकृमिघ्नाजगंधा-
[2]मराकोल्लकोशातकीशिग्रुनिंबांबुदैर्द्राह्वयैः ।
गदशुकतरुपुष्पबीजोग्रपथ्याद्रिकर्णीनिकुंभा-
ग्निबिल्वैः समं कल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतम् ।
विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हंति
सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावं स्मृतम् ॥ २० ॥

ग्रहग्रहणदिने बल्यादि—

ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः ।
दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुंजीत चिकित्सकः ॥ २१ ॥
स्नानवस्त्रवमामासमद्यक्षीरगुडादि च ।
रोचते यद्यदा येभ्यस्तत्तेषामाहरेत्तदा ॥ २२ ॥
रत्नानि गंधमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषी ।
भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरित्ययम् ॥ २३ ॥

सुरादिभ्योबलिदानस्थानानि—

सुरर्षिगुरुवृद्धेभ्यः सिद्धेभ्यश्च सुरालये ।
दिश्युत्तरस्यां तत्रापि देवायोपहरेद्बलिम् ॥ २४ ॥
पश्चिमायां यथाकालं दैत्यभूताय चत्वरे ।
गंधर्वाय गवा मार्गे सवस्त्राभरणं बलिम् ॥ २५ ॥
पितृनागग्रहे नद्यां, नागेभ्यः पूर्वदक्षिणे ।
यक्षाय [3]यक्षायतने सरितोर्वा समागमे ॥ २६ ॥

---

१ सिंही कण्टकारिका । लता-दूर्वा । कटुः "कुटकी" । २ अमरा गुडूची निर्गुण्डी च । इन्द्राह्वयः कुटजः । गदः कुष्ठम् । शुकतरुः शिरीषः । उग्रा वचा । अद्रिकर्णी अपराजिता । ३ यक्षायतने वटवृक्षे ।

चतुष्पथे राक्षसाय भीमेषु गहनेषु च ।
रक्षसां दक्षिणस्यां तु, पूर्वस्यां महारक्षसाम् ॥ २७ ॥
शून्यालये पिशाचाय पश्चिमां दिशमाश्रिते ।

देवादीनां बलिद्रव्याणि—

शुचिशुक्लानि माल्यानि गंधाः क्षैरेयमोदनम् ॥ २८ ॥
दधि छत्रं च धवलं देवानां बलिरिष्यते ।

घृतम्—

हिंगुसर्षपषड्ग्रंथाव्योषैर्बस्तलोमभिः ॥ २९ ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
तत्पाननावनाभ्यंगैर्देवग्रहविमोक्षणम् ॥ ३० ॥,
नस्यांजनं वचाहिंगुलशुनं बस्तवारिणा ।
दैत्ये वह्निर्वहुफलः सोशीरकमलोत्पलः ॥ ३१ ॥,
नागानां सुमनोलाजगुडापूपगुडौदनैः ।
[1]परमान्नमधुक्षीरकृष्णमृन्नागकेसरैः ॥ ३२ ॥
वचापद्मपुरोशीररक्तोत्पलदलैर्बलिः ।
श्वेतपत्रं च रोध्रं च तगरं नागसर्षपाः ॥ ३३ ॥
शीतेन वारिणा पिष्टं,नावनांजनयोर्हितम् ।,
यक्षाणां क्षीरदध्याज्यमिश्रकोदनगुग्गुलुः ॥ ३४ ॥
देवदारूत्पलं पंचमुशीरं वस्त्रकांचनम् ।
हिरण्यं च बलिर्योज्यो,
मूत्राज्यक्षीरमेकतः ॥ ३५ ॥
सिद्धं समोभिर्त पाननावनाभ्यंजने हितम् ।

हरीतक्यादि नावनादि—

हरीतकी हरिद्रे द्वे लशुनो मरिचं वचा ॥ ३६ ॥

---

१ परमान्नं तण्डुलदुग्धशर्कराक्षीरम् । श्वेतपत्रं शुक्लकमलम् । नागः—नागर मुस्ता, नागकेसरो वा ।

निम्बपत्रं च बस्ताम्बुकल्कितं नावनांजनम् ।
महारक्षोबलिः [1]सिद्धं यवानां पूर्णमाढकम् ॥ ३७ ॥
तोयस्य कुंभः पललं छत्रं वस्त्रं विलेपनम् ।

घृतपानम्—

गायत्रीत्रिशतिपलक्वाथेऽर्धपलिकैः पचेत् ॥ ३८ ॥
व्यूषणत्रिफलाहिंगुपड्ग्रंथामिशिसर्षपैः ।
सनिम्बपत्रलशुनैः कुडवान्सप्त सर्पिषः ॥ ३९ ॥
गोमूत्रे त्रिगुणे पाने नस्याभ्यंगेषु तद्धितम् ।
रक्षसां [2]पललं शुक्लं कुसुमं मिश्रकौदनम् ॥ ४० ॥
बलिः पक्वाममांसानि निष्पावा रुधिरोक्षिताः ।

नस्याञ्जने—

नक्तमालशिरीषत्वङ्मूलपुष्पफलानि च ॥ ४१ ॥
तद्वच्च कृष्णपाटल्या बिल्वमूलं कटुत्रिकम् ।
हिंग्विद्रयवसिद्धार्थलशुनामलकीफलम् ॥ ४२ ॥
नावनाञ्जनयोर्योज्यो बस्तमूत्रयुतोऽगदः ।
'एभिरेव घृतं सिद्धं गवां मूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥
रक्षोग्रहान् वारयते पानाभ्यंजननावनैः ।'
पिशाचानां बलिः सीधुपिण्याकः पललं दधि ॥ ४४ ॥

घृतम्—

मूलकं लवणं सर्पिः [3]सभूतोदनयावकम् ।
हरिद्राद्वयमंजिष्ठामिशिसैंधवनागरम् ॥ ४५ ॥

---

१ सिद्धमिति–यवैः पूर्णपक्वपात्रम् । सिद्धं पक्वम् । आढकम्पात्रम् । आढक-शब्दोऽत्र पात्रवाचकोऽननुमानवाचकः । पात्रमत्र शरावं तच्च पक्वं न त्वामम् । २ पललं तिलपिष्टिः । मिश्रकौदनम्-मांसेन सह पक्वमोदनम्, मांसं वा । ३ भूतौदनं-मांसौदनम् । यावकं-यवकृतमन्नम् ।

हिंगुप्रियंगुत्रिकटुरसोनत्रिफला वचा ।
पाटलाश्वेतकटभीशिरीषकुसुमैर्घृतम् ॥ ४६ ॥
गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाभ्यंजनयोर्हितम् ।
वस्तांबुपिष्टैस्तैरेव योज्यमंजननावनम् ॥ ४७ ॥

देवादौतवर्ज्यावर्ज्ये—

देर्वर्षिपितृगंधर्वे तीक्ष्णं नस्यादि वर्जयेत् ।
सर्पि:पानादिमृद्वस्मिन् भैषज्यमवचारयेत् ॥ ४८ ॥

देवादौ प्रतिकूलाचरणनिषेध :—

ऋते पिशाचात्सर्वेषु प्रतिकूलं च नाचरेत् ।
सर्वेद्यमातुरं घ्नंति, क्रुद्धास्ते[1] हि महौजसः ॥ ४९ ॥

जप :—

ईश्वरं द्वादशभुजं [2]नाथमार्यावलोकितम् ।
सर्वव्याधिचिकित्सतं जपन् सर्वग्रहान् जयेत् ॥ ५० ॥
तथोन्मादानपस्मारानन्यं वा चित्तविप्लवम् ।
[3]महाविद्यां च मायूरीं शुचि तं श्रावयेत्सदा ॥ ५१ ॥

पूजनम्—

भूतेशं पूजयेत् स्थाणुं प्रमथाख्यांश्च तद्गणान् ।
जपन् सिद्धांश्च तन्मंत्रान् ग्रहान्सर्वानपोहति ॥ ५२ ॥

वक्ष्यमाणं हितम्—

[4]यच्चानंतरयोः किंचिद्वक्ष्यतेऽध्यायपोर्हितम् ।
यच्चोक्तमिह तत्सर्वं प्रयुंजीत परस्परम् ॥ ५३ ॥

---

१ ते देवादयः । महौजसो महाप्रभावाः । २ आर्यं श्रेष्ठम् । अवलोकिताख्यम् । "सर्वव्याधिचिकित्सा च" इति पाठान्तरम् । अवलोकिताख्यः कश्चिद्-बौद्धाचार्यः । चित्तविप्लवं-बुद्धिविभ्रंशम् । ३ बुद्धदैवतां मायूरी विद्याम् । भूतेशं प्राणिनामीशं विष्णुं । स्थाणुं-महादेवम् । तन्मन्त्रान् विष्णु महादेव मन्त्रान् अष्टाक्षरादीन् । ४ अनन्तरयोरुन्मादापस्मारप्रतिषेधाख्ययोः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽत उन्मादप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

षडुन्मादा :—

"उन्मादाः षट् पृथग्दोषनिचयाधिविषोद्भवाः

उन्मादस्वरूपम्—

उन्मादो नाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः ॥ १ ॥

निदानपूर्विकोन्मादसम्प्राप्ति :—

शारीरमानसैर्दुष्टैरहितादन्नपानतः ।
विकृतासात्म्यसमलाद्विषमादुपयोगतः ॥ २ ॥
विषमस्याल्पसत्वस्य व्याधिवेगसमुद्गमात् ।
क्षीणस्य चेष्टावैषम्यात्पूज्यपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ३ ॥
आधिभिश्चित्तविभ्रंशाद् विषेणोपविषेण च ।
एभिर्विहीनसत्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः ॥ ४ ॥
धियो विधाय कालुष्यं हत्वा मार्गान् मनोवहान् ।
उन्मादं कुर्वते तेन धीविज्ञानस्मृतिभ्रमात् ॥ ५ ॥
देहो दुःखसुखभ्रष्टो भ्रष्टसारथिवद्रथः ।
भ्रमत्यचिंतितारभः,

वातोन्माद लक्षणम्—

तत्र वातात्कृशांगता ॥ ६ ॥

अस्थाने रोदनाक्रोशहसितस्मितनर्तनम् ।
गीतवादित्रवागंगविक्षेपास्फोटनानि च ॥ ७ ॥

---

१ आधिर्मानसीव्यथा ।

[1]असाम्ना वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः ।
आस्यात्फेनागमोऽजस्रमटनं बहुभाषिता ॥ ८ ॥
अलंकारोऽनलङ्कारैरयानैर्गमनोद्यमः ।
गृद्धिरभ्यवहार्येषु तल्लाभे चावमानता ॥ ९ ॥
[2]उत्पिण्डितारुणाक्षित्वं जीर्णे चान्ने गदोद्भवः ।

पित्तोन्माद लक्षणम्—

पित्तात्संतर्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्टाद्यभिद्रवः ॥ १० ॥
शीतच्छायोदकाकाङ्क्षा नग्नत्वं पीतवर्णता ।
असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ॥ ११ ॥

कफोन्माद लक्षणम्—

कफादरोचकश्छर्दिरल्पेहाहारवाक्यता ।
स्त्रीकामता रहः प्रीतिर्लालासिंघाणकस्रुतिः ॥ १२ ॥
वैभत्स्यं शौचविद्वेषो निद्रा श्वयथुरानने ।
उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते ॥ १३ ॥

सन्निपातोन्माद लक्षणम्—

[3]सर्वायतनसंस्थानसन्निपाते तदात्मकम् ।
उन्मादं दारुणं विद्यात् तं भिषक्परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

शोकोन्माद लक्षणम्—

धनकान्तादिनाशेन दुःसहेनाभिषङ्गवान् ।
पाण्डुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति [4]परिदेवते ॥ १५ ॥

---

१ असाम्ना-उच्चैः । २ उत्पिण्डितेति-अधोगोलकस्योत्पिण्डभावाऽरुणत्वं च । रहः-एकान्तः । सिंघाणकोनासामलम् । ३ सर्वाणि त्रिदोषविषयाणि आयतनानि कारणानि संस्थानानि लिङ्गानि यस्मिन्सन्निपाते तत्तथोक्तम् । तदात्मकं सन्निपातात्मकमुन्मादम् । ४ परिदेवने विलापं करोति ।

रोदित्यकस्मान्म्रियते तद्गुणान् बहु मन्यते ।
शोकक्लिष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते ॥ १६ ॥

विषोन्माद लक्षणम्—

विषेण श्यावबदनो नष्टच्छायाबलेंद्रियः ।
वेगावरेऽपि संभ्रान्तो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

चिकित्सा :—

अथानिलज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।
पूर्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम् ॥ १८ ॥
कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
स्निग्धस्विन्नस्य बस्तिं च शिरसः सविरेचनम् ॥ १९ ॥
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ।

अनुवृत्तौ तीक्ष्णनावनादि :—

इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ॥ २० ॥
हर्षणाश्वासनोत्त्रासभयताडनतर्जनम् ।
अभ्यंगोद्वर्तनालेपधूमान् पानं च सर्पिषः ॥ २१ ॥
युञ्ज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयंति प्रकृतिं मनः ।

घृतम्—

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥ २२ ॥
सिद्धं समूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम् ।

ब्राह्मीघृतम्—

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद् ब्राह्म्या घृतप्रस्थं च साधितम् ॥ २३ ॥
व्योषश्यामात्रिवृद्दन्तीशङ्खपुष्पीनृपद्रुमैः ।
ससप्तलाकृमिहरैः कल्कितैरक्षसंमितैः ॥ २४ ॥
पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत परं मात्राचतुष्पलम् ।
उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वंध्यासुतप्रदम् ॥ २५ ॥

[१]अमात्रा वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः ।
आस्यात्फेनागमोऽजस्रमटनं बहुभाषिता ॥ ८ ॥
अलंकारोऽनलंकारैरयानैर्गमनोद्यमः ।
गृद्धिरभ्यवहार्येषु तल्लाभे चावमानता ॥ ९ ॥
[२]उत्पिण्डितारुणाक्षित्वं जीर्णे चान्ने गदोद्भवः ।

पित्तोन्माद लक्षणम्—

पित्तात्संतर्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्टाद्यभिद्रवः ॥ १० ॥
शीतच्छायोदकाकाङ्क्षा नग्नत्वं पीतवर्णता ।
असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ॥ ११ ॥

कफोन्माद लक्षणम्—

कफादरोचकश्छर्दिरल्पेहाहारवाक्यता ।
स्त्रीकामता रहःप्रीतिर्लालासिंघाणकस्रुतिः ॥ १२ ॥
बैभत्स्यं शौचविद्वेषो निद्रा श्वयथुरानने ।
उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते ॥ १३ ॥

सन्निपातोन्माद लक्षणम्—

[३]सर्वायतनसंस्थानसन्निपाते तदात्मकम् ।
उन्मादं दारुणं विद्यात् तं भिषक्परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

शोकोन्माद लक्षणम्—

धनकान्तादिनाशेन दुःसहेनाभिषङ्गवान् ।
पाण्डुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति [४]परिदेवते ॥ १५ ॥

---

१ अमात्रा-उच्चैः । २ उत्पिण्डितेति-अक्षिगोलद्गतपिण्डभावाऽरुणत्वं च । रहःप्रीतिः-एकान्ते । सिंघाणकोनासामलम् । ३ सर्वाणि त्रिदोषविषयाणि आयतनानि कारणानि संस्थानानि लिङ्गानि यस्मिन्सन्निपाते तत्तथोक्तम् । तदात्मकं सन्निपातात्मकमुन्मादम् । ४ परिदेवते विलापं करोति ।

रोदित्यकस्मान्म्रियते तद्गुणान् बहु मन्यते ।
शोकक्लिष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते ॥ १६ ॥

विषोन्माद लक्षणम्—

विषेण श्यावबदनो नष्टच्छायाबलेन्द्रियः ।
वेगान्तरेऽपि संभ्रान्तो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

चिकित्सा :—

अथानिलज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।
पूर्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम् ॥ १८ ॥
कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
स्निग्धस्विन्नस्य वस्तिं च शिरसः सविरेचनम् ॥ १९ ॥
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ।

अनुवृत्तौ तीक्ष्णनावनादि :—

इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ॥ २० ॥
हर्षणाश्वासनोत्त्रासभयताडनतर्जनम् ।
अभ्यङ्गोद्वर्तनालेपधूमान् पानं च सर्पिषः ॥ २१ ॥
युञ्ज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयति प्रकृतिं मनः ।

घृतम्—

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥ २२ ॥
सिद्धं समूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम् ।

ब्राह्मीघृतम्—

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद् ब्राह्म्या घृतप्रस्थं च साधितम् ॥ २३ ॥
व्योषश्यामात्रिवृद्दन्तीशङ्खपुष्पीनृपद्रुमैः ।
ससप्तलाकृमिहरैः कल्कितैरक्षसम्मितैः ॥ २४ ॥
पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत परं मात्राचतुष्पलम् ।
उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ २५ ॥

वाक्स्वरस्मृतिमेधाकृद् धन्यं ब्राह्मीघृतं स्मृतम् ।

कल्याणकं घृतम्—

[1]वराविशालाभद्रैलादेवदार्वेलवालुकैः ॥ २६ ॥
द्विसारिवाद्विरजनीद्विस्थिराफलिनीनतैः ।
बृहतीकुष्ठमञ्जिष्ठानागकेसरदाडिमैः ॥ २७ ॥
वेल्लतालीसपत्रैलामालतीमुकुलोत्पलैः ।
सदन्तीपद्मकहिमैः कर्षांशैः सर्पिषः पचेत् ॥ २८ ॥
प्रस्थं, भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपाप्मसु ।
पाण्डुकण्डूविषे शोफे मोहे मेहे गरे ज्वरे ॥ २९ ॥
अरेतस्यप्रजसि वा दैवोपहतचेतसि ।
अमेधसि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ॥ ३० ॥
बल्यं मंगल्यमायुष्य कांतिसौभाग्यपुष्टिदम् ।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ३१ ॥

महाकल्याणकं घृतम्—

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिः ।
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टि[2]क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥
वीराद्विमेदाकाकोलीकपिकच्छूविषाणिभिः ।
शूर्पपर्णीयुतैरेतन्महाकल्याणकं परम् ॥ ३३ ॥
बृंहणं संनिपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ।

महापैशाचकं घृतम्—

[3]जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ॥ ३४ ॥
त्रायमाणा जया[4] वीरा चोरकः कटुरोहिणी ।
कायस्था शूकरी छत्रा अतिच्छत्रा पलंकषा ॥ ३५ ॥

---

१ भद्रैला बृहदेला । द्विसारिवा श्वेतकृष्णभेदेन । द्विस्थिरा शालपर्णी पृश्निपर्णी । २ गृष्टिः सकृत्प्रसूतागौः । ३ जटिला जटामांसी । पूतनाहरीतकी । केशी मांसी भेदः । चारटी पद्मचारिणी पद्ममृणालमित्यन्येमर्कटी कपिकच्छूः । ४ जया अरणी । वीराकाकोली, कायस्था क्षीरकाकोली । छत्रा धान्यकम् । अतिच्छत्रा शतपुष्पा । शूकरी वृद्ध दारुकः । महापुरुषदंता शतावरी । वयस्था आमलकी । नाकुलीद्वय मपर्णी सर्पसुगन्धा च, रास्नाद्वयमितिकेचित् ।

गहापुरुषदंता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ।
[1]कटंभरा वृश्चिकाली शालिपर्णी च तैर्घृतम् ॥ ३६ ॥
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ॥ ३७ ॥
बुद्धिमेधास्मृतिकरं बलानां चांगवर्धनम् ।

वर्तिरुन्माद सूदनी –

[2]ब्राह्मीमैंद्रीविडंगानि व्योषं हिंगु जटां मुराम् ॥ ३८ ॥
रास्ना विशल्यां लशुनं विषघ्नां सुरसां वचाम् ।
ज्योतिष्मती नागविन्नामनंतां सहरीतकीम् ॥ ३९ ॥
काञ्ची च हस्तिमूत्रेण पिष्ट्वा छायाविशोषिता ।
वर्तिर्नस्याजनालेपधूपैरुन्मादसूदनी ॥ ४० ॥

अवपीडादि :—

अवपीडाश्च विविधाः सर्षपाः स्नेहसंयुताः ।
कटुतैलेन चाभ्यंगो ध्मापयेच्चास्य तद्रजः ॥ ४१ ॥
सहिंगुस्तीक्ष्णधूमश्च सूत्रस्थानोदितो हितः ।

धूमादिकम् –

शृगालशल्यकोलूकजलौकावृषवस्तजैः ॥ ४२ ॥
मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्मभिराचरेत् ।
धूपधूमाजनाभ्यंगप्रदेहपरिषेचनम् ॥ ४३ ॥

श्वगोमत्स्यैर्धूप :—

धूपयेत्सततं चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः ।
वातश्लेष्मात्मके प्रायः,

---

१ कटम्भरा-कटभी प्रसारणी वा । वृश्चिकाली श्वेतपुनर्नवा ।

२ विषघ्ना अतिविषा । विशल्या लाङ्गली । नागविन्ना नागदन्ती पृश्निपर्णी वा, काञ्ची रजनी वा "फिटकरी" इतिलोके ।

भूतोन्मादे भूतौषधम्—

भूतानुबन्धमीक्षेत [1]प्रोक्तलिङ्गाधिकाकृतिम् ॥ ५५ ॥
यद्युन्मादे ततः कुर्याद्भूतनिर्दिष्टमौषधम् ।

बलि :—

बलिं च दद्यात्पललं यावकं सक्तुपिण्डिकाम् ॥ ५६ ॥
स्निग्धं मधुरमाहारं तंडुलान् रुधिरोक्षितान् ।
पक्वामकानि मांसानि सुरां मैरेयमासवम् ॥ ५७ ॥
[2]अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जात्याः सहचरस्य च ।
चतुष्पथे गवां तीर्थे नदीनां संगमेषु च ॥ ५८ ॥

उन्मादाप्राप्तिहेतु :—

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
निजागंतुभिरुन्मादैः सत्ववान्न स युज्यते ॥ ५९ ॥

विगतोन्माद लक्षणम्—

प्रसाद इंद्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ६० ॥

---

१ प्रोक्तस्य षड्विधोन्मादस्य लिङ्गेभ्योऽधिकाकृतिर्लक्षणं यस्य तम् ।
२ अतिमुक्तः-माधवीलता ।

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतोऽपस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अपस्मार लक्षणम्—

"स्मृत्यपायो ह्यपस्मारः स धीसत्त्वाभिसंप्लवात् ।
जायतेऽभिहते चित्ते चिंताशोकभयादिभिः ॥ १ ॥
उन्मादवत्प्रकुपितैश्चित्तदेहगतैर्मलैः ।
हृते सत्त्वे हृदि व्याप्ते संज्ञावाहिषु खेषु च ॥ २ ॥
तमोविशन्मूढमतिर्बीभत्साः कुरुते क्रियाः ।
दंतान् खादन् वमन् फेनं हस्तौ पादौ च विक्षिपन् ॥ ३ ॥
पश्यन्नसंति रूपाणि प्रस्खलन्पतति क्षितौ ।
विजिह्माक्षिभ्रुवो दोषवेगेऽतीते विबुध्यते ॥ ४ ॥
कालांतरेण स पुनश्चैवमेव विचेष्टते ।

अपस्मारस्य चातुर्विध्यम्—

अपस्मारश्चतुर्भेदो वाताद्यैर्निचयेन तु ॥ ५ ॥

पूर्वरूपम्—

रूपमुत्पित्स्यमानेऽस्मिन् हृत्कंपः शून्यता भ्रमः ।
तमसो दर्शनं ध्यानं [२]भ्रूव्युदासोक्षिवैकृतम् ॥ ६ ॥
अशब्दश्रवणं स्वेदो लालासिंघाणकस्रुतिः ।
अविपाकोऽरुचिर्मूर्छा कुक्ष्याटोपो बलक्षयः ॥ ७ ॥
निद्रानाशोऽङ्गमर्दस्तृट् स्वप्ने गानं सनर्तनम् ।
पानं मद्यस्य तैलस्य तयोरेव च मेहनम् ॥ ८ ॥

---

१ मत्वंमनः । २ भ्रूव्युदासोभ्रूवैपरीत्यम् ।

वातजापस्मार लक्षणम्—

तत्र वातात्स्फुरत्सक्थिः प्रपतंश्च मुहुर्मुहुः ।
अपस्मारेति संज्ञां च लभते विस्वरं रुदन् ॥ ९ ॥
[1]उत्पिण्डिताक्षः श्वसिति फेनं वमति कंपते ।
आविध्यति शिरो दंतान् दशत्याध्मातकंधरः ॥ १० ॥
परितो विक्षिपत्यंगं विषमं विनतांगुलिः ।
रूक्षश्यावारुणाक्षित्वङ्नखास्यः कृष्णमीक्षते ॥ ११ ॥
चपलं परुषं रूपं विरूपं विकृताननम् ।

पित्तजापस्मार लक्षणम्—

अपस्मरति पित्तेन मुहुः संज्ञां च विंदति ॥ १२ ॥
पीतफेनाक्षिवक्त्रत्वगास्फालयति[2] मेदिनीम् ।
भैरवादीप्त[3]पित्तरूपदर्शी तृषान्वितः ॥ १३ ॥

कफजापस्मार लक्षणम्—

कफाच्चिरेण [4]ग्रहणं चिरेणैव विबोधनम् ।
चेष्टाऽल्पा भूयसी लाला शुक्लनेत्रनखास्यता ॥ १४ ॥
शुक्लाभरूपदर्शित्व,

सर्वलिंगं तु वर्जयेत् ।

अपस्मार चिकित्सा—

अथाऽवृताना धीचित्तहृत्खानां प्राक्प्रबोधनम् ॥ १५ ॥
तीक्ष्णैः कुर्यादपस्मारे कर्मभिर्वमनादिभिः ।,
वातिकं बस्तिभूयिष्ठैः, पैत्तं प्रायो विरेचनैः ॥ १६ ॥
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ।

प्रयोगाः—

सर्वतस्तु विशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च ॥ १७ ॥

---

१ उत्पिण्डिताक्षः उद्धर्वं पिण्डितमक्षियस्य । आविध्यति-वक्रीकरोति ।
२ आस्फालयति-ताडयति । ३ भैरवंभयजनकम् । आदीप्तं ज्वलितम् । रूपैर्व्याप्तं क्रोधाविष्टम् । ४ ग्रहणमपस्माराविर्भावः ।

अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्संशमनान् शृणु ।

लघुपञ्चगव्यं घृतम्—

गोमयस्वरसक्षीरदधिमूत्रैः शृतं हविः ॥ १८ ॥
अपस्मारज्वरोन्मादकामलान्तकरं पिबेत् ।

महत्पञ्चगव्यं घृतम्—

द्विपञ्चमूलीत्रिफलाद्विनिशाकुटजत्वचः ॥ १९ ॥
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ।
शम्याकपुष्करजटाफल्गु[1]मूलदुरालभाः ॥ २० ॥
द्विपलाः सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ।
भार्गीपाठाढकीकुम्भनिकुम्भव्योषरोहिषैः ॥ २१ ॥
मूर्वाभूतिकभूनिम्बश्रेयसीसारिवाद्वयैः ।
मदयन्त्यग्निनिचुलैरक्षांशैः सर्पिषः पचेत् ॥ २२ ॥
प्रस्थं तद्वद् द्रवैः पूर्वैः[2] पंचगव्यमिदं महत् ।
ज्वरापस्मारजठरभगंदरहरं परम् ॥ २३ ॥
शोफार्शःकामलापाण्डुगुल्मकासग्रहापहम् ।

ब्राह्म्यादिघृतम्—

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीशृतं घृतम् ॥ २४ ॥
पुराणं मेध्यमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित् ।

तैलघृते—

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ २५ ॥
क्षीरद्रोणे वचेरिद्धमपस्मारविमोक्षणम् ।

अन्यद् घृतम्—

कंसे[3] क्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ॥ २६ ॥

१ फल्गु काष्ठोदुम्बरिका । २ पूर्वैर्द्रवैः-गोमयस्वरसादिभि । ३ कंसे-आढके ।

कापिकैर्जीवनीयैश्च सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ।
वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं निहन्ति तत् ॥ २७ ॥
तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्वाथशृतं पयः ।

कूष्माण्डघृतम्—

कूष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे शृतम् ॥ २८ ॥
यष्टीकल्कमपस्मारहरं धीवाक्स्वरप्रदम् ।

गवादीनां पित्तंहितम्—

कपिलानां गवां पित्तं नावने परमं हितम् ॥ २९ ॥
श्वशृगालबिडालानां सिंहादीनां च पूजितम् ।

पित्तासिद्धं तैलम्—

गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि ॥ ३० ॥
पित्तेषु साधितं तैलं नस्येऽभ्यङ्गे च शस्यते ।

त्रिफलादितैलम्—

त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्जकैः ॥ ३१ ॥
श्यामापामार्गकरंजबीजैस्तैलं विपाचितम् ।
[1]बस्तमूत्रे हितं नस्यं चूर्णं वाऽध्मापयेद्भिषक् ॥ ३२ ॥

धूमः—

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुंडैः पक्षैः पुरीषैश्च धूममस्य प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

विधिप्रयोगाः—

शीलयेत्तैललशुनं पयसा वा शतावरीम् ।
ब्राह्मीरसं कुष्ठरसं वचां वा मधुसंयुताम् ॥ ३४ ॥

---

१ बस्तमूत्रे छागमूत्रेविपाचितम् ।

दुश्चिकित्स्यस्य रसायन प्रयोगाः—

समं शुद्धैरपस्मारो दोषैः शारीरमानसैः ।
यज्ञायते यतश्चैष महामर्मसमाश्रयः ॥ ३५ ॥
तस्माद्रसायनैरेनं दुश्चिकित्स्यमुपाचरेत् ।
तदार्त चाग्नितोयादेर्विषमात्पालयेत्सदा ॥ ३६ ॥

गतेऽपस्मारे कृत्यम्—

मुक्तं मनोविकारेण त्वमित्थं कृतवानिति ।
न ब्रूयाद्विपयैरिष्टैः क्लिष्टं चेतोऽस्य बृंहयेत् ॥ ३७ ॥

इत्यष्टांगहृदये भूततंत्रं तृतीयं समाप्तम् ।

अष्टमोऽध्यायः ।

शालाक्यतन्त्रम्—

अथाऽतो वर्त्मरोगविज्ञानमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

नयनरोगसम्प्राप्तिः—

"सर्वरोगनिदानोक्तैरहितैः कुपिता मलाः ।
[१]अचक्षुष्यैविशेषेण प्रायः पित्तानुसारिणः ॥ १ ॥
शिराभिरूर्ध्वं प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः ।
[२]वर्त्मसंधि सितं कृष्णं दृष्टिं वा सर्वमक्षि वा ॥ २ ॥

---

१ अचक्षुष्यैः चक्षुषोरहितैराहारविहारैरातपधूमादिभिः । २ वर्त्म नेत्राच्छादनं पलक' इतिभाषा ।

रोगान् कुर्युः,

वर्त्मगतारोगाः—

चलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः।
सुप्तोत्थितस्य कुरुते वर्त्मस्तंभं सवेदनम् ॥ ३ ॥
पांशुपूर्णाभनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमश्रु च।
विमर्दनात्स्याच्च शमः कृच्छ्रोन्मीलं वदति तम्. ॥ ४ ॥
'चालयन्वर्त्मनी वायुर्निमेषोन्मेषणं मुहुः।
करोत्यरुङ् निमेषोऽसौ,
　　　　वर्त्म यत्तु निमील्यते।
विमुक्तसंधि निश्चेष्टं हीनं वातहतं हि तत्।,
कृष्णाः पित्तेन बह्व्योऽन्तर्वर्त्म कुम्भीकबीजवत् ॥ ६ ॥
आध्मायन्ते पुनर्भिन्ना पिटिकाः कुम्भिसंज्ञिता।,
"सदाहक्लेदनिस्तोद रक्ताभं स्पर्शताक्षमम् ॥ ७ ॥
पित्तेन जायते वर्त्म पित्तोत्क्लिष्टमुशन्ति तत्।
"करोति कण्डू दाहं च पित्तं पक्ष्मान्तमास्थितम् ॥ ८ ॥
पक्ष्मणां शातनं चानु पक्ष्मशातं वदन्ति तम्।,
"पोथक्यः पिटिका श्वेता सर्षपाभा घना कफात् ॥ ९ ॥
शोफोपदेहरुक्कण्डूपिच्छिलाश्रुसमन्विता।,
"कफोत्क्लिष्टं भवेद्वर्त्म स्तभक्लेदोपदेहवत् ॥ १० ॥,
"ग्रंथिः पांडुररुक्पाक. कण्डूमान् कठिन. कफात्।
कोलमात्रः स लगणः [1]किंचिदल्पस्ततोऽपि वा ॥ ११ ॥"
"रक्ता रक्तेन पिटिकास्तत्तुल्यपिटिकाचिताः।
उत्संगाख्याः,
　　　　"तथोत्क्लिष्टं राजिमत्स्पर्शनाक्षमम् ॥ १२ ॥,
"अर्शोऽधिमांसं वर्त्मान्तः स्तब्धं स्निग्धं सदाहरुक्।
रक्तं रक्तेन तत्स्रावि छिन्नं छिन्नं च वर्धते ॥ १३ ॥"

---

१ ततः-कोलाद् किञ्चिदल्पो ग्रन्थिः।

"मध्ये वा वर्त्मनोऽन्ते वा कण्डूषारुग्वती स्थिरा।
मुद्गमात्राऽसृजा ताम्रा पिटिकाऽञ्जननामिका[1] ॥ १४ ॥,
"दोषैर्वर्त्म बहिः शूनं यदन्तः सूक्ष्मखाचितम्[2]।
सस्रावमन्तरुदकबिसाभं बिसवर्त्म तत् ॥ १५ ॥,
"[3]यद्वर्त्मोत्क्लिष्टमुत्क्लिष्टमकस्मान्म्लानतामियात्।
रक्तदोषत्रयोत्क्लेशाद् भवत्युत्क्लिष्टवर्त्म तत् ॥ १६ ॥,
"श्याववर्त्म मलैः सास्रैः श्यावं रुक्क्लेदशोफवत्।,
"क्लिष्टाख्यवर्त्मनी श्लिष्टे कण्डूश्वयथुरागिणी ॥ १७ ॥,
"वर्त्मनोऽन्तः खरा रूक्षाः पिटिकाः सिकतोपमाः।
सिकतावर्त्म,
"कृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ १८ ॥,
"बहलं बहलैर्मांसैः सवर्णैश्चीयते समैः।,
"कुकूणकः शिशोरेव दन्तोत्पत्तिनिमित्तजः ॥ १९ ॥
स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः।
स वर्त्मशूलपैच्छिल्यकर्णनासाक्षिमर्दनः ॥ २० ॥,
"पक्ष्मोपरोधे संकोचो वर्त्मनां जायते तथा।
खरतोन्मुखत्वं च लोम्नामन्यानि वा पुनः ॥ २१ ॥
कण्टकैरिव तीक्ष्णाग्रैर्घृष्टं तैरक्षि सूयते[4]।
उच्यते चानिलादिद्विड्लाभः[5] शान्तिरुद्धृतैः ॥ २२ ॥
"कनीनके बहिर्वर्त्म कठिनो ग्रन्थिरुन्नतः।
ताम्रः पक्वोऽस्रपूया[6]स्रुदलज्याध्मायते मुहुः ॥ २३ ॥,
"वर्त्मान्तर्मांसपिण्डाभः श्वयथुर्ग्रथितोऽरुजः।
सास्रैः स्यादर्बुदो दोषैर्विषमो बाह्यतश्चलः ॥ २४ ॥,

वर्त्माश्रयाणां संख्या—

चतुर्विंशतिरित्येते व्याधयो वर्त्मसंश्रयाः।

---

१ अंजननामिका 'बिलनी' हिं०। २ खं छिद्रम्। ३ उत्क्लिष्टं विशेष चेष्टायुक्तम्। ४ सूयते—शोथयुक्तं भवति। ५ उद्धृतैरुत्पाटितैस्तैः पक्ष्मभिरत्यानि-दिनानि शान्तिर्भवति। ६ स्रुत् स्रावी।

साध्यत्वादि—

[1]आद्योऽत्र भेषजैः साध्यो द्वौ ततोऽर्शश्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥

शस्त्रक्रिया—

पक्ष्मोपरोधो याप्यः स्याच्छेषाञ्छस्त्रेण साधयेत् ।
कुट्टयेत्पक्ष्मसदनं छिन्द्यात्तेष्वपि चार्बुदम् ॥ २६ ॥
भिन्द्याल्लगणकुम्भीकाबिसोत्सङ्गाञ्जनालजीः ।
पोथकीश्यावसिकता [2]श्लिष्टोत्क्लिष्टचतुष्टयम् ।
सकर्दमं सबहलं विलिखेत्सकुकूणकम्" ॥ २७ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातो वर्त्मरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

कृच्छ्रोन्मीले पुराण घृतादि योजना—

"कृच्छ्रोन्मीले पुराणाज्यं द्राक्षाकल्काम्बुसाधितम् ।
शस्तं योजयेत्स्निग्धं नस्यधूमाञ्जनादि च ॥ १ ॥

कुम्भीकावर्त्मोपक्रमः—

कुम्भीकावर्त्म लिखितं सैन्धवप्रतिसारितम् ।
यष्टीधात्रीपटोलीनां क्वाथेन परिषेचयेत् ॥ २ ॥

वर्त्मलेखनप्रकारः—

निवातेऽधिष्ठितस्याप्तैः शुद्धस्योत्तानशायिनः ।
बहिः कोष्णाम्बुतप्तेन स्वेदितं वर्त्म वाससा ॥ ३ ॥

---

१ आद्यः कृच्छ्रोन्मीलनः । द्वौ-निमेषवातहतौ । २ उत्क्लिष्ट चतुष्टयं-पित्तोत्क्लिष्टं कफोत्क्लिष्टं रक्तोत्क्लिष्टमुत्क्लिष्टवर्त्मचेति ।

निर्भुज्य [1]वस्त्रांतरितं वामांगुष्ठांगुलीधृतम् ।
न स्रंसते चलति वा वर्त्मैवं सर्वतस्ततः ॥ ४ ॥
मंडलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदांकितम् ।
लिखेत्तेनैव पत्रैर्वा शाकशेफालिकादिजैः ॥ ५ ॥
[2]फेनेन तोयराशेर्वा पिचुना प्रमृजन्नसृक् ।
स्थिते रक्ते सुलिखितं सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ६ ॥
[3]यथास्वमुक्तैरनु च प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ।
घृतेनासिक्तमभ्यक्तं बध्नीयान्मधुसर्पिषा ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्त्वा पिंडी च यवसक्तुभिः ।
द्वितीयेऽहनि मुक्तस्य परिषेकं यथायथम् ॥ ८ ॥
कुर्यात् चतुर्थे नस्यादीन्मुंचेदव्हि पंचमे ।

सुलिखितवर्त्म लक्षणम्—

समं नखनिभं शोफकंडूघर्षाद्यपीडितम् ॥ ९ ॥
विद्यात्सुलिखितं वर्त्म लिखेद् भूयो विपर्यये ।

अतिलेखनाद्रुजादीनि—

रुक्पक्ष्मवर्त्मसदन स्रंसनादतिलेखनात् ॥ १० ॥
स्नेहस्वेदादिकस्तस्मिन्निष्टो वातहरः क्रमः ।

नवनीतेनाभ्यङ्गादि—

अभ्यज्य नवनीतेन श्वेतरोध्रं प्रलेपयेत् ॥ ११ ॥
एरंडमूलकल्केन पुटपाके पचेत्ततः ।
स्विन्नं प्रक्षालितं शुष्कं चूर्णितं पोटलीकृतम् ॥ १२ ॥
स्त्रियाः क्षीरे छगल्या वा मृदितं नेत्रसेचनम् ।

अतिलिखितचिकित्सा—

शालितंडुलकल्केन लिप्तं तद्वत्परिष्कृतम् ॥ १३ ॥

---

१ निर्भुज्य कुटिलीकृत्य-परिवर्त्य । तेनैवमण्डलाग्रेणैवशस्त्रेण । २ तोयराशेः समुद्रस्य फेनेन । ३ यथास्वमुक्तैः सैन्धवादिभिः ।

कुर्यात्स्नेऽतिलिखिते मृदितं दधिमस्तुना ।
केवलेनाऽपि वा सेकं मस्तुना जांगलाशिनः ॥ १४ ॥

पिटिकाभेदनादि—

पिटिका व्रीहिवक्त्रेण भित्वा तु कठिनोन्नताः ।
निष्पीडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत् ॥ १५ ॥
लेखने भेदने चायं क्रमः सर्वत्र वर्त्मनि ।

पित्तरक्तोक्लिष्टयोः शिरामोक्षणादि—

पित्तास्रोत्क्लिष्टयोः स्वादुस्कंधसिद्धेन सर्पिषा ॥ १६ ॥
सिराविमोक्षः स्निग्धस्य त्रिवृच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ।
लिखिते स्रुतरक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम् ॥ १७ ॥
यष्टीकषायः सेकस्तु क्षीरं चंदनसाधितम् ।

पक्ष्मसदनेचिकित्सा—

पक्ष्मणां सदने सूच्या रोमकूपान् विकुट्टयेत् ॥ १८ ॥
ग्राहयेद्वा जलौकोभिः पयसेक्षुरसेन वा ।
वमनं नावनं सर्पिः शृतं मधुरशीतलैः ॥ १९ ॥
गंचूर्ण्य पुष्पकासीसं भावयेत्सुरसारसैः ।
ताम्रे दशाहं परमं पक्ष्मशाते तदंजनम् ॥ २० ॥

पोथकी चिकित्सा—

पोथकीर्लिखिताः शुण्ठीसैंधवप्रतिसारिताः ।
उष्णांबुक्षालिताः सिंचेत् खदिरारडकिंशिग्रुभिः ॥ २१ ॥
अक्षिद्बाढिनिदाश्रेष्ठामधुकैर्वा[1] समाक्षिकैः ।

कफोत्क्लिष्टे लेखनादि—

कफोत्क्लिष्टे विलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ २२ ॥
सूक्ष्मैः सैंधवकासीसमनोह्वाकणतार्क्ष्यजैः ।
वमनांजननस्यादि सर्वं च कफजिद्धितम् ॥ २३ ॥

---

१ श्रेष्ठा त्रिफला ।

कर्तव्यं लगणेप्येतदसांतावग्निना दहेत् ।,

कुकूणके चिकित्सा—

कुकूणे खदिरश्रेष्ठानिवपत्रैः शृतं घृतम् ॥ २४ ॥
पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टीसर्षपसैंधवैः ।
अभयापिप्पलीद्राक्षाक्वाथेनैनां विरेचयेत् ॥ २५ ॥
मुस्ताद्विरजनीकृष्णाकल्केनालेपयेत्स्तनौ ।
धूपयेत्सर्षपैः साज्यैः,
शुद्धां क्वाथं च पाययेत् ॥ २६ ॥
पटोलमुस्तमृद्वीकागुडूचीत्रिफलोद्भवम् ।,
शिशोस्तु लिखितं वर्त्म सुतासृग्वांबुजन्मभिः[1] ॥ २७ ॥
धात्र्यश्मंतकजम्ब्वत्थपत्रक्वाथेन सेचयेत् ।

शिशूनांसर्वव्याधिषुसहेतुकं वमनम्—

प्रायः क्षीरघृताशित्वाद्बालानां श्लेष्मजा गदाः ॥ २८ ॥
तस्माद्वमनमेवाग्रे सर्वव्याधिषु पूजितम् ।

तदेववमनम्—

मिधूत्थकृष्णापामार्गबीजाज्यस्तन्यमाक्षिकम् ॥ २९ ॥
चूर्णो वचायाः मक्षौद्रो मदनं मधुकान्वितम् ।
क्षीरं क्षीराशमन्नं च भजतः क्रमशः शिशोः ॥ ३० ॥
वमनं सर्वरोगेषु विशेषेण कुकूणके ।
सप्तलारससिद्धाज्यं योज्यं [2]चोभयशोधनम् ॥ ३१ ॥
द्विनिशारोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिवपल्लवैः ।

कुकूणके वर्त्यादि—

कुकूणके हिता वर्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोन्वितैः । ३२ ॥

---

१ अम्बुजन्मभिर्जलौकाभिःसुतरक्तम्, कुकूणकः (खुखुरू) हि० । २ उभयशोधनं वमनविरेचने ।

क्षीरक्षौद्रघृतोपेतं दग्धं वा लौहजं रजः ।

कुकूणपोथक्योर्वर्ति :—

एलारसोनकतकशंखोषणफणिज्झकैः ॥ ३३ ॥
वर्तिः कुकूणपोथक्योः सुरापिष्टैः सकट्फलैः ।

पक्ष्मरोधचिकित्सा—

पक्ष्मरोधे प्रवृद्धेषु शुद्धदेहस्य रोमसु ॥ ३४ ॥
[१]उत्सृज्य द्वौ भ्रुवोऽधस्ताद्भागौ भागं च पक्ष्मतः ।
यवमात्रं यवाकारं तिर्यक्छित्त्वाऽऽर्द्रवाससा ॥ ३५ ॥
अपनेयमसृक् तस्मिन्नल्पीभवति शोणिते ।
सीव्येत्कुटिलया सूच्या मुद्गमात्रान्तरैः पदैः ॥ ३६ ॥
बद्ध्वा ललाटे पट्टं च तत्र सीवनसूत्रकम् ।
नातिगाढश्लथं सूच्या निक्षिपेदथ योजयेत् ॥ ३७ ॥
मधुसर्पिःकवलिका न चास्मिन्नवचारयेत् ।
न्यग्रोधादिकषायैश्च सक्षीरैः सेचयेद्रुजि ॥ ३८ ॥
पंचमे दिवसे सूत्रमपनीयावचूर्णयेत् ।
गैरिकेण व्रणं युंज्यात्तीक्ष्णं नस्याजनादि च ॥ ३९ ॥

अशान्तौ दाहादि—

दहेदशान्तौ[२] निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रयां वलीम् ।
नंदंशेनाधिकं पक्ष्म हृत्वा तस्याश्रयं दहेत् ॥ ४० ॥
सूच्यग्रेणाग्निवर्णेन दाहो बाह्यालजेः पुनः ।
भिन्नस्य क्षारवह्निभ्यां सुच्छिन्नस्यार्बुदस्य च' ॥ ४१ ॥

---

१ भ्रुवोऽधस्ताद् द्वौ भागौ छित्वार्द्रवस्त्रेणरक्तमपनेयम् ।

२ वर्त्म दोषाश्रयां वलिनिर्भुज्य दहेत् । अधिकं पक्ष्मसंदंशेनहृत्वातस्यपक्ष्मण आश्रयं दहेत्, भिन्नस्य बाह्यालजेरग्निवर्णेन सूच्यग्रेण दाहस्तथा क्षारवह्निभ्यां सुच्छिन्नस्यार्बुदस्य च दाहः कार्यः ।

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतः संधिसितासितरोगविज्ञानमारभ्यते ॥

नेत्रसन्धिरोगकथनम्—

"वायुः क्रुद्धः शिराः प्राप्य जलाभं जलवाहिनीः ।
अस्रु स्रावयते वर्त्मशुक्लसंधेः कनीनकात् ॥ १ ॥
तेन नेत्रं सरुग्रागशोफं स्यात्स जलास्रवः ।,
कफात्कफास्रवे श्वेतं पिच्छिलं बहलं स्रवेत् ॥ २ ॥
"कफेन शोफस्तीक्ष्णाग्रः क्षारबुद्बुदकोपमः ।
पृथुमूलबलः स्निग्धः सवर्णमृदुपिच्छिलः ॥ ३ ॥
महानपाकः कंडूमानुपनाहः स नीरुजः ।,,
"रक्ताद् रक्तस्रवे ताम्रं बहूष्णं चास्रु संस्रवेत् ॥ ४ ॥
"वर्त्मसंध्याश्रया शुक्ले पिटिका दाहशूलिनी ।
ताम्रा मुद्गोपमा भिन्ना रक्तं स्रवति पर्वणी" ॥ ५ ॥
"पूयास्रावे मलाः सास्रा वर्त्मसंधेः कनीनकात् ।
स्रावयंति मुहुः पूयं सास्रत्वङ्मांसपाकतः" ॥ ६ ॥
"पूयालसो व्रणः सूक्ष्मः शोफसंरंभपूर्वकः ।
कनीनसंधावाध्मायी पूयास्रावी सवेदनः" ॥ ७ ॥
कनीनस्यांतरलजी शोफो रुक्तोददाहवान् ।
अपांगे वा कनीने वा कंडूपापक्ष्मपोटवान् ॥ ८ ॥
पूयास्स्रावी कृमिग्रंथिर्ग्रंथिकृमियुतोऽर्तिमान् ।

उपनाहादीनां शस्त्रेण साधनम्—

उपनाहकृमिग्रंथिपूयालसकपर्वणीः ॥ ९ ॥

शस्त्रेण साधयेत्तं च सालजीनासवास्त्यजेत् ।

श्वेतभागजा रोगाः शुक्लिकाख्योरोगः—

पित्तं कुर्यात्सिते बिंदूनसितश्यावपीतकान् ॥ १० ॥
मलाक्तदर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरुक् ।
रोगोऽयं शुक्लिकासंज्ञः सशकृद्भेदतृड्ज्वरः ॥ ११ ॥
कफाच्छुक्ले समं श्वेतं चिरवृद्ध्यधिमांसकम् ।

शुक्लार्म

शोफस्त्वरुजः सवर्णो बहलो मृदुः ॥ १२ ॥
गुरुः स्निग्धोऽम्बुबिंद्वाभो बलासग्रथितं स्मृतम् ।
बिंदुभिः पिष्टधवलैरुत्सन्नैः पिष्टकं वदेत् ॥ १३ ॥
रक्तराजीततं शुक्लमुच्यते यत्सवेदनम् ।
अशोफाश्रुपदेहं च शिरोत्पातः स शोणितात् ॥ १४ ॥
उपेक्षित. सिरोत्पातो राजीस्ता एव वर्धयन् ।
कुर्यात्साक्षं सिराहर्षं तेनाक्ष्युद्वीक्षणाक्षमम् ॥ १५ ॥
सिराजाले सिराजालं बृहद्रक्तं घनोन्नतम् ।
शोणितार्मं समं श्लक्ष्णं पद्माभमधिमांसकम् ॥ १६ ॥
नीरुक् श्लक्ष्णोऽर्जुनं बिंदुः शशलोहितवल्लोहितः[1] ।
मृद्वाशुवृद्ध्यरुङ्मांसं प्रस्तारि[2] श्यावलोहितम् ॥ १७ ॥

प्रस्तार्यर्म मलैः सास्रैः,

स्नावार्म स्नावसंनिभम् ।
शुक्लासृक्पिडवच्छ्यावं यन्मांसं बहलं पृथु ॥ १८ ॥

अधिमांसार्म तद्,

दाहघर्षवंत्यः सिरावृताः ।
कृष्णासन्नाः सिरासंज्ञाः पीटिकाः सर्षपोपमाः ॥ १९ ॥

---

१ शशस्येव लोहितमिवलोहितस्ताम्रवर्णः । २ प्रस्तारि विस्तृतम् ।

सितभागजानां त्रयोदशानां चिकित्सासूत्रम्—

शुक्तिहर्षसिरोत्पातपिष्टकग्रथितार्जुनम्[१] ।
साधयेदौषधैः षट्कं शेषं शस्त्रेण सप्तकम् ॥ २० ॥

नवोत्थं तदपि द्रव्यैः,

वर्ज्यावर्ज्यविचार :—

अर्मोक्तं यच्च पंचधा ।
तच्छेद्यमसितप्राप्तं मांसस्रावसिरावृतम् ॥ २१ ॥
[२]चर्मोद्दालवदुच्छ्रायि दृष्टिप्राप्तं च वर्जयेत् ।

कृष्णगतरोगाभिधानम्—

पित्तं कृष्णेऽथवा दृष्टौ शुक्रं तोदाश्रुरागवत् ॥ २२ ॥
छित्त्वा त्वचं जनयति तेन स्यात्कृष्णमंडलम् ।
पक्वजंबूनिभं किंचिन्निम्नं च क्षतशुक्रकम् ॥ २३ ॥
तत्कृच्छ्रसाध्यं याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात् ।
तत्र तोदादिबाहुल्यं सूचिविद्धाभकृष्णता ॥ २४ ॥
तृतीयपटलच्छेदादसाध्यं निचितं व्रणैः ।
शंखशुक्लं कफात्साध्यं नातिरुक् शुद्धशुक्रकम् ॥ २५ ॥
आताम्रपिच्छिलास्रस्रुदाताम्रपिटिकातिरुक् ।
अजाविट्सदृशोच्छ्रायकार्ष्ण्या वर्ज्याऽस्रजाजका ॥ २६ ॥
सिराशुक्रं मलैः सास्रैस्तज्जुष्टं कृष्णमंडलम् ।
सतोददाहताम्राभिः सिराभिरवतन्यते ॥ २७ ॥
अनिमित्तोष्णशीताच्छघनास्रस्रुक् च तत्त्यजेत् ।"
"दोषैः सास्रैः सकृत्कृष्णं नीयते शुक्लरूपताम् ॥ २८ ॥
धवलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाकृति ।
अतितीव्ररुजारागदाहश्वयथुपीडितम् ॥ २९ ॥

---

१ षट्कं शुक्त्यादि । सप्तकं शुष्कार्मसिराजालार्मपञ्चकमेति सप्तकम् । एतत्सप्तकमपि नवोत्पन्नं द्रव्यैरौषधैः साधयेत् । २ चर्मेति चर्मखण्डवत् आभासमानम् ।

[1]पाकात्ययेन तच्छुक्रं वर्जयेत्तीव्रवेदनम् ।"

वर्ज्यशुक्रकम्—

यस्य वा लिंगनाशोऽन्तः श्यावं यद्वा सलोहितम् ।
अत्युत्सेधावगाढं वा सास्त्रनाडीव्रणावृतम् ॥ ३० ॥
पुराणं विषमं मध्ये विच्छिन्नं यच्च शुक्रकम् ।
पंचेत्युक्ता गदाः शुक्ले साध्यासाध्यविभागतः"

एकादशोऽध्यायः ।

अथातः संधिसितासितरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

उपनाह चिकित्सा—

"उपनाहं भिषक् स्विन्नं भिन्नं व्रीहिमुखेन च ।
लेखयेन्मंडलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत् ॥ १ ॥
पिप्पलीक्षौद्रसिंधूत्थैर्बध्नीयात्पूर्ववत्ततः[2] ।
पटोलपत्रामलककवाथेनाश्चोतयेच्च तम् ॥ २ ॥

पर्वणीचिकित्सा—

[3]पर्वणीं बडिशेनात्तांबाह्यसंधित्रिभागतः ।
वृद्धिपत्रेण वर्ध्यार्धे स्यादश्रुगतिरन्यथा ॥ ३ ॥

---

१ यच्छुक्रं पाकात्ययेन तीव्रवेदनं तदपि वर्जयेत् । शुक्ररोगः—'फूली' हि० ।
२ पूर्ववत्–उष्णेनजलेन प्रक्षाल्यघृतेनसिक्तं मधुमर्शिपाऽभ्यक्तमूर्ध्वाधः कर्णयोश्च वस्त्रलुभिःपिण्डीदत्त्वाबध्नीयात् । ३ पर्वणी–सन्धिविभागे जाता–गृहीतासती वृद्धिपत्रेणार्धभागे वध्या छेदनीया । अन्यथाधिकच्छेदादश्रुनाडीस्यात् ।

चिकित्सा चार्मवत्क्षौद्रसैंधवप्रतिसारिता ।

पूयालसेसिराव्यधादि—

पूयालसे सिरां विध्येत्ततस्तमुपनाहयेत् ॥ ४ ॥
कुर्वीत चाक्षिपाकोक्तं सर्वं कर्म यथाविधि ।

चूर्णाञ्जनप्रयोगादि—

सैंधवार्द्रककासीमलोहताम्रैः सुचूर्णितैः ॥ ५ ॥
चूर्णांजनं प्रयुंजीत सक्षौद्रैर्वा रसक्रियाम् ।

क्रिमिग्रन्थिभेदनादि—

कृमिग्रंथि करीषेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च ॥ ६ ॥
त्रिफलाक्षौद्रकासीससैंधवैः प्रतिसारयेत् ।,
"पित्ताभिष्यंदवच्छुक्तिं,,

बलासग्रथितपिष्टकयोरुपचार :—

बलासाह्वयपिष्टकौ ॥ ७ ॥
कफाभिष्यंदवन्मुक्त्वा सिराव्यधमुपाचरेत् ।
बीजपूररसाक्तं च व्योषकट्फलमंजनम् ॥ ८ ॥

अञ्जनम्—

जातीमुकुलसिंधूत्थदेवदारुमहौषधैः ।
पिष्टैः प्रसन्नया वर्तिः शोफकंडूघ्नमंजनम् ॥ ९ ॥
रक्तस्यंदवदुत्पातहर्षजालार्जुने क्रिया ।
सिरोत्पाते विशेषेण घृतमाक्षिकमंजनम् ॥ १० ॥
सिराहर्षे तु मधुना श्लक्ष्णघृष्टं रसांजनम् ।
अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्च्योतनं हितम् ॥ ११ ॥
स्फटिकः कुंकुमं शंखो मधुको मधुनांजनम् ।
मधुना चांजनं शंखः फेनो वा सितया सह ॥ १२ ॥

अर्मचिकित्सा—

अर्मोक्तं पंचधा तत्र तनु धूमाविलं च यत् ।
रक्तं दधिनिभं यच्च शुक्रवत्तस्य भेषजम् ॥ १३ ॥

अर्मणः शस्त्रचिकित्सा—

उत्तानस्येतरत्[1] स्विन्नं ससिंधूत्थेन चाजितम् ।
रसेन बीजपूरस्य निमील्याक्षि विमर्दयेत् ॥ १४ ॥
[2]इत्थं संरोपिताक्षस्य प्रचलेऽर्माधिमांसके ।
धृतस्य निश्चलं मूर्ध्नि वर्त्मनोश्च विशेषतः ॥ १५ ॥
अपांगमीक्षमाणस्य वृद्धेऽर्मणि कनीनकात् ।
वली स्याद्यत्र तत्रार्म बडिशेनावलंबितम् ॥ १६ ॥
नात्यायतं मुचुंड्या वा सूच्या सूत्रेण वा ततः ।
समंतान्मंडलाग्रेण मोचयेदथ माक्षिकम् ॥ १७ ॥
कनीनकमुपानीय चतुर्भागावशेषितम् ।
छिंद्यात्कनीनके रक्तवाहिनीश्चाश्रुवाहिनीः ॥ १८ ॥
कनीनकव्यधादश्रुनाडी चाक्ष्णि प्रवर्तते ।
वृद्धेऽर्मणि तथाऽपांगात्पश्यतोऽस्य कनीनकात् ॥ १९ ॥
सम्यक् छिन्नं मधूष्णोपमैंधवप्रतिसारितम् ।
उष्णेन सर्पिषा सिक्तमभ्यक्तं मधुसर्पिषा ॥ २० ॥
बध्नीयात्सेचयेन्मुक्त्वा तृतीयादिदिनेषु च ।
करंजबीजसिद्धेन क्षीरेण क्वथितैस्तथा ॥ २१ ॥
सक्षौद्रैर्द्विनिशारोध्रपटोलीयष्टिकिंशुकैः ।
कुरंटमुकुलोपेतैर्मुंचेदेवाह्नि सप्तमे ॥ २२ ॥
सम्यक् छिन्ने भवेत्स्वास्थ्यं हीनातिच्छेदजान्गदान् ।
सेकाजनप्रभृतिभिर्जयेल्लेखनबृंहणैः ॥ २३ ॥

---

१ अर्मरोगः (नाखूना) हि० उत्तानस्य रोगिणः । इतरत्—वामदक्षिणयोरेकं नेत्रम् । २ इत्थं सैन्धव बीजपूररसाञ्जितं निमील्यविमर्दनेन संरोपिताक्षस्य अर्म शिथिलीकरणाय संक्षोभितनेत्रस्य । वर्त्मनोश्च विशेषेण धृतस्य, कनीनकाद् अर्मणिवृद्धे सत्यपाङ्गं पश्यतः । यत्रार्मणि वलीस्यात्तत्रनात्यायतं नातिदीर्घंयथा भवति तथा बडिशेनावलम्बितम । ततोमुचुण्ड्या तर्जन्यङ्गुष्ठसन्दंशेन ।

अञ्जनम्—

मितामनः शिलालैयलवणोत्तमनागरम् ।
अर्धकर्षोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुप्लुतम् ॥ २४ ॥
अंजनं श्लेष्मतिमिरपिल्लशुक्लार्मशोषजित् ।

लेखनाञ्जनम्—

[१]त्रिफलैकतमद्रव्यत्वचं पानीयकल्किताम् ॥ २५ ॥
शरावपिहितां दग्ध्वा करोति चूर्णयेत्ततः ।
पृथक्पयोपयपरसैः पृथगेव च भाविता ॥ २६ ॥
सा मषी शोषिता पेष्या भूयो द्विलवणान्विता ।
त्रीण्येतान्यंजनान्याह लेखनानि परं निमिः ॥ २७ ॥

कठिनसिराणामर्मवच्चिकित्सा—

सिराजालेसिरा यास्तु कठिना लेखनौषधैः ।
न सिद्ध्यंत्यर्मवत्तासा पिटिकाना च साधनम् ॥ २८ ॥

शुक्रेघृतम्—

दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्धरूक्षं वराघृतम् ।
तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्रावो रेकसेकादि चेष्यते ॥ २९ ॥

क्षतशुक्रेपकघृतपानादि :—

त्रिस्त्रिवृद्वारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत् ।
सिरया तु हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ॥ ३० ॥
सिद्धेनोत्पलकाकोलीद्राक्षायष्टिविदारिभिः ।
ससितेनाजपयसा सेचनं सलिले न वा ॥ ३१ ॥
रागाश्रुवेदनाशांतौ परं लेखनमंजनम् ।

वर्तय :—

वर्तयो जातिमुकुलकाक्षागैरिकचंदनैः ॥ ३२ ॥

१ त्रिफलासामेकस्य कस्यचिद्द्रव्यस्य त्वचम् । ततस्त्रिफलायाः ।

प्रसादयंति पित्तास्रं घ्नंति च क्षतशुक्रकम् ।

नेत्रवर्तिः—

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ॥ ३३ ॥
सशंखमौक्तिकांभोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्यापि दंतवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ३४ ॥

वर्तिःसर्वशुक्रहृत्—

तमालपत्रं गोदंतशंखफेनोऽस्थि गार्दभम् ।
ताम्रं च वर्तिर्मूत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी ॥ ३५ ॥

रत्नाद्यञ्जनम्—

रत्नानि दंता शृंगाणि धातवस्त्र्यूषणं त्रुटि. ।
करंजबीजं लशुनो व्रणसादि च भेषजम् ॥ ३६ ॥
सव्रणाव्रणगंभीरत्वक्स्थशुक्रघ्नमंजनम् ।

निम्नशुक्रस्योन्नमनम्—

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसांजनै. ॥ ३७ ॥
सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम् ।

शुद्धशुक्रे सेचनम्—

शुद्धशुक्रे निशायष्टीसारिवाशाबराम्भसा ॥ ३८ ॥
सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णाम्भोमग्नयाऽथवा ।

शुक्रघ्नी गुटिका—

बृहतीमूलयष्ट्याह्वताम्रसैंधवनागरैः ॥ ३९ ॥
धात्रीफलाम्बुना पिष्टैर्लेपितं ताम्रभाजनम् ।
यवाज्यामलकीपत्रैर्बहुशो　धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥
तत्र कुर्वीत गुटिकास्ता जलक्षौद्रपेषिताः ।
महानीला इति ख्याताः शुद्धशुक्रहराः परम् ॥ ४१ ॥

अञ्जनम्—

सितामनः शिलालेपलवणोत्तमनागरम् ।
अर्धकर्षोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुप्लुतम् ॥ २४ ॥
अंजनं श्लेष्मतिमिरपिल्लशुक्लार्मशोषजित् ।

लेखनाञ्जनम्—

[1]त्रिफलैकतमद्रव्यत्वचं पानीयकल्किताम् ॥ २५ ॥
शरावपिहितां दग्ध्वा कपाले चूर्णयेत्ततः ।
पृथक्शेषौषधरसैः पृथगेव च भाविता ॥ २६ ॥
सा मषी शोषिता पेष्या भूयो द्विलवणान्विता ।
त्रीण्येतान्यंजनान्याह लेखनानि परं निमिः ॥ २७ ॥

कठिनसिराणामर्मवच्चिकित्सा—

सिराजाले सिरा यास्तु कठिना लेखनौषधैः ।
न सिद्ध्यंत्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम् ॥ २८ ॥

शुक्रे घृतम्—

दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्धरूक्षं वराघृतम् ।
तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्रावो रेकमेकादि चेष्यते ॥ २९ ॥

क्षतशुक्रेपक्वघृतपानादि :—

त्रिफलावृद्दारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत् ।
सिरया तु हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ॥ ३० ॥
सिद्धेनोत्पलकाकोलीद्राक्षायष्टिविदारिभिः ।
समितेनाजपयसा सेचनं सलिले न वा ॥ ३१ ॥
रागाश्रुवेदनाशांतौ परं लेखनमंजनम् ।

वर्तय :—

वर्तयो जातिमुकुललाक्षागैरिकचंदनैः ॥ ३२ ॥

[1] त्रिफलायामेकस्य कस्यचिद्द्रव्यस्य त्वचम् । ततस्त्रिफलायाः ।

प्रसादयति पित्तास्रं हन्ति च क्षतशुक्रकम् ।

नेत्रवर्तिः—

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ॥ ३३ ॥
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्यापि दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ३४ ॥

वर्तिःसर्वशुक्रहृत्—

तमालपत्रं गोदन्तशंखफेनोऽस्थि गार्दभम् ।
ताम्रं च वर्तिर्मूत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी ॥ ३५ ॥

रत्नाद्यञ्जनम्—

रत्नानि दन्ताः शृंगाणि धातवस्त्र्यूषणं त्रुटिः ।
करंजबीजं लशुनो व्रणघ्नादि च भेषजम् ॥ ३६ ॥
सव्रणाव्रणगंभीरत्वक्स्थशुक्रघ्नमञ्जनम् ।

निम्नशुक्रस्योन्नमनम्—

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसाञ्जनैः ॥ ३७ ॥
सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम् ।

शुद्धशुक्रे सेचनम्—

शुद्धशुक्रे निशायष्टीसारिवाशाबराम्भसा ॥ ३८ ॥
सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णाम्भोमग्नयाऽथवा ।

शुक्रघ्नी गुटिका—

बृहतीमूलयष्ट्याह्वताम्रसैन्धवनागरैः ॥ ३९ ॥
धात्रीफलाम्बुना पिष्टैर्लिप्तं ताम्रभाजनम् ।
यवाज्यामलकीपत्रैर्बहुशो धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥
तत्र कुर्वीत गुटिकास्ता जलक्षौद्रपेषिताः ।
महानीला इति ख्याताः शुद्धशुक्रहराः परम् ॥ ४१ ॥

“अग्नौतावर्मवच्छुक्रमजकाख्ये च योजयेत् ।”
अजकायामसाध्यायां शुक्रेऽन्यत्र च तद्विधैः ॥ ५१ ॥
वेदनोपशमे स्नेहपानासृक्स्रावणादिभिः ।
कुर्याद्बीभत्सतां जेतुं शुक्रस्योत्सेधनाशनम् ॥ ५२ ॥

असाध्यशुक्रेऽञ्जनम्—

नारिकेलास्थिभल्लाततालवंशकरीरजम् ।
भस्माद्भिः स्रावयेत्ताभिर्भावयेत्करभास्थिजम् ॥ ५३ ॥
चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येषु तद्वैवर्ण्यघ्नमञ्जनम् ।
साध्येषु साधनायालमिदमेव च शीलितम् ॥ ५४ ॥

अजकाव्यधादि—

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ।
समं　　प्रपीड्याङ्गुष्ठेन　　वसार्द्रेणानुपूरयेत् ॥ ५५ ॥
व्रणं गोमांसचूर्णेन बद्धं बद्धं विमुच्य च ।
सप्तरात्राद् व्रणे रूढे कृष्णभागे समे स्थिरे ॥ ५६ ॥
स्नेहाञ्जनं च कर्तव्यं नस्यं च क्षीरसर्पिषा ।
तथापि पुनराध्माने भेदच्छेदादिका क्रिया ॥ ५७ ॥
युक्त्या कुर्याद्यथा नातिच्छेदेन स्यान्निमज्जनम् ।

शुक्रेषु पानादौ पक्वघृतम्—

नित्यं च शुक्रेषु घृतं यथार्हं
पाने च मर्शे च घृतं विदध्यात् ।
न हीयते लब्धबला तथान्त-
स्तीक्ष्णाञ्जनैर्दृक् सततं प्रयुक्तैः ॥ ५८ ॥

---

१ असाध्यायामजकायां शुक्रेऽन्यत्रान्यस्मिंश्चरोगेऽसाध्ये स्नेहपानादिभिः तद्विधैर्वेदनोपशमं कुर्यात् । बीभत्सतानिवृत्त्यै जेतुं शुक्रस्योत्सेधनाशनं कुर्यात् ।

द्वादशोऽध्यायः

अथातो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तिमिराख्यरोगलक्षणम् —

सिरानुसारिणि मले प्रथमं पटलं श्रिते ।
अव्यक्तमीक्षते रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः ॥ १ ॥
[1]प्राप्ते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति ।
भूतं तु यत्नादासन्नं दूरे सूक्ष्मं च नेक्षते ॥ २ ॥
दूरांतिकस्थं रूपं च विपर्ययमिव मन्यते ।
दोषे मंडलसंस्थाने मंडलानीव पश्यति ॥ ३ ॥
द्विधैकं दृष्टिमध्यस्थे बहुधा बहुधा स्थिते ।
दृष्टेरभ्यंतरगते ह्रस्ववृद्धविपर्ययम् ॥ ४ ॥
नान्तिकस्थमधःसंस्थे दूरगं नोपरि स्थिते ।
पार्श्वे पश्येन्न पार्श्वस्थे तिमिराख्योऽयमामयः ॥ ५ ॥
प्राप्नोति काचतां दोषे तृतीयपटलाश्रिते ।
तेनोर्ध्वमीक्षते नाधस्तनुचैलावृतोपमम् ॥ ६ ॥
यथावर्णं च रज्येत दृष्टिर्हीयेत च क्रमात् ।
तथाप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थं पटलं गतः ॥ ७ ॥
लिंगनाशं मलः कुर्वन् छादयेद् दृष्टिमंडलम् ।
तत्र वातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति ॥ ८ ॥
चलाविलारुणाभासं प्रसन्नं चेक्षते मुहुः ।
जालानि केशान्मशकान् रश्मींश्चोपेक्षितेऽत्र च ॥ ९ ॥

---

१ द्वितीयं भेद आश्रितं पटलम् । अभूतमविद्यमानम् । दूरे स्थितं तथा सूक्ष्मं च न पश्यति । तिमिररोगः भाषायां मोतियाबिंद इति ।

काचीभूते दृगरुणा पश्यत्यास्यमनासिकम् ।
चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं वक्रमृज्वपि मन्यते ॥ १० ॥
वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रजोधूमावृतामिव ।
स्पष्टारुणाभा विस्तीर्णा सूक्ष्मा वा हतदर्शनाम् ॥ ११ ॥

स लिंगनाशो,

वाते तु संकोचयति दृक्सिराः ।
दृग्मंडलं विशत्यंतर्गंभीरा दृगसौ स्मृता ॥ १२ ॥
पित्तजे तिमिरे विद्युत्खद्योतोद्योतदीपितम् ।
शिखितित्तिरिपिच्छाभं प्रायो नीलं च पश्यति ॥ १३ ॥
काचे दृक् काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति ।
अर्केंदुपरिवेषाग्निमरीचींद्रधनूंषि च ॥ १४ ॥
भृङ्गनीला[1] निरालोका दृक् स्निग्धा लिंगनाशतः ।
दृष्टिः पित्तेन ह्रस्वाख्या सा ह्रस्वाह्रस्वदर्शिनी ॥ १५ ॥
भवेत्पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना ।

कफतिमिर लक्षणम्—

कफेन तिमिरे प्रायः स्निग्धं श्वेतं च पश्यति ॥ १६ ॥
शंखेंदुकुंदकुसुमैः कुमुदैरिव [2]चाचितम् ।
काचे तु निष्प्रभेंद्वर्कप्रदीपाद्यैरिवाचितम् ॥ १७ ॥
सिताभा सा च दृष्टिः स्याल्लिंगनाशे तु लक्ष्यते ।
मूर्तः कफो दृष्टिगतः स्निग्धो दर्शननाशनः ॥ १८ ॥
बिंदुर्जलस्येव चलः पद्मिनीपुटसंस्थितः ।
उष्णे संकोचमायाति छायायां परिसर्पति ॥ १९ ॥
शंखकुंदेंदुकुमुदस्फटिकोपमशुक्लिमा ।,
रक्तेन तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति ॥ २० ॥

---

१ लिङ्गनाशाद्दृष्टिर्भ्रमरवन्नीला प्रकाशरहिता स्निग्धा च स्यात् तेन ह्रस्व संज्ञा दृष्टिः । ह्रस्वा ह्रस्वाकृतिस्तथा ह्रस्वदर्शिनी च दृष्टिर्भवति । २ आचितं व्याप्तम् ।

काचेन रक्ता कृष्णा वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति ।
लिंगनाशेऽपि तादृग् दृङ् निःप्रभा हतदर्शना" ॥ २१ ॥
संसर्गसंनिपातेषु विद्यात्संकीर्णलक्षणान् ।
तिमिरादीनकस्माच्च तैः[1] स्याद्व्यक्ताकुलेक्षणम् ॥ २२ ॥
तिमिरे, [2]शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते ।

नकुलान्ध्यरोग :—

द्योत्यते नकुलस्येव यस्य दृङ् निचिता मलैः ॥ २३ ॥
नकुलान्ध. स तत्राह्नि चित्रं पश्यति नो निशि ।

दोषान्धोरोग :—

अर्केऽस्तमस्तकन्यस्तगभस्तौ स्तंभमागताः ॥ २४ ॥
स्थगयंति दृशं दोषा दोषांधः स गदोपरः ।
दिवाकरकरस्पृष्टा भ्रष्टा दृष्टिपथान्मलाः ॥ २५ ॥
विलीनलीना यच्छंति व्यक्तमत्राह्नि दर्शनम् ।,

रात्र्यान्ध्यादिरोगा :—

उष्णतप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात् ॥ २६ ॥
त्रिदोषरक्तसंपृक्तो यात्यूष्मोर्ध्वं ततोऽक्षिणी ।
दाहोषे मलिनं शुक्लमह्न्याविलदर्शनम् ॥ २७ ॥
रात्रावांध्यं च जायेत विदग्धोष्णेन सा स्मृता ।
"भृशमम्लाशनाद्दोषैः सास्त्रैर्या दृष्टिराचिता ॥ २८ ॥
सक्लेदकंडूकलुषा विदग्धाम्लेन सा स्मृता ।,,
शोकज्वरशिरोरोगसंतप्तस्यानिलादयः ॥ २९ ॥
धूमाविलां धूमदृशां दृशं कुर्युः स धूमरः ।
सहसैवाल्पसत्त्वस्य पश्यतो रूपमद्भुतम् ॥ ३० ॥

---

१ तैः संसर्गसन्निपातैः । २ शेषयोः काचलिङ्गनाशयोः । अस्तमस्त- पर्वतस्य मस्तके न्यस्ता स्थापितागभस्तय. किरणा येन स तस्मिन् अर्के । स्थगयन्ति छादयन्ति ।

भास्वरं भास्करादि वा वाताद्या नयनाश्रिताः ।
कुर्वंति तेजः संशोष्य दृष्टिं मुषितदर्शनाम् ॥ ३१ ॥

वैडूर्यवर्णां स्तिमितां प्रकृतिस्थामिवाव्यथाम् ।
औपसर्गिक इत्येष लिंगनाशो,

साध्यासाध्यविचारः—

ऽत्र वर्जयेत् ।

विना [1]कफाल्लिंगनाशान् गंभीरां ह्रस्वजामपि ॥ ३२ ॥

षट् काचा नकुलाधश्च याप्याः, शेषांस्तु साधयेत् ।
द्वादशेति, गदा दृष्टौ निर्दिष्टा सप्तविंशतिः" ॥ ३३ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽतस्तिमिरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

तिमिरस्यशीघ्रमुपक्रमः—

"तिमिरं काचतां याति काचोऽप्यांध्यमुपेक्षया ।
नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद् द्रुतम् ॥ १ ॥

साधितघृतपानं काचादिनाशकम्—

तुलां पचेत जीवंत्या द्रोणेऽपां पादशेषिते ।
तत्क्वाथे द्विगुणक्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

---

१ विनेति—वातपित्तसंसर्गसन्निपातरक्तजौपसर्गिकान् । षट् काचाः—वातपित्तकफरक्तसंसर्गसन्निपातजाः । दोषान् द्वादश—वातपित्तकफ रक्तसंसर्ग सन्निपातैरिति-तिमिराणि षट् । सप्तमः कफजोलिङ्गनाशः । अष्टमः पित्तविदग्धा दृष्टिः । नवमोदोषान्धः, दशम उष्णविदग्धादृष्टिः । एकादशो विदग्धाम्ला । द्वादशोधूमरः ।

प्रपौंडरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैंधवैः ।
शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ॥ ३ ॥
कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ।
द्राक्षाचंदनमंजिष्ठाकाकोलीद्वयजीवकैः ॥ ४ ॥
सिताशतावरीमेदापुंड्राह्वमधुकोत्पलैः ।
पचेत्कार्षैर्घृतप्रस्थं समक्षीरं पिचून्मितैः ॥ ५ ॥
हंति तत्काचतिमिररक्तराजीशिरोरुजः ।

अन्यद्घृतम्—

पटोलनिंबकटुकादार्वीसेव्यवरावृषम् ॥ ६ ॥
सधन्वयासत्रायंतीपर्पटं पालिकं पृथक् ।
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि[1] ॥ ७ ॥
तदाढकेऽर्धपलिकैः पिष्टैः प्रस्थं घृतात्पचेत् ।
मुस्तभूनिंबयष्ट्याह्वकुटजोदीच्यचंदनैः ॥ ८ ॥
सपिप्पलीकैस्तत्सर्पिर्घ्राणकर्णास्यरोगजित् ।
विद्रधिज्वरदुष्टार्शोविसर्पापचिकुष्ठनुत् ॥ ९ ॥
विशेषाच्छुक्रतिमिरनक्तांध्योष्णाम्लदाहनुत् ।

त्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाष्टपलं क्वाथ्यं पादशेषं जलाढके ॥ १० ॥
तेन तुल्यपयस्केन त्रिफलापलकल्कवान् ।
अर्धप्रस्थो घृतात्सिद्धः सितया माक्षिकेण वा ॥ ११ ॥
युक्तं पिबेत्तिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम् ।

महात्रैफलघृतम्—

यष्टीमधुद्विकाकोलीव्याघ्रीकृष्णामृतोत्पलैः ॥ १२ ॥
पालिकैः ससिताद्राक्षैर्घृतप्रस्थं पचेत्समैः ।
अजाक्षीरवरावासामार्कवस्वरसैः पृथक् ॥ १३ ॥

---

१ नल्वणद्रोणे ।

महार्घंफलमित्येतत्परं दृष्टिविकारजित् ।

लेह्यो गरुडतुल्य दृष्टिकृत्—

गैफलेनाथ हविषा लिहानस्त्रिफलां निशि ॥ १४ ॥

यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम् ।
माममेक हिताहारः पिबन्नामलकोदकम् ॥ १५ ॥

[1]सौपर्णं लभते चक्षुरित्याह भगवान्निमिः ।

त्रिफलाप्रयोग :—

ताप्यायोहेमयष्ट्याह्वसिताजीर्णाज्यमाक्षिकैः ॥ १६ ॥

संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी[2] वरा वरा ।
सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥ १७ ॥

अपूपमूपसक्तून्वा त्रिफलाचूर्णसंयुतान् ।
पायसं वा वरायुक्तं शीतं ससमधुशर्करम् ॥ १८ ॥

प्रातर्भक्तस्य वा पूर्वमद्यात्पथ्या पृथक् पृथक् ।
मृद्वीका शर्कराक्षौद्रैः सततं तिमिरातुरः ॥ १९ ॥

तिमिरापहं चूर्णांजनम्—

[3]स्रोतोजांशांश्चतुःषष्टि ताम्रायोरूप्यकांचनैः ।
युक्तान् प्रत्येकमेकांशैरंधमूषोदरस्थितान् ॥ २० ॥

ध्मापयित्वा समावृत्तं ततस्तच्च निषेचयेत् ।
रसस्कंधकषायेषु सप्तकृत्वः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

वैडूर्यमुक्ताशंखाना त्रिभिर्भागैर्युतं ततः ।
चूर्णांजनं प्रयुंजीत तत्सर्वं तिमिरापहम् ॥ २२ ॥

---

१ सौपर्णं गारुडम् । २ वरात्रिफला । वराप्रशस्ता । ३ स्रोताञ्जनस्य च तु.षष्टिभागाः, ताम्रादीनां प्रत्येकमेकभागः । समावृत्तं शिलायां पिष्टम् । रसेति-मधुरादिरसद्रव्यगणक्वाथेषु । वैडूर्यादीनांपृथक् त्र्योभागाः ।

अञ्जनम्—

मांसीत्रिजातकायःकुंकुमनीलोत्पलाभयातुत्थैः ।
सितकाचशंखफेनकमरीचांजनपिप्पलीमधुकैः ॥ २३ ॥
[1]चंद्रेऽश्विनीसनाथे सुचूर्णितैरंजयेद्युगुलमक्ष्णोः ।
तिमिरार्मरक्तराजीकंडूकाचादिशममिच्छन् ॥ २४ ॥

अञ्जनम्—

मरिचवरलवणभागौ भागौ द्वौ कणसमुद्रफेनाभ्याम् ।
सौवीरभागनवकं चित्रायां चूर्णितं कफामयजित् ॥ २५ ॥

अञ्जनम्—

द्राक्षामृणालीस्वरसे क्षीरमद्यवसासु च ।
पृथक् दिव्याप्सु स्रोतोजं सप्तकृत्वो निषेचयेत् ॥ २६ ॥
तच्चूर्णितं स्थितं शंखे दृक्प्रसादनमंजनम् ।
शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहपतिनिर्मितम् ॥ २७ ॥

भास्कराञ्जनम्—

निर्दग्धं बादरांगारैस्तुत्थं चेत्थं निषेचितम् ।
क्रमादजापयःसर्पिःक्षौद्रे तस्मात् पलद्वयम् ॥ २८ ॥
कार्षिकैस्ताप्यमरिचस्रोतोजकटुकानतैः ।
पट्वेरोप्रशिलापथ्याकर्णलाजनफेनिकैः [1] ॥ २९ ॥
युक्तं पलेन यष्ट्याश्च मूषांतर्ध्मातचूर्णितम् ।
हंति काचार्मनक्तांध्यरक्तराजीः सुशीलितः ॥ ३० ॥
चूर्णो विशेषात्तिमिरं भास्करो भास्करो यथा ।

---

१ यस्मिन्दिवसे पञ्चशरंस्यात् चन्द्रस्तस्मिन्दिने तत्सशयुक्तोभवति, ततो-यस्मिन्दिनेऽश्विनीनक्षत्रं भवेत्तस्मिन्दिने, इत्यर्थः ।

द्वितीयभास्कराञ्जनम्—

त्रिंशद्भागा [1]भुजंगस्य गंधपाषाणपंचकम् ॥
शुल्बतारकयोर्द्वौ द्वौ वंगस्यैकोऽञ्जनत्रयम् ॥ ३१ ॥
अंधमूषीकृतं ध्मातं पक्वं विमलमंजनम् ।
तिमिरांतकरं लोके द्वितीय इव भास्करः ॥ ३२ ॥

तुत्थाञ्जनम्—

गोमूत्रे छगणरसेऽम्लकांजिके च
स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च ।
यत्तुत्थं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं
तत्कुर्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः ॥ ३३ ॥

सीसकशलाका—

श्रेष्ठाजलं भृंगरस मविषाज्यमजापयः ।
यष्टीरसं च यत्सीसं सप्तकृत्व पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥
तप्तं तप्तं पायित तच्छलाका
नेत्रेयुक्ता साजनानंजना वा ।
तैमिर्यार्मस्रावपैच्छिल्यपैल्ल
कंडू जाड्यं रक्तराजी च हंति ॥ ३५ ॥

तिमिरापहमञ्जनम्—

रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथाञ्जनम् ।
[2]ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं तिमिरापहम् ॥ ३६ ॥

गृध्राञ्जनम्—

यो गृध्रस्तरुणरविप्रकाशगल-
स्तस्यास्यं समयमृतस्य गोशकृद्भिः ।

---

१ भुजङ्ग-सीसकम् । गन्धपाषाणपञ्चकं-गन्धकस्यपञ्चभागाः । शुल्बं ताम्रम्, तारकं रजतम् । भुजङ्गादीनिशुद्धान्यत्रग्राह्याणि ननु तद्भस्मानि । २ राजनिघण्टु-परिभाषया-ईषच्छब्दश्चतुर्थवाचकस्तेन कर्पूरस्य चतुर्थभागः ।

निर्दग्धं समघृतमंजनं च पेष्यं
योगोऽयं नयनबलं करोति गार्ध्रम् ॥ ३७ ॥

कृष्ण सर्पाञ्जनम्—

कृष्णसर्पवदने महविष्कं दग्धमंजनमनिःसृतधूमम् ।
चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नतारमपि रक्षति चक्षुः ॥ ३८ ॥

अन्धानां पुरीषाञ्जनम्—

कृष्णं सर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्चापि वृश्चिकान् ।
क्षीरकुंभे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वाथ मंथयेत् ।। ३९ ॥
तत्र यन्नवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम् ।
अंधस्तस्य पुरीषेण [illegible] भुजंगमात् ॥ ४० ॥

रसक्रिया—

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकात् फलमंजनम् ।
रसक्रियेयमचिरादंधाना दर्शनप्रदा ॥ ४१ ॥

अप्रतिसाराञ्जनम्—

मरिचानि दशार्धपिचु-
स्ताप्यात्तुत्थात्पल पिचुर्यष्ट्याः ।
क्षीरार्द्रदग्धमंजन-
मप्रतिसाराख्यमुत्तमं तिमिरे ॥ ४२ ॥

गुटिकाञ्जनम्—

अक्षबीजमरिचामलकत्वक्-
तुल्ययष्टिमधुकैर्जलपिष्टैः ।
छाययैव गुटिका: परिशुष्का
नाशयंति तिमिराण्यचिरेण ॥४३ ॥

पण्माक्षिक योग :—

मरिचामलकजलोद्भव[2]-
तुत्थांजनताप्यधातुभिः क्रमवृद्धैः ।
षण्माक्षिक इति योग-
स्तिमिरार्मक्लेदकाचकंडूहंता ॥ ४४ ॥

चूर्णाञ्जनमशेषदृष्टिरोगहरम्—

रत्नानि रूप्यं स्फटिकं सुवर्णं
स्रोतोजनं ताम्रमयः सशंखम् ।
कुचंदनं लोहितगैरिकं च
चूर्णांजनं सर्वदृगामयघ्नम् ॥ ४५ ॥

नस्यंदृग्बलकारकम्—

तिलतैलमक्षतैलं भृंगस्वरसोऽसनाच निर्यूहः ।
आयसपात्रविपक्वं करोति दृष्टेर्बलं नस्यम् ॥ ४६ ॥

नेत्ररोगिणः स्नेहादिभिरुपक्रम :—

दोषानुरोधेन च नैकशस्तं
स्नेहास्रविस्रावणरेकनस्यैः ।
उपाचरेदंजनमूर्धबस्ति-
बस्तिक्रियातर्पणलेपसेकैः ॥ ४७ ॥
सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषमतः शृणु ।

वातजेतिमिरे पक्वघृतादि—

वातजे तिमिरे तत्र दशमूलांभसा घृतम् ॥ ४८ ॥
क्षीरे चतुर्गुणे श्रेष्ठाकल्कपक्वं पिबेत्ततः ।
त्रिफलापंचमूलाना कषायं क्षीरसंयुतम् ॥ ४९ ॥

---

१ मरिचं दशभागम् । ताप्यास्त्वर्णमाक्षिकादर्धकर्पः । २ जलोद्भवं शंखम् पट्पूरणोमाक्षिकोयस्मिन्निति षण्माक्षिकः । षष्ठं द्रव्यं माक्षिकमत्रेत्यर्थः । कुचन्दनं रक्तचन्दनम् ।

सर्पिरष्टगुणक्षीरं पक्वं तर्पणमुत्तमम् ।

तर्पणम्—

मेदसस्तद्वदैणेयाद्दुग्धसिद्धात् खजाहृतात् ॥ ५६ ॥
उद्धृतं साधितं तेजो[1] मधुकोशीरचंदनैः ।

वसातर्पणम्—

आविच्छल्यकगोधानां दक्षतित्तिरिबर्हिणाम् ॥ ६० ॥
पृथक्पृथगनेनैव विधिना कल्पयेद्वसाम् ।
प्रसादनं स्नेहनं च पुटपाकं प्रयोजयेत् ॥ ६१ ॥
वातपीनसवच्चात्र निरूहं सानुवासनम् ।

पित्तजेतिमिरे घृतपानादि—

पित्तजे तिमिरे सर्पिर्जीवनीयफलत्रयैः ॥ ६२ ॥
विपाचितं पाययित्वा स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ।
शर्करैलात्रिवृच्चूर्णैर्मधुयुक्तैर्विरेचयेत् ॥ ६३ ॥
मुशीतान् सेकलेपादीन् युंज्यान्नेत्रास्यमूर्धसु ।
सारिवापद्मकोशीरमुक्ताशाबरचंदनैः ॥ ६४ ॥

अञ्जनवर्ति :—

वर्तिः शस्तांजने चूर्णस्तथा पत्रोत्पलांजनैः ।
सनागपुष्पकर्पूरयष्टयाह्वस्वर्णगैरिकैः ॥ ६५ ॥

तिमिरघ्नमञ्जनम्—

[2]सौवीराजनतुत्थकशृंगीधात्रीफलस्फटिककर्पूरम् ।
पंचांशं पंचांशं त्र्यंशमर्यंकांशमंजनं तिमिरघ्नम् ॥ ६६ ॥

नस्यम्—

नस्यं चाज्यं शृतं क्षीरजीवनीयसितोत्पलैः ।

---

१ तेजोऽत्रस्नेहः । २ सौवीराजनतुत्थकयोः ५-५ भागाः । शृंग्यामलयोः ३-३ भागाः । स्फटिककर्पूरयोः १-१ भागः ।

कफजतिमिर चिकित्सा—

श्लेष्मोद्भवेऽमृताक्वाथवराकणशृतं घृतम् ॥ ६७ ॥
विध्येत्सिरां पीतवतो दद्याच्चानुविरेचनम् ।
कार्यं पूगाभयाशुण्ठीकृष्णाकुंभनिकुंभजम् ॥ ६८ ॥
"ह्रीबेरदारुद्विनिशाकृष्णाकल्कैः पयोन्वितैः ।
द्विपंचमूलनिर्यूहे तैलं पक्वं च नावनम्" ॥ ६९ ॥

विमलाकोकिलाख्येवर्ती—

शंखप्रियंगुनेपालीकटुत्रिकफलत्रिकैः ।
दृग्वैमल्याय विमला वर्तिः स्यात्कोकिला[१] पुनः ॥ ७० ॥
कृष्णलोहरजोव्योपसैंधवत्रिफलाजनैः ।

तिमिरशुक्रनाशिनीवर्ति :—

शशगोखरसिंहोष्ट्रद्विजा लालाटमस्थि च ॥ ७१ ॥
श्वेतगोवालमरिचशंखचंदनफेनकम् ।
पिष्टं स्तन्याजदुग्धाभ्यां वर्तिस्तिमिरशुक्रजित् ॥

रक्तजतिमिर चिकित्सा—

रक्तजे पित्तवत्सिद्धिः शीतैश्चास्रं प्रसादयेत् ॥ ७२ ॥
द्राक्षया नलदरोध्रयष्टिभिः
शंखताम्रहिमरत्नपद्मकैः ।
सोत्पलैश्छागलदुग्धवर्तितै-
रस्रजं तिमिरमाशु नश्यति ॥ ७३ ॥

द्वन्द्वजादितिमिर चिकित्सा—

संसर्गसंनिपातोत्थे यथादोषोदयं क्रिया ।
सिद्धं मधुककृमिजिन्मरिचामरदारुभिः ॥ ७४ ॥

---

१ नेपालीमनःशिला । कोकिला कोकिलानाम्नी वर्तिः कृष्णलोहादिभिः । हिमं चन्दनम् । छागदुग्धवर्तितैरजादुग्धपिष्टैः ।

सक्षीरं नावनं तैलं पिष्टैर्लेपो मुखस्य च ।
"नतनीलोत्पलानंतायष्ट्याह्वमुनिषण्णकैः ॥ ७५ ॥
साधितं नावने तैलं शिरोबस्तौ च शस्यते ।
दद्यादुर्वारनिर्यूहे चूर्णितं कणसैंधवम् ॥ ७६ ॥
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने क्षिपेत् ।
शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेंऽजनम् ॥ ७७ ॥
अस्थीनि मज्जपूर्णानि सत्त्वाना रात्रिचारिणाम् ।
स्रोतोजाजनयुक्तानि वहत्यंभसि वासयेत् ॥ ७८ ॥
मासं विंशतिरात्रं वा ततश्चोद्धृत्य शोषयेत् ।
समेषशृंगीपुष्पाणि सयष्ट्याह्वानि तानि तु ॥ ७९ ॥
चूर्णितान्यंजनं श्रेष्ठं तिमिरे सांनिपातिके ।

काचचिकित्सा—

काचेऽप्येषा क्रिया मुक्त्वा[1] सिरा यंत्रानपीडिताः ॥ ८० ॥
आध्याय स्युर्मला दद्यात्साध्ये रक्ते जलौकसः ।
गुडः फेनोंजनं कृष्णा मरिचं कुंकुमाद्रजः ॥ ८१ ॥
रसक्रियेयं सक्षौद्रा काचयापनमंजनम् ।
नकुलांधे त्रिदोषोत्थे तैमिर्यविहितो विधि ॥ ८२ ॥
रसक्रिया घृतक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतैः ।
तार्क्ष्यगैरिकतालीसैर्निशाख्ये हितमंजनम् ॥ ८३ ॥
दध्ना विघृष्टं मरिचं रात्र्यांध्येंजनमुत्तमम् ।
"करंजिकोत्पलस्वर्णगैरिकाभोजकेसरैः ॥ ८४ ॥
पिष्टैर्गोमयतोयेन वर्तिर्दोषांध्यनाशिनी ।
"अजामूत्रेण वा कौंतीकृष्णास्रोतोजसैंधवैः." ॥ ८५ ॥
"कालानुसारीयस्कृत्रिफलालमनःशिला. ।
सफेनाश्छागदुग्धेन रात्र्यंधे वर्तयो हिता." ॥ ८६ ॥

---

१ सिरां मुक्त्वा सिरानमुञ्चेत् । यतो यन्त्रनिपीडिताः शिरोपयोगियन्त्रनिपीडितामला आध्यायस्युः ।

"मंनिवेश्य यकृन्मध्ये पिप्पलीरदहन्पचेत् ।
ताः शुष्का मधुना घृष्टा निशांध्ये श्रेष्ठमंजनम्" ॥ ८७ ॥
"खादेच्च प्लीहयकृती माहिषे तैलसर्पिषा ।"
"घृते सिद्धानि जीवंत्याः पल्लवानि च भक्षयेत् ॥ ८८ ॥
तथातिमुक्तकैरंडशेफाल्यभिरुजानि[1] च ।
भृष्टं घृतं कुंभयोनेः पत्रैः पाने च पूजितम्" ॥ ८९ ॥
धूमराख्याम्लपित्तोष्णविदाहे जीर्णसर्पिषा ।
स्निग्धं विरेचयेच्छीतैः शीतैर्दिह्याच सर्वतः ॥ ९० ॥
गोशकृद्रसदुग्धाज्यैर्विपक्वं शस्यतेऽञ्जनम् ।
स्वर्णगैरिकतालीमचूर्णावापा रसक्रिया ॥ ९१ ॥
"मेदाशाबरकानंतामंजिष्ठादार्वियष्टिभिः ।
क्षीराष्टांशं घृतं पक्वं सतैलं नावनं हितम्" ॥ ९२ ॥
तर्पणं क्षीरसर्पिः स्याद्दाम्यति सिराव्यधः ।

चिन्तादिभिस्तिमिर रोगिवदवलोकनम्--

चिंताभिघातभीशोकरौक्ष्यात्सोत्कटकासनात् ॥ ९३ ॥
विरेकनस्यवमनपुटपाकादिविभ्रमात् ।
विदग्धाहारवमनात्क्षुत्तृष्णादिविधारणात् ॥ ९४ ॥
[2]अक्षिरोगावमानाच्च पश्येत्तिमिररोगिवत् ।
यथास्वं तत्र युंजीत दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम् ॥ ९५ ॥

अतितेजस्विनोपहतदृष्टौ चिकित्सा—

गुर्वोपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
संतर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
तथांजनं हेमघृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

[1] अभिरुजा भङ्गा । २ अक्षिरोगावमानात् नेत्ररोगान्वात् ।

सदानेत्रं रक्षणीयम्—

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-
र्यत्नः कर्त्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिदिवानां
पुंसामंधानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥ ९७ ॥

त्रिफलादिकं नेत्ररक्षकम्—

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धि-
र्मनसो निर्वृतिरंजनं च नस्यम् ।
[1]शकुनाशनता सपादपूजा
घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ९८ ॥
अहितादशनात्सदा निवृत्ति-
र्भृशभास्वच्चलसूक्ष्मवीक्षणाच्च ।
मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्
परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥ ९९ ॥

---

१ निर्वृतिः प्रसन्नता, शान्तिरितियावत् । शकुनाशनता-पक्षिमांसाहारत्वम् "इष्टैर्हितं धान्वन जाङ्गलं च" इति उत्तरस्थानीयसप्तदशाध्याये सुश्रुतोक्तेः । पादपूजा-पादयोरभ्यङ्गोद्वर्तनप्रक्षालनपादत्राणधारणादिकम् ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो लिंगनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

कफोद्भवलिङ्गनाशस्यव्यधादि—

"विध्येत्सुजातं निःप्रेक्षं लिंगनाशं कफोद्भवम् ।
[1]आवर्तक्यादिभिः षड्भिर्विवर्जितमुपद्रवैः ॥ १ ॥

तत्रहेतु :—

[2]सोऽसंजातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः ।
शलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरूर्ध्वं प्रपद्यते ॥ २ ॥

करोति वेदना तीव्रा दृष्टिं च स्थगयेत्पुनः ।
श्लेष्मलैः पूर्यते चाशु सोऽन्यैः सोपद्रवैश्चिरात् ॥ ३ ॥

आनीलतागद :—

श्लैष्मिको लिंगनाशो हि सितत्वाच्छ्लेष्मणः सितः ।
तस्यान्यदोषाभिभवाद्भवत्यानीलता गदः ॥ ४ ॥

आवर्तकीदृष्टिस्वरूपम्—

तत्रावर्तचला दृष्टिरावर्तक्यरुणा सिता ।

शर्करास्वरूपम्—

शर्करार्कपयोलेशैर्निचितेव घनाति च ॥ ५ ॥

राजीमतीरूपम्—

राजीमती दृङ्निचिता शालिशूकाभराजिभिः ।

---

१ वक्ष्यमाणैरावर्तक्यादिभिः षड्भीरोगैः । २ सलिङ्गनाशः । श्लेष्मलै-राहारैः ।

छिन्नांशुका—

विषमच्छिन्नदग्धाभा सरुक्छिन्नांशुका स्मृता ॥ ६ ॥

चन्द्रकी—

दृष्टिः कांस्यसमच्छाया चंद्रकी चंद्रकाकृतिः ।

छत्रकी—

छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ॥ ७ ॥

व्यधनिषेध :—

न विध्येदसिराहार्णां न दृक्पीनसकासिनाम् ।
नाजीर्णिभीरुवमितशिरःकर्णाक्षिशूलिनाम् ॥ ८ ॥

लिङ्गनाश (मोतियाबिन्द) व्यधप्रकार :—

अथ साधारणे काले शुद्धसंभोजितात्मनः ।
देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः ॥ ९ ॥
यंत्रितस्योपविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः ।
अंगुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्ट्वोत्प्लुतं मलम् ॥ १० ॥
स्वनासा प्रेक्षमाणस्य, निष्कंपं मूर्ध्नि धारिते ।
कृष्णादर्धांगुलं मुक्त्वा तदर्धार्धमपांगतः[1] ॥ ११ ॥
तर्जनीमध्यमांगुष्ठैः शलाकां निश्चलं धृताम् ।
दैवच्छिद्रं [2]नयेत्पार्श्वादूर्ध्वंमामंथयन्निव ॥ १२ ॥
सव्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् ।
विध्येत्,

सुविद्ध लक्षणादि—

सुविद्धे शब्दः स्यादरुक्चांबुलवस्रुतिः ॥ १३ ॥
सांत्वयन्नातुरं चानु नेत्रं स्तन्येन सेचयेत् ।
शलाकायास्ततोऽग्रेण निर्लिखेन्नेत्रमंडलम् ॥ १४ ॥

---

१ कृष्णात्कृष्णमण्डलात् । तदर्धार्धमपाङ्गतः-अपाङ्गात् तस्य कृष्णमण्डलस्या-र्धाङ्गुलं तस्याप्यर्धमङ्गुलचतुर्थभागंमुक्त्वा । २ शलाकां दैवच्छिद्रस्यपार्श्वेनयेत् । सव्यंवामम् । इतरत् दक्षिणं नेत्रम् ।

[1]अबाधमानः शनकैर्नासो प्रविनुदंस्ततः ।
उत्सिंघनाद्यापहरेद्दृष्टिमंडलगं कफम् ॥ १५ ॥
स्थिरे दोषे चले वापि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः ।
अथ दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥ १६ ॥
घृताप्लुतं पिचुं दत्त्वा बद्धाक्षं शाययेत्ततः ।
[2]विद्धादन्येन पार्श्वेन तमुत्तानं द्वयोर्व्यधे ॥ १७ ॥
निवाते शयनेऽभ्यक्तशिरःपादं हिते रतम् ।

सप्ताहं क्षवादिनिषेध :—

क्षवथुं काममुद्गारं ष्ठीवनं पानमंभसः ॥ १८ ॥
अधोमुखस्थिति स्नानं दन्तधावनभक्षणम् ।
सप्ताहं नाचरेत्स्नेहपीतवच्चात्र यंत्रणा ॥ १९ ॥

लङ्घनादि—

शस्तितो लंघयेत्सेको रुजि कोष्णेन सर्पिषा ।
सव्योषामलकं वाट्यमश्नीयात्सघृतं द्रवम् ॥ २० ॥
विलेपीं वा त्र्यहाच्चास्य क्वाथैर्मुक्त्वाक्षि सेचयेत् ।
वातघ्नैः सप्तमे त्वह्नि सर्वथैवाक्षि मोचयेत् ॥ २१ ॥

अतिसूक्ष्मादि दर्शननिषेधादि—

यंत्रणामनुरुन्ध्याच्च दृष्टेरास्थैर्यलाभतः ।
रूपाणि सूक्ष्मदीप्तानि सहसा नावलोकयेत् ॥ २२ ॥
शोफरागरुजादीनामधिमंथस्य चोद्भवः ।
अहितैर्वेधदोषाच्च यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ २३ ॥

मुखालेप :—

कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकसारिवाः ।
मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥ २४ ॥

---

१ अबाधमानोऽपीडयन् । नासाप्रविष्टं कफं नुदत् । २ यस्मिन् पार्श्वे नेत्रं विद्धं तस्मादन्येनपार्श्वेन शाययेत् । द्वयोर्नेत्रयोर्व्यधे तं रोगिणमुत्तानं शाययेत् । यन्त्रणा-पथ्याहाराविहारौ ।

लेप :—

ससर्षपास्तिलास्तद्वन्मातुलुंगरसाप्लुताः ।
पयस्यासारिवानंतामंजिष्ठामधुयष्टिभिः ॥ २५ ॥
अजाक्षीरयुतैर्लेपः सुखोष्णः शर्मकृत्परम् ।

आश्चोतनम्—

रोध्रसैंधवमृद्वीकामधुकैश्छागलं पयः ॥ २६ ॥
शृतमाश्चोतनं योज्यं रुजारागविनाशनम् ।
मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितान्वितैः ॥ २७ ॥

घृतम्—

वातघ्नसिद्धे पयसि शृतं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
पद्मकादिप्रतीवापं सर्वकर्मसु शस्यते ॥ २८ ॥

सिराव्यध :—

सिरां तथानुपशमे स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।
यथोक्ता च क्रिया कुर्याद्व्यधे रूढेऽजनं मृदु ॥ २९ ॥

वर्ति :—

आढकीमूलमरिचहरितालरसांजनैः ।
विद्धेऽक्षिण सगुडा वर्तिर्योज्या दिव्यांबुपेषिता ॥ ३० ॥

पिण्डाञ्जनम्—

जातीशिरीषधवमेषविषाणपुष्प-
वैडूर्यमौक्तिकफलं पयसा सुपिष्टम् ।
आजेन ताम्रममुना प्रतनु प्रदिग्धं
सप्ताहतः पुनरिदं पयसैव पिष्टम् ॥ ३१ ॥
पिंडांजनं हिमनातपशुष्कमक्षिण
विद्धे प्रसादजननं बलकृच्च दृष्टेः ।
स्रोतोजविद्रुमशिलांबुधिफेनतीक्ष्ण-
रस्यैव तुल्यमुदितं गुणकल्पनाभिः ॥ ३२ ॥"

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

वाताभिष्यन्द (आँख उठना आना) लक्षणम्—

"वातेन नेत्रेऽभिष्यंदे नासानाहोऽल्पशोफता ।
शंखाक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम् ॥ १ ॥
शुष्काल्पा दूषिका शीतमच्छमश्रु चला रुजः ।
निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राज्जंतूनामिव सर्पणम् ॥ २ ॥
अक्ष्याध्मातमिवाभाति सूक्ष्मैः शल्यैरिवाचितम् ।
स्निग्धोष्णैश्चोपशमनं,

अधिमन्थलक्षणम्—

सोऽभिष्यंद उपेक्षितः ॥ ३ ॥
अधिमंथो भवेत्तत्र कर्णयोर्नदनं भ्रमः ।
अरण्येव च मथ्यंते ललाटाक्षिभ्रुवादयः ॥ ४ ॥
"हताधिमंथः सोऽपि स्यात् प्रमादात्तेन वेदनाः ।
अनेकरूपा जायंते व्रणो दृष्टौ च दृष्टिहा" ॥ ५ ॥

अन्यतोवातलक्षणम्—

"मन्याक्षिशंखतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयेत् ।
व्यथां तीव्रामपैच्छिल्यरागशोफं विलोचनम् ॥ ६ ॥
संकोचयति पर्यस्त्र सोऽन्यतोवातसंज्ञितः ।"
"तद्वन्नेत्रं भवेज्जिह्मम्[1] वातविपर्यये" ॥ ७ ॥

---

१ ऊर्ध्वहीनम् ।

पित्ताभिष्यन्दलक्षणम्—

दाहो धूमायनं शोफः श्यावता वर्त्मनो बहिः ।
अंतःक्लेदोऽश्रु पीतोष्णं रागः पीताभदर्शनम् ॥ ८ ॥
क्षारोक्षितक्षताक्षित्वं पित्ताभिष्यंदलक्षणम् ।

पित्ताधिमन्थलक्षणम्—

ज्वलदंगारकीर्णाभं यकृत्पिंडसमप्रभम् ॥ ९ ॥
अधिमंथे भवेन्नेत्रं

कफाभिष्यन्दाधिमन्थलक्षणम्—

"स्यंदे तु कफसंभवे ।
जाड्यं शोफो महान् कण्डूर्निद्रान्नानभिनंदनम् ॥ १० ॥
सान्द्रस्निग्धबहुश्वेतपिच्छावद्दूषिकाश्रुता ।"
अधिमंथे नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमंडलम् ॥ ११ ॥
प्रसेको नासिकाध्मानं पांसुपूर्णमिवेक्षणम् ।

रक्ताभिष्यन्दलक्षणम्—

रक्ताश्रुराजीदूषीकशुक्लमंडलदर्शनम् ॥ १२ ॥
रक्तस्यंदेन नयनं सपित्तस्यंदलक्षणम् ।

रक्ताभिमन्थलक्षणम्—

मंथेऽक्षि ताम्रपर्यंतमुत्पाटनसमानरुक् ॥ १३ ॥
रागेण [1]बंधूकनिभं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
असृङ्निमग्नारिष्टाभं कृष्णमग्न्याभदर्शनम् ॥ १४ ॥

सर्वाभिमन्थस्वरूपम्—

अधिमंथा यथास्वं च सर्वे स्यंदाधिकव्यथाः ।
शंखदंतकपोलेषु कपाले चातिरुक्कराः ॥ १५ ॥

शुष्काक्षिपाकोरोग :—

वातपित्तोत्तरं घर्षतोदभेदोपदेहवत् ।
रूक्षदारुणवर्त्माक्षि कृच्छ्रोन्मीलननीलनम् ॥ १६ ॥

---

१ बन्धूकपुष्पं "गुलदुपहरिया" इतिलोके ।

[1]विकूणनं विशुष्कत्वं शीतेच्छा शूलपाकवत् ।
उक्तः शुष्काक्षिपाकोऽयं

सशोफोनेत्ररोग :—

सशोफः स्यात्रिभिर्मलैः ॥ १७ ॥
सरवर्तस्तत्र शोफोऽतिरुग्दाहष्ठीवनादिमान् ।
पक्वोदुंबरसंकाशं जायते शुक्लमंडलम् ॥ १८ ॥
अश्रूष्णशीतविशदपिच्छलाच्छघनं मुहुः ।
अल्पशोऽल्पशोफस्तु पाकोऽन्यैर्लक्षणैस्तया[2] ॥ १९ ॥

अक्षिपाकात्ययलक्षणम्—

अक्षिपाकात्यये शोफः संरंभः कलुषाश्रुता ।
कफोपदिग्धमसितं सितं प्रक्लेदरागवत् ॥ २० ॥
दाहो दर्शनसंरोधो वेदनाश्चान[3]वस्थिताः ।

अम्लोपितलक्षणम्—

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोल्बणैर्मलैः ॥ २१ ॥
सिराभिर्नेत्रमारूढः करोति श्यावलोहितम् ।
सशोफदाहपाकाश्रु भृशं चाविलदर्शनम् ॥ २२ ॥
अम्लोपितोऽयम्,

इत्युक्ता गदाः षोडश सर्वगाः ।

असाध्यादि :—

हताधिमंथमेतेषु साक्षिपाकात्ययं त्यजेत् ॥ २३ ॥
वातोद्भूतः पंचरात्रेण दृष्टिम्,
सप्ताहेन श्लेष्मजातोऽधिमंथः ।
रक्तोत्पन्नो हंति तद्वत्त्रिरात्राद्
मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥ २४ ॥"

---

१ विकूणनमंक्षिमङ्कोचः । २ पाकोऽक्षिपाकात्ययः । अन्यैर्लक्षणैः शुष्काक्षि-पाकोक्तैर्लक्षणैः । २ संरम्भः शोथः । ३ अनवस्थिता चञ्चला ।

षोडशोऽध्यायः ।

अथ सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

स्यन्देषुतीक्ष्ण गण्डूषादि :—

"प्राग्रूप एव स्यंदेषु तीक्ष्णगंडूषनावनम् ।
कारयेदुपवासं च[1] कोपादन्यत्र वातजात् ॥ १ ॥

दाहादिशान्त्यैविडालकम्—

दाहोपदेहरागाश्रुशोफशात्यै बिडालकम् ।
कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः ॥ २ ॥
सरसांजनयष्टयाह्वनतचन्दनसैंधवैः ।
सैंधवं नागरं तार्क्ष्यं भृष्टं मंडेन सर्पिषः ॥ ३ ॥
वातजे घृतभृष्टं वा योज्य शबरदेशजम्[2] ।
मांसीपद्मककाकोलीयष्टयाह्वं पित्तरक्तयोः ॥
मनोह्वाफलिनीक्षौद्रैः कफे सर्वैस्तु सर्वजे ॥ ४ ॥

सद्यः प्रकुपितेचूर्णावगुंठनम्—

सितमरिचभागमेकं चतुर्मनोह्वं [3]द्विरष्टशाबरकम् ।
संचूर्ण्य वस्त्रबद्धं प्रकुपितमात्रेऽव[4]गुंठनं नेत्रे ॥ ५ ॥

चूर्णं नेत्रकोपजित् —

आरण्याश्छगणरसे पटावबद्धाः
सुस्विन्ना नखवितुषीकृताः कुलत्थाः ।

---

१ विडालको बहिर्नेत्रे लेपः पक्ष्मविवर्जितः । कोपात् वातजकोपंमुक्त्वा । २ शबरदेशजं रोध्रम् । ३ द्विरष्टशाबरकं रोध्रस्य षोडशभागाः । ४ अवगुंठना अवचूर्णन भ्रामयित्वा ।

तच्चूर्णं मधुकचूर्णनाभियोगि
नेत्राणां विधमति मद एव शौर्यम् ॥ ६ ॥

नेत्रे औषधधारणम्—

घोषाभयातुत्थकयष्टिरोध्रै-
¹र्मूर्ती समूत्रैः श्लक्ष्णवस्त्रबद्धैः ।
ताम्रस्थधान्याम्लनिमग्नमूर्ति-
र्नि जयत्यक्षिणि नैकरुजाम् ॥ ७ ॥

सर्वदोषकुपिते नेत्रे सेकः—

षोडशभिः सलिलपलैः
पलं सर्धं ²कटंकटेर्याः सिद्धम् ।
सेकोऽष्टभागशिष्टः
क्षौद्रयुतः सर्वदोषकुपिते नेत्रे ॥८॥

शिग्रुः (सहिंजन) रस प्रयोगः—

वातपित्तकफसंनिपातजां
नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम् ।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः
शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥९॥

सक्तुपिण्डिका—

तरुणमुरूबूकपत्रं
मूलं च विभिद्य सिद्धमाजे क्षीरे ।
वाताभिष्यंदरुजं
सद्यो विनिहन्ति सक्तुपिण्डिका चोष्णा ॥१०॥

वाताभिष्यन्दे प्रयोग :—

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः ।
कोष्णः सहैरंडजटाबृहतीमधुशिग्रुभिः ॥११॥

१ मूर्ती पोट्टली । २ कटंकटेरी (दारुहल्दी) ।

ह्रीवेरवक्रशार्ङ्गेष्टोदुंबरत्वक्षु साधितम् ।
साम्भसा पयसाजेन शूलाश्चोतनमुत्तमम् ॥१२॥

रक्तपित्ताभिष्यन्दे प्रयोगाः—

मंजिष्ठारजनीलाक्षाद्राक्षाद्धिमधुकोत्पलैः ।
क्वाथः सशर्करः शीतः सेचनं रक्तपित्तजित् ॥१३॥
कसेरुयष्ट्या ह्वरज[1]स्तांतवे शिथिल स्थितम् ।
अप्सु दिव्यासु निहितं हितं स्यंदेऽस्रपित्तजे ॥१४॥
"पुंड्रयष्टीनिशामूर्वा प्लुता स्तन्ये सशर्करे ।
छागदुग्धेऽथवा दाहरागाश्रुनिवर्तनी" ॥१५॥
श्वेतरोध्रं समधुकं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।
वस्त्रस्थं स्तन्यमृदितं पित्तरक्ताभिघातजित् ॥१६॥

कफाभिष्यन्देनागराद्याश्चोतनम्—

नागरत्रिफलानिंबवासारोध्ररस कफे ।
कोष्णमाश्च्योतनं,
मिश्रैर्भेषजैः सांनिपातिके ॥१७॥
सर्पि. पुराण पवने, पित्ते शर्करयान्वितम् ।
व्योषसिद्धं कफे पीत्वा यवक्षारावचूर्णितम् ॥१८॥
स्रावयेद्रुधिरं भूयस्ततः स्निग्धं विरेचयेत् ।
आनूपवेसवारेण शिरोवदनलेपनम् ॥१९॥
उष्णेन शूले दाहे तु पयःसर्पिर्युतैर्हिमैः ।
तिमिरप्रतिषेधं च वीक्ष्य युंज्याद्यथायथम् ॥२०॥
अयमेव विधिः सर्वो मंथादिष्वपि शस्यते ।
अशांतौ सर्वथा मंथे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥२१॥

वर्तिः—

रूप्यं रूक्षेण गोदध्ना लिप्तेन्नीलत्वमागते ।
शुष्के तु मस्तुना वर्तिर्वातश्लेष्मसनाशनी ॥२२॥

---

[1] तान्तवे वस्त्रे ।

मुनमःकोरका शंखस्त्रिफला मधुकं वला ।
पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा" ॥२३॥
"सैंधवं त्रिफला व्योषं शंखनाभिः समुद्रजः ।
फेनः[1] शैलेयकं सर्जो वर्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥२४॥

सर्वाभिष्यन्दे पाशुपत प्रयोगः—

प्रपौंडरीकं यष्ट्याह्वं दार्वीं[2] चाष्टपलं पचेत् ।
जलद्रोणे रसे पूते पुनः पक्वे घने क्षिपेत् ॥ २५ ॥
पुष्पाजनाद्दशपलं कर्षं च मरिचात्ततः ।
कृतश्चूर्णोऽथवा वर्तिः सर्वाभिष्यंदभंजनात् ॥ २६ ॥
हंति रागरुजाधर्षान् सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ।
अयं पाशुपतो योगो रहस्यं भिषजां परम् ॥ २७ ॥

शुष्काक्षिपाकचिकित्सा—

शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ।
घृतेन जीवनीयेन, नस्यं तैलेन चाणुना ॥ २८ ॥
परिषेको हितश्चात्र पयः कोष्णं ससैंधवम् ।
"सर्पियुक्तं स्तन्यपिष्टमंजनं हि महौषधम्" ॥ २९ ॥
'वसा चानूपसत्त्वोत्था किंचित्सैंधवनागरा ।'
घृताक्तान् दर्पणे[3] घृष्टान् केशान् मल्लकसंपुटे ॥ ३० ॥
दग्ध्वाज्यपिष्टा स्रोहस्था सा मषी श्रेष्ठमंजनम् ।

सशोफाल्पशोफनेत्ररोग चिकित्सा—

सशोफे चाल्पशोफे च स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ॥ ३१ ॥
रेकः स्निग्धैः पुनर्दोषापप्यावत्राथत्रिवृद्धृतैः ।
'श्वेतरोध्रं घृतभृष्टं चूर्णितं तांतवस्थितम् ॥ ३२ ॥

---

१ फेनः समुद्रफेनः । शैलेयकं "छरीला" । २ प्रपौंडरीकादिकं सर्व पृथक् पृथक् अष्टाष्टं ग्राह्यम् । ३ केशान् घृताक्तान्दर्पणे घृष्टान् मल्लकसंपुटे दग्ध्वा घृतपिष्टा लोहपात्रस्था सा मषी श्रेष्ठमञ्जनम् ।

उष्णांबुना विमृदितं सेकः शूलहरः परम् ।'
'दार्वीप्रपौंडरीकस्य क्वाथो वाऽऽश्चोतने हितः ॥ ३३ ॥
संधावांश्च प्रयुंजीत घर्षरागाश्रुरुग्घरान् ।'

"ताम्रं लोहे मूत्रघृष्टं प्रयुक्तं
नेत्रे सर्पिर्धूपितं वेदनाघ्नम् ।"
ताम्रेघृष्टो गव्यदध्नः सरो वा
युक्तः कृष्णासैंधवाभ्यां वरिष्ठः ॥ ३४ ॥
'शंखं ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः
शम्याः पत्रैर्धूपितं तद्यवैश्च ।
नेत्रे युक्तं हंति संधावसंज्ञं[2]
क्षिप्रं घर्षं वेदनां चातितीव्राम्' ॥ ३५ ॥

'उदुंबरफलं लोहे घृष्टं स्तन्येन धूपितम् ।
साज्यैः शमीच्छदैर्दाहशूलरागाश्रुहर्षजित् ॥ ३६ ॥
'शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसंपुटे ।
घृतेन धूपितो हंति शोफघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३७ ॥
'तिलाम्भसा मृत्कपाल कांस्यं घृष्टं सुधूपितम् ।
निंबपत्रैर्घृताभ्यक्तैर्घर्षशूलाश्रुरागजित् ॥ ३८ ॥'
'संधावेनाजिते नेत्रे विगतौषधवेदने ।
स्तन्येनाश्चोतनं कार्यं, त्रिः परं नाजयेच्च[3] तैः' ॥ ३९ ॥

गुटिका

तालीसपत्रचपलानतलोहरजोंऽजनैः ।
जातीमुकुलकासीससैंधवैर्मूत्रपेषितैः ॥ ४० ॥
ताम्रमालिप्य सप्ताहं धारयेत्पेषयेत्ततः ।
मूत्रेणैवानु गुटिकाः कुर्याच्छायाविशोषिताः ॥ ४१ ॥
ताः स्तन्यघृष्टा घर्षाश्रुशोफकंडूविनाशनाः ।
व्याघ्रीत्वङ्मधुकं ताम्ररजोजाशीरकल्कितम् ॥ ४२ ॥

---

१ वक्ष्यमाणानि संधावसंज्ञकानि अञ्जनानि । २ घृताक्तैः शमीपत्रैर्यवैश्च धूपितम् । ३ तैः संधावैः त्रिर्वारत्रयं निम्पोवारेभ्यः परंनाञ्जयेत् ।

शम्यामलकपत्राज्यधूपितं शोफरुक्प्रणुत् ।

अम्लोषितचिकित्सा —

अम्लोषिते प्रयुंजीत पित्ताभिष्यंदसाधनम् ॥ ४३ ॥

उत्क्लिष्टादयोऽष्टादशरोगा :—

उत्क्लिष्टाः कफपित्तास्रनिचयोत्थाः कुकूणकाः ।
पक्ष्मोपरोधः शुष्काक्षिपाकः पूयालसो बिसः ॥ ४४ ॥
पोथक्यम्लोषिताल्पाख्यस्यंदमंथा विनानिलात् ।
एतेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुबंधिनः ॥ ४५ ॥
चिकित्सा पृथगेतेषां स्वंस्वमुक्ताथ वक्ष्यते ।

पिल्लचिकित्सा —

पिल्लीभूतेषु सामान्यादथ पिल्लाक्षिरोगिणः ॥ ४६ ॥
स्निग्धस्य छर्दितवतः शिराविद्धहृतासृजः ।
विरिक्तस्य च वर्त्मानु निर्लिखेदाविशुद्धितः" ॥ ४७ ॥
"तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता कांजिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ ४८ ॥
पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
तत्सेकेनोपदेहस्तु कंडूशोफांश्च नाशयेत् ॥ ४९ ॥
"करंजबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च ।
संक्षुद्य साधयेत्क्वाथे पूते तत्र रसक्रिया ॥ ५० ॥
अंजनं पिल्लभैषज्यं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ।,,
"रसांजनं सर्जरसो रीतिपुष्पं मनःशिला ॥ ५१ ॥
समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
अंजनं मधुना पिष्टं क्लेदकंडूघ्नमुत्तमम्" ॥ ५२ ॥
"अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ।
भावितं वस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च" ॥ ५३ ॥
"मैघवर्षिफलात्कृष्णावटुकासंखनाभयः ।
मनाग्ररजसो वतिः पिल्लशुक्रकनाशिनी" ॥ ५४ ॥

"पुष्पकासीसचूर्णो वा सुरसारसभावितः ।
ताम्रे दशाहं तत् पैल्लपक्ष्मशातजिदञ्जनम्" ॥ ५५ ॥

अलं च सौवीरकमञ्जनं च
ताभ्यां समं ताम्ररजश्च सूक्ष्मम् ।
पिल्लेषु रोमाणि निषेवितोऽसौ
चूर्णः करोत्येकशलाकयापि ॥ ५६ ॥
लाक्षानिर्गुण्डीभृङ्गदार्वीरसेन
श्वेतं कार्पासं भावितं सप्तकृत्वः ।
दीपः प्रज्वाल्यः सर्पिषा तत्समुत्था
श्रेष्ठा पिल्लानां रोपणार्थे मषी सा" ॥ ५७ ॥

पिल्लरोगिणःपुनःपुनर्वर्त्मावलेखादिकम्—

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम् ।
पुनः पुनर्विरेकं च नित्यमाश्च्योतनाञ्जनम् ॥ ५८ ॥
नावनं धूमपानं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ।
पूयालसे त्वशान्तेऽग्निदाहः सूक्ष्मशलाकया ॥ ५९ ॥

नेत्ररोगेषुसेव्यवर्ज्याहारविहाराः—

चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोर्हेतुलक्षणसाधनैः ।
परस्परमसंकीर्णाः कार्त्स्न्येन गदिता गदाः ॥ ६० ॥
सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः ।
पुराणयवगोधूमशालिषष्टिककोद्रवान् ॥ ६१ ॥
मुद्गादीन् कफपित्तघ्नान् भूरिसर्पिःपरिप्लुतान् ।
शाकं चैवंविधं मांसं जाङ्गलं दाडिमं सिताम् ॥ ६२ ॥
सैन्धवं त्रिफलां द्राक्षां वारि पाने च नाभसम् ।
आतपत्रं पदत्राणं विधिवद्दोषशोधनम् ॥ ६३ ॥
वर्जयेद्वेगसंरोधमजीर्णाध्यशनानि च ।
शोकक्रोधदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च ॥ ६४ ॥
विदाहि विष्टम्भकरं यच्चेहाहारभेषजम् ।

उपानहादि सेवनम्—

द्वे पादमध्ये [1]पृथुसंनिवेशे
शिरे गते ते वहुधा च नेत्रे।
ताम्रक्षणोद्वर्तनलेपनादीन्
पादप्रयुक्तान्नयनं नयंति ॥ ६५ ॥
मलोष्णसंघट्टनपीडनाद्यै-
स्ता दूषयंते नयनानि दुष्टाः।
भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्माद्
उपानदभ्यंजनधावनानि "॥ ६६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः।

अथाऽतः कर्णरोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः।

वातात्कर्णशूलरोगः

"प्रतिश्यायजलक्रीडाकर्णकंडूयनैर्मरुत्।
मिथ्यायोगेन शब्दस्य, कुपितोन्यैश्च कोपनैः ॥ १ ॥
प्राप्य श्रोत्रशिराः कुर्याच्छूलं श्रोतसि वेगवत्।
अर्धावभेदकं स्तंभं शिशिरानभिनंदनम् ॥ २ ॥
चिराच्च पाकं पक्वं तु लसीकामल्पशः स्रवेत्।
श्रोत्रं शून्यमकस्माच्च स्यात्संचारविचारवत्[2] ॥ ३ ॥

---

१ पृथुसंनिवेशे पृथुरूपे। २ संचारविचारवत् आच्छादित मनाच्छादितम्।

पित्तशूलम् —

शूलं पित्तात्सदाहोषा शीतेच्छा श्वयथुर्ज्वरः ।
आशु पाकः प्रपक्वं च सपीतलसिकास्रुति ॥ ४ ॥
सा लसीका स्पृशेद्यद्यत्तत्तत्पाकमुपैति च ।

कफजशूलम्—

कफाच्छिरोहनुग्रीवागौरवं मंदता रुजः ॥ ५ ॥
कंडूः श्वयथुरुष्णेच्छा पाकाच्छ्वेतघना स्रुतिः ।

रक्तजशूलम्—

करोति श्रवणे शूलमभिघातादि दूषितम् ॥ ६ ॥
रक्तं पित्तसमानार्ति किंचिद्वाधिकलक्षणम् ।

सन्निपातजशूलम्—

शूलं समुदितैर्दोषैः सशोफज्वरतीव्ररुक् ॥ ७ ॥
पर्यायादुष्णशीतेच्छा जायते श्रुतिजाड्यवत् ।
पक्वं सितासितारक्तघनपूयप्रवाहि च ॥ ८ ॥,
"शब्दवाहिसिरासंस्थे शृणोति पवने मुहुः ।
नादानकस्मादविधान् कर्णनादं वदंति तम् ॥ ९ ॥
श्लेष्मणानुगतो वायुर्नादो वा समुपेक्षितः ।
उच्चैः कृच्छ्राच्छ्रुतिं कुर्याद्बधिरत्वं क्रमेण च ॥ १० ॥
"वातेन शोषितः श्लेष्मा स्रोतो लिंपेत्ततो भवेत् ।
रुग्गौरवं पिधानं च स प्रतीनाहसंज्ञितः." ॥ ११ ॥
कंडूशोफौ कफाच्छ्रोत्रे स्थिरौ तत्संज्ञया[१] स्मृतौ ।
"कफो विदग्धः पित्तेन सरुजं नीरुजं त्वपि ॥ १२ ॥
घनपूतिबहुक्लेदं कुरुते पूतिकर्णकम् ।"
वातादिदूषितं श्रोत्रं मांसासृक्क्लेदजां रुजम् ॥ १३ ॥

---

१ तत्संज्ञया कण्डू शोफाख्यौ स्मृतौ ।

खादंतो जंतवः कुर्युस्तीव्रां स क्रिमिकर्णकः ।
"श्रोत्रकण्डूयनाज्जाते क्षते स्यात्पूर्वलक्षणः ॥१४॥
विद्रधिः पूर्ववच्चा[1]न्यः,
शोफोऽर्शोऽर्बुदमीरितम् ।
तेषु रुक्पूतिकर्णत्वं बधिरत्वं च बाधते ॥१५॥
"गर्भेऽनिलात्संकुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः ।"
एको नीरुगनेको वा गर्भे मांसांकुरः स्थिरः ॥१६॥
पिप्पली पिप्पलीमानः,
"संनिपाताद्विदारिका ।
सवर्णः सरुजः स्तब्धः श्वयथुः स उपेक्षितः ॥ १७ ॥
कटुतैलनिभं पक्वः स्रवेत् कृच्छ्रेण रोहति ।
संकोचयति रूढा च सा ध्रुवं कर्णशष्कुलीम्[2] ॥ १८ ॥
"सिरास्थः कुरुते वायुः पालीशोषं तदाह्वयम् ।,,
"कृशा दृढा च तंत्रीवत् पाली वातेन तंत्रिका,, ॥ १९ ॥
सुकुमारे चिरोत्सर्गात्सहसैव प्रवर्धिते ।
कर्णे शोफः सरुक्पाल्यामरुणः परिपोटवान् ॥ २० ॥
परिपोटः स पवनात्,
"उत्पातः पित्तशोणितात् ।
गुर्वाभरणभाराद्यैः श्यावो रुग्दाहपाकवान् ॥ २१ ॥
श्वयथुः स्फोटपिटकारागोषाक्लेदसंयुतः ।,,
"पाल्यां शोफोऽनिलकफात्सर्वतो निर्व्यथः स्थिरः ॥ २२ ॥
स्तब्धः सवर्णः कंडूमानुन्मंथो गल्लिरश्च सः ।,,
"दुर्विद्धे वर्धिते कर्णे सकंडूदाहपाकरुक् ॥ २३ ॥

---

१ पूर्ववच्चान्यः पूर्वसम्प्राप्तिको विद्रधिसम्प्राप्तिकः, अन्य एव: कर्णविद्रधिरित्यर्थः । २ कर्णशष्कुली-कर्णस्य बाह्यः समस्तो भागः । पाली—लहर—लौर हि० ।

श्वयथुः संनिपातोत्थः स नाम्ना दुःखवर्धनः ।,,
"कफासृक्कृमिजाः सूक्ष्माः सकंडूक्लेदवेदनाः ॥ २४ ॥
लेह्याख्याः पिटिकास्ता हि लिह्युः पालीमुपेक्षिताः ।,,

एषांसाध्यासाध्यत्वम्—

पिप्पली सर्वजं शूलं विदारी कुचिवर्णकः ॥ २५ ॥
एषामसाध्या याप्यैका तन्त्रिकान्यास्तु साधयेत् ।
पंचविंशतिरित्युक्ताः कर्णरोगा विभागतः" ॥ २६ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कर्णरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

वातजकर्णशूलचिकित्सा—

"कर्णशूले पवनजे पिबेद्रात्रौ रसाशितः ।
वातघ्नसाधितं सर्पिः कर्णं स्विन्नं च पूरयेत् ॥ १ ॥
पत्राणां पृथगश्वत्थबिल्वार्कैरंडजन्मनाम् ।
तैलसिन्धूत्थदिग्धानां स्विन्नानां पुटपाकतः ॥ २ ॥
रसैः कवोष्णैस्तद्वच्च मूलकस्यारलोरपि ।
गणे वातहरेऽम्लेषु मूत्रेषु च विपाचितः ॥ ३ ॥
महास्नेहो द्रुतं हंति सुतीव्रामपि वेदनाम् ।
महतः पंचमूलस्य काष्ठात्क्षौमेण वेष्टितात् ॥ ४ ॥
तैलसिक्तात्प्रदीप्ताग्रात् स्नेहः सद्यो रुजापहः ।
योज्यश्चैवं भद्रकाष्ठात्कुष्ठात्काष्ठाच्च सारलात् ॥ ५ ॥

वातव्याधिप्रतिश्यायविहितं हितमत्र च ।
वर्जयेच्छिरसा स्नानं शीतांभः पानमह्न्यपि ॥६॥

पित्तजशूलचिकित्सा—

पित्तशूले सितायुक्तघृतस्निग्धं विरेचयेत् ।
द्राक्षायष्टिशृतं स्तन्यं शस्यते कर्णपूरणम् ॥७॥
यष्ट्यनंताहिमोशीरकाकोलीरोध्रजीवकैः ।
मृणालबिसमंजिष्ठासारिवाभिश्च साधयेत् ॥८॥
यष्टीमधुरमप्रस्थं क्षीरद्विप्रस्थसंयुतम् ।
तैलस्य कुडवं नस्यपूरणाभ्यंजनैरिम् ॥९॥
निर्हंति शूलदाहोषाः केवलं क्षौद्रमेव वा ।
यष्ट्यादिभिश्च सघृतैः कर्णौ दिह्यात्समंततः ॥१०॥

कफजशूलचिकित्सा—

वामयेत् पिप्पलीसिद्धसर्पिःस्निग्धं कफोद्भवे ।
धूमनावनगंडूषस्वेदान् कुर्यात्कफापहान् ॥११॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां मुरुंग्या मूलकस्य च ।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥१२॥
अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तांल्लवणान्वितान् ।
संनिधायस्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृतान् ॥१३॥
स्वेदयेत्पुटपाकेन स रसः शूलजित्परम् ।
रसेन बीजपूरस्य कपित्थस्य च पूरयेत् ॥१४॥
शुक्तेन पूरयित्वा वा फेनेनान्ववचूर्णयेत् ।
अजाविमूत्रवंशत्वक्सिद्धं तैलं च पूरणम् ॥१५॥
सिद्धं वा सार्षपं तैलं हिंगुतुंबुरुनागरैः ।

रक्तजशूलचिकित्सा—

रक्तजे पित्तवत्कार्यं शिरां चाशु विमोक्षयेत् ॥१६॥

---

१ मुरुङ्गीशोभाञ्जनम् ।

पक्वेपूयवहे कर्णे धूमादि—

पक्के पूयवहे कर्णे धूमगंडूषनावनम् ।
युंज्यान्नाडीविधानं च दुष्टव्रणहरं च यत् ॥१७॥

पिचुवर्तिभिःस्रोतःपूरणादि—

स्रोतः प्रमृज्य दिर्ध तु द्वौ कालौ पिचुवर्तिभिः ।
पूरयेद् धूपयित्वा तु मक्षिकेण प्रपूरयेत् ॥१८॥
सुरसादिगणक्काथफणिताक्तां च योजयेत् ।
पिचुवर्तिसुसूक्ष्मैश्च तच्चूर्णैरवचूर्णयेत् ॥१९॥
शूलक्लेदगुरुत्वाना विधिरेष निवर्तकः ।

कर्णस्रावहरं तैलम्—

प्रियंगुमधुकांवष्ठाधातक्युत्पल[1]पर्णिभिः ॥२०॥
मंजिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन च ।
पचेत्तैलं तदास्रावं निगृह्णात्याशु पूरणात् ॥२१॥

नादबाधिर्य चिकित्सा—

नादबाधिर्ययोः कुर्याद् वातशूलोक्तमौषधम् ।
श्लेष्मानुबंधे श्लेष्माणं प्राग्जयेद्वमनादिभिः ॥२२॥

नादबाधिर्यहरंतैलम्—

एरंडशिग्रुवरुणमूलकात्पत्रजे रसे ।
चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणोन्मिते ॥२३॥
यष्ट्याह्वक्षीरकाकोलीकल्कयुक्तं निहंति तत् ।
नादबाधिर्यशूलानि नावनाभ्यंगपूरणैः ॥२४॥

रुजादिजित्तैलम्—

पक्वं प्रतिविषाहिंगुमिषित्वक्स्वर्जिकोपणैः ।
सभूक्तैः पूरणात्तैलं रुक्स्रावश्रुतिनादनुत् ॥२५॥

---

[1] उत्पल पर्णी—सुश्रुतेतु घीपर्णी इतिपाठः, अत्र उत्पलं कुष्ठम् पर्णी-शालपर्णी । अथवा उत्पलसारिवा ।

कर्णनादे हितं तैलं सर्षपोत्थं च पूरणे ।

क्षारतैलम्—

शुष्कमूलकखंडानां क्षारो हिंगु महौषधम् ॥२६॥
शतपुष्पावचाकुष्ठदारुशिग्रुरसांजनम् ।
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकौद्भिदसैंधवम् ॥२७॥
भूर्जग्रंथिविडं मुस्ता मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ।
मातुलुंगरसस्तद्वत् कदलीस्वरसश्च तैः ॥२८॥
पक्वं तैलं जयत्याशु सुकृच्छ्रानपि पूरणात् ।
कंडूं क्लेदं च बाधिर्यं पूतिकर्णं च रुक्कृमीन् ॥२९॥
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदंतामयेषु च ।

सुप्तकर्णयोरक्तहरणम्—

अथ सुप्ताविव स्यातां कर्णौ रक्तं हरेत्ततः ॥३०॥

सशोफादिकर्णयोर्वमनम्—

सशोफक्लेदयोर्मंदश्रुतेर्वमनमाचरेत् ।
बाधिर्यं वर्जयेद्बालवृद्धयोश्चिरजं च यत् ॥३१॥

प्रतिनाहचिकित्सा—

प्रतिनाहे परिक्लेद्य स्नेहस्वेदैर्विशोधयेत् ।
कर्णशोधनकेनानु कर्णौ तैलस्य पूरयेत् ३२॥
सशुक्तसैंधवमथो मातुलुंगरसस्य वा ।
शोधनाद् रूक्षतोत्पत्तौ घृतमंडस्य पूरणम् ॥३३॥

कट्वादिलेपनम्—

क्रमोऽयं मलपूर्णेऽपि कर्णे कंड्वां कफापहम् ।
नस्यादि तद्वच्छोफेऽपि कट्वुष्णैश्चात्र लेपनम् ॥३४॥
कर्णस्रावोदितं कुर्यात्पूतिकृमिककर्णयोः ।
पूरणं कटुतैलेन विशेषात् कृमिकर्णके ॥३५॥

१ तद्वत्–मातुलुङ्गरसश्चतुर्गुणस्तैलादित्यर्थः ।

वमिपूर्वा हिता कर्णविद्रधौ विद्रधिक्रिया ।
पित्तोत्थकर्णशूलोक्तं कर्तव्यं क्षतविद्रधौ ॥३६॥
अर्शोऽर्बुदेषु नासावद्
आमा कर्णविदारिका ।
कर्णविद्रधिवत्साध्या यथादोषोदयेन च ॥३७॥

पालीशोषचिकित्सा—

पालीशोषेऽनिलश्रोत्रशूलवन्नस्यलेपनम् ।
स्वेदं च कुर्यात् स्विन्नां च पालीमुद्वर्तयेत्तिलैः ॥३८॥
प्रियालबीजयष्ट्याह्वहयगंधायवान्वितैः ।
ततः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यंगं नित्यमाचरेत् ॥३९॥
शतावरीवाजिगंधापयस्यैरंडजीवकैः ।
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥४०॥
कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् ।
आनूपमांसक्वाथे च पालीपोषणवर्धनम् ॥४१॥
पाली छिन्नातिसंक्षीणां शेषा संधाय पोषयेत् ।
याप्यैवं तन्निकाराप्यपि परिपोटेप्ययं विधिः ॥४२॥
उत्पाते शीतलैर्लेपो जलौकोहृतशोणिते ।

सिद्धतैलम्—

जंब्वाम्रपल्लवबलायष्टीरोध्रविलोत्पलैः ॥४३॥
सधान्याम्लैः समंजिष्ठैः सकर्दबैः ससारिवैः ।
सिद्धमभ्यंजनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च ॥४४॥

उन्मन्थचिकित्सा—

उन्मंथेऽभ्यंजनं तैलं गोधाकर्कवसान्वितम् ।
तालपत्राश्वगंधार्कबाकुचीतिलसैंधवैः ॥४५॥
सुरसालांगलीभ्यां च सिद्धं तीक्ष्णं च नावनम् ।

दुर्विद्धकर्णचिकित्सा—

दुर्विद्धेऽश्मंतजंब्वाम्रपत्रक्वाथेन सेचिताम् ॥४६॥

तैलेन पाली स्वभ्यक्तां सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत् ।
चूर्णैर्मधुकमंजिष्ठाप्रपुंड्राह्वनिशोद्भवैः ॥ ४७ ॥
लाक्षाविडंगसिद्धं च तैलमभ्यंजने हितम् ।

परिलेही चिकित्सा—

स्विन्नां गोमयजैः पिंडैर्बहुशः परिलेहिकाम् ॥ ४८ ॥
विडंगसारैरालिंपेदुरभ्रीमूत्रकल्कितैः ।
कौटजैंगुदकारंजबीजशम्याकवल्कलैः ॥ ४९ ॥
अथवाभ्यंजने तैर्वा कटुतैलं विपाचयेत् ।
तमालपत्रमरिचमदनैर्लेहिकापहे ॥ ५० ॥

छिन्नकर्ण चिकित्सा—

छिन्नं तु कर्णं शुद्धस्य बंधमालोच्य यौगिकम् ।
शुद्धास्रं लागयेल्लग्ने सद्यश्छिन्ने [1]विशोधनम् ॥ ५१ ॥

कर्णरोगविधानम्—

अथ ग्रथित्वा केशांतं कृत्वा छेदमलेखनम् ।
निवेश्य संधिं सुषमं न निम्नं न समुन्नतम् ॥ ५२ ॥
अभ्यज्य मधुसर्पिर्भ्यां पिचुप्लोतावगुंठितम् ।
सूत्रेणागाढशिथिलं बद्ध्वा चूर्णैरवाकिरन् ॥ ५३ ॥
शोणितस्थापनैर्व्रण्यमाचारं चादिशेत्ततः ।
सप्ताहादामतैलाक्तं शनैरपनयेत् पिचुम् ॥ ५४ ॥
सुरूढं जातरोमाणं श्लिष्टसंधिमसंस्थिरम् ।
[2]सुवर्ष्माणं सुरागं च शनैः कर्णं विवर्धयेत् ॥ ५५ ॥

कर्णवर्धनतैलम्—

[3]जलशूकः स्वयंगुप्ता रजन्यौ बृहतीद्वयम् ।
अश्वगंधाबलाहस्तिपिप्पलीगौरसर्षपाः ॥ ५६ ॥

---

१ विशोधनं विरेकादि । २ सुवर्ष्माणं शोभनाकृतिम् । ३ जलशूको जलनीलिका शूकयुक्तो जलजन्तुर्वा, अश्वघ्नः करवीरः । स्पृक्का मन्दारः । कालेन-छुछुंदरी न तु मारिता ।

मूलं कोशातकाश्वघ्नरूपिकासप्तपर्णजम् ।
छुछुंदरी कालमृता, गृहं मधुकरीकृतम् ॥ ५७ ॥
[1]जंतूका जलजन्मा च तथा शावरकंदकम् ।
एभिः कल्कैः खरं पक्वं सतैलं माहिषं घृतम् ॥ ५८ ॥
हस्त्यश्वमूत्रेण परमभ्यंगात्कर्णवर्धनम् ।

छिन्ननासिका चिकित्सा—

अथ कुर्याद्वयस्थस्य छिन्नां शुद्धस्य नासिकाम् ॥ ५९ ॥
[2]छिद्यान्नासासमं पत्रं तत्तुल्यं च कपोलतः ।
त्वङ्मांसं नासिकाप्रान्ते रक्षंस्तत्तानुतां नयेत् ॥ ६० ॥
सीव्येद् गंडे ततः सूच्या सेविन्या पिचुयुक्तया ।
नासाच्छेदे च लिखिते परीक्ष्योपरि त्वचम् ॥ ६१ ॥
कपोलवध्रं संदध्यात्सीव्येन्नासां च यत्नतः ।
नाडीभ्यामुत्क्षिपेदंतः सुखोच्छ्वासप्रवृत्तये ॥ ६२ ॥
आमतैलेन सिक्त्वा तु पतंगमधुकांजनैः ।
शोणितस्थापनैश्चान्यैः सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत् ॥ ६३ ॥
ततो मधुघृताभ्यक्तं बद्ध्वाचारिकमादिशेत् ।
ज्ञात्वावस्थांतरं कुर्यात् सद्योव्रणविधिं ततः ॥ ६४ ॥
छिद्यादूढेऽधिकं मांसं नासोपांते च चर्मवत् ।
सीव्येत्ततश्च सुश्लक्ष्णं हीनं संवर्धयेत्पुनः ॥ ६५ ॥
निवेशिते यथान्यासं सद्यश्छेदेऽप्ययं विधिः ।

ओष्ठसंधानम्—

नाडीयोगाद्विनौष्ठस्य नासासंधानवद्विधिः ॥ ६६ ॥"

---

१ जंतूका-चर्मचटिका 'चमगादड़'। जलजन्मा-जलौका। शावरकन्दको लशुनः। २ पर्णवृक्षाणां, सुश्रुते 'वृधिर्वा रुहाणाम्' इतिपाठात्। तत्तुल्यं पत्र तुल्यम्। तत्-पत्रम्। अन्तर्मध्ये नासां च नाडीभ्यामेरण्डादीनामुत्क्षिपेत्।

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो नासारोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।

प्रतिश्यायसम्प्राप्तिः—

"अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः ।
नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनान्येन[1] वारिणा ॥ १ ॥
अत्यंबुपानरमणच्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः ।
रुद्धा वातोल्वणा दोषा नासाया स्त्यानतां[2] गताः ॥ २ ॥
जनयंति प्रतिश्यायं वर्धमानं क्षयप्रदम् ।

वातादिजप्रतिश्याय लक्षणानि—

तत्र वातात्प्रतिश्याये मुखशोषो भृशं क्षवः ॥ ३ ॥
घ्राणोपरोधनिस्तोददंतशंखशिरोव्यथाः ।
कीटका इव सर्पंति मन्यते परितो भ्रुवौ ॥ ४ ॥
स्वरसादश्चिरात्पाकः शिशिराच्छकफस्रुतिः ।
पित्तात्तृष्णाज्वरघ्राणपिटिकासंभवभ्रमाः ॥ ५ ॥
नासाग्रपाको रूक्षोष्णस्ताम्रपीतकफस्रुतिः ।
कफात्कासोऽरुचिः श्वासो वमथुर्गात्रगौरवम् ॥ ६ ॥
माधुर्यं वदने कंडूः स्निग्धशुक्लघना स्रुतिः ।
सर्वजो लक्षणैः सर्वैरकस्माद्वृद्धिशांतिमान् ॥ ७ ॥

रक्तजप्रतिश्याय लक्षणम्—

दुष्टं नासासिराः प्राप्य प्रतिश्यायं करोत्यसृक् ।
उरसः सुप्तता ताम्रनेत्रत्वं श्वासपूतिता ॥ ८ ॥

---

१ अन्येनवारिणा पीतेन । २ स्त्यानतां घनत्वम् । ३ भ्रुवौपरितः कीटकाः सर्पन्तीव मन्यते ।

कंडुः श्रोत्राक्षिनासासु पित्तोक्तं चात्र[1] लक्षणम् ।

दुष्टप्रतिश्याय लक्षणम्—

सर्व एव प्रतिश्याया दुष्टतां यान्त्युपेक्षिताः ॥ ९ ॥
[2]यथोक्तोपद्रवाधिक्यात्स सर्वेंद्रियतापनः ।
साग्निसादज्वरश्वासकासोरः पार्श्ववेदनः ॥ १० ॥
कुप्यत्यकस्माद्बहुशो मुखदौर्गंध्यशोफकृत् ।
नासिकाक्लेदसंशोषशुद्धिरोधकरो मुहुः ॥ ११ ॥
पूयोपमा सिता रक्तग्रथिता श्लेष्मसंस्रुतिः ।
मूर्छंति चात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः ॥ १२ ॥

पक्वप्रतिश्या लक्षणम् :—

पक्वलिंगानि तेष्वंगलाघवं क्षवथोः शमः ।
श्लेष्मा सचिक्कणः पीतो ज्ञानं च रसगंधयोः ॥ १३ ॥

भृशंक्षव लक्षणम्—

तीक्ष्णघ्राणोपयोगार्करश्मिसूत्रतृणादिभिः ।
वातकोपिभिरन्यैर्वा नासिकातरुणास्थिनि ॥ १४ ॥
विघट्टितेऽनिल. क्रुद्धो रुद्ध. शृंगाटकं व्रजेत् ।
निवृत्तः कुरुतेऽत्यर्थं क्षवथुं स भृशं क्षवः ॥ १५ ॥

नासाशोष लक्षणम्—

शोषयन्नासिकास्रोतः कफं च कुरुतेऽनिलः ।
शूकपूर्णाभनासात्वं कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः ॥ १६ ॥
स्मृतोऽसौ नासिकाशोषो,
नासानाहे तु जायते ।
नद्धत्वमिव नासायाः श्लेष्मरुद्धेन वायुना ॥ १७ ॥
निःश्वासोच्छ्वाससंरोधात् स्रोतसी संवृते इव ।
"पचेन्नासापुटे पित्तं त्वङ्मांसं दाहशूलवत् ॥ १८ ॥

---

१ अत्र रक्तजप्रतिश्याये । २ उपद्रवा मुखशोषादयः ।

स घ्राणपाकः,

स्रावस्तु तत्संज्ञः श्लेष्मसंभवः ।

अच्छो जलोपमोऽजस्रं विशेषान्निशि जायते" ॥ १६ ॥

अपीनस लक्षणम्—

कफः प्रवृद्धो नासाया रुद्ध्वा स्रोतांस्यपीनसम् ।
कुर्यात्सघुर्घुरं श्वासं पीनसाधिकवेदनम् ॥ २० ॥
[1]अवेरिव स्रवत्यस्य प्रक्लिन्ना तेन नासिका ।
अजस्रं पिच्छलं पीतं पक्वं सिंघाणकं घनम् ॥ २१ ॥
"रक्तेन नासादग्धेन बाह्यांतः स्पर्शनासहा ।
भवेद्धूमोपमोच्छ्वासा सा दीप्तिर्दहतीव च" ॥ २२ ॥
"तालुमूले मलैर्दुष्टैर्मारुतो मुखनासिकात् ।
श्लेष्मा च पूतिर्निर्गच्छेत् पूतिनासं वदंति तम्" ॥ २३ ॥
"निचयादभिघाताद्वा पूयासृङ् नासिका स्रवेत् ।
तत्पूयरक्तमाख्यातं शिरोदाहरुजाकरम्" ॥ २४ ॥
"पित्तश्लेष्मावरुद्धोऽन्तर्नासायां शोषयेन्मरुत् ।
कफं सशुष्कपुटतां[2] प्राप्नोति पुटकं तु तत्" ॥ २५ ॥
अर्शोर्बुदानि विभजेद्दोषलिङ्गैर्यथायथम् ।
[3]सर्वेषु कृच्छ्राच्छ्वसनं पीनसः प्रततं क्षवः ॥ २६ ॥
सानुनासिकवादित्वं पूतिनासः शिरोव्यथा ।
अष्टादशानामित्येषां यापयेद्दुष्टपीनसम् ॥ २७ ॥"

---

१ अवेर्मेषस्येव नासिका सततं प्रक्लिन्ना । सिंघाणकं कफम् । २ सकफः शुष्कपुटतां प्राप्नोति । ३ सर्वेष्वर्शःस्वर्बुदेषु च ।

विंशोऽध्यायः।

अथातो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

पीनसचिकित्सा—

"सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत्।
स्नेहनस्वेदवमनधूमगंडूषधारणम्॥ १॥
वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम्।
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम्॥ २॥
धन्वमांसगुडक्षीरचणकत्रिकटूत्कटम्।
यवगोधूमभूयिष्ठं दधिदाडिमसाधितम्॥ ३॥
बालमूलकजो यूषः कुलत्थोत्थश्च पूजितः।
कवोष्णं दशमूलाम्बु जीर्णां वा वारुणीं पिबेत्॥ ४॥
जिघ्रेच्चोरकलकारीवचाजाज्युपकुंचिकाः।

व्योषादिवटी—

व्योषतालीसचविकातिन्तिडीकाम्लवेतसम्॥ ५॥
[1]साग्न्यजाजीद्विपलिकं त्वगेलापत्रपादिकम्।
जीर्णाद्गुडात्तुलार्धेन पक्वेन वटकीकृतम्॥ ६॥
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम्।

धूमपानम्—

ध्यामत्वग्बलामूलं स्योनाकैरंडबिल्वजम्॥ ७॥
सारग्वधं त्रिविद्धूमं वसाज्य[2]मदनान्वितम्।
अथवा सघृतान्सक्तून् कृत्वा मल्लकसंपुटे॥ ८॥

---

१ अग्निश्चित्रकः। व्योषादि अजाजी पर्यन्तं द्रव्यं प्रत्येकं द्विपलिकम्। त्वगादित्रयं प्रत्येकं द्विकार्षिकम्। २ मदनं मधूच्छिष्टम्। स्वेहनस्यादिकं स्वेदादिकम्।

सरुग्दाहः स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दंतविद्रधिः" ।
"श्वयथुर्दंतमूलेषु रुजावान् पित्तरक्तजः ॥ २५ ॥
लालास्रावी ससुषिरो दंतमांसप्रशातनः" ।
"ससंनिपातज्वरवान् सपूयरुधिरस्रुतिः ॥ २६ ॥
महासुषिर इत्युक्तो विशीर्णद्विजबंधनः" ।
"दंतांते कीलवच्छोफो हनुकर्णरुजाकरः ॥ २७ ॥
प्रतिहंत्यभ्यवहृतिं श्लेष्मणा सोऽधिमांसकः ।,,
"घृष्टेषु दंतमांसेषु संरंभो जायते महान् ॥ २८ ॥
यस्मिश्चलंति दंताश्च स विदर्भोऽभिघातजः ।,,

दन्तमांसगतनाड्य :—

दंतमांसाश्रितान् रोगान् यः साध्यानप्युपेक्षते ॥ २९ ॥
अंतस्तस्यास्रवन् दोषः सूक्ष्मां संजनयेद्गतिम् ।
पूयं मुहुः सा स्रवति त्वङ्मांसास्थिप्रभेदिनी ॥ ३० ॥
ताः पुनः पंच विज्ञेया लक्षणैः स्वैर्यथोदितैः ।

जिह्वारोगा :—

शाकपत्रखरा सुप्ता स्फुटिता वातदूषिता ॥ ३१ ॥
जिह्वा,
पित्तात् सदाहोषा रक्तैर्मांसांकुरैश्चिता ।,,
शाल्मलीकंटकाभैस्तु कफेन बहुला गुरुः,, ॥ ३२ ॥
"कफपित्तादधः शोफो जिह्वास्तंभकृदुन्नतः ।
मत्स्यगंधिर्भवेत्पक्वः सोऽलसो मांसशातनः,, ॥ ३३ ॥
"प्रबंधनेऽधो जिह्वायाः शोफो जिह्वाग्रसंनिभः ।
सांकुरः कफपित्तास्रैर्लालोषास्तंभवान् खरः ॥ ३४ ॥
अधिजिह्वः सरुक्कंडूर्वाग्याहारविघातकृत् ।,,
[१]तादृगेवोपजिह्वस्तु जिह्वाया उपरि स्थितः ॥ ३५ ॥

---

१ तादृक् अधिजिह्व सदृशः शोफः ।

तालुगतरोगाः—

तालुमांसेनिलाद्दुष्टे पिटिकाः सरुजः खराः ।
बह्वयो घनाः स्रावयुक्तास्तास्तालुपिटिकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥
"तालुमूले कफात्मास्रान्मत्स्यबस्तिनिभो मृदुः ।
प्रलंबः पिच्छिलः शोफो नासयाऽऽहारमीरयत् ॥ ३७ ॥
कंठोपरोधस्तृट्कासवमिकृद्गलशुण्डिका ।,,
"तालुमध्ये निरुङ्मांसं संहतं तालुसंहतिः ॥ ३८ ॥
पद्माकृतिस्तालुमध्ये रक्ताच्छ्वयथुरर्बुदम् ।,,
"कच्छपः कच्छपाकारश्चिरवृद्धिः कफादरुक्,, ॥ ३९ ॥
"कोलाभः श्लेष्ममेदोभ्यां पुप्पुटो नोरुजः स्थिरः ।,,
"पित्तेन पाकः पाकाख्यः पूयास्रावी महारुज ,, ॥ ४० ॥
"वातपित्तज्वरायासैस्तालुशोषस्तदाह्वय ।,,

कण्ठगतरोगाः—

जिह्वाप्रबंधजाः कंठे दारुणा मार्गरोधिन. ॥ ४१ ॥
मांसाकुराः शीघ्रवया रोहिणी शीघ्रकारिणी ।,,
कंठास्यशोषकृद्घातारसा हनुश्रोत्ररुक्करी ॥ ४२ ॥
पित्ताज्वरोपातृण्मोहकंठधूमायनान्विता ।
क्षिप्रजा क्षिप्रपाकातिरागिणी स्पर्शनासहा,, ॥ ४३ ॥
कफेन पिच्छिला पाडुः,,

असृजा स्फोटकाचिता ।
तप्तांगारनिभा कर्णरुक्करी पित्तजाकृति. ॥ ४४ ॥,,
"गंभीरपाका निचयात्सर्वलिंगसमन्विता ।,,
"दोषैः कफोल्बणैः शोफः कोलवद् ग्रथितोन्नतः ॥ ४५ ॥
शूककंटकवत्कंठे शालूको मार्गरोधनः ।,,
"वृंदो वृत्तोन्नतो दाहज्वरकृद् गलपार्श्वगः ॥ ४६ ॥
"हनुसंध्याश्रितः कंठे कार्पासीफलसंनिभः ।
पिच्छिलो मंदरक् शोफः कठिनस्तुंडिकेरिका ॥ ४७ ॥

"वाह्यातः श्वयथुर्घोरो [1]गलमार्गार्गलोपमः ।
गलौघो मूर्धगुरुतातन्द्रालालाज्वरप्रदः,, ॥ ४८ ॥
"वलयं नातिरुक् शोफस्तद्वदेवायतोऽन्नः ।,,
"मांसकीलो गले दोषैरेकोऽनेकोऽथवाल्परुक् ॥ ४६ ॥
कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यवहृतिः पृथुमूलो गलायुकः ।,,
"भूरिमांसांकुरवृता तीव्रतृट्ज्वरमूर्धरुक् ॥ ५० ॥
शतघ्नी निचिता वर्तिः शतघ्नीवातिरुक्करी ।,,
"व्याप्तसर्वगलः शीघ्रजन्मपाको महारुजः ॥ ५१ ॥
पूतिपूयनिभस्रावी श्वयथुर्गलविद्रधिः ।,,
"जिह्वावमाने कंठादावपाकं श्वयथुं मलाः ॥ ५२ ॥
जनयंति स्थिरं रक्तं नीरुजं तद्गलायु दम् ।,,
"पवनश्लेष्ममेदोभिर्गलगंडो भवेद्बहिः ।
वर्धमानः स कालेन मुष्कवल्लंवते निरुक्" ॥ ५३ ॥
"कृष्णोऽरुणो वा तोदाढ्यः स वातात्कृष्णराजिमान् ।
वृद्धस्तालुगले शोषं कुर्याच्च विरसास्यताम्" ॥ ५४ ॥
"स्थिरः सवर्णः कंडूमान् शीतस्पर्शो गुरुः कफात् ।
वृद्धस्तालुगले लेपं कुर्याच्च मधुरास्यताम्,, ॥ ५५ ॥
"मेदसः [2]श्लेष्मवद्धानिवृद्धयोः सोऽनुविधीयते ।
देहं वृद्धश्च कुरुते गले शब्दं स्वरेऽल्पताम्,, ॥ ५६ ॥
"श्लेष्मरुद्धानिलगतिः शुष्ककंठो हतस्वरः ।
ताम्यन् प्रसक्तं श्वसिति येन स स्वरहानिलात् ॥ ५७ ॥

सर्वसरमुखरोगा :—

"करोति वदनस्यांतर्व्रणान्सर्वसरोऽनिलः ।
संचारिणोऽरुणान् रूक्षानोष्ठौ ताम्रौ चलत्वचौ ॥ ५७ ॥

---

१ गलमार्गस्यार्गलासदृशः । अन्तः प्रवेशनिरोधकंकाष्ठम् "वेंड़ा" इतिलोके ।
२ श्लेष्मवत् कफजगलगण्डलक्षणवान् । समेदोजोगलगण्डो हानिवृद्धयोः देहमनुविधीयते देहवृद्धौगलगण्डवृद्धि र्देहक्षयेगलगण्डकार्श्यम् ।

जिह्वा शीतासहा गुर्वी स्फुटिता कंटकाचिता ।
विवृणोति च कृच्छ्रेण, मुखपाको मुखस्य च,, ॥ ५९ ॥
"अधः प्रतिहतो वायुरर्शोगुल्मकफादिभिः ।
यात्यूर्ध्वं वक्त्रदौर्गन्ध्यं कुर्वन्नूर्ध्वगदस्तु सः,, ॥ ६० ॥
मुखस्य पित्तजे पाके दाहोषे तिक्तवक्त्रता ।
क्षारोक्षितक्षतसमा व्रणाः,

[1]तद्वच्च रक्तजे ॥ ६१ ॥

"कफजे मधुरास्यत्वं कंडूमत्पिच्छिला व्रणाः ।,,
"अंतःकपोलमाश्रित्य श्यावपांडु कफोर्बुदम् ॥ ६२ ॥
कुर्यात्तत्पाटितं छिन्नं मृदितं च विवर्धते ।,,
मुखपाको भवेत्सार्वैः सर्वैः सर्वाकृतिर्मलैः ॥ ६३ ॥
पूत्यास्यता च तैरेव दंतकाष्ठादिविद्विषः ।

मुखरोग गणना—

ओष्ठे गडे द्विजे मूले जिह्वायां तालुके गले ॥ ६४ ॥
वक्त्रे सर्वत्र चेत्युक्ताः पंचसप्ततिरामयाः ।
[2]एकादशैको दश च त्रयोदश तथा च षट् ॥ ६५ ॥
अष्टावष्टादशाष्टौ च क्रमात्,

तेषां साध्यत्वादि—

तेष्वनुपक्रमाः ।
करालो मांसरक्तोष्ठावर्बुदानि [3]जलादिना ॥ ६६ ॥

---

१ रक्तजे मुखपाके तद्वत् पित्तजमुखपाकवत् । २ ओष्ठे एकादश । एकोगण्डे । द्विजे दन्ते दश । मूले दन्तमूले त्रयोदश । जिह्वायां षट्, तालुनि अष्टौ । गले अष्टादश । वक्त्रे सर्वस्मिन्नष्टौ । ३ तेषु समस्त मुखरोगेषु । जलादिना जलार्बुदादोष्ठरोगादिना । करालमहासुषिरौ दन्तरोगौ । उर्ध्वगदोमुखरोगः । खण्डौष्ठ-वात-पित्त-कफ-सन्निपात-रक्तज-रक्तार्बुद-मांसज-मेदोज-क्षतज-जलार्बुदानीत्येकादश ओष्ठरोगाः । गण्डालजीत्येकोगण्डरोगः । शीतदन्त-हर्ष-भेद-चाल-कराल-वर्धन-पूतिगन्ध-शर्करा-कपालिका-श्यावदन्ता इतिदश दन्तरोगाः। क्रिमिदन्त-शीताद-उपकुश-पुप्पुट-

कण्ठपस्तालुपिटिका गलौघः सुषिरो महान् ।
स्वरहोर्ध्वगदः श्यावः शतघ्नीवलयालसाः ॥ ६७ ॥
[1]नाड्योष्ठकोपो निचयात् रक्तात्सर्वैश्च रोहिणी ।
दशने स्फुटिते दंतभेदः पक्वोपजिह्विका ॥ ६८ ॥
गलगंडः स्वरभ्रंशः कृच्छ्रोच्छ्वासोऽतिवत्सरः ।
याप्यस्तु हर्षो भेदश्च शेषान् शस्त्रौषधैर्जयेत्" ॥ ६९ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मुखरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

खण्डौष्ठ चिकित्सा—

"खंडौष्ठस्य विलिख्यांतौ स्यूत्वा व्रणवदाचरेत् ।
यष्टीज्योतिष्मतीरोध्रश्रावणीसारिवोत्पलैः ॥ १ ॥
पटोल्या काकमाच्या च तैलमभ्यंजनं पचेत् ।
नस्यं च तैलं वातघ्नमधुरस्कंधसाधितम् ॥ २ ॥

...-अधिमांस-विद्रधि-विदर्भाः पञ्च नाड्यश्चेति त्रयोदश दन्तमूलगताः । वातज-...-कफज-अलस अधिजिह्व-उपजिह्वाख्याः षट् जिह्वा रोगाः । पञ्चरोहिण्यः-...-तुण्डिकेरी-गलौघ-वलय-गुलायुक-शतघ्नी-विद्रधि-अर्बुद-गलगण्डा-वातजादयस्त्रयः स्वरघ्नश्चेत्यष्टादश गलरोगाः । पिटिका-गलशुण्डी-संहति-अर्बुद-कच्छप-पुप्पुट-पाक-शोषा इत्यष्टौ तालु रोगाः ।

१ निचयात्सन्निपातात् नाडीदन्तमूलजा । निचयादोष्ठकोपश्च । रक्तजासन्निपातजा च रोहिणी । दन्तभेद दशनेस्फुटिते सत्यसाध्यः । उपजिह्विका पक्वाऽसाध्या । गलगण्डः स्वरभ्रंशः कृच्छ्रोच्छ्वासोऽतिक्रान्तवत्सरश्चासाध्यः । नाड्योष्ठ-मिति-ओष्ठं वातजोष्टं दुग्धसिद्धैरेरण्ड पल्लवैर्नाड्यास्वेदयेत् ।

वातौष्ठ चिकित्सा—

महास्नेहेन वातौष्ठे सिद्धेनाक्तः पिचुर्हितः ।
देवधूपमधूच्छिष्टगुग्गुल्वमरदारुभिः ॥ ३ ॥
यष्टयाह्वचूर्णयुक्तेन तेनैव प्रतिसारणम् ।
नाड्योष्ठं स्वेदयेद्दुग्धसिद्धैरेरंडपल्लवैः ॥ ४ ॥
खंडौष्ठविहितं नस्यं तस्य[1] मूर्ध्नि च तर्पणम् ।

पित्ताभिघातजौष्ठचिकित्सा—

पित्ताभिघातजावोष्ठौ जलौकोभिरुपाचरेत् ॥ ५ ॥
रोध्रसर्जरसक्षौद्रमधुकैः प्रतिसारणम् ।
गुडूचीयष्टिरतंगसिद्धमभ्यञ्जने घृतम् ॥ ६ ॥
पित्तविद्रधिवच्चात्र क्रिया,,
"शोणितजेऽपि च ॥
इदमेव भवेत्कार्यं [3]कर्म,,
ओष्ठे तु कफोत्तरे ॥ ७ ॥
पाठाक्षारमधुव्योषैर्हृतास्रे प्रतिसारणम् ।
धूमनावनगंडूषाः प्रयोज्याश्च कफच्छिदः ॥ ८ ॥
स्विन्नं भिन्नं विमेदस्कं दहेन्मेदोजमग्निना ।
प्रियंगुरोध्रत्रिफलामाक्षिकैः प्रतिसारयेत् ॥ ९ ॥

जलार्बुद चिकित्सा—

सक्षौद्रा घर्षणं तीक्ष्णा भिन्नशुद्धे जलार्बुदे ।
अवगाढेऽतिवृद्धे वा क्षारोऽग्निर्वा प्रतिक्रिया ॥ १० ॥
"आमाद्यवस्थास्वलजीं गंडे शोफवदाचरेत् ।,,

शीतदन्त चिकित्सा—

स्विन्नस्य शीतदंतस्य पाली विलिखितां दहेत् ॥ ११ ॥

---

१ तस्य वातौष्ठस्य । २ अनयोः पित्ताभिघातजयोः । ३ इदमेव कर्म कार्यं भवेद् ।

तैलेन प्रतिसार्या च सक्षौद्रघनसैंधवैः ।
दाडिमत्वग्वदरातादर्य¹कांताजंम्वस्थिनागरैः ॥ १२ ॥
कवलः क्षीरिणां क्वाथैरणुतैलं च नावनम् ।

दन्तहर्ष चिकित्सा—

दंतहर्षे तथा भेदे सर्वा वातहरा क्रिया ॥ १३ ॥
तिलयष्टीमधुश्रृतं क्षीरं गंडूषधारणम् ।

चलदन्त चिकित्सा—

सस्नेहं दशमूलांबु गंडूषः प्रचलद्द्विजे ॥ १४ ॥
तुत्थरोध्रकणाश्रेष्ठापत्तंगपटुघर्षणम् ।
स्निग्धाः शील्या यथावस्थं नस्यान्नकवलादयः ॥ १५ ॥

अधिदन्तक चिकित्सा—

अधिदंतकमालिप्तं यदा क्षारेण जर्जरम् ।
कृमिदंतमिवोत्पाठ्य तद्वच्चोपचरेत्तदा ॥१६॥
अनवस्थितरक्ते च दग्धे व्रण इव क्रिया ।

दन्तशर्कराचिकित्सा

अहिंसन् दंतमूलानि दंतेभ्यः शर्करा हरेत् ॥१७॥
क्षारचूर्णैर्मधुयुतैस्ततश्च प्रतिसारयेत् ।
कपालिकायामप्येवं हर्षोक्तं च समाचरेत् ॥१८॥

क्रिमिदन्तचिकित्सा—

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदंतकम् ।
स्निग्धैश्चालेपगंडूषनस्याहारैश्चलापहैः ॥१९॥
गुडेन पूर्णं सुषिरं मधूच्छिष्टेन वा दहेत् ।
ससच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरयं कृमिशूलजित् ॥२०॥

---

१ कान्ता प्रियङ्गुः ।

हिंगुकटफलकासीसस्वर्जिकाकुष्ठवेल्लजम् ।
रजो रुजं जयत्याशु वस्त्रस्थं दशने धृतम् ।
गंडूषं धारयेत्तैलमेभि[1]रेव च साधितम् ।
क्वाथैर्वा युक्तमेरंडद्विव्याघ्रीभूकदंबजैः ॥२२॥
क्रियायोगैर्बहुविधैरित्यशांतरुजं भृशम् ।
दृढमप्युद्धरेद्दंतं पूर्वं मूलाद्विमोक्षितम् ॥२३॥
मदंशकेन लघुना दंतनिर्घातनेन वा ।
तैलं सयष्टयाह्वरजो गंडूषो मधुना ततः ॥२४॥
ततो विदारियष्टयाह्वशृंगाटककसेरुभिः ।
तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं युंजीत नावनम् ॥२५॥
कृशदुर्बलवृद्धाना वातार्ताना च नोद्धरेत् ।
नोद्धरेच्चोत्तरं दंतं बहूपद्रवकृद्धि सः ॥२६॥
[1]एषामप्युद्धृतैः स्निग्धः स्वादुः शीतः क्रमो हितः ।

शीतादचिकित्सा—

विस्राविताम्रे शीतादे सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥२७॥
मुस्तार्जुनत्वक् त्रिफलाफलिनीतार्क्ष्यनागरैः ।
तत्क्वाथः कवलो नस्यं तैलं मधुरसाधितम् ॥२८॥

उपकुशचिकित्सा—

दंतमासान्युपकुशे स्विन्नान्युष्णांबुधारणैः ।
मंडलाग्रेण शाकादिपत्रैर्वा बहुशो लिखेत् ॥२९॥
ततश्च प्रतिसार्याणि घृतमंडमधुद्रुतैः ।
लाक्षाप्रियंगुपत्तंगलवणोत्तमगैरिकैः ॥३०॥
सकुष्ठशुण्ठीमरिचयष्टीमधुरसांजनैः ।
सुखोष्णो घृतमंडोऽनु तैलं वा कवलग्रहः ॥३१॥

---

१ एभिः-हिङ्ग्वादिभिः । २ नोद्धरेद्दन्तमित्यन्वयः । १ एषां कृशादीनामपि-दन्तेऽस्द्धृतैःस्निग्धादिःक्रमो हितः ।

घृतं च मधुरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः

दन्तपुप्पुटचिकित्सा—

दंतपुप्पुटके स्विन्नछिन्नभिन्नविलेखिते ॥३२॥
यष्ट्याह्वस्वर्जिकाशुण्ठीसैंधवैः प्रतिसारणम् ।

दन्तविद्रधिचिकित्सा—

विद्रधौ कटुतीक्ष्णोष्णरूक्षैः कवललेपनम् ॥३३॥
धर्षणं कटुकाकुष्टवृश्चिका[1]लीयवोद्भवैः ।
रक्षेत्पाकं हिमैः पक्वः पाट्यो दाह्योऽवगाढकः ॥३४॥

दन्तसौपिरचिकित्सा—

सौषिरे छिन्नलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ।
रोध्रमुस्तमिशिश्रेष्ठातार्क्ष्यपत्तंगकिंशुकैः ॥३५॥
सकट्फलैः कषायैश्च तेषां गंडूष इष्यते ।
यष्टीरोध्रोत्पलानंतासारिवागरुचंदनैः ॥३६॥
सगैरिकसितापुंड्रैः सिद्धं तैलं च नावनम् ।

अधिमांसकचिकित्सा—

छित्त्वाधिमांसकं चूर्णैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥
वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायवशूकजैः ।
पटोलनिंबत्रिफलाकषायः कवलो हितः ॥ ३८ ॥

दन्तविदर्भचिकित्सा—

विदर्भे दंतमूलानि मंडलाग्रेण शोधयेत् ।
क्षारं युंज्यात्ततो नस्यं गंडूषादि च शीतलम् ॥ ३९ ॥

दन्तनाडीचिकित्सा—

संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपचरेत्ततः ।
नाडीं दंतानुगां दंतं समुद्धृत्याग्निना दहेत् ॥ ४० ॥

---

१ वृश्चिकाली श्वेतपुनर्नवा । हिमैर्द्रव्यैः पाकं रक्षेत् । पक्कः पाटयः ।

[1]कुब्जां नैकगतिं पूर्णां मदनेन गुडेन वा ।
धावनं जातिमदनखदिरस्वादुकंटकैः ॥ ४१ ॥
क्षीरिवृक्षांबुगंडूपो नस्यं तैलं च तत्कृतम् ।

जिह्वारोगचिकित्सा —

कुर्याद्वातोष्ठकोपोक्तं कंटकेष्वनिलात्मसु ॥ ४२ ॥
जिह्वाया,
　　पित्तजातेषु घृष्टेषु रुधिरे स्रुते ।
प्रतिसारणगंडूपनावनं मधुरैर्हितम् ॥ ४३ ॥
"तीक्ष्णैः कफोत्थेष्वप्येवं सर्षपत्र्यूषणादिभिः ।"
"नवे जिह्वालसेऽप्येवं तं तु शस्त्रेण न स्पृशेत् ॥ ४४ ॥
"उन्नम्य जिह्वामाकृष्टा बडिशेनाधिजिह्विकाम् ।
छेदयेन्मंडलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादि च ॥ ४५ ॥"
उपजिह्वां परिस्राव्य यवक्षारेण घर्षयेत् ।
कफघ्नैः शुंडिका साध्या नस्यगंडूपघर्षणैः ॥ ४६ ॥

वृद्धगलशुण्डिकायां छेदनादि —

ऐर्वारुबीजप्रतिमं [2]वृद्धायामसिरावतम् ।
[3]अग्रे निविष्टं जिह्वाया बडिशाद्यवलंबितम् ॥ ४७ ॥
छेदयेन्मंडलाग्रेण, नात्यग्रे न च मूलतः ।
छेदेऽत्यसृक्क्षयान्मृत्युर्हीने व्याधिर्विवर्धते ॥ ४८ ॥
मरिचातिविषापाठावचाकुष्ठकुटंनटैः ।
छिन्नाया सपटुक्षौद्रैर्घर्षणं कवलः पुनः ॥ ४९ ॥
कटुकातिविषापाठानिंबरास्नावचांबुभिः ।
संघाते पुप्पुटे कूर्मे विलिख्यैवं समाचरेत् ॥ ५० ॥

---

१ कुब्जामिति नैकगतिमित्यस्य विशेषणम् । २ वृद्धायां गल शुण्डिकायाम् । ३ जिह्वाया अग्रे निविष्टम् ।

अपक्वे तालुपाके तु कासीसक्षौद्रतार्क्ष्यजैः ।
घर्षणं कवलः शीतकषायमधुरौषधैः ॥ ५१ ॥
पक्वेऽष्टा[1]पदवद्भिन्ने तीक्ष्णोष्णैः प्रतिसारणम् ।
तृर्णनिबपटोलाद्यैस्तिक्तैः कवलधारणम् ॥ ५२ ॥

तालुशोषचिकित्सा —

तालुशोषे स्वतृष्णस्य सर्पिरुत्तरभक्तिकम् ।
कणाशुंठीश्रृतं पानमम्लैर्गंडूषधारणम् ॥ ५३ ॥
धन्वमांसरसाः स्निग्धाः क्षीरसर्पिश्च नावनम् ।

कण्ठरोगचिकित्सा—

कंठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च ॥ ५४ ॥
क्वाथः पानं च दार्वीत्वङ्निबतार्क्ष्यकलिगजः ।
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ५५ ॥
श्रेष्ठाव्योषयवक्षारदार्वीद्वीपिरसांजनैः ।
सराठातेजिनीनिबैः सूक्तगोमूत्रसाधितैः ॥ ५६ ॥
कवलो गुटिका चाऽत्र कल्पिता प्रतिसारणम् ।
निचुलं कटभी मुस्तं देवदारु महौषधम् ॥ ५७ ॥
वचा दंती च मूर्वा च लेपः कोष्णोऽतिशोफहा ।

रोहिणी चिकित्सा—

अथाऽसर्वाह्यतः स्विन्नां वातरोहिणिकां लिखेत् ॥ ५८ ॥
अंगुलीशस्त्रकेणाऽशु [3]पटुपुत्तलवेन वा ।
पंचमूलाम्बुकवलस्तैलं गंडूषनावनम् ॥ ५९ ॥,,
"विस्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः ।
घर्षेत्सरोध्रपत्तंगैः कवलः क्वथितैश्च तैः ॥ ६० ॥

---

१ पक्वे तालुपाकेऽष्टापदवद्भिन्ने मण्डलाग्र शस्त्रेण अष्टापदवल्लेखाभिर्भेदः कार्य इत्यर्थः । अष्टापदं चतुरङ्ग पिट्टम्—"चौरड़ अथवा "शतरंज का खाना" । २ द्वीपी चित्रकः । तेजनी "तेजबल" इतिलोके । ३ पटुर्लवणः ।

द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ।,,
"उपाचरेदेवमेव प्रत्याख्यायास्त्रसंभवाम्,, ॥ ६१ ॥
"सागारधूमैः वटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
नस्यगंडूषयोस्तैलं साधितं च प्रशस्यते ॥ ६२ ॥
अपामार्गफलश्वेतादंतीजंतुघ्नसैंधवैः ।,,
'तद्वच्च शुंडशालूकतुं'डकेरीगिलायुषु ॥ ६३ ॥
"विद्रधौ स्राविते श्वेतारोचनातार्क्ष्यगैरिकैः ।
सरोघ्रपटुवत्संगकर्णगंडूषघर्षणे ॥ ६४ ॥,,

गलगण्ड चिकित्सा—

गलगंडः पवनजः स्विन्नो निःसृतशोणितः ।
तिलैर्वीजैश्च 'लट्वोमाप्रियालशणसंभवैः ॥ ६५ ॥
उपनाह्यो व्रणे रूढे प्रलेप्यश्च पुनःपुनः ।
शिग्रुतिल्वकवर्कारीगजकृष्णापुनर्नवैः ॥ ६६ ॥
कालामृतार्कमूलैश्च पुष्पैश्च करहाटजैः ।
'एकैषिकान्वितैः पिष्टैः सुरया काञ्जिकेन वा ॥ ६७ ॥
"गुडूचीनिबकुटजहंसपादीबलाद्वयैः ।
साधितं पाययेत्तैलं सकृष्णादेवदारुभिः ॥ ६८ ॥
कर्तव्यं कफजेप्येतत्स्वेदविम्लापने त्वति ।
लेपोजगंधातिविषाविशल्यासविषाणिकाः ॥ ६९ ॥
गुंजालाबुशुकाह्वाश्च पलाशक्षारकल्किताः ।
मूत्रभृतं हठक्षारं पक्त्वा कोद्रवभुक् पिबेत् ॥ ७० ॥
साधितं वत्सकाद्यैर्वा तैलं सपटुपंचकैः ।
कफघ्नान् धूमवमननावनादींश्च शीलयेत् ॥ ७१ ॥
मेदोभवे सिरां विध्येत्कफघ्नं च विधिं भजेत् ।
अमनादिरजश्चैनं प्रातर्मूत्रेण पाययेत् ॥ ७२ ॥

---

१ तद्वत् कफजरोहिणीवत् । २ लट्वा-कुसुम्भम् । ३ एकैषिकात्रिवृत् ।

लघातौ पाटयित्वा च सर्वान्[1] व्रणवदाचरेत् ।

मुखपाक चिकित्सा—

मुखपाकेषु सक्षौद्राः प्रयोज्या मुखधावनाः ॥ ७३ ॥
क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
निष्ठेव्या भक्षयित्वा वा कुठेरादिगणोऽथवा ॥ ७४ ॥
मुखपाकेऽनिलात् कृष्णापट्वेलाः प्रतिसारणम् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ७५ ॥
पित्तास्रे रक्तपित्तघ्नः, कफघ्नश्च कफे विधिः ।
लिखेच्छाकादिपत्रैश्च पिटिकाः कठिनाः स्थिराः ॥ ७६ ॥
यथादोषोदयं कुर्यात्संनिपाते चिकित्सितम् ।

अर्बुद चिकित्सा—

नवेऽर्बुदे त्वर्मवृद्धे छेदिते प्रतिसारणम् ॥ ७७ ॥
स्वर्जिकानागरक्षौद्रैः क्वाथो गंडूष इष्यते ।
गुडूचीनिम्बकल्कोत्थो मधुतैलसमन्वितः ॥ ७८ ॥
यवान्नभुक् तीक्ष्णतैलनस्याभ्यंगांस्तथाचरेत् ।

पूतिमुखचिकित्सा—

वमिते पूतिवदने धूमस्तीक्ष्णः सनावनः ॥ ७९ ॥
समंगाधातकीरोध्रफलिनीपद्मकैर्जलम् ।
धावनं वदनस्यान्तश्चूर्णितै[2]रवचूर्णनम् ।
शीतादोपकुशोक्तं च नावनादि च शीलयेत् ॥ ८० ॥

गुटिकाकण्ठादिरोगघ्नी—

फलत्रयव्योषकिरातत्तिक्त-
यष्ट्याह्वसिद्धार्थकटुत्रिकाणि ।

---

१ सर्वान् गलगण्डान् । २ स एतैरेव समङ्गादिभि श्चूर्णितैर्मुखाभ्यन्तरेऽव-चूर्णनं कार्यम् ।

मुस्ताहरिद्राद्वयपथ्यावशूक-
वृक्षाम्लकाम्लाग्नि[2]मवेतसाश्च ॥ ८१ ॥
अश्वत्थजम्ब्वाम्रधनंजयत्वक्
त्वक् [3]चाहिमारात्खदिरस्य सारः ।
क्वाथेन तेषां घनतां गतेन
तच्चूर्णयुक्ता गुटिका विधेयाः ॥ ८२ ॥
ता धारिता घ्नंति मुखेन नित्यं
कंठौष्ठताल्वादिगदान् सुकृच्छ्रान् ।
विशेषतो रोहिणिकास्यशोष-
गंधान् विदेहाधिपतिप्रणीता. ॥ ८३ ॥

तैलंमुखरोगघ्नम् --

खदिरतुलामंबुघटे[4] पक्त्वा तोयेन तेन पिष्टैश्च ।
चदनजोंग[5]ककुंकुमपरिपेलववालकोशीरैः ॥ ८४ ॥
सुरतरुरोध्रद्राक्षामंजिष्ठाचोचपद्मकविडंगैः ।
स्पृक्कानतनखकट्फलमूक्ष्मैलाध्यामकं.सपत्तांगैः ॥ ८५ ॥
तैलप्रस्थं विपचेत् ।
कर्षांशैः पानमस्यगंडूषैस्तत् ।
हृत्वास्ये सर्वगदान्
जनपति गार्ध्यो हृद्यं, श्रुतिं च वाराहीम् ॥ ८६ ॥

उद्वर्तनम् —

उद्वर्तितं च [1]प्रपुनाटरोध्र-
दार्वीभिरभ्यक्तमनेन वक्त्रम् ।
निर्व्यंगनीलीमुखदूषिकादि
संजायते चन्द्रसमानकांति ॥ ८७ ॥

---

२ अम्लोऽग्निमः पूर्वतनोयस्य स चासौ वेतसोऽम्लवेत सः । ३ अहिमारः अरिमेदकः । ४ घटो द्रोणः । ५ जोङ्गकमगुरु । परिपेलवः कैवर्त मुस्तकः । १ प्रपुनाटश्चक्रमर्दः ।

सर्वमुखरोगहृत्तैलम्—

पलशतं बाणात्तोयघटे
पक्त्वा रसेऽस्मिंश्च पलार्धिकैः ।
खदिरजम्बूयष्ट्यानंताम्रै-
रहिमारनीलोत्पलान्वितैः ॥ ८८ ॥
तैलप्रस्थं पाचयेच्छ्लक्ष्णपिष्टै-
रेभिर्द्रव्यैर्धारितं तन्मुखेन ।
रोगान्सर्वान् हंति वक्त्रे विशेषा-
त्स्थैर्यं धत्ते दंतपंक्तेश्चलायाः ॥ ८९ ॥

बृहत्खदिरादिगुटिका —

खदिरसाराद् द्वे तुले पचेद्वल्कात्तुलां चारिमेदसः ।
घटचतुष्के पादशेषेऽस्मिन् पूते पुनः क्वाथनाद् घने ९०
आक्षिकं क्षिपेत्सुसूक्ष्मं रजः सेव्यावुपत्तगगैरिकम् ।
चंदनद्वयरोध्रपुंड्राह्वे यष्ट्याह्वलाक्षाजनद्वयम् ॥ ९१ ॥
धातकीकट्फलद्विनिशात्रिफलाचतुर्जातजोंगकम् ।
मुस्तमंजिष्ठान्यग्रोधप्ररोहमांसीयवासकम् ॥९२॥
पद्मकैलेयसमंगाश्च शीते तस्मिंस्तथा पालिका पृथक् ।
जातिपत्रिकां सजातीफलां मह्लवंगकंकोल्लकाम् ॥ ९३ ॥
[2]स्फटिकशुभ्रसुरभिकर्पूरकुडवं च तत्रावपेत्ततः ।
कारयेद्गुटिकाः सदा चैता धार्या मुखे सद्गदापहाः ॥ ९४ ॥

कषायादि :—

[3]क्वाथौषधव्यत्यययोजनेन
तैलं पचेत्कल्पनमाऽन्यथैव ।

---

१ बाण :—नीलसहचरः "कटसरैया" इति लोके ।

२ स्फटिकेत्यादि कर्पूरविशेषणम् । ३ क्वाथेति-खदिर गुटिकाया क्वाथस्य ये द्वे औषधे खदिरसारारिमेदसाख्ये तयो र्व्यत्यययोजनेन, खदिरादिगुटिकायां खदिरसारस्यद्वैतुलेऽरिमेदसस्तुलैका प्रोक्ता, अत्रतु तयोर्वैपरीत्ययोजना-खदिर सारस्यैका तुला अरिमेदसश्च द्वे तुले ।

सर्वास्यरोगोद्धृतये सदाहु-
र्दन्तस्थिरत्वे त्विदमेव मुख्यम् ॥ ९५ ॥

दन्तदार्ढ्यकरायोगाः :—

खदिरेणैता गुटिका-
स्तैलमिदं चारिमेदसा प्रथितम् ।
अनु शीलयन् प्रतिदिनं
स्वस्थोऽपि दृढद्विजो भवति ॥ ९६ ॥

कवलग्रहः :—

क्षुद्रागुडूचीसुमनः प्रवाल-
दार्वीयवासत्रिफलाकषायः ।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं
सर्वामयान् वक्त्रगतान्निहन्ति ॥ ९७ ॥

प्रतिसारणम्—

पाठादार्वीत्वककुष्ठमुस्तासमंगा-
तिक्तापीताङ्गा[1]रोध्रतेजोवतीनाम् ।
चूर्णः सक्षौद्रो दंतमासार्तिकंडू-
पाकस्रावाणां नाशनो घर्षणेन ॥ ९८ ॥

कालकश्चूर्णः :—

गृहधूमतार्क्ष्यपाठाव्योषक्षाराग्न्ययोवरातेजोह्वैः ।
मुखदंतगलविकारे सक्षौद्रः कालको विधार्यश्चूर्णः ॥ ९९ ॥

पीतकचूर्णः :—

दार्वीत्वक्मधुद्भवमनःशिलायावशूकहरितालैः ।
धार्यः पीतकचूर्णो दंतास्यगलामये समधुःाज्यः ॥ १०० ॥

---

१ पीताङ्गा-हरिद्रा ।

रसक्रिया—

[illegible] ।
[illegible] रसक्रिया [illegible] ॥ १०१ ॥

पथ्या प्रयोग :—

[1]गोमूत्रभावितविलीनविशुद्धधाम्नां
पथ्यां जलं मिशि[illegible]नाम् ।
अत्तारं [illegible] वक्त्ररोगाः
[illegible] मृगमिव न स्पृश[illegible] ॥ १०२ ॥

क्वाथ :—

[illegible]पटोलमुस्त-
हरीतकी[illegible]रोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ १०३ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
त्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम् ।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति
मुखस्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ १०४ ॥

क्वथितरस :—

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतः सगैरिकः ।
आस्यस्थः समधुर्मुखपाकनाडीव्रणापहः ॥ १०५ ॥
पटोलनिम्बयष्ट्याह्वधात्रीजात्यरिमेदजाम् ।
खदिरस्य वरायाश्च पृथगेवं प्रकल्पना ॥ १०६ ॥

---

१ गोमूत्रेत्यादि पथ्याविशेषणम् । अत्तारं भक्षयितारम् । जलं बालकम् । मिशिः शतपुष्पा ।

गण्डूष :—

खदिरायोवरापार्थमदयंत्यहिमारकैः।
गंडूषोऽम्बुश्रृतैर्धार्यो दुर्बलद्विजशांतये ॥ १०७ ॥

रुधिर स्रावणम् —

मुखदंतमूलगलजाः प्रायो रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः।
तस्मात्तेषामसकृद् रुधिरं विस्रावयेद्दुष्टम् ॥ १०८ ॥

विरेकादि —

कायशिरसोर्विरेको वमनं कवलग्रहाश्च कटुकतिक्ताः।
प्रायः शस्तं तेषां कफरक्तहरं तथा कर्म ॥ १०९ ॥

भोजनादि —

यवतृणधान्यं भक्तं विदलैः क्षारोषितैरपस्नेहाः।
यूषा भक्ष्याश्च हिता यच्चान्यच्छ्लेष्मनाशाय ॥ ११० ॥

मुखरोगेषुशीघ्रमुपक्रम :—

प्राणानिलपथसंस्थाः श्वसितमपि निरुंधते प्रमादवतः।
कंठामयाश्चिकित्सितमतो द्रुतं तेषु कुर्वीत" ॥ १११ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शिरोरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।।

शिरोरोगहेतव :—

"धूमातपतुषाराबुक्रीडातिस्वप्नजागरैः ।
उत्स्वेदाधिपुरोवातशाष्पनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥
अत्यंबुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः ।
[१]उपधानमृजाभ्यंगद्वेषाधःप्रततेक्षणैः ॥ २ ॥
असात्म्यगंधदुष्टामभाष्याद्यैश्च शिरोगताः ।
जनयंत्यामयान् दोषाः
तत्र मारुतकोपतः ॥ ३ ॥
निस्तुद्यते भृशं शंखौ [२]घाटा संभिद्यते तथा ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च पततीवातिवेदनम् ॥ ४ ॥
बाध्येते स्वनत. श्रोत्रे निष्कृष्येत इवाक्षिणी ।
घूर्णतीव शिरः सर्वं संधिभ्य इव मुच्यते ॥ ५ ॥
स्फुरत्यतिशिराजालं कंधराहनुसंग्रहः ।
प्रकाशासहता घ्राणस्रावोऽकस्माद्व्यथाशमौ ॥ ६ ॥
मार्दवं मर्दनस्नेहस्वेदबंधैश्च जायते ।
शिरस्तापोऽयम्,
अर्धे तु मूर्ध्नः सोऽर्धावभेदकः ॥ ७ ॥
पक्षात्कुप्यति मासाद्वा स्वयमेव च शाम्यति ।
अतिवृद्धस्तु नयनं श्रवणं वा विनाशयेत् ॥ ८ ॥

---

१ उपधानं "तकिया" इतिलोके । मृजाशुद्धिः । बाष्पमश्रु । २ घाटा ग्रीवापश्चाद्भागः ।

शिरोभितापे पित्तोत्थे शिरोधूमायनं ज्वर. ।
स्वेदोक्षिदहनं मूर्च्छा निशि शीतैश्च मार्दवम् ॥ ९ ॥
"अरुचिः कफजे मूर्ध्नो गुरुस्तिमितशीतता ।
शिरानिस्पंदतास्यं रुङ्मंदाह्न्यधिका निशि ॥ १० ॥
तद्वाशून्याक्षिकूटत्वं कर्णकंडूयनं वमि.,
रक्ताद् पित्ताधिकरुजः,
सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥

क्रिमिजशिरोरोगलक्षणम् —

[1]संकीर्णभोजनैर्मूर्ध्नि क्लेदिते रुधिरामिषे ।
कोपिते संनिपाते च जायंते मूर्ध्नि जंतवः ॥ १२ ॥
शिरसस्ते पिबंतोऽस्रं घोराः कुर्वंति वेदनाः ।
पित्तविभ्रमजननीर्ज्वरः कासो बलक्षयः ॥ १३ ॥
रौक्ष्यशोफौ व्यधच्छेददाहस्फुटनपूतिताः ।
कपाले तालुशिरसोः कंडूः शोषःप्रमीलकः ॥ १४ ॥
ताम्राच्छसिंघाणकता कर्णनादश्च जंतुजे ।,,
वातोल्वणाः शिरःकंपं तत्संज्ञं कुर्वते मलाः ॥ १५ ॥

शंखक लक्षणम् —

पित्तप्रधानैर्वाताद्यैः शंखे शोफः सशोणितैः ।
तीव्रदाहरुजारागप्रलापज्वरतृड्भ्रमाः ॥ १६ ॥
तिक्तास्यः पीतवदनः क्षिप्रकारी स शंखकः ।
त्रिरात्राज्जीवितं हंति सिध्यत्यप्याशुसाधितः ॥ १७ ॥

सूर्यावर्त लक्षणम्—

पित्तानुबद्धः शंखाक्षिभ्रूललाटेषु मारुतः ।
रुजं [2]सस्पंदनां कुर्यादनुसूर्योदयोदयाम् ॥ १८ ॥

---

१ सङ्कीर्णभोजनैर्दुष्टभोजनैः । २ स्पन्दनं दोषच्यवनम् ।

आमश्याह्नं विवर्धिष्णुः क्षुद्वतः सा विशेषतः ।
¹अव्यस्थितशीतोष्णसुखा धाम्यत्यतः परम् ॥ १९ ॥
सूर्यावर्तः स,

इत्युक्ता दश रोगाः शिरोगताः ।

शिरःकपाल रोगाः :—

शिरस्येव च वर्धन्ते कपाले व्याधयो नव ॥ २० ॥

उपशीर्षक लक्षणम्—

कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते ।
सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम्, ॥ २१ ॥
यथादोषोदयं ब्रूयात् पिटिकार्बुदविद्रधीन् ।

पिटिका :—

कपाले क्लेदबहुलाः पित्तासृक्श्लेष्मजंतुभिः ॥ २२ ॥
कपुसिद्धार्थकनिभाः पिटिकाः स्युररुंषिकाः ।

दारुण रोग :—

कण्डूकेशच्युतिस्वापरौक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः ॥ २३ ॥
सुसूक्ष्मं कफवाताभ्यां विद्याद्दारुणकं तु तत् ।

इन्द्रलुप्तरोग :—

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ॥ २४ ॥
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ।
रोमकूपान् रुणद्ध्यस्य ²तेनान्येषामसम्भवः ॥ २५ ॥
तादिन्द्रलुप्तं रुढ्यां च प्राहुश्चाचेति चापरे ।

खलतिरोग :—

खलतेरपि जन्मैवं मदनं तत्र तु क्रमात् ॥ २६ ॥

---

१ अव्यस्थितेति-कदाचित् शीतेन कदाचिदुष्णेन सुखंभवतीत्यत्र व्यवस्था नास्ति । २ अन्येषां रोम्णाम् ।

सा वातादग्निदग्धाभा पित्तात्स्विन्नशिरावृता ।
कफाद्घनत्वग्वर्णाश्च यथास्वं निर्दिशेत् त्वचि ॥ २७ ॥
दोषैः सर्वाकृतिः सर्वैरसाध्या सा नखप्रभा ।
दग्धाग्निनेव निर्लोमा सदाहा या च जायते ॥ २८ ॥

पलितरोग :—

शोकश्रमक्रोधकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।
केशान् सदोषः पचति पलितं संभवत्यतः ॥ २९ ॥
तद्वातात्स्फुटितं श्यावं खरं रूक्षं जलप्रभम् ।
पित्तात्सदाहं पीताभं, कफात् स्निग्धं विवृद्धिमत् ॥ ३० ॥
स्थूलं सुशुक्लं, सर्वैस्तु विद्याद्व्यामिश्रलक्षणम् ।

अन्यःपलितरोग :—

शिरोरुजोद्भवं चान्यद्विवर्णं स्पर्शनासहम् ॥ ३१ ॥
असाध्या संनिपातेन खलतिः पलितानि च ।

रसायनप्रयोग :—

[1]शरीरपरिणामोत्थान्यपेक्षेत रसायनम् ॥ ३२ ॥

---

१ शरीरस्य परिणामेनोत्थानि वार्धक्यजातानि पलितानि ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

वातजशिरोरोगचिकित्सा —

"शिरोऽभितापेऽनिलजे वातव्याधिविधिं चरेत् ।
घृताभ्यक्तशिरा रात्रौ पिबेदुष्णपयोऽनुपः ॥ १ ॥
माषान् मुद्गान् कुलत्थान्वा खादेदुष्णान् घृतान्वितान् ।
तैलं तिलानां कल्कं वा क्षीरेण सह पाययेत् ॥ २ ॥
पिण्डोपनाहस्वेदाश्च मांसधान्यकृता हिताः ।
वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम् ॥ ३ ॥
स्निग्धं नस्यं तथा धूमः शिरःश्रवणतर्पणम् ।
वरणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्धोदकं पचेत् ॥ ४ ॥
क्षीरावशिष्टं तच्छीतं मथित्वा [1]सारमाहरेत् ।
ततो मधुरकैः सिद्धं नस्यं तत्पूजितं हविः ॥ ५ ॥
वर्गेऽत्र पक्वं क्षीरे च पेयं सर्पिः सशर्करम् ।
[2]कार्पासमज्जात्वङ्मुस्तासुमनःकोरकाणि च ॥ ६ ॥
नस्यमुष्णाम्बुपिष्टानि सर्वमूर्धरुजापहम् ।

पित्तरक्तोत्थेषु नादि

शर्कराकुङ्कुमशृतं घृतं पित्तासृगन्वये ॥ ७ ॥
प्रलेपः सघृतैः कुष्ठकुटिलोत्पलचंदनैः ।
वातोद्रेकभयाद्रक्तं न चास्मिन्नवसेचयेत् ॥ ८ ॥

---

१ सारं घृतम् । अत्र वरणादौ गणे । २ सुमनः कोरकं जाति कलिका । कुटिलं तगरम् ।

इ यशांतौ चले [1]दाहः, कफे चोष्णं यथोदितम् ।
अर्धावभेदके प्येवं यथादोषान्वयात्क्रिया ॥ ९ ॥
शिरीषबीजापामार्गमूलं नस्यं बिडान्वितम् ।
स्थिरारसो वा लेपे तु प्रपुन्नाटोऽम्लकल्कितः ॥ १० ॥
सूर्यावर्ते तु तस्मिंस्तु सिरयापहरेदसृक् ।

पित्तोत्थशिरोरोगचिकित्सा—

शिरोऽभितापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ॥ ११ ॥
शीताः शिरोमुखालेपसेकशोधनबस्तयः ।
जीवनीयशृते क्षीरसर्पिषी पाननस्ययोः ॥ १२ ॥
कर्तव्यं रक्तजेऽप्येतत्, प्रत्याख्याय च शंखके ।

कफजशिरोरोगचिकित्सा—

श्लेष्माभितापे जीर्णाज्यस्नेहितः कटुकैर्वमेत् ॥ १३ ॥
स्वेदप्रलेपनस्याद्या रूक्षतीक्ष्णोष्णभेषजैः ।
शस्यंते चोपवासोऽत्र निचये मिश्रमाचरेत् ॥ १४ ॥

क्रिमिजशिरोरोगचिकित्सा—

कृमिजे शोणितं नस्यं तेन मूर्छंति जंतवः ।
मत्ताः शोणितगंधेन निर्यांति घ्राणवक्त्रयोः ॥ १५ ॥
सुतीक्ष्णनस्यधूमाभ्यां कुर्यान्निर्हरणं ततः ।
विडंगस्वर्जिकादंतीहिंगुगोमूत्रसाधितम् ॥ १६ ॥
[2]कटुनिंबेंगुदीपीलुतैलं नस्यं पृथक् पृथक् ।
अजामूत्रद्रुतं नस्ये [3]कृमिजित्कृमिजित्परम् ॥ १७ ॥
पूतिमत्स्ययुतैः कुर्याद् धूमं नावनभेषजैः ।
कृमिभिः पीतरक्तत्वाद्रक्तमत्र न निर्हरेत् ॥ १८ ॥

---

१ इत्यशान्तौ इत्थं चिकित्साकरणेनानुपशमे चले वायौ दाहः । २ कटुतैलं सर्षपतैलम् । ३ कृमिजित् विडङ्गं, कृमिजित् क्रिमिनाशकम् ।

वाताभितापविहितः कंपे दाहादिना क्रमः ।

उपशीर्षकचिकित्सा —

नवेजन्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके ॥ १९ ॥
वातघ्नावधिक्रियां, पक्वे कर्म विद्रधिचोदितम् ।
आमपक्वे यथायोग्यं विद्रधीपिटिकार्बुदे ॥ २० ॥

अरुंषिकाचिकित्सा—

अरुंषिका जलौकोभिर्हृतास्रा निम्बवारिणा ।
सिक्ता प्रभूतलवणैर्लिंपेदश्वशकृद्रसैः ॥ २१ ॥
पटोलनिम्बपत्रैर्वा सहरिद्रैः सुकल्कितैः ।
गोमूत्रजीर्णपिण्याककृ[1]कवाकुमलैरपि ॥ २२ ॥
कपालभृष्टं कुष्ठं वा चूर्णितं तैलसंयुतम् ।
रुंषिकालेपनं कंङ्कुलेरदार्हीनिशायुतम् ॥ २३ ॥
मालतीचित्रकाश्वघ्ननक्तमालैश्च साधितम् ।
[2]चाचारुंषिकयोस्तैलमभ्यंगः क्षुरघृष्टयोः ॥ २४ ॥
अथातो शिरसः शुद्ध्यै यतेत वमनादिभिः ।

दारुणकचिकित्सा—

विध्येच्छिरां दारुणके ललाटस्थां शीलयेन्मृजाम् ॥ २५ ॥
नावनं मूर्ध्नि बस्तिं च लेपयेच्च समाक्षिकैः ।
प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससर्षपैः ॥ २६ ॥
लाक्षारम्याक[3]पत्रैडगजधात्रीफलैस्तथा ।
कोरदूषतृणक्षारवारिप्रक्षालनं हितम् ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा—

इंद्रलुप्ते यथासन्नं सिरां विद्ध्वा प्रलेपयेत् ।
प्रच्छाय गाढं कासीसमनोह्वातुत्थकोषणैः ॥ २८ ॥

---

१ कृकवाकुः कुक्कुटः । २ चाचा इन्द्रलुप्तः । ३ रम्याकश्चतुरङ्गुलः ।
४ एडगजश्चक्रमर्दः । यन्दं कैवर्तमुस्तकम् ।

वन्ध्यामरलम्भ्यां वा गुंजामूलफलैस्तथा ।
तथा लांगलिकामूलैः करवीररसेन वा ॥ २९ ॥
मर्शाद्रक्षुद्रवार्ताकिस्वरसेन रसेन वा ।
धत्तूरकस्य पत्राणां भल्लातकरसेन वा ॥ ३० ॥
अथवा माक्षिककहविस्तिलपुष्पत्रिकण्टकैः ।
तैलाक्ता हस्तिदंतस्य मषी वा चौषधं परम् ॥ ३१ ॥
शुक्लरोमोद्गमे तद्वन्मषी मेषविषाणजा ।
वर्जयेद्वारिणा सेकं यावद्रोमसमुद्भवः ॥ ३२ ॥

खलत्यादिरोगचिकित्सा—

खलतौ पलिते वल्यां हरिल्लोम्नि च शोधितम् ।
नस्यवमनशिरोभ्यंगप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥ ३३ ॥
सिद्धं तैलं बृहत्याद्यैर्जीवनीयैश्च नावनम् ।
मार्गं वा निम्बजं तैलं क्षीरभुङ्नावयेद्यतिः ॥ ३४ ॥
नीलीशिरीषकोरंटभृंगस्वरसभावितम् ।
शैलवक्षतिलरामाणां बीजं काकाण्डकीसमम् ॥ ३५ ॥
पिष्ट्वाऽजपयसा लोहाल्लिप्तादर्कांशुतापितात् ।
तैलं श्रुतं क्षीरभुजो नावनात् पलितान्तकृत् ॥ ३६ ॥
क्षीरात्सहचराद् भृंगरजसः सौरसाद्रसात् ।
प्रस्थैस्तैलस्य कुडवः सिद्धो यष्टीपलान्वितः ॥ ३७ ॥
नस्यं शैलोद्भवे भांडे शृंगे मेषस्य वा स्थितः ।
क्षीरेण श्लक्ष्णपिष्टौ वा दुग्धिकाकरवीरकौ ॥ ३८ ॥
उत्पाट्य पलितं देयावाशये पलितापहौ ।
क्षीरं प्रियालं यष्ट्याह्वं जीवनीयो गणस्तिलाः ॥ ३९ ॥
कृष्णाः प्रलेपो वक्त्रस्य [१]हरिलोमवलीहितः ।
तिलाः सामलकाः पद्मकिंजल्को मधुकं मधु ॥ ४० ॥
बृंहयेच्च रजेच्चैतत् केशान्मूर्धप्रलेपनात् ।
मांसी कुष्ठं तिलाः कृष्णाः सारिवा नीलमुत्पलम् ॥ ४१ ॥

---

१ हरिलोम इन्द्रलुप्तम् ।

क्षौद्रं च क्षीरी-द्दानि केशसंवर्धनं परम् ।
अयोरजो भृङ्गरजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ॥ ४२ ॥
स्थितमिक्षुरसे मासं समूलं पलितं रजेत् ।
माषकोद्रवधान्याम्लंमंवागूस्त्रिदिनोपिता ॥ ४३ ॥
लोहशुक्लोत्कटा[१] पिष्टा बलाकामपि रंजयेत् ।
प्रपौंडरीकमधुकपिप्पलीचदनोत्पलैः ॥ ४४ ॥
सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यंजनेन च ।
सर्वान् मूर्धगदान् हंति पलितानि च शीलितम् ॥ ४५ ॥
वरीजीवंतिनिर्यासपयोभिर्यमकं पचेत् ।
जीवनीयैश्च तत्रस्यं सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥ ४६ ॥

मायूरंघृतम् –

मयूरं पक्षपित्तांत्रपादविट्तुंडवर्जितम् ।
दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैर्युतम् ॥ ४७ ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।
कल्कितैर्मधुरद्रव्यैः सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥ ४८ ॥
तदभ्यासीकृतं पानबस्त्यभ्यंजननावनैः ।

महामायूरम्—

[२]एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ।
जीवंतीत्रिफलामेदामृद्वीकादिपरूपकैः ॥ ५० ॥
समंगाचविकाभार्गीकाश्मरीकर्कटाह्वयैः ।
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमुस्तकैः ॥ ५१ ॥
मृणालबिसखर्जूरयष्टीमधुकजीवकैः ।
शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुगैः ॥ ५२ ॥

---

१ अत्र "लोहकुष्ठोत्कटा" इति पाठान्तरम् । "लोहशुक्तोत्कटा" इत्यपि पाठान्तरम् । २ एतेनैव कषायेण मयूरदशमूलादिकषायेण ।

दूर्वाश्वदंष्ट्रर्षभकशृंगाटककसेरुकैः ।
रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशठिपौष्करैः ॥ ५३ ॥
पुनर्नवातवक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ।
मधूकाक्षोटवातामसुंजाताभिषुकैरपि ॥ ५४ ॥
महामायूरमित्येतन्मायूरादधिकं गुणैः ।
धात्विन्द्रियस्वरभ्रंशश्वासकासादितापहम् ॥ ५५ ॥
योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् ।
आखुभिः कर्कटैर्हंसैः शशैश्चेति प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥
जत्रूर्ध्वजानां व्याधीनामेकत्रिंशच्छतद्वयम् ।
परस्परमसंकीर्णं विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ ५७ ॥

शिरोरक्षायां तत्परः स्यात्—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः ।
मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥ ५८ ॥
सर्वेंद्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः ।
तेन तस्योत्तमांगस्य रक्षायामादृतो भवेत्" ॥ ५९ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो व्रणविज्ञानीयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

व्रणस्यद्वैविध्यम्—

व्रणो द्विधा निजागंतुदुष्टशुद्धविभेदतः[1] ।
निजो दोषैः शरीरोत्थैरागंतुर्बाह्यहेतुजः ॥ १ ॥
दोषैरधिष्ठितो दुष्टः [2]शुद्धस्तैरनधिष्ठितः ।

---

१ निजागन्तुभेदाद्दुष्टशुद्धभेदाच्च व्रणो द्विविधः । २ तैर्दोषैरनधिष्ठितः शुद्धो व्रणः ।

दुष्टव्रणविज्ञानम्—

[1]संवृतत्वं विवृतता काठिन्यं मृदुतापि वा ॥ २ ॥
अत्युत्सन्नावसन्नत्वमत्यौष्ण्यमतिशीतता ।
रक्तत्वं पांडुता कार्ष्ण्यं पूतिपूयपरिस्रुतिः ॥ ३ ॥
पूतिमाससिरास्नायुच्छन्नतोत्संगितातिरुक् ।
संरंभदाहश्वयथुकंड्वादिभिरुपद्रुतिः ॥ ४ ॥
दीर्घकालानुबंधश्च विद्याद्दुष्टव्रणाकृतिम् ।
स पंचदशधा दोषैः सरक्तैः
तत्र मारुतात् ॥ ५ ॥
श्यावः कृष्णोऽरुणो भस्मकपोतास्थिनिभोऽपि च ।
मस्तुमांसपुलाकाम्बुतुल्यतन्वल्पसंस्रुतिः ॥ ६ ॥
निर्मांसस्तोदभेदाढ्यो रूक्षश्चटचटायते ।,,
"पित्तेन क्षिप्रजः पीतो नीलः कपिलपिंगलः ॥ ७ ॥
मूत्रांकिशुकभस्माम्बुतैलाभोष्णबहुस्रुतिः ।
क्षारोक्षितक्षतसमव्यथो रागोष्मपाकवान्,, ॥ ८ ॥
"कफेन पाडुः कंडूमान् बहुश्वेतघनस्रुतिः ।
[3]स्थूलौष्ठः कठिनः स्नायुसिराजालस्ततोऽल्परुक्" ॥ ९ ॥
"प्रवालरक्तो रक्तेन सरक्तं पूयमुद्गिरेत् ।
वाजिस्थानसमो गन्धे युक्तो लिंगैश्च पैत्तिकैः, ॥ १० ॥
द्वाभ्यां त्रिभिश्च सर्वैश्च विद्याल्लक्षणसंकरात् ।

शुद्धव्रणः—

जिह्वाप्रभो मृदुः श्लक्ष्णः श्यावौष्ठपिटिकः समः ॥ ११ ॥

---

१ संवृतत्वमल्पावकाशयुक्तत्वम् । अत्युत्सन्नत्वमत्युन्नतत्वम् । अत्यवसन्नत्वमतिनिम्नत्वम् । उत्संगितःकोटरवान् । संरम्भः शोथः । पञ्चदशधापृथग्दोषैस्त्रयः, द्वन्द्वजास्त्रयः, सन्निपातेनैकः । एवं सप्त । सर्वेष्वेतेषु रक्तान्वयात्संकलनया चतुर्दश । केवलेन रक्तेनैकः । इति पञ्चदश । २ पुलाकः तुच्छधान्यम् । ३ स्थूलौष्ठः स्थूलप्रान्तः ।

किंचिदुन्नतमध्यो वा व्रणः शुद्धोऽनुपद्रवः ।

व्रणाधिष्ठानानि—

त्वगामिषशिरास्नायुसंध्यस्थीनि व्रणाशयाः ॥ १२ ॥
कोष्ठो मर्म च तान्यष्टौ दुःसाध्यान्युत्तरोत्तरम् ।

साध्यव्रणाः—

सुसाध्यः सत्त्वमामाग्निवयोबलवति व्रणः ॥ १३ ॥
वृत्तो दीर्घस्त्रिपुटकश्चतुरस्राकृतिश्च यः[1] ।
तथा स्फिक्पायुमेढ्रौष्ठपृष्ठान्तर्वक्त्रगण्डयोः ॥ १४ ॥

कृच्छ्रसाध्यव्रणाः—

कृच्छ्रसाध्योऽक्षिदशननासिकापाङ्गनाभिषु ।
सेवनीजठरश्रोत्रपार्श्वकक्षास्तनेषु च ॥ १५ ॥
फेनपूयानिलवहः शल्यवानूर्ध्वनिर्गमो ।
भगंदरोऽन्तर्वदनस्तथा कट्यस्थिसंश्रितः ॥ १६ ॥
कुष्ठिना विषजुष्टाना शोषिणा मधुमेहिनाम् ।
व्रणा कृच्छ्रेण सिद्ध्यन्ति येषां च स्युर्व्रणे व्रणाः ॥ १७ ॥

असाध्यव्रणाः—

नैव सिद्ध्यति वीसर्पज्वरातीसारकासिनाम् ।
पिपासूनामनिद्राणां श्वासिनामविपाकिनाम् ॥ १८ ॥
भिन्ने शिरःकपाले वा मस्तुलुङ्गस्य दर्शने ।

साध्यस्याप्यसाध्यता—

स्नायुक्लेदाच्छिराच्छेदाद्गांभीर्यात्कृमिभक्षणात् ॥ १९ ॥
अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वादतर्कितात्[2] ।
मिथ्याबंधातिस्नेहाद्रौक्ष्याद्रोमातिघट्टनात् ॥ २० ॥

---

१ त्रिपुटस्त्रिकोणः । २ अतर्कितात्–अरक्षितात् ।

क्षोभादशुद्धकोष्ठत्वात्सौहित्यादतिकर्षणात् ।
मद्यपानाद्दिवास्वापाद् व्यवायाद्रात्रिजागरात् ॥ २१ ॥
व्रणो मिथ्योपचाराच्च नैव साध्योऽपि रोहति ।

रोहत्स्यलक्षणम्—

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ २२ ॥
स्थिराश्चिपिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ।

व्रणचिकित्सा

अथाऽत्र शोफावस्थाया यथामन्नं विशोधनम् ॥ २३ ॥
योज्यं, शोफो हि शुद्धानां व्रणश्चाशु प्रशाम्यति ।
कुर्याच्छीतोपचारं तु शोफावस्थस्य संततम् ॥ २४ ॥
दोषाग्निरग्निवत्तेन प्रयाति सहसा शमम् ।
शोफे व्रणे च कठिने विवर्णे वेदनान्विते ॥ २५ ॥
विषयुक्ते विशेषेण जलौकाद्यैर्हरेदसृक् ।
दुष्टास्रेऽपगते सद्यः शोफरागरुजां शमः ॥ २६ ॥
हृते हृते च रुधिरे सुशीतैं स्पर्शवीर्ययोः ।
सुश्लक्ष्णैस्तदहःपिष्टैः क्षीरेक्षुस्वरसद्रवैः ॥ २७ ॥
शतधौतघृतोपेतैर्मुहुरन्यैरशोषिभिः[१]
प्रतिलोमं हितो लेपः सेकाभ्यङ्गाश्च तत्कृताः ॥ २८ ॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ।
प्रदेहो भूरिसर्पिर्भिः शोफनिर्वापणः परम् ॥ २९ ॥
वातोल्बणानां स्तब्धानां कठिनानां महारुजाम् ।
स्रुतासृजां च शोफानां व्रणानामपि चेदृशाम् ॥ ३० ॥
आनूपवेसवाराद्यैः स्वेदः[२] सौमास्तिलाः पुनः ।
भृष्टा निर्वापिताः क्षीरे तत्पिष्टा दाहरुग्घराः ॥ ३१ ॥

---

१ अशोषिभिरशोषकारकैः । २ सौमा अतसीसहिताः ।

स्थिरान् मंदरुजः शोफान् स्नेहैर्वातकफापहैः ।
अभ्यज्य स्वेदयित्वा च, वेणुनाड्या शनैः शनैः ॥ ३२ ॥
विम्लापनार्थं मृद्नीयात् तलेनांगुष्ठकेन वा ।
यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३३ ॥
विलीयते स चेन्नैवं ततस्तमुपनाहयेत् ।
अविदग्धस्तथा शांति विदग्धः पाकमश्नुते ॥ ३४ ॥
सकोलतिलवेल्लोमा दध्यम्ला सक्तुपिंडिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणा कोष्णा शस्तोपनाहने ॥ ३५ ॥
सुपक्वे पिंडिते शोफे पीडनैरुपपीडिते ।
दारणं दारणार्हस्य सुकुमारस्य चेष्यते ॥ ३६ ॥

व्रणदारणौषधानि—

गुग्गुल्वतसिगोदंतस्वर्णक्षीरीकपोतविट् ।
क्षारौषधानि क्षाराश्च पक्वशोफविदारणम् ॥ ३७ ॥
पूयगर्भानणुद्वारान् सोत्संगान्मर्मगानपि ।
निःस्नेहैः पीडनद्रव्यैः समंतात्प्रतिपीडयेत् ॥ ३८ ॥
शुष्यंतं समुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति ।
न मुखे चैनमालिंपेत् तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ३९ ॥
कलाययवगोधूममाषमुद्गहरेणवः ।
द्रव्याणां पिच्छिलानां च त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ॥ ४० ॥
[1]सप्तसु क्षालनाद्येषु सुरसारग्वधादिकौ ।
भृशं दुष्टे व्रणे योज्यौ मेहकुष्ठव्रणेषु च ॥ ४१ ॥
अथवा क्षालनं क्वाथः पटोलीनिंबपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ ४२ ॥
पटोलीतिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दंतीनिशाद्वयम् ।
निंबपत्राणि चालेपः सपटुर्व्रणशोधनः ॥ ४३ ॥

---

१ सप्तसुक्षालनाद्येषु—क्षालनमालेपो घृतं तैलं रसक्रिया चूर्णोवर्तिश्चेति ।

व्रणान् विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान् संधिमर्मगान् ।
कृतया त्रिवृतादंतीलांगलीमधुसैंधवैः ॥ ४४ ॥

वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ४५ ॥

निर्वापयेद् भृशं शीतैः पित्तरक्तविषोल्बणान् ।
शुष्काल्पमांसे गंभीरे व्रण¹ उत्सादनं हितम् ॥ ४६ ॥

न्यग्रोधपद्मकादिभ्यामश्वगंधाबलातिलैः ।
अन्नान्मांसादमांसानि विधिनोपहितानि च ॥ ४७ ॥

मांसं मांसादमांसेन वर्धते शुद्धचेतसः ।
उत्सन्नमृदुमांसानां व्रणाना²मवसादनम् ॥ ४८ ॥

जातीमुकुलकासीसमनोह्वालपुराग्निकैः ।
"उत्सन्नमांसान् कठिनान् कंडूयुक्तांश्चिरोत्थितान् ॥ ४९ ॥
व्रणान्सुदुःखशोध्यांश्च शोधयेत्क्षारकर्मणा ।"
स्रवतोऽश्मरिजा मूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः ॥ ५० ॥

छिन्नाश्च संधयो येषां यथोक्तैर्ये च शोधनैः ।
शोध्यमाना न शुद्धयन्ति शोध्याः स्युस्तेऽग्निकर्मणा ॥ ५१ ॥

व्रणरोपणम्—

शुद्धानां रोपणं योज्यमुत्सादाय यदीरितम् ।
अश्वगंधारु³हारोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका ॥ ५२ ॥

समंगाधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ।
अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ॥ ५३ ॥

कल्कं संरोहणं कुर्यात् तिलानां मधुकान्वितम् ।
स्निग्धोष्णतिक्तमधुरकषायत्वैः स सर्वजित् ॥ ५४ ॥

---

१ उत्सादनमुन्नत्यकरणम् । २ अवसादनं निम्नत्वकरणम् । ३ रुहा—दूर्वा ।

सक्षौद्रनिंबपत्राभ्यां युक्तः संशोधनं परम् ।
[1]पूर्वाभ्यां सर्पिषा चासौ युक्तः स्याद्राशु रोपणः ॥ ५५ ॥

तिलवद्यवकल्कं तु केचिदिच्छंति तद्विदः ।
मारुतपित्तविषार्गतुगंभीरान्मोष्मणो व्रणान् ॥ ५६ ॥

क्षीररोपणभैषज्यश्रृतेनाज्येन रोपयेत् ।
रोपणौषधसिद्धेन तैलेन कफवातजान् ॥ ५७ ॥

कासीरोध्राभयासर्जत्रिद्रुराजनतुत्थकम् ।
चूर्णितं तैलमदनैर्युक्तं रोपणमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

समानां स्थिरमासानां त्वक्स्थाना चूर्ण ऽच्यते ।

त्वक्कारकाश्चूर्णाः—

ककुभोदुंबराश्वत्थजंबूकट्फलरोध्रजैः ॥ ५९ ॥

त्वचमाशु निगृह्णति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः ।
लाक्षामनोह्वामंजिष्ठाहरितालनिशाद्वयैः ॥ ६० ॥

प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परम् ।
कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ॥ ६१ ॥

लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परम् ।
दग्धो [2]वारणदंतोतर्धूमं तैलं रसांजनम् ॥ ६२ ॥

रोमसंजननो लेपस्तद्वत्तैलपरिप्लुता ।
चतुष्पात्खररोमास्थित्वक्शृंगखुरजा मषी ॥ ६३ ॥

व्रणिनः शस्त्रकर्मोक्तं पथ्यापथ्यासमादिशेत् ।
[3]द्वेपंचमूले वर्गश्च वातघ्नो वातिके हितः ॥ ६४ ॥

---

१ पूर्वाभ्यां क्षौद्रनिम्बपत्राभ्याम् । असौ-तिलकल्कः । २ वारणदन्तो गजदन्तः । तद्वत्रोमसंजननी । तैलपरिप्लुता चतुष्पात्खरादिजा मषी । ३ व्रणिनोनरस्य शस्त्रकर्मणि उक्तं पथ्यंपथ्यमपथ्यमपथ्यञ्च ।

व्रणशोधनादिघृतम्—

न्यग्रोधपद्मकाद्यो तु तद्वत्पित्तप्रदूषिते ।
आरग्वधादिः श्लेष्मघ्नः कफे मिश्रस्तु मिश्रके ॥
एभिः प्रक्षालनालेपघृततैलरसक्रियाः ।
चूर्णो वर्तिश्च संयोज्या व्रणे सप्त यथायथम् ॥ ६६ ॥

व्रणशोधनादिघृतम्—

जातीनिंबपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवा-
मंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः ।
सर्पिःसाध्यमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः क्लेदिनो
गंभीराः सरुजो व्रणाः सगतयः शुद्ध्यंति रोहंति च ॥ ६७ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सद्योव्रणप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

सद्योव्रणा अष्टधा—

"सद्योव्रणा ये सहसा संभवंत्यभिघाततः ।
अनंतैरपि तैरंगमुच्यन्ते गुष्टमष्टधा ॥ १ ॥
घृष्टावकृत्तविच्छिन्नप्रविलंबितपातितम् ।
विद्धं भिन्नं विदलितं

तेषांलक्षणानि—

तत्र घृष्टं लसीकया ॥ २ ॥
रक्तलेशेन वा युक्तं, सप्लोषं छेदनाद् स्रवेत् ।
अवगाढं ततः कृत्तं, विच्छिन्नं स्यात्ततोऽपि[1] च ॥ ३ ॥
प्रविलंबि सशेषेऽस्थि, पतितं पातितं तनोः ।
सूक्ष्मास्यशल्यविद्धं तु विद्ध' कोष्ठविवर्जितम्' ॥ ४ ॥
[2]भिन्नमन्यद्विदलितं मज्जरक्तपरिप्लुतम् ।
प्रहारपीडनोत्पेषात्सहास्थ्ना पृथुतां गतम् ॥ ५ ॥

चिकित्सा-सेकादि :—

सद्यः सद्योव्रणं सिंचेदथ यष्टयाह्वसर्पिषा ।
तीव्रव्यथं कवोष्णेन बलातैलेन वा पुनः ॥ ६ ॥

लेपादयः—

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्कालं विस्रुतस्य च ।
कषायशीतमधुरस्निग्धा लेपादयो हिताः ॥ ७ ॥

---

१ ततोघृष्टादवगाढं कृत्तम् । ततोऽपि कृत्तादपि अवगाढतरं विच्छिन्नम् ।
२ अन्यत्-कोष्ठेयद्विद्धं तद्भिन्नम् ।

घृतमधुप्रयोगः—

सद्योव्रणेष्वायतेषु संधनार्थं विशेषतः ।
मधुसर्पिश्च युंजीत पित्तघ्नाश्च हिमाः क्रियाः ॥ ८ ॥
ससंरंभेषु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
उपवासो हितं भुक्तं प्रततं रक्तमोक्षणम् ॥ ९ ॥
घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।
[1]तयोर्ह्यल्पं सवत्यस्रं पाकस्तेनाशु जायते" ॥ १० ॥
अन्यथं मस्र स्रवति प्रायशोऽन्यत्र विद्यते ।
ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥ ११ ॥
स्नेहपानपरीषेकस्वेदलेपोपनाहनम् ।
स्नेहवस्ति च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधितम् ॥ १२ ॥

सप्ताहादूर्ध्वंव्रणवत्क्रिया—

इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ।
सप्ताहादगतवेगे तु [2]पूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥ १३ ॥
प्रायः सामान्यकर्मेदं वक्ष्यते तु पृथक्पृथक् ।
घृष्टे रुजं निगृह्याशु व्रणे चूर्णानि याजयेत् ॥ १४ ॥
कल्कादीन्यवकृत्ते तु,
विच्छिन्नप्रविलंबिनोः ।
सीवनं विधिनोक्तेन बंधनं चानुपीडनम् ॥ १५ ॥

अस्फुटितनेत्रचिकित्सा—

असाध्यं स्फुटितं, [3]नेत्रमदीर्णं लंबते तु यत् ।
संनिवेश्य यथास्थानमव्याविद्धसिरं भिषक् ॥ १६ ॥
पीडयेत् पाणिना पद्मपलाशांतरितेन तत् ।
ततोऽस्य सेचने नस्ये तर्पणे च हितं हविः ॥ १७ ॥

---

१ तयोर्घृष्टविदलितयोः । एवविधिः पूर्वोक्तः । सिद्धेदित्यादिनोक्ताचिकित्सा ।
२. पूर्वोक्तं व्रणप्रतिषेधोक्तम् । ३. अदीर्णमस्फुटितम् ।

विपक्वमाजं यष्ट्याह्वजीवकर्षभकोत्पलैः ।
सपयस्कैः परं तद्धि सर्वनेत्राभिघातजित् ॥ १८ ॥
गलपीडावसन्नेऽक्ष्णि वमनोत्क्लेशनक्षवाः ।
प्राणायामोऽथवा कार्यः क्रिया च क्षतनेत्रवत् ॥ १६ ॥
कर्णे स्थानाच्च्युते स्यूते स्रोतस्तैलेन पूरयेत् ।
कृकाटिकायां छिन्नायां निर्गच्छत्यपि मारुते ॥ २० ॥
समं निवेश्य बध्नीयात् स्यूत्वा शीघ्रं निरंतरम् ।
आजेन सर्पिषा चाऽत्र परिषेकः प्रशस्यते ॥ २१ ॥
उत्तानोऽश्नानि भुंजीत शयीत च सुयंत्रितः ।
घाते शाखासु तिर्यक्स्थं गात्रे सम्यङ्निवेशिते ॥ २२ ॥
स्यूत्वा वेल्लितबधेन बध्नीयाद् घनवाससा ।
चर्मणा गोष्फणाबन्धः कार्यश्चासंगते[1] व्रणे ॥ २३ ॥
पादौ विलंबिमुष्कस्य प्रोक्ष्य नेत्रे च वारिणा ।
प्रवेश्य वृषणौ सीव्येत् सेवन्या तुन्नसञ्ज्ञया ॥ २४ ॥
कार्यश्च गोष्फणाबंधः कट्यामावेश्य पट्टकम् ।
स्नेहसेकं न कुर्वीत तत्र[2] विलद्यति हि व्रणः ॥ २५ ॥
कालानुसार्यगुर्वेलाजातीचदनपर्पटैः ।
शिलादार्व्यमृतातुत्थैः सिद्धं तैलं च रोपणम् ॥ २६ ॥
छिन्नां निःशेषतः शाखां दग्ध्वा तैलेन युक्तितः ।
बध्नीयात् कोशबधेन ततो व्रणवदाचरेत् ॥ २७ ॥
[3]कार्या शल्याहृते विद्धे भंगाद्दिदलिते क्रिया ।
शिरसोपहृते शल्ये वालवर्ति प्रवेशयेत् ॥ २८ ॥
मस्तुलुंगस्रुते क्रुद्धो हन्यादेनं चलोऽन्यथा[4] ।
व्रणे रोहति चैकैकं शनैरपनयेत्कचम् ॥ २६ ॥

---

१ असंगतेऽसंयुक्ते व्रणे चर्मणा गोफणाबन्धः कार्यः । २ तत्रस्नेहसेकमिति । ३ विद्धे-शल्येऽपहृते भङ्गाद्दिदलिते क्रिया कार्या । ४ अन्यथा बालवर्त्यप्रवेशात् । चलो वायुः ।

मस्तुलुंगस्रुतौ खादेन्मस्तिष्कानन्यजीवजान् ।
गल्ये हृतेंगादन्यस्मात्स्नेहवर्तिं निधापयेत् ॥ ३० ॥
दूरावगाढाः सूक्ष्मास्या ये व्रणाः स्रुतशोणिताः ।
सेचयेच्चक्रतैलेन सूक्ष्मनेत्रार्पितेन तान् ॥ ३१ ॥

कोष्ठभेद लक्षणम्—

भिन्ने कोष्ठेऽसृजा पूर्णे मूर्च्छाहृत्पार्श्ववेदनाः ।
ज्वरो दाहस्तृडाध्मानं भक्तस्यानभिनंदनम् ॥ ३२ ॥
मंगो विण्मूत्रमरुतां श्वासः स्वेदोक्षिरक्तता ।
लोहगंधित्वमास्यस्य स्याद् गात्रे च विगंधता, ॥ ३३ ॥
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
आध्मानेनाऽतिमात्रेण शूलेन च विहन्यते[१] ॥ ३४ ॥
पक्वाशयस्थे रुधिरे सशूलं गौरवं भवेत् ।
नाभेरधस्ताच्छीतत्वं खेभ्यो रक्तस्य चागमः ॥ ३५ ॥

अभिन्नाशयस्यापि रुधिरेण पूरणम्—

अभिन्नोप्याशयः सूक्ष्मैः स्रोतोभिरभिपूर्यते ।
असृजा स्यंदमानेन पार्श्वे मूत्रेण बस्तिवत् ॥ ३६ ॥

असाध्यता—

तत्रावलोहितं शीतपादोच्छ्वासकराननम् ।
रक्ताक्षं पाडुवदनमानद्धं च विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

कोष्ठभेदचिकित्सा—

आमाशयस्थे वमनं हितं, पक्वाशयाश्रये ।
विरेचनं निरूहं च निःस्नेहोष्णविशोधनैः ॥ ३८ ॥
यवकोलकुलत्थानां रसैः स्नेहविवर्जितैः ।
भुंजीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैंधवसंयुताम् ॥ ३९ ॥

---

१ विहन्यते व्यापद्यते म्रियत इत्यर्थः ।

अतिनिःस्रुतरक्तस्तु भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक् ।
विलग्नभिन्नांत्रभेदेन कोष्ठभेदो द्विधा स्मृतः ॥ ४० ॥
मूर्छादयोऽल्पाः प्रथमे, द्वितीये त्वतिबाधकाः ।
विलग्नांत्रः संशयी देही, भिन्नांत्रो नैव जीवति ॥ ४१ ॥
यथास्वं मार्गमापन्ना यस्य विण्मूत्रमारुताः ।
व्युपद्रवः स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥

अन्त्रप्रवेशमतम्—

अभिन्नमंत्रं निष्क्रांतं प्रवेश्यं न त्वतो[1]ऽन्यथा ।
उत्पंगिलशिरोग्रस्तं तदप्येके वदंति तु ॥ ४३ ॥

अन्त्रप्रवेशनप्रकारः—

प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांसुभिः ।
प्रवेशयेत्कृत्तनखो घृतेनाक्तं शनैः शनैः ॥ ४४ ॥
क्षीरेणार्द्रीकृतं शुष्कं भूरिसर्पिःपरिप्लुतम् ।
अंगुल्या प्रमृशेत्कंठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥ ४५ ॥
तथांत्राणि विशंत्यंतस्तत्कालं पीडयंति च ।
व्रणसौक्ष्म्याद्बहुत्वाद्वा कोष्ठमंत्रमनाविशत् ॥ ४६ ॥
[2]तत्प्रमाणेन जठरं पाटयित्वा प्रवेशयेत् ।
यथास्थानं स्थिते सम्यगंत्रे सीव्येदनुव्रणम् ॥ ४७ ॥
स्थानादपेतमादत्ते जीवितं, कुपितं च तत् ।
वेष्टयित्वाऽनु पट्टेन घृतेन परिषेचयेत् ॥ ४८ ॥
पाययेत्तं ततः कोष्णं चित्रातैलयुतं पयः ।
मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये ॥ ४९ ॥

---

१ न त्वतोऽन्यथा अतोऽभिन्नादन्यथा भिन्नमन्त्रं न प्रवेश्यम् । अन्येतु तदपि-भिन्नमपि उत्पंगिलानां शिरोभिर्ग्रस्तं मृत्वान्तः प्रवेश्यमिति वदन्ति । उत्पंगिलः "चींटा" इतिलोके । २ तत्प्रमाणेनान्त्रप्रमाणेन । स्थानादपेतं च्युतं जीवनं नाशयति । कुपितं च तदन्त्रं पट्टेनवेष्टयित्वा । पश्चाद्घृतेन परिषेचयेत् ।

अनुवर्तेत वर्षं च यथोक्तां व्रणयंत्रणाम् ।

उदरान्मेदसोवर्तिनिष्क्रमणे कर्तव्यप्रकार :—

उदरान्मेदसो वर्तिं निर्गतां भस्मना मृदा ॥ ५० ॥
अवकीर्य कषायैर्वा श्लक्ष्णैर्मूलैस्ततः समम् ।
दृढं बद्ध्वा च सूत्रेण [1]वर्धयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५१ ॥
तीक्ष्णेनाग्निप्रतप्तेन शस्त्रेण सकृदेव तु ।
स्यादन्यथा रुगाटोपो मृत्युर्वा छिद्यमानया ॥ ५२ ॥
सक्षौद्रे च व्रणे बद्धे सुजीर्णेऽन्ने घृतं पिबेत् ।
क्षीरं वा शर्कराचित्रा[2]लाक्षागोक्षुरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥
रुग्दाहजित्सयष्ट्याह्वैः परं[3] पूर्वोदितो विधिः ।
मेदोग्रंथ्युदितं तत्र तैलमभ्यंजने हितम् ॥ ५४ ॥

सद्योव्रणेपुरोपणं तैलम्—

तालीसं पद्मकं मांसीहरेण्वगुरुचंदनम् ।
हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः ॥ ५५ ॥
पक्वं सद्योव्रणेपूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ।

प्रहारादौ चिकित्सा—

गूढप्रहाराभिहते पतिते विषमोच्चकैः ॥ ५६ ॥
कार्यं वातास्रजित् तृप्तिमर्दनाभ्यंजनादिकम् ।

विश्लिष्टदेहादिकस्य तैलद्रोण्यांवास :—

विश्लिष्टदेहं मथितं क्षीणं मर्महताहतम् ।
वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाशिनम्" ॥ ५७ ॥

---

१ वर्धयेत्-छिन्द्यात् । २ चित्रा-एरण्डः । ३ पूर्वोदितो विधिः तर्पणादिः क्रमः ।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भंगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

भंगस्यद्विप्रकारत्वम्—

"पातघातादिभिर्द्वेधा भंगोऽस्थ्नां संध्यसंधितः ।

सन्धिभग्नस्य लक्षणम्—

प्रसारणाकुंचनयोरशक्तिः सन्धिमुक्तता ॥ १ ॥

असन्धिभङ्गस्य लक्षणम्—

इतरस्मिन् भृशं शोफः सर्वावस्थास्वतिव्यथा ।
अशक्तिश्चेष्टितेऽल्पेऽपि पीड्यमाने सशब्दता ॥ २ ॥
समासादिति भंगस्य लक्षणं, बहुधा तु तत् ।
भिद्यते भंगभेदेन तस्य[1] सर्वस्य साधनम् ॥ ३ ॥
यथा स्यादुपयोगाय तथा तदुपदेक्ष्यते ।

दुःसाध्यास्थीनि—

[2]प्राज्याणुदारि यत्त्वस्थि स्पर्शे शब्दं करोति यत् ॥ ४ ॥
यत्रास्थिलेशः प्रविशेन्मध्यमस्थ्नो[3] विदारितः ।
भग्नं यच्चाभिघातेन किंचिदेवावशेषितम् ॥ ५ ॥
उन्नम्यमानं क्षतवद्यच्च मज्जनि मज्जति ।
तद्दुःसाध्यं कृशाशक्तवातलाल्पाशिनामपि ॥ ६ ॥

भिन्नकपालादिवर्ज्यम्—

भिन्नं कपालं यत् कट्यां संधिमुक्तं च्युतं च यत् ।
जघनं प्रतिपिष्टं च भग्नं यत्तद्विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

---

१ तस्यभङ्गस्य । साधनं चिकित्सितम् । २ प्राज्यैः प्रभूतैरणुभिःसूक्ष्मैर्दारं-दारणमस्तियस्यास्थितत् । ३ यत्र भङ्गे दारितोऽस्थिलेशोऽस्थ्नां मध्यं प्रविशेत् ।

असंश्लिष्टकपालं च ललाटं चूर्णितं तथा ।
यच्च भग्नं भवेच्छंखशिरःपृष्ठस्तनांतरे ॥ ८ ॥
सम्यग्यमितमप्यस्थि [1]दुर्न्यासाद्दुर्निबंधनात् ।
संक्षोभादपि यद्गच्छेद्विक्रियां तद्विवर्जयेत् ॥ ९ ॥
आदितो यच्च दुर्जातमस्थि संधिरथापि वा ।

अस्थिविशेषाणांभङ्ग प्रकार :—

तरुणास्थीनि भुज्यंते भज्यंते नलकानि तु ॥ १० ॥
कपालानि विभिद्यंते स्फुटंत्यन्यानि[2] भूयसा ।

बन्धनप्रकार :—

अथावनतमुन्नम्यमुन्नतं चावपीडयेत् ॥ ११ ॥
[3]आंछिदतिक्षिप्तमधोगतं चोपरि वर्तयेत् ।
आंछनोत्पीडनोन्नामचर्मसंक्षेपबंधनैः ॥ १२ ॥
संधीन् शरीरगान्सर्वान् चलानप्यचलानपि ।
इत्येतैः स्थापनोपायैः सम्यक् संस्थाप्य निश्चलम् ॥ १३ ॥
पट्टैः प्रभूतसर्पिभिर्वेष्टयित्वा सुखैस्ततः ।
कदंबोदुंबराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः ॥ १४ ॥
वंशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनुभिः सुनिवेशितैः ।
[4]सुश्लक्ष्णैः सुप्रतिस्तंभैर्वल्कलैः शकलैरपि ॥ १५ ॥

कुशाह्वयैः समं बंधं पट्टस्योपरि योजयेत् ।
शिथिलेन हि बंधेन संधेः स्थैर्यं न जायते ॥ १६ ॥
गाढेनातिरुजादाहपाकश्वयथुसंभवः ।

---

१ यमितं सन्धितम् । दुर्न्यासादसम्यक् स्थापनात् । संक्षोभादभिघातभयादिना सञ्चलनात् । २ भुज्यन्ते कुटिलीक्रियन्ते । भज्यन्ते भिद्यन्ते । विभिद्यन्ते खण्डशो विदीर्णानिभवन्ति । अन्यानि रुचकानि वलयानिच । ३ आञ्छेत् स्थानानयनं कुर्यात् । ४ सुश्लक्ष्णैःचिक्कणैः । सुप्रतिस्तम्भैः कठिनैः । शकलैः खण्डैः

ऋतुविशेषेमोचनप्रकार :—

अहाऽयहाद्द्वौ घर्मे, सप्ताहान्मोक्षयेद्धिमे ॥ १७ ॥
साधारणे तु पंचाहाद् भगदोषवशेन[1] वा ।

सेकादि—

न्यग्रोधादिकषायेण ततः शीतेन सेचयेत् ॥ १८ ॥
तं पंचमूलपक्वेन पयसा तु सवेदनम् ।
सुखोष्णं वावचार्यं स्याच्चक्रतैलं विजानता ॥ १९ ॥
विभज्य देशं कालं च वातघ्नौषधसंयुतम् ।
प्रततं सेकलेपांश्च विदध्याद् भृशशीतलान् ॥ २० ॥
गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ।
प्रातः प्रातः पिबेद्भग्नः शीतलं लाक्षया युतम् ॥ २१ ॥

सव्रणभङ्गचिकित्सा—

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणो मधुघृतोत्तरैः ।
कषायैः प्रतिसार्योऽथ शेषो भंगोदितः क्रमः ॥ २२ ॥
लंबानि प्रथमांसानि प्रलिप्य मधुसर्पिषा ।
संदधीत व्रणान् वैद्यो बंधनैश्चोपपादयेत् ॥ २३ ॥
तान्समान्सुस्थिताञ्ज्ञात्वा फलिनीरोध्रकट्फलैः ।
समंगाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत् ॥ २४ ॥
धातकीरोध्रचूर्णैर्वा रोहंत्याशु तथा व्रणाः ।
इति भंग उपक्रांतः,

साध्यत्वादि—

स्थिरधातोरृतौ हिमे ॥ २५ ॥
मांसलस्याल्पदोषस्य सुसाध्यो दारुणोऽन्यथा ।

सन्धेःस्थैर्यकाल :—

पूर्वमध्यांतवयसामेकद्वित्रिगुणैः क्रमात् ॥ २६ ॥

---

[1] भङ्गे यो दोषस्तद्दोषानुसारेण ।

मार्गः स्थैर्यं भवेत्संधेर्यथोक्तं भजतो विधिम् ।

कट्यादिभङ्गचिकित्सा—

कटीजंघोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम् ॥ २७ ॥
यंत्रणार्थं तथा कीलाः पंच कार्या निबंधनाः ।
जंघोर्वोः पार्श्वयोर्द्वौ द्वौ तल एकश्च कीलकः
श्रोण्यां वा पृष्ठवंशे वा वक्त्रस्याक्षकयोस्तथ ।
विमोक्षे भग्नसंधीनां विधिमेवं समाचरेत् ॥ २८ ॥

चिरविमुक्तसन्धेःस्थानानयनम्—

संधीश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धान्स्विन्नान् मृदूकृतान् ।
[1]उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च यथास्वं स्थानमानयेत् ॥ ३० ॥

असन्धिभग्नेचिकित्सा—

[2]असंधिभग्ने रूढे तु विषमोल्वणसाधिते ।
आपोथ्य भंगं यमयेत्ततो भग्नवदाचरेत् ॥ ३१ ॥

भग्नपाकोऽप्रशस्त :—

मर्म नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
पक्वमांससिरास्नायुसंधिः श्लेषं न गच्छति ॥ ३२ ॥

भंगेस्नेहयोजना—

वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहान् भग्नस्य योजयेत् ।
[3]चतुःप्रयोगान् बल्यांश्च बस्तिकर्म च शीलयेत् ॥ ३३ ॥

भंगेभोजनम्—

शाल्याज्यरसदुग्धाद्यैः पौष्टिकैरविदाहिभिः ।
मात्रयोपचरेद्भग्नं संधिसंश्लेषकारिभिः ॥ ३४ ॥

---

१ उक्तैः पूर्वभङ्गोक्तैः अधावनमित्यादिनोक्तैः । २ आपोथ्य भङ्क्त्वा । यमयेद्बध्नीयात् । ३ चतुःप्रयोगान् पानानस्याभ्यङ्गानुवासनैः ।

ग्लानिर्न शस्यते तस्य संधिविश्लेषकृद्धि सा ।

भंगेत्याज्यानि—

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षं च भोजनम् ॥ ३५ ॥

भंगसन्धानकंगन्धतैलम्—

कृष्णांस्तिलान् विरजसो दृढवस्त्रबद्धान्
सप्त क्षपा वहति वारिणि वासयेत ।
संशोषयेदनुदिनं प्रविसार्य चैतान्
क्षीरे [1]तथैव मधुकक्वथिते च तोये ॥ ३६ ॥

पुनरपि पीतपयस्कां-
स्तान् पूर्ववदेव शोषितान् बाढम् ।
विगततुषानरजस्कान्
संचूर्ण्य सुचूर्णितैर्युञ्ज्यात् ॥ ३७ ॥

नलदवालकलोहितयष्टिका-
नखमिशिप्लवकुष्ठबलात्रयैः ।
अगरुचदनकुंकुमसारिवा
सरलसर्जरसामरदारुभिः ॥ ३८ ॥

मधुकादिगणोपेतैस्तिलपिष्टं ततश्च तत् ।
चतुर्गुणपयस्यसिद्धदुग्धेन पीडयेत् ॥ ३९ ॥

शैलेयरास्नांशुमतीकसेरु-
कालानुसारीनतपद्मरोध्रैः ।
सक्षीरयुक्तैः सपयस्कदूर्वै-
स्तैलं [2]पचेतन्नलदादिमिश्रं ॥ ४० ॥

---

१ तथव पूर्वोक्तप्रकारेण सप्तरात्रीःक्षीरे तथा सप्तरात्रीर्मधुकक्वाथे भावना देया । २ नलदादिभिर्नलदवालकलोहितेत्यादिभिः ।

गंधतैलमिदमुत्तममस्थि-
स्थैर्यकृज्जयति चाशु विकारान् ।
वातपित्तजनितानतिवीर्यान्
व्यापिनोऽपि विविधैरुपयोगैः ॥ ४१ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भगंदरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

भगन्दर लक्षणम्—

"हस्त्यश्वपृष्ठगमनकठिनोत्कटकासनैः ।
अर्शोनिदानाभिहितैरपरैश्च निषेवितैः ॥ १ ॥

[1]अनिष्टादृष्टपाकेन सद्यो वा साधुगर्हणैः ।
प्रायेण पिटिकापूर्वो योंगुले व्यंगुलेऽपि वा ।। २ ॥
पायोर्व्रणोंतर्बाह्यो वा दुष्टासृङ्मांसगो भवेत् ।
बस्तिमूत्राशयाभ्याशगतत्वात्स्पंदनात्मकः ॥ ३ ॥
भगंदरः स,

चिकित्सांविना भगादिदेशदारणम्—

सर्वश्च दारयत्यक्रियावतः ।
भगबस्तिगुदास्तेषु दीर्यमाणेषु भूरिभिः ॥ ४ ॥
वातमूत्रशकृच्छुक्रं खैः सूक्ष्मैर्वमति क्रमात् ।

सचाष्टधा—

दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरागंतुः सोष्टमः स्मृतः ॥ ५ ॥

---

१ अनिष्टेति-पूर्वजन्मकृताशुभकर्मणां विपाकेन । गर्हा निन्दा ।

अपक्वं पिटिकामाहुः पाकप्राप्तं भगंदरम् ।

भगन्दरकरीपीटिका—

गूढमूलां ससंरंभां रुगाढ्यां रूढकोपिनीम् ॥ ६ ॥

भगंदरकरीं विद्यात् पिटिकां न त्वतोऽन्यथा ।

वातजादिभगन्दर कथनम्—

तत्र श्यावारुणा तोदभेदस्फुरणरुक्करी ॥ ७ ॥

पिटिका मारुतात्,

पित्तादुष्ट्रग्रीवावदुच्छ्रिता ।

रागिणी तनुरूष्माढ्या ज्वरधूमायनान्विता ॥ ८ ॥

"स्थिरा स्निग्धा महामूला पाण्डुः कंडूमती कफात् ।

"श्यावा ताम्रा सदाहोषा घोररुग् वातपित्तजा ॥ ९ ॥

"पाण्डुरा किंचिदाश्यावा कृच्छ्रपाका कफानिलात् ।

"पादाङ्गुष्ठसमा सर्वैर्दोषैर्नानाविधव्यथा ॥ १० ॥

शूलारोचकतृड्दाहज्वरच्छर्दिरुपद्रुता ।,,

व्रणतां याति ताः पक्वाः प्रमादात्

"तत्र वातजा ॥ ११ ॥

दीर्घतैरणुमुखैश्छिद्रैः शतपोनकवत् क्रमात् ।

अच्छं स्रवदभिरास्रावमजस्रं फेनसंयुतम् ॥ १२ ॥

शतपोनकसंज्ञोऽयम्,

"उष्ट्रग्रीवस्तु पित्तजः ।"

"बहुपिच्छापरिस्रावी परिस्रावी कफोद्भवः" ॥ १३ ॥

वातपित्तात्परिक्षेपी [1]परिक्षिप्य गुदं गतिः ।

जायते परिवस्तत्र प्राकारपरिखेव च ॥ १४ ॥

ऋजुर्वातकफा द्व्याभ्यां गुदो गत्या तु दीर्यते ।

---

१ प्राकारः—वृतिः । परिखा "खाई" इतिलोके ।

अर्शोभगंदर लक्षणम्—

"कफपित्ते तु पूर्वोत्थं दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः ॥ १५ ॥
अर्शोमूले ततः शोफः कंडूदाहादिमान् भवेत् ।
स शीघ्रं पक्वभिन्नोऽस्य क्लेदयन्मूलमर्शसः ॥ १६ ॥
स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमर्शो भगंदरः ।

शम्बूकावर्तलक्षणम्—

"सर्वजः शंबुकावर्तः शंबुकावर्तसंनिभः ॥ १७ ॥
गतयो दारयंत्यस्मिन् रुग्वेगैर्दारणैर्गुदम् ।

उन्मार्गिभगन्दर लक्षणम्—

अस्थिलेशोऽभ्यवहृतो मांसगृद्ध्या यदा गुदम् ॥ १८ ॥
क्षिणोति तिर्यङ्निर्गच्छन्नुन्मार्गं क्षततो गतिः ।
स्यात्ततः पूयदीर्णायां मांसकोथेन तत्र च ॥ १९ ॥
जायंते कृमयस्तस्य खादंतः परितो गुदम् ।
विदारयंति च चिरादुन्मार्गी क्षतजश्च सः ॥ २० ॥

रुगादिज्ञानम्—

[1]तेषु रुग्दाहकण्ड्वादीन् विद्याद् व्रणनिषेधतः ।

कृच्छ्रसाध्यत्वादि—

षट्कृच्छ्रसाधनास्तेषां निचयक्षतजौ त्यजेत् ॥ २१ ॥
[2]प्रवाहिनीं वली प्राप्तं सेवनीं वा समाश्रितम् ।

पाकप्रतिषेधार्थयत्न :—

अथाऽस्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत् ॥ २२ ॥
शुद्ध्यासृक्स्रुतिसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति ।

पाकेऽवाङ्मुखत्वाद्यवलोकनम्—

पाके पुनरुपस्निग्धं स्वेदितं चावगाहतः ॥ २३ ॥

---

१ तेषु भगन्दरेषु । २ प्रवाहिनी वलीगुंदाभ्यन्तरास्थिताम् ।

यंत्रयित्वार्शसमिव पश्येत्सम्यग्भगंदरम् ।
[1]अवाचीनं पराचीनमंतर्मुखबहिर्मुखम् ॥ २४ ॥

अन्तर्मुखस्यशस्त्रेण पाटनादि—

अथांतर्मुखमेषित्वा सम्यक् शस्त्रेण पाटयेत् ।
बहिर्मुखं च निःशेषं ततः क्षारेण साधयेत् ॥ २५ ॥
अग्निना वा भिषक् साधु क्षारेणैवोष्ट्रकंधरम् ।

शतपोनकपाटनप्रकार :—

नाडीरेकांतराः कृत्वा पाटयेच्छतपोनकम् ॥ २६ ॥
तासु रूढासु शेषाश्च मृत्युर्दीर्णे [2]गुदेऽन्यथा ।

अन्यभगन्दरचिकित्सोपदेश :—

परिक्षेपिणि चाप्येवं नाड्यन्तर्ः क्षारसूत्रकं ॥ २७ ॥
अर्शोभगंदरे पूर्वमर्शांसि प्रतिसाधयेत् ।
[3]त्यक्त्वोपचर्यः क्षतजः शल्यं शल्यवतस्ततः ॥ २८ ॥
आहरेच्च तथा दद्यात् कृमिघ्नं लेपभोजनम् ।
पिंडनाड्यादयः स्वेदाः सुस्निग्धा रुजि पूजिताः ॥ २९ ॥
"सर्वत्र च बहुच्छिद्रे छेदानालोच्य योजयेत् ।
गोतीर्थसर्वतोभद्रदलंलांगललांगलान्" ॥ ३० ॥
पार्श्वं गतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थको मतः ।
सर्वतः सर्वतोभद्रः पार्श्वच्छेदोर्धलांगलः ॥ ३१ ॥
पार्श्वद्वये लांगलकः
समस्तांश्चाग्निना दहेत् ।
आस्रावमार्गान्निःशेषान्नैवं विकुरुते पुनः,, ॥ ३२ ॥

---

१ अवाचीनं निम्नमुखम् । पराचीनमूर्ध्वमुखम् । २ अन्यथा एककालं समस्तनाडी पाटनेन गुदे दीर्णे सति मृत्युःस्यात् । ३ क्षतजोभगन्दरः त्यक्त्वाप्रत्याख्याय उपचर्यश्चिकित्स्यः ।

भगेन कोष्टकी च मिश्रं मधोपयोजसा ।
वेधो भगे विशालादिर्विशमनमर्शनम्,, ॥ ३३ ॥

अपराङ्गार्थ तैलम्—

ज्योतिष्मतीमलयुलाङ्गलिकीशुकाग्र-
गुंजादिगर्भकरवीरवचाश्रुपार्कैः ।
सम्यक्शनाय विपचेत् भगंदराणां
तैलं करोति परमं ह्यपरेङ्ग्रेशाम् ॥ ३४ ॥

द्वितीयं तैलम्—

मधुकरोध्रकणात्रुटिरेणुका-
द्विरजनीफलिनीपटुसारिवाः ।
कमलकेशरपद्मकधातकी-
मदनसर्जरसामयरोध्रकाः ॥ ३५ ॥

गवीजमूत्रच्छदनैरेभिस्तैलं विपाचितम् ।
भगंदरापचीकुष्ठमधुमेहव्रणापहम् ॥ ३६ ॥

लेह :—

मधुतैलयुता विडंगसार-
त्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः ।
कृमिकुष्ठभगंदरप्रमेह-
क्षतनाडीव्रणरोहणा भवंति ॥ ३७ ॥

अन्यदौषधम्—

[१]अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं
कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।
क्रमवृद्धमिदं मधुद्रुतं
पिटिकास्थौल्यभगंदरान् जयेत् ॥ ३८ ॥

---

१ त्रुटिः एला । वेल्लं विडङ्गम् । कलिर्विभीतकः ।

अन्यदौषधम्—

[1]मागधिकाग्निकलिंगविडंगै-
बिल्वघृतैः सवरापलषट्कैः ।
गुग्गुलुना सदृशेन समेतैः
क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः ॥ ३९ ॥

स्वायंभुवाख्योगुग्गुलुः—

गुग्गुलुपंचपलं पलिकांशा
मागधिका त्रिफला[2] च पृथक् स्यात् ।
त्वक् त्रुटिकर्षयुतं मधुलीढं
कुष्ठभगंदरगुल्मगतिघ्नम् ॥ ४० ॥

वातरोगजित्—

शृंगवेररजोयुक्तं तदेव[3] च सुभावितम् ।
क्वाथेन दशमूलस्य विशेषाद्वातरोगजित् ॥ ४१ ॥

तुल्यमहिषाख्यमाक्षिकम्—

[4]उत्तमाखदिरसारजं रज
शीलयन्नमनवारिभावितम् ।
हंति तुल्यमहिषाख्यमाक्षिकं
कुष्ठमेहपिटिकाभगंदरान् ॥ ४२ ॥

अन्येषुपथ्ययोगसूचकम्—

[5]भगंदरेष्वेव विशेष उक्तः
शेषाणि तु व्यंजनसाधनानि ।

---

१ अग्निश्चित्रकः । कलिङ्गइन्द्रयवः । वरा त्रिफला षट् पला । अन्यद्रव्याणि पृथक् पलपरिमितानि । २ त्रिफला च पलपरिमिता । त्वक् त्रुटिश्च पृथक् कर्षप्रमाणा । ३ तदेव गुग्गुलुपंचपलमित्यादि । ४ उत्तमात्रिफला । महिषाख्यंगुग्गुलु । ५ सर्वेषुभगन्दरेष्वयंमुपक्रम विशेष उक्तः, शेषाणि तु व्रणानि व्यञ्जनसाधनानि-प्रकट चिकित्सितानि तेषु व्रणाधिकाराधिचिकित्सितं कुर्यादित्यर्थः ।

[illegible]
[illegible] ॥ ४३ ॥

वर्ज्यानि—

अश्वपृष्ठगमनं चलरोधं[1]
मद्यमैथुनमजीर्णमसात्म्यम् ।
साहसानि विविधानि च रूढे
वत्सरं परिहरेदधिकं वा ॥ ४४ ॥"

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

ग्रन्थि (गाँठ) लक्षणम्—

"कफप्रधानाः कुर्वन्ति मेदोमांसास्रगा मलाः ।

नवग्रन्थयः—

वृत्तोन्नतं यं श्वयथुं स ग्रन्थिर्ग्रथनात्स्मृतः ॥ १ ॥
दोषास्रमांसमेदोऽस्थिसिराव्रणभवा नव ।

अथैषां लक्षणानि—

ते[2], तत्र वाताद् आयामतोदभेदान्वितोऽसितः ॥ २ ॥
स्थानात्स्थानान्तरगतिरकस्माद्धानिवृद्धिमान् ।
मृदुर्बस्तिरिवानद्धो विभिन्नोऽच्छं स्रवत्यसृक् ॥ ३ ॥

---

१ चलरोधो वातनिग्रहः । २ ते ग्रन्थयो दोषादिभेदेन नव ।

पित्तात्सदाहः पीताभो रक्तो वा पच्यते द्रुतम् ।
भिन्नोऽस्रमुष्णं स्रवति,

"श्लेष्मणा नीरुजो घनः ॥ ४ ॥

शीतः सवर्णः कंडूमान् पक्वः पूयं स्रवेद्घनम् ।,,
"दोषैर्दुष्टेऽसृजि ग्रंथिर्भवेन्मूर्छत्सु जंतुषु ॥ ५ ॥
सिरामांसं च संश्रित्य सस्वापः पित्तलक्षणः ।,,
"मांसलैर्दूषितं मांसमाहारैर्ग्रंथिमावहेत् ॥ ६ ॥
स्निग्धं महांतं कठिनं सिरानद्धं कफाकृतिम् ।,,
प्रवृद्धं मेदुरैर्मेदो नीतं मांसेऽथवा त्वचि ॥ ७ ॥
वायुना कुरुते ग्रंथिं भृशं स्निग्धं मृदुं चलम् ।
श्लेष्मतुल्याकृतिं[1] देहक्षयवृद्धिक्षयोदयम् ॥ ८ ॥
स विभिन्नो घनं मेदस्ताम्राऽसितसितं स्रवेत् ।,,
"अस्थिभंगाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत् ॥ ९ ॥
सोऽस्थिग्रंथिः

"पदातेस्तु सहसाम्भोवगाहनात् ।

व्यायामाद्वा [2]प्रतान्तस्य सिराजालं सशोणितम् ॥ १० ॥
वायुः संपीड्य संकोच्य वक्रीकृत्य विशोष्य च ।
निःस्फुरं नीरुजं ग्रंथिं कुरुते स सिराह्वयः ॥ ११ ॥
"अरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः ।
सार्द्रे वा बंधरहिते गात्रेऽश्माभिहतेऽथवा ॥ १२ ॥
वातास्रमस्रुतं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणम् ।
कुर्यात्सदाहः कंडूमान् व्रणग्रंथिरयं स्मृतः ॥ १३ ॥"

ग्रन्थीनां साध्यत्वादि—

साध्या दोषास्रमेदोजा न तु स्थूलखराश्चलाः ।

---

१ देहक्षयवृद्धिभ्यां क्षयोदयौ यस्य तं—देहवृद्धौ ग्रन्थिवृद्धिर्देहक्षये ग्रन्थिक्षय इत्यर्थः । २ पदातेः पद्भ्यां गमनशीलस्य । प्रतान्तस्य ग्लानियुक्तस्य ।

मर्मकंठोदरस्थाश्च

अर्बुदनिर्देशः—

महत्तु ग्रंथितोर्बुदम् ॥ १४ ॥

तल्लक्षणं च [1]मेदोन्तैः षोढा दोषादिभिस्तु तत् ।
प्रायो मेदःकफाढ्यत्वात्स्थिरत्वाच्च न पच्यते ॥ १५ ॥

शोणितार्बुदलक्षणम्—

सिरास्थं शोणितं दोषः संकोच्यातः प्रपीड्य च ।
पाचयेत् तदानद्धं सास्रावं मांसपिण्डितम् ॥ १६ ॥
मांसाङ्कुरैश्चितं याति वृद्धिं चाशु स्रवेत्ततः ।
अजस्रं दुष्टरुधिरं भूरि तच्छोणितार्बुदम् ॥ १७ ॥

साध्यासाध्यविचारः—

तेष्वसृङ्मांसजे वर्ज्ये [2]चत्वार्यन्यानि साधयेत् ।

श्लीपद (पीलपाँव) लक्षणम्—

प्रस्थिता वंक्षणोर्वादिमधःकायं कफोल्बणाः ॥ १८ ॥
दोषा मांसासृगाः पादौ कालेनाश्रित्य कुर्वते ।
शनैः-शनैर्घनं शोफं श्लीपदं तत्प्रचक्षते ॥ १९ ॥
[3]परिपोटयुतं कृष्णमनिमित्तरुजं खरम् ।
रूक्षं च वातात्
पित्तात्तु पीतं दाहज्वरान्वितम् ॥ २० ॥
कफाद्गुरु स्निग्धमरुक् चितं मांसांकुरैर्बृहत् ।

असाध्यता—

तत्यजेद्वत्सरातीतं सुमहत्सुपरिस्रुति ॥ २१ ॥

---

१ ग्रन्थितोर्ग्रन्थेर्महत्तदर्बुदम् । तल्लक्षणं च मेदोन्तैः षोढा—तस्यार्बुदस्य लक्षणं दोषैर्वातपित्तकफैरक्तमांसमेदोभिस्त्रीणि—इति षट् प्रकारम् । २ चत्वारि-पृथक् दोषजानि मेदोजानि चेति । ३ परिपोटस्त्वगाभेदः ।

पाण्यादावपिश्लीपदोत्पत्ति :—

पाणिनासोष्ठकर्णेषु वदंत्येके तु पादवत् ।
श्लीपदं जायते तच्च देशेऽनूपे भृशं[1] भृशम् ॥ २२ ॥

गण्डमालापच्यो (कण्ठमाला) समुत्पत्ति :—

मेदस्थाः कंठमन्याक्षाकक्षावंक्षणगा मलाः ।
सवर्णान् कठिनान् स्निग्धान् वार्ताकामलकाकृतीन् ॥ २३ ॥
अवगाढान् बहून्[3] गंडांश्चिरपाकांश्च कुर्वते ।
पच्यंतेऽल्परुजस्त्वन्ये स्रवंत्यन्येऽतिकंडुराः ॥ २४ ॥
नश्यंत्यन्ये भवंत्यन्ये दीर्घकालानुबंधिनः ।
गंडमालापची चेयं दूर्वेव क्षयवृद्धिभाक् ॥ २५ ॥

असाध्यता—

तां त्यजेत्सज्वरच्छर्दिपार्श्वरुक्कासपीनसाम् ।

नाडीव्रण (नासूर) विज्ञानम्—

अभेदात्पक्वशोफस्य व्रणे चापथ्यसेविनः ॥ २६ ॥
अनुप्रविश्य मांसादीन् दूरं पूयोऽभिधावति ।
गतिः सा दूरगमनान्नाडी नाडीव संस्रुतेः ॥ २७ ॥
[3]नाड्येकानृजुरन्येषां सैवानेकगतिर्गतिः ।
सा दोषैः पृथगेकस्थैः शल्यहेतुश्च पंचमी ॥ २८ ॥
वातात्सरुक्सूक्ष्ममुखी विवर्णा फेनिलोद्वमा ।
स्रवत्यभ्यधिकं रात्रौ,
पित्तात्तृड्ज्वरदाहकृत् ॥ २९ ॥

---

१ भृशमतिमात्रेण । २ गण्डः–बृहत्पिटिका ।

३ सा दूरगमनात्गतिः, नाडीव संस्रुतेर्नाडीत्युच्यते । अन्येषां तु तन्त्रकृतां मतेएका नाडी अनृजुः–कुटिला नाडीत्युच्यते । सैवनाडी अनेकगतिर्गतिरित्युच्यते—इत्यर्थः ।

पीतोष्णपूतिपूयास्रुद्दिवा चाऽतिनिषिञ्चति ।
''घनपिच्छिलसंस्रावा कण्डूला कठिना कफात् ।
निशि चाऽभ्यधिकस्रावा''
सर्वैः सर्वाकृति त्यजेत् ॥ ३० ॥

शल्यजा नाडी—

अंतःस्थितं शल्यमनाहृतं तु
करोति नाडीं वहते च साऽस्य ।
फेनानुविद्धं तनुमल्पमुष्णं
सास्रं च पूयं सरुजं च नित्यम्'' ॥ ३१ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रंथ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अपक्वग्रन्थिपुशोफवत् क्रिया—

''ग्रथिष्वामेषु कर्तव्या यथास्वं शोफवत् क्रिया ।

शुद्धिकामस्य स्नेहनादि—

बृहतीचित्रकव्याघ्रीकणासिद्धेन सर्पिषा ॥ १ ॥
स्नेहयेच्छुद्धिकामं च तीक्ष्णैः शुद्धस्य लेपनम् ।
संस्वेद्य बहुशो ग्रंथिं विमृद्नीयात् पुनः पुनः ॥ २ ॥
एष वाते विशेषेण, क्रमः पित्तास्रजे पुनः ।
जलौकसो हिमं सर्वं, कफजे वातिको विधिः ॥ ३ ॥

अपक्वग्रन्थेश्छेदनम्—

तथाप्यपक्वं छित्त्वैनं स्थिते रक्तेऽग्निना दहेत् ।
साव्वशेषं सशेषो हि .पुनराप्यायते ध्रुवम्,, ॥ ४ ॥
मांसव्रणोद्भवौ ग्रंथी पाटयेदेवमेव च ।

मेदोजग्रन्थिचिकित्सा—

कार्यं मेदोभवेप्येतत्तप्तैः फालादिभिश्च तम् ॥ ५ ॥
[1]प्रमृद्यात्तिलदिग्धेन छन्न द्विगुणवाससा ।
शस्त्रेण पाटयित्वा वा दहेन्मेदसि मृद्धृते,, ॥ ६ ॥
सिराग्रंथौ नवे पेयं तैलं साहचर तथा ।
उपनाहोनिलहरैर्वस्तिकर्म सिराव्यधः ॥ ७ ॥
अर्बुदे ग्रंथिवत् कुर्याद् यथास्व सुतरां हितम् ।

श्लीपद चिकित्सा—

श्लीपदेऽनिलजे विध्येत् स्निग्धस्विन्नोपनाहिते ॥ ८ ॥
सिरामुपरि गुल्कस्य च्यंगुले, पाययेच्च तम् ।
मासमेरंडजं तैलं गोमूत्रेण समन्वितम् ॥ ९ ॥
जीर्णे जीर्णान्नमश्नीयाच्छुण्ठीशृतपयोन्वितम् ।
त्रैवृतं वा पिबेदेवमसाध्यावग्निना दहेत् ॥ १० ॥
गुल्फस्याधः गिरामोक्षः,,
पैत्ते सर्वं च पित्तजित् ।

कफजश्लीपद चिकित्सा—

सिरामंगुष्ठके विद्ध्वा कफजे शीलयेद्यवान् ॥ ११ ॥
सक्षौद्राणि कषायाणि वर्धमानास्तथाभयाः ।
लिंपेत्सर्षपवार्ताकीमूलाभ्यां धान्ययाथवा ॥ १२ ॥

---

१ तं मेदोभवंग्रन्थि तिलकल्कादिग्धेन द्विगुणवाससा छन्नं पाटयित्वा तप्तैः फालादिभिः प्रमृद्यात् । अथवा शस्त्रेण पाटयित्वा मेदसि निःशेषमुद्धृते सति अग्निना दहेत् ।

अपची चिकित्सा—

ऊर्ध्वाध.शोधनं पेयमपच्यां माथितं घृतम् ।
दन्तीद्रवन्तीत्रिवृताजालिनीदेवदालिभिः ॥ १३ ॥
शीलयेत्कफमेदोघ्नं धूमगंडूषनावनम् ।
सिराव्यधहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेण तार्क्ष्यजम्[1] ॥ १४ ॥

आमग्रन्थीनां लेपनादि—

ग्रंथीनपक्वानालिपेन्नाकुलीपटुनागरैः[2] ।
स्विन्नान् लवणपोटल्या कठिनाननुमर्दयेत् ॥ १५ ॥
शमीमूलकशिग्रूणां बीजैः सयवसर्षपैः ।
लेपः पिष्टोम्लतक्रेण गंथिगंडविलापनः ॥ १६ ॥

पाकोन्मुखग्रन्थीनां जयप्रकार :—

पाकोन्मुखान् सुतास्रस्य पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ।
अपक्वानेव चोद्धृत्य क्षाराग्निभ्यामुपाचरेत् ॥ १७ ॥

गण्डमाला चिकित्सा—

क्षुण्णानि निंबपत्राणि विलत्रैर्भल्लातकैः सह ।
शरावसंपुटे दग्ध्वा सार्धं सिद्धार्थकैः समैः ॥ १ ॥
एतच्छागांवुना पिष्टं गंडमालाप्रलेपनम् ।
[3]काकादनीलांगलिकानहिकोत्तुंडिकीफलैः ।
जीमूतबीजकर्कोटीविशालाकृतवेधनैः ॥ १८ ॥
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
प्रस्थं करजतैलस्य निर्गुंडीस्वरसाढके ॥ १९ ॥
अनेन माला गंडानां चिरजा पूयवाहिनी ।
सिध्यत्यसाध्यकल्पाऽपि पानाभ्यंजननावनैः ॥ २० ॥

---

१ तार्क्ष्यजं रसाञ्जनम् । २ नाकुली—रास्नाभेदः । ३ काकादनी—गुञ्जा ज्योतिष्मती च । नहिका—शुकनासा । उत्तुंडिकी—कारनिक्ता ।

अपचीप्रणुत्तैलम्—

तैलं लांगलिकीकंदकल्कपादे चतुर्गुणे ।
निर्गुंडीस्वरसे पक्वं नस्याद्यैरपचीप्रणुत् ॥ २१ ॥

कुष्ठनाडीव्रणापचीहरं तैलम्—

भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः ।
मनःशिलालनलदविशालाकरवीरकैः ॥ २२ ॥
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ।
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ॥ २३ ॥
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ।
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठ दुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ २४ ॥

अपचीहरं तैलम्—

वचाहरीतकीलाक्षाकटुरोहिणिचंदनैः ।
तैलं प्रसाधितं पीतं समूलामपची जयेत् ॥ २५ ॥

नस्यालेपौ—

शरपुंखोद्भवं मूलं पिष्टं तंदुलवारिणा ।
नस्याल्लेपाच्च दुष्टास्रपचीविषजंतुजित् ॥ २६ ॥

तैलम्—

मूलैरुत्तम[1]कारण्याः पीलुपर्ण्याः सहाचरात् ।
सरोध्राभययष्ट्याह्वशताह्वाद्वीपिदारुभिः ॥ २७ ॥
तैलं क्षीरसमं सिद्धं नस्येऽभ्यंगे च पूजितम् ।
गोव्यजाश्वखुरा दग्धा कटुतैलेन लेपनम् ॥ २८ ॥
ऐंगुदेन तु कृष्णाहिर्वायसो वा स्वयं मृतः ।

दाहप्रकारः—

इन्द्रवस्तौ गदस्यान्यपार्ष्णिजंघासमाश्रितम् ॥ २९ ॥

---

१ उत्तमकारणी करम्भ. "उत्तमका चामावरणिरच । अत्र "उत्तम वारुणी" इति पाठान्तरम् ।

या वर्त्यो यानि तैलानि तन्नाडीष्वपि शस्यते ।
पिष्टं चञ्चुफलं[1] क्षेपान्नाडीव्रणहरं परम् ॥ ३७ ॥

नाडीहन्त्रीवर्तिः—

[2]घोटाफलत्वग्लवणं सलाक्षं
बूकस्य पत्रं वनितापयश्च ।
स्नुगर्कदुग्धान्वित एष कल्को
वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ३८ ॥

कल्कादिगतिनाशकम्—

[3]सामुद्रसौवर्चलसिन्धुजन्म-
सुपक्वघोटाफलवेश्मधूमाः ।
आम्रातगायत्रिजपल्लवाश्च
टंकटेर्यावथ चेतकी च ॥ ३९ ॥

कल्केऽभ्यगे चूर्णे
वर्त्यां चैतेषु सेव्यमानेषु ।
अगतिरिव नश्यति गति-
श्चपला चपलेषु भूतिरिव ॥ ४० ॥”

---

१ चञ्चुफलमेरण्ड फलम् । २ घोण्टा बदरी ।

३ आम्रातः “आमड़ा” हि० । कटंकटेरी–दारुहरिद्रा । चेतकी हरीतकी अगतिरविद्यमानगतिरिव । गतिर्नाडीव्रणः । चपलेषु चञ्चलप्रकृतिषु नरेषु भूतिरिव–वित्तमिव ।

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथातः क्षुद्ररोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

"स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंमिता ।
पिटिका कफवाताभ्यां बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥
"यवप्रख्या यवप्रख्या [1]ताभ्यां मांसाश्रिता घना ।"
अवक्राश्चालजीवृत्तास्तोकपूया घनोन्नताः" ॥ २ ॥
ग्रंथयः पंच वा षड्वा कच्छपी कच्छपोन्नता ।"
"कर्णस्योर्ध्वं समंताद्वा पिटिका कठिनोग्ररुक् ॥ ३ ॥
शालूकाभा पनसिका,
शोफस्त्वल्परुजः स्थिरः ।
हनुसंधिसमुद्भूतस्ताभ्यां[2] पाषाणगर्दभः" ॥ ४ ॥
"शाल्मलीकंटकाकाराः पिटिकाः सरुजो घनाः ।
मेदोगर्भा मुखे यूनां [3]ताभ्यां च मुखदूषिकाः,, ॥ ५ ॥
"ते पद्मकंटका ज्ञेया यैः पद्ममिव कंटकैः ।
चीयते नीरुजैः श्वेतैः शरीरं कफवातजैः" ॥ ६ ॥
"पित्तेन पिटिका वृत्ता पक्वोदुंबरसंनिभा ।
महादाहज्वरकरी विवृता विवृतानना" ॥ ७ ॥
"गात्रेष्वंतश्च वक्त्रस्य दाहज्वररुजान्विताः ।
मसूरमात्रास्तद्वर्णास्तत्संज्ञाः[4] पिटिका घनाः" ॥ ८ ॥

---

१ ताभ्यां कफवाताभ्याम् । २-३ ताभ्यां वातकफाभ्याम् । पाषाणगर्दभः (गलगुवा) । ४ तद्वर्णा मसूरवर्णाः, तत्संज्ञा मसूरिका ।

"[1]ततः कष्टतराः स्फोटा विस्फोटाख्या महारुजाः ।,,
"या पद्मकर्णिकाकारा पिटिका पिटिकाचिता ॥ ९ ॥
सा विद्धा वातपित्ताभ्यां,,
"[2]ताभ्यामेव च गर्दभी ।
मंडला विपुलोत्सन्ना सरागपिटिकाचिता,, ॥ १० ॥
"कक्षेति[3] कक्षासन्नेषु प्रायो देशेषु साऽनिलात् ,,
"पित्तादृभवंति पिटिकाः सूक्ष्मा लाजोपमा घनाः ॥ ११ ॥
तादृशी महती त्वेका गंधनामेति कीर्तिता ।,
"घर्मस्वेदपरीतेऽङ्गे पिटिकाः सरुजो घनाः ॥ १२ ॥
राजिकावर्णसंस्थानप्रमाणा [4]राजिकाह्वयाः ।,,
"दोषैः पित्तोल्वणैर्मंदैर्विसर्पन्ति विसर्पवत् ॥ १३ ॥
शोफोऽपाकस्तनुस्ताम्रो ज्वरकृज्जालगर्दभः ।"

अग्निरोहिणी—

मलैः पित्तोल्वणैः स्फोटा ज्वरिणो मांसदारणाः ॥ १४ ॥
कक्षाभागेषु जायंते येऽग्न्याभाः साऽग्निरोहिणी ।
पंचाहात्सप्तरात्राद्वा पक्षाद्वा हंति जीवितम् ॥ १५ ॥
"त्रिलिंगा पिटिका वृत्ता जत्रूर्ध्वमिरिवेल्लिका ।"
"विदारीकंदकठिना विदारी कक्षवंक्षणे " ॥ १६ ॥

शर्करार्बुदलक्षणम्—

"मेदोऽनिलकफैर्ग्रंथिः स्नायुमांससिराश्रयः ।
भिन्नो वसाज्यमध्वाभं स्रवेत्तत्रोल्बणोऽनिलः ॥ १७ ॥
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करामुत्पादयेत् ।
दुर्गंधं रुधिरं क्लिन्नं नानावर्णं ततो मलाः ॥ १८ ॥

---

१ ततस्ताभ्यो मसूरिकाभ्यः । २ ताभ्यां वातपित्ताभ्याम् । ३ कक्षा (वखौरी) । ४ राजिकाह्वयाः सर्षपकाकारसमाः पिडकाः "अलौरी" इतिलोके ।

ता स्रावयंति निचिता विद्यात्तच्छर्करार्बुदम् ।

वल्मीकलक्षणम्—

पाणिपादतले संधौ जत्रूर्ध्वं वोपचीयते ॥ १९ ॥
वल्मीकवच्छनैर्ग्रंथिस्तद्वद्बह्वणुभिर्मुखैः ।
रुग्दाहकंडूक्लेदाढ्यो वल्मीकोऽसौ समस्तजः ॥ २० ॥
"शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ।
ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं (गुरखुल) तु तत्" ॥ २१ ॥
"वेगसंधारणाद्वायुरपानोऽपानसंश्रयम् ।
अणूकरोति बाह्यांतर्मार्गमस्य ततः शकृत् ॥ २२ ॥
कृच्छ्रान्निर्गच्छति व्याधिरयं रुद्धगुदो मतः ।"
"कुर्यात्पित्तानिलं पाकं नखमांसे सरुग्ज्वरम् ॥ २३ ॥
[1]चिप्यमक्षतरोगं च विद्यादुपनखं च तम् ।"
"कृष्णोऽभिघाताद्रूक्षश्च खरश्च कुनखो नखः" ॥ २४ ॥
"दुष्टकर्दमसंस्पर्शात्कंडूक्लेदान्वितांतराः ।

(पैर का सड़ना)

अंगुल्योऽलसमित्याहुः"

(तिल)

तिलाभांस्तिलकालकान् ॥ २५ ॥
कृष्णानवेदनांस्त्वक्स्थान्

(मसा)

"माषांस्तानेव चोन्नतान् ।"
"माषेभ्यस्तून्नततरांश्चर्मकीलान् सितासितान्" ॥ २६ ॥
"तथाविधो जतुमणिः सहजो लोहितस्तु सः ।"
"कृष्णं मितं वा सहजं मंडलं लांछनं (लच्छन) समम्" ॥ २७ ॥

---

१ चिप्यः (बेड़वा) ।

व्यङ्गनीलिका लक्षणम्—

"शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुखे तनु ।
श्यामलं मंडलं व्यंगं वक्त्रादन्यत्र नीलिका" ॥ २८ ॥
परुषं परुषस्पर्शं व्यंगं श्यावं च मारुतात् ।
पित्तात्ताम्रान्तमानीलं, श्वेतान्तं कंडुमत्कफात् ॥ २९ ॥
रक्ताद्रक्तान्तमाताम्रं शोषं चिमचिमायते ।

प्रसुप्तिलक्षणम्—

वायुनोदीरितः श्लेष्मा त्वचं प्राप्य विशुष्यति ॥ ३० ॥
ततस्त्वग्जायते पाडुः क्रमेण च विचेतना ।
अल्पकंडूरविक्लेदा सा प्रसुप्तिः प्रसुप्तित[1] ॥ ३१ ॥

उत्कोठकोठ (जुरपित्ती) लक्षणम्—

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मंडलान्यतिकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ ३२ ॥
उत्कोठः सोऽनुबद्धस्तु कोठ इत्यभिधीयते ।
प्रोक्ताः षट्त्रिंशदित्येते क्षुद्ररोगा विभागशः ॥ ३३ ॥"

---

१ प्रसुप्तितः शून्यत्वात् चेष्टाराहित्यात् ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा ।

अथाऽतः क्षुद्ररोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

"विस्रावयेज्जलौकोभिरपक्वामजगल्लिकाम् ।,,
"स्वेदयित्वा यवप्रख्यां (यवारी) विलयाय प्रलेपयेत् ॥ १ ॥

दारुकुष्ठमनोह्वालैर्,,
इत्यापाषाणगर्दभात् ।
विधिस्ताश्चाचरेत्पक्वान् व्रणवत्साजगल्लिकान् ॥ २ ॥

मुखदूषिका (मुहासा-डोड़सा) चिकित्सा—

"रोध्रकुस्तुंवुरुवचाप्रलेपो मुखदूषिके ।
वटपल्लवयुक्ता वा नारिकेलोत्थशुक्तयः ॥ ३ ॥

अशांतौ वमन नस्यं ललाटे च सिराव्यधः ।
"निंबाचुत्रांतो निंबाम्बुनाधितं पद्मकंटके ॥ ४ ॥

पिवेत्क्षौद्रान्वितं सर्पिर्निंबारग्वधलेपनम् ।,,
विवृतादींस्तु जातांतांश्चिकित्सेत्सेरिवेल्लिकान् ।
पित्तवीसर्पवत्तद्वत् प्रत्याख्यायाग्निरोहिणीम् ॥ ५ ॥

"विलंघन रक्तविमोक्षणं च
विरूक्षणं कायविशोधनं च ।
धात्रीप्रयोगान् शिशिरप्रदेहान्
कुर्यात्सदा जालकगर्दभस्य ॥ ६ ॥,,

"विदारिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत् ।,,
"मेदोर्बुदक्रियां कुर्यान्मुनरा शर्करार्बुदे । ७ ॥,,

"प्रवृद्धं सुबहुच्छिद्रं सशोफं मर्मणि स्थितम् ।
वल्मीकं हस्तपादे च वर्जयेत्,,
[1]इतरत्पुनः ॥ ८ ॥

शुद्धस्यास्रे हृते लिपेत् सपट्वारेवतामृतैः ।
श्यामाकुलत्थिकामूलदंतीपललसक्तुभिः,, ॥ ९ ॥
"पक्वे तु दुष्टमांसानि गतीः सर्वाश्च शोधयेत् ।
शस्त्रेण सम्यगनु च क्षारेण ज्वलनेन वा,, ॥ १० ॥
"शस्त्रेणोत्कृत्य निःशेषं स्नेहेन कद्दरं दहेत् ।,,
"निरुद्धमणिवत्कार्यं रुद्धपायोश्चिकित्सितम्,, ॥ ११ ॥
"चिप्पं शुद्धया जितोष्माणं साधयेच्छस्त्रकर्मणा ।
दुष्टं कुनखमप्येवं,,
"चरणावलसे पुनः ॥ १२ ॥

धान्याम्लसिक्तौ कासीसपटोलीरोचनातिलैः ।
सनिंबपत्रैरालिपेद्,,
"दहेत् तिलकालकान्" ॥ १३ ॥

"मषांश्च सूर्यकांतेन क्षारेण यदि वाऽग्निना ।
"तद्वदुत्कृत्य शस्त्रेण चर्मकीलजतूमणी,, ॥ १४ ॥
"लांछनादित्रये कुर्याद्यथासन्नं सिराव्यधम् ।
लेपयेत्क्षीरपिष्टैश्च क्षीरिवृक्षत्वगंकुरैः ॥ १५ ॥

व्यङ्ग (झाँई) चिकित्सा—

"व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिका ।
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मषी,, ॥ १६ ॥
रक्तचंदनमंजिष्ठाकुष्ठरोध्रप्रियंगवः ।
वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः ॥ १७ ॥
द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्षपाः पयसा सह ।
पिष्टाः कुर्वंति वक्त्रेंदुमपास्तव्यंगलाञ्छनम् ॥ १८ ॥

---

१ इतरत् प्रवृद्धादिगुणरहितं वल्मीकम् ।

क्षीरपिष्टा घृतक्षौद्रयुक्ता वा भृष्टनिस्तुषाः ।
मसूराः क्षीरपिष्टा वा तीक्ष्णाः शाल्मलिकंटकाः ॥ १९ ॥
सगुडः कोलमज्जा वा शशासृक्क्षौद्रकल्कितः ।
सप्ताहं मातुलुंगस्थं कुष्ठं वा मधुनान्वितम् ॥ २० ॥
पिष्टा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौद्गली जटा ।
गोरस्थि मुशलीमूलयुक्तं वा साज्यमाक्षिकम् ॥ २१ ॥
जम्ब्वाम्रपल्लवा मस्तु हरिद्रे द्वे नवो गुडः ।
लेपः सवर्णकृत् पिष्टं स्वरसेन च तिंदुकम् ॥ २२ ॥
उत्पलपत्रं तगरं प्रियंगुकालीयकं बदरमज्जा ।
इदमुद्वर्तनमास्यं करोति शतपत्रसंकाशम् ॥ २३ ॥
एभिरेवौषधैः पिष्टैर्मुखाभ्यंगाय साधयेत् ।
यथादोषर्तुकान् स्नेहान् मधुकक्वाथसंयुतैः ॥ २४ ॥

अभ्यङ्गः—

यवान् सर्जरसं रोध्रमुशीरं चंदनं मधु ।
घृतं गुडं च गोमूत्रे पचेदादर्विलेपनात् ॥ २५ ॥
तदभ्यंगा त्रहंत्यास्यं नीलिकाव्यंगदूषिकान् ।
मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ ॥ २६ ॥

नस्यम्—

कुंकुमोशीरकालीयलाक्षायष्टयाह्वचंदनम् ।
न्यग्रोधपादांस्तरुणान् पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ २७ ॥
सनीलोत्पलमंजिष्ठं पालिकं सलिलाढके ।
पक्त्वा पादावशेषेण तेन पिष्टैश्च कार्षिकैः ॥ २८ ॥
लाक्षापत्तंगमंजिष्ठायष्टीमधुककुंकुमैः ।
अजाक्षीरद्विगुणितं तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ २९ ॥
नीलिकापलितव्यंगवलीतिलकदूषिकान् ।
हंति तन्नस्यमभ्यस्तं मुखोपचयवर्णकृत् ॥ ३० ॥

कान्तिकरःस्नेहः

मंजिष्ठाशबरोद्भवस्तुवरिकालाक्षाहरिद्राद्वयं
नेपालीहरितालकुंकुमगदागोरोचनागैरिकम् ।
पत्रं पांडु वटस्य चंदनयुगं कालीयकं पारदं
पत्तंगं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा केसरम् ॥ ३१ ॥

सिक्थं तुत्थं पद्मकाद्यो वसाज्यं
मज्जा क्षीरं क्षीरिवृक्षाम्बु चाग्नौ ।
सिद्धं सिद्धं व्यंगनील्यादिनाशे
वक्त्रे छायामैंदवीं चाशु धत्ते ॥ ३२ ॥

[२]मार्कवस्वरसक्षीरतोयपिष्टानि नावने ।
प्रसुप्तौ वातकुष्ठोक्तं कुर्याद्दाहं च वह्निना ॥
उत्कोठे कफपित्तोक्तं, कोठे सर्वं च कौष्ठिकम्" ॥ ३३ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

प्रसूतितन्त्रम्—

अथाऽतो गुह्यरोगविज्ञानं व्याख्यामः ।

उपदंशादीनां निदानम्—

"स्त्रीव्यवायनिवृत्तस्य सहसा भजतोऽथवा[३] ।
दोषाध्युषितसंकीर्णमलिनाणुरजःपथाम् ॥ १ ॥

---

१ शबरोद्भवो लोध्रम् । तुवरिका स्फटिका । नेपाली मनःशिला । गदः कुष्ठम् । ऐंदवी छाया चान्द्रमसी कान्तिः । २ मार्कवो भृङ्गराजः । ३ सहसाऽकस्मात् स्त्रीमैथुनं भजतः । दोषैरध्युषितःसंकीर्णो मलिनोऽणुःसूक्ष्मो रजःपन्था योनिर्यस्याःसाताम् ।

अन्ययोनिमनिच्छंतीमगम्यां नवसूतिकाम् ।
दूषितं स्पृशतस्तोयं रतान्तेष्वपि नैव वा[1] ॥ २ ॥
विवर्धयिषया तीक्ष्णान् प्रलेपादीन् प्रयच्छतः ।
मुष्टिदंतनखोत्पीडाविषवच्छूकपातनैः ॥ ३ ॥
वेगनिग्रहदीर्घातिखरस्पर्शविघट्टनैः ।
दोषा दुष्टा गता गुह्यं त्रयोविंशतिमामयान् ॥ ४ ॥
जनयंत्युपदंशादीन्

उपदंशलक्षणानि—

उपदंशोऽत्र पंचधा ।
पृथग्दोषैः सरुधिरैः समस्तैश्च,

अत्र मारुतात् ॥ ५ ॥

मेढ्रशोफे रुजस्तिव्राः स्तंभस्त्वक्परिस्फोटनम्[2] ।
"पक्वोदुंबरसंकाशः पित्तेन श्वयथुर्ज्वरः ॥ ६ ॥"
श्लेष्मणा कठिनः स्निग्धः कंडूमान् शीतलो गुरुः"
"शोणितेनासितस्फोटसंभवोऽसृस्रुतिर्ज्वरः ॥ ७ ॥
"सर्वजे सर्वलिंगत्वं श्वयथुर्मुष्कयोरपि ।
तीव्रा रुगाशुपचनं दरणं कृमिसंभवः" ॥ ८ ॥

उपदंशस्यसाध्यत्वादि—

याप्यो रक्तोद्भवस्तेषां मृत्यवे संनिपातजः ।

मांसकीलक लक्षणम्—

जायंते कुपितैर्दोषैर्गुह्यासृक्पिशिताश्रयैः ॥ ९ ॥
अंतर्बहिर्वा मेढ्रस्य कंडूला मांसकीलकाः ।
पिच्छिलासस्रवा योनौ तद्वच्च छत्रसंनिभाः ॥ १० ॥
तेऽर्शांस्युपेक्षया घ्नति मेढ्रपुंस्त्वभगार्तवम् ।

---

१ अन्ययोनि महिषी घोटवयादियोनिम् । रतान्तेष्वपि जलं नैव वा स्पृशतः । २ त्वक्परिस्फोटनं त्वचो विदरणम् ।

"गुह्यस्य बहिरंतर्वा पिटिकाः कफरक्तजाः ॥ ११ ॥
सर्षपामानसंस्थाना घनाः सर्षपिकाः स्मृताः ।,,
"पिटिका बहवो दीर्घा दीर्यंत मध्यतश्च याः ॥ १२ ॥
सोऽवमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षवान् ।,,
"कुंभीका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुजा,, ॥ १३ ॥
"अलजीं मेहवद्विद्याद्,,

"उत्तमां रक्तपित्तजाम् ।

पिटिकां माषमुद्गाभां,,

"पिटिका पिटिकाचिता ॥ १४ ॥

कर्णिका पुष्करस्येव ज्ञेया पुष्करिकेति सा ।,,
"पाणिभ्यां भृशमव्यूढे[1] संव्यूढपिटिका भवेत्,, ॥ १५ ॥
"मृदितं मृदितं [1]वस्त्रसरब्धं वातकोपत ।,,
"विषमा कठिना भुग्ना वायुनाऽष्ठीलिका स्मृता,, ॥ १६ ॥

निवृत्तलक्षणम्—

विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्म मेढ्रजम् ।
निवर्तते सरुग्दाहं क्वचित्पाकं च गच्छति ॥ १७ ॥
पिण्डितं ग्रथितं चर्म [2]तत्प्रलंबमधोमणेः ।
निवृत्तसंज्ञं सकफं कण्डूकाठिन्यवत्तु तत् ॥ १८ ॥

"दुरूढं स्फुटितं चर्म निर्दिष्टमवपाटिका ।
"वातेन दूषितं चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत् ॥ १९ ॥
स्रोतो मूत्रं ततोऽभ्येति मंदधारमवेदनम् ।
मणेर्विकाशरोधश्च स निरुद्धमणिर्गदः ॥ २० ॥,,
"लिंगं शूकैरिवापूर्णं ग्रथिताख्यं कफोद्भवम् ।"
"शूकदूषितरक्तोत्था स्पर्शहानिस्तदाह्वया" ॥ २१ ॥

---

१ भृशसंव्यूढेऽतिशयेनमर्दिते । वस्त्रसंरब्धं वस्त्रेण क्षोभितम् । २ मणि लिङ्गाग्रभागः ।

"छिद्रैरणुमुखैर्यत्तु मेहनं सर्वतश्चितम् ।"
वातशोणितकोपेन तं विद्याच्छतपोनकम् ॥ २२ ॥
"पित्तासृग्भ्यां त्वचः पाकस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ।"
"मांसपाकः सर्वजः सर्ववेदनो मांसशातनः" ॥ २३ ॥
"सरागैरसितैः स्फोटैः पिटिकाभिश्च पीडितम् ।
मेहनं वेदनाश्चोग्रास्तं विद्यादसृगर्बुदम् ॥ २४ ॥
मांसार्बुदं प्रागुदितं विद्रधिश्च त्रिदोषजः" ।
"कृष्णानि भूत्वा मांसानि विशीर्यन्ते समंततः ॥ २५ ॥
पक्वानि संनिपातेन तान् विद्यात्तिलकालकान् ।"

साध्यत्वादि--

मांसोत्थमर्बुदं पाकं विद्रधिं तिलकालकान् ॥ २६ ॥
चतुरो वर्जयेदेषामाद्यांश्छीघ्रमुपाचरेत् ।

योनिव्यापदः--

विंशतिर्व्यापदो योनेर्जायन्ते दुष्टभोजनात् ॥ २७ ॥

वातजायोनिव्यापत्--

विषमस्थाङ्गशयनभृशमैथुनसेवनैः ।
दुष्टार्तवादपद्रव्यैर्बीजदोषेण दैवतः ॥ २८ ॥
योनौ क्रुद्धोऽनिलः कुर्याद्रुक्तोदायामसुप्तताः ।
पिपीलिकासृप्तिमिव स्तंभं कर्कशतां स्वनम् ॥ २९ ॥
फेनिलारुणकृष्णाल्पतनुरूक्षार्तवस्रुतिम् ।
स्रंसं वंक्षणपार्श्वादौ व्यथां गुल्मं क्रमेण च ॥ ३० ॥
तांस्तांश्च स्वान्गदान्व्यापद्वातिकी नाम सा स्मृता ।
"सैवातिचरणा शोफसंयुक्तातिव्यवायतः" ॥ ३१ ॥
"मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजंघोरुवंक्षणम् ।
रुजन्संदूषयेद्योनिं वायुः प्राक्चरणेति सा" ॥ ३२ ॥

---

१ अपद्रव्यैर्वातिकोपकैः सेवितैः रत्नैः ।

"वेगोदावर्तनाद्योनिं प्रपीडयति मारुतः ।
सा फेनिलं रजः कृच्छ्रादुदावृत्तं विमुंचति ॥ ३३ ॥
इयं व्यापदुदावृत्ता"
जातघ्नी तु यदानिलः ।"
जातं जातं [1]सुतं हति रौक्ष्याद्दुष्टार्तवोद्भवम्" ॥ ३४ ॥

अन्तर्मुखीयोनि :—

अत्याशितायाः विषमं स्थितायाः सुरते मरुत् ।
अन्नेनोत्पीडितो योनेः स्थितः स्रोतसि वक्रयेत् ॥ ३५ ॥
सास्थिमांस मुखं तीव्ररुजमंतर्मुखीति सा ।
"वातलाहारसेविन्या जनन्या कुपितोऽनिल. ॥ ३६ ॥
"स्त्रियो योनिमणुद्वारां कुर्यात्सूचीमुखीति सा ।"
"वेगरोधादतो वायुर्दुष्टो विण्मूत्रसंग्रहम् ॥ ३७ ॥
करोति योनेः शोषं च शुष्काख्या सातिवेदना ।
"षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत् ॥ ३८ ॥
वमेत्सरुङ् नीरुजो वा यस्याः सा वामिनी मता ।"
"योनौ वातोपतप्तायां स्त्रीगर्भे बीजदोषतः ॥ ३९ ॥
नृद्वेषिण्यस्तनी च स्यात्षंढसंज्ञाऽनुपक्रमा ।"

महायोनि :—

दुष्टो विष्टभ्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः ॥ ४० ॥
कुरुते विवृतां स्रस्तां वातिकोमिव दुःखिताम् ।"
उत्सन्नमांसां तामाहुर्महायोनिं महारुजाम् ॥ ४१ ॥

पित्तजायोनिव्यापत्—

यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।
करोति दाहपाकोषापूतिगंधज्वरान्विताम् । ४२ ॥

---

१ सुतंघ्नमुपलक्षणमेतत्सुतामपि ।

भृशोष्णभूरिकुणपनीलपीतासितार्तवाम् ।
सा व्यापत् पैत्तिकी"

"रक्तयोन्याख्यासृगतिस्रुतेः" ॥ ४३ ॥

कफजायोनिव्यापत्--

कफोभिष्यंदिभिः क्रुद्धः कुर्याद्योनिमवेदनाम् ।
शीतलां कंडुलां पांडुपिच्छिलां तद्विधस्रुतिम् ॥ ४४ ॥
सा व्यापच्छ्लैष्मिकी"

"वातपित्ताभ्यां क्षीयते रजः ।
सदाहकार्श्यवैवर्ण्यं यस्यां सा लोहितक्षया" ॥ ४५ ॥

परिप्लुता--

पित्तलाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात् ।
पित्तयुक्तेन मरुता योनिर्भवति दूषिता ॥ ४६ ॥
शूना स्पर्शाक्षमा सार्तिर्नीलपीतास्रवाहिनी ।
बस्तिकुक्षिगुरुत्वातीसारारोचककारिणी ॥ ४७ ॥
श्रोणिवंक्षणरुक्तोदज्वरकृत्सा परिप्लुता ।
"वातश्लेष्मामयव्याप्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥ ४८ ॥
उपप्लुता स्मृता योनि."

विप्लुताख्या त्वधावनात् ।
संजातजंतुः कंडूला कंडूवा चातिरतिप्रिया" ॥ ४९ ॥
"अकालवाहनाद्[1]वायुः श्लेष्मरक्तविमूर्छितः ।
कर्णिका जनयेद्योनौ रजोमार्गनिरोधिनीम् ॥ ५० ॥
सा कर्णिनी

त्रिभिर्दोषैर्योनिगर्भाशयाश्रितैः ।
यथास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्सा सांनिपातिकी ॥ ५१ ॥

[1] अकाले प्रसवकालिकशूलाभावरूपेऽकाले वाहनात् प्रवाहणात् ।

गर्भाग्रहणे हेतु :--

इति योनिगदा नारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति[1] ।
ततो गर्भं न गृह्णाति रोगांश्चाप्नोति दारुणान् ॥
असृग्दरार्शोगुल्मादीनाबाधांश्चानिलादिभिः" ॥ ५२ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

प्रसूतिसन्त्रम्--

अथाऽतो गुह्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

उपदंशचिकित्सा--

"मेढ्रमध्ये सिरां विध्येदुपदंशे नवोत्थिते ।
शीतां कुर्यात् क्रियां शुद्धिं विरेकेण विशेषतः ॥ १ ॥
तिलकल्कघृतक्षौद्रैर्लेपः पक्वे तु पाटिते ।

क्षालनेक्वाथ :--

जम्ब्वाम्रसुमनोनीपश्वेत[2]काम्बोजिकाङ्कुरान् ॥ २ ॥
शल्लकीबदरीबिल्वपलाशतिनिशोद्भवाः ।
त्वचः क्षीरिद्रुमाणां च त्रिफलां च जले पचेत् ॥ ३ ॥
स क्वाथः क्षालनं तेन[3] पक्वं तैलं च रोपणम् ।

लेप :--

तुत्थगैरिकलोध्रैलामनोह्वालरसाञ्जनैः ॥ ४ ॥
हरेणुपुष्पकासीससौराष्ट्रीलवणोत्तमैः ।
लेपः क्षौद्रयुतैः सूक्ष्मैरुपदंशव्रणापहः ॥ ५ ॥

१ प्रतीच्छति-गृह्णाति । २ काम्बोजिका-माषपर्णी । ३ तेन क्वाथेन ।

कपाले त्रिफला दग्धा मघृता रोपणं परम् ।
सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषं तु शोफवत् ॥ ६ ॥
न च याति यथा पाकं प्रयतेत तथा भृशम् ।
पक्वैः स्नायुसिरामांसैः प्रायो नश्यति हि ध्वजः[1] ॥ ७ ॥
"अशंसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ।",
"सर्षपा लिखिताः सूक्ष्मैः[2]कषायैरवचूर्णयेत् ॥ ८ ॥
तैरेवाभ्यंजनं तैलं साधयेद् व्रणरोपणम् ।,,
"क्रियेयमवमंथेऽपि रक्तं स्राव्यं[3]तथोभयोः,, ॥ ६ ॥
"कुंभीकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।,,
तिदुकत्रिफलारोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ १० ॥
"अलज्यां सुनरक्तायामयमेव[4] क्रियाक्रमः ।,,
"उत्तमाख्यां तु पिटिकां संछिद्य बडिशोद्धृताम् ॥ ११ ॥
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ।
"क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करग्यूढयोर्हितः,, ॥ १२ ॥
"त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेद्,,
"मृदितं पुनः ।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत्,, ॥ १३ ॥
"अष्ठीलिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत् ।,,

निवृत्तचिकित्सा—

निवृत्तं सर्पिषाऽभ्यज्य स्वेदयित्वोपनाहयेत् ॥ १४ ॥
त्रिरात्रं पंचरात्रं वा सुस्निग्धैः शाल्वणादिभिः ।
स्वेदयित्वा ततो भूयः स्निग्धं चर्म [5]समानयेत् ॥ १५ ॥
मणिं प्रपीड्य शनकैः प्रविष्टे चोपनाहनम् ।
मणौ पुन. पुनः, स्निग्धं भोजनं चाऽत्र शस्यते" ॥ १६ ॥

---

१ ध्वजःशिश्नः । २ कषायैः कषायद्रव्यैः पूर्वोक्तैर्जम्ब्वाम्रादिभिः । ३ उभयोः सर्षपावमन्थयोः । ४ अयमेव कुंभीकावत् । ५ समानयेत्-प्रापयेत् ।

"अयमेव प्रयोज्यः स्यादवपाट्यामपि क्रमः।

निरुद्धमणि चिकित्सा—

नाडीमुभयतो द्वारां निरुद्धे जतुना सुताम् ॥ १७ ॥
स्नेहाक्तां स्रोतसि न्यस्य सिञ्चेत्स्नेहैश्चलापहैः।
त्र्यहात्त्र्यहात्स्थूलतरां न्यस्य नाडीं विवर्धयेत् ॥ १८ ॥
स्रोतोद्वारमसिद्धौ तु विद्वान् शस्त्रेण पाटयेत्।
सेवनीं वर्जयन् युञ्ज्यात्सद्यःक्षतविधिं ततः,, ॥ १९ ॥
"प्रन्थितं स्वेदितं नाड्या स्निग्धोष्णैरुपनाहयेत्।,,
"लिपेत्कषायैः सक्षौद्रैर्लिखित्वा शतपोनकम्,, ॥ २० ॥
"रक्तविद्रधिवत्कार्या चिकित्सा शोणितार्बुदे।,,
"व्रणोपचारं सर्वेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥,,

योनिव्यापत्सुवातजयः कार्यः—

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्।
स्नेहनस्वेदवस्त्यादि वातजासु विशेषतः ॥ २२ ॥

तत्रहेतुः—

नहि वाताहते योनिर्वनितानां प्रदुष्यति।
अतो जित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम् ॥ २३ ॥

बलातैलपानादि—

पाययेत बलातैलं मिश्रकं सुकुमारकम्।
स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्समाम् ॥ २४ ॥
पाणिनोन्नमयेज्जिह्मां संवृतां व्यधयेत्पुनः।
प्रवेशयेन्निःसृतां च विवृतां परिवर्तयेत् ॥ २५ ॥
स्थानापवृत्ता योनिर्हि शल्यभूता स्त्रियो मता।
वर्मभिर्वमनाद्यैश्च　　मृदुभिर्योजयेत्स्त्रियम् ॥ २६ ॥

सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ।
वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥ २७ ॥

योनिवातरोगघ्नं घृतम्—

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दनिशाद्वयैः ।
गुडूचीमिर्यकाभीरुशुकनासापुनर्नवैः ॥ २८ ॥

परूषकैश्च विपचेत्प्रस्थमक्षसमैर्घृतात् ।
योनिवातविकारघ्नं तत्पीतं गर्भदं परम् ॥ २९ ॥

वचादिकम्—

वचोपकुंचिकाजाजीकृष्णावृषकसैंधवम् ।
अजमोदायवक्षारशर्कराचित्रकान्वितम् ॥ ३० ॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोड्य खादेत्तद्घृतभर्जितम् ।
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ३१ ॥
"वृषकं मातुलुंगस्य मूलानि मदयंतिकाम् ।
पिबेन्मद्यै. सलवणैस्तथा कृष्णोपकुंचिकेः" ॥ ३२ ॥
"रास्नाश्वदंष्ट्रावृषकैः शृतं शूलहरं पयः ।"
"गुडूचीत्रिफलादंतीक्वाथैश्च परिषेचनम्" ॥ ३३ ॥
"नतवार्ताकिनीकुष्ठसैंधवामरदारुभिः ।
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः" ॥ ३४ ॥

पित्तजयोनिव्यापच्चिकित्सा—

पित्तलाना तु योनीनां सेकाभ्यंगपिचुक्रियाः ।
शीताः पित्तजितः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३५ ॥

घृतलेह :—

शतावरीमूलतुलाचतुष्पात्क्षुण्णपीडितात् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पाचयेन घृताढकम् ॥ ३६ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षांशैर्मधुकद्वियलान्वितैः ॥ ३७ ॥

सिद्धशीते तु मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
शर्कराया दशपलं क्षिपेल्लिह्यात्पिचुं[1] ततः ॥ ३८ ॥
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं परम् ।
क्षतं क्षयमसृक्पित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ॥ ३९ ॥
कामला वातरुधिरं विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
अपस्मारार्दितायाममदोन्मादांश्च नाशयेत् ॥ ४० ॥

क्षीरसर्पिषी—

एवमेव पयःसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।
गर्भदं पित्तजानां च रोगाणां परमं हितम् ॥ ४१ ॥

गर्भदं घृततैलम्—

बलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं पचेत् ।
क्षीरे चतुर्गुणे कृष्णाकाकनासासितान्वितैः ॥ ४२ ॥
जीवन्तीक्षीरकाकोलीस्थिरावीरर्द्धिजीवकैः ।
पयस्याश्रावणीमुद्गपीलुमाषाख्यपर्णिभिः ॥ ४३ ॥
वातपित्तामयान् हत्वा पानात् गर्भं दधाति तत् ।

रक्तजयोनिचिकित्सा—

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धमवेक्ष्य च ॥ ४४ ॥
यथादोषोदयं युञ्ज्यात् रक्तस्थापनमौषधम् ।

पुष्यानुगचूर्णम्—

पाठा जंब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं[2] रसाञ्जनम् ॥ ४५ ॥
[3]अंबष्ठा शाल्मलीपिच्छा समंगा वत्सकत्वचम् ।
बाह्लीकबिल्वातिविषारोध्रतोयदगैरिकम् ॥ ४६ ॥
शुण्ठीमधूकमाचीकरक्तचंदनकट्फलम् ।
कट्वंगवत्सकानंताधातकीमधुकार्जुनम् ॥ ४७ ॥

---

१ पिचुं कर्षमात्रम् । २ शिलोद्भेदं-पाषाणभेदः । अम्बष्ठा पाठा । शाल्मलीपिच्छा मोचरसः । समङ्गा-मञ्जिष्ठा बाह्लीकं-केशरम् । माचीकाद्राक्षा । शुण्ठीत्यादौ चरके 'तु कट्फलं मरिचं शुण्ठीं मृद्वीकां रक्तचन्दनम्' इतिपाठः ।

पुष्ये गृहीत्वा संचूर्ण्य मक्षौद्रं तंदुलांभसा ।
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ ४८ ॥
दोषा जंतुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।
योनिदोषं रजोदोषं श्यावश्वेतारुणासितम् ॥ ४९ ॥
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ।

कफजयोनि चिकित्सा—

योन्यां वलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ ५० ॥

तैलम्—

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः ।
जंब्वाम्रमारकासीसमरोध्रकट्फलतिंदुकैः ॥ ५१ ॥
सौराष्ट्रिकादाडिमत्वगुदुंबरशलाटुभिः ।
अक्षमात्रैरजामूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ॥ ५२ ॥
तैलप्रस्थं तदभ्यंगपिचुबस्तिषु योजयेत् ।
स्तब्धा चलोत्सन्ना स्तब्धा पिच्छिला स्रावणी तथा ॥ ५३ ॥
विप्लुतोपप्लुता योनिः सिद्धयेत् स्फोटशूलिनी ।

यवान्नादि—

यवान्नमभयारिष्टं सीधुतैलं च शीलयेत् ॥ ५४ ॥
पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगांश्च समाक्षिकान् ।

योनिपैच्छिल्यनाशकश्चूर्णः

कासीसं त्रिफला कांक्षीमाम्रजंब्वस्थिधातकी ॥ ५५ ॥
पैच्छिल्ये क्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णो वैशद्यकारकः ।

दुर्गन्धादिनाशकश्चूर्णः—

[1]पलाशधातकीजंबूसमंगामोचसर्जजः ॥ ५६ ॥
दुर्गंधे पिच्छिले क्लेदे स्तंभनश्चूर्ण इष्यते ।
आरग्वधादिवर्गस्य कषायः परिषेचनम् ॥ ५७ ॥

---

१ मोचोमोचरसः ।

स्तब्धयोनीनां मार्दवकरम्—

स्तब्धाना कर्कशाना च कार्यं मार्दवकारकम् ।
धारणं वेसवारस्य कृसरापायसस्य च ॥ ५८ ॥
दुर्गंधानां कषायः स्यात्तैलं वा कल्क एव वा ।
चूर्णो वा सर्वगंधाना पूतिगंधापकर्षणः ॥ ५९ ॥
श्लेष्मलानां कटुप्रायाः समूत्रा बस्तयो हिताः ।,
पित्ते समधुकक्षीरा, वाते तैलाम्लसंयुताः ॥ ६० ॥
संनिपातसमुत्थायाः कर्म साधारणं हितम् ।,

शुद्धयोनिषुगर्भधारणम्—

एवं योनिषु शुद्धासु गर्भं विंदति योषितः ॥ ६१ ॥
[1]अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे सति ।

पुरुषस्यापिशुक्रचिकित्सा—

पंचकर्मविशुद्धस्य पुरुषस्यापि [2]चेंद्रियम् ॥ ६२ ॥
परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्घ्नैरुपाचरेत् ।

फलघृतम्—

मंजिष्ठाकुष्ठतगरत्रिफलाशर्करावचाः ॥ ६३ ॥
द्वे निशे मधुकं मेदा दीप्यकः कटुरोहिणी ।
पयस्याहिंगुकाकोलीवाजिगंधाशतावरीः ॥ ६४ ॥
पिष्ट्वाक्षांशैर्घृतप्रस्थं पचेत्क्षीराच्चतुर्गुणम् ।
योनिशुक्रप्रदोषेषु तत्सर्वेषु च शस्यते ॥ ६५ ॥
आयुष्यं पौष्टिकं मेध्यं धन्यं पुंसवनं परम् ।
फलसर्पिरिति ख्यातं पुष्पे पीतं फलाय यत् ॥ ६६ ॥
म्रियमाणप्रजाना च गर्भिणीनां च पूजितम् ।
एतत्परं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम् ॥ ६७ ॥"

---

१ प्राकृते स्वाभाविके बीजेशुक्रेऽदुष्टेशुद्धे । २ इन्द्रियं शुक्रम् ।

पंचत्रिंशोऽध्यायः ।

३५ अतः ३८ पर्यन्तमगदतन्त्रम् ।

अथाऽतो विषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

विषस्यप्रागुत्पत्तिदर्शनम्—

"मथ्यमाने जलनिधावमृतार्थं सुरासुरैः ।
जातः प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥ १ ॥
दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरित्केशोऽनलेक्षणः ।
जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनाऽसौ विषसंज्ञितः ॥ २ ॥
हुंकृतो ब्रह्मणा मूर्तिस्ततः स्थावरजंगमे ।
सोऽस्यतिष्ठन्निजं रूपमुज्झित्वा वंचनात्मकम्[२] ॥ ३ ॥

स्थावरविषम्—

स्थिरमत्युल्बणं वीर्यं यत्कंदेषु प्रतिष्ठितम् ।
कालकूटेंद्रवत्साख्य शृंगीहालाहलादिकम् ॥ ४ ॥

जङ्गम विषम्—

सर्पलूतादिदंष्ट्रासु दारुणं जंगमं विषम् ।

त्रिविधंविषम्—

स्थावरं जंगमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् ॥ ५ ॥
कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः ।
हंति योगवशेनाशु चिराच्चिरतराच्च तत्[३] ॥ ६ ॥

---

१ तं घोरदर्शनं पुरुषं दृष्ट्वा जगत् विषण्णं विषाद युक्तम् । तेन जगद्विषण्णेन । २ वंचनात्मकं वञ्चनस्वभाव स्वरूपम् । ३ तत्-गरसंज्ञम् ।

शोफपाण्डुदरोन्मादुर्नामादीन् करोति च ।

विषगुणा :—

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु ॥ ७ ॥
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च ।

जीवितहरं विषम्—

ओजसो विपरीतं तद् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणैः ॥ ८ ॥
वातपित्तोत्तरं नृणां सद्यो हरति जीवितम् ।

तत्रहेतु :—

विषं हि देहं संप्राप्य प्राग्दूषयति शोणितम् ॥ ६ ॥
कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान्सहाशयान् ।
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते ॥ १० ॥

स्थावरविषवेगलक्षणानि—

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे पूर्वे प्रजायते ।
जिह्वायाः श्यावता स्तंभो मूर्च्छा त्रास- क्लमो वमिः ॥ ११ ॥
द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कंठे च वेदना ।
विषं चामाशयं प्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ १२ ॥
तालुशोषस्तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् ।
दुर्बले हरिते शूने जायते चास्य लोचने ॥ १३ ॥
पक्वाशयगते तोदहिध्माकासांत्रकूजनम् ।
"चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम्" ॥ १४ ॥
"कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे ।
सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना" ॥ १५ ॥
"षष्ठे संज्ञाप्रणाशश्च सुभृशं चाऽतिसार्यते ।"
"स्कंधपृष्ठकटीभंगो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे" ॥ १६ ॥

विषवेगचिकित्सा—

प्रथमे विषवेगे तु वांतं शीताम्बुसेचितम् ।
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्तमगदं पाययेद् द्रुतम् ॥ १७ ॥

"द्वितीये पूर्ववद्वांतं विरिक्तं चाऽनुपाययेत् ।"
"तृतीयेऽगदपानं तु हितं नस्यं तथांजनम्" ॥ १८ ॥
"चतुर्थे स्नेहसंयुक्तमगदं प्रतियोजयेत् ।"
"पंचमे मधुककाथमाक्षिकाभ्यां युतं हितम्" ॥ १९ ॥
"षष्ठेऽतिसारवत्सिद्धि"
रवपीडस्तु सप्तमे ।
मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ २० ॥

विषघ्नी यवागूः—

[1]कोशातक्यग्निकः पाठा सूर्यवल्ल्यमृताभया ।
शेलुः शिरीषः किणिही हरिद्रे क्षौद्रसाह्वया ॥ २१ ॥
पुनर्नवे त्रिकटुकं बृहत्यौ सारिवे बला ।
एषां यवागूं निर्यूहे शीतां सघृतमाक्षिकाम् ॥ २२ ॥
युंज्याद्वेगांतरे सर्वविषघ्नी कृतकर्मणः ।
तद्वन्मधूकमधुकपद्मकेसरचंदनैः ॥ २३ ॥

चन्द्रोदय नामागद :—

"अंजनं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
फलिनी त्रिकटु स्पृक्का नागपुष्पं सकेसरम् ॥ २४ ॥
हरेणु मधुकं मासी रोचना काकमालिका[2] ।
श्रीवेष्टकं सर्जरसः शताह्वा कुंकुमं बला ॥ २५ ॥
तमालपत्रतालीसभूर्जोशीरनिशाद्वयम् ।,,
[3]कन्योपवासिनी स्नाता शुक्लवासा मधुद्रुतैः ॥ २६ ॥
द्विजानभ्यर्च्य तैः पुष्ये कल्पयेदगदोत्तमम् ।
वैद्यश्चात्र तदा मंत्रं प्रयतात्मा पठेदिमम् ॥ २७ ॥

---

१ कोशातकी "तरोई" इति लोके । सूर्यवल्ली-सूर्यभक्ता । क्षौद्र साह्वया-वटमाक्षिकम् । २ काकमालिका-काकमाची । ३ उपवासिनी कृतोपवासा, स्नाता शुक्लवासा परिहितशुक्लवस्त्रा ।

"नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च ।
यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम् ॥ २८ ॥
एतेन सत्यवाक्येन अगदो मे प्रसिध्यतु ।
नमो वैडूर्यमाते हुलुहुलु रक्ष मां सर्वविषेभ्यः ॥ २९ ॥
गौरि गान्धारि चंडालि मातंगि स्वाहा ।
पिष्टे च द्वितीयो मंत्रः
ॐ हरिमायि स्वाहा ॥ ३० ॥
अशेषविषवेतालग्रहकार्मणपाप्मसु ।
मरकव्याधिदुर्भिक्षयुद्धाशनिभयेषु च ॥ ३१ ॥
पाननस्यांजनालेपमणिबन्धादियोजितः ।
एष चंद्रोदयो नाम शान्तिः स्वस्त्ययनं परम् ॥ ३२ ॥

दूषीविषविवरणम्—

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हृतं वा
दावाग्निवातातपशोषितं वा ।
स्वभावतो वा गुगुणैर्न युक्तं
दूषीविषाख्यां विषमभ्युपैति ॥ ३३ ॥
वीर्याल्पभावादविभाव्यमेतत्-
कफावृतं वर्षगणानुबंधि ।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो
दुष्टास्त्ररोगी तृडरोचकार्तः ॥ ३४ ॥
मूर्छन् वमन् गद्गदवाग् विमुह्यन्
भवेच्च दूष्योदरलिंगजुष्टः ।
आमाशयस्थे कफवातरोगी
पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥ ३५ ॥
भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहांगो[1]
विलूनपक्षः स यथा विहंगः ।

---

१ ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो—अपरतन्त्रोऽङ्गारपरं प्रत्यस्तेन नष्टकेशलोमा ।

रसादिपुस्थितं विकारकरम्—

स्थितं रसादिष्वथवा विचित्रान्
करोति धातुप्रभवान् विकारान् ॥ ३६ ॥

दूषीविषसंज्ञायां हेतुः—

प्राग्वाताजीर्णशीताभ्रदिवास्वप्नाहिताशनैः ।
दुष्टं दूषयते धातूनतो दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३७ ॥

लेह्योदूषीविषारिः—

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम् ।
दूषीविषारिमगदं लेहयेन्मधुना प्लुतम् ॥ ३८ ॥
पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी रोध्रमेला सुवर्चिका ।
कुटंनटं नतं कुष्टं यष्टी चंदनगैरिकम् ॥ ३९ ॥
दूषीविषारिर्नाम्नाऽयं न चान्यत्राऽपि वार्यते ।

विषलिप्तशास्त्रहतलक्षणम्—

विषदिग्धेन विद्धस्तु प्रताम्यति मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥
विवर्णभावं भजते विषादं चाशु गच्छति ।
कीटैरिवावृतं चास्य गात्रं चिमिचिमायते ॥ ४१ ॥
श्रोणिपृष्ठशिरःस्कंधसंधयः स्युः सवेदनाः ।
कृष्णदुष्टास्रविस्रावी तृण्मूर्छाज्वरदाहवान् ॥ ४२ ॥
दृष्टिकालुष्यवमथुश्वासकासकरः क्षणात् ।
आरक्तपीतपर्यतः श्यावमध्योविरुग्व्रणः ॥ ४३ ॥
[1]सूयते पच्यते सद्यो गत्वा मासं च कृष्णताम् ।
प्रक्लिन्नं शीर्यतेऽभीक्ष्णं सपिच्छिलपरिस्रवम् ॥ ४४ ॥

तत्रचिकित्सा—

कुर्यादमर्मविद्धस्य छ्दयावरयं द्रुतम् ।
शल्यमाकृष्य तत्तेन लोहेनानु दहेद्व्रणम् ॥ ४५ ॥

---

१ सूयते-शोथयुक्तः ।

अथवा मुष्ककश्वेतासोमत्वक्ताम्रवल्लितः ।
शिरीषाद् गृध्रनख्याश्च क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ ४६ ॥
शुकनासाप्रतिविषाव्याघ्रीमूलैश्च लेपयेत् ।
कीटदष्टचिकित्सां च कुर्यात्तस्य यथार्हतः ॥ ४७ ॥
व्रणे तु पूतिपिशिते क्रिया पित्तविसर्पवत् ।

विषदातार :—

सौभाग्यार्थं स्त्रियो भर्त्रे राज्ञे वाऽरातिचोदिताः ॥ ४८ ॥
गरमाहारसंपृक्तं [1]यच्छंत्यासन्नवर्तिनः ।

गर लक्षणम्—

[2]नानाप्राण्यंगशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम् ॥ ४९ ॥
विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृत ।

गरपीडित लक्षणम्—

तेन पांडुः कृशोऽल्पाग्निः कासश्वासज्वरार्दितः ॥ ५० ॥
वायुना प्रतिलोमेन स्वप्नचिंतापरायणः ।
महोदरयकृत्प्लीही दीनवाग्दुर्बलोऽलसः ॥ ५१ ॥
शोफवान्सततध्मातः शुष्कपादकर. क्षयी ।
स्वप्ने गोमायुमार्जारनकुलव्यालवानरान् ॥ ५२ ॥
प्रायः पश्यति शुष्कांश्च वनस्पतिजलाशयान् ।
मन्यते कृष्णमात्मानं गौरो गौरं च कालकः ॥ ५३ ॥
विकर्णनासानयनं पश्येत्तद्विहतेंद्रियः ।
एतैरन्यैश्च बहुभिः क्लिष्टो घोरैरुपद्रवैः ॥ ५४ ॥
गरार्तो नाशमाप्नोति कश्चित्सद्योऽचिकित्सितः ।

गरातुरस्यकृत्यम्—

गरार्तो वांतवान् भुक्त्वा तत्पथ्यं पानभोजनम् ॥ ५५ ॥
शुद्धहृच्छीलयेद्धेम [3]सूक्ष्मस्थानविधेः स्मरन् ।

---

१ आसन्नवर्तिनः समीपवर्तिनः । २ शमलं शकृत् । ३ सूक्ष्मस्थानविधिः "शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत्" इतिविधिस्मरन् ।

गरघ्नो लेहः—

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताम्यसुवर्णयोः ॥ ५६ ॥
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम् ।

गरोपहताग्नेः पानम्—

मूर्वामृतानतकणापटोलीचव्यचित्रकान् ॥ ५७ ॥
वचामुस्तविडङ्गानि तक्रकोष्णाम्बुमस्तुभिः ।
पिबेद्रसेन वाम्लेन गरोपहतपावकः ॥ ५८ ॥

हिमसेवनम्—

पारावतामिषशठीपुष्कराह्वं शृतं हिमम् ।
गरतृष्णारुजाकासश्वासहिध्माज्वरापहम् ॥ ५९ ॥

विषसङ्कटम्—

[1]विषप्रकृतिकालान्नदोषदूष्यादिसंगमे ।
विषसंकटमुद्दिष्टं शतस्यैकोऽत्र जीवति ॥ ६० ॥

विषवर्धनानि—

क्षुत्तृष्णाघर्मदौर्बल्यक्रोधशोकभयश्रमैः ।
अजीर्णवर्चोद्रवतः पित्तमारुतवृद्धिभिः ॥ ६१ ॥
तिलपुष्पफलाघ्राणभूबाष्पघनगर्जितैः ।
हस्तिमूषिकवादित्रनिःस्वनैर्विषसंकटैः ॥ ६२ ॥
पुरोवातोत्पलामोदमदनैर्वर्धते विषम् ।

विषस्य मन्दवीर्यत्वम्—

वर्षासु चांबुयोनित्वात्संक्लेदं गुडवद्गतम् ॥ ६३ ॥
विसर्पति घनापाये तदगस्त्यो हिनस्ति च ।
प्रयाति मंदवीर्यत्वं विषं तस्माद्घनात्यये ॥ ६४ ॥

---

१ विषप्रकृतिः पित्तप्रकृतिः । कालो वर्षा । विषासंमर्पणादि । विषदोषः पित्तम् । दूष्यं रक्तम् ।

एवमालोच्य कर्मकरणम्—

इति प्रकृतिमारम्भर्तुस्थानवेगबलाबलम् ।
आलोच्य निपुणं बुद्ध्या कर्मानंतरमाचरेत् ॥ ६५ ॥
श्लैष्मिकं वमनैरुष्णरूक्षतीक्ष्णैः प्रलेपनैः ।
कषायकटुतिक्तैश्च भोजनैः शमयेद्विषम् ॥ ६६ ॥
पैत्तिकं स्रंसनैः सेकप्रदेहैर्भृशशीतलैः ।
कषायतिक्तमधुरैर्घृतयुक्तैश्च भोजनैः ॥ ६७ ॥
वातात्मकं जयेत्स्वादुस्निग्धाम्ललवणान्वितैः ।
सघृतैर्भोजनैर्लेपैस्तथैव पिशिताशनैः ॥ ६८ ॥
नाघृतं स्रंसनं शस्तं प्रलेपो भोज्यमौषधम् ।

घृतस्य विषनाशकत्वे श्रेष्ठता—

सर्वेषु सर्वावस्थेषु विषेषु न घृतोपमम् ॥ ६९ ॥
विद्यते भेषजं किंचिद्विशेषात्प्रबलेऽनिले ।

सर्वविषेषु साध्यत्वादि—

अयत्नाच्छ्लैष्मिकं साध्यं, यत्नात् पित्ताशयाश्रयम् ॥
मुहुःसाध्यमसाध्यं वा वाताशयगतं विषम्" ॥ ७० ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्पविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

संक्षेपेणभुजङ्गास्त्रिविधाः—

"दर्वीकरा मंडलिनो राजीमंतश्च पन्नगाः ।
त्रिधा समासतो भौमा भिद्यंते ते त्वनेकधा ॥ १ ॥
व्यासतो योनिभेदेन नोच्यतेऽनुपयोगिनः ।

दर्वीकरादीनांविषं रूक्षादिगुणम्—

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णं स्वादु शीतलम् ॥ २ ॥
विषं दर्वीकरादीनां क्रमाद्वातादिकोपनम् ।

एषां विषोल्बणत्वप्रकारः—

तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च ॥ ३ ॥
विषोल्वणा भवत्येते व्यंतरा[1] ऋतुसंधिषु ।

दर्वीकरादीनां लक्षणानि—

रथांगलांगलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः ॥ ४ ॥
फणिनः शीघ्रगतयः सर्पा दर्वीकराः स्मृताः ।
ज्ञेया मंडलिनोऽभोगा मंडलैर्विविधैश्चिताः ॥ ५ ॥
प्रांशवो मंदगमना,
राजीमंतस्तु राजिभिः ।
स्निग्धा विचित्रवर्णाभिस्तिर्यगूर्ध्वं विचित्रिता." ॥ ६ ॥
गोधासुतस्तु गोधेरो विषे दर्वीकरैः समः ।
चतुष्पाद्,
[1]व्यंतराश्चिद्यादेवैषामेव संकरात् ॥ ७ ॥

1 व्यन्तरा भिजातयःसर्पाऋतुसन्धिषु विषाधिकाः स्युः ।

व्यामिश्रलक्षणास्ते हि सन्निपातप्रकोपनाः[1],

भुजङ्गदशनेकारणादि—

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात् क्रुधः ॥ ८ ॥
पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात् ।
दशंति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम् ॥ ९ ॥

हेतुंविदित्वायथास्वंतचिकित्सा—

आदिष्टात्कारणं ज्ञात्वा प्रतिकुर्याद्यथायथम् ।
व्यंतरः पापशीलत्वान्मार्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥ १० ॥

दंशसंज्ञा—

यत्र लालापरिक्लेदमात्र गात्रे प्रदृश्यते ।
न तु दंष्ट्राकृतं दंशं तत्तुंडाहतमादिशेत्, ॥ ११ ॥
एक दंष्ट्रापदं द्वे वा व्यालीढाख्यमशोणितम् ।,
दंष्ट्रापदे सरक्ते द्वे व्यालुप्तं, त्रीणि तानि[2] तु ॥ १२ ॥
मांसच्छेदादविच्छिन्नरक्तवाहीनि दंष्टुकम् ।,
"दंष्ट्रापदानि चत्वारि तद्वद्दष्टनिपीडितम्,, ॥ १३ ॥
निर्विषं [3]द्वयमत्राद्यमसाध्यं पश्चिमं वदेत् ।

सर्पाङ्गविषस्यरक्तप्राप्तस्यैवदूषणम्—

विषं नाहेयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः ॥ १४ ॥
रक्तमण्वपि तु प्राप्तं वर्धते तैलमंबुवत् ।
"भीरोस्तु सर्पसंस्पर्शाद्भयेन कुपितोऽनिलः ॥ १५ ॥
कदाचित्कुरुते शोफं सर्पाङ्गाभिहतं तु तत् ।

---

१ एतेषां दर्वीकरादीनां संकरात्संमेलनात् व्यन्तरान् व्योः-द्वयोरन्तरं विशेषो येषु तान् । विशब्दोऽत्रद्वयपर्यायवाचकः । यथा दर्वीकरान्मण्डलिन्यां जातः एव मन्यदप्यूह्यम् । २ तानि दंष्ट्रापदानि । तद्वद्दृष्टमिव । ३ अयदंशमध्ये द्वयमाद्यं-तुण्डाहतं व्यालीढाख्यं च । पश्चिममन्तिमं-दष्टनिपीडिताख्यम् । व्यालुप्तं दंष्ट्रकच्च-कृच्छ्रसाध्यम् ।

शङ्काविषम्—

दुरंधकारे विद्धस्य केनचिद्दृष्टशंकया ॥ १६ ॥

विषोद्वेगो ज्वरश्छर्दिर्मूर्छा दाहोऽपि वा भवेत् ।
ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वा तच्छंकाविषमुच्यते ॥ १७ ॥

सविषनिर्विषदंश लक्षणम्—

तुद्यते सविषो दंशः कंडूशोफरुजान्वितः ।
दह्यते ग्रथितः किंचिद्विपरीतस्तु निर्विषः ॥ १८ ॥

दर्वीकरविषवेग लक्षणानि—

पूर्वे दर्वीकृतां वेगे दुष्टं श्यावीभवत्यसृक् ।
श्यावता तेन वक्त्रादौ सर्पंतीव च कीटकाः ॥ १९ ॥
द्वितीये ग्रंथयो वेगे, तृतीये मूर्ध्नि गौरवम् ।
दुर्गंधो दंशविक्लेद, श्चतुर्थे ष्ठीवनं वमिः, ॥ २० ॥
संधिविश्लेषणं तन्द्रा पंचमे पर्वभेदनम् ।
दाहो हिध्मा च षष्ठे च हृत्पीडा गात्रगौरवम् ॥ २१ ॥
मूर्छा विपाकोऽतीसारः, प्राप्य शुक्रं तु सप्तमे ।
स्कंधपृष्ठकटीभंगः सर्वचेष्टानिवर्तनम् ॥ २२ ॥

मंडलिविषवेगा :—

अथ मंडलिदष्टस्य दुष्टं पीतीभवत्यसृक् ।
तेन पीतांगता दाहो, द्वितीये श्वयथुद्भवः ॥ २३ ॥
तृतीये दंशविक्लेदः स्वेदस्तृष्णा च जायते ।
चतुर्थे ज्वर्यते दाहः, पंचमे सर्वगात्रगः ॥ २४ ॥

राजिलदंशवेगा :—

दष्टस्य राजिलैर्दुष्टं पाडुतां याति शोणितम् ।
पाडुता तेन गात्राणा, द्वितीये गुरुताऽति च ॥ २५ ॥
तृतीये दंशविक्लेदो नासिकाक्षिमुखस्रवाः ।,
चतुर्थे गरिमा मूर्ध्नो मन्यास्तंभश्च पंचमे ॥ २६ ॥

गात्रभंगो ज्वरः शीतः, [1]शेषयोः पूर्ववद्वदेत् ।

चिकित्सा निर्देश :—

कुर्यात्पंचसु वेगेषु चिकित्सां, न ततः[2] परम् ॥ २७ ॥

अल्पविषाःसर्पाः :—

जलाप्लुता रतिक्षीणा भीता नकुलनिर्जिताः ।
शीतवातातपव्याधिक्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः ॥ २८ ॥
तूर्णं देशांतरायाता विमुक्तविषकंचुकाः ।
कुशौषधीकंटकवद्ये चरति च काननम् ॥ २९ ॥

देवं च दिग्याभ्युषितं सर्पास्तेऽल्पविषा मताः ।

असाध्यदष्टलक्षणानि—

[3]श्मशानचितिचैत्यादौ पंचमीपक्षसंधिषु ॥ ३० ॥
अष्टमीनवमीसंध्यामध्यरात्रिदिनेषु च ।
याम्याग्नेयमघाश्लेषाविशाखापूर्वनैर्ऋते ॥ ३१ ॥
नैर्ऋताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत् ।,
दष्टमात्रः सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः ॥ ३२ ॥
स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति ।,,
हिध्मा श्वासो वमिः कासो दष्टमात्रस्य देहिनः ॥ ३३ ॥
जायंते युगपद्यस्य स हृच्छूली न जीवति ।,,
फेनं वमति निःसंज्ञः श्यावपादकराननः ॥ ३४ ॥
नासावसादो भंगांगे विश्लेदः श्लथसंधिता ।
विषपीतस्य दष्टस्य दिग्धेनाभिहतस्य च ॥ ३५ ॥
भवंत्येतानि रूपाणि संप्राप्ते जीवितक्षये ।,
न नस्यैश्चेतना तीक्ष्णैर्न क्षतात्क्षतजागमः ॥ ३६ ॥

---

१ शेषयोःषष्ठसप्तमयोः पूर्ववद्दर्वीकरवत् । २ न ततः परं–तत.पंचवेगेभ्यः परं षष्ठसप्तमयोश्चिकित्सां न कुर्यात् । ३ चितिः-अग्निचितिः । पक्षसन्धिः पूर्णिमावस्या च । याम्यं भरणी । आग्नेयं कृत्तिका, नैर्ऋतं मूलम् । नैर्ऋताख्यो मुहूर्तः सन्ध्योदयः ।

दंशाहतस्य नो राजिः प्रयातस्य यमांतिकम् ।,

साध्यत्वेत्वरया विषशान्तिः कार्या—

अतोऽन्यथा तु त्वरया प्रदीप्तागारवद्भिषक् ॥ ३७ ॥
रक्षन् कंठगतान् प्राणान् विषमाशु शमं नयेत् ।

विषस्यदेहक्रमणे काल :—

मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः ॥ ३८ ॥
देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयन् ।
एतस्मिन्नतरे कर्म दंशस्योत्कर्तनादिकम् ॥ ३९ ॥
कुर्याच्छीघ्रं यथा देहे विषवल्ली न रोहति ।

दष्टपुरुषस्यकर्तव्यम्—

दष्टमात्रो दशेदाशु तमेव पवनाशिनम् ॥ ४० ॥
लोष्टं मही वा दशनैश्छित्वा चाऽनु ससंभ्रमम् ।
निष्ठीवेन समालिपेद्दंशं कर्णमलेन वा ॥ ४१ ॥

अरिष्टाबन्धनम्—

दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टां चतुरंगुले ।
क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मंत्रैश्च मंत्रवित् ॥ ४२ ॥
अंबुवत्सेतुबंधेन बंधेन स्तम्यते विषम् ।
न वहंति सिराश्चाऽस्य विषं बंधाभिपीडिताः ॥ ४३ ॥

पश्चान्निष्पीड्यदंशोद्धरणम्—

निष्पीड्यानूद्धरेद्दंशं मर्मसंध्यगतं तथा ।
न जायते विषावेगो बीजनाशादिवांऽकुरः ॥ ४४ ॥

दंशदाहादि—

दंशं मंडलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम् ।
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ॥ ४५ ॥
करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम न क्षणात् ।
आचूषेत्पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः ॥ ४६ ॥

[1]प्रच्छायांतररिष्टायां, मांसलं तु विशेषतः ।
अंगं सहैव दशेन लेपयेदगदैर्मुहुः ॥ ४७ ॥
चंदनोशीरयुक्तेन सलिलेन च सेचयेत् ।
विषे प्रविसृते विध्येत्सिरां सा परमा क्रिया ॥ ४८ ॥
रक्ते निर्ह्रियमाणे हि कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम् ।

सविषाविषरक्त लक्षणम्—

दुर्गंधं सविषं रक्तमग्नौ चटचटायते ॥ ४९ ॥
[2]यथादोषं विशुद्धं च पूर्ववल्लक्षयेदसृक् ।,,

शृङ्गादियोजना—

सिरास्वदृश्यमानासु योज्याः शृंगजलौकसः ॥ ५० ॥

स्रुतशेषपलादितस्यस्तम्भनम्—

शोणितं स्रुतशेषं च प्रविलीनं विषोष्मणा ।
लेपसेकैस्तु बहुशः स्तंभयेद्भृशशीतलैः ॥ ५१ ॥

अस्कन्नेरक्ते मूर्च्छादीनां जय :—

अस्कन्ने विषवेगाद्धि मूर्छायमदहृद्द्रवाः ।
भवंति तान् जयेच्छीतैर्वीजिचारोमहर्षतः ॥ ५२ ॥
स्कन्ने तु रुधिरे सद्यो विषवेगः प्रशाम्यति ।

घृतादिपानम्—

विषं कर्षति तीक्ष्णत्वाद् हृदयं, तस्य[3] गुप्तये ॥ ५३ ॥
पिबेद् घृतं घृतक्षौद्रमगदं वा घृताप्लुतम् ।
हृदयावरणे चास्य श्लेष्मा हृद्युपचीयते ॥ ५४ ॥

---

१ प्रच्छाय-प्रच्छानं कृत्वा, अन्तर्मध्ये मांसलंतुस्थानं विशेषतः प्रच्छाया चूषेत् । २ विशुद्धंरक्तं यथादोषं दोषानुसारेण पूर्ववत् सिराव्यधविध्युक्तेन लक्षणेन विजानीयात् । ३ तस्य हृदयस्य गुप्तये रक्षार्थे ।

वमनप्रयोग :—

प्रवृत्तगौरवोत्क्लेशहृल्लासं वामयेत्ततः ।
द्रवैः कांजिककौलत्थतैलमद्यादिवर्जितैः ॥ ५५ ॥

वमनंविषहृद्भिश्च नैवं व्याप्नोति तद्वपुः ।

विशिष्टक्रिया—

भुजंगदोषप्रकृतिस्थानवेगविशेषतः ॥ ५६ ॥

सुसूक्ष्मं सम्यगालोच्य विशिष्टां चाऽऽचरेत्क्रियाम् ।

औषधानि—

[१]सिंदुवारितमूलानि श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ ५७ ॥
पानं दर्वीकरैर्दष्टे नस्यं मधु सपाकलम् ।
कृष्णसर्पेण दष्टस्य लिपेद्वा हृतेऽसृजि ॥ ५८ ॥
[१]चारटीनाकुलीभ्या वा तीक्ष्णमूलविषेण वा ।
पानं च क्षौद्रमञ्जिष्ठागृहधूमयुतं घृतम् ॥ ५९ ॥
"तंदुलीयककाश्मर्यकिणिहीगिरिकर्णिकाः ।
मातुलुंगी सिता सेलुः पाननस्यांजनैर्हितः ॥ ६० ॥
अगदः फणिनां घोरे विषे राजीमतामपि ।,,
"[२]समाः सुगंधा मृद्वीका श्वेताख्या गजदंतिका ॥ ६१ ॥
अर्धांशं सौरसं पत्रं कपित्थं विल्वदाडिमम् ।
सक्षौद्रो मंडलिविषे विशेषादगदो हितः,, ॥ ६२ ॥

हिमवन्नामागद :—

पंचवल्कवरायष्टीनागपुष्पैलवालुकम् ।
जीवकर्षभकोशीरं सिता पद्मकमुत्पलम् ॥ ६३ ॥
सक्षौद्रो हिमवान्नाम हंति मंडलिनां विषम् ।
लेपाच्छ्वयथुवीसर्पविस्फोटज्वरदाहहा ॥ ६४ ॥

---

३ सिन्दुवारितमूलं निर्गुण्डी मूलम् । पाकलं कुष्ठम् । १ चारटी–गुंजा । ःर्णयन्मूलविषं तेन । २ सुगन्धा रास्ना ।

"काश्मर्यवटशृंगाणि जीवकर्षभकौ सिता ।
मंजिष्ठा मधुकं चेति दष्टो मंडलिना पिबेत्,, ॥ ६५ ॥
"वंशत्वग्बीजकटुकापाटलीबीजनागरम् ।
शिरीषबीजातिविषे मूलं गावेधुकं वचा ॥ ६६ ॥
पिष्टो गोवारिणाष्टांगो हंति गोनसजं विषम् ।,,
"कटुकातिविषाकुष्ठगृहधूमहरेणुकाः ॥ ६७ ॥
सक्षौद्रव्योषतगरा घ्नंति राजीमतां विषम् ।,,
"[1]निखनेत्कांडचित्राया दंशं यामद्वयं भुवि ॥ ६८ ॥
उद्धृत्य प्रस्थितं सर्पिर्धान्यमृम्द्यां प्रलेपयेत् ।
पिबेत्पुराणं च घृतं वराचूर्णविचूर्णितम् ॥ ६९ ॥
जीर्णे विरिक्ते भुंजीत यवान्नं सूपसंस्कृतम् ।,,
"करवीरार्ककुसुममूललांगलिकाकणाः ॥ ७० ॥
वल्कयेदारनालेन पाठामरिचसंयुताः ।
एष व्यंतरदष्टानामगदः सार्वकामिक,, ॥ ७१ ॥
"शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ।
भावितं सर्पदष्टानां पाने नस्याजने हितम्,, ॥ ७२ ॥
"द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुष्पलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम्,, ।. ७३ ॥

दर्वीकरविषचिकित्सा—

अथ दर्वीकृतां वेगे पूर्वं विस्राव्य शोणितम् ।
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं त्वरितं पिबेत्,, ॥ ७४ ॥
द्वितीये वमनं कृत्वा तद्वदेवागदं पिबेत् ।
"विषापहैः प्रयुंजीत तृतीयेऽञ्जननावने ॥ ७५ ॥
"पिबेच्चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूं वमने कृते ।
षष्ठपंचमयोः शीतैर्दिग्धं सिक्तमभीक्ष्णशः ॥ ७६ ॥

---

१ कांडचित्रायाःसर्पविशेषस्य दंशं यामद्वयंभुविनिखनेत् । धान्यस्यमृद् धान्यमृत् ।

पाययेद्वमनं तीक्ष्णं यवागूं च विषापहैः ।,,
"अगदं सप्तमे तीक्ष्णं युंज्यार्दजननस्ययोः ॥ ७७ ॥
कृत्वावगाढं शस्त्रेण मूर्ध्नि काकपदं ततः ।
मांसं सरुधिरं तस्य[1] चर्म वा तत्र निक्षिपेत् ॥ ७८ ॥

मण्डलिविषचिकित्सा—

तृतीये वमितः पेयां वेगे मंडलिना पिबेत् ।
"अतीक्ष्णमगदं षष्ठे गणं वा पद्मकादिकम् ॥ ७९ ॥

राजिलविषचिकित्सा—

आद्ये वगाढं प्रच्छाय वेगे दष्टस्य राजिलैः ।
अलाबुना हरेद्रक्तं पूर्ववच्चागदं पिबेत् ॥ ८० ॥
षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडं च योजयेत् ।
अनुक्तेषु च वेगेषु क्रियां दर्वीकरोदिताम् ॥ ८१ ॥
गर्भिणीबालवृद्धेषु मृदुं विध्येत्सिरां न च ।
[2]खड्मनोह्वानिशे वक्रं रसः शार्दूलजो नखः ॥ ८२ ॥

सर्वविषघ्नंपानम्—

तमालः केसरं शीतं पीतं तंदुलवारिणा ।
हंति सर्वविषाण्येतद्वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥ ८३ ॥

अञ्जनादि—

बिल्वस्य मूलं सुरसस्य पुष्पं
फलं करंजस्य नतं [3]सुराह्वम् ।
फलत्रिकं व्योषनिशाद्वयं च
वस्तस्य मूत्रेण सुसूक्ष्मपिष्टम् ॥ ८४ ॥
भुजंगलूतोदुरवृश्चिकाद्यै-
विषूचिकाजीर्णगरज्वरैश्च ।

---

१ तस्य-दष्टपुरुषस्य । तत्र तस्मिन् काकपदे । काकपदं काकपदवच्छेदः ।
२ मनोह्वा मनःशिला । शार्दूलो व्याघ्रः । ३ सुराह्वं देवदारु ।

आर्ताश्चरान् भूतविषर्दितांश्च
स्वस्थीकरोत्यंजनपाननस्यैः ॥ ८५ ॥

निःशेषविषोद्धरणम्—

प्रलेपाद्यैश्च निःशेषं दंशादप्युद्धरेद्विषम् ।
भूयो वेगाय जायेत शेषं दूषीविषाय वा ॥ ८६ ॥

विषनाशेकुपितवातादीनां चिकित्सा—

विषापायेऽनिलं क्रुद्धं स्नेहादिभिरुपाचरेत् ।
तैलमद्यकुलत्थाम्लवर्ग्यैः पवननाशनैः ॥ ८७ ॥
पित्तं पित्तज्वरहरैः कषायस्नेहबस्तिभिः ।
समाक्षिकेण वर्गेण कफमारग्वधादिना ॥ ८८ ॥

सर्पाङ्गाभिहतशङ्काविषादितयोश्चिकित्सा—

शिवा वैगन्धिको[1] द्राक्षा पयस्या मधुकं मधु ।
पाने सर्पाङ्गपूताम्बु प्रोक्षणं गात्रहर्षणम् ॥ ८९ ॥
सर्पाङ्गाभिहते कुर्यात्तथा शंकाविषार्दिते ।

विषशान्त्यर्थंमण्यादिधारणम्—

[2]कर्केतनं मरकतं वज्रं वारणमौक्तिकम् ॥ ९० ॥
वैडूर्यं गर्दभमणिं पिचुकं विषमूषिकाम् ।
हिमवद्गिरिसंभूतां सोमराजीं पुनर्नवाम् ॥ ९१ ॥
तथा द्रोणीं महाद्रोणीं मानसीं सर्पजं मणिम् ।
विषाणि विषशांत्यर्थं वीर्यवंति च धारयेत् ॥ ९२ ॥

रात्रौसंचारेछत्रझर्झरधारणम्—

छत्री झर्झरपाणिश्च चरेद्रात्रौ विशेषतः ।
तच्छायाशब्दवित्रस्ताः प्रणश्यंति भुजंगमाः ॥ ९३ ॥

---

१ वैगन्धिकः कोरदूषः । २ कर्केतनं पद्मरागः । मरकतमणिः "पुखराज" । अन्यमणयो विदिताः । झर्झरः "घुघुरू" इति हिन्दी । झणझणायमानं लोहमयंकण्टकोत्करम् ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कीटलूतादिविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

चतुर्विधाःकीटा :—

सर्पाणामेव विण्मूत्रशुक्राण्डशवकोथजाः ।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च युक्ताः कीटाश्चतुर्विधाः ॥ १ ॥

वायव्यकीटदष्टलक्षणम्—

दष्टस्य कीटैर्वायव्यैर्दंशस्तोदरुजोल्वणः ।

आग्नेयकीटदष्टलक्षणम्—

आग्नेयैरल्पसंस्रावो दाहरागविसर्पवान् ॥ २ ॥
पक्वपीलुफलप्रख्यः खर्जूरसदृशोऽथवा ।

कफाधिककीटदष्टलक्षणम्—

कफाधिकैर्मंदरुजः पक्वोदुंबरसंनिभः ॥ ३ ॥

त्रिदोषाधिककीटदष्टलक्षणम्—

स्रावाढ्यः सर्वलिंगस्तु विवर्ज्यः सान्निपातिकैः ।

कीटेषु सर्पवत् वेगा :—

वेगाश्च सर्पवच्छोफो वधिष्णुर्विसरक्तता ॥ ४ ॥
शिरोक्षिगौरवं मूर्छा भ्रमः श्वासोऽतिवेदना ।

सर्वेषां दंशानां कर्णिकाद्या :—

सर्वेषां कर्णिका शोफो ज्वरः कंडूररोचकः ॥ ५ ॥

वृश्चिक (बिच्छू) दंशलक्षणम्—

वृश्चिकस्य विषं तीक्ष्णमादौ दहति वह्निवत् ।
ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६ ॥

दंशः सद्योऽतिरुक् श्यावस्तुद्यते स्फुटतीव च ।

त्रिविधावृश्चिकाः—

[1]ते गवादिशकृत्कोथाद्विषदष्टादिकोथतः ॥ ७ ॥

सर्पकोथाच्च संभूता मदमध्यमहाविषाः ।

मंदाः पीताः सिताः श्यावा रूक्षकर्बुरमेचकाः ॥ ८ ॥

रोमशा बहुपर्वाणो लोहिताः पांडुरोदराः ।,,

"धूम्रोदरास्त्रिपर्वाणो मध्यास्तु कपिलारुणाः ॥ ९ ॥

पिशंगा शबलाश्चित्राः शोणिताभा,, महाविषाः ।

अग्न्याभा द्व्येकपर्वाणो रक्तासितसितोदराः,, ॥ १० ॥

महाविषवृश्चिकदष्ट लक्षणम्—

तैर्दष्टः शूनरसनः स्तब्धगात्रो ज्वरार्दितः ।

खैर्वमन् शोणितं कृष्णमिंद्रियार्थानसंविदन् ॥ ११ ॥

स्विद्यन्मूर्छन् विशुष्कास्यो विह्वलो वेदनातुरः ।

विशीर्यमाणमांसश्च प्रायशो विजहात्यसून् ॥ १२ ॥

उच्चिटिङ्गदष्टलक्षणम्—

उच्चिटिंगस्तु वक्त्रेण दशत्यभ्यधिकव्यथः ।

[2]साध्यतो वृश्चिकाद् स्तंभं शेफसो हृष्टरोमताम् ॥ १३ ॥

करोति सेकमंगानां दंशः शीतांबुनेव च ।

[3]उष्ट्रधूमः स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः ॥ १४ ॥

वातपित्तोत्तराः कीटाः, श्लैष्मिकाः कणभोदुराः ।

प्रायो वातोल्बणविषा वृश्चिकाः सोष्ट्रधूमकाः ॥ १५ ॥

---

१ गवादिशकृत्कोथाज्जातामन्दाः, दिग्धादिजामध्याः सर्पकोथजाश्चतीक्ष्णाः ।

२ साध्यतः साध्याद् वृश्चिकादत्यधिकव्ययः । ३ स उच्चिटिंगोवृश्चिकः ।

क्रिया प्रकार :—

यस्य यस्यैव दोषस्य लिंगाधिक्यं प्रतर्कयेत् ।
तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ १६ ॥

वातिकादिविषलक्षणानि—

"हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तंभः शिरायामोऽस्थिपर्वरुक् ।
घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता वातिके विषे,, ॥ १७ ॥
"संज्ञानाशोष्णनिश्वासौ हृद्दाहः कटुकास्यता ।
मांसावदरण शोफो रक्तपीतश्च पैत्तिके,, ॥ १८ ॥
"छर्दरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशपीनसैः ।
सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विषम्,, ॥ १९ ॥

चिकित्सा—

पिण्याकेन व्रणालेपस्तैलाभ्यंगश्च वातिके ।
नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्बृंहणश्च विधिर्हितः,, ॥ २० ॥
पैत्तिकं स्तंभयेत्सेकैः प्रदेहैश्चातिशीतलैः ।
"लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥ २१ ॥

त्रिविधकीटानांयथास्वं चिकित्सा—

कीटानां त्रिप्रकाराणां त्रैविध्येन [१]प्रतिक्रिया ।
स्वेदालेपनसेकांस्तु नोष्णान् प्रायोऽवचारयेत् ॥ २२ ॥
अन्यत्र मूर्छिताद्दंशपाकतः कोथतोऽथवा ।

विषघ्नंधूपनम्—

नृकेशाः सर्षपाः पीता गुडो जीर्णश्च धूपनम् ॥ २३ ॥
विषदंशस्य सर्वस्य काश्यपः परमब्रवीत् ।

विषघ्नविधि :—

विषघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्संशोधनानि च ॥ २४ ॥

---

१ प्रतिक्रिया चिकित्सा ।

साधयेत्सर्पवद्दष्टान् विषोग्रैः कीटवृश्चिकैः ।

कीटविषेपानम्—

तंदुलीयकतुल्यांशां त्रिवृतां सर्पिषा पिबेत् ॥ २५ ॥
याति कीटविषैः कंपं न कैलास इवानिलैः ।

लेप :—

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः ॥ २६ ॥
मुक्तालेपो वरः शोफतोददाहज्वरप्रणुत् ।

सर्वकीटविषघ्नोऽगद :—

वचा हिंगुविडंगानि सैंधवं गजपिप्पली ॥ २७ ॥
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ।
दशांगमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २८ ॥

वृश्चिकदंशचिकित्सा—

सद्यो वृश्चिकजं दंशं चक्रतैलेन सेचयेत् ।
विदारिगंधासिद्धेन कवोष्णेनेतरेण वा ॥ २९ ॥

सेक :—

लवणोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनः पुनः ।
सिंचेत्कोष्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा ॥ ३० ॥
उपनाहो घृते भृष्टः कल्कोऽजाज्याः ससैंधवः ।

चूर्णैर्दंशघर्षणम्—

आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छाय प्रतिसारयेत् ॥ ३१ ॥
रजनीसैंधवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः ।

लेपादि—

मातुलुंगाम्लगोमूत्रपिष्टं च सुरसाग्रजम् ॥ ३२ ॥
लेपः सुखोष्णश्च हितः पिण्याको गोमयोऽपि वा ।
पाने सर्पिर्मधुयुतं क्षीरं वा भूरिशर्करम् ॥ ३३ ॥

औषधम्—

पारावतशकृत्पथ्या तगरं विश्वभेषजम् ।
[illegible] ॥ ३४ ॥

समंवलोद्धृदंष्ट्रा च इति वृश्चिकजं विषम् ।

गुटिका—

हिंगुना हरितालेन मातुलुंगरसेन च ॥ ३५ ॥
लेपांजनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा ।

लेपनम्—

करंजार्जुनशेलूना[1] कटभ्याः कुटजस्य च ॥ ३६ ॥
शिरीषस्य च पुष्पाणि मस्तुना दंशलेपनम् ।

प्रलेपनम्—

यो मुह्यति प्रश्वसिति प्रलपत्युग्रवेदनः ॥ ३७ ॥
तस्य पथ्यानिशाकृष्णामंजिष्ठातिविषोषणम् ।
सालाबुवृंत वार्ताकरसपिष्टं प्रलेपनम् ॥ ३८ ॥

दध्यादिपानादि—

सर्वत्र चोग्रालिविषे[2] पाययेद्दधिसर्पिषी ।
विध्येत्सिरां विदध्याच्च वमनांजननावनम् ।
उष्णस्निग्धाम्लमधुरं भोजनं चानिलापहम् ॥ ३९ ॥

लेपः—

नागरं गृहकपोतपुरीषं
बीजपूरकरसो हरितालम् ।
सैंधवं च विनिहन्त्यगदोऽयं
लेपतोलिकुलजं विषमाशु ॥ ४० ॥

मंत्रे वृश्चिकदष्टानां समुदीर्णे भृशं विषे ।
विषेणालेपयेद्दंशमुच्चिटिंगेऽप्ययं विधिः ॥ ४१ ॥
[3]नागपुरीषच्छत्रं राहिषमूलं च शेलुतोयेन ।
कुर्याद्गुटिका लेपादियमलिविषनाशनी श्रेष्ठा ॥ ४२ ॥

---

१ शेलुः-श्लेष्मातकः । कटभी ज्योतिष्मती । २ उग्रालिविषं वृश्चिकविषम् । नागपुरीषच्छत्रं गजपुरीषजातं छत्रम् (कुकुरमुत्ता) ।

कीटविषघ्नोऽगदः—

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं
त्रिर्भावितं पिप्पलिचूर्णमिश्रम् ।
एषोऽगदो हंति विषाणि कीट-
भुजंगलूतोंदुरवृश्चिकानाम् ॥ ४३ ॥

विषसंक्रान्तिकृदगदः—

शिरीषपुष्पं सकरंजबीजं
[1]काश्मीरजं कुष्ठमनःशिले च ।
एषोऽगदो रात्रिकवृश्चिकाना
संक्रान्तिकारी कथितो जिनेन ॥ ४४ ॥

लूतानां (मकड़ी) संख्याविषये मतानि—

कीटेभ्यो दारुणतरा लूताः षोडश ता जगुः ।
[2]अष्टाविंशतिरित्येके ततोऽप्यन्ये तु भूयसीः ॥ ४५ ॥
सहस्ररश्म्यनुचरा वदंत्यन्ये सहस्रशः ।
बहूपद्रवरूपा तु लूतैकैव विषात्मिका ॥ ४६ ॥

तत्रहेतुः—

रूपाणि नामतस्तस्या दुर्ज्ञेयान्यतिसंकरात् ।
नास्ति [3]स्थानव्यवस्था च दोषतोऽतः प्रचक्षते ॥ ४७ ॥

लूतानां कृच्छ्रसाध्यत्वादि—

कृच्छ्रसाध्या पृथग्दोषैरसाध्या निचयेन सा ।

लूतानां दोषभेदेन लक्षणानि—

तद्दंशः पैत्तिको दाहतृट्स्फोटज्वरमोहवान् ॥ ४८ ॥
भृशोष्मा रक्तपीताभः क्लेदी द्राक्षाफलोपमः ।
श्लैष्मिकः कठिनः पाडुः परूषकफलाकृतिः ॥ ४९ ॥

---

१ काश्मीरजं केशरम् । २ एके आचार्या अष्टाविंशतिसंख्याका लूता इति वदन्ति । अन्ये तु भूयसीर्बहुतरा जगुः । सहस्ररश्मिः सूर्यः । ३ स्थान व्यवस्था स्थितिनिर्णयः ।

निद्रां शीतज्वरं कासं कंडूं च कुरुते भृशम् ।
वातिकः परुषः श्यावः पर्वभेदज्वरप्रदः ॥ ५० ॥
[1]तद्विभागं यथास्वं च दोषलिंगैर्विभावयेत् ।

असाध्यलूतादष्ट लक्षणम्—

असाध्यायां तु हृन्मोहश्वासहिध्माशिरोरुजाः ॥ ५१ ॥
श्वेताः पीताः सिता रक्ताः पिटिकाः श्वयथूद्भवाः ।
वेपथुर्वमथुर्दाहस्तृडांध्यं वक्रनासता ॥ ५२ ॥
श्यावोष्ठवक्त्रदंतत्वं पृष्ठग्रीवावभंजनम् ।
पक्वजंबूसवर्णं च दंशात्स्रवति शोणितम् ॥ ५३ ॥
[2]सर्वापि सर्वजा प्रायो व्यपदेशस्तु भूयसा ।

तस्यास्त्रिप्रकारत्वम्—

तीक्ष्णमध्यावरत्वेन सा त्रिधा हंत्युपेक्षिता ॥ ५४ ॥
सप्ताहेन दशाहेन पक्षेण च परं क्रमात् ।

सर्वलूतादंशलक्षणम्—

लूतादंशश्च सर्वोऽपि दद्रूमंडलसंनिभः ॥ ५५ ॥
सितोऽसितोरुणः पीतः श्यावो वा मृदुरुन्नतः ।
मध्ये कृष्णोऽथवा श्यावः पूर्यते जालकावृतः ॥ ५६ ॥
विसर्पवांश्छोफयुतस्तप्यते बहुवेदनः ।
ज्वराशुपाकविक्लेदकोथावदरणान्वितः ॥ ५७ ॥
क्लेदेन यत्स्पृशत्यंगं तत्रापि कुरुते व्रणम् ।

अष्टप्रकारतोलूताविषोद्गमनम्—

श्वासदंष्ट्राशकृन्मूत्रशुक्रलालानखार्तवैः ॥ ५८ ॥
अष्टाभिरुद्गमत्येषा विषं वक्त्रविशेषतः ।

लूताकीटयोर्दंशस्थानम्—

लूता नाभेर्दशत्यूर्ध्वमूर्ध्वं वाऽधश्च कीटकाः ॥ ५९ ॥

---

१ तासां लूतानां विभागं पार्थक्यम् । २ सर्वा-लूताः, सर्वजा त्रिदोषजाः ।

तद्दूषितं च वस्त्रादि देहे पृक्तं विकारकृत् ।

प्रथमादिदिनेषुलक्षणानि—

दिनार्धं लक्ष्यते नैवं दंशो लूताविषोद्भवः ॥ ६० ॥
मूर्चाव्यधवदाभाति ततोऽसौ प्रथमेऽहनि ।
अव्यक्तवर्णः प्रचलः किंचित्कंड्वरुजान्वितः ॥ ६१ ॥
द्वितीयेऽभ्युन्नतोंतेषु पिटकैरिव चा चितः ।
व्यक्तवर्णो नतो मध्ये कडूमान् ग्रंथिसंनिभः ॥ ६२ ॥
तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमंडलः ।
शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु सस्रवः ॥ ६३ ॥
महांश्चतुर्थे श्वयथुस्तापश्वासभ्रमप्रदः ।
विकारान् कुरुते तांस्तान् पंचमे विषकोपजान् ॥ ६४ ॥
षष्ठे व्याप्नोति मर्माणि सप्तमे हंति जीवितम् ।
इति तीक्ष्णं विषं मध्यं हीनं च विभजेदतः ॥ ६५ ॥
एकविंशतिरात्रेण विषं शाम्यति सर्वथा ।

लूतादंशचिकित्सा—

अथाशु लूतादष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥
दहेच्च जांबवौष्ठाद्यैर्न तु पित्तोत्तरं दहेत् ।
कर्कशं भिन्नरोमाणं मर्मसंध्यादिसंश्रितम् ॥ ६७ ॥
प्रसृतं सर्वतोदंशं न छिंदीत दहेन्न च ।
लेपयेदगदैर्मधुसैंधवसर्पियुतैः ॥ ६८ ॥
सुशीतैः सेचयेच्चानु कषायैः क्षीरिवृक्षजैः ।
[1]सर्वतोपहरेद्रक्तं शृंगाद्यैः सिरयाऽपि वा ॥ ६९ ॥
सेकालेपास्ततः शीता [2]बोधिश्लेष्मातकाशकैः ।
कलिनीद्विनिशाक्षीदसर्पिभिः पद्मकाह्वयः ॥ ७० ॥
अतोऽपि लूता कीटानामगदः सार्वकार्मिकः ।
"हरिद्राद्वयपत्तंगमंजिष्ठानतकेसरैः ॥ ७१ ॥

---

१ सर्वतोरक्तमपहरेद्रक्तं विस्रावयेत् । २ बोधिः पिप्पलः ।

सक्षौद्रसर्पिः पूर्वस्मादधिकश्चंपकाह्वयः ।,,
"तद्वद्रोमयनीष्पीडाशर्कराघृतमाक्षिकैः,, ॥ ७२ ॥

लूताविषघ्नावगदौ—

"अपामार्गमनोह्वालदार्वीध्यामकगैरिकैः[1] ।
नतैलाकुष्टमरिचयष्टयाह्वघृतमाक्षिकैः ॥ ७३ ॥
अगदो मंदरो नाम तथाऽन्यो गंधमादनः ।
नतरोध्रवचाकट्वीपाठैलापत्रकुंकुमैः ॥ ७४ ॥

विशोधनम्—

विषघ्नं बहुदोषेषु प्रयुंजीत विशोधनम् ।

वमनम्—

"यष्टयाह्वमदनांकोल्लजालिनीसिंदुवारिकाः ॥ ७५ ॥
कफे श्रेष्ठाम्बुना पीत्वा विषमाशु समुद्वमेत् ।

विरेचनम्—

शिरीषपत्रत्वङ्मूलफलं वांकोल्लमूलवत् ॥ ७६ ॥
विरेचयेच्च त्रिफलानीलिनीत्रिवृतादिभिः ।

कर्णिकापातनम्—

निवृत्ते दाहशोफादौ कर्णिकां पातयेद्व्रणात् ॥ ७७ ॥
कुमुभतुल्यं गोदंतः स्वर्णक्षीरी कपोतविट् ।
त्रिवृता सैंधवं दंती कर्णिकापातनं तथा ॥ ७८ ॥
मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखसंयुतम् ।
तद्वच्च सैंधवं कुष्ठं दंती कटुकदौग्धिकम् ॥ ७९ ॥
राजकोशातकीमूलं किण्वा वा मथितोद्भवः ।

बृंहणम्—

कर्णिकापातसमये बृंहयेच्च दिवापहैः ॥ ८० ॥

---

१ ध्यामकं सुगन्धतृणम् । २ उत्तरवारुणी इन्द्रवारुणी ।

स्नेह प्रयोग विधि :—

स्नेहकार्यमशेषं च सर्पिषैव समाचरेत् ।
विषस्य वृद्धये तैलमग्नेरिव तृणोलुपम् ॥ ८१ ॥

अगदत्रयम्—

[1]ह्रीवेरवैकंकतगोपकन्या-
मुस्तासमीचंदनटिंटुकानि ।
शैवालनीलोत्पलनक्रयष्टी-
त्वग्नाकुलीपद्मकराठमध्यम् ॥ ८२ ॥

(२)

"[2]रजनीघनसर्पलोचना-
कणशुण्ठीकणमूलचित्रकाः ।
वरुणागुरुबिल्वपाटली-
पिचुमंदाभयशेलुकेसरम्" ॥ ८३ ॥

(३)

"बिल्वचंदननतोत्पलशुण्ठी-
पिप्पलीनिचुलवेतसकुष्ठम् ।
शुक्तिशाकवरपाटलिभार्गी-
सिंदुवारकरपाटवरांगम्" ॥ ८४ ॥

पित्तकफानिललुताः पानाजनतस्यलेपसेकेन ।
अगदवरा [3]वृत्तस्थाः कुमतीरिव वारयंत्येते ॥ ८५ ॥

---

१ ह्रीवेरं वालकम् । वैकंकत-स्रुवावृक्षः । गोपकन्या श्वेतसारिवा । टिंटुकः स्योनाकः, वक्रं तगरम् । नाकुली रास्नाभेदः । राठो मदनफलम् ।
२ सर्पलोचना सर्पाक्षी सहदेवी च । कणा पिप्पली । करघाटो मदनः । पाकवरोजीवन्ती । ३ वृत्तस्थाश्छन्दोबद्धा अगदवरा । अथवा-अलङ्घितकर्तव्या-कर्तव्यमर्यादाः पुरुषाः ।

लूताघ्नोऽगदः—

¹रोध्रं सेव्यं पद्मकं पद्मरेणुः
कालीयाख्यं चंदनं यच्च रक्तम् ।
कांतापुष्पं दुग्धिनीका मृणालं
लूताः सर्वा घ्नंति सर्वक्रियाभिः ॥ ८६ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो मूषिकालर्कविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अष्टादशमूषिकाः (मूसा)—

"लालनश्चपलः पुत्रो हसिरश्चिक्किरोजिरः ।
कषायदतः कुलकः कोकिलः कपिलोऽसितः ॥ १ ॥
अरुणः शबलः श्वेतः कपोतः पलितोंदुरः ।
छुच्छुंदरो रसालाख्यो दशाष्टौ चेति मूषिकाः ॥ २ ॥

एषां विष प्राप्तिप्रकारः—

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रदिग्धैः स्पृशंति वा ।
यदंगमंगैस्तत्रास्रे दूषिते पांडुतां गते ॥ ३ ॥
ग्रंथयः श्वयथुः कोथो मंडलानि भ्रमोऽरुचिः ।
शीतज्वरोऽतिरुक्सादो वेपथुः पर्वभेदनम् ॥ ४ ॥
रोमहर्षः स्रुतिर्मूर्छा दीर्घकालानुबंधनम् ।
²श्लेष्मानुबद्धबह्वाखुपोतकच्छर्दनं सतृट् ॥ ५ ॥

---

१ कान्तापवः प्रियङ्गुर्वा । दुग्धिनीका "दूधिया" लोके । २ श्लेष्मयुक्तबहुमूषिकार्भकवमनं प्रभावात् ।

आखुविषसर्वदेहव्यापनम्—

व्यवाय्याखुविषं कृच्छ्रं भूयो भूयश्च कुप्यति ।

असाध्यमूषिकदष्टलक्षणम्—

मूर्छांगशोफवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ॥ ६ ॥

शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यलक्षणम् ।

असाध्यता—

शूनबस्तिं विवर्णौष्ठमाखुनाभैर्ग्रंथिभिश्चितम् ॥ ७ ॥

छुच्छुंदरसगंधं च वर्जयेदाखुदूषितम् ।

विषयुक्तकुक्कुरलक्षणम्—

शुनः श्लेष्मोल्बणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः ॥ ८ ॥

मुष्णंतः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम् ।

लालावानंधबधिरः सर्वतः[२] सोऽभिधावति ॥ ९ ॥

स्रस्तपुच्छहनुस्कंधशिरोदुःखी नताननः ।

अलर्कदष्टलक्षणम्—

दंशस्तेन[३] विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसृक् ॥ १० ॥

हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तंभस्तृष्णामूर्छोद्भवोऽनु च ।

अनेनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राप्रहारिणः ॥ ११ ॥

सविषनिर्विषालर्कादिदष्टलक्षणम्—

कंडूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः ।

विदाहरागरुक्पाकशोथग्रंथिविकुंचनम् ॥ १२ ॥

दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका मंडलानि च ।

सर्वत्र सविषे लिंगं, विपरीतं तु निर्विषे ॥ १३ ॥

---

२ सर्वथा । ३ तेन शुना विदष्टस्य नरस्य दंशः ।

दंशकर्त्तुश्चेष्टकारणेमरणम्—

दष्टो येन तु तच्चेष्टा रवं कुर्वन्विनश्यति ।
पश्यंस्तमेव चापस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ १४ ॥

जलसंत्रासान्मरणम्—

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।
जलसंत्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ १५ ॥

मूषिकदंशचिकित्सा—

आखुना दष्टमात्रस्य दंशं काण्डेन दाहयेत् ।
दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकान्यथा, ॥ १६ ॥
"दग्धं विस्रावयेद्दंशं प्रच्छिन्नं च प्रलेपयेत् ।
शिरीषरजनीवक्रकुंकुमामृतवल्लिभिः,, ॥ १७ ॥
"अगारधूममंजिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनः" ॥ १८ ॥
"ततोऽम्लैः क्षालयित्वाऽनु तोयैरनु च लेपयेत् ।
[2]पालिंदीश्वेतकटभीबिल्वमूलगुडूचिभि ,, ॥ १९ ॥
"अन्यैश्च विषघ्नोपक्रमैः, सिरां वा मोक्षयेद्द्रुतम् ।,,
छर्दनं नीलिनीक्वाथैः [3]शुकाख्याकोशयोरपि ॥ २० ॥
कोशातक्याः शुकाख्यायाः फलं जीमूतकस्य च ।
मदनस्य च सचूर्ण्यं दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ॥ २१ ॥
वचामदनजीमूतकुष्ठं वा मूत्रपेषितम् ।
पूर्वकल्पेन पातव्यं सर्वोंदुरविषापहम् ॥ २२ ॥
विरेचनं त्रिवृन्नीलीत्रिफलाकल्क इष्यते ।,
"अंजनं गोमयरसो व्योषसूक्ष्मरजोन्वितः,, ॥ २३ ॥
"कपित्थगोमयरसो मधुमानवलेहनम् ।,,
"तंदुलीयकमूलेन सिद्धं पाने हितं घृतम्" ॥ २४ ॥

---

१ अन्यथा-अदग्धे । २ पालिन्दी त्रिवृत् । ३ शुकाख्यःशिरीषः ।

"द्विनिशाकटभीरक्तोयष्ट्याह्वैर्वाऽमृवान्वितैः ।"
आस्फोतमूलसिद्धं, वा 'पंचकापित्थमेव वा, ॥ २५ ॥
"सिंदुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।
वचाश्वदंष्ट्राजीमूतमेषा क्वाथं समाक्षिकम् ॥ २६ ॥
पिबेच्छाल्योदनं दध्ना भुंजानो मूषिकार्दितः ।,,
"तन्त्रेण खरपुखाया बीजं संचूर्ण्य वा पिबेत्,, ॥ २७ ॥
"अंकोल्लमूलकल्को वा बस्तमूत्रेण कल्कितः ।
पानालेपनयोर्युक्तः सर्वाखुविषनाशनः,, ॥ २८ ॥
"कपित्थमध्यतिल³कतिलाकोल्लजटाः पिबेत् ।
गवां मूत्रेण पयसा मंजरी तिलकस्य वा,, ॥ २९ ॥
"अथवा सैर्यकान्मूलं सक्षौद्रं तदुलाबुना ।,,
"कटुकालाबुविन्यस्तं पीतं वाबु निशोषितम्,, ॥ ३० ॥
"सिंदुवारस्य मूलानि बिडालास्थिविषं नतम् ।
जलपिष्टो गदो हंति नस्याद्यैराखुजं विषम्,, ॥ ३१ ॥
"सशेषं मूषिकविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने ।
यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु" ॥ ३२ ॥
"तत्र सर्वं यथावस्थं प्रयोज्याः स्युरुपक्रमाः ।
यथास्वं ये च निर्दिष्टास्तथा दूषीविषापहाः" ॥ ३३ ॥

अलर्कदष्टचिकित्सा—

दंशं ह्यलर्कदष्टस्य दग्धमुष्णेन सर्पिषा ।
प्रदिह्यादगदैस्तैस्तैः पुराणं च घृतं पिबेत् ॥ ३४ ॥
'अर्कक्षीरयुतं चास्य योज्यमाशु विरेचनम् ।,,
अंकोल्लोत्तरमूलाम्बु त्रिफलं सहविः पलम् ॥ ३५ ॥
पिबेत्सधत्तूरफलां श्वेतां वाऽपि पुनर्नवाम् ।
"ऐकध्यं⁴ पललं तैलं रूपिकायाः पयो गुडः ॥ ३६ ॥

१ रक्ता मजिष्ठा । २ कपित्थस्येमानिकापित्थानि पंच च तानि कापित्थानि तैः सिद्धं पञ्चकापित्थम् । कपित्थस्य मूलत्वक्पत्रपुष्पफलानीति पञ्च । ३ तिलकाख्यो वृक्षः । ४ पललं भृष्टतिलचूर्णम् । रूपिका अर्कः ।

भिनत्ति विषमालर्कं घनवृंदमिवानिलः ।,,
समंत्रं सौषधीरत्नं स्नपनं च प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

चतुष्पदादिनखादिदातलिङ्गम्—

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदंतपरिक्षतम् ।
शूयते पच्यते रागज्वरस्रावरुजान्वितम् ॥ ३८ ॥

तत्रचिकित्सा—

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका ।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदंतविषापहः ॥ ३९ ॥

इति विषतंत्रं षष्ठं समाप्तम् ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथातो रसायनाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

रसायनाद्दीर्घायुःप्रभृतिप्राप्तिः—

"दीर्घमायुः स्मृतिं [1]मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेंद्रियबलोदयम् ॥ १ ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कांतिमवाप्नोति रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ २ ॥

रसायनप्रयोगस्यवय :—

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः ।
स्निग्धस्य स्नुतरक्तस्य विशुद्धस्य च सर्वथा ॥ ३ ॥

१ अत्र मेधाशब्दो सामान्यतो बुद्धपर्यवाचकः । मेधार्थस्यस्मृतिशब्देनोपात्तत्वात् ।

अविशुद्धशरीरे रसायनं निष्फलम्—

अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रासायनो विधिः ।
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रंग इवाफलः ॥ ४ ॥

रसायनां द्विविधः प्रयोग :—

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः ।
[1]कुटीप्रावेशिकं मुख्यं वातातपिकमन्यथा ॥ ५ ॥

कुटी प्रावेशिकविधि :—

निवति निर्भये हर्म्ये प्राप्योपकरणे पुरे ।
दिश्युदीच्यां शुभे देशे त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् ॥ ६ ॥
धूमातपरजोव्यालस्त्रीमूर्खाद्यविलङ्घिताम् ।
सज्जवैद्योपकरणां [1]सुमृष्टां कारयेत्कुटीम् ॥ ७ ॥
अथ पुण्येऽह्नि संपूज्य पूज्यांस्तां प्रविशेच्छुचिः ।
तत्र संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ॥ ८ ॥
ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्दधानो जितेंद्रियः ।
दानशीलदयासत्यव्रतधर्मपरायणः ॥ ६ ॥
देवतानुस्मृतौ युक्तो युक्तस्वप्नप्रजागरः ।
प्रियौषधः पेशलवाक् प्रारभेत रसायनम् ॥ १० ॥

रसायनार्थंशुद्धिकरणम्—

हरीतकीमामलकं सैंधवं नागरं वचाम् ।
हरिद्रां पिप्पली वेल्लं गुडं चोष्णांबुना पिबेत् ॥ ११ ॥
स्निग्धः स्विन्नो नरः पूर्वं, तेन साधु विरिच्यते ।
ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ॥ १२ ॥

---

१ कुटी प्रवेशेन निर्वृत्तं कुटीप्रावेशिकं । वातातपाभ्यां कृतं वातातपिकम् । त्रिगर्भा-त्रयोगर्भा अन्तराणि यस्याः सा त्रिगर्भा । प्रथममेकगृहं तदभ्यन्तरे द्वितीयं तस्याभ्यन्तरे तृतीयमेवं त्रिगर्भा । सज्जानि-उपस्थापितानि वैद्योपकरणानि-भैषज्या-दीनियस्यां सा । सुमृष्टां लेपादिना शुद्धाम् ।

इत्थंसंस्कृतकोष्ठस्यरसायनं देयम्—

इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनमुपाहरेत् ।
यस्य यद्यौगिकं पश्येत्सर्वमालोच्य सात्म्यवित् ॥ १४ ॥

त्रिरात्रं पंचरात्रं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम् ।
[1]दद्याद्यावकमाशुद्धेः पुराणशकृतोऽथवा ॥ १३ ॥

ब्राह्मरसायनम्—

पथ्यासहस्रं [2]त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम् ।
पंचानां पंचमूलानां सार्धं पलशतद्वयम् ॥ १५ ॥

जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे ।
आपोथ्य कृत्वा[3] व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ ॥ १६ ॥

[4]विनीय तस्मिन्निर्यूहे योजयेत्कुडवांशकम् ।
त्वगेलामुस्तरजनीपिप्पल्यगुरुचंदनम् ॥ १७ ॥

[5]मंडूकपर्णीकनकशंखपुष्पीवचाप्लवम् ।
यष्ट्याह्वय विडंगं च चूर्णितं, तुलयाधिकम् ॥ १८ ॥

सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः ।
द्वे च तैलात् पचेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम् ॥ १९ ॥

अवतीर्णं हिमं युञ्ज्याद्विंशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः ।
ततः खजेन मथितं निदध्याद् घृतभाजने ॥ २० ॥

या नोपरुन्ध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता ।
षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥ २१ ॥

—१ यावकंयवकृतमन्नम् । (जव की वार्ली) ।

२ धात्रीफलत्रिगुणंसहस्रत्रितयम् । दशभागोदशांशभागः । आपोथ्य मुदित्वा । ३ व्यस्थीनि अस्थिरहितानि । विजया-पथ्या । ४ विनीयप्रक्षिप्य, त्वगेलादीनि कुडवप्रमाणानि प्रत्येकंग्राह्याणि । ५ कनकं नागकेशरम् । प्लवोमुस्ता । पात्र-माढकम् ।

[1]वैखानसा वालखिल्यास्तथा चाऽन्ये तपोधनाः ।
ब्रह्मणा विहितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम् ॥ २२ ॥
तंद्राश्रमक्लमवलीपलितामयवर्जिताः ।
मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः ॥ २३ ॥

अभयामलकरसायनम्—

अभयामलकसहस्रं निरामयं[2] पिप्पलीसहस्रयुतम् ।
तरुणपलाशक्षारद्रवीकृतं स्थापयेद्भाण्डे ॥ २४ ॥
उपयुक्ते च क्षारे छायासंशुष्कचूर्णितं योज्यम् ।
पादांशेन सितायाश्चतुर्गुणाभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥ २५ ॥
तद् घृतकुंभे भूमौ निधाय षण्मासंसंस्थमुद्धृत्य ।
प्राह्णे प्राश्य यथानलमुचिताहारो भवेत्सततम् ॥ २६ ॥
इत्युपयुंज्याऽशेषं वर्षशतमनामयो जरारहितः ।
जीवति बलपुष्टिवपुःस्मृतिमेधाद्यन्वितो विशेषेण ॥ २७ ॥

आमलकरसायनम्—

नीरुजार्द्रपलाशस्य छिन्ने शिरसि तत्क्षतम् ।
अंतर्द्विहस्तं गंभीरं पूर्यमामलकैर्नवैः ॥ २८ ॥
आमूलं वेष्टितं दर्भैः पद्मिनीपङ्कलेपितम् ।
आदीप्य गोमयैर्वन्यैर्निर्वाते स्वेदयेत्ततः ॥ २९ ॥
स्विन्नानि तान्यामलकानि तृप्त्या
खादेन्नरः क्षौद्रघृतान्वितानि ।

---

१ चतुर्विधेषुवानप्रस्थेषु वैखानसबालखिल्याविति भेदद्वयम् । एतयोर्लक्षणं कण्वस्मृतौ यथा—अकृष्टपच्योषधिभिर्ग्रामबहिष्कृताभिरग्निहोत्रादि कुर्वन् वैखानस उच्यते । यस्तु जटावल्कलधारी अष्टौ मासान् वृत्युपार्जनं कृत्वा चातुर्मास्ये सद्गृहीताचो कार्तिक्यां संगृहीतपुष्पफलत्यागी स बालखिल्यः । २ निरामयं निर्दोषम् ।

क्षीरं शृतं चाऽनु पिबेत्प्रकामं
तेनैव वर्तेत च मासमेकम् ॥ ३० ॥
वर्ज्यानि वर्ज्यानि च तत्र यत्ना-
दस्पृश्यं च शीताबु न पाणिनाऽपि ।
एकादशाहेऽस्य ततो व्यतीते
पतंति केशा दशना नखाश्च ॥ ३१ ॥
अथाल्पकैरेव दिनैः सुरूप-
स्त्रीष्वक्षयः कुंजरतुल्यवीर्यः ।
विशिष्टमेधावलबुद्धिसत्त्वो
भवत्यसौ वर्षसहस्रजीवी ॥ ३२ ॥

च्यवनप्राशोऽवलेहः—

दशमूलबलामुस्तजीवकर्षभकोत्पलम् ।
पर्णिन्यौ पिप्पली शृंगी मेदा [1]तामलकी त्रुटिः ॥ ३३ ॥
जीवंती [2]जोंगकं द्राक्षा पौष्करं चंदनं शठी ।
पुनर्नवार्द्धिकाकोलीकाकनासामृताह्वयाः ॥ ३४ ॥
विदारी वृषमूलं च तदेकध्यं पलोन्मितम् ।
जलद्रोणे पचेत्पंचधात्रीफलशतानि च ॥ ३५ ॥
पादशेषं रसं तस्माद्धात्र्यस्थीन्यामलकानि च ।
गृहीत्वा भर्जयेत्तैलघृताद् द्वादशभिः पलैः ॥ ३६ ॥
मत्स्यंडिकातुलार्धेन युक्तं तल्लेहवद् पचेत् ।
स्नेहार्धं मधु सिद्धे तु तवक्षीर्याश्चतुष्पलम् ॥ ३७ ॥
पिप्पल्या द्विपलं दद्याच्चतुर्जातं कणार्धितम् ।
अतोऽवलेहयेन्मात्रां कुटीस्थः पथ्यभोजनः ॥ ३८ ॥
इत्येष च्यवनप्राश्यो यं प्राश्य च्यवनो मुनिः ।
जराजर्जरितोऽप्यासीन्नारीनयननंदनः ॥ ३९ ॥

---

१ तामलकी भूम्यामलकी । २ जोंगकमगुरु ।

कासं श्वासं ज्वरं शोषं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
मूत्रशुक्राश्रयान् दोषान् वैस्वर्यं च व्यपोहति ।
बालवृद्धक्षतक्षीणकृशानामंगवर्धनः ॥ ४० ॥

मेधां स्मृतिं कांतिमनामयत्व-
मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं बलमिंद्रियाणा-
मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्तः ॥ ४१ ॥

त्रिफलारसायनम्—

मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिंधुजन्मना ।
पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥ ४२ ॥
शिवया वा समायुक्ता [1]समायुक्ता रसायनम् ।
त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा ॥ ४३ ॥

मण्डूकपर्ण्यादिरसायनानि—

मंडूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्नि
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसं गुडूच्याः सहमूलपुष्प्याः
कल्कं प्रयुंजीत च शंखपुष्प्याः ॥ ४४ ॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्या विशेषेण तु शंखपुष्पी ॥ ४५ ॥

रसायनं घृतम्—

नलदं कटुरोहिणी पयस्या
मधुकं चंदनसारिवोपगंधाः ।

---

१ पृथग्लोहाःपञ्चरूप्यताम्रसीसवङ्गायसानि । समायुक्ता समैः सर्वैः युक्ता सेविता । समातुल्या युक्तासहिता समायुक्ता, पूर्णं वर्षं सेविता वा ।

त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे
सपटोलं लवणं च तैः सुपिष्टैः ॥ ४६ ॥
त्रिगुणेन रसेन शंखपुष्प्याः
सपयस्कं घृतनल्वणं विपक्वम् ।
उपयुज्य भवेज्जडोऽपि वाग्मी
श्रुतधारी प्रतिभानवानरोगः ॥ ४७ ॥

पञ्चारविन्द घृतम्—

[1]पेष्यैर्मृणालबिसकेसरपत्रबीजैः
सिद्धं सहेमशकलं पयसा च सर्पिः ।
पंचारविंदमिति तत्प्रथितं पृथिव्यां
प्रभ्रष्टपौरुषबलप्रतिभैर्निषेव्यम् ॥ ४८ ॥

चतुःकुवलय घृतम्—

यन्नालकंददलकेसरवद्विपक्वं
नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम् ।
सर्पिश्चतुःकुवलयं सहिरण्यपत्रं
मेध्यं गवामपि भवेद् किमु मानुषाणाम् ॥ ४९ ॥

जरादिरहितकरंभेषजम्—

ब्राह्मीवचासैंधवशंखपुष्पी-
मत्स्याक्षकब्रह्मसुवर्चलेंद्रचः ।
वैदेहिका च त्रियवाः पृथक्स्यु-
र्यवौ सुवर्णस्य तिलो विषस्य ॥ ५० ॥
सर्पिषश्च पलमेकत एव-
योजयेत्परिणते च घृताढ्यम् ।
भोजनं समधु वत्सरमेवं
दीप्तयत्नधिकर्धीस्मृतिमेधः ॥ ५१ ॥

---

१ पेष्यैः कल्कैः । हेम सुवर्णम् ।

अतिक्रांतजराव्याधितंद्रालस्यश्रमक्लमः ।
जीवत्यब्दशतं पूर्णं श्रीतेजःकांतिदीप्तिमान् ॥ ५२ ॥

विशेषतः कुष्ठकिलासगुल्म-
विषज्वरोन्मादगरोदराणि ।
अथर्वमंत्रादिकृताश्च कृत्याः
शाम्यत्यनेनातिबलाश्च वाताः ॥ ५३ ॥

नागबला (गुलशकरी-गंगेरन) प्रयोग :—

शरन्मुखे नागबलां पुष्ययोगे समुद्धरेत् ।
अक्षमात्रं ततो मूलाच्चूर्णितात्पयसा पिबेत् ॥ ५४ ॥
लिह्यान्मधुघृताभ्यां वा क्षारवृत्तिरनन्नभुक् ।
एवं वर्षप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं बली ॥ ५५ ॥

गोक्षुरक (गोखुरू) रसायनम्—

[1]फलोन्मुखो गोक्षुरकः समूल-
श्छायाविशुष्कः सुविचूर्णितांगः ।
सुभावितः स्वेन रसेन तस्मा-
न्मात्रां परां प्राभृतिकीं पिबेद्यः ॥ ५६ ॥
क्षीरेण तेनैव च शालिमश्नन्
जीर्णे भवेत्स द्विगुणोपयोगात् ।
शक्तः सुरूपः सुभगः शतायुः
कामी ककुद्मानिव गोकुलस्थः ॥ ५७ ॥

वाराहीकन्दप्रयोग :—

वाराहीकंदमार्द्रं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत् ।
मासं निरन्नो, मासं च क्षीराशी जरां जयेत् ॥ ५८ ॥
तत्कंदशुष्कचूर्णं वा स्वरसेन सुभावितम् ।
घृतक्षौद्रप्लुतं लिह्यात्तत्पक्वं वा घृतं पिबेत् ॥ ५९ ॥

---

१ फलोन्मुख आसन्नभविष्यत्फलः ।

विदार्यादयोवयःस्थैर्यादिप्रदा :—

[1]तद्वद्विदार्यतिबलाबलामधुकवायसी: ।
श्रेयसी श्रेयसी युक्ता: पथ्याधात्रीस्थिरामृता: ॥ ६० ॥
मंडूकीशंखकुसुमावाजिगंधाशतावरी: ।
उपयुंजीत मेधावी वय:स्थैर्यबलप्रदा: ॥ ६१ ॥

चित्रक रसायनम्—

यथास्वं चित्रक: पुष्पैर्ज्ञेय: पीतसितासितै: ।
यथोत्तरं स गुणवान् विधिना च रसायनम् ॥ ६२ ॥
छायाशुष्कं ततो मूलं मासं चूर्णीकृतं लिहन् ।
सर्पिषा मधुसर्पिर्भ्यां पिबन् वा पयसा यति: ॥ ६३ ॥
अंभसा वा हिताशाशी शतं जीवति नीरुज: ।
मेधावी बलवान् कांतो वपुष्मान् दीप्तपावक: ॥ ६४ ॥
तैलेन लीढो मासेन वातान् हंति सुदुस्तरान् ।
मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान् ॥ ६५ ॥

भल्लातकरसायनम्—

भल्लातकानि पुष्टानि धान्यराशौ निधापयेत् ।
ग्रीष्मे संगृह्य हेमंते स्वादुस्निग्धहिमैर्वपु: ॥ ६६ ॥
संस्कृत्य तान्यष्टगुणे सलिलेऽष्टौ विपाचयेत् ।
अष्टांशशिष्टं तत्क्वाथं सक्षीरं शीतलं पिबेत् ॥ ६७ ॥
वर्धयेत्प्रत्यहं चानु तत्रैकैकमरुष्करम् ।
[2]सप्तरात्रत्रयं यावत् त्रीणि त्रीणि तत: परम् ॥ ६८ ॥
आचत्वारिंशतस्तानि ह्रासयेद्वृद्धिवत्तत: ।
सहस्रमुपयुंजीत सप्ताहैरिति सप्तभि: ॥ ६९ ॥

---

१ तद्वत् वाराहीवन्दवत् । २ सप्तरात्रत्रयमेकविंशतिदिनानि । तत:सप्तरात्रत्रयात् ।

यंत्रितात्मा घृतक्षीरशालिषष्टिकभोजनः ।
तद्वत्त्रिगुणितं कालं प्रयोगान्तेऽपि चाचरेत् ॥ ७० ॥
आशिषो लभतेऽपूर्वा वह्नेर्दीप्तिं विशेषतः ।
प्रमेहकृमिकुष्ठार्शोमेदोदोषविवर्जितः ॥ ७१ ॥

भल्लातकस्वरस :—

पिष्टस्वेदनमरुजे पूर्णं भल्लातकैर्विजर्जरितैः ।
भूमिनिखाते कुंभे प्रविष्टं कृष्णमृल्लिप्तम् ॥ ७२ ॥
परिवारितं समंतात्स्वेत्ततो गोमयाग्निना मृदुना ।
तत्स्वरसो यश्च्यवते गृह्णीयात्तं दिनेऽन्यस्मिन् ॥ ७३ ॥
अष्टमुपयुज्य स्वरसं सन्तष्टमभागिकं द्विगुणसर्पिः ।
पूर्वविधियंत्रितात्मा प्राप्नोति गुणान्स तानेव ॥ ७४ ॥

भल्लातकघृतं स्मृत्यादिकरम्—

[1]पुष्टानि पाकेन परिच्युतानि
भल्लातकान्याढकसंमितानि ।
घृष्ट्वेष्टिकाचूर्णकणैर्जलेन
प्रक्षाल्य संशोष्य च मारुतेन ॥ ७५ ॥
जर्जराणि विपचेज्जलकुंभे
पादशेषघृतगालितशीते ।
तद्रसं पुनरपि श्रपयेत
क्षीरकुंभसहितं चरणस्थे ॥ ७६ ॥
सर्पिः पक्वं तेन तुल्यप्रमाणं
युंज्यात्स्वेच्छं शर्कराया रजोभिः ।
एकीभूतं तत्खजक्षोभणेन
स्थाप्यं धान्ये सप्तरात्रं सुगुप्तम् ॥ ७७ ॥

---

१ स्वरसान्मधुनोऽष्टमोभागो ग्राह्यः । २ जलकुम्भे जलद्रोणे ।

कुष्ठनाशकं तुवरक तैलम्—

वृक्षास्तुवरका नाम पश्चिमार्णवतीरजाः ।
वीचीतरंगविक्षोभमारुतोद्धूतपल्लवाः ॥ ८४ ॥
तेभ्यः फलान्याददीत सुपक्वान्यंबुदागमे ।
मज्जां फलेभ्यश्चादाय शोषयित्वाऽवचूर्ण्य च ॥ ८५ ॥
तिलवद् पीडयेद् द्रोण्यां क्वाथयेद्वा कुसुंभवत् ।
तत्तैलं संभृतं भूयः पचेदासलिलक्षयात् ॥ ८६ ॥
अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत् ।
स्निग्धस्विन्नो हृतमलः पश्चादुद्धृत्य तत्ततः ॥ ८७ ॥
चतुर्थभक्तांतरितः प्रातः पाणितलं पिबेत् ।
मंत्रेणानेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे ॥ ८८ ॥
मज्जासार महावीर्य सर्वान् धातून् विशोधय ।
शंखचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥ ८९ ॥
तेनास्योर्ध्वमधस्ताच्च दोषा यांत्यसकृत्ततः ।
सायमस्नेहलवणां यवागूं शीतलां पिबेत् ॥ ९० ॥
पंचाहानि पिबेत्तैलमित्थं वर्ज्यानि वर्जयेत् ।
पक्षं मुद्गरसान्नाशी सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते ॥ ९१ ॥

खदिरक्वाथसिद्धतैलं कुष्ठहरम्—

तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधु साधितम् ।
निहितं पूर्ववत्पक्षं पिबेन्मासं गुणश्रितः ॥ ९२ ॥
तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वन्नाहारमीरितम् ।
अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत्कुष्ठिनं नरम् ॥ ९३ ॥

---

१ तुवरकः "चालमोगरा" इतिलोके । २ चतुर्थेनभक्तेनभोजनेनान्तरितो व्यवहितः । ३ तदेव-तुवरक तैलम् ।

द्विशतायुष्करं तैलम्—

सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिरादिना ।
पक्वं मांसरसाहरं करोति द्विशतायुषम् ॥ ९४ ॥

त्रिशतायुष्करं तैलम्—

तदेव नस्ये पंचाशाद्दिवसानुपयोजितम् ।
वपुष्मंतं श्रुतधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥ ९५ ॥

पिप्पली प्रयोग :—

पंचाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा ।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ ९६ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।

अन्यः पिप्पली प्रयोग :—

पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिता : ॥ ९७ ॥
प्रयोज्या मधुसमिश्रा रसायनगुणैषिणा ।

वर्धमान सहस्रपिप्पली प्रयोग :—

क्रमवृद्धया दशाहानि दशपैप्पलिकं दिनम् ॥ ९८ ॥
वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः ।
जीर्णोऽपधश्च भुंजीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ॥ ९९ ॥
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ।
पिष्टास्ता बलिभिः पेयाः शृता मध्यबलैर्नरैः ॥ १०० ॥

---

१ दशपिप्पल्यो वर्धमाना यस्मिन् दिने तद्दशपैप्पलिकं दिनम् । वृद्धया-यथा प्रथमदिने १०, द्वितीये २०, तृतीये ३०, चतुर्थे ४०, पञ्चमे ५०, षष्ठे ६०, सप्तमे ७०, अष्टमे ८०, नवमे ९०, दशमे १०० । संकलनेन ५५० । अपनयेन एकादश-दिने ९०, द्वादशदिने ८०, त्रयोदशदिने ७०, चतुर्दशदिने ६०, पञ्चदशदिने ५०, षोडशदिने ४०, सप्तदशदिने ३०, अष्टादशदिने २०, ऊनविंशतिदिने १० । संकलनेन ४५० । अयमेवं प्रकारः सहस्रपिप्पलीनां प्रयोगः ।

तद्वच्च छागदुग्धेन द्वे सहस्रे प्रयोजयेत् ।
एभिः प्रयोगैः पिप्पल्यः कासश्वासगलग्रहान् ॥ १०१ ॥
यक्ष्ममेहग्रहण्यर्शः पांडुत्वविषमज्वरान् ।
घ्नन्ति शोफं वमिं हिध्मां प्लीहानं वातशोणितम् ॥ १०२ ॥

अन्यः पिप्पली प्रयोग :—

बिल्वार्धमात्रेण च पिप्पलीनां
पात्रं प्रलिपेदयसो निशायाम् ।
प्रातः पिबेत्तत्सलिलाञ्जलिभ्यां
वर्षं यथेष्टाशनपानचेष्टः ॥ १०३ ॥

शुण्ठ्यादि प्रयोग :—

शुंठीविडंगत्रिफलागुडूची
यष्टीहरिद्रातिबलाबलाश्च ।
मुस्तासुराह्वागुरुचित्रकाश्च
सौगंधिकं पंकजमुत्पलानि ॥ १०४ ॥
षवाश्वकर्णासनवा[1]लपत्र-
सारास्तथा पिप्पलिवत्प्रयोज्या ।
लोहोपलिप्ताः पृथगेव जीवे-
त्समाः शतं व्याधिजराविमुक्तः ॥ १०५ ॥
क्षारांजलिभ्यां च रसायनानि
युक्तान्यमून्यायसलेपनानि ।
कुर्वंति पूर्वोक्तगुणप्रकर्ष-
मायुः प्रकर्षं द्विगुणं ततश्च ॥ १०६ ॥

सोमराजी (बकुची) रसायनम्—

असनखदिरयूषैर्भाविता सोमराजी
मधुघृतशिखिपथ्यालोहचूर्णैस्समेताम् ।

---

१ बालपत्रः खदिरः ।

लशुनभक्षण काल :—

शीलयेल्लशुनं शीते, वसन्तेऽपि कफोल्बणः ।
घनोदयेऽपि वातार्तः, सदा वा ग्रीष्मलीलया[1] ॥ ११४ ॥
[2]स्निग्धशुद्धतनुः शीतमधुरोपस्कृताशयः ।
तदुत्तंसावतंसाभ्यां चर्चितानुचराजिरः ॥ ११५ ॥

गलनाडी-विशुद्धये लशुनस्वरसप्रयोग :—

तस्य कंदान् वसंतान्ते हिमवच्छकदेशजान् ।
अपनीतत्वचो रात्रौ [3]तीमयेन्मदिरादिभिः ॥ ११६ ॥
तत्कल्कस्य रसं प्रातः शुचि[4]तान्तवपीडितम् ।
मदिरायाः सुस्वच्छायास्त्रिभागेन समन्वितम् ॥ ११७ ॥
मद्यस्यान्यस्य तैलस्य मस्तुनः काञ्जिकस्य वा ।
तत्काल एव वा युक्तं युक्तमालोच्य मात्रया ॥ ११८ ॥
तैलसर्पिर्वसामज्जक्षीरमांसरसैः पृथक् ।
क्वाथेन वा यथाव्याधि रसं केवलमेव वा ॥ ११९ ॥
पिबेद्गण्डूषमात्रं प्राक् कंठनाडीविशुद्धये ।

वेदनादौ स्वेदनादि—

प्रततं स्वेदनं चानु वेदनायां प्रशस्यते ॥ १२० ॥

शेष रसपानम्—

शीताम्बुसेकः सहसा वमिमूर्छाययोर्मुखे ।
शेषं पिबेत्बलमापाये स्थिरतां गत ओजसि ॥ १२१ ॥

---

१ ग्रीष्मलीलया-ग्रीष्मर्तुचर्याया आचरणेन । २ स्निग्धा शुद्धा च तनुर्यस्य । शीतैर्मधुरैरुपस्कृतः संस्कृत आशयो यस्य । तस्य लशुनस्योत्तंसावतंसाभ्यां शिरोभूषणकर्णपूराभ्याम् । उत्तंसः शिरोभूषणम् । अवतंसः कर्णपूरः । चर्चिता मण्डिता अनुचरा अजिरे आङ्गणे यस्यसतथा । ३ तीमयेत्क्लेदयेत् । ४ सान्तवं वस्त्रम् ।

विदाहशान्तयेशीतानुलेपनम्—

विदाहपरिहाराय परं शीतानुलेपनः ।
धारयेत्सांबुकणिका मुक्ताः कर्पूरमालिकाः ॥ १२२ ॥

लशुनस्यमात्रा—

कुडवोऽस्य परा मात्रा तदर्धं केवलस्य तु ।
पलं पिष्टस्य तन्मज्ञः सभक्तं प्राक् च शीलयेत् ॥ १२३ ॥

लशुनप्रयोगकाले भोजनम्—

जीर्णशाल्योदनं जीर्णे शंखकुंदेंदुपाडुरम् ।
भुंजीत यूषैः पयसा रसैर्वा धन्वचारिणाम् ॥ १२४ ॥

तृष्णायां पानम्—

मद्यमेकं पिबेत्तत्र तृट्प्रबंधे जलान्वितम् ।
अमद्यपस्त्वारनालं फलाम्बुपरिसिक्थिकाम् ॥ १२५ ॥

लशुनकल्कभक्षणम्—

तत्कल्कं वा समधृतं घृतपात्रे खजाहतम् ।
स्थितं दशाहादश्नीयात्तद्वा वसया समम् ॥ १२६ ॥

लशुनप्रयोगः—

[3]विकंचुकप्राज्यरसोनगर्भान्
सशूल्यमांसान् विविधोपदंशान् ।
विमर्दकान्वा घृतशुक्तयुक्तान्
प्रकाममद्याल्लघु तुल्यमश्नन् ॥ १२७ ॥

---

१ परिसिक्थका सट्टकविशेषः । तत्कल्को लशुनकल्कः । २ तद्वत् वसया सह्-रिपतंदशाहादूर्ध्वं पिबेद् । ३ विकंचुकस्त्वग्रहितः । विमर्दकलक्षणं चरकीयकृतान्नवर्गे पठितं तद्यथा—

"नानाद्रव्यैः समायुक्तः पक्वामक्लिन्नभर्जितः ।
विमर्दको गुरुर्हृद्यो वृष्यो बलवतां हितः ॥" तुल्यमल्पम् ।

शुद्धवातरोगार्तस्य लशुनात्परं द्रव्यं नास्ति—

पित्तरक्तविनिर्मुक्तमस्तावरणावृते ।
शुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्यं लशुनात्परम् ॥ १२८ ॥

प्रियजलादेर्नरस्यलशुनो व्यापत्तये—

प्रियांबुगुडदुग्धस्य मांसमद्याम्लविद्विषः ।
अतितिक्षोरजीर्णे च रसोनो व्यापदे ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

लशुनप्रयोगान्ते विरेचनम्—

पित्तकोपभयादते युंज्यान्मृदु विरेचनम् ।
रसायनगुणानेवं परिपूर्णान्समश्नुते ॥ १३० ॥

शिलाजतुप्रकार :—

ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमंति यत् ।
हेमादिषड्धातुरसं प्रोच्यते तच्छिलाजतु ॥ १३१ ॥
सर्वं च तिक्तकटुकं नात्युष्णं कटुपाकतः ।
छेदनं च विशेषेण लोहं तत्र प्रशस्यते ॥ १३२ ॥
गोमूत्रगंधि कृष्णं गुग्गुल्वाभं विशर्करं मृत्स्नम्
स्निग्धमनम्लकषायं मृदु गुरु च शिलाजतु श्रेष्ठम् ॥ १३३ ॥

शिलाजतुनोभावना विधि :—

व्याधिव्याधितसात्म्यं
समनुस्मरन् भावयेदयः पात्रे ।
प्राक् केवलजलधौतं
शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ॥ १३४ ॥

'समगिरिजमष्टगुणिते नि.क्वाथ्यं भावनौषधं तोये ।
तत्तिस्र् हेऽष्टांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद् गिरिजम् ॥ १३५ ॥
तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः ।
स्वैः स्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त ॥ १३६ ॥

१ हेमादीनांषण्णां धातूनांरसम् । २ समगिरिजं शिलाजतुसमानं भावनौषधम्

स्निग्धनरस्य दिनत्रयं शिलाजतुसेवनम्—

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् ।
[1]त्र्यहं युंजीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ १३७ ॥

फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च ।
योगयोग्यं ततस्तस्य कालापेक्षं प्रयोजयेत् ॥ १३८ ॥

शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ।
गुणान्समग्रान् कुरुते सहसा व्यापदं न च ॥ १३९ ॥

शिलाजतुनस्त्रिविधः प्रयोगः—

एकत्रिसप्तसप्ताहं [2]कर्षमर्धपलं पलम् ।
हीनमध्योत्तमो योगः शिलाजस्य क्रमान्मतः ॥ १४० ॥

रसायनफलः शिलाजतुप्रयोगः—

संस्कृतं संस्कृते देहे प्रयुक्तं गिरिजाह्वयम् ।
युक्तं व्यस्तैः समस्तैर्वा ताम्रायोरूप्यहेमभिः ॥ १४१ ॥

क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रासायनं फलम् ।
कुलत्थान् काकमाचीं च कपोतांश्च सदा त्यजेत् ॥ १४२ ॥

सर्वरोगनाशं शिलाजतुरसायनम्—

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपो
जत्वश्मजं यं न जयेत्प्रसह्य ।
तत्कालयोगैर्विधिवत्प्रयुक्तं
स्वस्थस्य [3]चोर्जां विपुलां दधाति ॥ १४३ ॥

---

१ त्र्यहं-तिक्तकसाधितं त्र्यहंसेवेत । तथा एकैकेन वक्ष्यमाणेन फलत्रयादिना प्रत्येकं त्र्यहं शिलाजमुपसेवेत । २ एक त्रिसप्तसप्ताहमिति कालप्रयोगः क्रमाद्धीन-मध्योत्तमो योगः । कर्षादिर्मात्रा प्रयोगः स हीनादिः । ३ ऊर्जा-बलम् ।

रसायनस्य द्विविधः प्रयोगः—

कुटीप्रवेशः क्षणिना[1] परिच्छदवतां हितः ।
अतोऽन्यथा तु ये तेषां सौर्यमारुतिको विधिः ॥ १४४ ॥

वातातपसहयोगकथनम्—

वातातपसहा योगा वक्ष्यन्तेऽतो विशेषतः ।
सुखोपचारा भ्रंशेऽपि ये न देहस्य बाधकाः ॥ १४५ ॥

शीतोदकादिरसायनम्—

[2]शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक् पीतं स्थापयेद्वयः ॥ १४६ ॥

हरीतकीप्रयोगः—

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा ।
द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४७ ॥

हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य
समश्नतस्तत् पिबतो घृतं च ।
भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे
सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥ १४८ ॥

धात्रीरसादिरसायनम्—

धात्रीरसक्षौद्रसिताघृतानि
हिताशनानां लिहतां नराणाम् ।
प्रणाशमायान्ति जराविकारा
[3]ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ १४९ ॥

---

१ क्षणिनामवकाशवताम् । परिच्छदवतामुपकरणवतां सपरिवाराणां वा । अतोऽन्यथा—परिच्छदक्षणविहीनानां सौर्यमारुतिको विधिः । २ प्राक् भोजनात्प्राक् । द्विशो यथा—शीतोदकपयसी, शीतोदकक्षौद्रे, शीतोदकघृते, पयःक्षौद्रे, पयोघृते, क्षौद्रघृते विषममानयुक्ते, एवमेव त्रिशोऽपि बोध्यम् । ३ यथा विशाला महान्तो ग्रन्था दुर्गृहीताद्दुःपठिताः ।

धात्रीप्रभृतिसेवनं पुनर्यौवनकरम्—

[1]धात्रीकृमिघ्नासनसारचूर्णं
सतैलसर्पिर्मधुलोहरेणु।
निषेवमाणस्य भवेन्नरस्य
तारुण्यलावण्यमविप्रणष्टम् ॥ १५० ॥

बलकरो लोहादिचूर्णलेहः—

लोहं रजो वेल्लभवं च सर्पिः
क्षौद्रद्रुतं स्थापितमब्दमात्रम्।
सामुद्गके बीजकसारकॢप्ते[2]
लिहन् बली जीवति कृष्णकेशः ॥ १५१ ॥

विडङ्गादीनि निरामयकराणि—

विडंगभल्लातकनागराणि
येऽश्नन्ति सर्पिर्मधुसंयुतानि।
जरानदीं रोगतरंगिणीं ते
लावण्ययुक्ताः पुरुषास्तरन्ति ॥ १५२ ॥

त्रिफलारसायनम्—

खदिरासनयूषभाविताया-
स्त्रिफलाया घृतमाक्षिकप्लुतायाः।
नियमेन नरा निषेवितारो
यदि जीवन्त्यरुजः किमत्र चित्रम् ॥ १५३ ॥

बीजसाररसोऽजराऽभावकरः—

बीजकस्य रसमंगुलिहार्यं[3]
शर्करामधुघृतं त्रिफलां च।

शीलयस्तु पुरुषेषु जरत्वम्
स्त्रागतापि विनिवर्तत एव ॥ १५४ ॥

पुनर्नवाकल्प :—

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य
पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम् ।
मासद्वयं तत्रिगुणं समां वा
जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ १५५ ॥

मूर्वादीनां पुनर्नवातुल्यो विधि :—

मूर्वाबृहत्यंशुमतीबलाना-
मुशीरपाठासनसारिवाणाम् ।
कालानुसार्यागुरुचंदनानां
वदंति पौनर्नवमेव कल्पम् ॥ १५६ ॥

शतावरीघृतं विकारनाशकम्—

शतावरीकल्ककषायसिद्धं
ये सर्पिरश्नंति सिताद्वितीयम् ।
तान् जीवितध्वानमभिप्रपन्ना,
न विप्रलुंपति विकारचौराः ॥ १५७ ॥

अश्वगन्धाप्रयोगः कार्श्यहर :—

पीताश्वगंधा पयसार्धमासं
घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥ १५८ ॥

कृष्णतिलप्रयोगः पुष्टिकर :—

दिने दिने कृष्णतिलप्रकुंचं
समश्नता शीतजलानुपानम् ।

---

१ जीवितध्वानं जीवनमार्गमभिप्रपन्नान् गतान् ।

पीनः शरीरेण भवत्यनार्तो
दृढोनिर्यग्नागवलाश्च दन्ताः ॥ १५९ ॥

गोक्षुरकादिलेह :—

चूर्णं श्वदंष्ट्रामलकामृतानां
लिह्यात्साज्यं मधुभागमिश्रम् ।
वृषः स्थिरः शान्तविकारदुःखः
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः ॥ १६० ॥

कृष्णतिलप्रयोग :—

मासं तिलैरामलकानि कृष्णै-
रक्षाणि मधुना हरीतकीश्च ।
येऽश्नन्ति पूरा इव ते मनुष्या
रम्यं परीणाममवाप्नुवन्ति ॥ १६१ ॥

दौर्बल्यहरः शिलाजत्वादि प्रयोग :—

शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पि-
र्लोहाभयापारदताप्यभक्षः ।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातु-
स्त्रिपंचरात्रेण यथा शशांकः ॥ १६२ ॥

बलादिकारकोभृङ्गराजरस :—

ये मासमेकं स्वरसं पिबंति
दिने दिने भृंगरजःसमुत्थम् ।
क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवंति ॥ १६३ ॥

---

१ रम्यं परीणाम रमणीयं वयःपरिणाममाप्नुवन्ति । दर्शनीया भवन्तीत्यर्थः ।

मेधाकरो वचाप्रयोग :—

मासं वचामप्युपसेवमानाः
क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि ।
भवंति रक्षोभिरधृष्यरूपा
मेधाविनो निर्मलमृष्ट[1]वाक्याः ॥ १६४ ॥

बहुजीवनप्रदो मण्डूकपर्णी प्रयोग :—

मंडूकपर्णीमपि भक्षयंतो
भृष्टां घृते मासमनन्नभक्ष्याः ।
जीवंति कालं विपुलं प्रगल्भा-
स्तारुण्यलावण्यगुणोदयस्थाः ॥ १६५ ॥

गुटिकोपयोगो नीरोगत्वादिकर :—

लांगलीत्रिफलालोहपलपंचाशतीकृतम् ।
मार्कवस्वरसे पक्त्वा गुटिकानां शतत्रयम् ॥ १६६ ॥

छायाविशुष्कं गुटिकार्धमध्या-
त्पूर्वं समस्तामपि ता क्रमेण ।
भजेद्विरिक्तः क्रमशश्च मंड
पेया विलेपी रसकौदनं च ॥ १६७ ॥
सर्पिःस्निग्धं मासमेकं यतात्मा
मासादूर्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः ।
वर्ज्यं यस्मात्सर्वकालं त्वजीर्णं
वर्षेणैवं योगमेवोपयुंज्यात् ॥ १६८ ॥

भवति विगतरोगो योऽप्यसाध्यामयार्तः
प्रबलपुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः ।
उपचितपृथुगात्रश्रोत्रनेत्रादियुक्त-
स्तरुण इव समानां पंच जीवेच्छतानि ॥ १६९ ॥

---

१ मृष्टं मधुरम् ।

'अत्तारं नारसिंहस्य व्याधयो न स्पृशंत्यपि ।
चक्रोज्ज्वलभुजं भीता नारसिंहमिवासुराः ॥ १७४ ॥

भृङ्गराज पल्लवप्रयोग :—

भृंगप्रवालानमुनैव[2] भृष्टान्
घृतेन यः खादति यंत्रितात्मा ।
विशुद्धकोष्ठोऽसनसारसिद्ध-
दुग्धानुपस्तत्कृतभोजनार्थः ॥ १७५ ॥

मासोपयोगात् स सुखी जीवत्यब्दशतद्वयम् ।
गृह्णाति सकृदप्युक्तमविलुप्तस्मृतींद्रियः ॥ १७६ ॥

तैलोपयोग :—

अनेनैव च कल्पेन यस्तैलमुपयोजयेत् ।
तानेवाप्नोति स गुणान् कृष्णकेशश्च जायते ॥ १७७ ॥

'उक्तानि शक्यानि फलान्वितानि
युगानुरूपाणि रसायनानि ।
महानुशंसान्यपि चापराणि
प्राप्त्यादिकष्टानि न कीर्तितानि ॥ १७८ ॥

रसायनभ्रंशे विकारोपशमनम्—

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन् व्याधयो यदि ।
यथास्वमौषधं तेषां कार्यं मुक्त्वा रसायनम् ॥ १७९ ॥

सत्यादिनियमोरसायनरूप :—

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेंद्रियम् ।
शांतं सद्वृत्तनिरतं विद्यान्नित्यरसायनम् ॥ १८० ॥

---

१ अत्तारं भोक्तारम् । २ अमुनैव-नारसिंहघृतेनैव । ३ यानि शक्यानि फलान्वितानि युगानुरूपाणि च तान्युक्तानि । अपराणि च महानुशंसान्यपि महाफलान्यपि तानि न कीर्तितानि ।

रसायनसेविनो दीर्घायुष्ट्वादि —

गुणैरेभिः समुदितः सेवते यो रसायनम् ।
स निर्वृतात्मा दीर्घायुः परत्रेह च मोदते ॥ १८१ ॥

शास्त्रानुसारित्वादिरसायनम्—

शास्त्रानुसारिणी चर्या चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः ।
बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम् ॥ १८२ ॥

समाप्तं रसायनतन्त्रम् ।

चत्वारिंशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा

अथाऽतो वाजीकरणाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वाजीकरणौषधग्रहणेफलम्—

वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान् ।
तुष्टिःपुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संश्रितम् ॥ १ ॥
अपत्यसंतानकरं यत्सद्यः संप्रहर्षणम् ।

वाजीकरणशब्दावयवार्थ :—

वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः ॥ २ ॥

१ नवाजी अवाजी अवाजी-वाजी क्रियतेऽनेनतद्वाजीकरणम्, अथवा वाजः शुक्रं, वाजो शुक्रवान् ।

भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन[1] येनोपचीयते ।
तद्वाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्यं नैःश्रेयसकरम्—

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ ४ ॥

वाजीकरणमाभ्युदयिकम्—

अल्पसत्त्वस्य तु क्लेशैर्बाध्यमानस्य रागिणः ।
शरीरक्षयरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

नीरोगस्य पुरुषस्य सर्वर्तुषु स्त्रीसंभोगः—

[2]कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवायो न निवार्यते ॥ ६ ॥

स्निग्धस्यसानुवासननिरूहादि—

अथ स्निग्धविशुद्धानां निरूहान्सानुवासनान् ।
घृततैलरसक्षीरशर्कराक्षौद्रसंयुतान् ॥ ७ ॥
योगविद्योजयेत्पूर्वं क्षीरमांसरसाशिनाम् ।
ततो वाजीकरान् योगान् शुक्रापत्यविवर्धनान् ॥ ८

निरपत्यनिन्दा—

अच्छायः पूतिकुसुमः फलेन रहितो द्रुमः ।
यथैकश्चैकशाखश्च निरपत्यस्तथा नरः ॥ ९ ॥

अपत्यप्रशंसा

स्खलद्गमनमव्यक्तवचनं धूलिधूसरम् ।
अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम् ॥ १० ॥
अपत्यं तुल्यता केन दर्शनस्पर्शनादिषु ।
किं पुनर्यद्यशोधर्ममानश्रीकुलवर्धनम् ॥ ११ ॥

---

१ येन स्त्रीणामतिप्रियः । येन चोपचीयते । रागिणः कामिनः । २ कल्पस्य स्वस्थस्य ।

शुद्धशरीरे वृष्यप्रयोगा :—

शुद्धकाये यथाशक्ति वृष्ययोगान् प्रयोजयेत् ।

वाजीकरण प्रयोग :—

शरेक्षुकुशकाशानां विदार्या ¹वीरणस्य च ॥ १२ ॥
मूलानि कंटकार्याश्च जीवकर्षभकौ बलाम् ।
मेदे द्वे द्वे च काकोल्यौ शूर्पपर्ण्यौ शतावरीम् ॥ १३ ॥
अश्वगंधामतिबलामात्मगुप्तां पुनर्नवाम् ।
वीरां पयस्यां जीवंती मृद्वी रास्नां त्रिकंटकम् ॥ १४ ॥
मधुकं शालिपर्णीं च भागांस्त्रिपलिकान् पृथक् ।
माषाणामाढकं चैतद् द्विद्रोणे साधयेदपाम् ॥ १५ ॥
रसेनाढकशेषेण पचेत्तेन घृताढकम् ।
दत्त्वा विदारीधात्रीक्षुरसानामाढकाढकम् ॥ १६ ॥
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं पेष्याणीमानि² चावपेत् ।
वीरां स्वगुप्ता काकोल्यौ यष्टीं फल्गूनि पिप्पलीम् ॥ १७ ॥
द्राक्षा विदारी खर्जूरं मधुकानि शतावरीम् ।
तत्सिद्धपूतं चूर्णस्य पृथक् प्रस्थेन योजयेत् ॥ १८ ॥
शर्करायास्तुगायाश्च पिप्पल्याः कुडवेन च ।
मरिचस्य प्रकुंचेन पृथगर्धपलोन्मितैः ॥ १९ ॥
त्वगेलाकेसरैः शूर्ण्णैः क्षौदाद् द्विकुडवेन च ।
पलमात्रं ततः खादेत् प्रत्यहं रसदुग्धभुक् ॥ २० ॥
तेनारोहति वाजीव कुलिंग इव हृष्यति ।

कान्ताशतस्यदर्पघ्नं चूर्णम्—

विदारीपिप्पलीशालिप्रियालेक्षुरकाद्गजः ॥ २१ ॥
पृथक् स्वगुप्तामूलाच्च कुडवांशं तथा मधु ।
तुलार्धं शर्कराचूर्णात् प्रस्थार्धं नवसर्पिषः ॥ २२ ॥

---

१ वीरणमुशीरम् । २ पेष्याणि कल्कान् । इमानि वीरादीनि ।

सोऽश्नमाश्नमतः खादेद्यस्य रामाशत गृहे ।

सर्वरात्रौरतिकारकोयोग :—

सात्मगुप्ताफलान् क्षीरे गोधूमान्साधितान् हिमान् ॥ २३ ॥

माषान्वा सघृतक्षौद्रान् खादन् गृष्टिपयोऽनुपः ।
जागर्ति रात्रिं सकलामखिन्नः खेदयन्स्त्रियः ॥ २४ ॥

कान्ताशतेनसह रतिकारकोयोग :—

बस्तांडसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ २५ ॥

कान्ताशतेच्छाकर्तृ चूर्णम्—

चूर्णं विदार्या बहुशः [1]स्वरसेनैव भावितम् ।
क्षौद्रसर्पिर्युतं लीढ्वा प्रमदाशतमृच्छति ॥ २६ ॥

वृद्धस्यतारुण्यकरोयोग :—

कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्लीढ्वा योऽनु पयः पिबेत् ॥ २७ ॥

स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ।

व्यवाये नित्यवेगकरो मधुक योग :—

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ २८ ॥
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ।

वृष्ययोग :—

[2]कुलीरशृङ्ग्या यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत् ॥ २९ ॥

सिताघृतपयोऽन्नाशी स नारीषु वृषायते ।

शुक्राऽक्षयकरोयोग :—

यः पयस्यां पयःसिद्धां खादेन्मधुघृतान्विताम् ॥ ३० ॥

---

१ स्वरसेन विदार्या रसेन । २ कुलीरशृङ्गी–कर्कटशृङ्गी ।

[1]पिबेद्वाष्कयणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः ।

चूर्णपानंशुक्रवृद्धिकरम्—

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ॥ ३१ ॥
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते ।

वृद्धस्य तारुण्यापादको योग :—

[2]उच्चटाचूर्णमप्येवं शतावर्याश्च योजयेत् ॥ ३२ ॥
चंद्रशुभ्रं दधिसरं ससितं षष्टिकौदनम् ।
पटे सुमार्जितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ३३ ॥

वृद्धस्य स्त्रीशतगमने शक्तिकरो योग :—

श्वदंष्ट्रेक्षुरमाषात्मगुप्ताबीजशतावरीः ।
पिबन् क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम् ॥ ३४ ॥

वृष्यस्वरूपम्—

यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम् ।
मनसो हर्षणं यच्च तत्सर्वं वृष्यमुच्यते ॥ ३५ ॥
द्रव्यैरेवंविधैस्तस्मादर्पितः प्रमदां व्रजेत् ।
[3]आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ ३६ ॥

शब्दादयः सेव्या :—

सेव्याः सर्वेंद्रियसुखा[4] धर्मकल्पद्रुमाङ्कुराः ।
विषयातिशयाः पंच, शराः कुसुमधन्वनः ॥ ३७ ॥

---

१ बष्कयणी चिरप्रसूता धेनुस्तस्या इदं वाष्कयणम् ।

२ उच्चटा–श्वेतगुञ्जा । अथवा लोके "उटङ्गन" इति प्रसिद्धं द्रव्यम् । ३ आत्मवेगेन स्वस्यबलेन । स्त्रीगुणैर्लावण्यादिभिः । ४ धर्म–एव कल्पवृक्षोऽङ्कुरा-इवाङ्कुराः । पञ्चविषयाःशब्दस्पर्शादयः । कुसुमधन्वनःकामस्य शराः बाणाः-तेविषयाः ।

स्त्री प्रशंसा—

इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्था हर्षप्रीतिकराः परम् ।
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये सघातेन प्रतिष्ठिताः ॥ ३८ ॥

नामापि यस्या हृदयोत्सवाय
यां पश्यतां तृप्तिरनाप्तपूर्वा[1] ।
सर्वेन्द्रियाकर्षणपाशभूता
कांतानुवृत्तिव्रतदीक्षिता या ॥ ३९ ॥
[2]कलाविलासाङ्गवयोविभूषा
शुचिः सलज्जा रहसि प्रगल्भा ।
प्रियंवदा तुल्यमनःशया या
सा स्त्री वृषत्वाय परं नरस्य ॥ ४० ॥

कामशास्त्रानुसारं रतिकरणम्—

आचरेच्च सकलां रतिचर्या
कामशास्त्रविहितामनवद्याम् ।
देशकालबलशक्त्यनुरोधा-
[3]द्वैद्यतंत्रसमयोक्त्यविरुद्धाम् ॥ ४१ ॥

विहाररूपं वाजीकरणम्—

अभ्यञ्जनोद्वर्तनमेकगन्ध-
[4]स्रक्पत्रवस्त्राभरणप्रकाराः ।
गान्धर्वकाव्यादिकथाप्रवीणाः
समस्वभावा वशगा वयस्याः ॥ ४२ ॥

---

१ अनाप्तपूर्वा–पूर्वमनाप्ततृप्तिः । कान्तस्य भर्तुरनुवृत्तिरनुवर्तनं तदेव व्रतं तत्र या दीक्षिता । २ कलादय एव विभूषाभूषणं यस्याः । कलानृत्यगीतादिरूपा चतुःषष्टिभेदभिन्ना । विलासः-प्रियसमागमेगत्यासनमुखनेत्रादीनां वैचित्र्यम् । रहसि सुरते–प्रगल्भा धृष्टा । मनःशयः कामः । ३ अनवद्यामनिन्द्याम् । वैद्योतिवैद्यक-शास्त्राचाराऽविरुद्धाम् । ४ स्रक्माला, वयस्यामित्राणि ।

[1]दीर्घिका स्वभवनान्तनिविष्टा
पद्मरेणुमधुमत्तविहंगा ।
[2]नीलसानुगिरिकूटनितंबे
काननानि पुरकंठगतानि ॥ ४३ ।

दृष्टिमुखा विविधा तरजातिः
श्रोत्रमुखः कलकोकिलनादः ।
अंगसुखर्तुवशेन विभूषा
चित्तसुखः सकलः परिवारः ॥ ४४ ।

[3]तांबूलमच्छमदिरा
कांता कांता निशा शशांकांका ।
यद्यच्च किंचिदिष्टं
मनसो वाजीकरं तत्तत् ॥ ४५ ॥

कामोत्पादकानि—

[4]मधुमुखमिव सोत्पलं प्रियायाः
[5]कलरणना परिवादिनी प्रियेव ।
कुसुमचयमनोरमा च शय्या
किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा ॥ ४६ ॥

---

१ दीर्घिकावापी । स्वभवनान्तनिविष्टा स्वगृहसमीपेस्थिता । पद्मरेणु-मधुभ्यां मत्ताविहङ्गा यस्याम् । २ नीलसानु शिखरो यस्य स चासौ गिरिस्तस्य कूटस्तस्य नितम्बस्तत्र यानि काननानि । तानि पुरस्य समीपस्थानि । कलोमनोहरः श्रवणसुख इत्यर्थः । अङ्गेषु सुखानुरोधेन ऋत्वनुरोधेन च विभूषा-अलङ्कारः । ३ अच्छमदिरा निर्मलं मद्यम् । मनःप्रिया सुन्दरी । सचन्द्रा रात्रिः । एतत् समस्तं वाजीकरणम् । ४ मधु-माद्वीकमद्यं सोत्पलं सकमलं स्त्रियामुखमिव । ५ कलरणना मधुरशब्दा । परिवादिनी वीणा सा प्रिया इव । कुसुमचयमनो रमा-पुष्पसमूहविरचिता रमणीया शय्यापुष्पिताग्रा पल्लववर्ती पुष्पप्रधाना लता इव ।

[1]देशे शरीरे च न कश्चिदर्ति-
रर्थेषु नाल्पोऽपि मनोविघातः ।
वाजीकराः संनिहिताश्च योगाः
कामस्य कामं परिपूरयंति ॥ ४७ ॥

अग्र्यसङ्ग्रहः—

मुस्तापर्पटकं ज्वरे, तृषि जलं मृद्भृष्टलोष्टोद्भवं,
लाजाश्छर्दिषु, बस्तिजेषु [2]गिरिजं, मेहेषु धात्रीनिशे ।
पांडौ श्रेष्ठमयोऽभयानिलकफे, प्लीहामये पिप्पली
[3]संधाने कृमिजा, विषे शुकतरुर्मेदोऽनिले गुग्गुलः ॥ ४८ ॥

वृषोऽस्रपित्ते, कुटजोऽतिसारे
भल्लातकोऽर्शःसु, गरेषु हेम ।
स्थूलेषु तार्क्ष्यं, कृमिषु कृमिघ्नं
शोषे सुराच्छागपयोऽनुमांसम् ॥ ४९ ॥
अक्ष्यामयेषु त्रिफला, गुडूची
वातास्ररोगे, मथितं ग्रहण्याम् ।
कुष्ठेषु सेव्यः खदिरस्य सारः
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥ ५० ॥

उन्मादं घृतमनवं, शोकं मद्यं, विसंस्मृतिं ब्राह्मी ।
निद्रानाशं क्षीरं जयति, रसाला प्रतिश्यायम् ॥ ५१ ॥
मांसं कार्श्यं, लशुनः प्रभंजनं, स्तब्धगात्रतां स्वेदः ।
[4]गुडमंजर्याः स्वपुरो नस्यात्स्कंधांसबाहुरुजम् ॥ ५२ ॥

---

१ देश इति–स्वस्थोदेशः स्वस्थंशरीरं मनोऽनुकूल धनागमश्चेत्येते पदार्थाः कामस्य काममिच्छांपरिपूरयन्ति काममुत्पादयन्तीत्यर्थः । संनिहिताः समीपस्थिता वाजीकरायोगा वाजीकरण प्रयोगाः । २ गिरिजं-शिलाजतु । ३ कृमिजा-लाक्षा । शुकतरुःशिरीषः । तार्क्ष्यं रसाञ्जनम् । मथितं तक्रम् । अनवं पुराण घृतम् । शोकं मद्यं जयति-मद्यं शोकनाशकम् । ४ गुडमंजरी कृष्णशाल्मली तस्याः स्वपुरोनिर्यासः (धुंदुक वा गांद) ।

नवनीतखंडमर्दितमौद्ग्यं मूत्र पयश्च हंत्युदरम् ।
नस्यं मूर्धविकारान्, विद्रधिमचिरोत्थमस्रविस्रावः ॥ ५३ ॥
नस्यं केवलमुखजानस्याजनतर्पणानि नेत्ररुजः ।
वृद्धत्वं क्षीरघृते, मूर्छां शीताम्बुमारुतच्छायाः ॥ ५४ ॥
ममशुक्तार्द्रकमात्रा मंदे वह्नौ, श्रमे सुरा स्नानम् ।
दुःखसहत्वे स्थैर्ये व्यायामो, गोक्षुरहितः कृच्छ्रे ॥ ५५ ॥
कासे निदिग्धिका, पार्श्वशूले पुष्करजा जटा ।
वयसः स्थापने धात्री, त्रिफला गुग्गुलुर्व्रणे ॥ ५६ ॥

बस्तिर्वातविकारान्,
पैत्तान् रेकः, कफोद्भवान् वमनम् ।
क्षौद्रं जयति बलासं,
सर्पिः पित्तं, समीरणं तैलम् ॥ ५७ ॥

इत्यग्र्यं यत्प्रोक्तं रोगाणामौषधं शमायालम् ।
तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम् ॥ ५८ ॥

अग्निवेशप्रश्न :—

[१]इत्यात्रेयादागमय्यार्थसूत्रं
तत्सूक्तानां पेशलानामतृप्तः ।
भेडादीनां संमतो भक्तिनम्रः
पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ॥ ५९ ॥

दृश्यंते भगवन् केचिदात्मवंतोऽपि रोगिणः ।
द्रव्योपस्थातृसंपन्ना वृद्धवैद्यमतानुगाः ॥ ६० ॥
[२]क्षीयमाणामयप्राणा विपरीतास्[३]तथापरे ।
हिताहितविभागस्य फलं तस्मादनिश्चितम् ॥ ६१ ॥

---

१ आगमय्य ज्ञात्वा । तत्सूक्तानामात्रेयसुभाषितानाम् । पेशलानां मनोहराणाम् । २ क्षीयमाणामयप्राणाः केचिद्रोगाद्विमुच्यमानाः केचिच्च म्रियमाणाः । ३ विपरीता-अनात्मवन्तः, द्रव्योपस्थातृरहिताः, वृद्धवैद्यमताननुसारिणश्च तथा-क्षीयमाणामयप्राणाः ।

[1]किं शास्ति शास्त्रमस्मि-
न्निति कल्पयतोऽग्निवेशमुख्यस्य ।
शिष्यगणस्य पुनर्वसु-
राचक्षौ कार्त्स्न्यतस्तत्त्वम् ॥ ६२ ॥

प्रश्नस्योत्तरम्—

न[2] चिकित्साऽचिकित्सा च तुल्या भवितुमर्हति ।
विनापि क्रियया स्वास्थ्यं गच्छता षोडशांशया ॥ ६३ ॥

आतङ्कपङ्कमग्नानामौषधहस्तावलम्ब :—

आतंकपंकमग्नाना हस्तालंबो भिषग्जितम् ।
जीवितं म्रियमाणाना सर्वेषामेव नौषधात् ॥ ६४ ॥

उपायसाध्यानांसिद्धत्वम्—

न ह्युपायमपेक्षन्ते [3]सर्वे रोगा न चान्यथा ।
उपायसाध्याः सिध्यन्ति नाहेतुर्हेतुमान् यतः ॥ ६५ ॥

यदुक्तं सर्वसंपत्तियुक्तयापि चिकित्सया ।
मृत्युर्भवति तत्रैव नोपायेऽस्त्यनुपायता ॥ ६६ ॥

---

१ किंशास्ति न किंचिदपिशिक्षयतीत्यर्थः । कल्पयतो विचारं कुर्वतः । २ षोडशांशया षोडशभागया चतुर्गुणचतुष्पादयुक्तया, क्रियया चिकित्सया विना स्वास्थ्यमपिगच्छतां नराणां, चिकित्सा चतुष्पात् षोडशगुणयुक्ता, अचिकित्सा च तुल्या भवितुं नार्हति । षोडशभागया चिकित्सया विना यस्य रोगस्योपशान्तिस्तस्यापि चिकित्सया शीघ्रतरं सिद्धिस्तथा चिकित्सा साध्यानां रोहिणिकादीना चिकित्सा विनाशान्तिर्नभवतीत्यर्थः । ३ सर्वे रोगा असाध्या रोगाः । उपायसाध्या रोहिण्यादय, अन्यथा–चिकित्सामन्तरेण नैव-सिद्ध्यन्ति, यतोऽहेतुर्हेतुमान्न भवति । उपायेऽनुपायतानास्ति । योहियस्योपायः स न तस्यानुपायः । यथा घटस्य मृद्दण्डचक्रादिसामग्रीविशेषो न कदाचिद्-घटस्यानुपायो भवितुमर्हति ।

दैवयोगात् क्वचिदसिद्धिः—

[1]अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचित्क्रिया ।
न सिध्येद्दैववैगुण्यान्न त्वियं षोडशात्मिका ॥ ६७ ॥

दृष्टान्तः—

कस्यासिद्धोऽग्नि[2]तोयादिः स्वेदस्तंभादिकर्मणि ।
न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरं गवेधुकम् ॥ ६८ ॥

कस्य माषात्मगुप्तादौ वृष्यत्वे नास्ति निश्चयः ।
विण्मूत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे ॥ ६९ ॥

विषं कस्य जरां याति मंत्रतंत्रविवर्जितम् ।
कः प्राप्तः [3]कल्यतां पथ्यादृते रोहिणिकादिषु ॥ ७० ॥

चिकित्सातन्त्रस्य साफल्यम्—

अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धांतनिश्चितम् ।
महतापि प्रयत्नेन वार्यतां कथमन्यथा ॥ ७१ ॥

ज्वरेलङ्घनबृंहण शास्त्रसिद्धे—

चंदनाद्यपि दाहादौ रूढमागमपूर्वकम् ।
शास्त्रादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लंघनबृंहणम् ॥ ७२ ॥

चिकित्सितेसंशयोनैवकर्तव्यः—

चतुष्पाद्गुणसंपन्ने सम्यगालोच्य योजिते ।
[4]मा वृथा व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां चिकित्सिते ॥ ७३ ॥

---

१ यत्र दैवे प्रतिकूले कदाचित्प्रक्रिया सिद्ध्यति तत्र दैवमेवप्रतिबन्धकं कारणं, न तु षोडशात्मिकायाश्चिकित्सायाविफलत्वमित्यर्थः । २ अग्निः स्वेदकर्मणि, तोयं च स्तम्भने । क्षीरंप्रीणनं-तर्पणं, गवेधुकं-कोद्रवान्नं कर्शनम् । ३ कल्यता आरोग्यम् । ४ व्याधिनिर्घातं प्रति विचिकित्सां-संशयं माकृथाः ।

एतच्छास्त्रमकाण्ड मृत्युपाशच्छेदनम्—

एतद्धि[1] मृत्युपाशानामकांडे छेदनं दृढम् ।
रोगोत्त्रासितभीतानां रक्षासूत्रममूत्रकम् ॥ ७४ ॥

चिकित्साशास्त्रंमृत्युञ्जयेऽमृतम्—

एतत्तदमृतं साक्षाज्जगत्यायासवर्जितम् ।
याति हालाहलत्वं च सद्यो दुर्भाजनस्थितम् ॥ ७५ ॥

कुवैद्यानांत्याग :—

[2]अज्ञातशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।
त्यजेद्दूराद् भिषक्पाशान् पाशान् वैवस्वतानिव ॥ ७६ ॥

सुवैद्यानां भद्रम्—

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥ ७७ ॥

मन्त्रवदेतस्यप्रयोग :—

[3]इति तंत्रगुणैर्युक्तं तंत्रदोषविवर्जितम् ।
चिकित्साशास्त्रमखिलं व्यापठ्य परितः स्थितम् ॥ ७८ ॥

विपुलामलविज्ञानमहामुनिमतानुगम् ।
महासागरगंभीरसंग्रहार्थोपलक्षणम् ॥ ७९ ॥

---

१ एतत् चिकित्सातन्त्रम् । अकाण्डेऽकाले । असूत्रकंसूत्ररहितम् । आयासेन परिश्रमेण वर्जितम् । जगत्प्रसिद्धममृतंतु क्षीरोदं प्रमथ्य सुरासुरैरुत्पादितमिदं-चिकित्साशास्त्रममृतंतु आयासरहितम् । २ अज्ञातः शास्त्रस्य सद्भावस्तत्वार्थो-यैस्तान् । सामान्यतः शास्त्रपाठमात्रतत्परान्, अदृष्टकर्मणः । भिषक्पाशान् निन्दित वैद्यान् । वैवस्वतान् यमसम्बन्धिनः । ३ तन्त्रगुणास्तन्त्रयुक्तयः द्वात्रिंशत्संख्याकाः । तन्त्रदोषैरप्रसिद्धशब्दादिभिर्वर्जितम् । महासागर इवगम्भीरो यः सङ्ग्रहार्थोऽष्टाङ्गसंग्रहस्तस्योपलक्षणमुपायभूतम् ।

दैवयोगात् क्वचिदसिद्धि :—

[1]अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचित्क्रिया ।
न सिध्येद्दैववैगुण्यान्न त्वियं षोडशात्मिका ॥ ६७ ॥

दृष्टान्त :—

कस्यामिहोऽग्नि[2]तोयादिः स्वेदस्तंभादिकर्मणि ।
न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरं गवेधुकम् ॥ ६८ ॥

कस्य माषात्मगुप्तादौ वृष्यत्वे नास्ति निश्चयः ।
विण्मूत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे ॥ ६९ ॥

विषं कस्य जरां याति मंत्रतंत्रविवर्जितम् ।
कः प्राप्तः [3]कल्यतां पथ्याद्दते रोहिणिकादिषु ॥ ७० ॥

चिकित्सातन्त्रस्य साफल्यम्—

अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धांतनिश्चितम् ।
महतापि प्रयत्नेन वार्यता कथमन्यथा ॥ ७१ ॥

ज्वरेलङ्घनबृंहण शास्त्रसिद्धे—

चंदनाद्यपि दाहादौ रूढमागमपूर्वकम् ।
शास्त्रादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लंघनबृंहणम् ॥ ७२ ॥

चिकित्सितेसंशयोनैवकर्तव्य :—

चतुष्पाद्गुणसंपन्ने सम्यगालोच्य योजिते ।
[4]मा कृथा व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां चिकित्सिते ॥ ७३ ॥

---

१ यत्र दैवे प्रतिकूले कदाचिन्नक्रिया सिद्धयति तत्र दैवमेवप्रतिबन्धकं कारणं, न तु षोडशात्मिकायाश्चिकित्सायाविफलत्वमित्यर्थः । २ अग्निः स्वेदकर्मणि, तोयं च स्तम्भने । क्षीरंप्रीणनं-तर्पणं, गवेधुकं-क्षौद्रवान्नं कर्शनम् । ३ कल्यता मारोग्यम् । ४ व्याधिनिर्घातं प्रति विचिकित्सा-संशयं माकृथाः ।

अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिव खलु करोतु [1]व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

आधुनिककविकृतग्रन्थाभ्यासे युक्तिस्तस्माद् सुमतिभिरेतद्ग्राह्यम्—

[2]अभिनिवेशवशादभियुज्यते
सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः ।
पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं
स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण ।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
[3]का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिधातृवशात् किंवा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।
अतो [4]मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलम्ब्यताम् ॥ ८७ ॥

---

१ व्याधितानां-कासश्वासाद्यभिभूतानाम् । वराकोऽल्पबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोक्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्सुश्रुतोक्तरोगाभिधानाच्च एतदध्येता रोगचिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं ध्रुवं विदधात्येव ।

२ अभिनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्यं-प्रथमप्रणीतं लक्षमितं ब्रह्मोक्तं वैद्यकम् । पुरुषायुषं वर्षशतम् । अनिर्विदोऽखिन्नः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तृभेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचित् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिमत्तमः, परं तैलादि वातादिनाशकमितिमहर्षिः कथयेदथवा ऋषिभिन्नस्तत्र न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्सरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पक्षपातराहित्यम् ।

अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिव खलु करोतु [1]व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

आधुनिककविकृतग्रन्थाभ्यासे युक्तिस्तस्माद् सुमतिभिरेतद्ग्राह्यम्—

[2]अभिनिवेशवशादभियुज्यते
सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः ।
पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं
स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण ।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
[3]का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिधातृवशात् क्रिया द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।
अतो [4]मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलंब्यताम् ॥ ८७ ॥

---

१ व्याधितानां-कासश्वासाद्यभिभूतानाम् । वराकोऽल्पबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोक्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्सुश्रुतोक्तरोगाभिधानाच्च एतदध्येता रोगचिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं ध्रुवं विदधात्येव ।

२ अभिनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्यं-प्रथमप्रणीतं लक्षमितं ब्रह्मोक्तं वैद्यकम् । पुरुषायुषं वर्षशतम् । अनिर्विदोऽखिन्नः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तृभेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचित् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिसम्पन्नः, परं तैलादि वातादिनाशक मितिमहर्षिः कथयेदथवा ऋषिभिन्नस्तत्र न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्सरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पक्षपातराहित्यम् ।

टिप्पणीकर्तुर्निवेदनम्

प्रेम्णोन्नीतसदौषधीशमनिशं पीयूषपूराश्रितम्
संश्लिष्टं गिरिराजकल्पलतया मृत्युञ्जयं शङ्करम् ।
नित्यं दिव्यरसायनं सुरतरुं ह्यायुष्यनैरुज्ययो—
रायुर्वेदशिवं शरण्यमशिवध्वंसाय वन्दामहे ॥ १ ॥

स्फुरद्राजस्थानं भरतवसुधाभालतिलकम्
समृद्धं यत्रास्ते जयपुरमतिख्यातविरुदम् ।
पिलोदग्रामस्तत्सविधमथ गौडद्विजवरैः
श्रितो, यस्मिन् विद्वानजनि जयकृष्णो गुणनिधिः ॥ २ ॥

तदात्मजः श्रीयुतपूर्णदत्तः
प्रशस्तविद्याचरितैरमत्तः ।
जातो यशस्वी सुजनाभिवन्द्यो-
वन्द्यो विदामार्जवशोभिशीलः ॥ ३ ॥

शम्भोर्मूर्ध्नि धृतापि यच्चरणयोः प्रक्षालनं कुर्वती
गङ्गा हर्षतरङ्गितेव वहते यत्रोत्तरप्रक्रमा ।
लुप्ता चापि सरस्वती परिसरे यस्याश्चिरात्स्यन्दते ॥
साविश्वेश्वरवल्लभा विजयते वाराणसी मुक्तिदा ॥ ४ ॥

अस्यां भद्रवनी (भदैनी) सुभद्रविबुधावासस्थली पावनी
यस्यामास भिषग्वरो ममपिता श्री पूर्णदत्ताभिध. ।
नित्यं पुण्यचिकित्सयाऽत्र जनताव्याधीन्समुद्धलयं-
ल्लोके ख्यातिमुपेयिवान्निरुपमां सर्वाभिनन्द्यो भवन् ॥ ५ ॥

तस्यात्मजः प्रवीणप्राज्ञानां सेवने सक्तः ।
अधिगतवैद्यकविद्यो निरवद्यो भव्यगोष्ठीषु ॥ ६ ॥
आयुर्वेदाचार्यः श्रीहरिनारायणः शर्मा ।
बी०एन्० मेहता विश्रुत संस्कृत *विद्यालयाध्यक्षः ॥ ७ ॥

तेन प्रभाभिधाना रचिता रुचिराथ टिप्पणी पुण्या ।
प्रद्यान्नहृदयनामा ग्रन्थो यत्सङ्गतो भाति ॥ ८ ॥
अन्तस्तमो विदामप्यस्येत् किरणाङ्कुरो यस्याः ।
सैषा कृतिर्मदीया प्रीत्यै भूयान्महेश्वरस्य ॥ ९ ॥

---

* प्रतापगढ़ (अवध) स्थितः ।

अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिव खलु करोतु [1]व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

आधुनिककविकृतग्रन्थाभ्यासे युक्तिस्तस्माद् सुमतिभिरेतद्ग्राह्यम्—

[2]अभिनिवेशवशादभियुज्यते
सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः ।
पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं
स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण ।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
[3]का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिधातृवशात् क्रिया द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।
अतो [4]मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलम्ब्यताम् ॥ ८७ ॥

---

१ व्याधितानां-कामश्वासाद्यभिभूतानाम् । वराकोऽल्पबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोक्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्सुश्रुतोक्तरोगाभिधानाच्च एतदध्येता रोगचिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं ध्रुवं विदधात्येव ।

२ अभिनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्यं-प्रथमप्रणीतं लक्षमितं ब्रह्मोक्तं वैद्यकम् । पुरुषायुषं वर्षशतम् । अनिर्विदोऽखिन्नः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तृभेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचित् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिमत्तमः, परं तैलादि वातादिनाशकमितिमहर्षिः कथयेदथवा ऋषिभिन्नस्तत्र न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्सरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पक्षपातराहित्यम् ।